ब्रज संस्कृति विश्वकोश

खण्ड 2

भाग 2

ब्रज के धर्म सम्प्रदाय

मुख्य संपादक
सूर्य प्रसाद दीक्षित

प्रबन्ध संपादक
सतीश चन्द्र दीक्षित

वृन्दावन शोध संस्थान

वृन्दावन शोध संस्थान की स्थापना स्व. डॉ. रामदास गुप्त द्वारा 24 नवम्बर सन् 1968 को की गई। यह संस्थान प्राच्य दर्शन और ब्रज संस्कृति के शोध एवं अध्ययन का केन्द्र है। यहाँ एक पूर्ण विकसित पाण्डुलिपि ग्रंथागार है, जिसमें लगभग 35000 दुर्लभ पाण्डुलिपियाँ संरक्षित हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ के पुस्तकालय में लगभग 15000 मुद्रित पुस्तकों का संग्रह है। डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा के हिन्दी एवं संस्कृत विषयों के शोध-केन्द्र के रूप में संबद्ध इस संस्थान से पंजीकृत होकर अब तक 26 शोधार्थियों को पी-एच.डी. उपाधि से सम्मानित किया जा चुका है। संस्थान में आधुनिकतम संसाधनों से सुसज्जित संरक्षण, रिप्रोग्राफी, शोध एवं प्रकाशन विभाग हैं। वर्ष 2006 से राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन के एक केन्द्र के रूप में संस्थान एम.आर.सी. एवं एम.सी.सी. परियोजनाओं पर भी कार्य कर रहा है।

भारत सरकार के अनुदान के सहयोग से संस्थान ब्रज संस्कृति विश्वकोश, ब्रज क्षेत्र के सर्वेक्षण एवं दस्तावेजीकरण, पाण्डुलिपियों के प्रकाशन और कैटलॉगिंग आदि कार्य सम्पन्न कर रहा है। ब्रज के वैभव को प्रदर्शित करता ब्रज संस्कृति संग्रहालय संस्थान में दर्शनीय है।

ब्रज संस्कृति विश्वकोश

द्वितीय खण्ड

भाग II

(ब्रज के धर्म सम्प्रदाय)

वृन्दावन शोध संस्थान
रमणरेती, वृन्दावन, उत्तर प्रदेश (भारत)
देव पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स

प्रकाशक :

वृन्दावन शोध संस्थान

रमणरेती, वृन्दावन, उत्तर प्रदेश (भारत)

Phone 91-0565-2540628, 09359366166, Fax 0565-2540576

e-mail-vrindavanresearch@gmail.com - website: www.vri.org.in

सह-प्रकाशक :

देव पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स

द्वितीय तल, प्रकाशदीप बिल्डिंग,

22, दिल्ली मैडिकल एसोसिएशन रोड

नई दिल्ली-110002

दूरभाष: 43572647

e-mail: devbooks@hotmail.com

website: www.devbooks.co.in

(संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार के अनुदान से प्रकाशित)

ISBN 978-93-81406-44-1 (Series)

ISBN 978-93-81406-84-7 (Vol. II)

प्रथम संस्करण: 2018

© 2018, वृन्दावन शोध संस्थान

मूल्य : ₹ 2200.00 (दोनों खण्ड)

विषयानुक्रमणिका

		पृ. सं.
1.	अक्षय तृतीया	1
2.	अक्षय नवमी	1
3.	अग्रदास	2
4.	अग्निदेव	2
5.	अग्निपुराण	3
6.	अचिन्त्य-भेदाभेद वाद	4
7.	अटलकिशोर	9
8.	अणुभाष्यम्	9
9.	अथर्ववेद	9
10.	अद्वैतवाद	11
11.	अनंत दास	13
12.	अनंतनाथ	14
13.	अनंतानंद	15
14.	अनन्य अलि	16
15.	अनन्य देव	17
16.	अन्त:करणप्रबोध	17
17.	अन्नकूट	17
18.	अमरदास	17
19.	अलंकार कौस्तुभ	18
20.	अलबेली शरण	18
21.	अलीगढ़ के ईसाई धार्मिक स्थल	18
22.	अलीगढ़ के जैन धार्मिक स्थल	19
23.	अलीगढ़ के मुस्लिम धार्मिक स्थल	20
24.	अलीगढ़ के हिन्दू धार्मिक स्थल	22
25.	अवतार	25
26.	अविकृत परिणामवाद	26
27.	अश्विनी कुमार	27
28.	अष्टछाप	28
29.	अष्टयाम सेवा	29
30.	अहिंसा	29
31.	आगरा के आर्य समाज मन्दिर	31
32.	आगरा के ईसाई धार्मिक स्थल	33
33.	आगरा के जैन धार्मिक स्थल	35
34.	आगरा के मुस्लिम धार्मिक स्थल	41
35.	आगरा के सिक्ख धार्मिक स्थल	49
36.	आगरा के हिन्दू धार्मिक स्थल	51
37.	आचमन	63
38.	आत्मानंद	64
39.	आत्माराम इकंगी	65
40.	आनन्दवृन्दावनचम्पू	65
41.	आनंदीबाई	66
42.	आयागपट्ट जैन पूजा के प्रथम सोपान	67
43.	आयुर्वेद	68
44.	आर्यसमाज का दार्शनिक सिद्धान्त	70
45.	आरण्यक ग्रंथ	72
46.	आलवार	73
47.	आश्रम व्यवस्था	76
48.	आसानन्द	77
49.	इंजील	78
50.	इंद्रदास काठियाबाबा	79
51.	इच्छाद्वैत	79
52.	इस्लाम धर्म का दार्शनिक मत	82
53.	इस्लाम धर्म की उपासना पद्धति	83
54.	इस्लाम धर्म के प्रमुख त्यौहार	83
55.	ईशान नागर	84
56.	ईशावास्योपनिषद्	85
57.	ईश्वरपुरी	87
58.	उज्ज्वल नीलमणि	88
59.	उत्तमदास	89

	पृ. सं.
60. उद्धवदास	89
61. उद्धव-संदेश	90
62. उपनयन	90
63. उपनिषद् भाष्य	91
64. उपनिषद् भाष्य (अद्वैत)	91
65. उपवेद	92
66. उपेन्द्र भट्टाचार्य	94
67. ऊषा	94
68. ऋग्वेद	96
69. ऋषीकेशदेव	97
70. एटा जनपद के मुस्लिम धार्मिक स्थल	98
71. एटा जनपद के सिक्ख धार्मिक स्थल	99
72. एटा जनपद के हिन्दू धार्मिक स्थल	100
73. एनी बिसेण्ट	101
74. ऐश्वर्यकादम्बिनी	102
75. औदुम्बर संहिता	103
76. औदुम्बराचार्य	105
77. कंस मेला	107
78. कड़चा	107
79. कन्हरदेव	107
80. कठोपनिषद्	107
81. कर्णहर देवाचार्य	108
82. कर्णानंद	109
83. कमलनयन	109
84. कमलनयन गोस्वामी	109
85. कर्म	110
86. करौली के हिन्दू धार्मिक स्थल	112
87. कलिसंतरणोपनिषद्	113
88. कल्पसूत्र	113
89. कल्याण पुजारी	114
90. कवि कर्णपूर	115
91. कादाचित्की लीला	115
92. कादिरी संप्रदाय	115
93. कामवन के हिन्दू धार्मिक स्थल	116
94. कार्तिक नियम सेवा	118
95. कार्तिक पूर्णिमा	118
96. काव्यकौस्तुभ	118
97. कासगंज के ईसाई धार्मिक स्थल	118
98. कासगंज के जैन धार्मिक स्थल	119
99. कासगंज के मुस्लिम धार्मिक स्थल	119
100. कासगंज के सिक्ख धार्मिक स्थल	120
101. कासगंज के हिन्दू धार्मिक स्थल	120
102. किशोरदास	121
103. किशोरीदास गोस्वामी	121
104. कीलदास	122
105. कुंजलाल	122
106. कुंजो देवी	123
107. कुम्भनदास	123
108. कुरान-ए-शरीफ	124
109. कूर्मपुराण	125
110. कृपाचार्य	125
111. कृष्ण कर्णामृत	126
112. कृष्ण-कर्णामृत टीका	127
113. कृष्णचंद्र	127
114. कृष्णचरणदास गोस्वामी	128
115. कृष्णदास (प्रथम)	128
116. कृष्णदास (द्वितीय)	128
117. कृष्णदास (तृतीय)	129
118. कृष्णदास (चतुर्थ)	129
119. कृष्णदास पयहारी	130
120. कृष्णदास (रनवारी वाले)	131
121. कृष्णदास (भावुक)	133
122. कृष्ण द्वैपायन व्यास	133
123. कृष्ण भट्टाचार्य	134
124. कृष्ण सम्बन्धी जैन साहित्य	134
125. कृष्णादासी	137
126. कृष्णाह्निक कौमुदी	137
127. कृष्णाश्रय:	138
128. कृष्णोपनिषद्	138

	पृ. सं.
129. केन उपनिषद्	139
130. केवलराम	140
131. केशव देवाचार्य	141
132. केशव भट्टाचार्य	141
133. कोसीकलां के हिन्दू धार्मिक स्थल	141
134. क्रम दीपिका	144
135. खिचरी उत्सव	145
136. गंगा दशहरा	146
137. गंगानारायण चक्रवर्ती	146
138. गंगाविष्णुदास	146
139. गर्ग	147
140. गर्ग संहिता	147
141. गदाधर भट्ट	148
142. गरीबदास	149
143. गरुड़ पुराण	150
144. गांगल भट्टाचार्य	151
145. गायत्री उपासना	151
146. गिरधर जी	153
147. गीतातत्त्व प्रकाशिका	153
148. गीताभूषण	154
149. गुरु ग्रन्थ साहिब	154
150. गुरुग्राम के हिन्दू धार्मिक स्थल	155
151. गुरुनानक देव	157
152. गुरु पूर्णिमा	158
153. गुरु प्रसाद	159
154. गुरुमुखदास	159
155. गुरुसेवक	159
156. गोकुल के हिन्दू धार्मिक स्थल	160
157. गोकुलदास	165
158. गोकुलनाथ	165
159. गोकुलनाथ की बैठकें	167
160. गोपदेव	169
161. गोपाल गुरु	169
162. गोपाल चम्पू	169
163. गोपालदास	170
164. गोपाल भट्ट	170
165. गोपाल भट्टाचार्य	170
166. गोपाललाल	171
167. गोपाल विलास	171
168. गोपालाचार्य	171
169. गोपाष्टमी	172
170. गोपीनाथ	172
171. गोपीनाथ भट्टाचार्य	172
172. गोपेन्द्र	172
173. गोपेश्वर	173
174. गोवर्धन के हिन्दू धार्मिक स्थल	173
175. गोवर्धन देव	176
176. गोवर्धन पूजा	176
177. गोवर्धनपीठ, पुरी	177
178. गोवर्धनेश	177
179. गोविन्द जी	178
180. गोविन्द कविराज	178
181. गोविन्ददास आचार्य	178
182. गोविन्द दास कर्मकार	179
183. गोविन्ददास चक्रवर्ती	179
184. गोविन्द भाष्य	179
185. गोविन्द राय	182
186. गोविन्द लीलामृत	182
187. गोविन्द शरण देवाचार्य	184
188. गौरगणोद्देश दीपिका	184
189. गौरांगदास	185
190. गौरांग विरुदावली	185
191. गौरीदास कीर्त्तनियां	185
192. गौरीदास पंडित	185
193. घनश्याम गोस्वामी	187
194. चंडीदास	188
195. चन्द्र (आचार्य)	188
196. चंद्रदास	189
197. चन्द्रशेखरदास	189

		पृ. सं.
198.	चतुर्भुजदास	189
199.	चतुरचिंतामणि देवाचार्य (नागाजी)	190
200.	चतुरशिरोमणिलाल गोस्वामी	191
201.	चतुर्वर्ण	191
202.	चतु:श्लोकी	192
203.	चम्पति	192
204.	चरणखाक	193
205.	चिंतामणिदेव	193
206.	चिश्ती संप्रदाय	193
207.	चूड़ामणि	194
208.	चैतन्यचन्द्रामृत	194
209.	चैतन्य चन्द्रोदय	194
210.	चैतन्य चरितामृत	195
211.	चैतन्य दास	198
212.	चैतन्य भागवत	198
213.	चैतन्य मंगल	199
214.	छन्द	200
215.	छप्पनभोग	202
216.	जगत्	203
217.	जगन्नाथदास	204
218.	जन्माष्टमी	204
219.	जनहरिया	204
220.	जनार्दन देव	206
221.	जम्बू स्वामी	206
222.	जयदेव	206
223.	जल विहार	207
224.	जलभेद:	207
225.	जानकीदास	208
226.	जीव	208
227.	जीव गोस्वामी	209
228.	जीवनदास	210
229.	जुगल जोड़ी परिक्रमा	210
230.	जुगलदास	210
231.	जैन आगम ग्रंथ	210
232.	जैन धर्म और श्रीकृष्ण	211
233.	जैन धर्म का दार्शनिक सिद्धान्त	213
234.	जैन धर्म में कृष्ण कथा	216
235.	जैन धार्मिक स्थल फतेहपुर सीकरी	226
236.	जैन मंगल-चिह्न	226
237.	जैन रासो ग्रंथ	229
238.	जैरामदास	230
239.	ज्योतिर्मठ, बद्रिकाश्रम	231
240.	ज्योतिष	231
241.	ज्ञान	233
242.	ठंडीराम	236
243.	ठाकुरदास	236
244.	डंडौतीराम	236
245.	डीग के जैन धार्मिक स्थल	237
246.	डीग के मुस्लिम धार्मिक स्थल	237
247.	डीग के सिक्ख धार्मिक स्थल	238
248.	डीग के हिन्दू धार्मिक स्थल	238
249.	डोल उत्सव	239
250.	डोलोत्सव	239
251.	तत्त्वदीपनिबन्ध	241
252.	तत्त्ववेत्ताचार्य	241
253.	तर्पण	241
254.	तिलक	243
255.	तीन वन परिक्रमा	245
256.	तुलसीदास (लालजी)	245
257.	तुलसी साहब	246
258.	तौरात	246
259.	त्यागीराम	248
260.	त्रिभंगदेव	248
261.	थियोसोफिकल सोसाइटी	248
262.	दयानंद सरस्वती	250
263.	दयानंद सरस्वती के ग्रंथ	253
264.	दशहरा	254
265.	दस महाविद्या	254

		पृ. सं.
266.	दाऊजी	257
267.	दाऊजी मंदिर, बलदेव	257
268.	दाऊजी मंदिर (सेवा पद्धति)	258
269.	दाताराम	260
270.	दान	260
271.	दामोदर (ताऊ जी)	261
272.	दामोदरदेव	261
273.	दामोदरवर	261
274.	दामोदर स्वामी	262
275.	द्वारकेश	263
276.	दासकुंअर	264
277.	दिल्ली स्थित शुक संप्रदाय के स्थान	264
278.	दीक्षा (ब्रह्म संबंध)	265
279.	दीपावली	265
280.	देव की नन्दन	266
281.	देवाचार्य	266
282.	देवेन्द्र नाथ ठाकुर	267
283.	देवोत्थान एकादशी	267
284.	द्वैताद्वैत	268
285.	द्वैताद्वैतसिद्धान्त सेतुका	269
286.	दौलतराम	269
287.	द्यौ	269
288.	धन तेरस	270
289.	धर्मनाथ	271
290.	ध्रुवदास	272
291.	धौलपुर जिले के प्रमुख हिन्दू धार्मिक स्थल	273
292.	नंद उत्सव	277
293.	नंदकिशोर दास गोस्वामी	277
294.	नंदगांव के हिन्दू धार्मिक स्थल	278
295.	नंददास (प्रंथम)	279
296.	नंददास (द्वितीय)	279
297.	नंदराम	280
298.	नर्क	280
299.	नक्शबन्दिया संप्रदाय	282
300.	नमि (तीर्थंकर)	283
301.	नयन्नार	284
302.	नरक चौदस	285
303.	नरवाहन	285
304.	नरहरिदास	285
305.	नवद्वीप धाम	286
306.	नवरत्नम्	287
307.	नवरात्रि	287
308.	नवलसखी	288
309.	नव-सम्वत्सर	288
310.	नागरीदास (गुसाईं)	288
311.	नागरीदास तथा सरसदास	289
312.	नाम सेवा	289
313.	नारद	290
314.	नारद पुराण	290
315.	नारद भक्ति सूत्र	291
316.	नारायण भट्ट	292
317.	नारायणीय धर्म	292
318.	निकुंज रहस्यस्तव	293
319.	नित्य विहार	293
320.	नित्योत्सव	294
321.	निम्बार्क-विक्रान्ति	294
322.	निम्बार्कशरण देवाचार्य	296
323.	निंबार्काचार्य	296
324.	निरुक्त	297
325.	निरोधलक्षणम्	298
326.	निवासाचार्य	298
327.	निशीथ सूत्र	299
328.	नूपीबाई	299
329.	नेमि (तीर्थंकर)	300
330.	नैनादास काठियाबाबा	300
331.	नृसिंहकिशोर	301
332.	नृसिंह चतुर्दशी	301

	पृ. सं.
333. पंचपद्यानि	302
334. पउमचरिय	302
335. पद्मनाभ भट्टाचार्य	302
336. पद्मपुराण	302
337. पद्माकर भट्टाचार्य	305
338. पद्माचार्य	305
339. परकीया भाव	306
340. परपक्षगिरिवज्र	312
341. परमानन्द दास	312
342. परमानन्द दास (परमदास)	312
343. परमानन्द देवाचार्य	313
344. परशुराम देवाचार्य	313
345. पलवल के ईसाई धार्मिक स्थल	313
346. पलवल के जैन धार्मिक स्थल	314
347. पलवल के सिक्ख धार्मिक स्थल	314
348. पलवल के हिन्दू धार्मिक स्थल	314
349. पवित्रा	315
350. पांचरात्र	316
351. पार्श्वनाथ (तीर्थंकर)	317
352. पीतांबरदास	317
353. पीताम्बरदेव	318
354. पुराणों में राधा	318
355. पुरुषोत्तम	320
356. पुरुषोत्तमाचार्य	321
357. पुस्तक ठौर	322
358. पुष्टिमार्ग	322
359. पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेद	323
360. पुष्टिमार्गीय सेवा (भोग राग)	323
361. पुष्टिमार्ग सेवा पद्धति (अष्टयाम)	325
362. प्रपन्नकल्पवल्ली	327
363. प्रबोधानन्द सरस्वती	327
364. प्रपत्ति मार्ग	327
365. प्रमेयरत्नावली	327
366. प्रयाग पीठ	328
367. प्रश्नोपनिषद्	334
368. प्राणनाथ	335
369. प्रायश्चित	336
370. प्रायिकी लीला	337
371. प्रियादास (दनकौर वाले)	337
372. प्रियादास (पटना वाले)	338
373. प्रेमघन	339
374. प्रेमदास	339
375. प्रेमनारायण	340
376. फिरोजाबाद के ईसाई धार्मिक स्थल	341
377. फिरोजाबाद के जैन धार्मिक स्थल	341
378. फिरोजाबाद के मुस्लिम धार्मिक स्थल	346
379. फिरोजाबाद के सिक्ख धार्मिक स्थल	348
380. फिरोजाबाद के हिन्दू धार्मिक स्थल	348
381. फुलैरा दौज	353
382. बटेश्वर के जैन धार्मिक स्थल	354
383. बटेश्वर के मुस्लिम धार्मिक स्थल	355
384. बटेश्वर के हिन्दू धार्मिक स्थल	356
385. बड़ी सूरमा कुंज	357
386. बरसाना के हिन्दू धार्मिक स्थल	357
387. बलदेव के हिन्दू धार्मिक स्थल	358
388. बलदेव छठ	361
389. बलदेव दास	361
390. बलभद्राचार्य	362
391. बलभद्राचार्य	362
392. बल्लभदास	362
393. बसन्त पंचमी	362
394. बालकृष्ण	363
395. बालबोध	363
396. बाल्मीकि	363
397. बाहुबल देवाचार्य	364
398. बिन्दु तथा नादकुल (राधावल्लभ संप्रदाय)	364
399. बिहारिनदास	365
400. बैकुण्ठ	365
401. बोहित देवाचार्य	366

	पृ. सं.
402. बौद्ध धर्म और श्रीकृष्ण	366
403. बौद्ध धर्म में कृष्ण कथा	372
404. ब्रजजीवन देव	378
405. ब्रज भक्ति विलास	379
406. ब्रजभूषण देव	379
407. ब्रजराजशरण देवाचार्य	379
408. ब्रजाभरण दीक्षित	379
409. ब्रजोत्सव चन्द्रिका	380
410. ब्रह्म	381
411. ब्रह्मपुराण	384
412. ब्रह्मप्रकाश	384
413. ब्रह्मवैवर्तपुराण	385
414. ब्रह्म समाज	387
415. ब्रह्म सम्बन्ध	388
416. ब्रह्मसूत्र	388
417. ब्रह्मसूत्र भाष्य	389
418. ब्रह्माण्ड पुराण	391
419. ब्रह्मोत्सव	392
420. ब्राह्मण ग्रंथ	393
421. बृहद् भागवतामृत	395
422. भक्ति	397
423. भक्ति रसामृत सिन्धु	398
424. भक्तिवर्द्धिनी	399
425. भगवानदास	399
426. भरतपुर के ईसाई धार्मिक स्थल	399
427. भरतपुर के जैन धार्मिक स्थल	400
428. भरतपुर के मुस्लिम धार्मिक स्थल	401
429. भरतपुर के हिन्दू धार्मिक स्थल	401
430. भविष्य पुराण	405
431. भागवत पुराण	406
432. भागवत सुबोधिनी	407
433. भावनोपनिषद्	408
434. भूधरदेव	409
435. भूरि भट्टाचार्य	409
436. मंदिर की विशिष्ट शब्दावली	410
437. मन्त्र रहस्य षोडशी	423
438. मकर संक्रान्ति	423
439. मत्स्यपुराण	423
440. मथुरा के आर्य समाजी धार्मिक स्थल	424
441. मथुरा के ईसाई धार्मिक स्थल	424
442. मथुरा के जैन धार्मिक स्थल	425
443. मथुरा के मुस्लिम धार्मिक स्थल	426
444. मथुरा के हिन्दू धार्मिक स्थल	427
445. मथुरानाथ	440
446. मथुरानाथ गोस्वामी	440
447. मथुरा माहात्म्य	440
448. मधुवनदास	442
449. मधुसूदन दास	442
450. मधुसूदन देव	443
451. मध्वाचार्य	443
452. मरुत	445
453. महात्मा बुद्ध	446
454. महावीर स्वामी	446
455. महाशिवरात्रि	447
456. मांगलिक प्रतीक	448
457. मार्कण्डेय पुराण	456
458. माधव देवाचार्य	458
459. माधव भट्टाचार्य	458
460. माधव महोत्सव	458
461. माधवाचार्य	459
462. माधवेन्द्रपुरी	459
463. माध्ववेदांत	460
464. मानसी गंगा	465
465. माया	465
466. मुकुंददास गोस्वामी	466
467. मुकुंददेव	467
468. मुण्डकोपनिषद्	467
469. मुरलीधर	468
470. मुरलीमनोहर	468
471. मुरली बिहारी	468

	पृ. सं.
472. मोक्ष	468
473. मोहनचन्द्र	470
474. मोहन देव	470
475. मौनी अमावस्या	470
476. यजुर्वेद	470
477. यदुनाथ	472
478. यम	472
479. यमुना छठ	473
480. यमुनाष्टकम्	474
481. यशुदानन्दनदेव	474
482. युगलकिशोर देव	474
483. युगलगीतिशतकम्	474
484. योग	474
485. योगी विद्यानाथ	476
486. रंग मंदिर सेवा पद्धति	477
487. रंगदेशिक स्वामी	479
488. रक्षा बन्धन	479
489. रघुनाथ	479
490. रघुनाथ गोस्वामी	480
491. रघुनन्दन गोस्वामी	480
492. रतनदेव	480
493. रथ यात्रा	481
494. रसिक दास	481
495. रसिक दास	482
496. रसिकानन्द	483
497. राजसिंह	483
498. राधाकृष्ण भक्त कोश	483
499. राधावल्लभीय सेवा पद्धति	483
500. राधामाधव प्रभु	486
501. राधामोहन दास	487
502. राधारमण मंदिर सेवा पद्धति	487
503. राधाष्टमी	489
504. राधा सिद्धांत	489
505. राधा सुधा निधि	491
506. राधिकातापिनीयोपनिषद्	492
507. राधोपनिषद्	492
508. रामकरन	493
509. रामकिशोर	494
510. रामकृष्ण परमहंस	494
511. रामगलतान	495
512. रामगोपाल देवाचार्य	495
513. रामचंद्र कविराज	495
514. रामचंद्र भट्टाचार्य	496
515. रामदास	496
516. रामदास काठियाबाबा	496
517. रामधड़ल्ला	497
518. राम नवमी	497
519. रामप्रताप	498
520. राममौला	498
521. रामसनातन	498
522. रामहेत (रामहेतु)	498
523. रामानंद (रामानंदी संप्रदाय)	499
524. रामानन्दी सम्प्रदाय का दार्शनिक सिद्धान्त	500
525. रामानुज	501
526. राय रामानन्द	502
527. रूद्र	503
528. रूपकवीश्वर (कविराज)	504
529. रूप गोस्वामी	505
330. रूपनिधान	506
531. रूपसखी	506
532. लक्ष्मीप्रिया	507
533. लघु भागवतामृत	507
534. लघुवीठल	507
535. लपटगोपाल देवाचार्य	507
536. ललितकिशोरी दास	508
537. ललितभानुदेव	509
538. ललित माधव नाटक	509
539. ललितमाधुरी (गौड़ीय सम्प्रदाय)	510
540. ललितमोहिनी दास	510
541. लाल गिरधर	511

	पृ. सं.
542. लालदास	511
543. लिंगपुराण	511
544. वंशीअलि	512
545. वंशीदास	514
546. वंशीधर देव	514
547. वनचंद जी	514
548. वरुण	514
549. वल्लभ सम्प्रदाय की प्रमुख गद्दियां	515
550. वल्लभाचार्य	517
551. वल्लभाचार्य की बैठकें	518
552. वसुदेव	520
553. वामन पुराण	520
554. वामन भट्टाचार्य	521
555. वायुपुराण	521
556. वाराहपुराण	522
557. वाल्मीकि रामायण	523
558. वासुपूज्य	525
559. विज्ञप्ति	525
560. विठ्ठल नाथ	526
561. विट्ठलनाथ जी की बैठकें	528
562. विदग्धमाधव नाटक	529
563. विद्वन्मण्डल	530
564. विट्ठल राय	530
565. विमलनाथ	530
566. विरजानन्द	531
567. विल्बमंगल	532
568. विलासाचार्य	534
569. विवेकधैर्याश्रय:	534
570. विश्वाचार्य	535
571. विशिष्टाद्वैत दर्शन	535
572. विष्णुपुराण	536
573. विष्णुप्रिया	537
574. विष्णुसहस्त्रनाम भाष्य	537
575. विष्णुस्वामी	538
576. विहार पंचमी	539
577. वीठल विपुल	539
578. वेदान्त कामधेनु	540
579. वेदान्त कौस्तुभ	540
580. वेदान्त कौस्तुभ प्रभा भाष्य	540
581. वेदान्त पारिजात सौरभ	541
582. वेदान्तरत्नमंजूषा	541
583. वेदान्तस्यमन्तक	541
584. वैष्णव सम्प्रदायों में वृन्दावन वास	542
585. वृन्दावन की कुंज संस्कृति, मंदिर	544
586. वृंदावन की गौशालायें	568
587. वृन्दावनदास (चाचा जी)	570
588. वृन्दावनमहिमामृत	571
589. वृन्दावन स्थित शुक सम्प्रदाय के स्थान	571
590. व्यंजन द्वादशी	573
591. व्याकरण कौमुदी	573
592. शंकराचार्य	574
593. शरद पूर्णिमा	575
594. शारदापीठ, द्वारका	576
595. शाह बरकतुल्ला पेमी	577
596. शिकोहाबाद के ईसाई धार्मिक स्थल	577
597. शिकोहाबाद के जैन धार्मिक स्थल	577
598. शिकोहाबाद के मुस्लिम धार्मिक स्थल	578
599. शिकोहाबाद के सिक्ख धार्मिक स्थल	579
600. शिकोहाबाद के हिन्दू धार्मिक स्थल	579
601. शिखी महती	580
602. शिवदयाल सिंह (स्वामी जी)	581
603. शिवपुराण	582
604. शिवानन्द सेन	584
605. शुकदेव	584
606. शुक संप्रदाय का दार्शनिक सिद्धांत	585
607. शुक संप्रदाय का स्थान (डहरा)	586
608. शुक संप्रदाय से सम्बन्धित स्थान (जयपुर)	588
609. शुद्धाद्वैत दर्शन	590
610. शेख सलीम चिश्ती	591
611. शैव सम्प्रदाय	591

	पृ. सं.
612. श्यामखोजी	593
613. श्याम चरणदास	593
614. श्यामदेव	595
615. श्याम भट्टाचार्य	595
616. श्यामरूप	595
617. श्यामाचार्य	595
618. श्रवण भट्टाचार्य	595
619. श्राद्ध	596
620. श्रेयांसनाथ	597
621. शृंगार रस मण्डन	598
622. शृंगेरी पीठ	598
623. श्रीमद्देवी भागवत	599
624. श्रीमद्भगवत गीता भाष्य	599
625. श्रीमद्भागवत महापुराण	601
626. श्रीवास पण्डित	602
627. षट् संदर्भ	603
628. संकल्पकल्पद्रुम	605
629. संगीत माधव	605
630. संदीपनी मुनि	605
631. संन्यासनिर्णय:	606
632. संस्कार	606
633. सकट चौथ	610
634. सखी भाव	610
635. सत्य	612
636. सत्यार्थ प्रकाश	613
637. सनकादि ऋषिगण	614
638. सनातन गोस्वामी	614
639. सबगतिराम (द्वितीय)	615
640. समाधि संस्कृति और ब्रज-वृन्दावन	615
641. सविता	618
642. सविशेषनिर्विशेष श्रीकृष्णस्तवराज	619
643. सर्वसम्वादिनी	620
644. सर्वेश्वर प्रभु	620
645. सर्वेश्वरशरण देवाचार्य	620
646. सर्वोत्तम स्तोत्र	621
647. सहचरिशरण	621
648. सहजानन्द	622
649. सांख्य दर्शन	622
650. साधुराम (प्रथम)	624
651. सामवेद	624
652. सालिगराम (हजूर महाराज)	626
653. साहब पंथ	628
654. साहित्यकौमुदी	628
655. सिक्खों के गुरु	628
656. सिद्धान्त जाह्नवी	633
657. सिद्धान्तदर्पण	633
658. सिद्धान्तमुक्तावली	633
659. सिद्धान्तरत्न	633
660. सिद्धान्त रत्नांजलि	635
661. सिद्धान्तरहस्यम्	635
662. सीतलदास	635
663. सुखरामदास (द्वितीय)	636
664. सुन्दर भट्टाचार्य	636
665. सुवलानन्द	636
666. सुरतभानदेव	636
667. सुहरावर्दी संप्रदाय	637
668. सूर्य	637
669. सूरदास	638
670. सेवाफलम्	639
671. सोमवती अमावस्या	639
672. सौभरि ऋषि	639
673. स्कंदपुराण	640
674. स्मरण मंगल स्तोत्र	641
675. स्मृति ग्रंथ	642
676. स्वर्ग	643
677. स्वभूराम देवाचार्य	643
678. स्वरूपाचार्य	644
679. हंसदूत	645
680. हंस भगवान	645
681. हँसमुखदास	645

	पृ. सं.
682. हजरत निजामुद्दीन औलिया	645
683. हजरत मुहम्मद साहब	646
684. हदीस	647
685. हनुमान जन्मोत्सव	650
686. हरिवंशाष्टक	650
687. हरिकिशोर	650
688. हरिदास (गौड़ीय)	651
689. हरिदास	651
690. हरिदास (द्वितीय)	652
691. हरिदास डागुर	652
692. हरिदास पंडित	653
693. हरिदास बाबा	653
694. हरिदासी सम्प्रदाय की उपासना परम्परा	654
695. हरिदेवदास	657
696. हरिभक्ति विलास	657
697. हरिनामामृतव्याकरण	657
698. हरिनारायण	657
699. हरिप्रसाद	657
700. हरियाली अमावस	658
701. हरियाली तीज	658
702. हरिराम व्यास	659
703. हरिलाल व्यास	660
704. हरिराय	661
705. हरिवल्लभ देव	663
706. हरिविलास	663
707. हरिविलास देव	663
708. हरिस्वरूप	664
709. हित घाट	664
710. हित तत्त्व	664
711. हित हरिवंश महाप्रभु	665
712. हेमलता ठकुरानी	667
713. होली	667

परिशिष्ट

	पृ. सं.
01. अखण्डानन्द सरस्वती	670
02. अगम प्रसाद माथुर	671
03. आनंदस्वरूप	673
04. उड़िया बाबा	674
05. करपात्री महाराज	674
06. कामता प्रसाद सिन्हा	676
07. काशी गद्दी	677
08. कृष्णबोधाश्रम महाराज	677
09. ग्वारिया बाबा	679
10. गायत्री तपोभूमि के प्रमुख स्थान	680
11. गुरुप्रसाद (कुंवर जी)	680
12. गोपाल आश्रम	682
13. गोपीश्वर शरण देवाचार्य	682
14. गौड़ीय मठ	683
15. घनश्याम शरण देवाचार्य	684
16. चतुर्भुज सहाय	684
17. जगद्गुरु कृपालु महाराज	685
18. जीवनदत्त महाराज (नरवर वाले)	685
19. दयालबाग	687
20. दामोदर किशोर	688
21. देवदास काठियाबाबा	688
22. धनंजयदास काठियाबाबा	689
23. नीबकरौरी बाबा	690
24. नृसिंहदास	690
25. पागल बाबा	691
26. प्रभुदत्त ब्रह्मचारी	691

	पृ. सं.		पृ. सं.
27. प्रेमदास काठियाबाबा	692	40. रामअजुध्य प्रसाद (लालाजी)	703
28. बालकृष्ण शरण देवाचार्य	693	41. रामचंद्र (महात्मा)	705
29. ब्रह्मशंकर मिश्र (महाराज साहब)	694	42. रामाश्रय सत्संग (एटा)	705
30. भक्ति वेदान्त प्रभुपाद	694	43. रामाश्रय सत्संग के प्रमुख ग्रंथ	706
31. मंगलायतन (जैन तीर्थ)	696	44. रामाश्रय सत्संग दार्शनिक मत	707
32. माधव प्रसाद सिंह (बाबूजी)	698	45. रामाश्रय सत्संग (मथुरा)	708
33. माहेश्वरी देवी (बुआजी)	699	46. रासबिहारी दास काठियाबाबा	708
34. मिहीलाल	699	47. स्वामी विवेकानन्द	709
35. मोहनदास काठियाबाबा	700	48. शरणानंद महाराज	710
36. युगलमनोहर शरण	700	49. संतदास काठियाबाबा	711
37. राजा राममोहन राय	701	50. स्वामीबाग, आगरा	712
38. राधास्वामी सत्संग (पीपल मण्डी)	702	51. हंसदास महाराज	713
39. राधासर्वेश्वरशरण देवाचार्य	702	52. हरिप्रियाशरण जी महाराज	713

भ

भक्ति

भक्ति शब्द का कोणीय अर्थ है सेवा, आराधना ईश्वर या किसी पूज्य के लिए अनुराग, श्रद्धा और मोक्ष की प्राप्ति का साधन। (वृहत हिन्दी कोष) शब्द कल्पतरु में शाण्डिल्य सूत्र के अनुसार भक्ति ''अथातो भक्ति जिज्ञासा का परानुराग रोचरे'' है।

विष्णु पुराण के अनुसार भक्ति 1. नदृष्टि देवात परम भक्ति किंचत, 2. इति बुद्धि पूर्व्विका चित्तवृत्ति और 3. साच परम प्रत्याधीना है। मनोविज्ञान के अनुसार व्यक्ति की चित्तवृत्ति, भक्ति की शैली, भक्त की मानसिक स्थिति, भक्ति की बाह्य परिस्थितियों, भक्ति के प्रेरणा स्रोत, भक्त का व्यक्तित्व आदि सम्मिलित होते हैं। (मानस सुमन पत्रिका, मेरठ पृ. 33, 34)

प्रीतिपूर्वक सेवा और प्रेममयी सेवा में ही संतुष्टि। चैतन्य महाप्रभु ने ''चैतन्य चरितामृत'' में हृदय में साधना भक्ति के द्वारा उत्तम होने वाली प्रगाढ़ रीति को प्रेम का नाम दिया है। ''साधन भक्ति हइले रतिर उदय। रति गाढ़ हइले तारे प्रेम नामकम।।''

श्रीमद्भागवत (11.14.19) श्रील रूप गोस्वामी द्वारा उद्धृत-श्रीकृष्ण उद्धव से कहते हैं-''हे उद्धव! मेरी भक्ति उस प्रज्ज्वलित अग्नि के समान है जो इसमें डाले गए असीम ईंधन को जलाकर राख कर देती है। इसका तात्पर्य है कि भक्ति में समस्त पापकर्मों और पाप कर्मों के फलों को निरस्त करने की शक्ति होती है। भक्ति वेदान्त स्वामी प्रभुपाद के अनुसार भक्ति भौतिक बुद्धि से मुक्ति की अवस्था-ब्रह्म भूत अवस्था होती है जिसे प्राप्त कर लेने के पश्चात् भगवान के विषय में श्रवण करने से भक्ति का शुभारम्भ होता है।

भक्ति के विषय में श्रील रूप गोस्वामी का कथन है कि ''भक्ति भौतिक धारणाओं से ऊपर है और वह किसी देश, वर्ग, समाज या परिस्थिति तक सीमित नहीं है।'' श्रीमद भागवत में भक्ति को दिव्य एवं अहैतुकी कहा गया है। भक्ति इसी लाभ की आशा के बिना की जाती है और इसे कोई भी भौतिक परिस्थिति रोक नहीं पाती। यह भेदभाव रहित सर्वसुलभ है और जीवों की स्वाभाविक वृत्ति है।

चूँकि भक्ति ईश्वर के प्रति परम अनुराग है तो बैकुण्ठधाम में प्रवेश पाने की शर्त भी। श्रीमद् भागवत गीता के अध्याय 18 श्लोक 55 में स्वयं श्रीकृष्ण ने कहा है कि -

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतरू ।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विंशते तदनन्तरम् ।।55।।

अर्थात केवल भक्ति से भगवान को जाना जा सकता है। जब मनुष्य ऐसी भक्ति से मेरे पूर्ण भावनामृत में होता है, तो वह बैकुण्ठ जगत में प्रवेश कर सकता है।

भक्ति के कई प्रकार हैं जो निम्नवत हैं -

रागानुराग भक्ति- स्वत: स्फूर्त आचार-व्यवहार रागानुराग कहलाता है। श्रील रूप गोस्वामी के अनुसार -

किसी वस्तु में तल्लीन रहते हुए प्रेम की तीव्र इच्छा से युक्त होकर उस वस्तु के लिए स्वत: स्फूर्त रागानुराग भक्ति कहलाती है।

भाव-भक्ति-रागानुराग भक्ति से ऊपर उठकर भावमय प्रेम से अपने भगवान की सेवा करना। इस वैधी भक्ति के दो प्रकार के होते हैं-1. प्रभावात्मक (सिद्धि) अंश तथा 2. कार्यकारी (साधान)/ अंश प्रभावात्मक अंश भाव कहलाता है। नारदीय पुराण में केवल बोलने से भाव प्रेम के विकसित होने का वर्णन मिलता है। स्कंद पुराण में चितवन मात्र से कृष्ण के प्रति भाव प्रेम विकसित होने का वर्णन है।

प्रेमाभक्ति - जब किसी भक्त की प्रेम की आकांक्षा कृष्ण या किसी विशेष संबंध से युक्त होकर अति तीव्र हो जाती है तो वह शुद्ध प्रेम भक्ति कहलाती है।

इनके अतिरिक्त ईश्वर का शान्त प्रेम व सख्य भक्ति भी भक्ति के प्रकारों में मानी जाती है। स्वयं अर्जुन श्रीकृष्ण के सखा के रूप में भक्त माने गए हैं। उनके अन्य भक्तों में सुदामा और अक्रूर आदि के नाम विख्यात हैं।

श्रीमद भागवत में (3.33.6) कहा गया है - ''हे भगवान! श्रवण-कीर्तन आदि नौ प्रकार की भक्ति होती है जो आपकी लीलाओं का श्रवण करता है, आपकी महिमा का वर्णन करता है, आपको नमस्कार करता है, आपका चिंतन करता है और इस तरह नौ प्रकार में से किसी प्रकार की भक्ति करता है वह तुरन्त यज्ञ का पात्र बन जाता है, भले ही उसका जन्म चाण्डाल कुल में क्यों न हुआ हो। श्रीमद् भागवत 75.23 का यह श्लोक नवधा भक्ति का वर्णन करता है -

''श्रवणं कीर्तन विष्णौ: स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चन वंदन दास्य सख्यमात्म निवेदनम् ।।

गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में शबरी को श्रीराम द्वारा नवधा भक्ति का ज्ञान दिलवाया है। महाकवि सूरदास तो और भी आगे बढ़ गए हैं। उनके पदों में द्वादश भक्ति के प्रकार उपलब्ध हैं।

श्रीमद भागवत के पंचम स्कंद में ऋषभदेव जी ने भक्ति के पाँच प्रबल रूप बताए हैं - 1. मथुरावास, 2. श्रीमद भागवत का पाठ, 3. भक्त की सेवा, 4. भगवान के अर्ध विग्रह की पूजा और 5. हरे कृष्ण मंत्र का जाप।

श्रीकृष्ण के उपदेश - ''मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय। निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्व न संशयरू ।।8।।'' से स्पष्ट निर्देश है कि ''मुझ भगवान में अपने चित्त को स्थिर करो और अपनी सारी बुद्धि मुझ में लगाओ। इस प्रकार तुम निस्संदेह मुझमें सदैव वास करोगे। भक्ति योग की स्थापना करना ही उनका लक्ष्य था। प्रभु की कृपा का प्रसाद है भक्ति। [पु०श्री०]

भक्ति रसामृत सिन्धु

'भक्तिरसामृत सिन्धु' भक्तिरस प्रातिपादक शास्त्रीय ग्रंथ है। इसमें भक्ति को प्रमुख रूप मानकर ग्रंथ साहित्यिक रसों को इसके अंग रूप में प्रतिपादित किया गया है । भक्ति को रस रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय इसी ग्रंथ को प्राप्त है। रूप गोस्वामी ने इस ग्रंथ का नाम 'भक्तिरसामृत सिन्धु' रखकर इस विशाल ग्रंथ को समुद्र के रूप में ही विभाजित किया है। प्राचीन काल में चार दिशाओं में स्थित चार समुद्रों की कल्पना के आधार पर इस ग्रंथ के चार अध्यायों के नाम भी पूर्व विभाग, दक्षिण विभाग, पश्चिम विभाग और उत्तर विभाग रखे गये हैं। इन विभागों का अवान्तर विभाजन 'लहरी' के रूप में किया गया है। पूर्व विभाग में भक्ति रस के सामान्य स्वरूप के विवेचन के रूप में सामान्या भक्ति, साधन भक्ति, भावाश्रित भक्ति और प्रेमनिरूपिका भक्ति का वर्णन है। दक्षिण विभाग में ग्रंथकार ने साहित्य शास्त्र की

रस-प्रक्रिया का अवलम्बन कर भक्ति को स्वतन्त्र रस सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। इसके अंतर्गत रस के अंगभूत विभाव, अनुभाव, सात्त्विक भाव, व्यभिचारीभाव और स्थायीभाव का वर्णन है। पश्चिम विभाग में मुख्य भक्ति रस का वर्णन करते हुए भक्ति रस के 5 भेदों का निरूपण किया गया है। शान्त, प्रीति, प्रेयान्, वत्सल और मधुर। अन्तिम उत्तर विभाग में हास्य, अद्भुत, वीर, रौद्र, करुण, भयानक और वीभत्स रसों को गौण भक्ति रसों के रूप में प्रतिपादित करके रसों के पारस्परिक विरोध तथा अविरोध की मीमांसा की गयी है। इस ग्रंथ पर लिखी तीन टीकाएँ प्रसिद्ध हैं- जीव गोस्वामी कृत 'दुर्गम संगमनी', मुकुन्ददास गोस्वामी कृत 'अर्थरत्नावली-दीपिका' एवं विश्वनाथ चक्रवर्ती कृत 'भक्तिसार प्रदर्शिनी'। [क०उ०]

भक्तिवर्द्धिनी

इस प्रकरण ग्रंथ में ग्यारह श्लोक हैं। सिद्धान्त विवेचन की दृष्टि से यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। इसमें वल्लभ ने भक्ति के स्वरूप पर विचार किया है। इस ग्रंथ में भक्ति के विकास का बड़ा स्पष्ट और मनोवैज्ञानिक निरूपण किया गया है। भक्ति की सूक्ष्मावस्था से प्रारम्भ कर प्रेम, आसक्ति और व्यसन की स्थितियों तक भक्ति के क्रमश: परिपक्व होते हुए स्वरूप का विवेचन किया गया है। [क०उ०]

भगवानदास

भगवान दास शुक संप्रदाय के आचार्य चरणदास जी के वरिष्ठ शिष्यों में से एक थे। दीक्षा लेने से पूर्व यह शाही सेना में सिपाही थे। ये प्राय: चरणदास जी के कथा-प्रवचन में सत्संग लाभ के लिए आते थे। एक बार चरणदासजी ने इनसे इनका परिचय पूछा तो इन्होंने बड़ी अकड़ के साथ उत्तर दिया। तब चरणदास जी ने इनके अज्ञान पर तरस खाकर उन्हें ज्ञानोपदेश दिया। इससे ये इतने प्रभावित हुए कि इन्होंने तत्काल शस्त्र और वर्दी खोलकर दूर रख दिये और चरणदास जी के शरणागत हो गये। उनकी भावना और गुरुनिष्ठा से प्रेरित होकर चरणदास जी ने इन्हें अपना लिया और दीक्षा देकर उनका नाम भगवानदास रखा।

भगवानदास जाति के ब्राह्मण थे। गंगा-यमुना के बीच स्थित सिलसिली ग्राम (मुजफ्फरनगर) इनका मूल स्थान था। यहीं रहकर इन्होंने अपने संप्रदाय के साधना सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार किया। इनका आगरा शहर के बालूगंज में भी एक थांभा है जो कि संप्रदाय के बड़े थांभों में गिना जाता है। यह ज्ञान-ध्यान में सिद्ध थे। इनका व्यक्तिगत जीवनवृत्त अप्राप्त है। इनकी एकमात्र रचना ''रामाश्वमेध'' नामक प्रबंध काव्य प्राप्त होती है। [क०उ०]

भरतपुर के ईसाई धार्मिक स्थल

सैंट ल्यूक चर्च-ब्रिटिश शासनकाल में भरतपुर में पॉलिटिकल एजेंट की रेजीडैंसी से सटी चर्च थी। यह रेजीडैंसी उस जगह थी जहाँ आज महारानी जया कॉलेज स्थापित है। सर्वप्रथम 1 जनवरी सन् 1898 को खै.सी.ए. मैसन द्वारा जो आगरा से आये थे के नेतृत्व में प्रार्थना संपन्न हुई। आजादी प्राप्ति के बाद यह चर्च संचालित तो रहा किंतु आये दिन दूरस्थ होने के कारण विवादित बना रहा। यह चर्च 12 फरवरी 1958 को भरतपुर के अंतिम नरेश राजा बृजेंद्रसिंह द्वारा उपलब्ध कराई गई भूमि पर गोपालगढ़ में पुन: स्थापित हुआ तथा इसका नाम 'सैंट ल्यूक चर्च' रखा गया। इस चर्च की शिल्पकला का प्रारूप दिल्ली के प्रसिद्ध विशप फैडरिक रॉबर्ट विलियम ने तैयार किया। संप्रति यह चर्च निरापद स्थान पर है तथा प्रत्येक रविवार को विशेष प्रार्थना दिवस के रूप में ईसाई समुदाय के आकर्षण का केंद्र है। उल्लेखनीय है कि भरतपुर में सर्वधर्म समन्वयवादी विचारधारा के फलस्वरूप चर्च को उचित आदर प्राप्त है। [दा०द०गु०]

भरतपुर के जैन धार्मिक स्थल

ओसवाल जैन श्वेतांबर मंदिर-आज से 153 वर्ष पूर्व सन् 1861 तद्नुसार संवत 1917 में श्री पार्श्वनाथ प्रभु की स्थापना ओसवाल जैन समाज द्वारा हुई। यह मंदिर भरतपुर के गुदड़ी मोहल्ला में स्थित है। मूलनायक प्रभु श्री ऋषभदेव भगवान थे जो जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर हैं। संप्रति उनकी प्रतिमा मंदिर के ऊपरी शिखर में विराजमान है। यह शिखर शिल्पकला का सुंदर एवं आकर्षक नमूना है। मंदिर में मूल नायक तेईसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ हैं। इनके बराबर में श्री सुपार्श्वनाथ तथा श्री महावीर प्रभु की प्रतिमाएँ हैं। परिक्रमा मार्ग में बयाना के पास ब्रह्मबाद से निकली अत्यंत आकर्षक मूर्तियाँ हैं जिन्हें खुदाई के फलस्वरूप प्राप्त किया था।

मंदिर का बाह्य स्वरूप अत्यंत साधारण है। किंतु आंतरिक संरचना भव्य है। बंशी पहाड़पुर के श्वेत इमारती पत्थर पर की गई शिल्पकारी अद्भुत है। कहा जाता है कि इस मंदिर का शिल्प इसके समकालीन मंदिरों से एकदम अलग एवं अत्याकर्षक है। श्री मंदिर का विशाल हॉल षट्कोणीय आकृति लिये है। इसी हॉल में दाहिनी ओर खरबरगच्छ के दादा श्री जिन कुशस सूरीश्वर जी की प्रतिमा प्रतिष्ठित है।

ओसवाल जैन मंदिर में प्राचीन पुस्तकालय विद्यमान है। इसमें कई हजार ग्रंथ मौजूद हैं। मंदिर से सटे एक उपाश्रय व धर्मशाला अवस्थित हैं। श्री मंदिर की स्थापना व ध्वजारोहण की वर्षगाँठ फाल्गुन वदी ग्यारस अर्थात् एकादशी के शुभ दिन मनाई जाती है। दीपावली के शुभ दिन निर्वाण दिवस पर लड्डू चढ़ता है। धर्मावलंबियों व पर्यटकों के लिये यह मंदिर अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं आकर्षण का केंद्र है।

पल्लीवाल जैन श्वेतांबर मंदिर-श्री पल्लीवाल जैन श्वेतांबर मंदिर की स्थापना 245 वर्ष पूर्व सन् 1769 में की गई थी। जैन धर्म के बीसवें तीर्थंकर श्री मुनि सुव्रत स्वामी की मनोहर मूर्ति यहाँ विराजमान है। भरतपुर की हृदयस्थली दही वाली गली में इस वंदनीय भव्य मूर्ति को जैनाचार्य श्री महानंद सूरीश्वर जी ने अपने कर कमलों से विराजमान कराया। अस्तु, यह मंदिर प्रतिष्ठित बन गया है जो जैन पर्यटकों के आकर्षण का केंद्र है।

भरतपुर नरेश महाराजा सूरजमल तथा जवाहरसिंह के राज्यकाल में पल्लीवाल महान दीवान जोधराज जैन डीग के प्रधान दीवान थे। उनके समय में जैनाचार्य भट्टारक श्री महानंद सूरी जी डीग पधारे थे तथा कई मूर्तियों की अंजन शलाका (प्राण प्रतिष्ठा) उनके द्वारा कराई गई थी। उन शुभ मूर्तियों में से एक श्री मुनि सुव्रत स्वामी जी की है। मंदिर के सामने जैन धर्मशाला है। पहले इसमें दो-चार यति रहा करते थे। साधु से छोटा रूप 'यति' का होता है। ये साधक गाड़ी आदि में बैठ सकते थे। जबकि जैन साधु नहीं। 200 वर्ष पूर्व इसी क्रम में अत्यंत प्रभावशाली 'यति' श्री हुकमचंद जी रहते थे। दही वाली गली में इनके कारण ही मोहल्ले का नाम 'जती मोहल्ला' पड़ा जो आज भी प्रचलित है।

राजेन्द्र सूरि जैन कीर्ति मंदिर-वीरभूमि भरतपुर (लोहागढ़) की ऐतिहासिक विभूति एवं आध्यात्मिक शूरवीर थे, श्री राजेंद्र सूरि। परम विद्वान, महान गुणवान, तेजस्वी, तपस्वी गुरुदेव श्री राजेंद्र सूरि का जन्म इसी शहर के जाने-माने पुरोहित मुहल्ले में हुआ था, किंतु जैन समाज व जनता ने इन्हें उनके स्वर्गवास होने के पश्चात् ही पहचाना। इससे पूर्व गुजरात में उनके शिष्य श्री न्याय विजय जी महाराज ने पालीवाणा स्थान पर उनकी स्मृति में राजेंद्र जैन भवन बनवा चुके हैं। इसके अतिरिक्त श्रीमद् विजय राजेंद्र सूरीश्वर जी का प्रबल प्रभावी समाधि गुरु मंदिर श्री मोहनखेड़ा तीर्थ पर निर्मित है, जो मध्यप्रदेश में धार जिले के राजगढ़ कस्बा के निकट है। श्री मोहनखेड़ा तीर्थ पर 'सूरिजी' की पाँचवीं पाट गद्दी पर विराजमान जैनाचार्य श्रीमद् विजय विद्याचंद्र सूरी जी थे। उनकी भविष्यवाणी के फलस्वरूप तथा उनके देवलोक गमन के पश्चात् छठी पाट गद्दी पर विराजे। श्री राजेंद्र सूरि जैन मंदिर भरतपुर में अति भव्य एवं रम्य रूप में प्रतिस्थापित हो सका है। इसके निर्माण का शुभारंभ सन् 1984 माना जाना चाहिए।

प्रथमत: यह कीर्ति मंदिर पाँच बीघा जमीन पर बनना शुरू हुआ। तत्पश्चात् नौ बीघा जमीन और जुड़ी। इस प्रकार 14 बीघा जमीन पर मंदिर तथा विशाल धर्मशाला बनी है जो भरतपुर-जयपुर मार्ग पर सेवर से पहले सरसों अनुसंधान केंद्र के समीप है तथा भरतपुर बस स्टैण्ड से लगभग 3 कि.मी. दूर है। इस मंदिर में मूलनायक जैन धर्म के नवम् तीर्थंकर श्री सुविधिनाथ प्रभु जी की मूर्ति है। मूल गंभारे के बाहर श्री ऋषभदेव प्रभु एवं भगवान महावीर स्वामी की मूर्तियाँ हैं। एक प्रतिमा सरस्वती जी की है। संप्रति मंदिर के पास बड़ा उपाश्रय है, जिसमें बड़ा हॉल है। संपूर्ण मंदिर शिल्पकला की सौंदर्य छटा से युक्त है। निर्माण भूरे-बलुआ पत्थर तथा संगमरमर से बना है। पत्थर पर की गई नक्काशी ने इस मंदिर को भव्य रूप प्रदान किया है। [दा०द०गु०]

भरतपुर के मुस्लिम धार्मिक स्थल

जामा मस्जिद, भरतपुर-शहर पनाह के मध्य में स्थापित भव्य जामा मस्जिद 3000 वर्ग गज भू-भाग पर निर्मित है। इसका निर्माण महाराजा बलवंतसिंह के शासनकाल में हिजरी सं. 1261 में कराया गया था। मस्जिद जाट नरेशों तथा भरतपुर की आम जनता की सांप्रदायिक सद्भावना का प्रतीक है। जामा मस्जिद तथा गंगामंदिर दोनों का निर्माण समकालीन रहा तथा दोनों में हिन्दू-मुस्लिम कर्मचारियों से महीने में एक दिन का वेतन वसूल कर किया जाता रहा। निर्माण 92 साल में पूरा हुआ जो अंतिम महाराजा बृजेंद्रसिंह का शासनकाल रहा। गंगा मंदिर की तर्ज पर यह सड़क से लगभग 20 फुट ऊँचे आधार पर बनी है। चारों ओर 74 दुकानें निर्मित हैं जो मस्जिद के आय का मुख्य स्रोत बनी हैं। मस्जिद की अनुकृति दिल्ली के चांदनी चौक में बनी मस्जिद जैसी है। मस्जिद का शिल्प सौंदर्य लाजबाव है जो पर्यटकों को विमोहित करता है। निर्माण में बंशी पहाड़पुर का भूरा-बलुआ पत्थर काम में लाया गया है तथा स्पष्टत: मुगल शैली के शिल्प की झलक है। मस्जिद में तीन गुंबद हैं। बीच का गुंबद अपेक्षाकृत बड़ा है। जगह-जगह छतरियों व मीनारों का निर्माण इसे भव्यता प्रदान करता है। नमाज पढ़ने हेतु अंदर विशाल पक्का चौक है जिसमें हजारों नमाजी खड़े होकर नमाज पढ़ते हैं। मुख्य द्वार लगभग 50 फुट ऊँचा है तथा उस पर पाक कुरान की आयतें अंकित हैं। पहले मस्जिद के चौतरफा भव्य गेट थे। सुरक्षा की दृष्टि से सन् 1947 में एक मुख्य द्वार को छोड़कर अन्य तीनों द्वार बंद कर दिये गए।

मसानी मस्जिद-मसानी मस्जिद, पानीपत के तीसरे युद्ध की याद दिलाती है। माह जनवरी सन् 1761 ई. में अहमदशाह अब्दाली के साथ युद्ध में मराठों की अजेय सेना का सर्वनाश हो गया। मराठा सेना अपनी जान लेकर भागी तो मार्ग में उसे किसानों ने लूट लिया। महाराजा सूरजमल ने उन्हें शरणागति प्रदान की। यही नहीं महाराज ने पेशवा बाजीराव तथा उसकी प्रेमिका मस्तानी के पुत्र शमशेर बहादुर जंग की याद में मसानी सराय के सामने एक मस्जिद का निर्माण कराया जो आज तक अस्तित्व में है तथा उन ऐतिहासिक क्षणों का जीवंत साक्ष्य है।

यह ऐतिहासिक मस्जिद भरतपुर शहर के मुख्य बाजार में मथुरा गेट तथा पुराने अस्तपाल (चारबाग) के मध्य स्थित है। भरतपुर की ओर जाते लोगों के बारे में इतिहासकारों ने लिखा है-''स्थान-स्थान पर हजार-हजार की टोलियों में नंगे-उघाड़े, भूखे, शस्त्रहीन मराठों ने पात-भाजी खाते जाट मुल्क में प्रवेश किया। यहाँ उनको 'भाऊ' का भरतपुर के राजा के साथ बिगाड़खाता होने के बावजूद सदाशयता का व्यवहार व आश्रय मिला। मुस्लिम संप्रदाय के हजारों लोग मसानी मस्जिद में आकर इबादत करते हैं। [दा०द०गु०]

भरतपुर के हिन्दू धार्मिक स्थल

कठपुतली मंदिर-भरतपुर ब्रज अंचल का अति रम्य एवं सर्वप्रकारेण सुरक्षित स्थान रहा है। यहाँ पर प्रत्येक मंदिर

की अपनी विशिष्ट पहचान है। भरतपुर किले से सटे गोपालगढ़ नाम से विख्यात शहर में अति प्राचीन किंतु कलात्मक दृष्टि से सौंदर्य युक्त 'कठपुतली मंदिर' है जो लगभग इतना ही प्राचीन है जितना किले के अंदर स्थित श्री बांकेबिहारी जी का मंदिर। कहना न होगा कि ये मंदिर लोहागढ़ निर्माता राजा सूरजमल के समकालीन हैं। इसमें राधाकृष्ण के युगल-स्वरूप की झाँकी दृष्टव्य है। मंदिर का गर्भगृह ऊँचे चबूतरे पर अवस्थित है तथा मंदिर के चारों ओर परिक्रमा मार्ग है। मंदिर-परिसर में दर्शनार्थियों के लाभार्थ तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों के आयोजनार्थ एक बड़ा चौक है। ऊपरी मंजिल में चारों ओर कमरे निर्मित हैं, जिनके दरवाजों पर कलात्मक व चित्ताकर्षक नक्काशी की गई है।

मंदिर के नामकरण के पीछे यहाँ कठपुतलियों को विभिन्न कथानकों के साथ प्रदर्शन करने की परंपरा रही है। यही प्रदर्शन विशेष रूप से श्रावण मास के अंतर्गत होता था। प्रमाणस्वरूप आज भी मंदिर में कुछ कठपुतलियाँ जीर्ण-शीर्ण अवस्था में अपने स्वर्णिम अतीत का स्मरण कराती हैं। इन कठपुतलियों के सिर धातु के तथा धड़ काष्ठ का बना है। कठपुतलियों के अधोवस्त्र पीतल की चादर का उपयोग कर तैयार किए गये हैं। ब्रज के पोषण में इस मंदिर का विशेष स्थान था तथा प्रदर्शन कला में मंदिर के महंत सिद्धहस्त थे। संप्रति यह मंदिर देवस्थान विभाग के अंतर्गत संचालित है।

गंगा मंदिर-19वीं शताब्दी की उन्नत शिल्पकला के अद्‌भुत नमूने के रूप में सुविख्यात श्री गंगा मंदिर भरतपुर में चौबुर्जा पर फतेहगढ़ी के समीप भूरे-बलुआ पत्थर से भव्य रूप में निर्मित है। मंदिर में प्रतिस्थापित शिलालेख से पता चलता है कि इस मंदिर की नींव तत्कालीन भरतपुर नरेश श्री बलवंतसिंह ने वि.सं. 1902 में रखी। श्री गंगाजी महाराज की इष्ट देवी थीं तथा उनकी कृपा से महाराज को संतान प्राप्ति हुई थी। फाल्गुन वदी 14 वि.सं. 1907 को राजकुमार जसवंतसिंह का जन्म हुआ।

श्री गंगा मंदिर का निर्माण राज-परिवार की पाँचवीं पीढ़ी तक चलता रहा। मंदिर निर्माण में राज्य सरकार के कर्मचारियों द्वारा अपने एक माह के वेतन का सहयोग प्रदान करने के फलस्वरूप हुआ तथा निर्माण लगभग 90 साल में पूरा हुआ। श्वेत संगमरमर की आकर्षक एवं भव्य प्रतिमा की स्थापना महाराजा बृजेन्द्रसिंह ने शुभ मिती माघ शुक्ला 12 चंद्रवार वि. 1993 तदनुसार 22 फरवरी सन् 1937 को की गई। श्री गंगाजी की प्रतिमा के नीचे मगरमच्छ वाहन के रूप में प्रतिस्थापित है जो रंग-रूप में हूबहू दृष्टिगत होता है। मंदिर तिमंजिला है जिसकी एक मंजिल भूगर्भ में अवस्थित है। चारों कोनों पर चार बारहदरियाँ शिल्पकला से परिपूर्ण बनी हुई हैं। मंदिर परिसर में दो कुएँ, बाग-बगीचे तथा एक विशाल घंटाघर आकर्षण का केंद्र बने हैं। मंदिर की पूजा-सेवा भट्ट परिवार द्वारा राज्यकाल से होती आई है। अनुमान है कि इनकी प्रेरणा से ही राजा बलवंतसिंह को श्रीगंगा जी की पूजा-अर्चना तथा गंगाजल पान की उत्कृष्ट इच्छा जाग्रत हुई थी तथा मनोरथ पूर्ण होने पर मंदिर निर्माण संभव हो पाया।

बांकेबिहारी मंदिर-भरतपुर के अजेय दुर्ग में चौबुर्जा के समीप प्रसिद्ध श्रीबांकेबिहारी व राधारानी के युगल स्वरूप का भव्य मंदिर है। यह मंदिर 18वीं शताब्दी की स्थापत्य कला का अनुपम नमूना है। लोहागढ़ के निर्माण से पूर्व अर्थात् सन् 1733 से पहले यहाँ 'फतेहगढ़ी' स्थित रही तथा यह स्थल नागा साधुओं का आश्रम था। श्रीबांकेबिहारी के श्री विग्रह को चतुर-चिंतामणि नाम के नागा बाबा इसे परम सुरक्षित स्थान जानकर वृंदावन से पैदल चलकर लाये थे। राजा सूरजमल ने जब लोहागढ़ का भव्य एवं सुदृढ़ निर्माण कराया तो इस मंदिर को निरापद रखकर, सुरम्य बनाया गया जो आज जन-जन की आस्था का अनूठा केंद्र है।

मंदिर का प्रवेश द्वार पूर्वाभिमुख है। मुख्य द्वार के दोनों ओर मयूराकृति उत्कीर्ण है। दो मंजिला प्रवेश द्वार का

प्रस्तर शिल्प बेजोड़ है। पतले-पतले खंभों पर मेहराबदार संरचना में पद्मतल दृष्टव्य है। ऊपरी भाग के छज्जों के नीचे लघु टोड़ियां हैं, नीचे अति सुंदर जालियाँ बनी हैं। मंदिर का गर्भगृह उच्च अधिष्ठान पर उत्तराभिमुख है। यहीं श्री राधाबिहारी की चित्ताकर्षक प्रतिमाएँ हैं। पार्श्व में प्रदक्षिणा पथ है। दोनों ओर सुनहरी पॉलिश से युक्त द्वार हैं। गर्भगृह के वाम पार्श्व में एक ताक अंतर्गत नागा बाबा की स्थानक प्रतिमा अभ्यर्थना मुद्रा में है। वाम पार्श्व में खड़े कृष्ण नागा बाबा की उलझी लटों को सुलझा रहे हैं जो मंदिर की ऐतिहासिकता का साक्ष्य है।

ऊपरी भाग में सूर्य तथा कृष्ण-लीला विषयक प्रतिमाओं का अंकन है। गर्भगृह के समानांतर दक्षिण पार्श्व की ताक में स्थित बलदाऊजी की स्थानक प्रतिमा के दक्षिण हस्त में हल है तथा दोनों ओर हनुमान और विष्णु की प्रतिमाएँ हैं। बाह्य बरामदे में धार्मिक आख्यानों से संबद्ध वृहद् भित्ति चित्रों का रूपांकन है। यहीं श्रीविग्रह के समक्ष बरामदे में गरुड़ तथा हनुमान जी की प्रतिमाएँ सेवाभावी मुद्रा में प्रतिष्ठित हैं। कहना न होगा कि भरतपुर के गौरव से जुड़ा यह मंदिर तत्कालीन मूर्ति शिल्पकला तथा ब्रज संस्कृति का जीवंत स्वरूप का अद्‌भुत संगम है।

मोहन मंदिर-भरतपुर दुर्ग में रानी किशोरी महल के समीप दक्षिण दिशा की ओर 'मोहनजी' का मंदिर है। हवेली पद्धति पर बने मंदिर में भूरे-बलुआ प्रस्तरों का शिल्प दर्शनीय है। यह मंदिर 19वीं शताब्दी की स्थापत्य कला का उत्कृष्ट नमूना है। उल्लेखनीय यह है कि इस देवालय की वास्तुकला में राजपूत एवं मुगल शैली का सुंदर समन्वय परिलक्षित होता है। पतले और चौकोर खंभे, पुश्तें, नुकीली टोड़ियाँ, शहतीर, क्षैतिज, छत सभी सजावट युक्त एवं विविधतापूर्ण हैं तथा हिन्दू स्थापत्य कला के लक्षण हैं। वहीं प्रस्तर जालियाँ, ताकों का विधान, आकर्षक छज्जे, कटोरेनुमा मेहराब, उत्कीर्ण किये गये चित्रादि मुगल स्थापत्य के साक्षी हैं।

मंदिर के प्रवेश द्वार के दोनों ओर गोखे (झरोखे) हैं जो वनस्पति व पुष्प आकृतियों से सुसज्जित हैं। प्रवेश द्वार के सामने कमलासीन लक्ष्मी जी दर्शित हैं। दो गज उनका अभिषेक कर रहे हैं। प्रवेश द्वार के आकर्षक कपाट पर बनी धातु की फूल-पत्तियाँ अत्यंत आकर्षक हैं। गर्भगृह में राधामोहन की शृंगारित प्रतिमाएँ हैं। गर्भ गृह के ललाटबिंब पर नृत्य-मुद्रा में लघु मयूराकृति दर्शित है। दक्षिणवर्ती पार्श्व भाग में बगलामुखी मातृका की प्रतिमा है तथा स्तंभों की मेहराबों के ऊपर 'शुकद्वय' का अनुपम अंकन है। इस मंदिर में मुक्त वायु-संचरण हेतु निर्मित वातायन अद्वितीय हैं।

राज राजेश्वरी मंदिर-भरतपुर की सुजान गंगा के किनारे तथा खिरनी व गोलाघाट के सहारे राज राजेश्वर महादेव के पिछवाड़े पाईबाग को जा रही मुख्य सड़क पर राज राजेश्वरी का शक्ति मंदिर है जो ऐतिहासिक व आध्यात्मिक महत्त्व का है। राजा ज़वाहरसिंह ने दिल्ली के शासक नजीबुद्‌दौला के साथ संघर्ष किया। अक्टूबर सन् 1764 ई. से मार्च सन् 1765 ई. तक युद्ध चला पर नजीब खाँ का सर तथा मुगल सिंहासन बाल-बाल बच गये। दिल्ली की लूट मशहूर है। राजा जवाहरसिंह दिल्ली से अष्टधातु का बना दरवाजा, डीग के महलों में लगा नूरजहाँ बेगम का संगमरमरी झूला तथा त्रिपुरसुंदरी की आदमकद प्रतिमा को अपने साथ भरतपुर लाया था। त्रिपुरसुंदरी की यह लाई गई प्रतिमा ही भरतपुर में राजराजेश्वरी महिषासुर मर्दिनी देवी कहलाई। इसकी प्राण-प्रतिष्ठा भी तत्कालीन महाराज जवाहरसिंह ने शास्त्रोक्त विधि-विधान से कराई थी। यह प्रतिमा कभी दिल्ली के शासक पृथ्वीराज चौहान की अधिष्ठात्री देवी रही थी जिसे अंततः भरतपुर लाया गया।

अतः लक्ष्मी जी के साथ शक्तिस्वरूपा देवी भी सुरक्षित स्थान अर्थात् ब्रज वास भरतपुर के लिये प्रस्थान कर गई। भरतपुर में राज राजेश्वरी देवी की अत्यधिक महिमा है।

लक्ष्मण मंदिर-भरतपुर शहर के बीचों-बीच मुख्य बाजार में स्थित भव्य लक्ष्मण मंदिर है जो स्थापत्य कला का

उत्कृष्ट नमूना है। श्री लक्ष्मण जी भरतपुर के पराक्रमी राजा जवाहरसिंह के इष्टदेव थे। लक्ष्मणोपासक संप्रदाय सन् 1763 के अंतर्गत प्रभाव में आया। अत: भरतपुर में 'श्री गोकुलेन्दु जयति' के स्थान पर 'श्री लक्ष्मण जी सदा सहाय' का नारा कवच की भाँति जग-जाहिर हो गया। सन् 1823 में महाराज बलदेवसिंह के शासनकाल में सोत्साह इस मंदिर के निर्माण का संकल्प लेकर नींव रखी गई। अत: यह मंदिर भरतपुर के अन्य प्रतिष्ठित मंदिरों की तुलना में पहले बना है। इसके निर्माण में लगभग अस्सी वर्ष लगे तथा प्रतिमा की प्राण प्रतिष्ठा सन् 1903 में राजा कृष्णसिंह के शासनकाल में हुई। लक्ष्मण मंदिर नीचे सड़क से लगभग बीस फुट ऊँचे धरातल पर सफेद बलुआ पत्थर से बना है। मंदिर का वर्गाकार भू-भाग 3000 वर्ग गज है। इमारती पत्थर पर उकेरे बेल-बूटे, नृत्य करती हुई अप्सराएं तथा अन्य देवाकृतियाँ जन-जन के आकर्षण का केंद्र है। मंदिर का मुख्य द्वार पत्थर पर बारीक नक्काशी के कारण दर्शकों का मन मोह लेता है। चारों ओर विशाल छज्जे व उनके ऊपर बने गोखे कलात्मक हैं। मंदिर-परिसर में पक्का व ऊंचा बना हुआ विशाल खुला हुआ आँगन है जिसमें आये दिन सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित होते रहते हैं। मंदिर की ऊँचाई का लाभ उठाते हुए अस्सी दुकानें चारों ओर निर्मित हैं जो भरतपुर के व्यापार जगत की केंद्र हैं। मंदिर के सामने की सड़क शहर की अन्य सड़कों की अपेक्षा दो गुनी है। अत्यंत चित्ताकर्षक देव-प्रतिमाएँ अष्टधातु से बनी हैं। मंदिर का समस्त प्रबंधन देवस्थान विभाग का है। ऐतिहासिक तथ्य है कि सन् 1927 में इसी मंदिर में जाटवों (हरिजनों) के प्रवेश की अनुमति महाराजा किशनसिंह ने प्रदान की थी। मंदिर का कुशल प्रबंधन सर्वप्रथम पं. जगन्नाथ दास अधिकारी को सौंपा गया था।

लालजी का मंदिर गढ़ी सांवलदास-भरतपुर शहर की उत्तर दिशा में तीन मील दूर जघीना गाँव के मार्ग पर सिमको फैक्ट्री के पास बाबा सांवलदास नाम से प्रख्यात गढ़ी है जिसमें 'लालजी' अर्थात् बाल-गोपाल का मंदिर अति सुरम्य व भव्य रूप में बना है। बाबा सांवलदास प्रथमत: गामरी गांव में गूजर जाति के धाऊ सरदार घराने में जन्मे थे। वैराग्य हुआ तो संत श्री मनोहरदास से दीक्षा लेकर साधु बने तथा आत्मबोध प्राप्त किया। इन्हें श्रीलाल जी का इष्ट था। कहते हैं इन्हें अन्नपूर्णा सिद्धि लाल जी की कृपा से प्राप्त हुई। मंदिर के विषय में प्रसिद्ध है कि गढ़ी से बाबा नित्य भिक्षा माँगने मीलों तक जाते थे। रास्ते में जो भी साधु मिलते सबको निमंत्रण दे आते थे। प्रतिदिन का नियम था। लाल जी कृपा से यहाँ आकर कोई व्यक्ति भूखा नहीं लौटता था।

वैंकटेश पुराना लक्ष्मण मंदिर-भरतपुर राज्य के संस्थापक राजा सूरजमल थे तथा उन्हें श्री हरिदेव जी इष्ट था। किंतु कालांतर में उनके वीर पुत्र राजा जवाहरसिंह को श्री लक्ष्मण जी का इष्ट था। राजा द्वारा दिल्ली लूट के समय श्री वैंकटेश लक्ष्मण जी के वरद हस्त रहने से राजा को जग-जाहिर सफलता मिली। राजा जवाहर की सेना में श्री वैंकटेश लक्ष्मण जी साथ-साथ रहकर युद्ध का नेतृत्व करते थे। श्री लक्ष्मण जी की लघु प्रतिमा जो युद्ध स्थल पर रहती थी, उस पर एक गोली का निशान अभी भी दर्शित है जो प्रत्यक्षत: हमारे कथन की पुष्टि करता है। मंदिर का नामकरण दक्षिण भारत में विद्यमान वैंकटेश पहाड़ियों का स्मरण कराता है। लक्ष्मणोपासक संप्रदाय में दीक्षित प्रतिष्ठित महंत आचार्य गंगाधर जी का आगमन भरतपुर में वैंकटेश पहाड़ियों से हुआ था। दक्षिण में यह प्रवृत्ति है कि नाम के साथ-साथ वाचक शब्द भी जोड़ते हैं। यही प्रवृत्ति मंदिर के नामकरण में दृष्टिगोचर है। इस मंदिर के पूज्य महंत को राजगुरु का सम्मान प्राप्त हो रहा था।

युद्ध कौशल में असाधारण सफलता के फलस्वरूप जाट राजाओं में चमत्कारिक प्रतिमा के प्रति पूज्य भाव को लेकर एक नये भव्य मंदिर के निर्माण की मनोकामना जाग्रत हुई जिसे नये लक्ष्मण मंदिर के रूप में निर्मित कराया गया। किंतु वैंकटेश मंदिर में प्रतिष्ठित राजगुरु व महंत ने इस चमत्कारिक मूर्ति को स्थानांतरित नये मंदिर में करने की अनुमति नहीं दी तथा पुराने लक्ष्मण मंदिर के रूप में यही मंदिर प्रतिष्ठित रहा जिसके अंतिम महंत पूज्य

गंगादास जी रहे। इस मंदिर के अधीन हजारों एकड़ भूमि है। मंदिर परिसर अत्यंत विशाल तथा प्रांगण विस्तृत है जिसमें लगभग दो दशकों तक भरतपुर की प्राचीन किंतु जानी-मानी रामलीला का मंचन होता था।

सालिगराम मंदिर-जैसा नाम से प्रतीत होता है, यह मंदिर भगवान विष्णु के प्रतीक 'शालग्राम' से संबंधित नहीं अपितु हनुमान जी का लब्धप्रतिष्ठ मंदिर है। बाबा सालिगराम तो अनन्य भक्त 'कृष्ण' के थे तथा साधनालीन बाबा को किंवदंती के अनुसार स्वप्न में हनुमान दर्शन हुए कि मुझे अमुक स्थान से खुदाई करके बाहर निकाल लो। जिस स्थान पर खुदाई की गई वहाँ आज भी कुंडा अर्थात् जलाशय बना है। मंदिर का निर्माण मूर्ति मिलने के पश्चात् हुआ जो सैकड़ों वर्ष पुराना है।

भरतपुर राज्य के अंतर्गत नगर नाम के कस्बे में ब्राह्मण कुल में बालक सालग्राम का जन्म हुआ। भरतपुर में आत्मादास सद्गुरु के सान्निध्य में रहकर कृष्ण भक्त बने। साष्टांग दंडवत करते हुए जगन्नाथ पुरी जाने का मन बनाया। घोर कष्ट सहे पर विचलित नहीं हुए। प्रण पूरा करके भरतपुर लौटे। वहीं दो मील की दूरी पर एक वृक्ष के नीचे ध्यानमग्न थे, तभी स्वप्न हुआ। हनुमान जी के दर्शन हुए। बाबा की याद में प्रतिवर्ष चैत्र शुक्ला अमावस्या को मेला लगता है। मंदिर शहर से स्टेशन रोड पर 2 मील दूर है। बाबा सालिगराम की समाधि, कुंडा व कुआँ भव्य बना है। [दा०द०गु०]

भविष्य पुराण

भविष्य पुराण, पुराणों में अति लोकप्रिय पुराण है। यह पुराण इतिहास के अनेकों संदर्भों को समेटे हुए है। पार्जीटर, स्मिथ एवं पं. भगवद्दत्त ने तो इसे इतिहास लेखन में सर्वाधिक प्राचीन आधार माना है। भविष्य पुराण में 586 अध्याय एवं 26,307 श्लोक प्राप्त होते हैं। भविष्य पुराण के वर्तमान प्राप्त संस्करण में चार पर्व हैं। ब्राह्मपर्व जिसके अंतर्गत 216 अध्याय तथा 8811 श्लोक हैं। मध्य पर्व में 62 अध्याय तथा 2841 श्लोक हैं। प्रतिसर्ग पर्व में 100 अध्याय तथा 6016 श्लोक हैं। उत्तर पर्व में 208 अध्याय तथा 8439 श्लोक हैं।

ब्राह्मपर्व स्वयं स्वतंत्र अनुसंधान का विषय है। इस पर्व में जनोपयोगी गृहस्थी चलाने के लिए उपयोगी साधनों, गर्भाधान से लेकर विविध संस्कारों का वर्णन, स्त्रियों के धर्म, पुरुष लक्षण एवं धर्म, व्रत-कल्प, स्वप्न दर्शन, रोगहरण विधि, सूर्य आराधना, श्राद्धपक्ष आदि का उल्लेख है।

मध्यपर्व इष्टापूर्त से सम्बद्ध है। इष्ट का अर्थ है यज्ञ एवं पूर्त का अर्थ है श्राद्ध एवं परोपकार के कार्य। इस पर्व में प्रतिमा एवं यज्ञ में प्रयुक्त मंडल, सुवा, वेदी आदि के निर्माण की विधि का भी वर्णन किया गया है।

प्रतिसर्ग पर्व में भविष्यकालीन घटनाओं का भूतकाल में वर्णन करने का सफल प्रयास है। भविष्य पुराण की घटनाएँ एवं वर्णन आज भी सत्य एवं संगत दिख रहे हैं। इस खण्ड में पद्मावती, मधुमती, वीरवर (वीरवल), चन्द्रावती, हरिदास, कामंगी, त्रिलोक सुन्दरी, कसुमदा, कामालसा, जीमूतवाहन, शालिवाहन, शक, कालीदास, भोजराज, मोहम्मद साहब, ईसामसीह, जयचंद, पृथ्वीराज, चैतन्य महाप्रभु, शंकराचार्य, मध्वाचार्य, नानक, नित्यानंद, पीपा, अकबर आदि का वर्णन है।

प्रतिसर्ग पर्व में वर्तमान वाराह कल्प के वैवस्वत मन्वन्तर का वर्णन है जिसके अंतर्गत त्रेता युग के तृतीय चरण में चंद्रमा के बुध उत्पन्न हुआ। इला से पुरुरवा का जन्म हुआ एवं चंद्रवंश चला। त्रेतायुग में खण्ड प्रलय को अगस्त्य ने संवरण किया। द्वापर में शूरसेन मथुरा के राजा हुए। द्वापर के तृतीय चरण में कुरु हुए जिस वंश में पाण्डव एवं कौरव उत्पन्न हुए। इस वंश में उत्पन्न प्रद्योत ने म्लेच्छ यज्ञ किया एवं इससे म्लेच्छों का विनाश हुआ। श्रीकृष्ण ने वसुदेव के यहाँ अवतार लेकर 135 वर्षों (श्रीमद्भागवत के अनुसार 125 वर्षों) तक लीला का वर्णन है। प्रतिसर्ग के चतुर्थ खण्ड

में अनेक आचार्यों-संतों के चरित्र का वर्णन है जिसमें श्री ईश्वरपुरी, श्रीरामानंद, निम्बार्काचार्य, मध्व, श्रीधरस्वामी, विष्णुस्वामी, भट्टोजी, वराहमिहिर, सुश्रुत, जयदेव, चैतन्य, रामानुज, नामदेव, रांका-वांका, कबीर, नरसी मेहता, नित्यानंद, रैदास, मीरा, तानसेन, तुलसीदास, सूरदास एवं कल्कि अवतार की कथाएँ हैं।

चतुर्थ उत्तर पर्व में निमित्त व्रत, उत्सव, दान एवं कर्मकाण्ड का वर्णन है। एक विश्वकोष के समान विविध विषयों का इसमें सुन्दर वर्णन है। भविष्यपुराण में अनेकों पुनीत व्रतों का वर्णन है। इस प्रकार भविष्य पुराण अनेक व्यावहारिक समस्याओं का पौराणिक समाधान करने वाला, अतिशय जीवन्त मूल्यों का वर्णन करने वाला, जनोपयोगी एवं परमार्थ साधक ग्रंथ है। [क०उ०]

भागवत पुराण

श्रीमद्भागवत पुराण में 18000 श्लोक हैं, जो 12 स्कन्धों में बंटे हुए हैं। महापुराण के सभी लक्षण इसमें विद्यमान हैं। ज्ञातव्य है कि सप्ताह कथा श्रीमद्भागवत माहात्म्य से प्रारम्भ होती है न कि भागवत महापुराण से। माहात्म्य तो पद्मपुराण से लिया गया है जिसे भागवत पुराण में जोड़ दिया गया है।

श्रीमद्भागवत की कथा भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा उत्तरा के गर्भ में परीक्षित की रक्षा से प्रारम्भ होती है। श्री शुक मुनि ने भागवत के द्वितीय स्कन्ध के प्रथम अध्याय में परीक्षित महाराज को बताया कि मुमुक्षजनों को सदा ही हरि के ही नाम, रूप, लीला का ध्यान, मनन करना चाहिये। शुकदेव महाराज ने कहा उनकी निर्गुण स्वरूप परमात्मा में पूर्ण निष्ठा है फिर भी भगवान श्रीकृष्ण की मधुर लीलाओं ने उन्हें बलात् अपनी ओर आकर्षित किया है। श्रीमद्भागवत पुराण का अध्ययन उन्होंने अपने पिता श्री वेदव्यास जी से किया है क्योंकि परीक्षित परम भक्त हैं अत: उसी पुराण को वे उन्हें सुनायेंगे।

दूसरे स्कन्ध में ही भगवान के विराट स्वरूप का वर्णन है। सृष्टि का वर्णन और चतु:श्लोकी भागवत का उपदेश है। तृतीय स्कन्ध में उद्धव (जो भगवान कृष्ण के परम भक्त और सखा थे) की भेंट विदुर जी से होती है। वस्तुत: इस पुराण का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय यही है कि सृष्टि भगवान से उत्पन्न होती है उन्हीं में लीन हो जाती है। इसी स्कन्ध में वराह अवतार की कथा, जय-विजय को सनकादि ऋषियों का शाप और उनका हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु के रूप में दिति के गर्भ से जन्म और हिरण्याक्ष का वराह भगवान द्वारा वध का विस्तार से वर्णन है। कर्दम ऋषि का देवहूति से विवाह, कपिल अवतार और उनके द्वारा देवहूति को सांख्य योग द्वारा तत्त्वज्ञान का वर्णन है।

चतुर्थ स्कन्ध में भगवान शिव के प्रति दक्ष प्रजापति का रोष एवं सती का दक्ष के यज्ञ में शरीर का त्याग, शिवा के अनुचरों और वीरभद्र आदि शंकर के अनुचरों द्वारा दक्ष का सिर काटकर उसके यज्ञ का विध्वंस तथा शंकर को प्रसन्न करने पर दक्ष को बकरे का सिर लगाकर पुन: जीवनदान का वर्णन है। अपनी छोटी माता के तिरस्कार और पिता की उपेक्षा के कारण ध्रुव तपस्या में लीन हो गये। छ: मास के उपरान्त उन्हें भगवान के दर्शन हुए और ध्रुवलोक की प्राप्ति हुई। महाराजा पृथु द्वारा पृथ्वी के दोहन, पृथु को भगवान रुद्र का उपदेश और पुरंजन उपाख्यान का भी चतुर्थ स्कन्ध में वर्णन है।

पंचम स्कन्ध में विष्णु के अवतार ऋषभदेव जी का उपाख्यान है। ऋषभ जी ने अधर्म को पीछे की ओर धकेल दिया इसीलिये सत्पुरुषों द्वारा वे ऋषभ कहलाये। ऋषभदेव जी के वंश में राजा भरत हुए जिनके नाम से इस भूमि का नाम भारतवर्ष पड़ा। इसका नाम पहले अजनाभ वर्ष था। उन्होंने बहुत तपस्या की किन्तु अन्त समय में मृग के मोह में पड़ने के कारण अगली योनि मृग रूप में हुई। तत्पश्चात् ब्राह्मण कुल में जन्म लिया। इस जन्म में व्यवहार न अपनाने के कारण जड़भरत कहलाये और अन्तत: मोक्ष प्राप्त किया।

छठे स्कन्ध में अजामिल का प्रसिद्ध आख्यान है। दक्ष का पुनर्जन्म और उसकी साठ कन्याओं की वंश परम्परा का

वर्णन है। इसी स्कन्ध में चित्रकेतु का बहुत सुन्दर उपाख्यान है। वह पार्वती के शाप से राक्षस वृत्ति को प्राप्त हो वृत्रासुर रूप में त्वष्टा ऋषि के यज्ञ से प्रकट हुआ।

सातवें स्कन्ध में हिरण्यकशिपु के वध और प्रहलाद उपाख्यान का वर्णन है। अष्टम् स्कन्ध में गज और ग्राह के युद्ध की प्रसिद्ध कथा है। गजेन्द्र द्वारा भगवान की सुन्दर स्तुति इसी स्कन्ध में है। देवासुर संग्राम, समुद्र मंथन और मोहिनी रूप में भगवान के अमृत बाँटने का हृदयग्राही वर्णन भी है। प्रहलाद के पौत्र बलि का आख्यान भी इसी स्कन्ध में है। मत्स्यावतार की कथा भी इसी स्कन्ध में है। भगवान ने हयग्रीव असुर से वेद छीन कर प्रलय के उपरान्त ब्रह्माजी को दिये।

नवम् स्कन्ध में महर्षि च्यवन और सुकन्या के विवाह का वर्णन है। महाराज अम्बरीष और दुर्वासा के दु:ख निवृत्ति की बहुत सुंदर कथा है। अन्य कथाओं के अतिरिक्त राजा त्रिशंकु और हरिश्चंद्र की कथा, भगीरथ द्वारा गंगा को पृथ्वी पर लाने का वृत्तान्त, राजा निमि के वंश का वर्णन, श्री परशुराम जी का चरित्र-चित्रण और विश्वामित्र, रन्तिदेव, दुष्यन्त और उसके पुत्र भरत के चरित्रों का भी चित्रण है। इसी स्कन्ध में इक्ष्वाकुवंशीय भगवान श्रीराम की लीलाओं का संक्षिप्त वर्णन है। यदुवंश के राजाओं का भी वर्णन है।

दशम स्कन्ध सबसे प्रमुख और विस्तृत है। भगवान श्रीकृष्ण की लीलाओं का इसमें विस्तृत वर्णन है। पूर्वार्ध में जन्म से लेकर अक्रूर जी के हस्तिनापुर से जाने तक का वर्णन है। उत्तरार्ध में जरासन्ध के आक्रमण से लेकर भगवान श्रीकृष्ण के लीला संवरण तक का वर्णन है।

एकादश स्कन्ध में मुख्य रूप से ज्ञान निरूपण किया गया है। शेष बचे पृथ्वी का भार उतारने के लिए यादवों के संहार के लिए उनको ब्राह्मणों का शापदान, श्री नारद जी द्वारा वसुदेव जी को नवयोगेश्वरों के माध्यम से भागवत धर्म का उपदेश आदि का वर्णन है। ब्रह्माजी द्वारा भगवान को स्वधाम पधारने की प्रार्थना, उद्धव जी का बदरीवन गमन आदि कथाएँ हैं।

बारहवें स्कन्ध में कलियुग के राजवंशों और कलियुग के धर्म का वर्णन है। अन्तिम उपदेश देते हुए शुकदेव जी ने परीक्षित को कहा-जैसे आग लकड़ी से अलग रहती है और लकड़ी की उत्पत्ति और विनाश से परे है ऐसे ही वह भी शरीरादि से सर्वथा भिन्न है। वह स्वयं ही सर्वाधिष्ठान ब्रह्म है। अत: वह आत्म स्वरूप में स्थित हो जाएँ और इस बात की चिन्ता न करें कि तक्षक आयेगा और उन्हें काटेगा। परीक्षित ने शुकदेव जी की बड़े प्रेम से पूजा की और शुकदेव जी महात्माओं के साथ वहाँ से चले गये। परीक्षित ने आत्मा को परमात्मा में समाहित किया। तक्षक के काटने से पूर्व ही वह ब्रह्मलीन हो चुके थे। सबके सामने ही उनका शरीर विष से भस्म हो गया। क्रोधित हो परीक्षित के पुत्र जनमेजय ने तक्षक इत्यादि सर्पों को भस्म करने के लिए सर्प यज्ञ किया। महर्षि बृहस्पति ने यज्ञ बन्द करवाया। इसी स्कन्ध में मार्कण्डेय जी की तपस्या और माया दर्शन का विस्तृत वर्णन है। मार्कण्डेय ने माया दर्शन में प्रलय का दृश्य देखा।

इस प्रकार यह श्रीमद्भागवत महापुराण व्यास जी के हृदय में भी संतोष प्रदान करने वाला सूत्र, ब्रह्मपूजा तथा ज्ञान, भक्ति, वैराग्य प्रदायक, श्रीकृष्ण लीला रसास्वादक, शैव, शाक्त, स्मार्त एवं शांकर सम्प्रदाय सहित चतु: सम्प्रदायी वैष्णवाचार्यों द्वारा प्रमाणित सर्वोपरि महापुराण माना गया है। [क०उ०]

भागवत सुबोधिनी

यह श्रीमद्भागवत पर वल्लभाचार्य की टीका है। यह टीका प्रथम, द्वितीय, तृतीय, दशम तथा एकादश स्कन्धों पर मिलती है। एकादश स्कन्ध की टीका पूरी नहीं है। सुबोधिनी- श्रीमद्भागवत के सर्वाधिक सुन्दर व्याख्यानों में से है। वल्लभ ने भागवत के कथ्य को बहुत स्पष्ट रीति से प्रस्तुत किया है। तृतीय स्कन्ध की सुबोधिनी इस दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है कि इसमें वल्लभ ने निर्गुण-भक्तियोग का विशद विवेचन किया है। दशम स्कन्ध के रासपंचाध्यायी

प्रकरण की भी बहुत सुन्दर व्याख्या वल्लभ ने की है। भागवत सुबोधिनी वल्लभ के सर्वाधिक यशस्वी और विद्वतापूर्ण ग्रंथों में से है तथा एक भाष्यकार के रूप में भी वल्लभ के असाधारण सामर्थ्य और गहरी पैठ की परिचायिका है। सुबोधिनी पर पुरुषोत्तम जी ने 'सुबोधिनीप्रकाश' नाम की सुन्दर टीका लिखी है। [क०उ०]

भावनोपनिषद्

भारतीय आध्यात्मिक साहित्य में उपनिषदों का विशेष स्थान है। वेदों का अंतिम भाग होने के कारण इन्हें वेदान्त भी कहा जाता है। इन्हें प्रस्थानत्रयी के अन्तर्गत माना जाता है क्योंकि ये भारतीय आध्यात्मिक दर्शन के स्रोत हैं। ऋषियों के गहन चिंतन एवं मनन का प्रतिफल उपनिषद ही हैं। मुख्य उपनिषद 108 माने गये हैं जो कि किसी न किसी वेद से संबद्ध हैं। इनमें भी 13 प्राचीन उपनिषद् ब्रह्मविद्या के गूढ़ रहस्यों की विवेचना करने के कारण विशेष रूप से मान्य हैं तथा इनमें से ही 10 का भाष्य आदि शंकराचार्य ने किया है। अन्य लघु उपनिषद् देवता विषयक होने के कारण तंत्र की श्रेणी में रखे गये हैं। इनको भी शैव, शाक्त, वैष्णवादि की श्रेणी में वर्गीकृत किया गया है।

भावनोपनिषद् जो कि लघु उपनिषद् है को शाक्त उपनिषद् की श्रेणी में वर्गीकृत किया गया है। यह अथर्ववेद (चरणव्यूह खण्ड) से संबद्ध है तथा प्राचीन नहीं है। श्रीचक्र पूजन से संबंधित इस उपनिषद् को श्रीविद्या परंपरा का एक अति महत्वपूर्ण ग्रन्थ माना जाता है। शाक्त परंपरा में दस महाविद्याओं का बहुत महत्व है। यह भगवती के विभिन्न स्वरूपों के रूप में पूज्य है। इनकी साधना गुप्त रूप से सद्गुरु से दीक्षा लेकर ही संप्रदायानुसार किये जाने का विधान है। दस महाविद्याओं में तृतीय क्रम में प्रतिष्ठित महाविद्या को त्रिपुरसुन्दरी, श्रीविद्या, ललिता तथा षोडशी आदि नामों से जाना जाता है। श्रीविद्या के कादि तथा हादि दो प्रमुख भेद हैं। समयाचार, कौलाचार तथा मिश्र आदि संप्रदाय हैं। बहिर्याग तथा अन्तर्याग पूजा प्रकार हैं। इनमें श्रीचक्र अथवा श्रीयंत्र पूजन का विशेष महत्व है। भावनोपनिषद् श्रीविद्या के समयाचार अन्तर्याग (कादिविद्या) से संबंधित है।

भावनोपनिषद् के रचयिता तथा रचनाकाल के विषय में ज्ञात नहीं है। यह लगभग बारहवीं शताब्दी की रचना मानी जाती है। जहाँ तक इसके कलेवर का प्रश्न है यह गूढ़ सूत्र रूप में रचित अति लघुकाय मात्र 36 पंक्तियों का ग्रन्थ है। श्रीविद्या के कादिमत समयाचार के प्रमुख ग्रन्थ तंत्रराज तंत्र से इसमें वर्णित विषय की साम्यता प्रतीत होती है। समयाचार के अन्तर्गत सदाचार, वैचारिक तथा अनुष्ठान संबंधी शुद्धता, पवित्रता तथा अनुशासन का बहुत महत्व है। परम सात्विक रूप से किया जाने वाला यह अन्तर्याग है। इसी से समयाचार को पराविद्या भी कहा जाता है। भावनोपनिषद् का मुख्य उद्देश्य मनुष्य शरीर और श्रीचक्र का संबंध स्थापित करना है। श्रीचक्र को ब्रह्माण्ड का स्वरूप भी माना जाता है। अत: भावनोपनिषद् का मुख्य विषय श्रीचक्र में पिण्डाण्ड और ब्रह्माण्ड में सामंजस्य स्थापित करना है। श्रीविद्या उपासना में भावना का बहुत महत्व है। इसी कारण इसे भावनोपनिषद् नाम दिया गया है।

ग्रन्थ का प्रारंभ गुरुवन्दन से किया गया है क्योंकि सद्गुरुदेव के ही मार्गदर्शन से मोक्ष की प्राप्ति संभव है। तत्पश्चात् शारीरिक, मानसिक एवं प्राण शक्ति स्तरों का वर्णन करते हुये श्रीचक्र के नव आवरणों से सामंजस्य स्थापित किया गया है। श्रीचक्र के आवरणों का वर्णन संहारक्रम अर्थात् बाह्यतम आवरण 'भूपुर' से प्रारंभ कर नौवें आवरण 'बिन्दु' तक किया गया है।

ग्रन्थ के अनुसार भगवती की बाह्य अथवा स्थूल उपासना उनकी मूर्ति में समस्त सात्विक उपचारों के साथ, गुरुप्रदत्त मंत्रजप तथा श्रवणीय स्तुतियों के साथ की जाती है। यह एक साधन मात्र है लक्ष्य नहीं। दूसरे प्रकार की साधना अन्तर्याग है। यह दो प्रकार की होती है- साधार तथा निराधार। साधार के अन्तर्गत संकेतों, मुद्राओं तथा विशिष्ट ध्वनियों का प्रयोग किया जाता है। निराधार विधि में स्वशरीर को ही श्रीचक्र मानकर तथा समस्त मनोभावों का विलय कर भगवती के साथ एकरूपता की दृढ़ भावना की जाती है। इसमें बाह्य उपचारों का कोई स्थान ही नहीं

रह जाता है। चिंतन का यही परिवर्तन यहाँ भावना कहा गया है।

सूत्ररूप में होने के कारण ग्रन्थ को बिना भाष्य के समझ पाना संभव नहीं है। समस्त भाष्यों में महान श्रीविद्योपासक श्रीभास्कराय माखिन का भाष्य विद्वानों के द्वारा सर्वोत्कृष्ट माना गया है। इस पर उन्होंने स्वयं ही 'प्रयोग विधि' नामक टीका की रचना श्रीविद्योपासकों के लाभार्थ की है। [ग०शं०पा०]

भूधरदेव

श्री भूधरदेव जी की गुरु भक्ति अद्वितीय थी। जिस समय इनके गुरुदेव श्री वंशीधर देव जी निकुंजवासी हुए, उस समय आप इनके दर्शन नहीं कर सके थे। इसी वियोग से श्रीगुरुदेव के देहत्याग के पश्चात् आपने भी तत्क्षण इस लौकिक देह का परित्याग कर श्रीगुरुदेव का अनुगमन किया। [कुं०बि०श०]

भूरि भट्टाचार्य

आपने शरणागतों को सांसारिक कर्म-बंधनों पर भूरि-भूरि करते हुए उन्हें वैष्णवी परंपरा मार्ग में प्रवृत्त किया और अखिल कोटि ब्रह्मांडनायक भगवान श्रीराधासर्वेश्वर के निज धाम का साक्षात्कार कराया। इनका पाटोत्सव आश्विन कृष्णा दशमी को मनाया जाता है। [कुं०बि०श०]

म

मंदिरों की विशिष्ट शब्दावली

अंतरंग सखी-अन्तरंग सखी केवल एक ही होती है। यह युगल की पूर्ण हित चिन्तिका होती है। युगल की शैया विहार जैसी ऐकान्तिक क्रीड़ा में भी उनके निकट रहकर सेवा किया करती है और यथासमय यथोचित कार्य करके दोनों को सुख पहुँचाती रहती है। ये अंतरंग सखी श्री राधा की विश्वासपात्री और स्नेह संभृत शुभचिंतका हैं। ये अन्य सहचरियों को भी सेवा-प्रेरणा प्रदान करती हैं। युगल सरकार से हास-परिहास इनकी सहज वृत्ति हैं।

अधिवासन-विशेष उत्सवों पर दर्शन कराने से पूर्व प्रभु को सिंहासन से उठाकर विधि-विधानपूर्वक 'हिंडोला' डोल, रथ आदि में विराजमान करना; अधिवासन कहलाता है। वल्लभकुल की यह प्राचीन परम्परा है।

अनसखड़ी-जिस सामग्री के निर्माण में तेल या नमक का उपयोग न हो वह अनसखड़ी जैसे पूड़ी और अन्य मिष्ठान्न जिसमें मोहन थार (बेसन की बर्फी जैसा) बूँदी, जलेबी, मैसूर पाक, सेव आदि व्यंजन हैं। इसे पक्की रसोई नाम से भी सम्बोधित किया जाता है।

अनुचरी-वैष्णव सम्प्रदायों की रस प्रेरित उपासना परम्परा में अनुचरियों की संख्या अनन्त है तथा ये सहचरियों का अनुगमन करती हैं। उनकी आज्ञा के बिना युगल की कोई भी सेवा करने का अधिकार इन्हें नहीं है। ये निकुंज भवन की सेवी-सहचरियों के साथ निकुंज, निकुंज भवन की सेवा में जा सकती हैं। ये सहचरियों की भाँति युगल से हास-परिहास तो नहीं कर सकतीं परन्तु सहचरियों के साथ ये युगल से हास-परिहास कर सकती हैं। युगल की सेवा में इनका भी अपना विशिष्ट स्थान है।

अनोसर-प्रात:कालीन सेवाक्रम को विराम देकर पुन: सेवारम्भ किए जाने के बीच की अवधि जिसमें प्रभु का विश्रामकाल होता है।

अपरस-शरीर शुद्धि के पश्चात् धुले अथवा कोरे वस्त्र पहनकर प्रभु सेवा में तत्पर होना। इस अवधि में किसी अन्य का स्पर्श न होना।

आरती-इस झाँकी में श्रीकृष्ण का गायों को चराकर लौटने वाला स्वरूप परिलक्षित होता है। भोग के बाद जब दर्शन खुलते हैं तो प्रभु की आरती उतारी जाती है। उत्सव के समय भोग तथा आरती दोनों दर्शन साथ ही करा दिये जाते हैं। इसी आरती में ही ठाकुर जी की नजर भी उतारी जाती है।

इकलाई-किनारे पर गोटा-जरी लगा कंधे पर ओढ़ने डालने का केसरी या अन्य रंग का उत्तरीयनुमा वस्त्र। जो श्रीविग्रह के पीछे की ओर भी लगाया जाता है।

उत्थापन-ये दर्शन संध्या को 4-5 बजे के बीच में होते हैं। ऋतु के अनुसार समय परिवर्तन होता रहता है। इसमें शंखनाद से ठाकुर जी को जगाया जाता है। दूध की बनी मिठाईयाँ, शक्करपारा, फल, फूल आदि खाद्य सामग्री ठाकुर जी के समक्ष प्रस्तुत की जाती है।

कंकण-श्री विग्रह के कर में कंकण धारण कराये जाते हैं। जो विभिन्न प्रकार के रत्नों और कनक से निर्मित

होते हैं तथा उनके जोड़ पर गज शुंडाकृति या मीनाकृति अंकित होती हैं। जिनकी शोभा देखते ही बनती हैं। ये गोल आकार लिये होते हैं तथा अन्त में शुंडाकृति से जुड़े रहते हैं या खुले भी रहते हैं। जिससे इन्हें आसानी से विग्रह को धारण कराया जा सके।

कलंगी-तुर्रा की तरह ही मुकुट या पगड़ी के ऊपर कलंगी लगायी जाती है। कभी-कभी श्रीविग्रहों के शृंगार में कलंगी व तुर्रा का सम्मिलित प्रयोग दर्शित होता है जिसमें कि नीचे तुर्रा होता है उसी के बीच से कलंगी निकली रहती है।

कसेंडी-कलश जिसमें ठाकुर जी के स्नान का, झारी का प्रसादी जल संरक्षित किया जाता है।

काछिनी-यह घेरदार घाघरे के जैसी नृत्य की पोशाक है जो कि श्रीविग्रह तथा मूर्तियों को धारण कराई जाती है। मोर की समता के लिये मोर मुकुट और काछिनी पहनी जाती है। रासानुकरण के अन्तर्गत आज भी स्वरूप काछिनी धारण करते हैं जो कमर पर बाँधी जाती है। कवि गोविंद स्वामी ठाकुरजी की काछिनी का वर्णन निम्न पंक्तियों करते हैं—

'काछनी' कटि अति सुदेस लाल अंबर सो है— गोविंद वारी

किंकणी-श्रीकृष्ण के नाभि और कटि के चारों ओर कनक निर्मित घुँघरूओं की पंक्ति होती है जो करधनी के समान होती हैं तथा मणियों तथा स्वर्ण के तार में बंधी रहती हैं। यह मधुर ध्वनि भी उत्पन्न करती हैं। उसकी वाणी घनन-घनन या क्वणित होती है जो कर्णप्रिय लगती है।

किंकरी-अनुचरियों की भाँति यह अनगिनत संख्या में हो सकती हैं और ये अनुचरी और सहचरी दोनों की अनुगामी तथा मुखापेक्षी होती हैं। उनका आदेश पाकर ही ये प्रत्येक सेवा कार्य करती हैं। अनुचरी सहचरी के आदेशानुसार श्यामा-श्याम का प्रत्येक कैंकर्य करने के कारण ये किंकरी कहलाती हैं। किंकरीगण प्रीति की साकार मूर्ति हैं। ये किंकरीगण प्रेमी और प्रेमपात्र रूप में नित्य प्रत्यक्ष श्यामा-श्याम के सुख में ही सुखी रहने वाली हैं तथा स्व-सुख कामना शून्य हृदय वाली हैं। अत: ये राधा किंकरी गण ही वस्तुत: प्रेमोपासिका, रसोपासिका और सर्वादि रसिक हैं।

किरीट-यह शीश पर धारण किये जाने वाला आभूषण मुख्यत: राजा-महाराजाओं का मुकुट है। जो कि श्रीविग्रह को भी धारण कराया जाता है। जिसका संदर्भ अष्टछाप कवि सूर की सारावली में भी मिलता है—

कुंडल लसत किरीट महाधुनि, वपु वसुदेव निहारयो...

(सूर सारावली)

कुण्डल-श्री विग्रह के शृंगार में सर्वाधिक आकर्षक आभूषण कुण्डल है जोकि मकर की या मीन की आकृति का होता है तथा रत्न जड़ित कुण्डल भी कृष्ण धारण करते हैं। उन कुण्डलों में शशि और रवि की शोभा मानी जाती है।

कुनवाड़ा-इसमें गोवर्धन पूजा नहीं होती। भोग में दाल-चावल आदि सखरी रसोई न होकर व्यंजन पकवान पूरी, पुआ, खीर जैसी सामग्री होती है। इसमें अन्नकूट की अपेक्षा सामग्री सीमित मात्रा में होती है तथा अन्नकूट की तरह प्रदर्शन भी नहीं होता है। यह मनोरथ अधिकांशत: गोस्वामियों की ओर से ही होता है। इसके अलावा लोक में कुल देवी, देवता के मनोरथ पूर्ण करने पर ही यह मनोरथ किया जाता है।

कुलह या कुल्हैया-यह शाही शृंगार के अन्तर्गत आता है। कुलह उस टोपी का नाम है, जो समयानुकूल जरी की, रत्नों की, चंदन की और चित्रकारीयुक्त होती है। पुष्टिमार्गी परम्परा में प्रत्येक बड़े उत्सवों पर ठाकुर जी को कुलह धारण कराने का संदर्भ मिलता है–

आज की बाँनक कही न जाइ।
रही धँसि पाग लाल आधे सिर,
कुलह चंपक भरी ता मधि हीरा लटकाइ॥...

छोटे बालक को जो कुलह धारण कराते हैं उसे कुलही या कुल्हैया कहते हैं।

कुलिया-वृन्दावन के गौड़ीय सप्त देवालयों में राधारमण मन्दिर में कुलिया राधारमण जी की सेवा में मुख्य प्रसाद के रूप में परोसी जाती है। जो कि (मृदा पात्र) मिट्टी के गोल पात्रों में मंदिर में ही निर्मित खीरसा भरकर तैयार की जाती है। गोपाल भट्ट जी के सेवाकाल से ही प्रतिदिन बारह मिट्टी के पात्रों में खीरसा भरकर 'अमृत केलि' भोग का बंधान किया गया था। यही अमृत केलि शनैः-शनैः कुल्हिया के रूप में परिणित हुयी। राधावल्लभ संप्रदाय में भी खिचरी के साथ कुलिया का भोग लगाया जाता है, उसमें भी मिट्टी के छोटे कुल्हड़ में खीरसा भरा जाता है।

कोतवाल-मुगल प्रशासन में जहाँ कोतवाल का पद दरबार की व्यवस्था का एक अंग था और पद के सापेक्ष ब्रिटिशकाल में भी इस शब्द का प्रयोग देखा जा सकता है, जिसमें यह शब्द पुलिस महकमे से सम्बन्धित रहा जो आज भी इसी संदर्भ में पहिचाना जाता है। अर्थात् आमजन में कोतवाली के प्रभारी को कोतवाल कहे जाने की परम्परा आज भी प्रचलित है। इसी प्रकार ब्रज के मंदिर-देवालयों में भी प्रशासनिक संरचना के अंतर्गत कोतवाल रखे जाने की पुरानी परम्परा रही है। जिसके अपने दायित्व होते हैं। मंदिरों में होने वाले भंडारों की व्यवस्था हो या ब्रजमण्डल के लोगों को भोजन के लिये मंदिर में आमंत्रित करना, उनको दक्षिणा बँटवाना ये सभी कार्य भी कोतवाल के कार्यक्षेत्र में आते हैं। जिसके चलते स्थानीय समाज में इनका काफी आदर रहता है। यद्यपि यह व्यवस्था वर्तमान में प्रभावित हुयी है तथापि प्रतीकात्मक रूप से कुछ एक आश्रमों एवं मंदिरों के कोतवाल ब्रज में अभी कार्यरत हैं। प्राचीन पाण्डुलिपि दम्पति वाक्य विलास जिसका रचनाकार वृन्दावन का एक कवि था, के अन्तर्गत कोतवाल के विषय में बताया गया है।

खासा-केवल श्री ठाकुर जी के उपयोग का जल जिसे पवित्रतापूर्वक श्रीविग्रह के सम्मुख रखा जाता है।

गादी सेवा-श्रीराधा कृष्ण के प्रकट स्वरूपों की सेवा में श्रीकृष्ण के स्वरूप के साथ कहीं-कहीं राधा रानी की गद्दी स्थापित होती है। वहाँ राधारानी का विग्रह नहीं होता तथा धातु पत्र अथवा प्रस्तर पर श्रीराधा नाम अंकित करते हैं और श्रीविग्रह के समीप में भव्य वस्त्रों के द्वारा सजाकर इसे स्थापित करते हैं। यही गद्दी कहलाती है। इसके स्वरूप (विग्रह) के साथ आवश्यक द्रव्यों से परिचर्या भी की जाती है जिसे गद्दी सेवा से सम्बोधित करते हैं। वृन्दावन में राधावल्लभ मंदिर में राधावल्लभ सेवा पद्धति के अनुसार राधावल्लभलाल का वेणु वादन तत्पर स्वरूप विराजमान रहता है तथा उनके वाम अंग में श्रीराधा नाम अंकित स्वर्ण पत्र है जो भव्य वस्त्रों से सजा हुआ है गादी के रूप में स्थित है। जिसकी श्रीविग्रह के साथ सेवा की जाती है। ब्रज के अन्य वैष्णव देवालयों में भी यह परम्परा देखी जा सकती है।

गूजरी-पायजेब के नीचे चरणों में धराया जाने वाला आभरण।

गोकर्ण-शृंगार में गायों के साथ खेल के लिये वन में जाते समय 'गोकर्ण' पाग के ऊपर पहने जाने का उल्लेख मिलता है। अन्नकूट के उत्सव के दिन भी श्रीविग्रह के कुलह के ऊपर गोकर्ण पहनाये जाने की परम्परा है।

ग्वाल-शृंगार के बाद ये दर्शन खुलते हैं। इसमें भगवान को (सखड़ी) दाल, भात, खीर, अचार, पापड़ी आदि

का भोग आरोगा जाता है। दर्शनों में धूप-दीप होता है, उसके पश्चात् राजभोग की तैयारियाँ की जाती हैं। यह झाँकी या सेवा केवल पुष्टिमार्गीय पूजा पद्धति में ही होती है, अन्य में नहीं। ठाकुर जी बाल रूप में सेवा परम्परा के चलते जब ठाकुर जी गाय चराने जाते हैं तो ग्वाल रूप में होते हैं। उसी भाव से ग्वाल झाँकी के दर्शन कराये जाते हैं।

चाँचरि-यह बसन्त ऋतु में गाया जाने वाला एक विशेष गीत है तथा ब्रज में होली उत्सव के दौरान किये जाने वाले खेल-तमाशों को भी चाँचरि शीर्षक से संज्ञित किया जाता है। ब्रज में प्रचलित लोक मान्यता के साथ ही प्राचीन पाण्डुलिपियों में भी इन अभिव्यक्तियों के रूप में इस शब्द का प्रयोग विभिन्न स्थलों पर देखा जा सकता है। कुमाऊँ का एक लोकगीत भी चांचरि कहलाता है। होली के अवसर पर गाये जाने वाले पदों में चांचरि शब्द का प्रयोग बहुतायत में उपलब्ध होता है। अष्टछापी कवियों में सूरदास ने भी चाँचरि लिखी हैं।

बाजे अनेक सब सजे साथ। फुलझरी छुटैं रंग पिचक हाथ।
दँहि चाँचरि प्यारी प्राणनाथ। पढ़े वेद मंत्र मनु हो हो नाथ॥

(चाचा हित वृन्दावनदास की वाणी)

सूरदास सब चांचरी खेलैं। अपने-अपने टोलैं॥

(सूर सारावली-2857)

चाव-शोभायात्रा (सवारी) का एक प्रकार जिसे ब्रज की रसोपासना से संबद्ध देवालयों में चाव कहा जाता है। राधाष्टमी के दिन राधा एवं कृष्ण के स्वरूप को सज्जित करके वृन्दावन में चाव निकाले जाने की प्राचीन परंपरा है जिसमें अनेक प्रकार की झाँकियों के साथ अपार जनसमुदाय सहभागिता करता है। ब्रज में कहीं-कहीं सामान्य से बड़े आकार के लड्डू-मठरी बाँटे जाने की परंपरा भी चाव कहलाती है। इस अवसर पर वैष्णव सम्प्रदाय में प्रचलित पदों का गायन किया जाता है।

चित्रावली-सुगंधि द्रव्यों से श्रीविग्रह को चर्चित (अलंकृत) करने की प्रक्रिया में विग्रहों के कपोलों, भुजाओं तथा भाल पर चंदन, कस्तूरी आदि के मिश्रण से चन्द्रिका, पत्रावली, पुष्प आदि चित्रित किये जाते हैं। जो चित्रावली कहलाती है। चित्रावली से युक्त होकर विग्रह अधिक चित्ताकर्षक लगते हैं। चंदन से चित्रावली बनाने का उल्लेख पुरा ग्रंथों में मिलता है। राधावल्लभ सम्प्रदाय के वाणीकार चाचा हित वृन्दावन दास जी का एक पद-

हँसि-हँसि चंदन बनावैं।
चंदन बागे सचति दुहुँनि तन, सजनी घसि-घसि लावैं।।

छाक-मुख्य रूप में छाक से अभिप्राय वन में गाय चराने वाले ग्वालबालों के लिये दोपहर या तीसरे पहर भेजा जाने वाला भोजन है, जिसमें दूध, दही, छाछ की प्रधानता होती है। इसका वर्णन सभी अष्टछापी कवियों के काव्य में देखने को मिलता है–

तिनमें बैठे छाक खात मदन रूप मँडली रची।
'छप्पन भोग' 'छत्तीसों व्यंजन' आनि आगे थार सँची॥

(चतुर्भुजदास जी, पद संग्रह)

छाक के अन्तर्गत माखन, दधि, मधु, मेवा, पकवान्न, मिष्ठान्न, भात, शिखरन, टैंटी, शाक आदि भोज्य पदार्थों का वर्णन मिलता है। इसके अलावा कहीं-कहीं 'ज्योंनार' या 'पंगत' के दौरान जन समूह के भोजन करने के अर्थ में यह प्रचलित है। वहाँ भी 'छाक' शब्द का प्रयोग होता है और ठाकुर जी के अन्नकूट पर्व पर मैदा से बनाई गई थाल या बड़ी थाली के आकार की मठरी जो कि एक तरफ के फलक से थोड़ी-थोड़ी दूरी पर उभारयुक्त होती है, उसे भी 'छाक' शब्द से सम्बोधित किया जाता है।

झेला-मुखिया के बाद उसके द्वारा गायी जाने वाली पंक्ति का अनुकरण करने वाले लोग झेला कहलाते हैं।

टहलुआ-ब्रज के मंदिरों में सेवायत आचार्यों के आदेशानुसार टहल अर्थात् सेवा करने वाला, यहाँ टहलुआ की नियुक्ति पारम्परिक रूप से उसकी शुचिता तथा अपरस (पवित्रता का ऐसा अनुकरण जिसमें टहलुआ अपनी सेवा के दौरान किसी अन्य को स्पर्श न करे एवं अन्य संस्कारों) को ध्यान में रखकर की जाती थी। देवालयों में टहलुआ की परम्परा आज भी विद्यमान है। रसोइया द्वारा तैयार अमनियाँ उठाकर श्रीविग्रह के गर्भगृह तक लाना अमनियाँ के प्रसादी होने पर गोस्वामियों तथा व्यवहारियों के घर तक उसका वितरण करना बधाई (जो नकद पैसे यजमानों द्वारा दिये जाते हैं।) का वितरण करना आदि टहलुआ के मुख्य कार्य हैं। पूर्व में यमुना के जल का संग्रह एवं पुष्प सेवा के दायित्व भी टहलुआ निभाते थे, कारणवश वर्तमान में यह कार्य प्रभावित हुए हैं।

टिपारौ-यह एक प्रकार की तिकोनी टोपी होती है जो मुकुटनुमा होती है। यह ग्वालबालों के सिर का आभूषण है। इसके ऊपर मोर पंख की चंद्रिका तथा मोर पंख की कतरनें भी लगाई जाती हैं। यह आभूषण श्रीकृष्ण भगवान के गायों के समूह के साथ मिलने वाले प्राचीन चित्रों में दर्शित होता है। इसका वर्णन अष्टछापी कवि चतुर्भुज दास ने अपने पद में किया है—

गिर धरन लाल सिर लाल टिपारौ गुंज...

(चतुर्भुज दास कृत पदावली)

टेरा-परदा देने अथवा लगाने की प्रक्रिया 'टेरा देना' कहलाती है।

टोप-यह स्वर्ण अथवा रजत से निर्मित होती है। इसका आकार शंकुआ होता है तथा इसके नीचे रूई का टोपा पहना जाता है। यह रजत निर्मित शंकु आकार टोप के रूप में भी होता है जो सेवायतों के द्वारा भक्तों के सिर पर ठाकुरजी की कृपास्वरूप रखा जाता है। यह परम्परा वृन्दावन में राधा दामोदर मंदिर तथा ब्रज के अन्य मंदिरों में अन्नकूट के अवसर पर देखी जा सकती है।

टोपा-यह श्रीविग्रह को सर्दी के मौसम में धारण कराया जाता है। जिससे उष्मा प्रदान करने हेतु रूई का प्रयोग होता है। यह ऊन से भी निर्मित होता है।

डबरा-सोने या चाँदी का गहरा-चौड़ा बड़ा कटोरा जिसमें मुख्यत: दूध का भोग लगता है। कुछ नामांकित लोगों को लड्डू-मठरी के रूप में बड़े उत्सवों पर दिया जाने वाला प्रसाद भी डबरा कहलाता है।

तत्सुख सुखि-स्व-सुख कामना शून्य होकर अपने प्रिय के सुख में सुखी होना ही तत्सुख सुखी धर्म कहलाता है। यथा—

अपने सुख की कामना जहाँ न कोऊ होई।
प्रीतम के सुख ही सुखी तत्सुख कहिये सोई॥

— माधुर्य प्रकाश हित अनूपअलि जी छन्दसं०20

प्रेम के इस धर्म का प्रत्यक्ष दर्शन ही यह बोध कराता है कि यह 'प्रेम' है। प्रेम स्वरूप है। इस धर्म के अभाव में वह प्रेम नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि जिसमें धर्म होता है वह उस धर्म का धर्मी कहा जाता है। परमतत्व प्रेम का यह धर्म श्रीहित हरिवंश जी के उपास्य श्रीराधा-श्यामसुन्दर, राधा किंकरीगण और वृन्दावन में प्रत्यक्ष दिखाई देता है।

तपेली-गोस्वामीजनों के लिए मन्दिर के भोग-महाप्रसाद हेतु अलग से तैयार की जाने वाली रसोई। जो बैठकों में या उनके घर के ठाकुर जी के भोग में धरायी जाती है।

तबकड़ी-झारी रखने का (छोटा प्लेटनुमा) पात्र।

तष्टी-भोग के पश्चात् ठाकुर जी को आचमन कराने का पात्र तष्टी कहलाता है, वहीं देवालयी परम्परा में श्रीविग्रह को स्नान कराने वाली परात तष्टा शीर्षक से संज्ञित है।

तुर्रा-यह पगड़ी के ऊपर लगने वाला गुच्छा जैसा होता है जो कि ऊपर से फैला रहता है। श्रीविग्रह के शृंगार में ये कई प्रकार से उपयोग में आता है कहीं इसे तिरछे और लंबे रूप में लगाते हैं तथा कहीं सीधा करके फैलाकर लगाया जाता है। गो॰ चद्रलाल जू अपने ग्रंथ वृन्दावन प्रकाशमाला में ठाकुर जी के शृंगार के अंतर्गत इसका वर्णन करते हैं—

तुर्रा-छरी, गेंद गुच्छा, रचत अनेक भाँति, नव नव कुसुम लैकें रीति सौ बनावै है।

(वृन्दावन प्रकाशमाला, गो०चन्द्रलाल जू)

दधिकाँधा-श्रीराधा एवं कृष्ण के जन्मोत्सव पर होने वाला आयोजन जिसमें दही, केसर, हल्दी एवं अन्य पारम्परिक सामग्री को मिश्रित करके बधाई गायन करने वाले समाजी एवं जनसमूह के ऊपर कलश भर-भरकर उडेला जाता है। यह ब्रज की देवालयी संस्कृति का एक प्रमुख प्राचीन उत्सव है। जिसमें प्राय: होली जैसा ही दृश्य उपस्थित हो जाता है। प्राचीन पाण्डुलिपियों में दधिकाँधा उत्सव का उल्लेख मिलता है।

नाचत गोपी गोप बहुरि दधिकाँधौ खेल मचायौ।...

धियो-धियो-गौड़ीय आचार्यों की तिरोभाव तिथि पर उनके शिष्य-प्रशिष्यों के द्वारा मनाया जाने वाला ऐसा उत्सव जिसमें संत लोग मृदंग (खोल) बजाते हुये नाम संकीर्तन करते हुये सम्बन्धित आचार्य का सूचक गान भी करते हैं। ब्रज क्षेत्र की वाचिक परम्परा में प्रचलित मान्यता के अनुसार गौड़ीय साधकों के द्वारा मृदंग बजाते हुये कीर्तन करते हुये जो ध्वनि प्रस्फुटित होती है उसे सुनकर ही ब्रजवासी जन इस उत्सव को धियो-धियो नाम से उच्चारित करने लगे। इस प्रचलित शब्द के आधार पर ब्रिटिश कलॅक्टर एफ॰एस॰ग्राउस ने अपने ऐतिहासिक ग्रंथ 'मथुरा ए डिस्ट्रिक्ट मेमोयर' में गौड़ीय आचार्यों की तिरोभाव तिथि पर धियो-धियो उत्सव मनाये जाने की बात कही है। 19वीं शताब्दी में रचित पाण्डुलिपियों में भी तिरोभाव उत्सव के दौरान इस शब्द का प्रयोग देखा जा सकता है। सनातन गोस्वामी की तिरोभाव तिथि पर स्थानीय कवि गोपाल राय ने धियो-धियो उत्सव की बात कही है—

वहीं व्यास पूनौ के दिन यक धीओ-धीओ होई।
कहत सनातन कौ उत्सव तिहि जुरत सदा सब कोई॥

वृन्दावन धामानुरागावली-गोपाल राय (अप्रकाशित पाण्डुलिपि)

धैया-दूध बिलोने से उत्पन्न फेन ('ग्वाल' में भोग हेतु), यह परम्परा वल्लभ कुल में अपना विशेष महत्त्व रखती है।

नथ बेसर-यह राधारानी की नासिका में धारण कराया जाने वाला एक आभूषण है। यह ललित नासिका पर बड़ी शोभित होती है। यह स्वर्ण में रत्न जड़कर बनायी जाती है। बेसर में मुक्ता लटकी रहती है जो कि मंद-मंद हिलती है। यह नाक के बीचों बीच में पहनी जाती है। इसके अतिरिक्त नासिका के एक तरफ नथ पहनी जाती है। यह भी स्वर्ण से निर्मित रत्न जड़ित होती है। इसकी शोभा भी अत्यन्त आकर्षक होती है। इसी संदर्भ में राधाबल्लभ संप्रदाय से सम्बन्धित हित चौरासी ग्रंथ का एक पद है–

सुभग नथ बेसरि, रतन घटक जरी अधर बंधूक।

– हित चौरासी पद सं. 81

नाम सेवा-नाम सेवा से तात्पर्य उन ग्रंथों का अध्ययन, मनन, स्वाध्याय, श्रवण और प्रवचन करना है, जिनसे भगवान के स्वरूप को भली प्रकार समझने में सुविधा हो। परिस्थितिवश स्वरूप सेवा करने वाले साधक नाम सेवा से भी संतुष्ट होते हैं। अर्थात् विग्रह की सेवा न कर पाने की स्थिति में नाम सेवा करते हैं तथा जो सेवक स्वरूप सेवा करते हैं जिसमें सम्प्रदायाचार्य अथवा इष्ट आराध्य का नाम पूजा गृह में रखकर सेवा किये जाने की परम्परा है। नाम सेवा के रूप में प्रस्तर, काष्ठ अथवा धातु पर नाम अंकित करते हुये सेवा किए जाने का पुराना विधान है। ब्रज के कई देवालयों में नाम सेवा विद्यमान है।

नुपूर-रास या नृत्य के समय श्रीकृष्ण घुँघरू धारण करते हैं। सामान्य रूप से नुपूर उनके चरणों का आभूषण हैं। किंकणी की भाँति नुपूर भी चारों ओर से घुँघरुओं से आपूरित होते हैं और ध्वनि उत्पन्न करते हैं। इसकी ध्वनि जब प्रस्फुटित होती है तो चित्त को चुराने वाली कही जाती है।

नेग-ठाकुर जी के दैनन्दिनी भोग के लिए पूर्वजनों द्वारा परम्परा के अनुसार निर्धारित सामग्री का परिमाण। जो सेवा उपरान्त सेवकों को बाँटने के लिए निर्धारित होता है।

नेबरा-जल की झारी पर लपेटा जाने वाला लाल वस्त्र।

पड़गा-विशेष प्रकार का आधार (स्टैण्ड) जिस पर ठाकुर जी की झारी, भोग, पंखे इत्यादि रखे जाते हैं। इसी तरह शंख रखने का स्टैण्ड टिक्टी कहलाता है।

पधरावनी-गोस्वामीजनों को अपने घर या ब्रजयात्रा में अपने डेरे पर आमंत्रित (पधरा) कर उन्हें भेंट अर्पित करना।

परचारगी-ब्रज की देवालयी संस्कृति में दैनिक परिचर्या को परचारगी कहा गया है। रसोपासना से सम्बद्ध वृन्दावन के देवालयों में यह प्रक्रिया 'टहल' भी कहलाती है।

परदनी-अँगोछे या आधी धोती के माप का कटि वस्त्र।

परिचर्या-परिचर्या का लक्षण गोस्वामी वृन्दावनदास जी ने बतलाया है कि 'जिस प्रकार से दास नृपति की सेवा करता है, उस प्रकार की सेवा का नाम परिचर्या है।' नवधा भक्ति में परिचर्या को पाद सेवन कहते हैं। उपासक के हृदय में प्रेम की सहज अधीनता को उदय करना ही परिचर्या का लक्ष्य है। परिचर्या दो भावों से की जाती है- दास भाव तथा दासी भाव। अधीनता समान होते हुये भी रसिकों ने रस के अधिकार की दृष्टि से इन दोनों में भी अन्तर माना है। उज्ज्वल रस की परिचर्या में केवल दासी भाव का ही अधिकार है। दास भाव ही नहीं, सख्य एवं वत्सल भाव का भी वहाँ प्रवेश नहीं होता। परिचर्या का प्रकार बतलाते हुये राधावल्लभ सम्प्रदाय के श्रीध्रुवदास जी कहते हैं– ''उपासक को स्नानादिक से निवृत्त होकर अपने मस्तक पर तिलक धारण करना चाहिये और फिर स्त्री (दासी) के शरीर का भाव रखकर सेवा के निमित्त विविध शृंगारों को उस शरीर पर धारण करना चाहिये तभी युगल के महल की टहल (सेवा) का अधिकार प्राप्त होता है। नारी अथवा पुरुष जिसके हृदय में यह भाव स्थिर हो गया है, उनके चरणों की रज लेकर नित्यप्रति अपने मस्तक पर धारण करनी चाहिये।''

पवित्रा-शुक्ल पक्ष एकादशी को पवित्रा एकादशी का उत्सव मनाया जाता है। वल्लभ सम्प्रदाय में इस उत्सव का बहुत महत्व है। सूर निर्णय के अनुसार यह नित्य लीला और वल्लभ अवतार का उत्सव है। मान्यतानुसार श्रावण शुक्ल एकादशी को अर्द्धरात्रि में साक्षात् पुरुषोत्तम प्रभु ने प्रकट होकर गोकुल के ठकुरानी घाट पर वल्लभाचार्य जी को ब्रह्म संबंध का उपदेश दिया था। तब आचार्य जी ने नित्य लीला के सम्बन्ध में उन पुरुषोत्तम को पवित्रा धारण कराया था। यहाँ तभी से यह उत्सव सम्बन्ध वृन्दावन की रसोपासना के अन्तर्गत हरित्रयी (गो॰ हित हरिवंश, स्वामी हरिदास, संत हरिराम व्यास) में एक गो॰ हित हरिवंश महाप्रभु द्वारा प्रवर्तित राधावल्लभ संप्रदाय में भी पवित्रा शीर्षक यह पर्व उक्त तिथि पर आयोजित होता है। जिसमें रेशम के धागों से गुँथी हुयी एक माला प्रभु को अर्पित की जाती है। यह माला पटवा (रेशम के धागे से कंठहार आदि तैयार करने वाला कारीगर) द्वारा तैयार की जाती है। इस दिन ठाकुर जी को पंचामृत स्नान कराकर सुन्दर वस्त्र धारण कराये जाते हैं। रसोपासना परंपरा से जुड़े देवालयों में सायंकाल समाज में पवित्रा के पदों का गायन होता है। द्वारिकाधीश मंदिर तथा गोकुल, बरसाना, नंदगाँव, कामवन इत्यादि जगहों पर भी पवित्रा उत्सव बहुत धूमधाम से मनाया जाता है तथा जिन्हें ब्रह्म संबंध लेना होता है। वह आज ही के दिन ब्रह्म संबंध लेते हैं।

आज पहिरौ मोहन लाल पवित्रा पाट कौ... (चाचा हित वृन्दावनदास कृत पदावली)

पाग-पगड़ी को पाग कहा जाता है। इसके कई प्रकार हैं। जिनमें प्रमुख हैं- गोलपाग, कुलह पाग, छज्जेदार पाग, लटपटी पाग, खूँटदार पाग। लटपटी पाग को जहाँगीर के समय में ''डेढ़पेची पाग'' भी कहा गया है। गर्मियों के मौसम में ठाकुर जी का जो शृँगार होता है, उसमें कुलह के ऊपर पाग बाँधकर चंदन से ही सजावट बना दी जाती है। 'दुमाला खूँट का' भी पाग का ही एक प्रकार है जिसे मुख्य रूप से गोचारण करने वाले पुरुष या ग्वालबाल धारण करते थे। परमानंद कवि श्रीकृष्ण के इस स्वरूप का वर्णन करते हैं–

पियै 'बारूनी' मन संकरषन नैन रसमसे क्च कछु ढीले।
'भौंह चढी चढी' सिर पाग लटपटी वचन गंभीर अधर गीले॥

(परमानन्द सागर, परमानन्द कवि)

16वीं शताब्दी में वृन्दावन की हरित्रयी परम्परा के आचार्य सन्त हरिराम व्यास जी स्व-विग्रह को पाग धराते थे। रसिक अनन्यमाल पाण्डुलिपि में उल्लिखित है, एक बार वे अपने इष्ट-आराध्य जुगलकिशोर को पाग बाँध रहे थे, कई बार असफल होने पर जब वे उन्हें पाग न बाँध सके तो खीजकर यह कहते हुए मन्दिर से बाहर निकल आये कि 'या तो मुझसे बँधवा लो या आप ही बाँध लो।' कुछ देर बाद जब व्यास जी पुन: मन्दिर में गये तो उन्होंने देखा श्रीविग्रह के शीश पर सुन्दर जरकसी पगड़ी शोभायमान है। प्रभु की इस लीला को देख व्यास जी के आनन्द का ठिकाना न रहा। इस घटना का उल्लेख भक्तमाल के टीकाकार प्रियादास ने भक्तिरसबोधिनी ग्रन्थ में किया है–

चोरा जरकसी, सीस चिकनौ खिसिल जाय,
लेहु जू बँधाय नहिं आप बाँध लीजियै।
गये उठि कुंज, सुधि आई सुख पुंज,
आइ देख्यौ बँध्यौ मंजु, कहि केसै मोपै रीझियै॥

–भक्तिरस-बोधिनी टीका, 359

पिछवाई -पिछौरी या पिछवाई या दर एक चादर के समान होती है जिसे उपरैना भी कहा जाता है। इसे श्रीविग्रह (कृष्ण) की कटि पर बाँधा जाता है अत: दुपट्टा भी कहा जाता है। यह अधिकतर पीले रंग का होता है। इसे विग्रह के पीछे की ओर भी लगाया जाता है जो दर कहलाता है। उत्सवों के अनुरूप यह अन्य रंग जैसे होली पर गुलाबी, लाल आदि रंग के भी उपयोग में लाये जाते हैं।

पीताम्बर-श्री विग्रह (कृष्ण) के अधोवस्त्र के रूप में पीत पट का विशेष महत्व है। नटवर वंश में पीताम्बर की ही सुन्दर काछनी कही जाती है। यही पीला वस्त्र श्री विग्रह के स्वरूप को अत्यधिक सुन्दरता प्रदान करता है। इसी पीताम्बर के कारण इन्हें पीताम्बरधारी नाम भी मिला है।

पैंजनी-पद के आभूषणों के अन्तर्गत पैंजनी एक आभूषण है जो पायल के जैसी ही घुँघरूओं से युक्त होती है। स्वर्ण तथा रजत निर्मित होती है और इसमें नग, रत्न आदि जड़े रहते हैं। घुँघरू से युक्त होने के कारण मधुर ध्वनि उत्पन्न करती हैं। अष्टछाप कवि सूरदास का एक पद इस संदर्भ में उल्लिखित है।

कंचन, चुरी, किंकनी, नुपुर, पैंजनी, बिंदिया सोहति ।
अद्‌भुत धुनि उपजति इनि मिल के भ्रमि भ्रमि इत-उत जोहित ।।

— सूरदास पद सं. 1676

पैंडा-जहाँ गोस्वामिनी जी के सेवा-शृंगार भोग अथवा स्नानादि के क्रिया-कलाप चल रहे हों वहाँ जाने-देखने का निषेध 'पैंडा' शब्द से संज्ञित है।

फतवा या फतूरी-ये चोली (कब्जा) जैसी होती है जिसमें बाजू नहीं होती या कहीं आधी बाजू भी होती है। इसे बागा के ऊपर से धारण किया जाता है। मुख्यत: इसमें बाजू नहीं पायी जाती है।

फरगुल-यह शाही पोशाक है जिसे ठंड के दिनों में ऊपर से श्रीविग्रह को धारण कराया जाता है। इसका पूर्ण गोल आकार होता है। इसे प्राय: साटन के कपड़े से बनाकर उसमें रूई भरी जाती है। सर्दियों में होने वाले उत्सवों के पद गायन में चाचा वृन्दावन दास जी के पदों के अन्तर्गत इसका उल्लेख मिलता है—

केसी फबी अंग फरगुल थिरमा, जाहि अवलौकें लाल दृग न अघाई।...

(चाचा हित वृन्दावनदास कृत पदावली)

बड़ा करना-ठाकुर जी के वस्त्रों तथा शृंगार को उतारना, बढ़ाना या बड़ा करना कहलाता है।

बाघा (बागा)-बागा शब्द से अर्थ है अँगरखा या जामा, परिधान। यह राजपूती पोशाक है। यह मुगलकाल में जहाँगीर के समय की चित्रावलियों में अत्यधिक दर्शित होती है। इसमें कमर से नीचे के भाग को दामन तथा ऊपरी भाग को चोली कहा जाता है। समयानुसार चोली अनेक तरह के रंगीन वस्त्रों तथा आभूषणों से जड़ित मिलती है। इसके कई प्रकार भी होते हैं जिनमें - चौबगल बागा, घेरदार बागा, छूटेबंद कौ बागा आदि हैं। जिस बागे में कोने निकले रहते हैं उसे चाकदार बागा कहते हैं। अष्टछापी कवि सूरदास ने अपने ठाकुर के बागा का महत्व निम्नांकित पंक्तियों में प्रतिपादित किया है—

माथै चढाइ लीनौ लाल कौ 'बागा'... (सूरसागर)

बैकुण्ठ-'बैकुण्ठ' से तात्पर्य उस लोक से है जिसमें विष्णु निवास करते हैं। इसी कथन के आधार पर भगवान विष्णु को बैकुण्ठीय की संज्ञा भी प्राप्त है। इन्द्र के लोक को भी बैकुण्ठ कहा जाता है तथा सफेद पत्तों वाली तुलसी भी बैकुण्ठी है। संगीत के स्वर का नाम भी बैकुण्ठ है। वृन्दावन की मंदिर संस्कृति में बैकुण्ठ दरबज्जों का अपना महत्त्व है। यहाँ दक्षिण भारतीय शैली में निर्मित श्रीरंग मंदिर में शीतकाल के दौरान पौष माह में कुछ समय के लिये बैकुण्ठ दरवाजा खुलता है, जिसमें प्रभु के दर्शनार्थ सैकड़ों नर-नारी श्रद्धा भाव के साथ इस आशय से प्रवेश करते हैं कि उन्हें भी प्रभु की कृपा प्राप्त हो सके।

भोग-विविध खाद्य पदार्थों को सुन्दर शुद्ध रूप में श्रीविग्रह के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। वही सामग्री ठाकुर जी के द्वारा आरोगे जाने के पश्चात् भोग तथा पहले अमनियाँ कहलाती है। भोग को प्रसाद नाम से भी जाना जाता है। ब्रज में ठाकुर जी के भोग के तीन समयों का उल्लेख मिलता है जिसमें प्रथम कलेऊ या कलेवा जिसे मंगला भोग भी कहा जाता है। द्वितीय-मध्यकालीन भोजन जिसे राजभोग भी कहा जाता है तथा तृतीय- ब्यारू या ब्यारी जो रात्रि में शयन से पूर्व का भोग होता है। रात्रि में ब्यारी के पश्चात् दूध भोग के बाद शयन होने का भी विवरण मिलता है। वल्लभ संप्रदाय में ग्वाल रूप में ठाकुर जी की सेवा होती है। अत: वहाँ मध्यकालीन भोजन के पश्चात् 'छाक' जोकि तीसरे पहर किया जाने वाला भोजन है। जिसे ठाकुर जी अपने समस्त ग्वाल सखा के साथ बैठकर करते हैं। अष्टछाप के कवियों ने ब्यारू, छाक सभी के पदों का वर्णन किया है—

सखनि के मध्य छाक लेत कर छीने। - (सूर सागर) सूरदास

ब्यारू श्याम आरोगन लागे। - चतुर्भुज दास पदावली

भोग के दर्शन—उत्थापन के कुछ समय पश्चात् भोग के दर्शन खुलते हैं। इसमें ठाकुर जी का ग्रीष्म ऋतु में फूल का शृंगार भी किया जाता है। इसमें ठाकुर जी को विभिन्न व्यंजन परोसे जाते हैं। भोग के पश्चात् गोस्वामी तथा भक्तगणों को प्रसादी बाँटी जाती है। इस झाँकी के पश्चात् आरती की तैयारी होती है।

मंगला-श्री विग्रह को प्रात:काल शंखनाद करके जगाया जाता है, उसके बाद दर्शन खुलते हैं। गर्मी में सूती वस्त्रादि से शृंगार होता है तथा शीतकाल में भगवान ऊनी वस्त्र, दुशाला धारण करते हैं। इस दर्शन में भगवान को माखन-मिश्री, औटाया हुआ दूध तथा शीतकाल में गरमा-गरम हलुआ आरोगते हैं। इसके पश्चात् ठाकुरजी की आरती उतारी जाती है।

मंजरी-ब्रज की उपासना परम्परा में सखी भाव से मिलते-जुलते मंजरी भाव का उल्लेख रूप गोस्वामी जी ने उज्ज्वल नीलमणि ग्रंथ के कृष्ण वल्लभा प्रकरण में किया है। श्रीकृष्ण के प्रति ब्रज सुन्दरियों की प्रेम भक्ति को काम रूपा भक्ति कहा गया है। इसके दो भेद हैं—कान्ता भाव नायिका तथा अनुमोदनमयी कान्ता भाव नायिका। ब्रज की संपूर्ण सुन्दरियाँ कृष्ण कान्ता हैं जो चाहे कान्ताभाव नायिका हो या अनुमोदन करने वाली सखियाँ इन सखियों में कुछ समस्नेहा हैं अर्थात् जिनकी राधाकृष्ण में समान प्रीति है तथा कुछ श्रीकृष्ण स्नेहाधिक हैं और कुछ राधा स्नेहाधिक। जो राधा स्नेहाधिक सखियाँ हैं उन्हीं को मंजरी कहते हैं। मंजरियों की विशेषता यह है कि वे श्रीकृष्ण स्वप्न में भी अंग-संग स्वीकार नहीं करती हैं।

मत्सुख सुखिता-जीव जगत, भक्त जगत और प्रेम जगत इन तीनों प्रदेशों में सभी अपने ही सुख में सुखी देखे जाते हैं। माता-पिता, पुत्र-पुत्री, कान्त-कान्ता, भाई-भाई, भाई-बहन से सभी प्राणी मात्र अपना ही सुख चाहता है दूसरे

(पर) का नहीं, ये ही मत्सुख सुखी होने का लक्षण है। जीव जगत का सुख-दुख, मान-अपमान, आसक्ति-अनासक्ति, प्रतिस्पर्धा, हिंसा ये सारे द्वंद्व व्यापार स्वार्थ संज्ञक मत्सुख सुखी की ही उपज हैं।

मुकुट-श्री विग्रह के शृंगार में मुकुट का महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें मोर मुकुट 'बर्हापीड' मुख्य है। बिना मोर पंख वाले मुकुट को खूंप का मुकुट कहा जाता है। राधावल्लभ सम्प्रदाय के साधक चाचा हित वृन्दावन दास ने इसका उल्लेख स्व-काव्य में किया है—

अरी हेली! मुकुट लटक ग्रीवा ढुरैं, अरू कंचन डफ लियैं हाथ।
अरी हेली! यह छवि नैंन निहारिकें, मो मन उठि लाग्यौ साथ॥

(चाचा वृन्दावनदास औत्सविक पदावली ब्रज विनोद होरी उत्सव)

मुक्ताहार, कण्ठाहार-गुंजामाल, बैजयन्तीमाल, वनमाल आदि आभूषण विग्रह को माला के रूप में हृदय पर धारण कराये जाते हैं तथा मोतियों की माला भी धारण कराई जाती है। जो मुक्ताहार के नाम से पहचानी जाती है। कौस्तुभ मणि भी जो कि मोतियों से आवेष्टित कर श्री विग्रह के हृदय पर धारण करायी जाती है जो हार के समान ही प्रतीत होती है। मोतियों से आवेष्टित कौस्तुभ मणि कण्ठाहार जैसी भी प्रतीत होती है।

मुखिया-समाज गान के आयोजन का प्रमुख समाजी (गायक) जिसका सभी समाजी लोग अनुकरण करते हैं। मुखिया कहलाता है। निम्बार्क, राधावल्लभ, हरिदासी एवं ललित सम्प्रदायों में समाज गायन के अपने-अपने मुखिया हैं। मुखिया के सामने पदों की पोथी विद्यमान रहती है। मुखिया के द्वारा गायन की जाने वाली पंक्तियों का अनुकरण झेला एवं अन्य समाजियों के द्वारा किया जाता है।

मोरशिखा या चन्द्रिका-तुर्रे को बाँधकर उसमें भी मोरशिखा लगाई जाती है अर्थात् मोर पंख की चंद्रिका को धारण कराया जाता है। मोर चंद्रिका डाँक (जरी के बाल जैसे पतले तारों को डाँक कहते हैं) डाँकों का गुच्छा बाँधकर मूल में मोरपंख के चंद्रक की आकृति रखकर भी मोर चंद्रिका बनाई जाती है। वल्लभकुल में ठाकुरजी के इस शृंगार का उल्लेख मिलता है—

मोर चंद्रि 'काँच की मनियाँ', गुंजा फल मोहिं दैरी।

(परमानन्द सागर, परमानन्द कवि)

राजभोग-अपराह्न होने वाले दर्शनों में राजभोग दर्शन प्रमुख हैं। इसमें सखड़ी, अनसखड़ी दोनों प्रकार की सामग्री होती है। अर्थात् दाल-भात, रोटी तथा पकवान जैसे-पूड़ी, पूआ, पापड़ी दोनों ही होते हैं। ठाकुरजी के दर्शन और भोग आरोगे जाने के पश्चात् भक्तों को भोग का वितरण होता है। इस झाँकी में ठाकुर के समीप पान-बीड़ा भी रखा जाता है। इसके पश्चात् ठाकुरजी शयन करते हैं।

लूम या लटकन-लूम से अर्थ है पूँछ अर्थात् जरी या जड़ाव युक्त काम (जरी) के फुदनों का लंबा गुच्छा जो कि पगड़ी, टोपी या मुकुट में लटकता हुआ लगाया जाता है। अष्टछापी कवि सूरदास के सूरसागर से उद्धृत एक पद—

कटि किंकिनि चंद्रिका मानिक 'लटकन' लटकत भाल...(सूरसागर)

शयन-आरती के पश्चात् ठाकुरजी को हल्के वस्त्र पहनाकर शयन कराने की तैयारी के समय यह दर्शन होते हैं।

जिसमें ठाकुर जी को (अधौटा) ज्यादा उबाला हुआ दूध मलाई आदि परोसे जाते हैं। भोग उसार कर शयन करा दिया जाता है। पुनः प्रातःकाल मंगला के समय ठाकुरजी को उठाया जाता है।

शृंगार-मंगला दर्शन के पश्चात् ठाकुर जी को स्नानादि कराके वस्त्रालंकार धारण कराये जाते हैं। इन दर्शनों का कोई निश्चित समय नहीं होता क्योंकि विग्रह का हल्का शृंगार होने पर दर्शन जल्दी तथा भारी शृंगार होने पर दर्शन में विलम्ब होना स्वाभाविक है। इसमें प्रभु को सूखे मेवे का भोग रखा जाता है। वेणु धारण कराके दर्पण दिखाया जाता है। इस प्रक्रिया से शृंगार पूर्ण होता है और दर्शन खुलते हैं। इस दर्शन की प्रक्रिया को धूप आरती भी कहते हैं।

सखड़ी (सखरी)-जिस सामग्री के निर्माण में तेल या नमक का उपयोग हुआ हो, जल और अग्नि की प्रधानता हो वह सखड़ी जैसे दाल-भात, रोटी, कढ़ी, अचार साग-भाजी आदि। इसे कच्ची रसोई के नाम से भी पहचाना जाता है।

समाज-पाणिनी ने जहाँ अपनी रचना अष्टाध्यायी में समाज शब्द को वास्तविक अर्थ के अनुकूल ही रेखांकित किया है। अर्थात् जहाँ जन समुदाय एकत्रित हो वह समाज है। वहीं ब्रज की देवालयी संस्कृति में श्रीविग्रह के सन्मुख उत्सव क्रम/अष्टयाम परम्परा के अनुसार प्राचीन वाणीकारों व आचार्यों के पदों का गायन करने की परम्परा समाज कहलाती है। समाज गायन के अंतर्गत प्राचीन वर्षोत्सवों की पोथियाँ अथवा प्रकाशित वर्षोत्सवों की पुस्तक को सामने रखकर उल्लखित रागों के अनुसार पदों का गायन किया जाता है। राधावल्लभ संप्रदाय में समाज गायन की परंपरा का एक प्राचीन संदर्भ 18वीं शताब्दी की पाण्डुलिपि रसिक अनन्यमाल में मिलता है। जिसमें वर्णित है समाज के आयोजन के दौरान बादशाह अकबर के सेनापति अब्दुल रहीम खानखाना के दीवान सुंदरलाल कायस्थ ने अपने प्राण त्याग दिये थे। उस समय गाये जाने वाले पद का वर्णन भी उक्त पोथी में मिलता है। रसोपासना से सम्बद्ध देवालयों में जहाँ समाज का प्रचलन है वहीं वल्लभ कुल में कीर्तन की परम्परा है तथा कीर्तन करने वाले कीर्तनियाँ कहलाते हैं।

बनी वृषभानु नंदिनी आजु। यह पद गावत सकल समाज॥
हिय जुग ध्यान करत मुख गान। करि दंडवत तजे निज प्रान॥

(रसिक अनन्यमाल-भगवतमुदित, सूरदास परिचई)

समाजी-समाज गायन करने वाले महानुभावों का समूह।

समाधान-भोग-महाप्रसाद किसी व्यक्ति विशेष को या स्थान विशेष पर पहुँचाना।

सवादी-वृन्दावन की रसोपासना (हरित्रयी-गो॰ हित हरिवंश, स्वामी श्री हरिदास एवं संत हरिराम व्यास) की परम्परा से सम्बद्ध अनुयायी जो संप्रदाय से सम्बन्ध निकुञ्ज रस के भाव के अनुकूल भगवद् चर्चा रत रहते हैं। वर्तमान में इन्हें रसिक भी कहा गया है। वास्तव में रसोपासना से सम्बद्ध रसिक भक्तों का अपना समाज है अथवा यों कहें कि 'समाज' शब्द की एक विशिष्ट पहचान इन रसिकों की ही देन है तो गलत न होगा। 16वीं शताब्दी के बाद से पद गायन से जुड़ी 'समाज परम्परा' का विस्तार होता गया और भक्त साहित्य में रसोपासना साहित्य सृजन की समृद्ध परम्परा चल पड़ी तथा इस सद्कार्य में संलग्न महानुभावों को सवादी भी कहा गया।

सहचरी (सखी)-ब्रज की रसोपासना परम्परा में 'सहचरी' का स्थान श्री राधावल्लभ संप्रदाय में महत्वपूर्ण है। इस सम्प्रदाय में ये (सहचरियाँ) परात्पर प्रेम का एक विशेष रूप हैं और प्रेम विहार के लिये उतनी ही आवश्यक हैं जितने अन्य दो रूप श्री राधा और श्यामसुन्दर हैं। सहचरी की संख्या आठ मानी गयी है, जिनके नाम हैं— ललिता, विशाखा,

चम्पकलता, चित्रा, तुंगविद्या, रँगदेवी, इन्दुलेखा और सुदेवी। इनके अतिरिक्त वृन्दावन के खग, मृग, लता, गुल्म आदि सब सहचरी भाव धारण किये हुये, युगल की सेवा में तत्पर हैं। ये सहचरियाँ युगल की एक-एक विशिष्ट सेवा की अधिकारिणी मानी गयी हैं। ये यदा-कदा श्यामा-श्याम के साथ हास-परिहास भी कर लेती हैं। सहचरीगण प्रेरक-प्रेम की मूर्त्तियाँ हैं। भोक्ता-भोग्य की पारस्परिक अलौकिक रति ही इनके रूप में प्रत्यक्ष होती है।

साँगा माँची-चाँदी, काष्ठ, आदि का बना ठाकुरजी का लघु सिंहासन। जिस पर श्रीविग्रह को विराजित किया जाता है। जिसके आगे काष्ठ निर्मित सीढ़ीनुमा खण्ड पाट और चौकियाँ लगी रहती हैं। ये साँगा माँची कहलाती हैं। इन पर चाँदी या हाथीदाँत की चौपड़ अथवा शतरंज भी बिछी रहती है। सिंहासन, खण्डपाट तथा चौकियों पर एक जैसे वस्त्र बिछे होते हैं तथा इनके ऊपर दोनों ओर चाँदी या स्वर्ण को दो छड़ियाँ भी खड़ी की जाती हैं। बीच में स्वर्ण मंडित आरसी (दर्पण) रखा जाता है।

सुख पाल-उत्सवों के समय श्रीविग्रह को मंदिर से उत्सव दर्शन हेतु (बाहर की ओर) जगमोहन में लाया जाता है। इसके लिये डोली या पालकी में बिठाकर बाहर या अन्यत्र ले जाया जाता है, जिसे सुखपाल कहते हैं।

सूचक गान-'सूचक गान' गौड़ीय साधकों की विशिष्ट परम्परा रही है। जिसमें ये लोग आचार्यों की तिरोभाव तिथि पर इसका गान करते हैं। इस दौरान गौड़ीय साधक समूह बनाकर अपने पारम्परिक वाद्य यंत्रों के साथ आचार्यों की तिरोभाव तिथियों पर उनके जन्म से लेकर जीवनपर्यन्त के महत्वपूर्ण तथ्यों की अभिव्यक्ति काव्य के माध्यम से करते हैं। इसका प्रस्तुतिकरण प्राय: बंगला में होता है। चैतन्य संस्कृति में इसके प्रमाण लोक एवं शास्त्र दोनों रूपों में देखे जा सकते हैं। वृन्दावन शोध संस्थान में इनका खासा संग्रह पाण्डुलिपियों के रूप में विद्यमान है। सूचक गान धीयो-धीयो उत्सव के अन्तर्गत गाया जाता है। जिसमें गौड़ीय संप्रदाय के शिष्य खोल-मृदंग बजाते हुये उनकी स्मृति में सूचक गान करते हैं।

सेवकी-अन्य सेवा कार्य हेतु उपयोग में आने वाला जल। सेवा के बदले में मिलने वाला (मुद्रा रूप में) यत्किंचित पारिश्रमिक भी सेवकी कहलाता है।

सेहरा-मुख्य रूप से विवाह का मुकुट सेहरा कहलाता है। इसका दूसरा नाम 'मौर' भी है। श्रीविग्रह के विवाह प्रसंग में जब शृंगार किया जाता है तो इसे धारण कराते हैं। सेहरा धारण कराने के संदर्भ में गदाधर भट्ट जी का एक पद यहाँ उद्धृत है—

सँग सोहत वृषभानु नंदिनी ललितादिक तृन तोरें।
सीस 'सेहरौ' वन्यों री लालन के, हरखि निरखि चित्त चौरें...

(गदाधर भट्ट)

राधाबल्लभ सम्प्रदाय में श्रीजी के ब्याहुले की प्राचीन परम्परा है। ब्याहुले के अवसर पर चाचा वृन्दावनदास ने मौर धारण किये जाने की बात कही है।

मौरी-मौर उभय सिर राजैं। शोभा निरखि मदन गन लाजैं॥
रीति भाँति सब करति सयानी। अँचल छोर मुसिकानी॥

(औत्सविक पदावली, चाचा हित वृन्दावनदास खण्ड-1, नित्य निकुंज विवाह उत्सव के पद)

स्वरूप सेवा-स्वरूप सेवा से तात्पर्य श्रीविग्रह अर्थात् भगवान के स्वरूप की सेवा से है। जिसमें श्रीविग्रह की मूर्ति प्रस्तर, काष्ठ या धातु से निर्मित होती है। जिसकी दिन में पृथक-पृथक भाव से पृथक-पृथक विधानों से सेवा की जाती है। समय-समय पर उत्सवों के दौरान विग्रहों की पुष्प, गंध, भोग आदि पदार्थों से सेवा की जाती है। ब्रज में रास अथवा प्रभु की अन्य अनुकरण लीला यथा-नृसिंह, वराह, वामन आदि के पात्रों को भी स्वरूप कहे जाने की परम्परा है।

हेला-तेज आवाज के द्वारा सम्बोधित करते हुये बुलाना हेला कहा जाता है। शीतकालादि में या उत्सव विशेष पर मन्दिर के पहरेदार द्वारा मुखिया जी (प्रधान पुजारी) के आवास पर जाकर उन्हें बुलाया या हेला दिया जाता है।

[रा०श०]

मंत्र रहस्य षोडशी

मंत्र रहस्य षोडशी श्री निम्बार्काचार्य का सिद्धान्त ग्रंथ है। इसमें 'गोपाल मन्त्र राज' की व्याख्या की गई है। 'मन्त्रार्थ रहस्य' नाम से इसकी टीका आचार्य सुन्दर भट्ट ने की है। [वै०ना०झा०]

मकर संक्रान्ति

जब सूर्य मकर राशि में प्रवेश करता है तब यह त्यौहार मनाया जाता है। इस दिन से सूर्य की किरणें लम्बवत् होकर भारत भूमि पर पड़ने लगती हैं, जिससे दिन बढ़ने लगते हैं व रातें छोटी होने लगती हैं। सर्दी की ऋतु का तिल-तिल करके ह्रास होने लगता है। खेत में खड़ी फसलों में फिर से जान आ जाती है और गेहूँ, जौ, चना व सरसों की बालियों में दाने पड़ने लगते हैं। सर्वत्र चहल-पहल होने लगती है। पूरे भारत में इस अवसर पर सूर्य पूजा का विधान है लेकिन ब्रज में इस दौरान यमुना स्नान एवं खिचरी (खिचड़ी), फल एवं वस्त्र दान का विशेष माहात्म्य है। ब्रज के मंदिरों में इस दिन प्राय: खिचरी की झाँकियाँ होती हैं। जन साधारण इस दिन तिल के लड्डू और खिचरी के दान के साथ देव पूजन स्नानादि धार्मिक कृत्य करते हैं। इस पावन पर्व पर ठाकुरजी को पंच मेवा तथा खिचड़ी, तिल के लड्डू, बाजरे की टिकिया एवं अनेक प्रकार की सामग्रियों का भोग लगाया जाता है। शीतकाल के कारण भगवान को ऊनी वस्त्र धारण कराते हैं तथा चाँदी की सिगड़ी ठाकुरजी को गर्मी प्रदान करने के लिये जलाते हैं। [प्र०श०]

मत्स्यपुराण

श्रीमत्स्यपुराण 'हरिहर' का साक्षात् वाङ्मय स्वरूप है। इस पुराण में चौदह हजार श्लोक और 210 अध्याय हैं। जिनमें हरि और हर की विविध लीलाओं तथा उपासना का विस्तार से निरूपण प्राप्त है। मत्स्यपुराण स्वयं मत्स्यनारायण द्वारा वैवस्वत मनु राजा सत्यव्रत के लिए उपदिष्ट वेद तुल्य दिव्य पुराण है।

मत्स्यपुराण के आरम्भ में प्रस्तुत मंगलाचरण में भगवान से भवबाधा विनाश हेतु भगवान विष्णु से दिव्य श्रौत ज्ञान प्रदान करने की प्रार्थना की गई है। प्रथम अध्याय में मत्स्यावतार की कथा है। छ: अध्यायों में सृष्टि का वर्णन है। चार अध्यायों में सूर्यवंश और पितृवंश का उल्लेख है। सात अध्यायों में श्राद्धों का निरूपण है। बाईस अध्यायों में चंद्रवंश कहा गया है, दो अध्यायों में श्रीकृष्ण चरित्र है। तीन अध्यायों में ख्याति के पुत्रों का वर्णन है। अड़तालीस अध्यायों में व्रत, दान, ग्रह शान्ति कहे गये हैं। एक अध्याय में स्नान महिमा, तीर्थों का माहात्म्य है। दस अध्यायों में तीर्थराज प्रयाग का वर्णन है। सोलह अध्यायों में भूगोल और खगोल है। बारह अध्यायों में त्रिपुर विध्वंस निरूपित है। चार अध्यायों में युगों एवं मन्वन्तरों का कथन है। पन्द्रह अध्यायों में तारकासुर की कथा है। तीन अध्यायों में नृसिंह चरित्र है। इसके आगे यज्ञावतार का वर्णन, मार्कण्डेय कथा, कालनेमि, अंधक तथा शंकर जी की कथायें हैं। काशी माहात्म्य तथा नर्मदा माहात्म्य की चर्चा है। सात अध्यायों में सती-सावित्री की कथा है। तेरह अध्यायों में राजधर्म का निरूपण है। तत्पश्चात् अंग स्फुरण, स्वप्न, शकुन आदि के फल कहे गये हैं। तेरह अध्यायों में देव मंदिर, प्राण प्रतिष्ठा एवं कलियुग में होने वाले राजाओं का वर्णन है। सोलह अध्यायों में सोलह महादानों की चर्चा की गई है। एक अध्याय में कल्पों का कथन

है।

परम पवित्र यह मत्स्यपुराण आयु को बढ़ाने वाला है, कीर्ति का विस्तार करने वाला है। अन्त:करण को पवित्र करता है। इसमें वर्णित दान, व्रत, श्राद्ध आदि का दानचन्द्रिका, व्रतरत्न, कल्पद्रुम, हेमाद्रि पर प्रभाव स्पष्ट है। इस पुराण के प्रारम्भ में वर्णित प्रलय, नाव आदि का वर्णन बाइबिल, ओल्डटेस्टामैण्ट, कुरान आदि में भी हुआ है। [क०उ०]

मथुरा के आर्यसमाजी धार्मिक स्थल

गुरुकुल विश्वविद्यालय, वृन्दावन-स्वामी दयानन्द सरस्वती की आदर्श शिक्षा प्रणाली को व्यावहारिक जगत में, शिक्षा क्षेत्र में प्रचारित करने के लिये, स्वामी जी के उन सभी सिद्धान्तों को, जिनसे उनका आर्यसमाज मत पुष्ट होता है, वैदिक कार्य की नई परिवांछित, परिष्कृत व्याख्या उजागर होती है, इन सबको प्रसारित करने के लिये अनेक स्थानों पर गुरुकुल एवं गुरुकुल विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई। श्री दर्शनानन्द के प्रयत्नों से सिकन्दराबाद में संस्थापित गुरुकुल को फर्रुखाबाद में बनाया गया, कुछ समय बाद वहीं फर्रुखाबाद वाले गुरुकुल को विक्रम संवत् 1968 में वृन्दावन में स्थानान्तरित कर दिया गया। इस पुनीत एवं परोपकारी तथा जनहित कार्य के लिये राजा महेन्द्र प्रताप (मुरसान, हाथरस) ने अपने काफी लम्बे-चौड़े बगीचे की जमीन को आर्यसमाज संस्था के लिये प्रदान कर दिया।

इस विश्वविद्यालय में विभिन्न विषयों की शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था की गई। समय-समय पर अनेक योग्य कुलपति नियुक्त किये गये। वेद तथा आयुर्वेद के अनेक विद्वान एवं चिकित्सकों से अध्यापन की व्यवस्था कराई गई। सम्वत् 1968 से अब तक प्राचीन वैदिक शिक्षा प्रणाली एवं आर्यसमाज सम्मत सिद्धान्तों को प्रतिपादित करने वाला यह गुरुकुल विश्वविद्यालय विभिन्न जनपदों एवं राज्यों के अध्येताओं की सेवा कर रहा है। वृन्दावन में स्थित यह गुरुकुल विश्वविद्यालय आज भी अपनी प्रसिद्धि की पताका को पूरे विश्व में फहरा रहा है।

आर्यसमाज मंदिर, मथुरा-स्वामी दयानन्द सरस्वती के द्वारा ही वि.सं. 1938 में मथुरा में आर्यसमाज संस्था की विधिवत स्थापना की गई। स्थापना का शुभ मुहूर्त फाल्गुन कृष्ण पंचमी रखा गया। यह आर्यसमाज की स्थापना आर्य सम्बन्धी विचारधारा को प्रवाहित करने के लिये की गई थी। यहाँ पर इस समय आर्यसमाज की स्थापना से तात्पर्य आर्य विचारधारा को स्वीकार करने वाले सदस्यों की मण्डली से है। प्रारम्भ में आर्यसमाज सभा का अपना कोई निजी भवन नहीं था। आर्यसमाज सभा के सदस्यों के घर पर ही क्रमवार सभा होती थी। श्री दयानन्द स्वामी जी के आर्य/वैदिक विचारधारा को मूर्त रूप देने में, आर्यसमाज सभा संगठित करने में सर्वप्रथम श्री दयाशंकर दुबे तथा उनके साथीगण रहे हैं। इन्होंने 1938 फाल्गुन कृष्ण पंचमी को यह संगठन प्रारम्भ किया। श्री दयाशंकर दुबे के पश्चात् श्रीरामनारायण भटनागर, नानकचन्द तथा केशवदेव द्विवेदी के नाम प्राप्त होते हैं।

आर्यसमाज मंदिर में वि.सं. 1940 ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया को आर्यसमाज का प्रथम वार्षिकोत्सव लाल दरवाजा, वृन्दावन गेट में मनाया गया। वर्तमान काल में मथुरा नगर तथा मथुरा के लगभग प्रत्येक उपनगर में आर्यसमाज संस्था के निजी भवन हैं। सभी आर्यसमाज मन्दिरों में प्रत्येक रविवार को यज्ञ (हवन) सम्पन्न किया जाता है। मथुरा में प्रथम आर्यसमाज भवन होली गेट के समीप स्थित है। साप्ताहिक एवं मासिक वैदिक कार्यक्रम भी सम्पन्न किए जाते हैं। [गो० प्र० पा०]

मथुरा के ईसाई धार्मिक स्थल

मथुरा में ब्रिटिश शासन के दौरान यहाँ अंग्रेज़ पुलिस-प्रशासनिक अधिकारियों के साथ-साथ सैन्य अधिकारी तथा सैनिक भी परिवार सहित रहा करते थे। इस कारण उनकी नियमित प्रार्थना-पूजा के लिए गिरजाघर (चर्च) बनाये गए और उनके पादरी रख गए। इनमें ईसाई मत से सम्बन्धित त्यौहारों/पर्वों के साथ-साथ प्रार्थना भी की जाती थी।

इनमें से प्रमुख ईसाई स्थल निम्नलिखित हैं—

सेक्रेड हार्ट चर्च—यह गिरजाघर छावनी क्षेत्र में स्थित है यह ब्रिटिशकालीन है। यह गिरजाघर ब्रिटिश स्थापत्य शैली में बना है। यह चर्च कैथोलिक ईसाई सम्प्रदाय से सम्बन्धित है जो काफी बड़ा है। इस सम्प्रदाय के गिरजाघरों में प्रभु यीशुमसीह तथा माता मरियम की प्रतिमाएँ विराजमान होती हैं। इस गिरजाघर में ईसाइयों के बड़े उत्सव क्रिसमस, गुड फ्राइडे मनाये जाने के साथ प्रतिदिन की प्रार्थना, हर रविवार की सामूहिक प्रार्थना आयोजित की जाती है।

क्राइस्ट चर्च-यह गिरजाघर बसन्तर मार्ग, छावनी क्षेत्र में बना हुआ है जिसका संचालन आगरा डायोसिस द्वारा किया जा रहा है। यह गिरजाघर ब्रिटिश स्थापत्य शैली में निर्मित है। यह गिरजाघर चर्च ऑफ नॉर्थ इण्डिया (सी. एन.आई.) से सम्बन्धित है जो ईसाई मत के प्रोटेस्टेण्ट सम्प्रदाय से जुड़ा है। इसमें प्रतिमा का पूजन नहीं किया जाता है। गिरजाघर में मीनार मानव की परमात्मा से मिलन की आस की प्रतीक मानी गयी है। इस चर्च का निर्माण भी अंग्रेज सैन्य अधिकारियों और दूसरे ईसाइयों के लिए इबादत के लिए किया था। यह गिरजाघर बहुत बड़े क्षेत्र में स्थित है। इसमें एक बहुत ऊँचा घण्टाघर है।

सेण्ट्रल मैथोडिस्ट चर्च—यह गिरजाघर सदर बाजार इलाके के कृष्णापुरी तिराहे पर सड़क से काफी ऊँचाई पर स्थित है। यह आधुनिक ढंग की इमारत है, जो लाल रंग और सफेद रंग की पट्टियों से रंगी हुई है। मैथोडिस्ट ईसाई धर्म में अपनी पृथक विचारधारा रखने वाला मत है। भारत में सन् 1854 में बरेली के विलियम बटलर ने इस मत की स्थापना की थी। इस मत में किसी भी तरह के बाहरी आडम्बर को कोई स्थान नहीं है। इस मत में मूर्ति या चित्र की पूजा की नहीं की जाती। इसमें बाइबिल का पाठ तथा प्रार्थना का ही महत्त्व है। इस गिरजाघर में स्थित बाइबल रिसर्च इन्स्टीट्यूट भी है। इस गिरजाघर में क्रिसमस, गुडफ्राइडे जैसे ईसाइयों के बड़े उत्सवों एवं सामूहिक प्रार्थना का आयोजन किया जाता है।

काजीपाड़े का चर्च—यह गिरजाघर द्वारिकाधीश मन्दिर के पास स्थित मुहल्ला काजीपाड़ा में है जिसका निर्माण अंग्रेजों ने सन् 1893 में कराया था। यह गिरजाघर ईंट और चूने के गारे से बना हुआ है। इसमें काफी ऊँचा घण्टाघर बना हुआ था, जो वर्तमान में बन्द पड़ा हुआ है। [ब०सि०सि०]

मथुरा के जैन धार्मिक स्थल

जैन धर्म का मथुरा से प्राचीन एवं गहन सम्बन्ध रहा है। यहाँ ईस्वी सन् से कोई चार-पाँच शताब्दी पूर्व जैन धर्म के स्तूपों की स्थापना हुई थी। वर्तमान मथुरा संग्रहालय से पश्चिम की ओर करीब आधा मील दूर पर स्थित कंकाली टीले की भूमि पर स्तूप और दो मन्दिर या प्रासाद चिह्न प्राप्त हुए हैं। जैन शास्त्रों में मथुरा का प्राचीन एवं रोचक उल्लेख प्राप्त होता है।

श्री जम्बू स्वामी जैन चौरासी मन्दिर—यह मन्दिर बहुत विशाल हरे-भरे परिसर में मथुरा के कृष्णानगर में स्थित है जो अति प्राचीन है। यहाँ बहुत बड़ा भव्य एवं सुन्दर मन्दिर है जो शिखरयुक्त है। इसी परिसर में एक विशाल प्रतिमा विराजमान है। यह जैन मत का अतिशय सिद्ध क्षेत्र है। जम्बू स्वामी के पिता ऋषभदत्त तथा माता का नाम जिनमती (धारिणी) था। जम्बू कुमार का जन्म भगवान महावीर के निर्वाण से 16 वर्ष पूर्व हुआ था। इन्होंने सुधर्माचार्य के पास स्वयं वस्त्र उतारकर तथा पंच मुष्टि लुंचन कर वीर निर्वाण संवत् 1 में दीक्षा ली थी। उन्होंने कठोर तपस्या की, जिसके परिणामस्वरूप वीर निर्वाण संवत् 20 में केवल्य ज्ञान की प्राप्ति हुई। जम्बू स्वामी का वीर निर्वाण संवत् 64 में हुआ था।

अन्तिम केवली श्री 1008 जम्बू स्वामी का निर्वाण स्थल दिगम्बर जैन मन्दिर चौरासी है। चौथे काल के अन्त

में वीर निर्वाण सम्वत् 62 चौरासी वर्ष की आयु में चौरासी लाख योनियों से छुटकारा पाकर के अपने पाँच सौ साथी एवं विद्युत मुनि के साथ अन्तिम केवली श्री जम्बू स्वामी के मोक्ष प्राप्त होने के कारण यह स्थान 'सिद्धक्षेत्र चौरासी' कहलाया। यहाँ पर जम्बू स्वामी के अति प्राचीन चरण और अतिशय क्षेत्र युक्त श्री अजितनाथ भगवान की मूल नायक प्रतिमा और अन्य अनेक प्राचीन प्रतिमा भी विराजमान हैं।

श्री 1008 कल्पद्धम पार्श्वनाथ श्वेताम्बर जैन मन्दिर—यह अति प्राचीन मन्दिर लगभग 12 सौ वर्ष पुराना बताया जाता है जो जैन गली, घीयामण्डी मुहल्ले में स्थित है। इसका समय-समय पर जीर्णोद्धार किया जाता रहा है। मथुरा नगर में श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय का यह एकमात्र मन्दिर है। इस मन्दिर के विशाल कक्ष में मुख्य वेदी पर मूल नायक भगवान पार्श्वनाथ का ढाई फीट का श्वेत संगमरमर से निर्मित विग्रह विराजमान है। इनके एक ओर भगवान कुन्तनाथ और दूसरी ओर भगवान नेमिनाथ जी की डेढ फीट की श्वेत पाषाण की प्रतिमाएँ स्थापित हैं। हीर विजय सूरी स्वर महाराज के करकमलों से 12 मई, 1932 को इसका जीर्णोद्धार हुआ था।

श्री 1008 चन्द्रप्रभु दिगम्बर जैन मन्दिर-यह भव्य एवं सुन्दर मन्दिर जैन गली, घीया मण्डी में बना हुआ है जो सौ साल से अधिक पुराना बताया जाता है। इस मन्दिर में मुख्य वेदी पर मूल नायक भगवान चन्द्रप्रभु की ढाई फीट की श्वेत पाषाण से निर्मित प्रतिमा विराजमान है। इनके अलावा एक ओर भगवान नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, शान्तिनाथ, चन्द्रप्रभु और दूसरी ओर आदिनाथ, मुनिसुव्रत, महावीर स्वामी के श्वेत संगमरमर से बने विग्रह विराजमान हैं। इस मन्दिर में सभी चौबीस तीर्थंकरों की चौबीसी भी है। इसके साथ ही पदमावती देवी, क्षेत्रपाल की मूर्तियाँ भी हैं।

श्री 1008 भगवान आदिनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर-यह मन्दिर अति भव्य एवं सुन्दर है, जो मथुरा नगर के कृष्णानगर में बना हुआ है। इस मन्दिर की स्थापना सन् 1911 में तथा संस्था का पंजीकरण 1932 में हुआ है। वर्तमान में यह मन्दिर दूसरी मंजिल पर बना हुआ है। इस मन्दिर की मुख्य वेदी पर मूल नायक भगवान आदिनाथ की ढाई फीट का श्वेत पाषाण का विग्रह विराजमान है। इनके एक ओर में भगवान शान्तिनाथ एवं दूसरी ओर भगवान चन्द्रप्रभु की श्वेत मार्बल की प्रतिमाएँ पधारी हुई हैं। इस मन्दिर में भगवान नेमिनाथ, महावीर स्वामी, पार्श्वनाथ की धातु की प्रतिमाएँ भी स्थापित हैं। इस मन्दिर के परिसर में गुलाबी पत्थर से निर्मित मान स्तम्भ भी बना हुआ है।

श्री 1008 चन्द्रप्रभु दिगम्बर जैन मन्दिर-यह मन्दिर मथुरा के जयसिंहपुरा मुहल्ले में बिरला मन्दिर के पास गणेश टीले पर स्थित है, जो बहुत पुराना है। इसकी मुख्य वेदी पर मूल नायक भगवान चन्द्रप्रभु का डेढ फीट का श्वेत पाषाण का विग्रह विराजमान है। इसके साथ-साथ भगवान पार्श्वनाथ की श्वेत पाषाण तथा अष्टधातु से निर्मित महावीर स्वामी की प्रतिमाएँ लगी हैं।

श्री1008 पद्मप्रभु दिगम्बर जैन मन्दिर—यह मन्दिर भगवान द्वारिकाधीश के पीछे घाटी मुहल्ले में गणेश मन्दिर के पास स्थित छोटा-सा मन्दिर है।

चैत्यालय—यह चैत्यालय द्वारिकाधीश मन्दिर के सामने विजय स्टेट में दो मंजिला इमारत में स्थित है जो दिगम्बर जैन सम्प्रदाय का है। [ब०सि०सि०]

मथुरा के मुस्लिम धार्मिक स्थल

शाही ईदगाह मस्जिद—इस शहर की यह प्राचीन, ऐतिहासिक एवं बड़ी मस्जिद है जिसका निर्माण सन् 1670 में तत्कालीन मुगल बादशाह औरंगजेब द्वारा केशवराय मन्दिर को नष्ट करके कराया था। यह मस्जिद कृष्ण जन्मस्थान के समीप, डीग गेट पर स्थित है। यह मस्जिद जमीन से 15 फीट से अधिक ऊँचे स्थान पर बनी हुई है। इस भव्य मस्जिद में तीन बड़े गुम्बद हैं जो हरे रंग से पुते हुए हैं। इस मस्जिद में चार बड़ी और दो छोटी मीनारें हैं।

वजू के लिए बहुत बड़ा हौज है। इस मस्जिद में पाँच वक्त की नमाज पढ़ी जाती है।

जामा मस्जिद—यह इस शहर की प्रमुख प्राचीन तथा ऐतिहासिक मस्जिद चौक बाजार में स्थित है, जो बहुत भव्य और सुन्दर है। इस मस्जिद का निर्माण मुगल बादशाह औरंगजेब के मथुरा में स्थित फौजदार अब्दुलनवी ने हिजरी 1071 यानी सन् 1661 में कराया था। इस मस्जिद में तीन गुम्बद हैं। इनमें बीच का गुम्बद बड़ा है। इन सभी गुम्बदों में पीले रंग की सुर्री लगी हुई है। इस मस्जिद में राजस्थानी स्थापत्य शैली में निर्मित दो छतरियाँ और दो बरामदे भी बने हुए हैं। मस्जिद की मुख्य इमारत के सामने बीच में वजू के लिए हौज है जिसमें जल भरा रहता है। इस मस्जिद परिसर में अब्दुलनवी लाइब्रेरी तथा एक मदरसा 'तालीम-ए-कुरान' के नाम का संचालित किया जा रहा है।

पठानी मस्जिद—यह मस्जिद चरखा मैदान, मटिया गेट, धूलियागंज में स्थित है जो लगभग सौ वर्ष से अधिक पुरानी है। यह मस्जिद अधिक बड़ी नहीं है, इसमें इस मुहल्ले के लोग ही नमाज पढ़ते हैं।

अंसारजन मस्जिद—यह मस्जिद भार्गव गली में है जो सौ साल से कम पुरानी है। इस मस्जिद के स्थान पर पहले टीला था। इस मस्जिद की दो मीनारें हैं। इसका जीर्णोद्धार समय-समय पर होता रहा है।

अमीर हमजा मस्जिद—यह छोटी-सी मस्जिद मालीपाड़ा, पथवारी मन्दिर के पास, धौली प्याऊ मुहल्ले में है। यह मस्जिद सौ वर्ष से कम पुरानी है। इस इमारत में नीचे मस्जिद और ऊपर मदरसा है।

शहर काजी की मस्जिद—यह छोटी-सी मस्जिद द्वारिकाधीश मन्दिर के निकट स्थित मुहल्ले काजीपाड़ा में अवस्थित है, जो तीन मंजिली इमारत में तीसरी मंजिल पर है। इस मस्जिद का निर्माण शहर काजी ने कराया था, इसलिए इसका नामकरण 'शहर काजी' किया गया। इस मस्जिद में दो छोटी बुर्ज तथा मीनार भी है।

मस्जिद मीरगंज—यह छोटी-सी मस्जिद मीरगंज, होली वाली गली, मथुरा में स्थित है। इसकी वक्फ संख्या-66 है। यह मस्जिद सौ साल पुरानी बतायी जाती है। यह दो मंजिला इमारत में बनी हुई है। इस मस्जिद में तीन गुम्बद हैं।

धोबियान मस्जिद-यह मस्जिद पीर पंच गली में स्थित है जो दुमंजिली है। यह मस्जिद मुगलकालीन बतायी जाती है। इस मस्जिद का निर्माण धोबी समुदाय द्वारा कराया गया है, इसलिए इसे 'धोबियान मस्जिद' कहा जाता है। इसमें चार बड़ी चौड़ी बुर्जियाँ बनी हुई हैं। इसमें चार मीनारें हैं। इसका समय-समय पर जीर्णोद्धार होता रहा है। यह मस्जिद छत्ता बाजार के मुख्य मार्ग पर स्थित है। यह मुगलकालीन बतायी जाती है।

काजीयान मस्जिद—यह मस्जिद करीब सौ साल पुरानी है, जो भूतेश्वर तिराहे पर बनी हुई है। इसमें एक गुम्बद तथा एक मीनार भी है। इस मस्जिद से लगी दरगाह बाबा कबीरउद्दीन शाह की है।

अड्डे वाली मस्जिद—यह मस्जिद सदर बाजार में बनी हुई है, जो दो सौ साल पुरानी बतायी जाती है। इसमें एक गुम्बद और दो मीनारें बनी हुई हैं।

पट्टन पहलवान मस्जिद—यह मस्जिद अग्रसेन चौक, मसानी पर स्थित है जो चार सौ साल पुरानी है। लेकिन इस मस्जिद का नामकरण जिन पट्टन पहलवान के नाम पर हुआ है, उनका इन्तकाल कोई 60 साल पहले हुआ था। इस मस्जिद में तीन गुम्बद हैं जिनमें बीच का गुम्बद इधर-उधर के गुम्बदों से बड़ा है। इस मस्जिद से जुड़ा अखाड़ा तथा बड़ा ताकिया भी है।

जयसिंहपुरा मस्जिद—यह मस्जिद मथुरा के जयसिंहपुरा मुहल्ले में स्थित है, जो काफी पुरानी बतायी जाती है। इसमें एक लम्बी मीनार है। इसमें 50 से 60 लोग एक साथ नमाज पढ़ सकते हैं। [ब०सि०सि०]

मथुरा के हिन्दू धार्मिक स्थल

अन्नपूर्णा मंदिर—प्राचीनकाल से ही ब्रज में शक्ति की उपासना की परंपरा रही है। ब्रज में शाक्त मत का भी प्रचार रहा है और देवी के विभिन्न रूपों की पूजा मथुरा और उसके आसपास विद्यमान थी। शाक्त मत के काल में

शक्ति स्वरूपा माँ अन्नपूर्णा देवी के पूजन का महत्त्व ब्रज की अन्य देवियों की पूजा के साथ बताया गया है। माता अन्नपूर्णा को शाकुंभरी, कल्याणी, उमा इत्यादि रूपों में अभिव्यक्त किया है।

अन्नपूर्णा देवी का प्राचीन मंदिर विख्यात विश्रामघाट और मथुरा नगर के हृदयस्थल होलीगेट के मध्य छत्ता बाजार में स्थित है। सन् 1901 में खत्री समाज की प्रतिष्ठित एवं धर्मानुरागी महिला भक्त श्रीमती सुभद्रा देवी द्वारा अपनी समस्त संपत्ति को देवार्थ अर्पित करते हुए माँ अन्नपूर्णा महारानी के अत्यंत कलात्मक मंदिर की स्थापना की गई। इस मंदिर में माँ अन्नपूर्णा महारानी का अत्यंत चमत्कारिक एवं देदीप्यमान विग्रह स्थापित है। मंदिर का संचालन खत्री सभा के निर्वाचित ट्रस्ट द्वारा किया जाता है। मंदिर में माँ अन्नपूर्णा देवी की नित्य राजभोग सेवा-पूजा के अतिरिक्त शारदीय एवं वासंतिक नवरात्रि में विशेष शृंगार एवं स्थापना दिवस पर भव्य छप्पन भोग का आयोजन किया जाता है। मंदिर प्रांगण में शिव परिवार एवं हनुमान जी के विग्रह भी स्थापित हैं।

कंकाली देवी—मथुरा का यह शाक्त मंदिर अत्यंत प्राचीन धर्मस्थल है। मथुरा में यह भूतेश्वर तिराहे से जंक्शन मार्ग पर पड़ता है। यह मंदिर यहाँ एक टीले पर है जिसे 'कंकाली टीला' कहते हैं। ब्रज में टीले बहुतायत में हैं जो पुरातात्त्विक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। पुरातत्त्व विभाग द्वारा की गई खुदाई में कंकाली टीले से विक्रम पूर्व तीसरी शती से लेकर पाँचवीं शताब्दी तक की 1500 जैन मूर्तियाँ, 100 शिलालेख और मंदिर-देवालयों के बहुसंख्यक कला अवशेष प्राप्त हुए थे जो यहाँ की गौरवमयी धार्मिक समृद्धि का द्योतक है।

पुरातनकाल में यह स्थान जैन धर्म का प्रमुख केंद्र रहा है। यहाँ देवनिर्मित स्तूप और 'नरवाहना कुबेरा देवी' का मंदिर जैसे प्राचीन देव स्थानों के अतिरिक्त जैन धर्म के अनेक स्तूप, मंदिर, मठ और देवालय थे। हूणों के आक्रमण काल में इस धार्मिक स्थल को महान क्षति पहुँची थी। इसके बाद इस प्राचीन स्थल का भी महत्त्व कम हो गया। कालांतर में यह स्थान बौद्ध धर्म का भी केंद्र रहा। उस समय यहाँ कंकाली टीले सहित कई स्थानों पर बौद्ध-विहार थे। कुषाणकाल में और उसके बाद मथुरा राज्य में बनी देवियों की बहुसंख्यक पाषाण-प्रतिमाएँ यहाँ से प्राप्त हुई हैं। इनसे ज्ञात होता है कि उस काल में यहाँ शाक्त मत का अधिक दबदबा रहा था। उस समय अंबिका, चामुंडा, कंकाली, महाविद्या, महिष-मर्दिनी, दुर्गा आदि देवियों की उपासना यहाँ प्रचलित थी।

उसी काल में भगवती एकानंशा के रूप में यहाँ योगमाया की पूजा की जाती थी। जो कृष्ण-बलराम की भगिनी थी। श्रीकृष्ण के पालक माता-पिता नंद-यशोदा की उस पुत्री का नाम 'एकानंशा' था, जिसे जन्म लेते ही वसुदेव अपने नवजात पुत्र कृष्ण के बदले में गोकुल से मथुरा ले आये थे। कंस को उसके जन्म के बारे में पता चलने पर और उसको कंस के माँगने पर उन्होंने उसे सौंप दिया था। श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार यह कन्या ही योगमाया थी जो कंस के द्वारा एक शिला पर पटक कर मारे जाने से पूर्व उसके हाथ से छूटकर आकाश में चली गई। उसने ही जाते-जाते कंस को श्रीकृष्ण के अवतार ले लेने की सूचना भी दी थी। कंस के हाथ से छूटकर वह देवी आकाश मार्ग से विंध्याचल पर्वत पर निवास करने लगी। उसी देवी योगमाया की पूजा मथुरा के कंकाली मंदिर में की जाती है। कंकाली देवी को तभी से 'कंस-काली' नाम से भी जाना जाता रहा है। कालांतर में बोलते-बोलते केवल 'कंकाली' नाम से जानी जाती रहीं। इस समय यहाँ देवी का एक छोटा सा मंदिर है। जिसमें देवी की लघु प्रतिमा प्रतिष्ठित है। मूर्ति सिंदूर से आवेष्ठित है। इसी के नाम पर इस टीले को भी कंकाली टीला कहा जाता है। नवरात्रों में यहाँ भारी भीड़ होती है।

'एकानंशा' देवी का उल्लेख महाभारत, हरिवंशपुराण, वृहत्संहिता और विष्णुधर्मोत्तर पुराण में मिलता है। एकानंशा श्रीकृष्ण की रक्षिका थी और धातृमाता-पिता की पुत्री होने के कारण उनकी बड़ी बहिन थी। इस नाते लोक तथा मथुरामंडल में यह देवी के रूप में पूजित हुई। मथुरा के राजकीय संग्रहालय में एकानंशा देवी की कई खंडित मूर्तियाँ विद्यमान हैं जो कुषाणकाल की हैं। प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता एवं मथुरा संग्रहालय के पूर्व निदेशक डॉ. नीलकंठ पुरुषोत्तम

जोशी ने 'एकानंशा' के स्वरूप एवं उसकी उपलब्ध प्रतिमाओं पर प्रकाश डालते हुए लिखा है ''देवी एकानंशा की उपासना सौम्य और उग्र दोनों रूपों में होती थी जिसके कारण उसके अनेक नाम जैसे आर्या, दुर्गा, ब्रह्मचारिणी, विंध्यवासिनी, भद्रकाली, सुरा, सहस्रनयना और किराती आदि मिलते हैं। उसकी उपलब्ध मूर्तियों में उसका सौम्य रूप ही दिखाई देता है। इनमें देवी जी की आकृति अभय मुद्रा में है जिसके एक ओर वासुदेव (श्रीकृष्ण) और दूसरी ओर बलराम हैं किन्तु गुप्तकाल के बाद वह धीरे-धीरे लुप्त हो गईं। एकानंशा सौम्य रूप में ब्रजक्षेत्र में वैष्णव भक्तों में तथा उग्ररूप में विंध्यवासिनी दुर्गा, भद्रकाली आदि नामों से शाक्तों में मान्य हुई।

एक बार कंकाली टीला की खुदाई करते समय मजदूरों को 'बंद करो, बंद करो' की आवाज सुनाई दी। उन्होंने इसकी जानकारी स्वामी पं. तुलाराम को जाकर दी परंतु उन्होंने इसकी खुदाई बंद नहीं करवाई। बताया जाता है कि खुदाई के पाँचवें दिन पं. तुलाराम की अनायास ही मृत्यु हो गई। इस घटना के बाद इसकी खुदाई का साहस कोई नहीं कर सका। पं. तुलाराम ने यह जमीन सेठ लक्ष्मणदास से खरीदी थी। कहते हैं कि उन्होंने भी यहाँ कई बार मंदिर बनवाने का प्रयास किया परंतु वे भी नहीं बनवा सके। इस मंदिर की देवी की प्रतिमा का सिंदूर बहुत पुराना हो गया था। एक बार जब इस प्रतिमा ने सिंदूर (चोला) छोड़ा तो उसमें देवी की तीन मूर्तियाँ और निकली थीं। वस्तुतः यह स्थान सिद्धभूमि है। माँ के अनेकों चमत्कार सुनने को मिलते हैं। यह देवी के भक्तों की परम आस्था का प्राचीनतम केंद्र है।

कालभैरव मंदिर-मथुरा में गऊघाट मौहल्ला पार करने के बाद जैसे ही यमुना के घाट पर पहुँचते हैं, वहीं घाट के बायीं ओर सोमनाथ महादेव का प्रसिद्ध मंदिर है तथा दाहिनी ओर को एक छोटे से कक्ष में कालभैरव का मंदिर अवस्थित है। भैरवजी का यह मंदिर बहुत पुराना नहीं है। इसकी स्थापना सन् 2002 ई. में पं. रामेश्वरप्रसाद शर्मा ने कराई है। मंदिर में स्थापित कालभैरव की मूर्ति पाषाण की बनी हुई है।

मंदिर में भगवान भैरवनाथ अपनी सवारी श्वान पर विराजमान हैं। मूर्ति के चार हाथ हैं। दाएँ हाथ में त्रिशूल और उसी के ऊपर वाला हाथ 'अभयमुद्रा' में है। इसी प्रकार बायीं ओर के ऊपर वाले हाथ में 'मुद्गर' लिए हुए है तथा नीचे वाले हाथ में ब्रह्माजी का सिर लिये हुए हैं।

भैंरोंजी पर जो चोला चढ़ाया जाता है वह गोले के तेल से पारा हुआ काजल में चमेली के तेल व इत्र मिलकार मंत्रों द्वारा सिद्ध कर शृंगार किया जाता है। इसके बाद हवन आदि भी किया जाता है। भक्त की कामना के अनुकूल मंत्रों और हवन सामग्री से हवन करना होता है। इस हवन से नवग्रह-शांति, आधि-व्याधि नष्ट होते हैं। भैरवजी की विशेष पूजा रविवार और बुधवार को होती है। मार्गशीर्ष कृष्णाष्टमी को 'भैरव अष्टमी' के नाम से जाना जाता है। जहाँ यह मंदिर बना है वहाँ नीचे पहले एक गुफा थी जिसे पंडावाली गुफा कहा जाता था।

काली मंदिर-पुण्य सलिला यमुना की तटवर्तिनी मथुरापुरी सप्तपुरियों में श्रेष्ठ है। कृष्ण भक्ति के साथ ही शैव एवं शाक्त उपासकों की भी प्रिय भूमि है। संवत् 2015 में मथुरा नगर में विद्युत आपूर्ति करने वाली प्राईवेट कंपनी के निदेशक कलकत्ता निवासी श्री कालीचरन भगत जी ने जो स्वयं माता काली के परम भक्त थे। अतः धर्म के प्रति आस्थावान भगत जी ने अपने प्रिय मित्र श्री गणेश प्रसाद जी चतुर्वेदी और श्री नरेन्द्र मित्र से परामर्श कर मंदिर स्थापना का भार अपने तीर्थगुरु श्री मुकुंदराम जी को सौंप दिया।

इस पुनीत कार्य का शुभारंभ महाशिवरात्रि के पावन पर्व पर 6 × 6 फीट की कच्ची जगह पर माँ भगवती की छवि स्थापित करके पूजा-अर्चना का कार्य प्रारंभ कर दिया गया और अतिशीघ्र ही आगामी शिवरात्रि के दिन विद्वान याज्ञिक आचार्य श्री कन्हैयालाल जी चतुर्वेदी के निर्देशन में शास्त्रोक्त एवं वेदोक्त रीति से अपने गुरु श्री जी पीठ के पीठाधीश्वर द्वारा कसौटी पाषाण पर जयपुर के कुशल कारीगरों द्वारा निर्मित चमत्कारिक माँ भगवती काली जी की प्रतिमा प्रतिस्थापित की गई। वृहद नवरात्रि महोत्सव प्रतिवर्ष चैत्र मास शुक्ल पक्ष प्रतिपदा से प्रारंभ होकर रामनवमी तक चलता है।

सन् 1975 तक मंदिर की पूर्ण व्यवस्था सेठ कालीचरन द्वारा होती रही। इसके बाद श्री महंत मुकुंदराय जी चतुर्वेदी एवं उनके बाद वर्तमान में उनके छोटे पुत्र पं. दिनेश चतुर्वेदी सेवायत हैं। मंदिर के पार्श्व में रमणीक वाटिका यज्ञस्थल निर्मित है। यहाँ नित्यप्रति साधु-संन्यासियों को अन्नदान भी दिया जाता है। प्रांगण में सुंदर प्याऊ की भी व्यवस्था है। मंदिर प्रांगण में शिव परिवार, भैरों, गिरिराज जी, हनुमान जी, महाविद्या की प्रतिमाएँ भी आकर्षक रूप में प्रतिष्ठित हैं।

किशोरीरमण मंदिर—यह मंदिर मथुरा नगर के लाल दरवाजा मोहल्ले में स्थित है। इस मंदिर की स्थापना आज से 135 वर्ष पूर्व भृगुकुल-भूषण स्व. श्री किशोरीलाल भार्गव द्वारा दिनांक 29 जनवरी 1879 तद्नुसार माघ शुक्ला दौज विक्रम संवत् 1835 को एक लाख रुपये की धनराशि भेंट कर की थी। इस मंदिर की व्यवस्थाओं के संचालन हेतु चार प्रतिष्ठित वैष्णव-श्री मक्खन लाल जी भार्गव, श्री गिरधारी लाल जी, आगरा, चौधरी श्री राधाकिशन जी, मथुरा एवं चौबे श्री गोपाल जी, मथुरा की कमेटी की स्थापना की।

श्री किशोरीलाल जी भार्गव माध्व गौड़ीय सम्प्रदाय के अनुयायी थे। उन्होंने वृन्दावन स्थित ठा. श्रीराधारमण जी महाराज के गोस्वामी परिवार के स्व. श्री राधारमण दास गोस्वामी से कंठी प्राप्त की थी। इस कारण मंदिर की सेवा-पूजा एवं भोगराग की पद्धति माध्वगौड़ीय सम्प्रदाय के अनुसार है। यहाँ पर प्रात:काल मंगला शृंगार एवं राजभोग तथा सायं उत्थापन, संध्या आरती एवं शयन आरती होती है।

यह मंदिर मुख्य बाजार की सड़क से तीन-चार सीढ़ी ऊपर चढ़कर स्थित है। सीढ़ी चढ़ने के उपरान्त दोनों ओर चौखण्डी है, फिर मुख्य चौखट है। उसके आगे आठ सीढ़ी चढ़कर आयताकार आँगन है। सामने जगमोहन है। जगमोहन के मध्य ठाकुर जी का निज मंदिर है। निज मंदिर के अन्दर चाँदी के सिंहासन पर ठाकुर जी का युगल विग्रह (राधाकृष्ण विग्रह) विराजमान है। ठाकुर जी के हाथ में चाँदी की बाँसुरी सुशोभित है। ठाकुर जी का शृंगार रत्न जड़ित हार, हमेल, गलनार आदि के द्वारा किया गया है। जगमोहन से नीचे आँगन में ठाकुर जी की विभिन्न लीलाओं का चित्रण किया गया है। आँगन में बायीं ओर हनुमान जी एवं मध्य में शिव परिवार विराजमान हैं।

मंदिर की सेवा-पूजा की व्यवस्था चौबे श्री गोपाल जी द्वारा की जाती है। मंदिर में वर्षभर में विभिन्न उत्सवों का आयोजन होता है जैसे कि अन्नकूट, शरद पूर्णिमा, दीपावली आदि। ठाकुर जी की सेवा-पूजा ऋतु अनुसार की जाती है। इस मंदिर के सर्वप्रथम सेवक श्री राधारमण दास जी थे। सन् 1936 में उनके पश्चात् उनके पुत्र श्री लाड़िलीशरण जी नियुक्त हुए। विगत चार वर्षों से पं. रामपाल जी इस मंदिर की सेवा कर रहे हैं।

कैला देवी मंदिर—मथुरा नगर का प्राचीन श्री कैलादेवी मंदिर स्थानीय 'भैंस-बहोरा' नामक स्थान पर जो नई कोतवाली के पीछे स्थित है, करीब 500 वर्ष पूर्व में बना था। इसके दो द्वार हैं। वस्तुत: यह कैलादेवी की पथवारी है। देवी दुर्गा के भक्त लोग जब राजस्थान के करौली क्षेत्र में स्थित श्री कैला माँ के दर्शन के लिए जाते हैं तो सर्वप्रथम भैंस-बहोरा में विराजमान माँ कैला के दर्शन अवश्य करते हैं। यह कैला देवी मंदिर छोटा, आयताकार और उत्तरमुखी है।

कृष्ण कुंड शक्तिपीठ—मथुरा यमुनापार स्थित ग्राम लोहवन का शक्तिपीठ भक्तों की मनोकामनाएँ पूर्ण करने के कारण आसपास के क्षेत्रों में काफी श्रद्धा के साथ मान्यता प्राप्त है। 6 मार्च सन् 2006, रविवार को लोहवन के कृष्ण कुंड के निकट एक प्रतिमा के रूप में माँ शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ। इन्हें कृष्ण कुंड वाली माता के रूप में जाना जाता है। स्थानीय लोगों में मान्यता है कि यह मूर्ति महाभारत कालीन है। इसके साथ ही इस मूर्ति की यह विशेषता है कि प्रात: मूर्ति का रंग श्वेत, अपराह्न काल में रक्तवर्ण तथा सायंकाल श्यामवर्ण हो जाती है। यह विश्व में अपने तरह की अनोखी प्रतिमा है। कहते हैं एक बार माँ ने अपना मंदिर निर्माण कराने के लिए ग्रामवासियों को स्वप्न दिया कि पं. रमेशचंद्र शर्मा को आर्थिक मदद करें, जो मेरा भवन निर्मित करायेंगे। इस मंदिर का मानचित्र भी वैसा ही अष्टकोणीय

है, जैसा माँ ने स्वप्न में पं. रमेशचंद्र को प्रेरित किया। माँ के प्राकट्य के डेढ़ वर्ष बाद ही इस मंदिर का निर्माणकार्य प्रारंभ हो गया था। मूर्ति स्थापना के समय ही एक दिव्य ज्योति को माँ में समाविष्ट होते सभी ने देखा। माँ के मंदिर के निर्माण के बाद निकट ही स्थित प्राचीन श्रीकृष्ण भगवान के मंदिर को भी पं. रमेशचंद्र शर्मा को भगवान श्रीकृष्ण द्वारा दिए स्वप्न और क्षेत्रीय लोगों की आर्थिक मदद से मंदिर का जीर्णोद्धार कराया गया। माँ और उनके शक्तिपीठ की यहाँ विशेष मान्यता है। लोगों की मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं और लोग भंडारे-प्रसादी के रूप में माँ के प्रति कृतज्ञता सेवित करते हैं।

गणेश मंदिर (गणेश टीला)—मथुरा-वृंदावन मार्ग पर जयसिंहपुरा नामक स्थान है। यहीं चंद्रप्रभु मंदिर के सामने गली में गणेश टीला काफी ऊँचाई पर स्थित है। मंदिर तक पहुँचने के लिए लगभग 20-25 सीढ़ियां हैं। ऊपर भी चारों ओर से मंदिर के बाहर वृहद परिक्रमा है और पक्की चहारदीवारी है। यह मंदिर अत्यंत प्राचीन है जो मराठा सल्तनत से संबंधित है।

यहाँ के वर्तमान सेवायत पं. देवकीनंदन चतुर्वेदी जी ने बतलाया कि यह मंदिर श्री वाजीराव पेशवा मराठा राजा ने बनवाया था। उस समय मथुरा में मराठा राज था। कालांतर में इस मंदिर के निर्माण में छत्रपति शिवाजी का महान योगदान रहा। राजा जयसिंह की एक संधि के तहत जब शिवाजी आगरा औरंगजेब से मिलने गये तो वहाँ उनका यथोचित स्वागत-सत्कार नहीं किया गया। उस अपमान से शिवाजी कुपित हुए। वह अपने ठहरने के स्थान पर चले गये जहाँ उन्हें आगरा में कड़े पहरे में रहना पड़ा। जयपुर राज्य के तत्कालीन अभिलेखों से ज्ञात होता है कि शिवाजी ने उस काल के भ्रष्ट शासनाधिकारियों को घूँस देकर अपने जाने का मुहरबंद जाली फरमान तैयार कराया। उस फरमान के द्वारा शिवाजी अपने पुत्र के सहित निकलने में सफल हुए। कई लेखकों के अनुसार वे तीर्थयात्रियों का वेश बनाकर मथुरा और प्रयाग होते हुए अपने राज्य पहुँच गये। उसी समय शिवाजी एक रात्रि यहाँ गणेश टीला स्थित गणेश मंदिर में भी रुके थे।

गणेश जी पर यहाँ प्रतिदिन चोला चढ़ाया जाता है। जनश्रुति के अनुसार अमृतसर के एक प्रसिद्ध वैद्य श्री विनायक दत्त शर्मा को गणेश जी ने स्वप्न में दर्शन दिया कि मेरे ऊपर सिंदूर चढ़ते-चढ़ते काफी कड़ा हो गया है जिसकी वजह से मुझे शुद्ध वायु प्राप्त नहीं हो पाती है। इसे तुम जाकर हटवाओ। वैद्य जी तत्काल गणेश टीला पर पहुँच गये। उस समय यहाँ के मंदिर के महंत बाबा रामचंद्र महाराज थे। वैद्य जी ने इन्हें सारा वृत्तांत सुनाया। अगले दिन 8 मार्च 1971 के दिन गणेश जी की विशेष पूजा-अर्चना की गई जिसके पश्चात गणेश जी ने अपना चोला उनके हाथों पर छोड़ दिया, वह चोला मंदिर में अभी भी दर्शनीय है।

पं. देवकीनंदन चतुर्वेदी के अनुसार यहाँ सेवा विष्णुस्वामी संप्रदाय के अनुसार की जाती है। जो भक्त यहाँ आते हैं उनकी समस्त कामनाएँ पूर्ण होती हैं। मंदिर में गणेश जी की चतुर्भुजी मूर्ति है। ऊपर के दोनों हाथ में कमल और फरसा लिये हुए हैं। नीचे दोनों पत्नियाँ रिद्धि-सिद्धि विराजमान हैं जिन पर वरदहस्त विद्यमान हैं। पार्श्व में भगवान सूर्य, गंधर्व, किन्नर, माता-पिता (शंकर-पार्वती), लक्ष्मी जी, सरस्वती जी, शार्दूल व मूषक बैठे हैं। ये सब कमल पर पद्मासीन मुद्रा में पूर्वाभिमुख होकर विराजमान हैं। गणेशजी की मूर्ति एकदंत, त्रिनेत्र, मस्तक पर अर्द्ध चंद्रमा दक्षिणावर्त, रक्त वर्ण सुशोभित है। यह स्थान दर्शनीय और शांत वातावरण में स्थित है।

गताश्रम नारायण मंदिर—गताश्रम नारायण मंदिर श्री सम्प्रदाय की परम्परा में आता है। इस मंदिर की प्राचीनता असंदिग्ध है। महाभारत में पितामह भीष्म ने श्री गताश्रम नारायण के बारे में कहा है—"एष नारायण: साक्षात् क्षीरार्णव निकेतन:। नागपर्यंक मुत्सृज्य हयागुतो मथुरा पुरीम।।" अर्थात् ये देव कोई और नहीं क्षीर सिंधुवासी (हरि) ही हैं, जो अपनी नाग शैय्या त्यागकर मथुरा आ गये हैं। वाराह पुराण में कहा गया है—"सर्व तीर्थेषु य: स्नातो सर्वक्षेत्रेषु यत्फलम्। तत्फलं लभते देवि द्वष्दप्या देवं गतश्रमम् कृत्वा प्रदक्षिणार्थं तु ब्रह्मलोक स गच्छति।।" अर्थात् हे देवि!

जिसने गतश्रम के दर्शन कर लिए उसको सभी तीर्थों में स्नान का लाभ विश्रांत तीर्थ में स्नान करने पर मिल जाता है और वह ब्रह्मलोक में प्रवेश प्राप्त कर लेता है। एक अन्य स्थान पर वाराह पुराण में वर्णित है—''वंदे गताश्रमं देवं श्री भूलीलासमन्वितम्। भक्त श्रमापनोदाय आगतो मथुरां पुरीम्।।'' अर्थात् हम भगवान गतश्रम की वंदना करते हैं जो श्री, भू एवं लीला देवियों से समन्वित हैं जिनका भक्तों के श्रम निवारणार्थ आगमन हुआ है।

सन् 1720 में रामानुज सम्प्रदाय के आचार्य श्री प्राणनाथ जी शास्त्री मथुरा पधारे। वे बड़े उद्भट वैष्णव विद्वान थे। इस मंदिर की जीर्ण-शीर्ण अवस्था देखकर उन्होंने सिंधिया शासकों से कहकर पच्चीस हजार रुपये व्यय कर इस मंदिर का जीर्णोद्धार कराया। सिंधिया शासकों ने इस मंदिर की व्यवस्था हेतु कई गाँव भी भेंट किए। इन्हीं शास्त्री जी के वंशज श्री रामानुजाचार्य ने आज से 15-16 वर्ष पूर्व मंदिर पर सुन्दर शिखर बनवाया था। गताश्रम मंदिर में 'तुलसी अर्चना' एवं 'षटकोण-सेवा' की विशेष पूजा की जाती है। अक्षय तृतीया पर मंदिर में विशेष दर्शनों का आयोजन होता है।

सन् 1890 में मंदिर के सेवायत श्री हरिप्रसाद जी थे। वे बड़ी ही निष्ठा, भक्ति एवं प्रेम से सेवा-पूजा करते थे। इसी समय मंदिर के अर्चक पं. जनार्दन जी थे। वे संस्कृत के विद्वान एवं ब्रजभाषा के उत्कृष्ट कवि थे। उन्होंने 'जनार्दन विनोद' नामक पुस्तक की रचना की थी। इस पुस्तक में कवि ने अपने आराध्य श्रीगताश्रम नारायण की विभिन्न झाँकियों का वर्णन किया है।

गर्तेश्वर महादेव मंदिर—वैदिक काल से ही मथुरापुरी और भगवान गर्तेश्वर महादेव का वृत्तांत हमको प्राप्त होना प्रारंभ हो जाता है। वायु पुराण में भी 'गर्तेश्वर भूतेश्वर द्वय कोटि तु वसुंधरे' का वर्णन आया है। भगवान गर्तेश्वर महादेव के इतिहास का वर्णन है कि 'गर्त्तेश्वर विलोकेन रोग मुक्तौ न संशय' अर्थात् भगवान गर्त्तेश्वर के दर्शन मात्र से ही रोगों से मुक्ति मिल जाती है। प्राचीनकाल से ही मथुरा शैव दर्शन का गढ़ रहा है। इस स्थान को परम शिव का स्थान बताया गया है। सबसे बड़ा आकर्षण यहाँ यह है कि भगवती महाशक्ति भगवान शंकर के दक्षिणांग में विराजमान है। ऐसा अद्वितीय संयोग विश्व भर में कहीं और नहीं पाया जाता है।

मंदिर सेवायत श्री बालकृष्ण जी शर्मा द्वारा अपने साक्षात्कार में वर्णन किया कि उपरोक्त वृत्तांत के अतिरिक्त श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध के 34वें अध्याय में वर्णन है कि श्रीकृष्ण-बलराम नंदबाबा सहित समस्त गोप-गोपिकाओं के साथ यहाँ अंबिका वन में शिवरात्रि के अवसर पर आये थे और भगवान पशुपति का अभिषेक किया और भगवती परांबिका का अर्चन किया था।

श्रीकृष्ण जन्मभूमि के पीछे गोविन्दनगर में स्थित श्री गर्त्तेश्वर महादेव मंदिर लगभग 16 हजार मीटर क्षेत्र में स्थित है। यह स्थान काफी प्राचीन है। यहाँ की प्रतिमा में सर्वप्रथम जो शिल्प रहा है वह बलुएदार लालिमा युक्त पत्थर से निर्मित है, इसके ऊपर कौड़ी का तथा उसके ऊपर पीतल का कलेवर है। ये प्रतिमाएँ बहुत ही रहस्यमयी हैं। यह स्थान कुंडलिनी योग से संबंधित है। इस प्रकार के प्राचीन चिह्न भी यहाँ मिलते हैं। इसी संदर्भ में एक प्राचीन मिट्टी की बनी हुई शिव एवं भगवती की प्रतिमाए मंदिर प्रांगण के टीले पर वर्षाकाल में प्राप्त हुई हैं। जिसका काल निर्धारण पुरातत्त्व विभाग द्वारा छठवीं सदी से किया गया है, जिसके प्रमाण सहित ये प्रतिमाएँ गर्त्तेश्वर मंदिर के सेवायत महाराज जी के पास सुरक्षित हैं। यद्यपि सिर के ऊपर सर्प का भाग अंकित था, वह खंडित है। जब टैराकोटा की यह प्रतिमाएँ 1700 वर्ष पुरानी हैं तो मूल प्रतिमाएँ कितनी पुरानी होंगी यह शोध का विषय है।

शास्त्रों का कथन है कि यह परम शिव का स्थान है और आधे कोस का यह क्षेत्र शैव, वैष्णव, जैन, बौद्ध आदि सभी धर्मों की मंत्र सिद्धि हेतु उपयुक्त है। यहाँ मनुष्य की मृत्युपरांत दीपदान की परम्परा भी रही है। 'अखंडो दीपो प्रकाशो गर्त्ते देवालय वादेय' अर्थात जिनकी मृत्यु हो गई है उनके अंधकार विनाश के लिए उन प्रेतात्माओं के हेतु भगवान गर्त्तेश्वर के देवालय के निकट दीप प्रज्ज्वलन का विधान है। प्राचीनकाल से ही यह विधा चली आ रही है जिसके

प्रमाण में यहाँ छोटे दीपक से लेकर बड़ी नाँद के आकार दीपकों के अवशेष आज भी भूमि के अंदर से मिलते हैं। आज भी परंपरागत रूप से प्रतिदिन आने वाले श्रद्धालुओं की मान्यता है कि 41 दिन तक लगातार यहाँ दीपक जलाने से हर मनोकामना पूर्ण होती है।

श्रावण मास एवं शिवरात्रि पर्व पर श्रद्धालुओं की अपार भीड़ उमड़ती है जो विभिन्न गंगा तीर्थों से जल लाकर अपने आराध्य को जलाभिषेक कर पूजा-अर्चन करते हैं एवं मनोकामना पूर्ण होने पर अभिषेक करते हैं। मथुरा परिक्रमा में गर्त्तेश्वर शिव के दर्शन मात्र से ही यात्रा सफल होना माना जाता है।

गीता मंदिर (बिड़ला मंदिर)-यह मंदिर श्रीधाम वृन्दावन से मथुरा जाने वाले मार्ग पर दायीं ओर स्थित है। इस मंदिर का निर्माण भारत के औद्योगिक घराने बिड़ला परिवार द्वारा करवाया गया था। इसलिए इस मंदिर को बिड़ला मंदिर के नाम से भी जाना जाता है। मंदिर के गर्भगृह में भगवान श्री कृष्ण का चक्र लिए आदमकद विग्रह है। साथ ही लक्ष्मीनारायण विग्रह तथा राम-सीता की मूर्ति विराजमान हैं। इस मंदिर की नक्काशी अति सुन्दर की गयी है। मंदिर परिसर में एक स्तम्भ पर श्रीमद्भागवत गीता लिखी हुई है। मंदिर की दीवारों पर धार्मिक पुस्तक भागवत गीता की शिक्षायें तथा मौलिक अवतरण लिखे गये हैं। इस मंदिर की वास्तुकला, हिन्दू संस्कृति परम्परा तथा चित्रकारी शैली को नमन करती है। मंदिर सप्ताह के सभी दिन खुलता है। शुभ अवसरों पर इस मंदिर में पूजा-अर्चना विशेष धूमधाम से होती है। मंदिर के सामने ही गीता आश्रम बना हुआ है।

गोकर्ण महादेव मंदिर—श्रीमद्भागवत के अनुसार एक बार गोकर्ण जी ने सुना कि धुंधकारी को वेश्याओं के द्वारा मार दिया गया है। इसके प्रतिफल-स्वरूप धुंधकारी भयंकर प्रेत बनकर निरीह प्राणियों को सता रहा है। तब श्री गोकर्ण जी ने गया जी में जाकर धुंधकारी के उद्धार हेतु नारायण बलि की क्रिया कराकर श्राद्ध और तर्पण किया। गोकर्ण जी ब्रजमंडल में भी पधारे और उन्होंने यमुना किनारे एक ऊँचे टीले पर बैठकर तपस्या की। यहाँ भी उन्होंने धुंधकारी का तर्पण और श्राद्ध किया। गोकर्ण जी ने उस टीले पर एक शिवलिंग की स्थापना की और सम्पूर्ण विधि-विधान से पूजा-अर्चना की। इस प्रकार इस टीले का नाम गोकर्ण टीला पड़ा। जन-मानस में अब इसे गोकर्णेश्वर महादेव के नाम से जाना जाता है। कालांतर में समय के प्रभाव से यह स्थान खंडहर होते चले गये।

मथुरा की सीमा स्थित गोकर्णेश्वर शिव मंदिर उत्तरी सीमा के रक्षक क्षेत्रपालों में से एक है। मथुरा से दो मील उत्तर में यमुना किनारे एक प्राचीन स्थान है, जहाँ कुषाण सम्राटों की मूर्तियाँ प्राप्त हुईं जिनका अभिज्ञान अभी तक संदिग्ध है। आठवीं से चौदहवीं शती तक ब्रज में भागवत मत के साथ-साथ शैव या माहेश्वर धर्म का भी प्रचार रहा। कनिष्क तथा उसके अनेक उत्तराधिकारियों के सिक्कों पर भी शिव की प्रतिमा मिलती है। प्राय: शिव के साथ उनका बैल 'नंदी' भी दिखाया जाता है। ब्रज में मानुषी रूप में शिव की मूर्तियाँ कुषाण काल से ही मिलने लगती हैं।

सन् 1936 में अंग्रेजों द्वारा गोकर्णेश्वर टीले जिसे कैलाश भी कहते हैं, पर खुदाई करायी गई थी। खुदाई के दौरान कुषाणकालीन दो हजार वर्ष पुराना एक शिलापट्ट भी मिला था। जिसके बीच में शिवलिंग और अगल-बगल विदेशी शक दिखाई देता है। इससे सिद्ध होता है कि मथुरा में उस समय पाशुपत सम्प्रदाय का अच्छा बोलबाला था।

चामुण्डा देवी मंदिर—मथुरा बालगोपाल की जन्मभूमि है। कहावत है कि यह नगरी तीन लोक से न्यारी है। इसके बारे में केवल इतना ही कहना है कि चार देवियाँ और चार महादेव इसकी रक्षार्थ हर समय तैयार रहते हैं। चातुर्मास में सभी देव अपने लोकों को छोड़कर मथुरा नगरी में निवास करते हैं। इस समय कोई शुभ कार्य नहीं होता है। आषाढ़ शुक्ला एकादशी से कार्तिक शुक्ला एकादशी देव जागरण के बाद अपने-अपने धाम में जाते हैं। तब संसार में शुभ कार्य होते हैं।

चामुंडा मंदिर मथुरा 51 शक्तिपीठों के अंतर्गत आता है। यह देवालय मथुरा-वृंदावन मार्ग पर गायत्री तपोभूमि शक्तिपीठ के पश्चिम में सामने से रास्ता इस मंदिर तक जाता है। माँ सती के केश गिरने के स्थान के बारे में यह देवालय

माना जाता है। भगवान श्रीकृष्ण ने अजगर को मुक्ति प्रदान कर माँ चामुंडा के दर्शन किए थे। यह स्थान महर्षि शांडिल्य जी की तपस्थली के रूप में एवं अंबिका वन के रूप में जाना जाता है। गुरु गोरखनाथ जी ने भी यहीं सिद्धि प्राप्त की थी।

चामुंडा माता श्रीकृष्ण के पालित पिता श्री नंदबाबा की कुलदेवी बताई जाती हैं। नंदबाबा ने ग्वाल-बालों के साथ यहाँ सरस्वती कुंड पर आकर श्रीकृष्ण का मुंडन संस्कार कराया था एवं जात लगाई थी। दोनों नवरात्रि पर्वों में यहाँ मेला लगता है एवं देश-विदेश से श्रद्धालुजन असंख्य संख्या में माता के दर्शन कर लाभ प्राप्त करते हैं। प्रत्येक रविवार को दर्शनार्थी माता के दर्शनार्थ आते हैं। माता की कोई प्रतिमा स्थापित न होकर यह स्वयंप्रकट माता हैं।

दशभुजी गणेश मंदिर—यह प्रसिद्ध मंदिर मथुरा में श्री द्वारिकाधीश मंदिर के पीछे वाली 'मोक्ष गली' के निकटवर्ती इसी नाम वाले दशभुजी गणेश मौहल्ला में चौबियापाड़े के बीचों-बीच अवस्थित है। इस मंदिर का महत्त्व इसकी विशाल एवं तांत्रिक पद्धति से बनी होने के कारण है। इतनी बड़ी मूर्ति मथुरा में अन्यत्र कहीं नहीं है। इसकी प्रतिष्ठा चतुर्वेदियों के गुरु और तांत्रिक विद्वान श्री शीलचंद्र जी ने संवत् 1897 विक्रम में की थी।

यह गणेश मूर्ति लाल पत्थर की बनी हुई और अब सिंदूर से आवेष्ठित है। इससे इस मूर्ति के हाथों में अवस्थित पाश, अंकुश आदि आयुध स्पष्ट नहीं दिखाई देते, केवल बायीं ओर जंघा को छू रहा हाथ में महालक्ष्मी जी की मूर्ति दृष्टिगोचर तथा रत्नकलश भी दिखाई देता है। गणेश जी पालथी मारकर बैठे हैं और उनके दसों हाथों में पाश, अंकुश, चक्र, गदा, एकदांत, रत्नकलश, ईख (गन्ना), पद्म, लड्डू और महालक्ष्मी जी अवस्थित हैं। यह गणेश मूर्ति पूर्णरूप से तांत्रिक विधि से तैयार कराई गई है। यह गणेश शंकर सुवन भवानीनंदन के रूप में पूजित न होकर कश्यप ऋषि और माता अदिति के पुत्र हैं। यह महागणपति और महालक्ष्मी का मिश्रित स्वरूप माना जाता है। इन महागणपति ने वासु सर्प का यज्ञोपवीत धारण कर रखा है। इनके दो वाहन मूषक और सिंह हैं जो पास में ही बैठे हैं।

इन महागणपति ने ही काशी में नारांतक और देवांतक नामक दो महादैत्यों को मारा था। गणेश जी दसों हाथों में से बायीं ओर के एक हाथ पर पद्महस्ता महालक्ष्मी जी विराजमान हैं जो दूर से जंघा पर बैठी हुई सी लगती हैं। गणेश जी की यह मूर्ति पूर्णरूप से तंत्रशास्त्र के अनुसार निर्मित और पूजित है।

यह मंदिर मथुरा में श्रीद्वारिकाधीश जी के मंदिर से पहले का बना है। आजकल यह चतुर्वेदियों का पंचायती मंदिर है। चतुर्वेदी लोग ही इनकी पूजा-सेवा करते हैं।

दीर्घविष्णु मंदिर—मथुरा नगर के मध्य में घीयामण्डी खारी कुआँ नामक मौहल्ले में श्रीदीर्घविष्णु मंदिर बहुत ऊँची चौकी पर विराजमान है। इस मंदिर की कलाकृति एवं भव्यता देखते ही बनती है। मुख्य मंदिर के जगमोहन के द्वार पर 'जय-विजय' द्वारपाल खड़े हैं। इस द्वार के ऊपर एक शिलालेख अंकित है। जिसके अनुसार बनारस के राजा पटनीमल, श्री ख्यालीराम जी के नाती तथा श्री बालगोविन्द जी के सुपुत्र थे। श्री ख्यालीराम जी का निवास दिल्ली में था। संवत् 1827 में अर्थात् सन् 1770 ई. में राजा पटनीमल का जन्म हुआ। सन् 1826 में मुगल बादशाह शाह आलम ने आपको राजा की पदवी से विभूषित किया। सन् 1807-08 ई. में राजा ने इस मंदिर का जीर्णोद्धार कराया था। राजा की मृत्यु 74 वर्ष की आयु में 1 सितम्बर 1844 ई. को हुई। आपके वंशज राय प्रहलाद दास हुए। उनके पुत्र हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार रायकृष्ण दास हुए। उनके पुत्र डॉ. आनन्द कृष्णा जी हैं।

वाराह पुराण में वर्णित है कि दीर्घविष्णु, पद्मनाभ आदि के दर्शन से सकल अभीष्टों की प्राप्ति होती है तथा भगवान सूर्य के तीन स्थापन स्थान हैं यथा-उदित काल में विश्राम तीर्थ पर गताश्रम नारायण मंदिर में, मध्याह्न काल में दीर्घविष्णु मंदिर में तथा सायंकाल श्री केशवजी मंदिर में श्री विष्णु जी का तेज स्थापित रहता है। इसलिए आधी घड़ी (12 मिनट) यहाँ बैठने पर भगवान सूर्यदेव भक्तों पर कृपा करते हैं। रूप गोस्वामी ने संवत् 1574 वि. में 'मथुरा महात्म्य' नामक ग्रंथ में लिखा है कि "केशव, पद्मनाभ, दीर्घविष्णु, वाराह, गताश्रम, नारायण" आदि सभी विष्णु के पर्याय हैं इसलिए ये सभी मंदिर प्राचीन हैं।

संवत् 1549 से 1609 तक इस मंदिर के महन्त रामानंदी संत श्री द्वारका दास जी महाराज थे। इनके शिष्य श्री सरसदास जी कृत 'भगति भावति' में इसका उल्लेख है। श्रीरामानंद जी की चौथी पीढ़ी में श्री द्वारकाप्रसाद जी थे। इस मंदिर में श्री हनुमान जी की स्थापना श्रीरामानंद जी के काल में हुई थी। ये बड़े ही सिद्ध हनुमान माने जाते हैं।

ठा. श्रीदीर्घविष्णु जी महाराज का श्रीविग्रह चतुर्भुजी है। दायें कर-कमलों के ऊपर सुदर्शन चक्र तथा नीचे गदा है। बायें कर-कमलों में ऊपर शंख तथा नीचे कमल है। मंदिर के बाहर पूर्व की ओर बाहर निकलने की पौरी है। वहाँ दोनों ओर चौखण्डी बनी हैं। मंदिर से मुख्य बाजार में आने पर ठीक सामने शीतला घाटी है। वहाँ योगमाया स्वरूपिणी श्री मथुरादेवी का मंदिर है। यह मथुरा देवी का मंदिर ब्रज चौरासी कोस की परिक्रमा में (अन्तर्गृही परिक्रमा) में आता है। इस मंदिर में वर्षभर के उत्सव, महोत्सव, मनोरथ आदि बड़ी धूमधाम से मनाये जाते हैं। मंदिर की प्राचीरें जीर्ण-शीर्ण हो गई हैं।

द्वारिकाधीश मंदिर—यह मंदिर मथुरा में यमुना नदी के किनारे असकुण्डा घाट के पास स्थित है। इस प्राचीन मंदिर का निर्माण सन् 1814 ई. में ग्वालियर के सेठ श्री गोकुलदास पारीख जी ने अपने बड़े भाई के गोलोकवास जाने के पश्चात उनकी स्मृति में करवाया था। मंदिर के बनने के कुछ समय पश्चात् गोकुलदास पारीख जी ने कांकरौली के वल्लभ सम्प्रदाय के गोस्वामियों को सेवार्थ भेंट कर दिया था। इसी कारण इस मंदिर को सेठ जी के मंदिर के नाम से भी जाना जाता है।

यह विशाल मंदिर 108 फुट लम्बी तथा 120 फुट चौड़ी कुर्सी पर बना हुआ है। मंदिर के गर्भगृह में श्री द्वारिकानाथ जी का चतुर्भुज विग्रह तथा साथ ही बायीं ओर सफेद स्फटिक द्वारा बनी रुक्मिणी मूर्ति विराजमान है। यह भव्य मंदिर स्तम्भों पर बना हुआ है। मंदिर के ही मध्य भाग में सुन्दर व विशाल मण्डप बना हुआ है, जिसमें सुन्दर चित्रों से युक्त शीशों के जड़ाऊ जड़े हैं। यहाँ पर प्रतिवर्ष सावन माह में हिंडोला तथा घटा दर्शनों की बड़ी प्रसिद्धता मानी जाती है। इस मंदिर की पूजा- अर्चना पुष्टिमार्गीय परम्परानुसार की जाती है।

पिप्पलेश्वर महादेव मंदिर—नाग राजाओं के शासनकाल में मथुरा में शैव धर्म का प्रचार-प्रसार अधिक हुआ। उस समय नाग राजागण अधिकतर शैव धर्म के ही अनुयायी थी। उनके शासनकाल में यहाँ शैव धर्म की अधिक प्रगति हुई। उस समय मथुरा का भूतेश्वर क्षेत्र और गोकर्णेश्वर टीला शैव धर्म के प्रसिद्ध केन्द्र थे। पौराणिक अनुश्रुतियों के अनुसार मथुरा के रक्षक चार क्षेत्रपाल शिव हैं, जिनके ये चार पूजास्थल इस नगर की चारों दिशाओं में अवस्थित हैं। उत्तर दिशा में गोकर्णेश्वर महादेव, पूर्व दिशा में पिप्पलेश्वर महादेव, दक्षिण दिशा में रंगेश्वर महादेव और पश्चिम में भूतेश्वर महादेव विराजमान हैं।

उक्त शैवस्थल नागकाल में ही निश्चित हुए थे। विद्वानों का मत है कि नाग राजा वीरभद्रेश्वर की स्मृति में मथुरा में शैव मंदिरों का निर्माण व प्रसार अधिक हुआ। वह अधिक प्रतापी थे। मथुरा का शैव क्षेत्र उस समय उसी के नाम से 'वीर क्षेत्र' कहलाता था। मथुरा के चौबच्चापाड़ा में 'वीरभद्रेश्वर' नामक शैव स्थल का संबंध भी कदाचित् 'वीरभद्र' राजा से ही था। उस राजा को गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त ने गणपति राजा के साथ संवत् 401 वि. में पराजित किया था।

पिप्पलेश्वर महादेव का यह प्राचीन मंदिर मथुरा में विश्रामघाट के निकटवर्ती गताश्रम टीले के ठीक सामने से बंगालीघाट की ओर जाने वाले मार्ग पर पड़ता है। गताश्रम तिराहे से कुछ ही दूर चलने पर यह पिप्पलेश्वर का प्रसिद्ध मंदिर सती के बुर्ज की दाहिनी ओर को अवस्थित है। मंदिर के सामने पूर्व की ओर यमुना जी बहती हैं। यह मंदिर एक प्राचीन पीपल के वृक्ष को अपने आगोश में समेटे हुए है। संभवत: इसी कारण से इसका नाम पिप्पलेश्वर महादेव का मंदिर पड़ा है। ऐसी जनसाधारण की मान्यता है। यह मंदिर आकार में अधिक बड़ा नहीं है। मंदिर में शिवलिंग भूमि पर भी आधार बनाये हुए हैं। अलग से जलहरी नहीं है। गणेशजी, पार्वतीजी, स्वामि कार्तिकेय और नंदीश्वर की बड़ी-बड़ी संगमरमर की सुंदर मूर्तियाँ शिवलिंग के चारों ओर आधारों पर स्थापित हैं। श्रावण मास में सोमवार के दिन

एवं अन्य विशेष पर्वों पर मंदिर में बहुत चहल-पहल व भीड़ रहती है। इस मंदिर की यहाँ अधिक मान्यता है।

बगलामुखी मंदिर—मथुरा नगर में बगलामुखी देवी का एक मंदिर पुराने बस स्टैण्ड के सामने छोटी रेलवे लाइन के सहारे स्थित है। वर्तमान महंत जी गुरु श्री श्री 108 नागर हनुमान गिरि (ऊँचे हाथ वाले) थे जो कुछ वर्ष पूर्व ब्रह्मलीन हो चुके हैं। मंदिर एक बड़े हॉल में बना है जिसमें छोटे-छोटे पाँच-छ: सिंहासन बने हैं। इन सबके ऊपर छ: मोर बने हैं। मध्य में माँ बगलामुखी विराजमान हैं। दाहिनी ओर प्रथम सिंहासन पर श्री गणेश जी हैं। वामांग में श्री विष्णु भगवान चतुर्भुज रूप में विराजे हैं। इनके कर-कमलों में शंख, चक्र, गदा और पद्म (पाश) धारण किए हुए हैं। अंतिम सिंहासन पर श्रीयमुना महारानी विराजमान हैं। मंदिर के हॉल में बायीं ओर महंत जी के माता-पिता श्री के चित्रपट लगे हैं। इनके साथ-साथ प्रात: स्मरणीय श्री स्वामी राधाचरण जी महाराज, टटिया स्थान, वृन्दावन वालों का चित्रपट भी लगा है। मंदिर के बाहर सोलह खम्बों पर एक यज्ञशाला भी बनी है जिनमें सोलह मात्रिकाएँ यथा—गौरी, पद्मा, शची, मेघा, सावित्री, विजया, जया, देवसेना, स्वधा, स्वाहा, शांति, पुष्टि, धृति, क्षमा, इष्टदेवी, कुलदेवी चित्रित हैं। इनके ऊपर गणपति पीठ, गृह पीठ, रुद्रपीठ, वास्तु पीठ, योगिनी पीठ, क्षेत्रपाल पीठ बनी हैं। आठ सीढ़ी ऊँचे श्री सूर्यनारायण भगवान विराजे हैं और "आदित्याय नम:" अंकित है।

बटुक भैरव मंदिर-मथुरा नगरी में चार प्रमुख प्राचीन भैरव मंदिर हैं यथा—बटुक भैरव, योगमाया घाट, बाल भैरव, कंसखार, महाभैरव, गुड़हाई बाजार, कालभैरव, कंस किला।

मार्गशीर्ष मास की कृष्णपक्ष अष्टमी को मध्याह्न के समय भगवान शंकर के अंश से श्री भैरव की व्युत्पत्ति हुई थी। इसी दिन श्री भैरवनाथ जी की पूजा, व्रत पर्व का बहुत बड़ा विधान है। भैरव पूजन का हमारे ब्रज लोक जीवन में विशिष्ट महत्त्व है। इन्हीं भैरवों को नगर कोतवाल भी कहा जाता है।

बटुक भैरव जी का यह मंदिर विश्रामघाट से यमुना नदी के किनारे-किनारे बंगालीघाट की ओर जाने वाली सड़क पर 'पिप्पलेश्वर महादेव' से आगे एक ऊँची कुर्सी वाले प्रांगण में स्थित है। इस मंदिर के दो प्रमुख द्वार हैं। दोनों द्वार पूर्व दिशा की ओर ही सड़क पर खुलते हैं। मंदिर की मुख्य चौखटों से लगभग आठ-आठ सीढ़ियाँ ऊपर चढ़नी होती हैं, ऊपर ठीक सामने छोटे से तीन दरवाजे वाले गर्भगृह में 'बटुक भैरव' जी का श्वेत संगमरमरी बालस्वरूप वैष्णव रूप में विराजमान है। इनके वामांग में श्यामवर्णी 'काल भैरव' हैं। ये आदिकाल के देवता हैं जो फरमान जारी करते हैं। यह मंदिर मथुरा में भगवान कृष्ण के जन्म के समय से ही स्थित है। मंदिर के ऊपर पाँच शिखर हैं जिन पर त्रिशूल लगे हैं और पताकायें भी फहराती हैं। भैरव अष्टमी को जन्मोत्सव बड़ी ही धूमधाम से मनाया जाता है। प्रात:काल मंगला आरती होती है। योगमाया घाट, मथुरा के इस मंदिर में पहले एक पीपल का वृक्ष था जिस पर घट भरे जाते थे जो अब दृष्टिगोचर नहीं होते हैं।

भूतेश्वर महादेव मंदिर—कृष्ण भक्ति के साथ ही सप्तपुरियों में से एक मथुरापुरी शैव, शाक्त एवं गणेशोपासकों की भी प्रियभूमि है। स्वयंभू रूप में विराजित शिव यहाँ के क्षेत्रपाल भी हैं। 'शिवपुराण' के अनुसार "भूतेशो यमुना तटे" में इंगित शिवद्वादश ज्योति: उपलिंगों में 'भूतेश्वर' के रूप में यहाँ विद्यमान हैं। इनके महत्त्व का वर्णन "पद्मपुराण" में भी हुआ है। मथुरा के ऐतिहासिक व धार्मिक पंचस्थलों में से यह 'वीरस्थल' कहा जाता था। नागों के शासनकाल में यहाँ कई शिवमंदिर एवं मठ थे। इनको विदेशी आक्रांताओं ने नष्ट कर दिया था। वर्तमान मंदिर मराठों के शासनकाल में बना था। यह मंदिर मथुरा में श्रीकृष्ण जन्मस्थान के दक्षिण में श्री भूतेश्वर महोदव मंदिर के नाम से स्थित है। श्री भूतेश्वर महादेव के बारे में यह भी मान्यता है कि श्रीकृष्ण के प्रपौत्र बज्रनाभ द्वारा ब्रज के चारों ओर उत्तर में गोकर्णेश्वर, दक्षिण में रंगेश्वर, पश्चिम में भूतेश्वर तथा पूर्व में पिप्पलेश्वर महादेव के रूप में ब्रज के रक्षक क्षेत्रपाल स्थापित किए थे। इन्हें मथुरा का कोतवाल भी कहा जाता है। इन्हीं के नाम पर मथुरा को 'भूतेश्वर क्षेत्र' कहा जाता है।

वर्तमान भूतेश्वर मंदिर का निर्माण 18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में किया गया है। यह मंदिर लगभग 100 वर्ग गज क्षेत्र में बना हुआ है तथा मूर्ति अति प्राचीन है। इसके शिखर की ऊँचाई लगभग 40 फीट है। इसके निकट ही पातालदेवी मंदिर में स्थित है जिसकी पूजा कंस द्वारा की जाती थी। एकादशी और अक्षयनवमी तथा देवोत्थान एकादशी को भूतेश्वर मंदिर में दर्शन कर परिक्रमा आगे प्रस्थान करती है। क्षेत्ररक्षक भूतेश्वर शिव मंदिर के दर्शन करने से परिक्रमा सफल होती है।

मथुरादेवी—यह देवालय घीयामंडी स्थित शीतला पाइसा मथुरा में एक मकान में स्थित है। देवालय का मुख्य दरवाजा पश्चिम में है। देवालय में प्रतिष्ठित मथुरा देवी का मुखारबिंद पश्चिम दिशा में है। श्री दीर्घविष्णु का मुखारबिंद पूर्व दिशा में है। श्री दीर्घविष्णु एवं श्री मथुरादेवी आमने-सामने स्थित हैं। विद्वज्जनों के कथनानुसार मथुरा के मंदिरों का जीर्णोद्धार श्रीमन्नारायण श्रीकृष्ण के प्रपौत्र श्री बज्रनाभ जी ने करवाया था।

महाराज मनु एवं महारानी शतरूपा के प्रार्थना करने पर पृथ्वी के जो परमाणु जल में विलीन होकर रसातल में पहुँच गए थे। उन परमाणुओं को एकत्र कर पृथ्वी के रूप में लाने के वास्ते श्रीमन्नारायण ने वाराह रूप धारण किया था। पृथ्वी को रसातल में ले जाने के बारे में यह कथा है कि एक दानव हिरण्याक्ष था वही पृथ्वी को रसातल ले गया था। वाराह भगवान ने उसका वध कर पृथ्वी को अपनी दोनों दाढ़ों पर रखकर जल से बाहर आये।

पृथ्वी ने वाराह भगवान से निवेदन किया-प्रभु आपने मेरा उद्धार तो कर दिया चारों ओर जल ही जल है। मुझे कहाँ पर स्थापित करोगे। मैं पुन: जल में विलीन हो जाऊँगी। आपने मस्तक पर रखकर मेरी महिमा को बढ़ाया है।

श्रीमन्नारायण ने कहा (वाराह) हे वसुन्धरे! जहाँ तुम्हें वृक्ष दिखाई देंगे वहीं तुम्हें खड़ा होकर स्थापित करूँगा। पृथ्वी ने कहा हे देव! वृक्ष तो मेरे ऊपर उगते हैं; मैं आपके मस्तक पर हूँ। जल के ऊपर वृक्ष कैसे होंगे।

पृथ्वी की वाणी सुनकर श्रीनारायण ने अपनी आद्याशक्ति का आवाहन किया तो जल के ऊपर एक पहाड़ी दिखाई दी, जिस पर वृक्ष भी थे। पृथ्वी ने आश्चर्य से देखकर उस टेकरी का नाम पूछा। श्रीनारायण श्री वाराहदेव जी ने इसे गोलोक धाम, अनादि ब्रजमाधुरी, मधुपुरी, मथुरा का नाम बताया। यहाँ पर श्री वाराह देव ने पृथ्वी की स्थापना की थी। आज भी इसे वाराह क्षेत्र के नाम से जाना जाता है। यहाँ वाराह देव जी का मंदिर स्थित है। प्रभु श्री वाराह देव जी की आद्याशक्ति मथुरा देवी के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह मथुरा नगरी की अधिष्ठात्री देवी हैं।

मथुरा में श्री बल्लभाचार्य जी द्वारा रचित यमुनाष्टक में माता यमुना जलरूप में प्रवाहित है। यमुना जी श्रीमन्नारायण श्रीकृष्ण की चतुर्थ पटरानी के रूप में वर्णित है। यही मूर्तिरूप में विराजमान मथुरा देवी रूप से प्रतिष्ठित है। श्री मथुरादेवी के विग्रह की प्रतिमा अत्यंत मनमोहक श्यामवर्णा है, उनके साथ उन्हीं के भ्राता धर्मराज भी प्रतिष्ठित हैं। मंदिर के जगमोहन में एक ओर गुरु वशिष्ठ तथा दूसरी ओर देवर्षि नारद विराजमान हैं। श्रीमथुरा देवी की अधिष्ठात्री देवी श्रीकृष्ण की चतुर्थ पटरानी श्री यमुना जी हैं। यह विग्रह अपने भक्तों, दर्शनार्थियों को एक बार देखने पर ही अपनी ओर प्रभावित कर आकर्षित करता है एवं भक्त सेवा पूजन, वंदन कर लाभ प्राप्त करते हैं।

महालक्ष्मी मंदिर—बेलवन का महालक्ष्मी मंदिर द्वापरयुगीन माँ लक्ष्मी की तपोभूमि के रूप में विख्यात है। मथुरा जनपद की मांट तहसील के ग्राम जहांगीरपुर के निकट तथा वृन्दावन यमुना पार स्थित है। मान्यता है कि महारास के दर्शनों की आकांक्षा से वैकुण्ठ की अधीश्वरी लक्ष्मी जी वृन्दावन आईं किन्तु उन्हें इस बात का मान हो गया कि घर-गृहस्थी के कार्यों को करने वाली साधारण गोपिकाओं के हाथों में हाथ डालकर रास करना क्या उन्हें शोभा देगा? लक्ष्मी जी की भावना को जानकर भगवान श्रीकृष्ण ने उन्हें कहा कि जब तक गोपियों के अनुगत नहीं होंगी तब तक उन्हें रास में प्रवेश संभव नहीं। भगवान श्रीकृष्ण को प्रसन्न करने के लिए लक्ष्मी जी वृन्दावन यमुना तटस्थ वंशीवट के दूसरी ओर यमुनापार जिस बेल की बहुलता वाले वन में तप करने के लिए बैठ गईं, वही वर्तमान में बेलवन नाम से विख्यात है। माँ लक्ष्मी यहाँ आज भी तपशील हैं। तीन सौ वर्ष पूर्व वृन्दावन के शृंगारवट मंदिर के सेवायत गोस्वामी

श्री पूर्णानंद जी द्वारा यहाँ मंदिर का निर्माण कराया गया। आज भी इन्हीं गोस्वामियों की वंश परम्परा यहाँ सेवायत है। पौष माह के प्रत्येक गुरुवार को यहाँ दर्शनों की विशिष्ट मान्यता है। आसपास के क्षेत्रों से लोग इस वन में आकर भंडारा करते हैं। यहाँ खिचड़ी बनाने और तिल से बने पदार्थ माँ लक्ष्मी की प्रसन्नता हेतु निवेदित करने की प्राचीन परम्परा अनवरत जारी है।

महाविद्या मंदिर—वर्तमान में यह मंदिर मथुरा नगर के गोविन्द नगर क्षेत्र की महाविद्या कालोनी में स्थित है। यह मंदिर पौराणिक महत्त्व का है। जहाँ यह मंदिर स्थित है वह सम्पूर्ण क्षेत्र पूर्व में 'अम्बिकावन' के नाम से विख्यात था। यह मंदिर एक कच्चे ऊँचे मिट्टी की टीले के ऊपर लाल बलुए पत्थर से निर्मित है। वर्तमान मंदिर का श्री माधवराव जी सिंधिया के शासनकाल में उनके अधीनस्थ पदाधिकारियों द्वारा जीर्णोद्धार कराया गया था। इस समय मंदिर की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। यह मंदिर मथुरा नगर की पंचकोसी परिक्रमा के अन्तर्गत पड़ने वाले प्राचीन एवं प्रमुख मंदिरों में से एक है।

श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध के अनुसार द्वापर युग में नंद बाबा अपने समस्त परिवार सहित यहाँ आये थे और उन्होंने श्री महाविद्या देवी की पूजा-अर्चना की थी। वाराह पुराण के अनुसार देवकी मैया ने अपने बालकों की रक्षा हेतु दो देवियों की मूर्ति स्थापित करायी थी। देवी भागवत के अनुसार 108 शक्तिपीठों में से मथुरा में 'देवकी पीठ' स्थित है।

इस मंदिर के सेवायतों ने बताया है कि यहाँ पर दूर-दूर से शक्ति साधक आकर साधना करते हैं। यहां आने वाले शक्ति साधकों में सम्राट दीक्षित, श्री शीलचंद्र जी, श्री केशवदेव एवं श्रीबटुकनाथ जी प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। यहाँ पर सीढ़ियों के नीचे खम्बे पर एक पत्थर लगा है जिस पर अंकित है कि सम्वत् 1951 में श्रीशीलचंद्र जी महाराज ने सहस्र चंडी यज्ञ का आयोजन कराया था तथा यजमानों ने इस मंदिर का जीर्णोद्धार कराया था। श्री शीलचंद्र जी ने एक सिद्ध श्रीयंत्र यहाँ के सेवायतों को दिया जो कि आज विश्राम घाट स्थित श्री यमुना धर्मराज मंदिर में स्थापित है।

यहाँ मंदिर के मुख्य दरवाजे के पूर्व की ओर कुछ सीढ़ियाँ उतरकर एक छोटा शिव मंदिर है जिसमें चतुर्भुजी शिवलिंग स्थापित है। यहाँ यह अनुश्रुति है कि छत्रपति शिवाजी औरंगजेब की जेल से छूटकर यहाँ आये थे और अपनी कुशलता की प्रार्थना की थी। इस मंदिर के चारों ओर पूर्व में बेर, पीलू और हींस के वृक्षों का जंगल था जो कि अब पूर्णतया लुप्त हो चुका है। इस मंदिर के निकट सूखा तालाब एवं प्राचीन करील का वृक्ष आज भी विद्यमान है।

यमराज का मंदिर—यह मंदिर मथुरा में विश्राम घाट पर स्थित है। मंदिर के गर्भगृह में यम व यमुना मैया के विग्रह विराजमान हैं। पुराणों के अनुसार ये दोनों भाई-बहन माने जाते हैं। कार्तिक माह में यमुना मैया ने अपने जुड़वाँ भाई यम को निमंत्रण देकर बुलाया और अनेक प्रकार के व्यंजन खिलाए। प्रसन्न होकर यम ने यमुना मैया को वर का आदेश दिया। यमुना मैया ने कहा-'भैया दूज' के दिन जो लोग श्रद्धापूर्वक मुझमें स्नान करेंगे आप उन्हें विभिन्न प्रकार के त्रितापों जन्म-मृत्यु से मुक्त कर दें। भैया यम ने कहा ऐसा ही होगा। तब से 'भैयादूज' के दिन भाई बहन का यमुना में स्नान करने का विशेष महत्त्व माना जाता है।

यमुना महारानी मंदिर—मथुरा में श्रीयमुना जी के तट पर विश्राम घाट अवस्थित है। इस विश्राम घाट पर आरती मण्डप, मुकुट मंदिर, कुब्जा-कृष्ण मंदिर, राधादामोदर, मुरली मनोहर, अन्नपूर्णा, गोवर्धन नाथ, यमुना जी, धर्मराज एवं सत्यनारायण मंदिर स्थित हैं। इसी विश्राम घाट पर श्रीयमुना महारानी का एकमात्र प्रसिद्ध मंदिर विद्यमान है। पूर्व में इस मंदिर में यमुना महारानी के चरण चिह्न विराजमान थे। किन्तु पाँच दशकों से श्री यमुना महारानी जी की अकेली श्यामल संगमरमर की मूर्ति स्थापित है। इनकी सेवा-पूजा बल्लभ कुल सम्प्रदाय की पुष्टिमार्गीय पद्धति से की जाती है।

इस मंदिर के सेवायत 12 घर 'आरती वाले' हैं। आठ घरों की सेवा प्रतिवर्ष आती है तथा अन्य चार घरों की सेवा 4 वर्ष में तीन-तीन माह के लिए आती है। इस यमुना जी के मंदिर के पीछे महाप्रभु श्री बल्लभाचार्य जी की बैठक

स्थित है। बल्लभ कुल के गोस्वामी गण ब्रज चौरासी यात्रा हेतु सर्वप्रथम श्रीराधाष्टमी के दिन गोकुल जाकर श्री ठकुरानी घाट पर श्रीमहाप्रभु जी एवं गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ जी की बैठकों में यमुना जल से झारी सेवा करके ब्रज चौरासी कोस यात्रा का आशीर्वाद ग्रहण करते हैं।

यहाँ पर श्री यमुना जी की मंगला आरती प्रात: 5 बजे एवं शयन आरती सायं 7 बजे होती है। यहाँ की सेवा का व्यय सेवायत स्वयं उठाते हैं एवं श्री यमुना भंडार घर से भी व्यय में सहयोग किया जाता है। यहाँ मान्यता है कि यम द्वितीया के दिन भाई एवं बहन एक दूसरे का हाथ पकड़कर यमुना स्नान करते हैं एवं बहन भाई का टीका करती हैं और भाई अपनी बहन को वस्त्र एवं दक्षिणा देता है इससे यम दर्शन से मुक्ति प्राप्त होती है।

चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की षष्ठी तिथि को यमुना जी की जयन्ती मनाई जाती है। इस दिन यमुना जी का विशेष पूजन किया जाता है तथा गुलाब के फूलों का शृंगार किया जाता है। इसे फूलडोल कहा जाता है।

रंगेश्वर महादेव मंदिर—मथुरा शहर के प्रमुख चार शिव मंदिरों में से यह एक प्रमुख मंदिर है। इस मंदिर के सम्बन्ध में यह मान्यता है कि इस स्थान पर कंस की रंगशाला हुआ करती थी। कंस ने श्रीकृष्ण एवं बलराम को मारने की योजनानुसार उन्हें अपनी रंगशाला में बुलाया। इस रंगशाला के द्वार पर कुबलयापीड़ नामक हाथी को मदिरा पिलाकर मदमस्त कर रखा था। परन्तु श्रीकृष्ण एवं बलराम ने उसका वध कर दिया। रंगशाला में पहुँच कर कंस के चुने हुए मल्ल चाणूर-मुष्टिक आदि से उनका मल्ल युद्ध हुआ। उन्होंने मल्ल युद्ध में इन मल्लों को पराजित कर दिया तत्पश्चात् श्रीकृष्ण-बलराम ने कंस का भी वध कर दिया। कंस वध से सभी देवता प्रसन्न हुए। भगवान शंकर ने प्रकट होकर श्रीकृष्ण-बलराम को आशीर्वाद दिया। तब श्रीकृष्ण-बलराम के आग्रह पर भगवान शिव यहाँ पर विराजमान हो गये और रंगेश्वर महादेव कहलाये।

उपर्युक्त घटना की स्मृति में मथुरा के चतुर्वेदी समाज द्वारा कार्तिक शुक्ल दशमी को यमुना किनारे बने स्वामीघाट अखाड़े से श्रीकृष्ण एवं बलराम के स्वरूपों को लेकर मल्लपुरा मोहल्ले में कुवलयापीड़ के पुतले को मारते हैं तथा जवाहर हाट स्थित कंस टीले पर कंस के पुतले को लाठी-डंडों से मार-मार कर उत्सव मनाते हैं।

यह मंदिर जवाहर हाट में जिला अस्पताल के सामने स्थित है। इसके मुख्य द्वार से अंदर चलकर आठ-दस सीढ़ियाँ नीचे उतरकर श्री रंगेश्वर महादेव का गर्भ गृह स्थित है। शिवलिंग के ऊपर पीतल का शिव मुख चढ़ा हुआ है। शिवलिंग के चारों ओर शिव परिवार विराजमान है। इस मंदिर के पीछे अम्बाखार एवं अन्तापाड़ा मोहल्ला स्थित है। शिवरात्रि एवं सावन के सोमवारों पर यहाँ भव्य आयोजन होते हैं।

वेणीमाधव मंदिर—रामानुज सम्प्रदाय का यह मंदिर मथुरा के प्रयागघाट पर स्थित है। इस प्राचीन मंदिर का निर्माण सन् 1877 ई. में माना जाता है। महात्मा कीलदास जी आमेर के राजा मानसिंह की प्रार्थना से मथुरा आये थे। मंदिर के गर्भगृह में राधाकृष्ण, सीताराम तथा रामानुज स्वामी जी के विग्रह विराजमान हैं। ठाकुर जी की पूजा-अर्चना पांचरात्र पद्धति द्वारा की जाती है। कीलदास जी पूजा-अर्चना के पश्चात् एक गुफा में बैठकर जप किया करते थे।

श्रीनाथ जी मंदिर—वल्लभ सम्प्रदाय का यह मंदिर मथुरा में माणिक चौक मोहल्ले में स्थित है। इस मंदिर का निर्माण लगभग 500 वर्ष पूर्व मथुरा के कल्लीमल नामक एक वैश्य ने करवाया था। गर्भगृह में श्रीनाथ जी का विग्रह विराजमान है। ऐसा माना जाता है कि यहाँ ठाकुर जी के चौबीस अवतारों के दर्शन होते हैं। औरंगजेब के अत्याचार से ये कुछ समय के लिए पैंठा चले गये थे। बाद में पैंठा से ठाकुर जी को यहाँ पधरा दिया गया। वर्तमान मंदिर की कारीगरी देखने योग्य है। इस मंदिर की सबसे खास बात ये है कि इस मंदिर की छत पर पंचांग बनाने का पूर्ण साधन है। मंदिर में सेवा-पूजा वल्लभ सम्प्रदाय की पद्धति के अनुसार ही की जाती है।

[मो०श०] [उ०शं०दी०] [पु०श०] [गो०ला०श०]
[ब्र०कि०] [रा०मो०श०] [अ०दी०] [जि०कु०]

मथुरानाथ

श्री मथुरानाथ जी बटेश्वर के सारस्वत ब्राह्मण थे। वेदों के मर्मज्ञ विद्वान होते हुए भी वानप्रस्थ आश्रम में इन्होंने राधासर्वेश्वर की भक्ति का अनुभव किया और वृंदावन आकर श्री जनहरिया जी की सन्निधि और मंत्रोपदेश ग्रहण किया। इनकी प्रवृत्ति सदा ही हरिभक्ति में अनुरक्त रहती थी। 52 वर्षों तक इन्होंने निधिवन निकुंज में रहकर अपने आराध्य का यशोगान किया। [कुं०बि०श०]

मथुरानाथ गोस्वामी

मथुरानाथ गोस्वामी जी का जन्म सन् 1588 ई. में आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा को हुआ था। आप वल्लभ सम्प्रदाय की अष्टम पीठ के आचार्य गोस्वामी तुलसीदास के ज्येष्ठ पुत्र हैं। आपकी माता का नाम तुलसी था। सन् 1618 ई. में आप वल्लभ गद्दी पर विराजित हुए एवं श्री गोपीनाथ जी के विग्रह की सेवा में लीन हो गये। अपने पिता के साथ निरन्तर रहने के कारण साम्प्रदायिक उपासना और भक्ति पद्धति से आप पूर्णतया परिचित हो गये। कहा जाता है कि इनका विवाह हुआ परन्तु पत्नी का नामोल्लेख कहीं भी प्राप्त नहीं होता है। आपके दो पुत्र, गोकुलनाथ तथा केवलराम का उल्लेख प्राप्त होता है। गोस्वामी जी ने 'अवतार निबन्ध' तथा 'श्रीलाल जी की स्तुति' नामक दो रचनाओं का लेखन किया था। सन् 1633 ई. में गोस्वामी जी का गोलोकवास हो गया था। [जि०कु०]

मथुरा महात्म्य

मथुरा-महात्म्य ग्रन्थ के रचयिता श्रीपाद रूपगोस्वामी प्रभु हैं। इन्होंने आदिवाराह-स्कन्द पद्मपुराणादि नाना शास्त्रों में विस्तृत रूप से वर्णित मथुरा मण्डल की महान महिमा का संक्षेप रूप में सारगर्भ संग्रह करके मथुरा महात्म्य नाम से ग्रन्थित किया है। जीव गोस्वामी जी ने 'लघुतोषणी उपसंहार' में मथुरा महिमा एवं कविराज गोस्वामी ने 'चैतन्य चरितामृत' में मथुरा महात्म्य करके कहा है। यह वाराह पुराणादि नाना शास्त्रों का संकलन ग्रंथ है। वाराह पुराण मथुरा महात्म्य से पृथक एवं परवर्ती है।

संक्षेपत: मथुरा महिमा को ज्ञात कराने में यह एक अद्वितीय ग्रन्थ है। समस्त इतिहास एवं प्राचीन नाना ग्रन्थों के अध्ययन से यह जाना जाता है कि मथुरा मण्डल के तीर्थों के पुनरुद्धार के बारे में श्री रूप, सनातन एवं श्री नारायण भट्ट ये तीनों गौड़ीय आचार्यों का हाथ है। इन्होंने ब्रजमंडल के समस्त तीर्थों का पुनरुद्धार करके तत्सम्बन्धित नाना महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का निर्माण किया है। श्री नारायण भट्ट जी के द्वारा विरचित 'ब्रज भक्ति-विलास' नामक ब्रज सम्बन्धी महान ग्रन्थ इन बातों का साक्षी है। मथुरा मण्डल के नाना लुप्त तीर्थों के उद्धार के बाद ही इन्होंने संवत 1609 में इस ग्रन्थ की रचना की थी। यह अत्यन्त विस्तृत महान प्रामाणिक ग्रन्थ सूत्र रूप ही 'मथुरा महात्म्य' है।

श्रीपाद रूपगोस्वामी ने ब्रजमंडल के तीर्थों को परिचित कराने के लिए इस 'मथुरा महात्म्य' ग्रन्थ की रचना की थी। यह समस्त मथुरा मण्डल का दिग्दर्शन कराने में दर्पण रूप है।

श्री मथुरा मण्डल की सीमा शास्त्रानुसार पाँच प्रकार से विभाजित की जाती है। पहला विभाग पंचयोजनात्मक अर्थात बीस कोस परिमित केवल शुद्ध रस रूप कमल पत्र की तरह है। जिसको सभी निज वृन्दावन कहते हैं। दूसरा विभाग योजन परिमित अर्थात चार व पाँच कोस जिसे राजधानी रूप करके कहा जाता है। तीसरा विभाग द्वादश गन्यूत्यात्मक अर्थात चौबीस कोस परिमित है, इसमें बारह वन मौजूद हैं। चौथा विभाग विंशतियोजनात्मक अर्थात् 80 व 84 कोस परिमित है जिसमें समस्त तीर्थ तथा उन समस्त तीथों के आविष्कर्ता देवता निवास करते हैं। पाँचवाँ विभाग चालीस योजनात्मक अर्थात 160 कोस है, जिसमें इन्द्र, चन्द्र, कुबेर, वरुणादि अधिकारीगण तथा उनके आविष्कृत तीर्थसमूह मौजूद हैं। इस विभाग से बाहर प्राकृत सर्ग है।

यह पंच विभागात्मक समस्त मथुरा मण्डल आनन्द, चिन्मय सुखरूप, प्रकृति से परे, दिव्य वैभव स्वरूप, सर्व जीवों के सेव्य तथा समस्त वैष्णवों के सुख रूप है तो भी श्रीवृन्दावन ही शुद्ध रस रूप होने के कारण रसज्ञ जनों के लिये परम उपादेय माना जाता है। श्री नारायण भट्ट महोदय ने 'भक्ति विवेक' ग्रन्थ में बड़ी सरलता के साथ निर्णय दिया है कि श्री मथुरामण्डल दो प्रकार का है, कमलाकार मण्डल तथा उससे बहिर्मण्डल। कमलाकार मण्डल में ही बारह वन हैं, अत: लोक परंपरा से उसकी यात्रा होती है। बहिर्मण्डल में लोकपालादिक निवास करते हुए उसकी रक्षा करते हैं। अन्य मण्डलों में श्रीकृष्ण के वैभव अवस्था का प्राध्यान देखा जाता है। कहीं तो रस मिश्रित वैभव से कहीं वैभव मिश्र रस से कहीं शुद्ध वैभव से तो कहीं बान्धव मिश्र वैभव से श्रीकृष्ण परिस्फुरित होते हैं। बीस कोस रूप निज वृन्दावन में केवल निज स्वरूप से अर्थात् वैभव ज्ञान-रहित रसमय विग्रह से विराजमान रहते हैं। श्रीनारायण भट्टजी ने 'ब्रजभक्ति विलास' ग्रन्थ के षष्ठाध्याय के प्रारंभ में ब्रजमण्डल की मर्यादा 84 कोस रूप में बतलाई है। मथुरा को बीच में रखकर चार दिशा में इक्कीस कोस परिमाण से सीमा मर्यादा दी गई। 84 कोस ब्रज मण्डल पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण दिशा के कोण के विचार में चार भाग हैं तथा प्रत्येक भाग 29 कोस परिमित है। पूर्व भाग कोण में हास्यवन, दक्षिण भाग कोण में जन्हुवन, पश्चिम भाग कोण में पर्वतवन, उत्तर भाग कोण में सूर्य पतन वन है। इस प्रकार ब्रज की सीमा चतुष्कोण रूप है। यह शिवादि देवता का मत है। नारदादि मुनिगण मण्डलाकार रूप से, सनकादि ऋषिगण शृंगाकार रूप से वर्णन करते हैं।

पद्मपुराण के यमुना महात्म्य में मथुरामण्डल का वर्णन है कि पहले यायावर नामक जितेन्द्रिय तपस्वी विप्र ने अप्सराओं के रमणीय स्थान पर इन्द्र शाप से पीड़ित होकर तपस्या की। यह स्थान विप्रस्थान नाम से प्रसिद्ध है। श्री यमुना अपने पवित्र जलकणों से उस विप्र को पातक से मुक्त करती हुई तथा रथ के द्वारा उसे स्वर्ग में पहुँचाती हुई मथुरा मण्डल को प्राप्त हुई। अनन्तर कुरु देशों को जो कि शूरसेन राज्य करके प्रसिद्ध है उसको पवित्र करती हुई बारह वन होते हुए विश्रान्ति तीर्थ में आकर केशव भगवान के यहाँ विश्राम करने लगी। यहाँ वासुदेव जी से मिलकर पुन: उनसे आज्ञा लेकर ध्रुवजी के स्थान होकर रेणुकाश्रम (वर्तमान नाम रुनकता) पहुँची। अनन्तर भरताश्रम में जहाँ कि शकुन्तला के अपत्यों ने सात अश्वमेध यज्ञ किये थे वहाँ उपस्थित हुई। अनन्तर पश्चिममुखी होकर मथुरापुरी को पवित्र करने लगी। पुन: पूर्वमुखी होकर शूकर क्षेत्र में पहुँची जहाँ कि भगवान आदि शूकर का जन्म हुआ था।

अनन्तर यमुना पुन: पश्चिममुखी होकर उसकी परिक्रमा करती कुटिलगति से चलकर इष्टकाश्रम जहाँ वसिष्ठजी का महान मंदिर है वहाँ पहुँची। यायावर स्थान से लेकर शौरी बटेश्वर पर्यन्त मथुरा मण्डल की सीमा है ऐसा जानना चाहिए। मथुरा महात्म्य नामक ग्रन्थ में वर्णन है।

मथुरा महात्म्य में श्लोकों की संख्या करीब 482 है जो निम्न प्रकार से है—मंगल चरण 1-2 मथुरा के पापहारित्व 3-16। पुण्य प्रदत्व असंख्यतीर्थों के आश्रयत्व 18-54। मथुरा में निवास करने का उपदेश 55-56। अगति के गतित्व 67-81। भगवान के कृपालम्यत्व 82-85। मोक्षप्रदत्व 86-102। विष्णुलोक प्रदत्व 107 से 109। सर्वाभीष्टप्रदत्व 110-127। प्रपंचातीत्व 128-132। देवत्रयरूपवत्व 133-142। सीमाज्ञान 143-156 मथुरामण्डल का वैशिष्ट्य 158-164। समय विशेष में निवासादिफल-165-201। मधुवनान्तर्गत मधुपुरी माहात्म्य 205-217। काल विशेष में यात्राफल 218-225। श्रीकृष्ण के जन्मस्थान माहात्म्य 226। कार्तिक प्रबोधिनी आदि में जन्मस्थान माहात्म्य 227 से 231। केशवदेवजी माहात्म्य 232 से 236। भगवन्मूर्ति, कृष्णपरिवार, भूतेश्वर, विश्रान्ति, गताश्रम, अर्द्धचन्द्रस्थित 24 मुख्य यमुना तीर्थों का महत्त्व 237 से 298। प्रसिद्ध तीर्थ, गोकर्ण, कृष्णगंगा बैकुंठ तीर्थ असिकुण्ड, चतु:सामुद्रिक, कालिन्दी का माहात्म्य 299-326। काल विशेष में स्नानादिफल 324-338। मथुरा ब्राह्मण, मथुरावासी तथा द्वादशवन का माहात्म्य 339-405। मधुवन, तालवन, कुमुद वन,

काम्यवन, बहुलावन, भद्रवन, खदिरवन, महावन, लोहवन, बिल्ववन, भाण्डीरवन, वृन्दावन तथा इनका माहात्म्य 360-405। गोविन्ददेव जी का माहात्म्य 402-430। द्वादश वन यात्रा क्रम, गोवर्धन परिक्रमा, मानसी गंगा स्नान एवं उन स्थलों में कृत्यकर्म 431-438 गोवर्धन माहात्म्य 439-447। गोवर्धन परिक्रमा 445-446। गोवर्धन स्थित ब्रह्मकुण्ड, उसके चारों ओर स्थित इन्द्र, वरुण, कुबेर, यमराजादि तीर्थों का परिचय 448-451। गोविन्दकुंड का माहात्म्य-452। मथुरा के तीर्थों का परिचय। मथुरा के देवताओं का विवरण 480-482 इत्यादि। [शै०चौ०]

मधुवन दास

मधुवनदास चरणदास जी के शिष्य बनने से पूर्व रामानन्दी वैष्णव अखाड़े के नागा साधु थे। जब इन्होंने चरणदास जी के चमत्कारों के बारे में सुना तो ये प्रभावित होकर उनसे दीक्षित हुए। विभिन्न सम्प्रदायों के कई संतों ने चरणदास जी से प्रभावित होकर दीक्षा ली थी। इनके विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। इनके गुरु भाई जोगजीत जी ने 'लीलासागर' में इनको स्वभाव से संतोषी, आनन्दी, वासना रहित, निर्मोही एवं रागद्वेषहीन बताया है। इन्होंने कोई अपनी गद्दी स्थापित नहीं की। ये अंततक गुरु चरणों में ही रहे। [क०उ०]

मधुसूदन दास

मधुसूदन दास बाबा का जन्म बंगाल के कुलीन ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनका जन्म स्थान, जन्मतिथि एवं माता-पिता के सम्बन्ध में विवरण अज्ञात है। यह बचपन से ही विरक्त प्रवृत्ति के थे। इनकी विरक्त प्रवृत्ति को देखकर इनके माता-पिता ने इनका विवाह करने की सोची। विवाह के दिन, रात्रि में यह घर से भागकर वृन्दावन आ गये। यहाँ आकर बाल्यपन में सुन रखे मोरमुकुटधारी, लीलामयी कौतुकी और श्यामवर्ण वाले बालक की खोज में लग गये। यह दिन-रात उसकी याद में निमग्न एवं खोज में तल्लीन रहते थे। एक दिन किसी ने इनसे कहा कि बिना गुरु के उस मोरमुकुटधारी और श्यामवर्ण बालक के दर्शन नहीं होते। यह इस चिन्ता में पड़ गये कि गुरु की प्राप्ति कैसे हो? एक दिन ये इसी चिन्ता में यमुना किनारे बैठे थे तभी एक महात्मा आये और इनसे कहा कि—"बेटा, जा जमुना में स्नान कर आ। मैं तुझे मंत्र दीक्षा दूँगा।" महात्मा से मंत्र दीक्षा प्राप्त करते ही यह आविष्ट होकर बैठ गये। जब ये चेतना में लौटे तब तक महात्मा अन्तर्धान हो गये। यह उनका नाम एवं पता आदि भी नहीं पूछ पाये। तब उन महात्मा को खोजते हुए सिद्ध कृष्णदास बाबा के पास पहुँचे और उनसे भजन रीति का उपदेश करने के लिए निवेदन किया।

उन्होंने इनसे कहा कि "तुम्हें अपने गुरु के विषय में कुछ पता नहीं है, दोबारा तुम्हें मंत्र दीक्षा नहीं दी जा सकती। तुम काम्यवन के जयकृष्णदास बाबा के पास जाओ।" ये जयकृष्ण दास बाबा के पास गये। उन्होंने भी इनको स्वीकार करने में असमर्थता व्यक्त कर दी। अत्यन्त निराश होकर गिरिराज शिला को बाँधकर ये राधाकुण्ड में कूद गये। जब यह होश में आये तो इन्होंने देखा किसी ने उनके गले की रस्सी खोल दी और हाथ में ताल-पत्र रख दिया था। उस ताल-पत्र को देखकर कहा कि "तुम्हारे ऊपर राधारानी की महती कृपा है परन्तु यह ताल-पत्र अव्यक्त है। अत: पुन: प्रिया जी को पुकारो।" ये राधाकुण्ड पर जाकर आर्तभाव से राधारानी को पुकारने लगे तब राधारानी ने इनको मंत्र का उपदेश किया और सूर्यकुण्ड जाकर भजन करने का आदेश दिया।

तब से यह सूर्यकुण्ड पर जाकर भजन करने लगे। एक दिन राधारानी ने स्वप्न में इन्हें आदेश दिया कि तुम जिस घाट पर स्नान करते हो, उसके पास ही कण्ठ तक के जल में एक शिला है। उस पर मैंने और मेरी दो सखियों ने स्नान करते समय अपने केयूर और अंगदादि रख दिये थे। फलस्वरूप उसके स्पर्श से शिला गल गयी और उस शिला पर उन आभूषणों के चिह्न बन गये। तुम उस शिला को निकालकर उसकी पूजा किया करो। मधुसूदन बाबा ने जल में प्रवेश कर दो-ढाई मन की शिला उठाकर कुण्ड के तट पर रख दी। तब से वह सिद्ध मधुसूदन बाबा कहलाने लगे।

मधुसूदन बाबा फाल्गुनी शुक्ल नवमी के दिन बरसाने होली खेलने जाते थे। रास्ते में ही संज्ञाहीन हो गिर पड़ते जब उठते तब उनके श्वेत वस्त्र लाल रंग में भीगे होते थे। कहते हैं कि एक बार उनकी पत्नी वृद्धावस्था में आपके दर्शन हेतु आयी परन्तु आपने उनसे भेंट नहीं की। इसके कुछ दिन बाद बाबा के पैर में क्षय रोग हो गया। उनका चलना-फिरना दुष्कर हो गया। तब वह देहत्याग का संकल्प कर सघन वन में जाकर पड़ गये। बिना अन्न-जल के वे राधारानी को पुकारते हुए मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगे। तब एक किशोर ब्रजबालिका आयी और उसने बाबा से कहा-"अरे तू हियां काय कूं आयौ पड़ो है? मैं ढूंढ़ते-ढूंढ़ते हैरान है गयी। तू कल रोटी लैबे नाय आयो, परसोऊं नाय आयो। मइया ने तेरे ताईं रोटी भेजी है। खाय ले। शरीर में दु:ख-सुख तो लग्योई रहे है। प्राण तजे तें कहा भजन पूरो होय है? खायले।" किशोरी ऐसा कहकर चली गई। बाबा ने भोजन किया और देखा कि उनका क्षयरोग ठीक हो गया है। बाबा सारा रहस्य समझ गये।

एक बार कार्तिक मास में बाबा ने श्रीमद्भागवत पाठ कराने की इच्छा व्यक्त की। भक्तों ने सहर्ष सारी व्यवस्था कर दी। नित्य पाठ में एक डोम का बालक कथा सुनने आता था। पाठ समाप्ति के दिन वह बाबा की गोद में बैठकर कथा सुनने लगा। पाठ के बीच में ही उसने बाबा से पूछा-"बाबा! श्रीकृष्ण ने रास के पश्चात विश्राम कहाँ किया? सेवाकुंज में या संकेतवन में? बाबा प्रश्न का उत्तर दें, उसके पूर्व बम फटने जैसा शब्द हुआ और उनके प्राण ब्रह्मरन्ध्र भेदकर निकल गये। सूर्यकुण्ड के पास ही बाबा की समाधि आज भी विद्यमान है। [वि०प्र०उ०]

मधुसूदन देव

संप्रदाय के पूर्वाचार्य श्री नारद जी का आप पर विशिष्ट अनुग्रह था। स्वयं नारद जी ने ही मधुसूदन देव जी को मानसरोवर का रहस्य और गोपीश्वर के स्थान के संबंध में आपके ज्ञान को पुष्ट किया। इसके बाद स्वयं गोपीश्वर ने इन्हें वृंदावन धाम के अव्यक्त स्थानों के विषय में बताया। इन्होंने 112 वर्षों तक व्यक्त रूप से वृंदावन में निवास किया। [कुं०बि०श०]

मध्वाचार्य

संसार मिथ्या है—इस विश्वास और विदेशी शासकों की गुलामी के कारण भारतवर्ष अकर्मण्यता के गर्त में डूब गया था। संसार सत्य है—यह भावना जनमानस से लुप्त हो चुकी थी। ऐसे काल में जगद्गुरु श्रीमध्वाचार्य जी देश के धार्मिक एवं दार्शनिक क्षेत्र में प्रकट हुए। उन्होंने यही शिक्षा दी कि संसार को मिथ्या मत मानो, सत्य मानो। परम सत्य ईश्वर से उत्पन्न जीव, जगत आदि सत्य हैं—

ब्रह्म सत्यं तप: सत्यं सत्यञ्चैव प्रजापति:।
सत्याद् भूतानि जातानि सत्यं भूतमयं जगत्॥

द्वैतवाद के प्रवर्तक श्रीमध्वाचार्य जी का जन्म उडुपी, कर्नाटक प्रांत में शाके 1040 (मतान्तर में शाके 1160) में विजयदशमी के शुभ दिन में हुआ। पिता श्रीमध्वगेह भट्ट और माता का नाम वेदवती था। इनका बचपन का नाम वासुदेव था। बाल्यकाल से ही इनमें अलौकिक चमत्कार दिखाई देने लगे थे। पाँच वर्ष की आयु में वासुदेव का यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। तत्पश्चात आचार्य तोटंतिल्लाया के गुरुकुल में अध्ययन प्रारम्भ किया। अत्यन्त मेधावी बालक वासुदेव ने थोड़े ही समय में व्याकरण, काव्य, ज्योतिष, वेद-वेदान्त तथा दर्शन शास्त्र पर अपनी पकड़ मजबूत कर ली।

विद्याध्ययन समाप्त कर मात्र 11 वर्ष की आयु में ही श्रीवासुदेव ने विशुद्धा भक्ति के प्रचारार्थ संन्यास लेने का निश्चय कर लिया। माता-पिता इसके लिए राजी नहीं थे। वृद्धावस्था में और कोई न होने से वासुदेव ही एकमात्र सहारा था। तब वासुदेव ने उन्हें भरोसा दिलाया कि शीघ्र ही मेरे एक छोटे भाई का जन्म होगा, वह आप लोगों की सेवा करेगा। यदि मुझे जाने से रोकते हैं तो मेरे जन्म लेने का उद्देश्य व्यर्थ होगा। माता-पिता को अपने वचनों में विश्वास न होता देख वासुदेव ने कहा-''यह जो सामने सूखा वृक्ष और सरोवर है कल प्रात:काल होते ही वृक्ष पल्लव, फल-फूलों से युक्त हो जाएगा एवं सरोवर भी निर्मल जल से परिपूर्ण हो जाएगा। दूसरे दिन प्रात:काल सचमुच दोनों बातें सत्य हुईं। तब माता-पिता के मन में दृढ़ विश्वास हुआ और संन्यास की स्वीकृति दी।

श्री वासुदेव ने रजतपुर पीठ के श्री अच्युतप्रेक्ष जी से विधिपूर्वक संन्यास दीक्षा ली। श्री गुरुदेव जी ने नाम रखा—पूर्णप्रज्ञ। सचमुच पूर्णप्रज्ञ थे। वे अपनी अलौकिक प्रतिभा से श्रीगुरु जी के भी भ्रम का निवारण करते थे। कुछ समय गुरुजी की सेवा में रहने के पश्चात गंगा स्नान एवं दिग्विजय के निमित्त जाने की इच्छा व्यक्त की। गुरु जी अपने सुयोग्य शिष्य के विछोह की संभावना से व्यथित हो गये। श्री अनन्तेश्वर भगवान से प्रार्थना की। इनकी प्रार्थना पर भगवान प्रसन्न होकर बोले—''आज से तीसरे दिन सामने वाले मध्व सरोवर में श्रीगंगाजी प्रकट होंगी, उसमें स्नान करने से ही गंगा स्नान का पुण्य होगा।'' सत्य ही दूसरे दिन उस सरोवर का जल श्वेत हो गया और तरंगें उठने लगीं। इस अद्भुत घटना से अच्युतप्रेक्ष जी एवं पूर्णप्रज्ञ के हृदय आनन्द से खिल उठे। सरोवर में स्नान कर पूर्णप्रज्ञ जी कृतार्थ हुए और यात्रा स्थगित कर दी। इनके लिए मध्व सरोवर में श्रीगंगा जी के प्रकट होने से वे मध्वाचार्य के नाम से प्रसिद्ध हो गये।

मध्वाचार्य जी की असाधारण पाण्डित्य प्रतिभा दिग्दिगन्त प्रसारित हो गयी। इनकी दिव्य कीर्ति को सुनकर अनेक विद्वान मायावादी तार्किक पण्डित शास्त्रार्थ करने आते, परन्तु मध्वाचार्य जी की विद्वत्ता के सामने कोई टिक नहीं पाता, सभी को परास्त होकर लौटना पड़ता। इससे श्री अच्युतप्रेक्ष जी का मुख गर्व से चमक उठता। अपनी वृद्धावस्था देख श्री गुरुदेव ने पूर्णप्रज्ञ जी को रजतपुर पीठ का उत्तराधिकारी घोषित कर 'आनन्द तीर्थ' नाम से अलंकृत किया। इसी नाम से आचार्य जी अधिक प्रसिद्ध हुए।

श्रीमध्वाचार्य जी ने दक्षिण भारत की तीर्थयात्रा कर बहुतों को अपने मत का अनुयायी बनाया। उन्होंने गीता पर टीका लिखी। उत्तर भारत के तीर्थों के दर्शन करते हुए वे बदरिका आश्रम आये। यहाँ उन्होंने भगवान श्री बद्रीनाथ जी को स्वरचित गीताभाष्य सुनाया। उन्हें भगवान श्रीनर-नारायण एवं श्रीवेदव्यास जी के दर्शन हुए। भगवान श्री व्यासदेव ने प्रसन्न होकर आचार्य जी को श्री शालिग्राम भगवान की मूर्ति प्रदान की एवं ब्रह्मसूत्र के भाष्य तथा महाभारत एवं श्रीमद्भागवत आदि शास्त्रों के तात्पर्य निर्णायक ग्रंथों का प्रणयन कर जीवों के कल्याण के लिए भक्ति प्रचार की आज्ञा दी। श्री मध्वाचार्य जी उत्तर भारत की यात्रा पूर्ण कर पुन: रजतपुर लौट आए। बड़े-बड़े विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित कर अपना शिष्य बनाया, उनमें प्रतिष्ठानपुर के शोबनभट्ट और पुरी के स्वामी शास्त्री थे, जिनका क्रमश: नाम रखा पद्मनाभ तीर्थ एवं नरहरि तीर्थ।

उडुपी में मध्वाचार्य प्रतिदिन प्रात:काल सागर के तट पर ध्यान लगाया करते थे। एक दिन द्वारिकापुरी से किसी व्यापारी का जहाज मालाबार को जा रहा था। तुलुब के निकट जहाज डूबने लगा। जलपोत को आपत्ति में देखकर मध्वाचार्य जी ने अपना वस्त्र हवा में लहराया और पोत डूबने के बदले किनारे आने लगा। जहाज के कप्तान मध्वाचार्य जी के पास भेंट सामग्री लाकर बोला—''भगवन आपकी कृपा से हम मरने से बच गये।'' परन्तु आचार्य जी ने धन-रत्नादि भेंट स्वीकार नहीं की। पोत के संतुलन हेतु रखा एक विशाल गोपी चन्दन का कुन्दा उन्होंने स्वीकार किया। भगवान का अत्यन्त प्रिय गोपी चन्दन के कुन्दे को उठाकर अनन्तेश्वर मंदिर ले आये और सरोवर में डुबोया। जैसे ही कुन्दे को कुण्ड में डुबोया उसमें एक परम सुन्दर श्रीकृष्ण की मूर्ति निकली। बड़े प्रेमभाव से

आचार्यपाद मूर्ति को आश्रम ले आकर नवीन मंदिर में प्रतिष्ठित कर दिया। मथानी और मन्थन रज्जु लिये बालकृष्ण भगवान की अद्भुत मूर्ति का एकमात्र उडुपी में ही दर्शन होते हैं।

वायुदेव के अवतार जो त्रेता में श्री हनुमान जी, द्वापर में श्री भीमसेन जी थे वे ही कलियुग में मध्वाचार्य के रूप में परम प्रसिद्ध हुए। उडुपी में इन्होंने मूल पीठ श्रीकृष्ण मंदिर के अलावा आठ और मठों की स्थापना की, उनमें श्रीसीताराम, द्विभुजकालीय दमन, चतुर्भुज कालीयदमन, श्री विट्ठल जी, श्री नृसिंह भगवान, श्री वाराह भगवान आदि आठ मूर्तियों की स्थापना की। इनके द्वारा रचित ग्रंथों में मुख्य हैं—गीताभाष्य, ब्रह्मसूत्र भाष्य, अणुभाष्य, प्रमाणलक्षण, तत्वविवेक, उपनिषदों के भाष्य, द्वादश स्तोत्र, श्रीमद्भागवत तात्पर्य, श्रीमहाभारत तात्पर्य निर्णय, श्रीकृष्णामृतार्णव एवं श्रीकृष्ण स्तुति आदि।

इनके द्वारा स्थापित मध्व सम्प्रदाय का दक्षिण भारत में अधिक प्रभाव है। 'मध्वविजय' ग्रंथ में इनका विस्तृत चरित्र प्राप्त होता है। अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीमध्वाचार्य जी 80 वर्ष की अवस्था में अपने उत्तराधिकारी श्री पद्मनाभ तीर्थ जी को घोषित कर माघ शुक्ल नवमी को भगवद्धाम सिधारे। श्रीमध्वाचार्य द्वारा प्रतिपादित नौ प्रमेय (सिद्धान्त) इस प्रकार हैं—

हरि: परतम: सत्यं जगद्भेदस्तु तात्विक:।
जीवा: श्रीविष्णुदासास्तत्तारतम्यं परस्परम्॥
मुक्तिर्हरिपदप्राप्तिस्तद्धेतुर्भक्तिरुत्तमा।
प्रत्यक्षादित्रयं मानं वेदवेद्यस्तु माधव:॥

[प्रे०दा०शा०]

मरुत

मरुत अथवा मरुतगण वस्तुत: एक अकेले देव नहीं, वरन् यह एक देवगण का नाम है। वेदों में मरुतगण रुद्र और वृश्नि या पृश्नि के पुत्र हैं। (ऋग्वेद 1.38.4, 1.64.2) और इनकी संख्या 60 की तिगुनी है, किन्तु महाभारत और पुराण, मरुतगण को कश्यप और दिति के पुत्र के रूप में स्वीकार करते हैं। पौराणिक कथा है कि मरुतों के सौतेले भाई इंद्र ने असुरक्षा और ईर्ष्यावश इनकी माता का गर्भ काटकर उसे सात टुकड़ों में बाँट दिया। इस पर भी जब भ्रूण में जीवन का अंत नहीं हुआ तब इंद्र ने प्रत्येक टुकड़े को पुन: सात-सात टुकड़ों में तोड़ दिया, किन्तु एक से टुकड़ों में विभक्त होकर भी भ्रूण में प्राण यथावत रहे, बल्कि वह टुकड़े ही कालांतर में मरुतगण हुए। उन मरुतों के नाम हैं-प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कृथल, कूर्म, देवदत्त, धनंजय, शंभू, प्रवह, विवह, संवह, परिवह, उग्ह, आवह, शंकु, कास, प्रावह, शास, अनिल, प्रतिभ, कुमुद, अनल, शिवि, श्वेत, रक्त, कृष्ण, जित, अजित, झंझाद्योत, ऋतु, सिद्धि, पिग, शुचि, काम्य, मारुत, हनु, कंचन, मंडूक, भीम, कपि, संवर्तक, जड़, अतिजड़, संणत ...।

वेदों में स्तुति की गयी है कि हे मरुति! तुम अंतरिक्ष से हमारे पास आओ। (ऋग्वेद 5.53.8) इससे सिद्ध होता है कि मरुतगण अंतरिक्ष में रहते हैं। यूँ मरुतों को वायुकोण का दिक्पाल भी माना जाता है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार वैदिक देवताओं के गण और परवर्ती देवगणों की कुल संख्या 418 है। जिनका वर्गीकरण क्रमश: 8 वसु, 11 रुद्र, 12 आदित्य और इंद्र व प्रजापति को मिलाकर कुल 33 देवता और इनके अतिरिक्त 30 तुषित, 10 विश्वेदेवा, 12 साध्य, 64 आभास्वर, 49 मरुत, 220 महाराजिक गणों में किया जाता है। उल्लेखनीय है कि हिन्दू धर्म के अतिरिक्त बौद्ध एवं जैन धर्म में भी देवताओं के कई गण अथवा वर्गों को मान्यता दी जाती है।

चारों वेदों में मरु देवता के मंत्र एवं स्तुतियाँ मिलती हैं। ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उभ्दिदो/अमध्यमासो महसा

विवावृधु:। (ऋग्वेद 5.59.6) मरुतगणों में न कोई श्रेष्ठ है, न कनिष्ठ और न ही मध्यम। वे सब एक समान हैं। वेशभूषा से शक्ति तक मरुतगणों में कहीं कोई अंतर परिलक्षित नहीं होता। यह एक साथ निवास करते हैं और एक साथ ही इनका वर्णन किया जाता है। प्रत्येक मरुत के कंधों पर भाला, हाथों में अग्नि के समान तेजस्वी शस्त्र सुशोभित होता है। कुठार, धनुष और चाबुक उनके हाथों की शोभा हैं। मरुतों के रथ को निर्दोष कहा जाता है जो बिना घोड़े, बिना रथी, बिना रक्षक के भी चलता है। उनके घोड़े का नाम 'पृशित' है। वैसे उनके पास चार प्रकार के रथ हैं—अश्व रथ, अनश्व रथ अर्थात् घोड़े के बिना चलने वाला रथ, हरिणी रथ, उड़ने वाला रथ (ऋग्वेद 6.66.7) मरुत ज्ञानी है (प्रचेतस: मरुत:)। मरुत सात पंक्तियों में रहते हैं जिनमें प्रत्येक मरुत का स्थान निश्चित है, इसीलिए इन्हें 'सप्ती' भी कहा जाता है। प्रत्येक पंक्ति के दोनों ओर छोर पर एक-एक रक्षक खड़ा होता है अर्थात् कुल 49 मरुत और 14 रक्षक मिलकर 63 सैनिकों का एक गण (गिने हुए सैनिकों का संघ) बनाते हैं।

पौराणिक साक्ष्यों के साथ-साथ मरुतों के विषय में कुछ भौगोलिक संकेत भी प्राप्त हुए हैं जिनके अनुसार वैशाली नगर के उत्तर-पूर्व में स्थित पहाड़ों पर एक मरुत जाति का निवास था। अनुमान है कि राम भक्त हनुमान संभवत: इसी मरुत जाति से संबंधित रहे होंगे। [उ०श्री०]

महात्मा बुद्ध

महाराज शुद्धोधन और महारानी महामाया के पुत्र महात्मा बुद्ध का जन्म 563 ई.पू. तथा 505 वि.पू. लुम्बिनी (वर्तमान नेपाल) में हुआ था। इनके बचपन का नाम सिद्धार्थ था। बाल्यकाल से ही चिंतनशील, दयालु और त्यागमना सिद्धार्थ का विवाह 16 वर्ष की आयु में यशोधरा से हुआ, जिनसे एक पुत्र राहुल का जन्म हुआ। इसके बाद जीवन में संन्यास का संकल्प और प्रबल हुआ। 30 वर्ष की आयु में सिद्धार्थ गृहत्याग कर सत्य और ज्ञान की खोज में निकल पड़े। उनके गृहत्याग की घटना को 'महाभिनिष्क्रमण' कहा जाता है। 6 वर्ष तक निरंजना नदी के तट पर तपोनिष्ठ होने पर भी इन्हें ईश्वर की प्राप्ति नहीं हुई। फलत: उन्होंने देह को व्यर्थ कष्ट देने का विचार तो त्याग दिया किंतु आत्म-साक्षात्कार की लालसा में कोई कमी नहीं आई। एक पीपल वृक्ष के नीचे बैठकर सिद्धार्थ को सत्य के प्रकाश का अनुभव हुआ। इस वृक्ष को 'बोधिवृक्ष' कहा जाता है, जो बोधगया (वर्तमान बिहार) में स्थित है। इस घटना के बाद सिद्धार्थ 'बुद्ध' हुए और इस घटना को 'सम्बोधि' नाम से जाना गया। महात्मा बुद्ध द्वारा प्रवर्त्तित 'बौद्ध धर्म' विश्वव्यापी होकर सत्य, धर्म, अहिंसा और क्षमा का संदेश युगों-युगों से दे रहा है। शील, समाधि और प्रज्ञा इस धर्म के तीन आधार हैं। आम्रपाली, अंगुलीमाल, सम्राट अशोक, सम्राट कनिष्क जैसे व्यक्तित्त्वों की दिशा बौद्ध धर्म के अनुगमन से बदली। आनंद महात्मा बुद्ध के प्रमुख शिष्य थे। 483 ई.पू. तथा 406 ई.पू. कुशीनगर (वर्तमान उत्तरप्रदेश) में महात्मा बुद्ध को आनंद को अंतिम उपदेश तथा 'महापरिनिर्वाण' (देहावसान) हुआ। बुद्ध के परिनिर्वाण काल के लगभग अवंतिपुत्र मथुरा का शासक था। जिसने बौद्ध धर्म अंगीकार कर लिया था। इससे पूर्व बुद्ध की दो मथुरा यात्राओं का उल्लेख मिलता है। जिसमें उन्होंने पहली बार मथुरा को बहुरजा (अधिक धूल वाली) भूमि बताया तथा दूसरी यात्रा के समय उनके शिष्य आनन्द ने उन्हें उरुमुंड पर्वत दिखलाया। तब उन्होंने अपने देहावसान के सौ वर्ष बाद नट और भट नामक दो धनी भाइयों द्वारा एक बौद्ध विहार के निर्माण तथा उपगुप्त नामक एक गंधी पुत्र के जन्म की भविष्यवाणी की थी; जो उन्हीं के समान सद्धर्म का प्रचारक होगा। वस्तुत: कात्यायन और उपगुप्त द्वारा मथुरा में बौद्ध धर्म का प्रचार और स्थापन किया था। [उ०सा०]

महावीर स्वामी

महावीर या वर्द्धमान इस अवसर्पिणी के अंतिम तीर्थंकर हैं। सिद्धार्थ उनके पिता और त्रिशला उनकी माता थीं।

महावीर का जन्म पटना के समीप कुंडा ग्राम में 589 ई.पू. में और निर्वाण 72 वर्ष की अवस्था में राजगिर के निकट पावापुरी में 527 ई. पूर्व में हुआ था।

महावीर, बुद्ध के समकालीन और ऐतिहासिक व्यक्ति थे। इनके लांछन सिंह और यक्ष-यक्षी मातंग एवं सिद्धायिका (या सिद्धायिनी) हैं। महावीर की प्राचीनतम मूर्ति कुषाणकाल की है। मथुरा से मिली ऐसी सात मूर्तियों में पीठिका लेख पर वर्द्धमान या महावीर स्वामी का नाम उत्कीर्ण है। वाराणसी से मिली और भारत कला भवन, वाराणसी में सुरक्षित छठी शती ई.पू. की मूर्ति ध्यानमुद्रा में ऊँची पीठिका पर विराजमान है। महावीर के साथ सिंह लांछन भी उत्कीर्ण है।

महावीर के जीवन दृश्यों का अंकन कुषाणकाल में ही प्रारंभ हो गया था जिसका प्रारंभिक उदाहरण मथुरा से प्राप्त वह फलक है, जिस पर उनके गर्भ परिवर्तन का दृश्य उत्कीर्ण है। इस प्रकार महावीर की मूर्तियों के अध्ययन से स्पष्ट है कि उनके यक्ष-यक्षी का पारंपरिक या कोई स्वतंत्र स्वरूप कभी स्थिर नहीं हो सका। केवल देवगढ़, खजुराहो, ग्यारसपुर एवं राजपूताना संग्रहालय, अजमेर की कुछ मूर्तियों में ही स्वतंत्र लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी निरूपित हैं।

उत्तरप्रदेश में महावीर की मूर्तियाँ अशवखेरा, ककुभग्राम, करगुंवा, झांसी, मदनपुर, महोबा, लखनऊ, ललितपुर, वाराणसी एवं सोरई से प्राप्त हुई हैं। अशवखेरा से प्राप्त महावीर की ध्यानस्थ मूर्ति में पारंपरिक यक्ष-यक्षी के स्थान पर गोमुख एवं चक्रेश्वरी, अंबिका, पद्मावती यक्षियों और क्षेत्रपाल के चित्रण दुर्लभ विशेषताएँ हैं। [आ०प्र०श्री०]

महाशिवरात्रि

फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी को महाशिवरात्रि का व्रत किया जाता है। ब्रज में भगवान शिव के द्वारा गोपी रूप धारण कर युगल सरकार के महारास के दर्शन करने का प्रसंग भी इस दिन प्रचलित है। वृंदावन का प्राचीन गोपेश्वर महादेव मंदिर इस कथा का साक्षी है। ब्रज के विभिन्न वैष्णव सम्प्रदाय के साधकों ने शिव के इस स्वरूप की आराधना की है। ब्रज में शिवार्चन की परंपरा अति प्राचीन है। राजकीय संग्रहालय मथुरा एवं भरतपुर में विद्यमान कुषाण कालीन शिवलिंग उसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। मध्यकाल के दौरान भी यहाँ के भक्ति आंदोलन में शिव की आराधना एवं ब्रजभूमि के रक्षक के रूप में शिव की मान्यता ने इन्हें शहर कोतवाल की संज्ञा दी थी। अब्दाली के द्वारा ब्रज पर किये गये हमले के दौरान राधावल्लभ संप्रदाय के साधक चाचा हित वृंदावन दास ने वृंदावन के रक्षक गोपेश्वर, पुरी (मथुरा) के रक्षक भूतेश्वर एवं तलहटी (गोवर्धन) के रक्षक चकलेश्वर से ही रक्षा की गुहार की जो यहाँ भगवान भोलेनाथ के प्रति अचल निष्ठा का प्रतीक है—

वन रक्ष गोपेसुर, पुरी रक्ष भूतनाथ, गिरि की तरहटी चक्रेसुर रक्षा करौ।
जननि की रक्षा भाँति-भाँति ब्रजभूमि राखौ गउनि की रक्षा गोपाल वेश अनुसरौ॥

(हरि कला बेली छन्द 156, चाचा वृंदावनदास 18वीं शताब्दी)

इससे पूर्व जहाँगीर के शासनकाल के दौरान रचित जहाँगीर जस चंद्रिका में भी प्रसंगवश मथुरा के भूतनाथ (भूतेश्वर महादेव) का उल्लेख मिलता है जो यहाँ शिव की तत्कालीन महत्ता का बोध कराने वाला है। वल्लभ कुल के कवि जगतानन्द ने भी ब्रज वस्तु वर्णन रचना में ब्रज के प्राचीन महादेवों का उल्लेख किया गया है। फाल्गुन के उत्सवों में शिव चौदस का व्रत और लोक-त्यौहार भी उल्लेखनीय है। यह लोकोत्सव फाल्गुन 14 को मनाया जाता है। उससे एक दिन पहले तेरस की रात को शिवरात्रि का जागरण करते हुये विवाह के लोकगीत गाये जाते हैं। जोगी लोग अपनी सारंगी और डमरू पर महादेव-पार्वती के विवाह की लोक कथा का गायन करते हैं। दूसरे दिन नर-नारी व्रत रखते हैं

और महादेव जी की पूजा करते हैं। उसी दिन नव विवाहित दम्पत्ति के साथ महादेव-पार्वती जी के मंदिर में जेहर चढ़ायी जाती है। वे मिट्टी को कोरी गागरों में पानी भरकर गाती-बजाती हुई महादेव जी के मंदिर में जाती हैं और वहाँ नव दम्पत्ति से महादेव-पार्वती का पूजन कराकर उन गागरों को अर्पित कर देती हैं। शिवरात्रि की तिथि के विषय में एक मान्यता यह भी है कि फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी के दिन शिवजी ने समुद्र-मंथन के पश्चात् गरल पान किया था तथा मूर्च्छित हो गये थे। इस कारण सृष्टि में चारों ओर हाहाकार मच गया था। मान्यतानुसार तभी से यह व्रत प्रचलित हुआ है। [प्र०श०]

मांगलिक प्रतीक

ओम—ॐ सृष्टि का आद्याक्षर है। यह सृष्टि का मूलाधार है। इसे प्रणवाक्षर के नाम से भी जाना जाता है। लोकमानस में ॐ को शिव और शिवत्व से जोड़कर देखा जाता है किंतु इसमें सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, सृष्टिपालक विष्णु और सृष्टि संहारक महेश तीनों की ही विद्यमानता अथवा व्याप्ति है। ॐ मंत्रराज है। अधिकांश देवों और शक्तियों के मंत्रों में ॐ का महत्त्व स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है। सनातन हिंदू वैदिक धर्म के साथ ही बौद्ध धर्म, जैन धर्म, सिक्ख धर्म आदि में भी ॐ की सर्वोपरिता को स्वीकार किया गया है। तैत्तरीय, छांदोग्य, मांडूक्य आदि उपनिषदों तथा गीता जैसे ग्रंथों में ॐ की महत्ता का प्रतिपादन किया है। ओ३म् का प्रथम अक्षर अकार किसी तत्व (पृथ्वी, वृक्ष) आदि का प्रतिनिधित्व करता है। ॐकार आकारहीनता (जल, अग्नि, वायु) की स्थिति का प्रतिनिधित्व है वहीं मकार न ही आकार है और न ही आकारहीन है किंतु ब्रह्मांड में सदैव ही व्याप्त है। ओ३म् आदि नाड़ी का भी प्रतिपादक है।

कंठी—कंठी शब्द कंठ से निर्मित है। कंठ गले को कहते हैं और जो कंठ में धारण की जाए वह कंठी होती है। ब्रज में तथा वैष्णवों में अधिकांशत: तुलसी से निर्मित कंठी को धारण करना श्रेयस्कर माना गया है। कंठी एक धार्मिक और मांगलिक प्रतीक है। ब्रज में प्रचलित सभी संप्रदायों में कंठी धारण करने के महत्त्व को अंगीकार किया गया है। कंठी शिष्यत्व, वैष्णवत्व तथा धर्मत्व का प्रतीक है। गुरु दीक्षा ग्रहण करने को ही कंठी लेने, कंठी बाँधने तथा शिष्यत्व ग्रहण करने के रूप में माना गया है।

कमल—कमल सौभाग्य, मंगल, ओज, आरंभ, समृद्धि, शुभता और उच्चस्थिति का पर्याय मांगलिक प्रतीक है। ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी जी को कमल पुष्प अत्यंत प्रिय है। श्रीसूक्त में इनकी उपासना 'पद्मस्थिता' और 'पद्मवर्णा' आदि नामालंकारों से की गई है। कमल श्रीपति भगवान विष्णु के बायें करकमल में सदैव विद्यमान रहता है। कमल को पद्म, जलज, पंकज, नीरज आदि नामों से भी जाना जाता है। ब्रह्मा, सरस्वती तथा कुबेर आदि देवताओं को भी कमल पुष्प अर्पित कर प्रसन्न किया जाता है। विष्णु, राम और कृष्ण के नयनों की उपमा कमल से की गई है। योगनिद्रा में लीन विष्णु की नाभि से प्रकट कमल से ही ब्रह्मा अवतीर्ण हुए। श्रीमद्भागवत गीता के पाँचवें अध्याय के दशम श्लोक में वर्णित है जो निःस्वार्थ भाव से अपने कर्मों का संपादन करता है और परिणाम को परमात्मा की इच्छा को अर्पित कर देता है, वह पाप से वैसे ही निर्लिप्त रहता है जैसे कमल जल में होने पर भी उससे स्पर्श नहीं होता।''

कलश—मांगलिक प्रतीकों में कलश का महत्त्वपूर्ण स्थान है। किसी भी मांगलिक आयोजन में घट या कलश स्थापन महत्त्वपूर्ण होता है। कलश मिट्टी, चाँदी, ताँबा आदि के धार्मिक आयोजनों में प्रयोग किए जाते हैं। कलश में जल भरकर उसमें देवताओं के वास की भावना की जाती है। कलश को पंच पल्लव, श्रीफल, पुष्प आदि से सुशोभित कर पूजन किया जाता है। इसे पूर्ण कलश, पूर्ण कुंभ तथा पूर्णघट की भी संज्ञाएँ प्रदान की गई हैं। वेदों के अनुसार कलश संपन्नता और जीवनीय शक्ति का स्रोत है। इसलिए इसे अमृत कलश, सोम कलश, इंद्र कलश के रूप में भी जाना जाता है। जगत्पिता ब्रह्मा, देवी लक्ष्मी तथा धनवंतरि भगवान के हाथों में कलश शोभायमान रहता है।

गणेश—गणेश आदि पूज्य देव हैं। प्रत्येक शुभ कार्य के प्रारंभ से पूर्व गणेश पूजन का विधान निर्दिष्ट है। गणेश के

आवाहन, उपस्थिति और प्रसन्नता को सभी विघ्नों और अमंगलों का उन्मूलक माना गया है। गणेश ज्ञान, विज्ञान के अधिष्ठाता, प्रज्ञा प्रदायक, रिद्धि, सिद्धि, आध्यात्मिक शक्ति सहित समस्त मंगलों के दायक देव हैं। धार्मिक अनुष्ठान, विद्यारंभ, विवाह, गृह प्रवेश सहित कामना सिद्धि के लिए गणेशजी का पूजन सर्वप्रथम किया जाता है। मोदकप्रिय एवं दूर्वाप्रिय, मूषकध्वज गणेश माँ गौरी अथवा पार्वती के अनुज पुत्र हैं। वास्तुशास्त्रांतर्गत घर के मुख्य द्वार पर विराजमान गजानन समस्त मंगलों को प्रदान करते हैं। सिद्धि विनायक, लंबोदर, गिरिजात्मज, मयूरेश्वर, हेरंब, विघ्नराज, एकदंत, गजानन, महागणपति आदि विभिन्न रूपों में इनका पूजन होता है। शिवगणों में प्राधान्य प्राप्त होने से ये गणाध्यक्ष भी हैं। गणेश को ब्रह्मा, विष्णु, महेश, अग्नि, वायु, इंद्र, सूर्य, चंद्र तथा त्रिलोकस्वरूप ओंकार माना गया है। दक्षिण भारत में गणपति को अग्रज वहीं उत्तर भारत में कार्तिकेय को इनका अग्रज माना जाता है। शरीर में मूलाधार चक्र में इनकी विद्यमानता मानी गई है।

गदा—गदा जगत्पालक विष्णु का प्रमुख आयुध है। यह उनके बायें निचले हाथ में शोभायमान होती है। इसे कौमोदकी गदा कहा जाता है। पौराणिक काल में गदा युद्ध-शक्ति और सामर्थ्य का प्रतीक था। यह वस्तुत: मल्ल विद्या का ही एक अंग है। हनुमान, बाली, सुग्रीव, बलराम, भीम, जरासंध, दुर्योधन आदि गदायुद्ध के पौराणिक आचार्य कहे जाते हैं। बलरामजी भीम और दुर्योधन के गुरु थे वहीं इन दोनों का गदायुद्ध महाभारत युद्ध के अंतर्गत महान युद्ध था। गदा स्वर्ण तथा लोहे की होती है। वर्तमान में ब्रज प्रदेश में मल्लयुद्ध अथवा कुश्ती प्रतियोगिता के विजेता को जो चाँदी अथवा पीतल की गुर्ज पुरस्कार स्वरूप प्रदान की जाती है, वह वास्तव में गदा का ही स्वरूप है जो शक्ति, बल, विजय और सामर्थ्य के प्रतीक स्वरूप भेंट की जाती है। गदा की आकृति एक मूँठ के ऊपर गोलाकार सिर के रूप में होती है। गदा को एक अथवा दोनों हाथों से चलाया जाता है। यह आयुध के साथ-साथ व्यायाम करने का एक उपकरण भी है, जिसे मुद्गर के रूप में जाना जाता है। अग्नि पुराण और महाभारत में गदा चलाने की विविध विधियों का विशद वर्णन है। इनमें प्रमुख हैं—गौमूत्र, अहत, प्रभृत, परावृत्त, कमलासन, नमित, ऊर्ध्वगत्र, अंसमार्ग, विभग, आवृत्त, अवप्लत, पदोद्धृत, वामदक्षिण आदि।

गौ—गावो विश्वस्य मातर:। हिंदू धार्मिक मान्यताओं में गाय को माँ की संज्ञा दी गई है। अपने वात्सल्य के कारण ही गाय श्रीकृष्ण की प्रिय हैं। श्रीकृष्ण का जन्म ही गौपालक वंश में हुआ। गायों के रक्षक होने के कारण ही कृष्ण का एक नाम गोविन्द भी पड़ा। स्वयं परब्रह्म ने गाय के प्रति श्रद्धा, प्रेम और सुरक्षा का भाव प्रदर्शित कर इसे जन-जन के लिए पूज्य बना दिया। ब्रज में गौ सेवा का बड़ा महत्त्व है। गौपालन से घर में समस्त सिद्धियाँ और मंगल होते हैं। गाय के शरीर में समग्र देवताओं (33 करोड़) का निवास स्थान माना गया है। भगवान शंकर भी गौवंश को श्रद्धा का पात्र बनाते हैं। उनके वाहन वृषभराज नंदी गौवंशी ही हैं।

चक्र—चक्र वैष्णव शक्ति के रूप में प्रतिपादित मांगलिक प्रतीक है। सुदर्शन का शाब्दिक अर्थ 'सु' अर्थात् दिव्य तथा दर्शन अर्थात् दिव्य दर्शन है। यह भगवान विष्णु के दाहिने ऊपरी हस्तकमल में क्रमश: शंख, पद्म और कौमोदकी गदा के साथ सुशोभित रहता है। केवल भगवान विष्णु और विष्णु अवतार कृष्ण ही चक्र धारण करते हैं। इस चक्र का नाम सुदर्शन है। द्वैताद्वैत सिद्धांत के प्रवर्तक जगद्गुरु श्री निंबार्काचार्य स्वयं श्री सुदर्शन चक्रावतार हैं। समस्त वैष्णव संप्रदायों से संबंधित संप्रदाय में तिलक के साथ ही शंख और चक्र भी वैष्णव प्रतीक के रूप में स्वीकार्य एवं पूजित हैं। सुदर्शन को ब्रह्मांड में व्याप्त समस्त आयुधों में सर्वश्रेष्ठ और विष्णु भक्तों का रक्षक माना गया है। सुदर्शन कवच का स्तवन समस्त भय एवं अमंगलों का नाश करने वाला है। दुर्वासा ऋषि से विष्णु भक्त महाराज अंबरीष की रक्षा और चेदिराज शिशुपाल का मोक्ष सुदर्शन चक्र से ही हुआ है। पौराणिक मान्यता के अनुसार शिव ने भगवान विष्णु की भक्ति से प्रसन्न होकर उन्हें सुदर्शन चक्र प्रदान किया किंतु भार के कारण इसे धारण करना मुश्किल था, अत: शिव ने इसे तीन भागों में विभक्त कर एक भाग विष्णु तथा एक भाग शक्ति को प्रदान किया तथा तीसरा भाग स्वयं अपने पास रख

लिया। भगवान विष्णु ने इसी चक्र से शिव का संताप मिटाने के लिए सती की दिव्य देह के 51 भाग कर दिए, जहाँ अब 51 शक्तिपीठ बने हुए हैं। एक अन्य मान्यता के अनुसार देवशिल्पी विश्वकर्मा ने सूर्य के तेज से सुदर्शन चक्र का निर्माण किया।

डमरू—सनातन धर्मावलंबियों विशेषत: शैव भक्तिधारा में भगवान शिव के वाद्य डमरू को विशेष श्रद्धा-स्वीकार्यता प्रदान की गई है। डमरू की गड़गड़ाहट भगवान शिव को प्रिय है। कल्याण और प्रलयंकारी तांडव नृत्य में डमरू की संगत महत्त्वपूर्ण है। डमरू की भय, अज्ञान और अंधकार के उन्मूलक मांगलिक प्रतीक के रूप में मान्यता है। डमरू भगवान शिव के दाहिने हाथ में सुशोभित होता है। डमरू हिंदू और तिब्बती बौद्ध धर्म का प्रमुख वाद्य है। शिव सूत्र में डमरू की धुनों में ही संस्कृत भाषा का अस्तित्व माना गया है। धार्मिक मान्यता के अनुसार डमरू सृष्टि की उत्पत्ति के कारक लिंग और योनि की स्थिति और आकृति को स्पष्टत: परिलक्षित करता है। डमरू लकड़ी से बना होता है, जिसके दोनों ओर खाल या चमड़ी की परत चढ़ी रहती है, जहाँ से इसे बजाया जाता है।

तिलक—तिलक ललाट या मस्तक पर लगाया जाने वाला मांगलिक प्रतीक है। तिलक शुभता, इष्ट के प्रति सान्निध्य, सद्गुरु के प्रति श्रद्धा, संप्रदाय के प्रति आस्था और धर्म के प्रति समर्पण भावना का प्रतीक है। तिलक रोली, हल्दी, गोरोचन आदि के साथ-साथ ब्रज में यमुनाजी की मिट्टी, द्वारका के गोपीकुंड से प्राप्त होने वाले गोपीचंदन तथा ब्रज की रज से लगाया जाता है। तिलक को छाप भी कहते हैं क्योंकि यह अपने आराध्य का ललाट पर जागृत प्रतिनिधित्व अथवा प्रमाण है। ब्रजवासियों में तिलक के प्रति अभूतपूर्व श्रद्धा, समर्पण और लगाव देखा जा सकता है। ब्रज में व्याप्त रामानुज, रामानंदीय, निंबार्क, वल्लभ, गौड़ीय, राधावल्लभीय, चरणदासी तथा हरिदासी संप्रदायों में तिलक की छाप या पहचान तथा लगाने और लगाए जाने वाले पदार्थ की पृथक-पृथक श्रेणियाँ हैं। संप्रदायाचार्य प्रणीत तिलकों के अतिरिक्त उसी पर आधारित उपाचार्यों द्वारा प्रणीत तिलक तथा तिलक लगाने की पद्धति ब्रज में प्रचलित है। तिलक को मस्तक, हृदय, उदर, कंठ, बाहुओं, कान आदि अंगों पर अपने इष्ट अथवा सद्गुरु आचार्य के नाम स्मरण के साथ लगाया जाता है। वैष्णवों में भगवान विष्णु के 12 प्रमुख अवतारों के नाम स्मरण का भी विधान किया गया है अन्यथा जप, दान, होम, तर्पण आदि सद्कार्य निष्फल हो जाते हैं। तिलक लगाने वाले पदार्थ से यथासंभव नखों का स्पर्श नहीं होना चाहिए। वैष्णव तिलक का आकार दो से दस अंगुल तक होना चाहिए। वैष्णवों का तिलक ऊर्ध्वपुण्ड्र अर्थात् मस्तक पर एक से अधिक खड़ी रेखाओं वाला होता है। तिलक लगाने हेतु इष्ट को अर्पित चंदन से बचे चंदन का ही प्रयोग किया जाना चाहिए। तिलक को सदैव बैठकर ही लगाना चाहिए। वैष्णव तिलक लगाने के लिए नदियों के तट, पर्वत शिखर, विष्णु के प्रियस्थल, वाल्मीक (दीमकों की बांबी) या तुलसी की जड़ की मिट्टी का भी प्रयोग किया जा सकता है। शैव मतानुसार त्रिपुंड अथवा ललाट पर तीन आड़ी रेखाएँ तिलक का स्वरूप हैं। मध्य में बिंदी अथवा गोलाकृति शिव के साथ शक्ति का प्रतीक है। जो वस्तुत: समग्र सृष्टि का आधार माना गया है। लगभग प्रत्येक संप्रदाय में महिलाएँ विशेषत: बिंदी को ही तिलक के रूप में स्वीकार करती हैं। सायंकाल सूखी भस्म का तिलक लगाया जाता है।

त्रिशूल—शैव धर्मावलंबियों में त्रिशूल विशेष रूप से मांगलिक प्रतीक माना गया है। यद्यपि शैव के साथ ही वैष्णवों में भी कल्याणकारी भगवान शिव का प्रियतम आयुध होने के कारण त्रिशूल विशेष श्रद्धा पाता है। त्रिशूल में तीन शूल होते हैं जो उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय; भूत, भविष्य और वर्तमान तथा सत्व, रज और तम के द्योतक हैं। मानव शरीर में भौंहों के मध्य में त्रिशूल का प्रतिनिधित्व है, जहाँ इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना नाड़ियाँ मिलती हैं तथा यह सदैव भगवान शिव के समक्ष उपस्थित रहते हैं। भगवान शिव ने प्रलयंकारी रुद्र रूप में त्रिशूल से अनेकों दुष्टों का दमन किया है। माँ दुर्गा के आयुधों में भी त्रिशूल का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

तुलसी-पूज्य वैष्णव वृक्षों में तुलसी को अग्रगण्य माना गया है। तुलसी को नारायण स्वरूप शालिग्राम की

अर्धांगिनी माना जाता है। पौराणिक आख्यान के अनुसार तुलसी का प्राकट्य समुद्र मंथन के समय अमृत कलश लेकर निकले धनवंतरि के आँसू की बूँद से हुआ। जब उनकी आँखों से अमृत प्राप्ति के हर्ष में आँसू अमृत में छलका तो तुलसी का प्रादुर्भाव हुआ। इन्हें भगवती लक्ष्मी का अवतार माना जाता है। ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार तुलसी सीता का अवतार हैं। चातुर्मास के अंतिम दिन कार्तिक पूर्णिमा के दिन तुलसी-शालिग्राम (नारायण) का विवाह होता है। इसी दिन से विवाह मुहूर्तों का शुभारंभ हो जाता है। कार्तिक मास में तुलसी आराधना का महत्त्व सर्वाधिक स्थापित है। गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय में तुलसी पूजन और विवाहोत्सव को विशेष हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। वैष्णवों में तुलसी की कंठी धारण करने का विधान है। मान्यता है कि तुलसी धारण करने वालों पर हनुमान जी कृपा बनी रहती है क्योंकि हनुमानजी वैष्णवों के रक्षक हैं। वाराणसी में हनुमान मंदिरों के निकट तुलसी वृक्षों को देखा जा सकता है। वैष्णवों के घरों के आँगन में तुलसी के पौधे की उपस्थिति शुभ, अमंगलनाशक और समृद्धिदायक मानी गई है। तुलसी मोक्षकारक भी है अत: मरणासन्न को मोक्ष प्राप्ति हेतु तुलसी गंगाजल अथवा ठाकुरजी (वैष्णव) विग्रह का चरणामृत पान कराया जाता है। राम तुलसी हल्के हरे रंग के बड़े पत्तों वाली होती है वहीं श्यामा तुलसी गहरे हरे रंग की होती है ब्रज क्षेत्र में तुलसी की पैदावार बहुतायत से होती है जिससे यहां कंठी एवं जप माला बनाकर बाजार में निर्यात होती हैं जो वस्तुत: ब्रज क्षेत्र में एक उद्योग के रूप में स्थापित है।

दीप—दीप ज्योति धर्म की उज्ज्वलता की प्रतीक मानी गई है। दीप शुभता का भी प्रतीक है। दीप ज्योति को शत्रु बुद्धि विनाशक माना गया है। किसी धार्मिक अथवा शुभ कृत्य या अनुष्ठान का शुभारंभ दीप प्रज्ज्वलन से ही किया जाता है। कर्मकांड में दीप प्रज्ज्वलन और उसका दीप नारायण के रूप में पूजन किया जाता है। दीपक मिट्टी अथवा धातु के बनाए जाते हैं। दीपावली, देव दीपावली (देवोत्थान एकादशी), जन्मदिवस आदि पर दीप जलाना शोभा, मांगलिकता, शुभता तथा शांति का प्रतीक स्वरूप माना गया है। दीप अधिकांशत: शुद्ध देशी घी के ही जलाए जाते हैं। किंतु शनिदेव आदि का दीपक सरसों के तेल से प्रज्ज्वलित किया जाता है।

दुपट्टा—दुपट्टा एक धार्मिक मांगलिक पहनावा है। दुपट्टा ब्रज में ठाकुरजी के शृंगार का अभिन्न अंग है। यह कंधे पर धारण किया जाने वाला अंगवस्त्र है। यह सम्मान का प्रतीक है जो किसी को सम्मानित करते समय उसके कंधे पर डाला जाता है। दुपट्टा कलात्मक जरी और रेशम का भगवद्नाम से सुशोभित और कीमती तथा साधारण से साधारण भी हो सकता है। ग्रीष्म ऋतु में कली शृंगार के अंतर्गत फूलों की कली का दुपट्टा ठाकुरजी को धारण कराया जाता है। ब्रज के गोस्वामी समुदाय तथा पंडित वर्ग में दुपट्टा धारण करने की रीति काफी प्रचलित है। दुपट्टा महिलाओं और युवतियों द्वारा धारण किए जाने वाले परिधान को भी कहते हैं। इसे एक अथवा दोनों कंधों पर ही धारण किया जा सकता है। अधिकांशत: कुर्ता, बगलबंदी अथवा कमीज से मिलता-जुलता दुपट्टा ही धारण किया जाता है। इसे माला की तरह छाती को ढकते हुए दोनों कंधों पर भी डाला जाता है।

ध्वजा—ध्वजा धर्म का प्रतीक है। यह मांगलिक चिह्न है। वस्तुत: यह देव मंदिर, धर्म आश्रम या गृहों पर सुशोभित होती है। ध्वजा प्रमुखत: भगवा मानी गई है। देव के अनुसार ही ध्वजा का रंग होता है। जैसे गणेश, हनुमान और शक्ति की ध्वजा लाल, राम, कृष्ण आदि वैष्णव शक्तियों की ध्वजा का रंग पीत (पीला) होता है। शनिदेव और माँ काली की ध्वजा काली होती है। मंदिर के शिखर पर सुशोभित ध्वजा धर्म की सर्वव्यापकता की प्रतीक मानी गई है। ध्वजा में देव-दर्शन का भाव निहित होता है। वल्लभ संप्रदायांतर्गत श्रीनाथ जी की ध्वजा को स्वयं श्रीकृष्ण (श्रीनाथ) स्वरूप में ही पूजन किया जाता है।

नंदी—भगवान शिव के वाहन नंदी शिव परिकर अथवा परिवार में कल्याणकारी गौवंश के प्रतिनिधि हैं। नंदी भगवान शिव के प्रमुख गणों में सम्मिलित किए जाते हैं। अत: हिंदू सनातन परंपरा में ये एक मांगलिक प्रतीक के रूप में प्रतिष्ठित हैं। शिव पूजन के विधान में निर्दिष्ट है कि सर्वप्रथम आदिदेव गणेश का पूजन किया जाता है। इसके बाद

नंदी का और फिर शिव और शक्ति का पूजन किया जाता है। इस तथ्य से नंदीश्वर का महत्त्व प्रकाशित होता है। नंदीश्वर सदैव शिवाभिमुख होकर शिवालय के द्वार पर ही विराजते हैं। मानो सदैव अपने स्वामी की आज्ञा शिरोधार्य करने को उत्कंठित-तत्पर हों। नंदी को वृषभराज भी कहा जाता है। पतंजलि और थिरूमुलर सहित 18 सिद्धों के प्रधान गुरु नंदी ही हैं। एक धार्मिक मान्यता के अनुसार भगवान विष्णु ही नंदी स्वरूप हैं क्योंकि भगवान शंकर का भार सहन करने का सामर्थ्य केवल उन्हीं में हो सकता है। पौराणिक आख्यान के अनुसार नंदी शिलाद् ऋषि के पुत्र हैं जो उन्हें भगवान शिव की प्रसन्नता के फलस्वरूप ही प्राप्त हुए। नर रूप में नंदी मुख वाले नंदीश्वर के दो मुख हैं। जिनके एक हाथ में परशु (फरसा) और दूसरे हाथ में मृगचर्म है। चार हाथों से सुशोभित पशुरूप नंदीश्वर के दो हाथ पूर्ववत हैं वहीं दो अन्य हाथ श्रद्धा के साथ अपने आराध्य के समक्ष अंजुलि बाँधे हुए हैं।

नटराज—नटराज नृत्य के देवता के रूप में भगवान शिव की मांगलिक आकृति है। दक्षिण भारत में इस मूर्ति की विशेष मान्यता मानी गई है। नर्तकों और रंगकर्मियों द्वारा नटराज की विशेष रूप से आराधना की जाती है। नटराज के नृत्य की वस्तुत: दो भाव भंगिमाएँ होती हैं। लास्य भाव में नृत्य के सौम्य तथा सृष्टि की उत्पत्ति का कारक माना गया है। वहीं तांडव भाव में नृत्य को सृष्टि के संहार एवं प्रलय से जोड़ा गया है। नटराज के ऊपरी दायें हाथ में डमरू, मस्तक पर अर्ध चंद्र, ऊपरी बायें हाथ में अग्नि सुशोभित है। दूसरा दायाँ हाथ अभय मुद्रा तथा बायां दूसरा हाथ नृत्य भंगिमा में उठे हुए पैर की तरफ उत्थान और मुक्ति के भाव को इंगित करता है। महादेव अग्निचक्र के मध्य नृत्यरत हैं जो प्रत्यक्ष ब्रह्मांड का प्रतीक है। नृत्य करते हुए नटराज की जटाएँ खुल जाती हैं जो सदैव गंगा को धारण करने के लिए बँधी रहती हैं तथा ब्रह्मांडीय तत्त्वों से टकराती हैं। जिस यक्ष पर नटराज नृत्य कर रहे हैं वह शिवत्व की अज्ञान पर विजय को प्रतिबिंबित करता है। शिव की दायीं भुजा और कटिभाग में लिपटा नाग उस शक्ति का प्रतीक है जो सबके भीतर कुंडलिनी के रूप में व्याप्त है। नटराज की उदासीन मुखाकृति उनकी व्यापकता और तटस्थता के भाव को परिलक्षित करती है।

पादमूल (तलवा)—पादमूल हिंदू सनातन संस्कृति का अभिन्न अंग है। वैष्णवों में लगाया जाने वाला ऊर्ध्वपुंड तिलक वास्तव में अपने इष्ट अथवा आराध्य के पादमूल का ही प्रतीक है। वस्तुत: गुरु तथा इष्ट के पादमूल अत्यंत श्रद्धा के पात्र हैं। भगवान के चरणकमल शंख, चक्र, गदा, पद्म, यव, धनुष, ध्वजा, तीर, वज्र, अंकुश आदि से सुशोभित होते हैं। श्रीकृष्ण तथा श्रीराम का दायाँ पादमूल क्रमश: श्रीराधा जी तथा जानकी जी के बायें चरणकमल की प्रतिकृति होता है। पादमूल श्रीविग्रह सदृश ही पूज्य माने गए हैं।

पादुका—पादुका भारत का सबसे प्राचीन पदत्राण है। संपूर्ण भारत में यह विभिन्न रूपों और प्रकारों में उपलब्ध होती है। लकड़ी, हाथीदाँत, चाँदी, सोने आदि से निर्मित पादुकाएँ अलग-अलग आर्थिक क्षमता के लोगों द्वारा प्रयोग में लाई जाती रही हैं। आंचलिक भाषा में इन्हें खड़ाऊँ भी कहा जाता है। ऐसा संभवत: इसलिए है कि ये चलते समय खट-खट की आवाज करते हैं। संतों, भिक्षुओं और धार्मिक व्यक्तित्वों द्वारा इन्हें पवित्रता की दृष्टि से पहना जाता है। पादुका का आशय विष्णु, शिव जैसे देवों के चरणचिह्नों से भी लगाया जाता है। भगवान बुद्ध के चरण बोध गया में बोधिवृक्ष के नीचे पूजित हैं। गया धाम का विष्णुपद मंदिर में भगवान विष्णु के पदों अथवा चरणों का पूजन किया जाता है। पादुका पूजन सनातन धर्म परंपरा का अक्षुण्ण अंग है। गुरु परंपरा में पादुका को गुरु की साक्षात उपस्थिति के रूप में स्वीकार किया जाता है। श्रीराम के अनुज भक्त भरत ने अग्रज-आराध्य श्रीराम के स्वर्ण रत्न जड़ित पादुका सिर पर धारण किए और चौदह वर्ष तक उन्हें ही अयोध्या का अधिपति मानकर सेवा-पूजा-आराधना और आज्ञापालन किया था और स्वयं अवध के कार्यपालक की भूमिका का निर्वहन करते रहे।

पीपल वृक्ष—सनातन धर्म में पीपल का वृक्ष पूज्यनीय माना गया है। इसे मांगलिक प्रतीक के रूप में मान्यता दी गई है। संस्कृत में पीपल को अश्वत्थ कहा जाता है। पीपल के वृक्ष में लक्ष्मी और नारायण का वास माना जाता है।

मान्यता है कि इसकी आराधना से समृद्धि की प्राप्ति होने के साथ-साथ ग्रहजनित बाधा का भी निवारण होता है। पीपल वृक्ष में पितरों का भी वास माना गया है। वृक्ष की पत्तियाँ, छाल, जटा और जड़ आदि आयुर्वेद की दृष्टि से बलकारक, शीतदोष निवारक माना गया है। यह मधुमेह, हैजा, मिर्गी, दमा, वायु विकारों, भड़काऊ विकारों और संक्रामक तथा यौन विकारों की प्रभावी औषधि है। लोकमान्यता में पीपल वृक्ष पर भूत-प्रेतादि का वास माना जाता है। अत: इनसे बचने के लिए पीपल के निकट शौचादि से बचने की बात कही जाती है। वैज्ञानिक दृष्टि से पीपल का वृक्ष सर्वाधिक प्राणवायु अथवा ऑक्सीजन उत्सर्जित करता है। रात्रि बेला में भी इससे आक्सीजन का उत्सर्जन होता है। पीपल की कोपलें हाथी, बकरी आदि शाकाहारी जीव को अत्यंत प्रिय हैं। पीपल वृक्ष को काटना धार्मिक अपराध के अंतर्गत माना जाता है। धार्मिक-पौराणिक मान्यता के अंतर्गत श्रीमद्भागवत पुराण के दशम-एकादश स्कंध में भगवान ने मार्कण्डेय ऋषि को प्रलय का दर्शन दिव्य चक्षु प्रदान कर सुलभ कराया है। प्रलय की शांति के पश्चात् स्थिर जल में जिस मूर्ति का दर्शन मार्कण्डेय जी ने किया है, वह बालकृष्ण स्वरूप पीपल के पत्ते पर ही दाहिने पैर के अँगूठे को हाथ से पकड़े हुए विराजमान हैं। पीपल वृक्ष के नीचे ही भगवान बुद्ध द्वारा निर्वाण प्राप्त करने के कारण ही इसे हिंदू धर्म के साथ ही बौद्धों में अत्यंत पूज्य माना जाता है। स्कंदपुराण, वामन पुराण तथा ऋगवेद सूत्र के अनुसार हिमालय से निकलने वाली सरस्वती नदी का उद्गम पीपल वृक्ष से ही है।

बाँसुरी—बाँसुरी बांस से बना एक वाद्य यंत्र होता है। इसकी ध्वनि और इसका अस्तित्व दोनों ही मांगलिकता के प्रतीक हैं। यह श्रीकृष्ण के हाथों, कमर तथा अधरों पर सदैव सुशोभित रहती है। श्रीमद्भागवत में बाँसुरी की प्रतिष्ठा में और उससे ईर्ष्या के भाव में गोपियों ने वेणुगीत का प्रतिपादन किया है। बाँसुरी सदैव श्रीकृष्ण के अधरामृत पान करने के कारण गोपियों के लिए किसी सौतन की तरह ही डाहकारक है। ब्रजभक्ति के भाव में बाँसुरी को राधावल्लभीय संप्रदायाचार्य गोस्वामी श्रीहित हरिवंश चंद्र महाप्रभु का स्वरूप माना गया है। बाँसुरी के साथ मयूरपिच्छ की काल्पनिक आकृति कृष्ण, कृष्णतत्व और ब्रजभाव की प्रतिपादक है।

भस्म—भस्म यज्ञ, होम अथवा हवन से मिलने वाली मांगलिक सामग्री है। भगवान शिव कैलाश शिखर पर श्मशान की भस्म अंगराग के रूप में लपेटकर विराजते हैं। भस्म पवित्रता, शुचिता और कल्याण का प्रतीक मानी गई है। भस्म को वभूति भी कहते हैं। शैव मतावलंबियों में भस्म की महत्ता कहीं बढ़कर अंगीकृत की गई है। कहा भी गया है-ललाट शून्यं श्मशान तुल्यं। शिव भक्त भस्म या विभूति को वक्ष, उदर, हाथ, कलाई, मस्तक आदि अंगों पर धारण करते हैं जिसे अनिवार्य माना गया है। भस्म से सुशोभित शिव भक्त के न सिर्फ पाप क्षीण होते हैं बल्कि वह देखने वालों तक का कल्याण करने में समर्थ होता है। भस्म लगाते समय महामृत्युंजय मंत्र का जप किया जाता है। लाल तिलक अथवा बिंदु के साथ मस्तक पर भस्म का त्रिपुंड शिव के साथ शक्ति का प्रतीक होता है। जो वस्तुत: समस्त सृष्टि में व्याप्त व्यक्त-अव्यक्त शक्ति और स्थिति का प्रतीक होता है। आयुर्वेद के अनुसार यह शिरोशूल तथा शीत रोगों में लाभप्रद मानी गई है।

माला—माला धर्म, संस्कृति, सौंदर्य, ऊर्जा, आध्यात्मिकता, सात्विक भावना से ओतप्रोत मांगलिक प्रतीक है। माला पुष्प, तुलसी आदि प्राकृतिक पदार्थों के साथ ही कपड़े, प्लास्टिक आदि से कृत्रिम रूप में भी निर्मित की जाती है। प्राकृतिक मालाओं अथवा पुष्पहारों की महत्ता सर्वाधिक है क्योंकि ऋतुनुकूल पुष्पों से श्रद्धा से निर्मित पुष्पहार भगवान को अत्यंत प्रिय हैं। समस्त भक्ति पंथों के साथ ही ब्रज भक्ति में माला और उसे अपने इष्ट को धारण कराने का विशेष महत्त्व है। माला सम्मान का भी प्रतीक है। ग्रीष्म ऋतु में बेला और गुलाब तथा शीत ऋतु में कुंदकली, गुलदाऊदी आदि की मालाएँ ठाकुरजी को धारण कराई जाती हैं। शीताधिक्य होने पर कपड़े से बने कलात्मक पुष्पों की माला ब्रज के ठाकुर विग्रह धारण करते हैं। पवित्रा एकादशी के पर्व पर भगवान को रेशम से बनी मालाएँ धारण कराई जाती हैं जिन्हें पवित्रा कहा जाता है। माला ठाकुरजी के अतिरिक्त पूज्यजनों अर्थात् गुरु, संतों तथा अग्रजों के अभिनंदन-वंदन

स्वरूप भी अर्पित की जाती हैं।

मोरपंख—मोरपंख या मयूर चिह्न की मांगलिकता अथवा पवित्रता का ही प्रमाण है कि इसे नंदनंदन श्रीकृष्ण ने अपने सिर पर धारण किया है। ब्रज में मोरपंख, ठाकुरजी की पोशाक, पिछवईयों आदि में प्रयोग किया जाता है। मांगलिक पत्रिका आदि की आकृतियों में भी मोरपंख का प्रयोग बहुतायत से देखा जाता है।

यंत्र—हिंदू धर्म में यंत्रों की मांगलिकता और प्रासंगिकता स्थापित है। विविध कामनाओं और संकल्पों की पूर्ति हेतु यंत्रों के पूजन का विधान है। श्रीयंत्र और लक्ष्मी यंत्र धन और सौभाग्य प्रदायक माने गए हैं। बीसा यंत्र को समृद्धिदायक माना गया है। कुबेर यंत्र भी लक्ष्मी प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। कुछ यंत्रों का पूजन पूजाघर में स्थापित या विराजमान कर किया जाता है। वहीं कुछ यंत्रों को हाथ या कंठ में भी धारण किया जाता है। यंत्रों में देवता का चित्र, नौखाने जिनमें कुछ संख्याएँ लिखी होती हैं, जिनका योग सीधा, आड़ा अथवा तिरछा जोड़ने पर सम ही रहता है। यंत्र में संबंधित देवी-देवता के निवास की भावना से ही नित्यप्रति विधि-विधान से पूजन किया जाता है। मान्यता है कि श्रद्धा तथा विधिपूर्वक किया जाने वाला यंत्र पूजन सद्कामनाओं को सिद्ध करता है। कुछ यंत्रों का निर्माण निर्दिष्ट काल और वेदसम्मत विधि से ज्योतिषीय लाभ लेने हेतु किया जाता है। यंत्रों की आकृतियाँ गोल, वर्गाकार, त्रिभुजाकार तथा क्षैतिज भी होती हैं। यंत्रों द्वारा शुभफलों या संकल्पात्मक ऊर्जा को गति प्रदान की जा सकती है। यंत्र भोजपत्र, पाषाण, धातु अथवा मिश्रित धातु पर निर्मित किए जाते हैं।

रुद्राक्ष—रुद्राक्ष को शिव के अक्ष (आँसू) से प्रकट माना जाता है। अत: रुद्र के अक्ष से उत्पन्न होने के कारण यह शिव की कल्याणकारी शक्तियों से संपन्न मांगलिक प्रतीक है। रुद्राक्ष एकमुखी से लेकर चौदहमुखी तक होते हैं। इसके अतिरिक्त प्राकृतिक रूप से जुड़े हुए दो रुद्राक्षों को शिव शक्ति की मिश्रित शक्ति से परिपूर्ण होने के कारण गौरीशंकर या गौरीपाठ रुद्राक्ष कहा जाता है। प्रत्येक रुद्राक्ष की अपनी शक्तियाँ और गुण होते हैं। रुद्राक्ष जप-भजन करने के साथ-साथ गले में सोने-चाँदी के तार अथवा लाल धागे में भी धारण किया जाता है। शिव और शक्ति की आराधना रुद्राक्ष की माला से की जाती है। एकमुखी रुद्राक्ष सर्वाधिक प्रभावशाली तथा दुर्लभ माना जाता है। वहीं पाँच मुखी रुद्राक्ष सर्वाधिक पाया जाता है। रुद्राक्ष प्राकृतिक तत्त्व है जो हिमालय की शीतल जलवायु में स्थित वृक्षों पर आता है। आयुर्वेद के अनुसार रुद्राक्ष का फल प्रमाद, वात एवं कफनाशक होता है। यह मस्तिष्क एवं हृदय को भी बलवान बनाता है। रक्तशोधक तथा त्वचा हेतु स्निग्ध, कांतिदायक और स्नायुतंत्र के लिए बलकारक होता है। तंत्रशास्त्र में इसे प्रेतादि बाधाओं का निवारक भी माना गया है।

लिंग—लिंग शिव, शिवत्व सृष्टि की संरचना, उत्पत्ति और शक्ति का मांगलिक कल्याणकारी प्रतीक है। भूमंडल पर लिंग रूप में ही भगवान शिव की आराधना की जाती है। सौराष्ट्र में सोमनाथ, श्रीशैल (आंधप्रदेश) में मल्लिकार्जुन, उज्जैन में महाकालेश्वर, मध्यप्रदेश में ओंकारेश्वर और अमलेश्वर, झारखंड के देवघर में राक्षसराज रावण द्वारा स्तुत्य वैद्यनाथ, डाकिनी क्षेत्र में भीमाशंकर, महाराष्ट्र में घृष्णेश्वर, तमिलनाडु में भगवान राम द्वारा स्थापित सेतुबंध रामेश्वर, दारुकवन में नागेश्वर, वाराणसी में विश्वनाथ, गोदावरी तट नासिक पर त्रयंबकेश्वर, हिमालय में केदारनाथ। यह बारह भगवान शिव के ज्योर्तिलिंग भारत के विभिन्न भागों में स्थित हैं। नेपाल में पशुपतिनाथ और विभिन्न क्षेत्रों में बनखंडेश्वर महादेवों के अतिरिक्त ब्रजक्षेत्र में गोपेश्वर, भूतेश्वर, नंदीश्वर, कामेश्वर, चकलेश्वर, रंगेश्वर, गर्तेश्वर, मनकामेश्वर आदि शिवलिंग आस्था, आराधना और मंगल के प्रतीक हैं। लिंगपुराण में शिवलिंग को निराकार, सृष्टिधारक, परिपूर्ण तथा सर्वोच्च सत्ता के रूप में प्रतिपादित किया गया है। शिवपुराण के अनुसार लिंग को सृष्टि का स्तंभ माना गया है। लिंग की स्थिति सदैव योनि के मध्य मानी गई है और इनका पूजन भी इसी स्थिति में किया जाता है जो भगवती शक्ति की प्रतीक मानी जाती है। यह स्थिति वस्तुत: एकत्व, शक्ति, साम्य, निष्क्रिय अंतरिक्ष और सक्रिय कालशक्ति का प्रतीक है।

वट वृक्ष—हिंदू सनातन धर्म में वृक्षों में भी देवताओं का वास मानकर इनके संरक्षण, पूजन और संवर्धन का विधान किया गया है। इनमें वटवृक्ष का स्थान महत्त्वपूर्ण है। धार्मिक मान्यता के अनुसार इस वृक्ष में भगवान आशुतोष का वास माना गया है। वट या बड़ अमावस के दिन सौभाग्यवती स्त्रियाँ व्रत रखकर वट वृक्ष से पति की रक्षा और दीर्घायु की कामना करती हैं। आयुर्वेद के अनुसार भी वट वृक्ष से निकलने वाले दूध और जटा आदि को महत्त्वपूर्ण माना गया है। प्रचलित भाषा में वटवृक्ष को बड़, बरगद आदि नामों से भी जाना जाता है।

वीणा—ज्ञान और संगीत की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती का वाद्ययंत्र वीणा मांगलिक प्रतीक है। वीणा से सुशोभित हंसवाहिनी विग्रह ज्ञानार्थी, मुमुक्षु और संगीत के साधकों में अत्यंत पूज्यनीय है। वीणा को स्वयं माँ शारदा का स्वरूप माना गया है। वीणा, नाट्य, अभिनय, संगीत, लेखन, ज्ञान, सृजन, ऊर्जा, नवोन्मेष, तरंग और उल्लास का प्रतीक है। वीणा के तारों की झंकृति मांगलिक और ऊर्जादायक है। वीणा भारतीय शास्त्रीय संगीत का अभिन्न-अनुपम वाद्य है। रुद्र वीणा, मोहन वीणा और विचित्र वीणा भारतीय शास्त्रीय संगीत में प्रयुक्त होने वाले वाद्य हैं। वहीं सरस्वती वीणा और चित्र वीणा कर्नाटक संगीत में प्रयोग होने वाले वाद्य हैं। मोहन वीणा का आविष्कार पं विश्वमोहन भट्ट ने किया था। शतंत्री वीणा भी इस वाद्य का एक प्रकार है।

शंख—वैष्णव धर्म में शंख प्रमुख मांगलिक प्रतीक है। सृष्टिपालक भगवान श्रीनारायण के चारों हाथों में क्रमश: गदा, चक्र, शंख और पद्म सुशोभित होते हैं। विष्णु का शंख पांचजन्य, अर्जुन का शंख देवदत्त, भीम का पौंड्र, युधिष्ठिर का अनंतविजय, नकुल का सुघोष और सहदेव के शंख को मणिपूरक शंख कहा जाता है। शंख प्रमुखत: समुद्र के गर्भ से प्राप्त होता है किंतु अब यह कृत्रिम भी बनाए जाने लगे हैं। शंखनाद को प्राचीनकाल के युद्धों में संग्राम की उद्घोषणा और अवसान का प्रतीक माना जाता है। शंख को वैष्णव घरों में आवश्यक रूप से पूजाघरों में रखा जाता है। मान्यता है कि घर में सायंकाल आरती के बाद शंखनाद करने से वहाँ मौजूद विघ्न-बाधाओं का शमन होता है तथा समस्त अमंगलों का निवारण होता है। शंख का जल संक्रमण तथा इसकी ध्वनि वातावरण में व्याप्त जीवाणुओं को नष्ट कर देती है। दक्षिणावर्ती, वामावर्ती, गणेश शंख, मोती शंख, कौड़ी शंख और गौमुखी शंख यह छ: प्रकार के शंख होते हैं, जो विविध चमत्कारिक शक्तियों और गुणों से परिपूर्ण माने जाते हैं। दक्षिणावर्ती शंख दुर्लभ तथा लक्ष्मी और समृद्धि प्रदायक माना जाता है। वास्तु शांति की दृष्टि से भी दक्षिणावर्ती शंख का महत्त्व प्रतिपादित है। गणेश शंख, मोती शंख और गौमुखी शंख भी विलक्षण शक्तियों से संपन्न तथा काफी कीमती होते हैं। दक्षिणावर्ती शंख केवल भारतीय महासागर में ही प्राप्त होता है। इसका मूल्य गुणवत्ता और आकार के आधार पर हजारों से लाखों रुपयों में होता है। शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से शंखनाद करने से फेफड़े मजबूत होते हैं तथा श्वास रोग का शमन होता है। आयुर्वेद में शंख भस्म सौंदर्य को बढ़ाने वाली, उदर रोगों में लाभकारी और शक्ति प्रदायक तत्व के रूप में निरूपित किया गया है। प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक जगदीश चंद्र बसु ने इस तथ्य को स्थापित किया है कि बहरेपन और हकलाहट जैसे रोगों पर भी शंख ध्वनि का श्रवण कारगर है। अध्यात्म और योग साधना के अंतर्गत भी शंख महत्त्वपूर्ण घटक है। गुरु दीक्षा में गुरु द्वारा शंख के माध्यम से ही शिष्य के कानों में मंत्र फूँका अथवा प्रविष्ट कराया जाता है। इससे भारतीय संस्कृति और आत्मिक जीवन में इसका महत्त्व प्रकाशित होता है। वैज्ञानिक तथ्यों के अनुसार ही शंख ध्वनि ग्लोवल वार्मिंग और ओजोन लेयर की क्षति जैसी चुनौतियों से पार पाने में भी सक्षम है। लोकमान्यता है कि शंख ध्वनि सर्पादि विषैले जीवों तथा प्रेतादि बाधाओं को भी दूर करने वाली है। पूर्वी भारत में प्राकृतिक आपदा के समय लोग शंखनाद करते हैं। जिसका आशय विषम परिस्थिति में जगत के रक्षक के आह्वान से लगाया जाता है। वस्तुत: शंख को बजाने और सुनने वाले के हृदय में उत्साह, दृढ़ इच्छाशक्ति और निर्भीकता जैसे गुणों का संचार होता है। शंख केरल का राजकीय चिह्न भी है।

सिंह—सिंह अथवा शेर नेतृत्व, शक्ति और सामर्थ्य का प्रतिनिधि मांगलिक प्रतीक है। सिंह माँ दुर्गा की सवारी है।

अत: माँ को सिंहवाहिनी भी कहा जाता है। शक्ति मंदिर के आगे सिंह विग्रह सदैव विराजमान किया जाता है मानो अपनी स्वामिनी का आदेश पाने को लालायित हो।

सूर्य—सूर्यदेव नवसृजन, ऊर्जा, उज्ज्वलता, प्राणशक्ति के मांगलिक प्रतीक हैं। तैंतीस करोड़ देवताओं में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। सूर्यदेव प्रजापालक हैं जो ग्रीष्म ऋतु में पृथ्वी से जल का कर के रूप में अवशोषण करते हैं और वर्षा के माध्यम से उसे पुन: बरसाकर प्रजापालन करते हैं।

स्वस्तिक—इसे आंचलिक भाषा में सतिया अथवा सांतिया भी कहा जाता है। स्वस्तिक रोली व सिंदूर से बनाया जाता है। यह मांगलिक प्रतीक है। ब्रज क्षेत्र में किसी कामना के साथ गोबर का सतिया किसी देवता अथवा शक्ति के निमित्त बनाया जाता है। यह किसी गुप्त स्थान पर अथवा देवगृह के पृष्ठभाग पर स्थापित किया जाता है। कामना पूर्ण होने पर चाँदी का स्वस्तिक देवी अथवा देवताओं को दान अथवा समर्पित किया जाता है। वधु आगमन पर स्वस्तिक पूजन तथा पुत्री विदा करते समय दहलीज (देहली) पूजन के रूप में स्वस्तिक पूजन किया जाता है। वस्तुत: स्वस्तिक मांगलिक पूजन का महत्त्वपूर्ण अंग है। विश्वभर में इसे एक हिंदू प्रतीक के रूप में मान्यता प्राप्त है। घर के बाहर स्वस्तिक की स्थापना मांगलिक प्रतीक के रूप में की जाती है। यह आदिदेव गणेश का भी प्रतिनिधित्व करता है। स्वस्तिक शुभता, समृद्धि और आध्यात्मिक विजय का प्रतिनिधि चिह्न है।

हनुमान—हनुमान मंगल और विजय के प्रतीक देवता हैं। रामभक्त और रामदूत के रूप में पूजित हनुमान कलियुग के देवता भी माने गए हैं। ये समस्त सिद्धियों और निधियों से निधान बल, बुद्धि, विद्यादायक हैं। मान्यता है कि वाहन में हनुमत यंत्र या हनुमान जी की प्रतिमा स्थापित कर लेने से सभी मार्ग की बाधाएँ सुगम और सुरक्षित हो जाती हैं। महाभारत के युद्ध में अर्जुन के रथ पर केसरिया हनुमत ध्वज पांडवों की विजयश्री का आधार था। हनुमान को कलयुग में धरा पर विराजित प्रत्यक्ष देवताओं में शुमार किया जाता है। यदि यात्रा का शुभारंभ हनुमान जी के स्मरण से किया जाए तो यात्रा अथवा मनोवांछित प्रयोजन में सफलता-सिद्धि होती है। रामानुज संप्रदाय में भगवान नारायण अथवा राम के प्रमुख पार्षदों में गरुड़ जी के साथ हनुमान जी प्रमुख हैं। लगभग सभी रामदरबार विग्रहों के सम्मुख हनुमान जी को विराजित किया जाता है। क्योंकि हनुमान जी को राम के सान्निध्य दर्शन से सुख की अनुभूति होती है। दक्षिणमुखी विराजित हनुमान को सर्वथा सर्वाधिक शुभ मंगलदायक माना जाता है। [कुं०बि०श०]

मार्कण्डेय पुराण

मार्कण्डेय पुराण का 18 पुराणों की गणना में सातवाँ स्थान है। मार्कण्डेय पुराण में नौ हजार श्लोक हैं। किन्तु अन्यत्र इसके श्लोकों की संख्या 6800 भी बतलायी गयी है। इसमें अध्यायों की संख्या 134 है। यह पुराण चार प्रश्नों से युक्त है।

इस पुराण के विषय में प्रश्न करते हुए जैमिनि महात्मा मार्कण्डेय मुनि से कहते हैं कि श्री वेदव्यास भगवान ने अतिविस्तृत महाभारत की रचना की है। महाभारत साक्षात् वेदार्थ है। उस शास्त्र का यथार्थ तात्पर्य मैं जानना चाहता हूँ। मार्कण्डेय महात्मा ने श्री जैमिनि से कहा कि आपके प्रश्नों का उत्तर चार पक्षी देंगे। जिनका नाम है-पिङ्गाक्ष, विबोध, सुपुत्र तथा सुमुख। ये चारों विन्ध्यालय की कन्दरा में निवास करते हैं। यह खगश्रेष्ठ द्रोण के पुत्र हैं। यह सुनकर जैमिनि महात्मा ने आश्चर्यपूर्वक पूछा कि पक्षीगण इतने ज्ञानी कैसे हो गये? तब मार्कण्डेय भगवान ने उन्हें कथा सुनायी। कथा सुनने के बाद श्री जैमिनि विन्ध्य पर्वत पर गये और उन्होंने उन पक्षियों से यह तीन प्रश्न किये-श्रीकृष्ण अवतार क्यों लेते हैं? द्रौपदी पाँच पतियों की पत्नी क्यों हुई? द्रौपदी के पुत्र अनब्याहे क्यों मरे?

प्रथम प्रश्न के उत्तर में पक्षियों ने श्रीकृष्णावतार के पुराणादि शास्त्रों में वर्णित कारण बताये। भगवान विष्णु चतुर्व्यूह स्वरूप हैं, अणु से अणु तथा महत् से महत् हैं, वे अमृत स्वरूप हैं, उनका निवास स्थान पूर्वकाल में 'नारा' था। तत्वदर्शी

मुनियों ने जल को 'नारा' कहा है। इसलिए उन्हें 'नारायण' कहते हैं।

भगवान का प्रथम दिव्य स्वरूप 'वासुदेव' है। द्वितीयस्वरूप 'शेष' के नाम से प्रसिद्ध है, जो पाताल लोक में रहकर पृथ्वी को अपने मस्तक पर धारण करता है। तिर्यक् (पशु) स्वरूप को प्राप्त हुई यह भगवान की तामसी मूर्ति है। समस्त प्रजा के पालन-पोषण में तत्पर रहने वाली भगवान की प्रद्युम्न रूपा तृतीया सात्विकी मूर्ति है तथा चतुर्थ राजसी अनिरुद्ध रूपा जल में शयन करती है।

द्वितीय प्रश्न का उत्तर देते हुए पक्षियों ने बताया कि इंद्र के द्वारा त्वष्टा पुत्र विश्वरूप वध, वृत्रासुर वध, गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या गमन के कारण इंद्र अपने धर्म, तेज, बल और रूप से वंचित हो गये। इन्हीं अंशों से पाण्डवों का जन्म हुआ। इस प्रकार देवराज इन्द्र पाँच रूपों में अवतीर्ण हुए। उनकी पत्नी शची ही महाभागा कृष्णा के रूप में अग्नि से प्रकट हुई। इस प्रकार पाँच पाण्डवों की जो एक पत्नी हुई, उसका रहस्य बताया गया है।

तृतीय प्रश्न का उत्तर देते हुए पक्षियों ने राजा हरिश्चंद्र की कथा सुनायी। विश्वामित्र ने हरिश्चंद्र की महारानी तारा देवी जो अत्यन्त सुकुमारी थी और मार्ग में पैदल चलने से अत्यन्त थककर व्याकुल हो रही थी, तो भी विश्वामित्र ने सहसा उनकी पीठ पर डंडे से प्रहार किया। उस समय परम दयालु विश्वेदेव आपस में इस प्रकार कहने लगे-'ओह! यह विश्वामित्र तो बड़ा पापी है। न जाने किन लोकों में जायेगा। इसने यज्ञकर्ताओं में श्रेष्ठ इन महाराज को अपने राज्य से हीन कर दिया है।' विश्वेदेवों की यह बात सुनकर विश्वामित्र को बड़ा रोष हुआ। उन्होंने उन सबको शाप देते हुए कहा-'मनुष्य होने पर भी तुम्हारे कोई सन्तान नहीं होगी, तुम विवाह भी नहीं करोगे, तुम्हारे मन में किसी के प्रति ईर्ष्या और द्वेष भी नहीं होगा। तुम पुन: काम-क्रोध से मुक्त होकर देवत्व को प्राप्त कर जाओगे।' तदनन्तर वे विश्वेदेव अपने अंश से कुरुवंशियों के घर में अवतीर्ण हुए, वे ही द्रौपदी के गर्भ से उत्पन्न पाँच पाण्डव कुमार थे। महर्षि जैमिनि ने जीव के जन्म और कर्म की गति के बारे में प्रश्न किया, इस पर पक्षीगणों ने एक भृगुवंशी ब्राह्मण सुमति का आख्यान के माध्यम से सुनाया।

सुमति ने कर्म की गति, नरकों की पीड़ा तथा किस पाप कर्म से कौनसी योनि प्राप्त होती है, किन शुभ कर्मों से स्वर्ग की प्राप्ति होती है, इसका विस्तृत वर्णन किया। मार्कण्डेय पुराण में भगवान दत्तात्रेय की महिमा का बड़ा मनोरम निरूपण हुआ है। मार्कण्डेय पुराण में श्राद्धकर्म का वर्णन बड़े ही विस्तार से किया गया है। 52वें अध्याय के बाद इस पुराण के वक्ता मार्कण्डेय मुनि हो जाते हैं। महात्मा मार्कण्डेय ने 14 मन्वन्तरों का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। दुर्गा सप्तशती मार्कण्डेय पुराण का अंश है, जिसको महाभारतांश श्रीमद्भगवद् गीता के समान ख्याति एवं मान्यता प्राप्त है। दुर्गा के उपासक इसी स्तोत्र से भगवती को प्रसन्न करते हैं। मार्कण्डेय पुराण में मनुओं के चरित्र की इतनी महिमा बताई गयी है कि उनके स्वाध्याय और श्रवण से सकल मनोरथों की पूर्ति हो जाती है।

सूर्यवंश के कुछ राजाओं का भी वर्णन है, पुराणों की संख्या एवं पुराण श्रवण का फल बताया गया है। अन्त में महात्मा जैमिनि ने पक्षियों से कहा-पक्षियो! महाभारत में मेरे जिस संशय का निवारण नहीं हो सका, उसका निवारण आप लोगों ने मित्र भाव से किया है। पक्षियों को उत्तम आशीर्वाद देकर जैमिनि ऋषि अपने आश्रम पर चले गये। वे उन पक्षियों द्वारा किये हुए परम उदार उपदेश का सदा चिन्तन करने लगे। [क०उ०]

× × ×

भगवती की उपासना करने वाला प्रत्येक साधक इस पुराण से भलीभाँति परिचित है क्योंकि इस पुराण में ही दुर्गा चरित्र और श्रीदुर्गा सप्तशती संकलित है। अत: कतिपय विद्वान इसे शाक्त पुराण के रूप में मान्यता प्रदान कर इसे शाक्त साधकों के लिये बहुमूल्य ग्रंथ बना देते हैं। अन्य पुराणों की अपेक्षा यह पुराण लघु कलेवर का होते हुए भी अपने अन्दर मानव कल्याण के प्राय: समस्त विषय यथा नैतिक, आध्यात्मिक, भौतिक तथा सामाजिक आदि समेटे हुए है। इसमें लगभग नौ हजार श्लोक हैं जो कि एक सौ सैंतीस अध्यायों में समाहित हैं। इसके साथ ही इसमें भारतवर्ष के प्राकृतिक स्वरूप एवं नदियों की सुन्दरता को अत्यंत रोचक रूप से वर्णित किया गया है।

जैसा कि पुराणों की विशेषता है कि इनमें भिन्न-भिन्न देवताओं को केन्द्र में रखकर पाप और पुण्य, धर्म और अधर्म तथा कर्म और अकर्म आदि की गाथायें बड़े ही रोचक ढंग से कही गयी हैं। सृष्टि के आदि से लेकर अंत तक का वर्णन भी प्राय: इनमें सँजोया गया है। इसी परम्परा के अन्तर्गत मार्कण्डेय पुराण में इन्द्र, सूर्य, अग्नि आदि देवताओं के विवेचन के साथ मानव जीवन के लिये गृहस्थाश्रम की दिनचर्या, नित्यकर्म का विशद् वर्णन किया गया है।

जैसा कि हम पूर्व में कह आये हैं 137 अध्यायों वाले इस पुराण में 1 से 42वें अध्याय तक जैमिनी तथा पक्षी का संवाद है, 43 से 90वें अध्याय में मार्कण्डेय जी तथा क्रौष्टुकी का संवाद विभिन्न विषयों पर है। 91वें से 137वें अध्याय में सुमेधा तथा सुरथ एवं समाधि के मध्य संवाद उपलब्ध होता है। इस पुराण का कथन मार्कण्डेय ऋषि के द्वारा किये जाने से इसका नामकरण मार्कण्डेय पुराण हो गया।

उपरिवर्णित कथाओं के अतिरिक्त मार्कण्डेय पुराण में दुर्गासप्तशती माहात्म्य, राजा हरिश्चंद्र की कथा, मदालसा चरित्र, अत्रि-अनुसूया की कथा, भगवान दत्तात्रेय चरित्र, द्रौपदी के पाँच पुत्रों की कथा, बलभद्र जी की तीर्थयात्रा, हैहय चरित्र, अलर्क चरित्र, नौ प्रकार की सृष्टि का वर्णन, रुद्र सृष्टि, मनवन्तर प्रसंग के साथ वैवस्वत मनु के वंश का वर्णन, इक्ष्वाकु चरित्र, नल चरित्र, भगवान श्री राम की कथा, श्रीकृष्ण की बाल लीला, यदुवंश का वर्णन एवं अवतारों की कथा आदि प्रसिद्ध एवं शिक्षाप्रद सुन्दर कथायें मिलती हैं।

इस पुराण की एक और विशेषता है कि इसमें पक्षियों को वक्ता बनाकर उनके द्वारा गूढ़ अध्यात्म विषय का निरूपण अत्यन्त रोचक ढंग से किया गया है। मार्कण्डेय पुराण में गृहस्थ जीवन में रहकर निष्काम कर्म करते हुये सन्मार्ग पर चलते रहने की शिक्षा विशेष रूप से दी गई है। ईश्वर प्राप्ति के लिये प्रणव की साधना को एक साधन बतलाया गया है। [अ०पा०]

माधव देवाचार्य

निम्बार्क सम्प्रदाय में श्रीहरिव्यास देवाचार्य के अनेक शिष्य हुए परन्तु उनमें द्वादश शिष्य प्रमुख थे। इन द्वादश शिष्यों में 'माधवदेवाचार्य' का भी नाम आया है। इन द्वादश शिष्यों ने अपनी आत्मशक्ति एवं विद्याशक्ति से समस्त भारत में वैष्णव धर्म का प्रचार किया और विधर्मियों को नीचा दिखाकर धर्म की रक्षा की। इन द्वादश शिष्यों के नाम पर बारहद्वारे अर्थात् बारह शिष्य शाखाएँ प्रचलित हुईं। आजकल देशभर में इन्हीं द्वारों के निम्बार्कीय वैष्णव मिलते हैं। अन्य शाखाओं में से अधिकांश लुप्त हो गई हैं।

श्रीमाधवदेवाचार्य के सम्बन्ध में इतना पता चला है कि ये ब्रज से कभी बाहर नहीं जाते थे। एकान्त में हरि स्मरण करते रहते थे। इन्होंने न कोई शिष्य बनाया था और न कोई स्थान ही बनाया था। निम्बार्क सम्प्रदाय के विद्वान संतों से वार्ता के अनुसार इनका कब और कहां जन्म हुआ और कहाँ तिरोधान हुआ कुछ भी पता नहीं चल पाया है। श्री सर्वेश्वर निम्बार्क अंक पत्रिका से इनकी विद्वत्ता का पता चलता है। अब तो इनका द्वारा भी करीब-करीब समाप्त ही हो गया। [शै०च०]

माधव भट्टाचार्य

श्रीनिंबार्काचार्य परंपरा में 22वें आचार्य श्रीमाधव भट्टाचार्य जी हैं। इनकी उदारता और भगवत्परायणता अत्यंत प्रसिद्ध थी। इनका पाटोत्सव कार्तिक कृष्णा एकादशी को समारोहपूर्वक मनाया जाता है। [कुं०बि०श०]

माधव महोत्सव

माधव महोत्सव जीव गोस्वामी द्वारा विरचित एक काव्य ग्रंथ है। भगवान कृष्ण द्वारा राधारानी के अभिषेक के साथ

अन्य लीलात्मक घटनाओं की प्रस्तुति में इस काव्य की भी अपनी महत्ता है। सम्भवत: रचनाकार ने इस ग्रंथ के विषय-विभाग तथा सर्गों के नामकरण में पीयूषवर्षी जयदेव से प्रेरणा प्राप्त की हो। उत्सुकराधिका, उन्मुक्तराधिका, उत्फुल्लराधिका, उद्योतराधिका, उदितराधिका, उन्नतराधिका, उस्सिक्तराधिका, उज्ज्वलराधिका एवं उन्मदराधिका-ये इस काव्य के नव सर्ग हैं। यह एक श्रेष्ठ काव्य है। इसमें स्निग्ध्य और काव्यगत प्रौढ़ि का समन्वय है। विविध छन्दों तथा अलंकारों से अपनी कविता कामिनी को अलंकृत करने में कवि का चित्त रमा है। [क०उ०]

माधवाचार्य

माधवाचार्य जी का जन्म एक उच्चकुलीन ब्राह्मण वंश में हुआ था। इनके पिता राज्याधिपति थे। किंतु सब वैभव तजकर विरक्त भाव से ये युगल उपासना में रत हुए। इन्होंने गुरुदेव श्री स्वरूपाचार्य जी से वैष्णवी दीक्षा ग्रहण कर गुरुदेव के पश्चात् 60 वर्षों तक श्रीनिंबार्कपीठ को अलंकृत किया। यद्यपि इनके द्वारा किसी ग्रंथ की रचना नहीं की गई किंतु ज्ञान और भक्ति के पंथों में इनकी ख्याति सूर्य के समान थी। गुरु और राधाकृष्ण युगल चरणों से कृतार्थ माधवाचार्य जी का पाटोत्सव आषाढ़ शुक्ल दशमी को मनाया जाता है।

एक बार साधु संगति के साथ तीर्थाटन करते हुए काशी पहुँचे तो गोविंद नामक एक युवा दण्डी संन्यासी ने आचार्य जी की परीक्षा लेने के भाव से गेरुआ वस्त्र, दंड और कमंडल त्यागकर सफेद वस्त्र, गले में तुलसी की माला और मस्तक पर उर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगा लिया। आचार्य जी इस भेद को जानकर बोले, अच्छा किया जो आपने दंड, कमंडल के बंधन को त्यागकर बंधनों से परे भाव को अपना लिया। वह युवक आचार्य जी की शक्ति से प्रभावित हो क्षमा माँगने लगा और शरण में आने की प्रार्थना की। माधवाचार्य जी उन्हें ने वैष्णवी दीक्षा प्रदान की और बलभद्राचार्य के रूप में अपना शिष्य स्वीकार कर लिया। निकुंज उपासना में माधवाचार्य जी मधुरा सखी के स्वरूप माने गए हैं। [कुं०बि०श०]

माधवेन्द्रपुरी

श्री माधवेन्द्र पुरी जी का आविर्भाव सन् 1410 के आसपास पूर्णिपाट गाँव में (श्रीहट्ट जिला, अब सिलेट, बांग्लादेश) हुआ था। बाल्यकाल से ही अत्यन्त मेधावी थे। इन्होंने व्याकरण, काव्य, वेद, वेदान्त आदि शास्त्रों के साथ श्रीभागवत आदि भक्ति ग्रंथों का भी गहन अध्ययन किया। इनकी प्रतिभा और भक्तिमयता की ख्याति पूर्वी बंगाल में सर्वत्र फैल गयी। यथा अवसर माता-पिता ने इनका विवाह कर दिया। एक पुत्र के जन्म के पश्चात अकस्मात पत्नी का देहान्त हो गया। वे गंगा तीर पर वास करने के लिए पश्चिमी बंगाल में कुलिया और कुमार हट्ट के बीच विष्णुग्राम में जा बसे। यहीं पर उन्होंने एक संस्कृत पाठशाला खोलकर अध्ययन कार्य आरम्भ किया।

माधवेन्द्र पुरी जी की ज्ञान गरिमा और भक्ति भाव से प्रभावित होकर कुमार हट्ट के ईश्वरपुरी जी, शांतिपुर के अद्वैताचार्य जी, नवद्वीप के श्रीवास पण्डित, शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी, रत्नगर्भ आचार्य आदि अनेक प्रसिद्ध महानुभावों ने इनका शिष्यत्व ग्रहण किया। वे इनके साथ भगवल्लीला कथा में निरन्तर निरत रहने लगे। पुरी जी के हृदय में अपार भगवत्प्रेम उमड़ने लगा। प्रबल प्रेम और वैराग्य ने इन्हें संन्यास लेने के लिए विवश कर दिया। अत: एक दिन अपने पुत्र विष्णुदास को अद्वैताचार्य जी के हाथ सौंपकर गृह त्याग दिया। सम्पूर्ण भारत के तीर्थों का दर्शन कर कर्नाटक प्रदेश स्थित उडूपी में मध्वाचार्य पीठ के श्री लक्ष्मीतीर्थ जी से वैष्णवीय साधना की शिक्षा ग्रहण की।

पुरी जी महाराज महाकवि जयदेव, प्रेमीभक्त विल्वमंगल जी एवं दक्षिण के आलवारों की प्रेमा भक्ति से अधिक प्रभावित थे। उत्तरोत्तर इनकी श्रीकृष्ण प्रेमोन्मत्तता बढ़ने लगी। परम विरक्त भाव से विचरण करते हुए वे ब्रज में आये। एक दिन गोवर्धन की परिक्रमा लगाकर गोविन्द कुण्ड के निकट बैठे थे। वे अयाचक वृत्ति वाले थे। बिना माँगे यदि कुछ मिलता तो ग्रहण करते सो भी गोरस मात्र लेते थे। उस दिन वे भूखे-प्यासे भगवन्नाम संकीर्तन कर रहे थे। तब

भगवान से रहा नहीं गया वे स्वयं एक बालक के रूप में दुग्ध लाकर बोले-''बाबा इसे पी लो, मैं पीछे आकर लोटा ले जाऊँगा।'' किन्तु पुनः प्रभु तो आये नहीं, पर सपने में दर्शन देकर कहा-''माधवेन्द्र! मैं तुम्हारी बाट बहुत दिनों से देख रहा था, अच्छा हुआ तुम आये। मेरे प्रपौत्र द्वारा प्रतिष्ठित मेरी प्रतिमा गिरिराज की तलहटी में मिट्टी के नीचे दबी पड़ी है, यवनों के आक्रमण भय से पुजारियों ने वहाँ छिपाकर रख दी थी। तुम उस मूर्ति को निकालकर स्थापना करो।''

श्री गोपाल जी का स्वप्नादेश पाकर प्रातःकाल ब्रजवासियों को बुलाकर विग्रह निकाले तथा पंचामृत अभिषेक-पूजन के साथ विधिवत् स्थापना की। इस प्रसंग का (चैतन्य चरितामृत-मध्य लीला, चतुर्थ परिच्छेद में) विस्तार से वर्णन है। यही गोपाल जी आगे चलकर श्रीनाथ जी के नाम से प्रसिद्ध हो गये। पुनः गोपाल जी का नया आदेश हुआ मलय चन्दन अपने अंग में लेपन कराने का। इसके लिए माधवेन्द्र जी जगन्नाथ पुरी गये। दो मन चन्दन की लकड़ी और कपूर का संग्रह किया। इन्हें ब्रज तक चन्दनकाष्ठ लाने में भारी कष्ट होगा, जानकर प्रभु ने आदेश दिया कि-''तुम रेमुना, बालेश्वर (उड़ीसा) स्थित गोपीनाथ जी के अंग में चंदन का लेप लगाओ, उसी से मुझे शीतलता की प्राप्ति होगी।'' अन्तिम काल तक इन्होंने गोपाल जी के आज्ञानुसार रेमुना में ही निवास किया। इन्हीं श्री गोपीनाथ जी ने पुरी जी के निमित्त खीर चुरायी थी। इसलिए ठाकुर जी नाम पड़ गया ''खीर चोर गोपीनाथ जी।''

श्री चैतन्य महाप्रभु के ये दादा गुरु लगते हैं। महाप्रभु ने इन्हें भक्तिरस का आदि सूत्रधार कहा है-

भक्तिरसे आदि माधवेन्द्र सूत्र धार। गौरचन्द्र इहा कहियाछेन बार-बार

महान प्रेमी संत श्रीमाधवेन्द्र पुरी जी महाराज ने ई. सन् 1587 में श्रीकृष्ण विरह में व्याकुल होकर-

अयि दीन दर्याद्रनाथ! हे मथुरानाथ! कदावलोक्यसे।
हृदयं त्वदालोककातरं, दयित भ्राम्यति करोम्यहम्॥

इस श्लोक का गायन करते हुए परमधाम को गमन किया। इनकी समाधि रेमुणा में स्थित है। वैशाख पूर्णिमा को इनका तिरोभाव महोत्सव मनाया जाता है। पद्यावली ग्रंथ में इनके द्वारा रचित कई श्लोक प्राप्त होते हैं। इनके अलावा और कोई रचना प्राप्त नहीं होती है। इनके संन्यासी शिष्यों में ईश्वरपुरी के अलावा ब्रह्मानन्द पुरी, विष्णुपुरी, सुखानन्द पुरी, रामचन्द्र पुरी, रघुनाथ पुरी, कृष्णानन्द पुरी, अनन्तपुरी एवं रंगपुरी प्रमुख थे। [प्रे०दा०शा०]

माध्ववेदांत

भारतीय दर्शन के वेदांत प्रस्थान में मध्वाचार्य द्वैतवाद के संस्थापक माने जाते हैं। इन्हें आनंदतीर्थ एवं पुराणप्रज्ञ के नाम से भी जाना जाता है। परंपरा में इन्हें 'वायु' के अवतार के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। ये 'अच्युतप्रेक्ष' नामक आचार्य के शिष्य थे। इनके अनुयायियों में जयतीर्थ एवं व्यासतीर्थ प्रमुख थे। इन्होंने अपने मत की स्थापना अद्वैतवेदांत के विरोध हेतु की। ये पाँच प्रकार के भेद स्थापित करते हैं, जिससे द्वैत की प्रतिष्ठा होती है। इन्होंने 'महाभारत तात्पर्य-निर्णय' में कहा है-

जगत्प्रवाहः सत्योऽयं पञ्चभेदसमन्वितः।
जीवशयोर्भिदा चैव जीवभेदः परस्परम्॥
जडेशयोर्जडानाञ्च जडजीवभिदा तथा।

अर्थात् पाँच भेदों से युक्त यह जगत्प्रवाह सत्य है। ये भेद हैं-आत्मा और ईश्वर का भेद, जीवों का परस्पर भेद, ईश्वर तथा जड़ का भेद, जड़ों का परस्पर भेद तथा जड़ एवं आत्मा का भेद। ये भेद को लेकर इतने गंभीर हैं कि ज्ञानप्राप्ति एवं मुक्त जीवों की आनंदानुभूति में भी तारतम्य स्थापित करते हैं।

माध्ववेदांत समवाय को नित्यसंबंध नहीं मानता है। उसके अनुसार वस्तुओं के धर्मों को दो भागों में विभक्त किया गया है। इस संबंध में 'दशप्रकरण' में मध्वाचार्य कहते हैं-

गुणक्रियाजातिपूर्वा धर्माः सर्वेऽपि वस्तुनः॥
रूपमेव द्विधं तच्च यावद्वस्तु च खण्डितम्।
खण्डिते भेद ऐक्यं च यावद्वस्तु न भेदवत्॥
खण्डितं रूपमेवात्र विकारोऽपि विकारिणः।
कार्यकारणयोश्चैव तथैव गुणतद्वतोः॥
क्रियाक्रियावतोस्तद्वत् तथा जातिविशेषयोः।
विशिष्टशुद्धयोश्चैव तथैवांशांशिनोरपि॥

तात्पर्य यह है कि रूपादि गुण, उत्प्रेक्षणादि क्रिया, गोत्वादि जाति तथा शक्ति एवं सादृश्यादि सभी धर्म वस्तु के स्वरूपमात्र हैं। ये दो प्रकार के हैं-प्रथम यावद्द्रव्यभावी, जो द्रव्यविशेष के सत्तापर्यंत उस द्रव्य में रहते हैं और द्वितीय खंडित अथवा अयावद्द्रव्यभावी, जो द्रव्य के रहते हुये भी कारणवश नष्ट हो सकते हैं। खंडितवर्ग के गुणादि का द्रव्य के साथ भेद तथा ऐक्य, इस प्रकार भेदाभेद रहा करता है, किंतु यावद्द्रव्यभावी का केवल अभेद ही व्यवस्थित है। विकार-विकारी, कार्य-कारण, गुण-गुणी, क्रिया-क्रियावान, जाति-व्यक्ति, विशेष्य-विशेषण तथा अंशांशी में विकारादि को विकारी आदि का खंडित रूप ही माना गया है। जयतीर्थ ने इसे अपनी टीका में स्पष्ट करते हुये कहा है—

विकारः कार्यद्रव्यं विकारिणः स्वोपादानद्रव्यस्य
खण्डितमेव रूपं तन्तो भिन्नाभिन्नमेवेति।
कार्यमुपादेयं पटादि, कारणमुपादानं तन्त्वादि।
तयोर्भेद ऐक्यं च।

अर्थात् कार्यद्रव्य विकार तथा उसका उपादानद्रव्य विकारी है, जिनमें विकार-विकारी का खंडित रूप होने से भेदाभेद ही प्रतिपादित है। पटादिरूप उपादेय द्रव्य कार्य तथा तत्वादिरूप उपादानद्रव्य कारण है, जिनमें भी पूर्ववत् भेदाभेद ही व्यवस्थित होता है। विकारी तथा उपादान के रहते भी सदैव विकार एवं कार्य नहीं हो सकते, अतः वे अयावद्द्रव्यभावी स्वीकार किये गये हैं। विशिष्ट एवं शुद्ध विशेष्यद्रव्य के विषय में भी द्विधा व्यवस्था है। जयतीर्थ कहते हैं-**विशिष्टशुद्धयोः, विशिष्टस्य विशेष्यस्वरूपस्य च भेदाभेदावभेदश्चेति ज्ञातव्यम्। तत्र पर्वतस्याग्निमतश्च भेदाभेदौ, पर्वतसद्भावेऽपि अग्निमतः अभावात्। विष्णोः सर्वज्ञस्य चात्यन्ताभेद एव।**

अर्थात् 'अग्निमान् पर्वत' में 'अग्निमान' विशिष्ट एवं पर्वत शुद्ध विशेष्य है, जिनमें भेदाभेद है, क्योंकि अग्निरहित पर्वत होता है, किंतु 'सर्वज्ञ विष्णु' में अत्यंताभेद है, क्योंकि शुद्ध विशेष्य विष्णु से सर्वज्ञरूप विशिष्ट का कभी पार्थक्य नहीं होता। इस प्रकार कार्यकारणादि में प्रतिपादित भेदाभेद तथा अत्यंताभेद से यह सिद्ध होता है कि समवायरूप नित्य संबंध नहीं है। व्यासतीर्थ ने भेदाभेद तथा अभेद की स्थिति को इस प्रकार स्पष्ट किया है-

तस्माद् घटपटादौ शुद्धभेदः अयावद्द्रव्यभाविगुणगुण्यादौ भेदाभेदौ, यावद्द्रव्यभाविगुणगुण्यादौ सविशेषाभेदः, हस्तकरादौ निर्विशेषाभेद इति व्यवस्था।

अर्थात घट-पटादि में शुद्ध भेद है। अयावद्द्रव्यभावी गुण, जाति क्रिया, अंशी तथा कार्यादि का गुणी, जातिमान, क्रियावान, अंश तथा कारण के साथ भेदाभेद स्थापित है। यावद्द्रव्यभावी गुणादि का गुणी आदि के साथ सविशेष अर्थात् भेदसहिष्णु अभेद मान्य है तथा हस्त-कर आदि में निर्विशेष अभेद व्यवस्थित है।

मध्वाचार्य ने रामानुजाचार्य के समान ही तीन तत्त्वों को स्वीकार किया है-ईश्वर, जीव एवं जड़ जगत्। ये तीनों ही शाश्वत एवं सत्य हैं। इनमें से जीव एवं जड़ ईश्वर पर आश्रित हैं, एकमात्र ईश्वर ही स्वतंत्र एवं निरपेक्ष है। वे सच्चिदानंदमय हैं। उनमें असीम गुण विद्यमान हैं। वे इस जगत् के सृष्टा, पालक एवं संहर्त्ता हैं। वे दिव्यशरीरधारी हैं। कर्मानुसार जीवों को बंधन एवं मुक्ति वे ही प्रदान करते हैं। वे केवल भक्ति से ही प्रसन्न होते हैं। वे अनेक व्यूहों एवं अवतारों में अपने को प्रकट करते हैं। लक्ष्मी उनके साथ नित्य विराजमान रहती हैं। वे भी भगवान के समान ही नित्य एवं शाश्वत हैं। भगवान की अपेक्षा लक्ष्मी में गुणों की कुछ न्यूनता पायी जाती है। वे नित्यमुक्त हैं और दिव्यशरीरधारिणी हैं। वे ईश्वर की शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

मध्व ने सगुण ब्रह्म या ईश्वर को ही परम सत्य माना है। उन्होंने ब्रह्मसूत्र के अपने भाष्य में ईश्वर को वेदों द्वारा ज्ञेय प्रतिपादित किया है। यद्यपि ईश्वर का हरि, विष्णु, नारायण या वासुदेव रूप उन्हें अभीष्ट है, तथापि 'विष्णु' के प्रति विशेष अभिनिवेश दृष्टिगत होता है। विष्णु ही द्रव्यों में परमात्मा-पदवाच्य हैं। वे अनंत गुणों के आगार हैं। जीव के प्रत्येक स्वरूप में पूर्णरूपेण निवास करने वाले वे ही हैं। तात्पर्य यह है कि विष्णु ही सभी जीवों के अंतर्यामी रूप में सदैव उनके हृदय में निवास करते हैं। सृष्टि, स्थिति, संहार, नियम, बंध तथा मोक्ष-इन सब कार्यों का संपादनकर्ता सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान परमात्मा है। इसी कारण उसे 'एकराट' भी कहते हैं। जीव और जड़ से अत्यंत विलक्षण ईश्वर के ज्ञान, आनंदादि कल्याण गुण शरीर हैं। इस प्रकार वे शरीरी होते हुये भी नित्य एवं सर्वतंत्रस्वतंत्र हैं। प्रमेयरत्नावली में ईश्वर के मूर्तत्व का प्रतिपादन करते हुये कहा गया है-

मूर्तत्वं प्रतिपत्तव्यं चित्सुखस्यैव रागवत्।
विज्ञानघनशब्दादिकीर्तनाच्चापि तस्य तत्॥
देहदेहिभिधा नास्तीत्येननैवोपदर्शितम्॥

अर्थात् जिस प्रकार संगीत में राग स्वरसंयोजन से मूर्त होता है, उसी प्रकार परमात्मा को भी मूर्त समझना चाहिए। उपनिषदों में उसे विज्ञानघन तथा आनंदघन कहा गया है, जिससे मूर्तत्व प्रमाणित होता है और इसी से यह भी सिद्ध है कि देह और देही में भेद नहीं है। प्रभाटीका में इसे स्पष्ट करते हुए कहा गया है-

गान्धर्ववासिते श्रवणे भैरवादिरागस्य यथा मूर्तत्वमवगम्यते तथा भक्तियोगपरिभाविते हृत्सरोजे चित्सुखस्य विज्ञानानन्दस्य मूर्तत्वं सच्चिदानन्दविग्रहानतिरेकिस्वरूपत्वं प्रतिपत्तव्यम्। तात्पर्य यह है कि श्रवणेन्द्रिय जब संगीतशास्त्रीय वासना से उपरक्त हो जाता है, तब भैरव आदि राग का मूर्त स्वरूप जिस प्रकार स्वरयोजना में ही अवगत होता है, उसी प्रकार भक्तियोग द्वारा भावित हृदयकमल में विज्ञानानंदमय परमात्मा का मूर्तत्व प्रकाशित होने लगता है। इस प्रकार सच्चिदानंद ही भगवान का शरीर है, जिससे अभिन्नता ही स्वीकार्य है। राग एवं स्वर के समान ही शरीरी एवं शरीर का अतर्क्य अपृथग्भाव व्यवस्थित होता है। भगवान की ज्ञानानंदविग्रहता का प्रतिपादन करते हुए प्रभाकर आगे कहते हैं-

तथा चोक्तं ग्रन्थकृतैव पीठकभाष्ये 'तदेवं ज्ञानानन्दविग्रहता तु तस्य श्रुतिमात्रेण गम्या न तु तर्कैः,

अचिन्त्यालौकिकवस्तुत्वात्। अर्थात् भगवान का ज्ञानानंदशरीरत्व केवल श्रुतिप्रमाण से ही गम्य है, उसे तर्कों द्वारा नहीं समझा जा सकता, क्योंकि परमात्मतत्त्व अचिंत्य एवं लोकोत्तर है। अचिंत्यता का कारण उसका लोकोत्तर होना है। देह और देही की अभिन्नता पर प्रकाश डालते हुए वे कहते हैं-

अत्र देहात् भिन्नो देहीति भिदा भेद ईश्वरवस्तुनि नास्ति, किन्तु देह एव देहीति। मूर्तस्यैव विभुत्वं श्वेताश्वतरोपनिषदिवृक्ष एव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्। (3.9) तात्पर्य यह है कि ईश्वर में स्वगत भेद नहीं है, क्योंकि यहाँ देह से देही अभिन्न है। देह ही देही है। मूर्त अर्थात् ज्ञानानंदघन रहते हुए ही परमात्मा विभु है। उपनिषद्-वाक्य का भाव यही है कि उस पुरुष से सब कुछ परिव्याप्त है, जो एक ही वृक्ष के समान स्थित होता हुआ कूटस्थ तथा नित्य है।

परमात्मा के मूर्तत्व एवं विभुत्व का प्रतिपादन करते हुए प्रमेयरत्नावली में कहा गया है-

द्युस्थोपि निखिलव्यापीत्याख्यानान्मूर्तिमान् विभुः।
युगपद् ध्यातृवृन्देषु साक्षात्काराच्च तादृशः॥

अर्थात् श्वेताश्वतरोपनिषद् का जो यह कथन है कि द्युलोक में रहता हुआ भी वह परमात्मा सर्वव्यापी है, उससे यही सिद्ध होता है कि वह मूर्तिमान होते हुए भी विभु है। ध्यानीजन उसका एक साथ ध्यान में साक्षात्कार करते हैं, इससे भी मूर्तत्व एवं विभुत्व दोनों सिद्ध हैं। इसी तथ्य का प्रतिपादन श्रीमद्भागवत में भी किया गया है-

न चान्तर्न बहिर्यस्य न पूर्वं नापि चापरम्।
पूर्वापरं बहिश्चान्तर्जगतो यो जगच्च यः॥

भाव यह है कि उस परमात्मा के प्रति कुछ भी भीतर, बाहर, पूर्व तथा अपर नहीं है। दिग्विभागशून्य होने से वह जगत् का पूर्व, अपर, भीतर तथा बाहर है और वही जगत् भी है। ईश्वर की अनंत योगशक्ति का उल्लेख करते हुए प्रमेयरत्नावली में कहा गया है-

अनन्त्या शक्तिरस्तीशे योगशब्देन योच्यते।
विरोधभञ्जिका सास्यादिति तत्त्वविदां मतम्॥

तात्पर्य यह है कि ईश्वर में ऐसी शक्ति है, जिसका कोई अंत नहीं है। उस शक्ति को 'योग' शब्द द्वारा अभिहित किया जाता है। तत्त्वज्ञों का मत है कि योगशक्ति समस्त विरोधों को समाप्त कर देती है। वही ईश्वर के मूर्तत्व और विभुत्व के विरोध को भी समाप्त करती है। इस प्रकार इस मत में अनंत शक्तिमान् परमेश्वर में अनंतस्वरूप विभुत्व स्वीकार्य है।

मध्वमत में सभी अवतारों को पूर्ण माना गया है। जगत के कल्याण के लिए भगवान ने मत्स्यादि दशावतार ग्रहण किए थे। ये सभी अवतार स्वयं परिपूर्ण हैं। मध्वबृहदभाष्य में मध्वाचार्य कहते हैं-

अवतारादयो विष्णोः सर्वे पूर्णाः प्रकीर्त्तिताः।
पूर्णं च तत् परं पूर्णं पूर्णात् पूर्णाः समुद्गताः॥
न देशकालसामर्थ्यैः पारावर्यं कथञ्चन।

भावार्थ यह है कि विष्णु के सभी अवतारादि पूर्ण हैं। विष्णु स्वयमेव पूर्ण हैं तथा उनसे अवताररूप अन्य विग्रह धारण करने वाले भी पूर्ण हैं। किसी देशकाल में अभी तक ऐसा सामर्थ्य नहीं है कि कोई इसके आदि और अंत के विषय में कुछ कह सके। अवतार की पूर्णता का प्रतिपादन करते प्रमेयरत्नावली की प्रभाटीका में बृहदारण्यक के **पूर्णमदः पूर्णमिदं** इत्यादि मंत्र की व्याख्या करते हुए कहा गया है-

पूर्णमिति। अदः अवतारिरूपं पूर्णं सर्वशक्तिमत्। इदमवताररूपं पूर्णं सर्वशक्तिमत्। पूर्णादवतारिरूपात् पूर्णमवताररूपमुदच्यते प्रादुर्भवति। पूर्णस्यावताररूपस्य पूर्णं स्वरूपमादाय नीत्वा लीलायां परं पूर्णमवतारिरूपमेवावशिष्यते।

अर्थात् अवतारी सर्वशक्तिमान होते हुए पूर्ण है। अवतार भी सर्वशक्तिमान एवं पूर्ण है। पूर्ण अवतारी से पूर्ण अवतार का प्रादुर्भाव होता है। अवतारस्वरूप पूर्ण परमेश्वरीय स्वरूप को लेकर लीला के पश्चात अवतारी का स्वरूप पूर्ण ही रहता है। इस प्रकार इस मत में किसी भी अवतार को अपूर्ण नहीं माना गया है। शक्ति की अभिव्यक्ति का तारतम्य रहने पर भी पूर्णता अव्याहत रहती है। लघुभागवतामृत में श्री रूपगोस्वामी ने इसका अत्यंत मनोरम निरूपण किया है-

तस्मात्कथं तारतम्यं तेषां व्याख्यायते त्वया।
अत्रोच्यते परेशत्वात् पूर्णा यद्यपि तेऽखिलाः॥
तथाप्यखिलशक्तीनां प्राकट्यं तत्र नो भवेत।
अंशत्वं नामशक्तीनां सदाल्पांशप्रकाशिता॥
पूर्णत्वं च स्वेच्छ्यैव नानाशक्तिप्रकाशिता।
शक्तिरैश्वर्यमाधुर्यकृपातेजोमुखा गुणाः॥

अर्थात् भगवान की अंशता एवं पूर्णता शक्ति के तारतम्य से बनती है। यद्यपि पूर्णता तारतम्यरहित सर्वत्र व्याप्त है, तथापि शक्तियों की अभिव्यक्ति तथा अनभिव्यक्ति से जागतिक तारतम्य व्यवस्थित है। सभी अवतार भी पूर्णस्वरूप ही होते हैं, किंतु उनमें सभी शक्तियों की प्रकटता नहीं रहती, अतः अवतारों में विविधतारूप तारतम्य पाया जाता है। शक्तियों के अल्प अंश की प्रकाशमानता ही भगवान का अंशत्व है और नाना शक्तियों का स्वेच्छाधीन प्रकाशन ही पूर्णत्व कहा गया है। ऐश्वर्य, माधुर्य, कृपा एवं प्रकाश आदि गुण ही विविध शक्तियाँ हैं।

प्रमेयरत्नावली में संपूर्ण मध्वमत का सार इस प्रकार दिया गया है-

श्रीमन्मध्वमते हरिः परतमः सत्यं जगत् तत्त्वतो
भेदो जीवगणा हरेरनुचरा नीचोच्चभावं गताः।
मुक्तिर्नैजसुखानुभूतिरमला भक्तिश्च तत् साधन
मक्षादित्रितयं प्रमाणमखिलाम्नायैकवेद्यो हरिः॥

अर्थात् मध्वमत में हरि परम सत्ता हैं, जगत् सत्य है, भेद तात्त्विक है और सभी जीव हरि के अनुचर हैं, जो उच्चता तथा नीचता का तारतम्य प्राप्त करते हैं। निर्मल स्वरूपसुख की अनुभूति मुक्ति है, जिसका साधन भक्ति है।

प्रत्यक्ष, अनुमान तथा आगम प्रमाण हैं। हरि केवल आगमों के प्रमेय हैं, जिन्हें अनुमानगम्य नहीं माना गया है। [मु०म०पा०]

मानसी सेवा

भगवत् तादात्म्यता प्राप्त करने के लिए लीलानुकरण का सहज साधन है। लीला प्रसंगों में जन साधारण का मन भली प्रकार आकर्षित होकर भगवत सामीप्य का अनुभव-सा करने लगता है। तब हम सामीप्यता को अपने स्वभाव में कैसे उतारें तथा स्थायी करें इस बात को ध्यान में रखकर सभी वैष्णव सम्प्रदायाचार्यों ने श्रीमद्भागवत के अनुसार ब्रज गोपियों को मूल आचार्य मानकर भगवत् स्मरण करने की एक विधि का आविष्कार किया, जिसे 'मानसी सेवा' कहते हैं।

लीलानुकरण का सर्वप्रथम उल्लेख श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध के तीसवें अध्याय के श्लोक संख्या चौदह में प्राप्त होता है-श्री शुकदेव जी राजा परीक्षित से कहते हैं कि-'' श्रीकृष्ण भगवान के रास करते-करते सहसा अन्तर्ध्यान हो जाने पर श्रीकृष्णान्वेषण में उन्मत्त गोपियाँ इन श्रीकृष्ण को ही पूर्व में की हुई लीलाओं की नकल करके तदात्मिका हो गईं।'' इस प्रकार भगवत तादात्म्य प्राप्त करने के लिए लीलानुकरण का सहज उल्लेख हमें सर्वप्रथम श्री वेदव्यास से ही प्राप्त हो जाता है।

वैष्णव सम्प्रदायों में यह मान्यता है कि जीव मुक्त होने पर भी कभी ब्रह्म नहीं हो सकता। अतः वैष्णवजन मुक्ति पर ही संतुष्ट नहीं होते, वे तो आनन्द की उपलब्धि के लिए अंतरंगा शक्ति में प्रवेश करके परमश्रेष्ठ भगवद्धाम बैकुंठादि गोलोक धाम पहुँचना चाहते हैं।

मानसी सेवा में भृङ्गी कीट न्याय से साधक जैसी भावना करता है, कालान्तर में वह उसी स्वरूप को धारण कर लेता है। इस साधना में प्रायः पूर्णतम ब्रह्म की माधुर्य लीलाओं का मानसिक चिन्तन किया जाता है। मानसी सेवा में भी भगवत की सीधी सेवाधिकार न होकर भगवत परिकरों में से किसी एक का आनुगत्य करने को कहा जाता है, हम जीव उनकी जगह नहीं ले सकते, वरन् उनकी आज्ञा से उनके आनुगत्य में उनके सहायक रूप में भगवत् लीला में प्रवेश पाकर कार्य कर सकते हैं। मानसी सेवा भावना प्राप्त करने में अपने श्री गुरुदेव से ही विशेष जानकारी प्राप्त करनी होती है। वे एक दिव्य शरीर की रूप-वय सेवा व उसका कार्यक्षेत्र समझकर, तब साधक अपने गुरु के आनुगत्य में साधना करने लगता है। मानसी सेवा से चिराभिलाषित मोक्ष सहज प्राप्त हो जाता है। [क०उ०]

माया

शंकराचार्य के अद्वैतवाद का एक और नाम मायावाद भी है। उनके अनुसार अग्नि की दाहिका शक्ति के समान ही माया ब्रह्म की अपृथग्भूता शक्ति है। माया शुद्ध भ्रम अथवा ज्ञान का अभाव नहीं है। यह भावरूपा है। इसको न सत्य कह सकते हैं न असत्य, यह दोनों का युग्म है। माया के दो कार्य हैं- (1) आवरण और (2) विक्षेप। आवरण से मोह उत्पन्न होता है, जिसके कारण जीवात्मा ब्रह्म और जगत् के बीच भ्रम उत्पन्न होता है। विक्षेप के कारण ब्रह्म जगत् में प्रतिभासित होता है। जब ब्रह्म अविद्या में विक्षिप्त होता है तो वह जीव बन जाता है और माया में विक्षिप्त होता है। शांकर मत के अनुसार माया के लक्षण निम्नांकित हैं-यह शक्तिरूपा ब्रह्म की सहवर्तिनी और उस पर सर्वथा अवलम्बित है। यह अनादि है। यह सत् और असत् से विलक्षण है। यह विवर्तमान है, किन्तु इसकी व्यावहारिक सत्ता है। यह अध्यास (आरोप) और भ्रान्ति है, इसकी सत्ता तभी तक है जब तक जीवात्मा भ्रम में रहता है। यह ज्ञान से दूर करने योग्य है और इसका आश्रय और विषय दोनों ब्रह्म हैं।

रामानुजाचार्य ने आचार्य शंकर के इस मायावाद का घोर खण्डन किया है। वे माया को न मानकर इसे ईश्वर की

वास्तविक शक्ति मानते हैं जिससे ईश्वर जगत् की सृष्टि करता है। वे सृष्टि को मिथ्या न मानकर उसे वास्तविक और ईश्वर की लीलाभूमि मानते हैं। अत: उनके मत में माया का कोई स्थान नहीं है।

शुद्धाद्वैत सिद्धान्त के अनुसार माया ब्रह्म की शक्ति है, अत: इसे आत्म माया कहा गया है। जिस प्रकार सूर्य से उसका प्रकाश एवं अग्नि से उसकी दाहिका शक्ति भिन्न नहीं है, उसी प्रकार परब्रह्म से माया शक्ति भिन्न नहीं है। यह परब्रह्म से सदा वेष्टित रहती है। यह परब्रह्म के अधीन है, इसलिए ब्रह्म के सत्य स्वरूप को माया कभी आच्छादित नहीं कर सकती। वल्लभाचार्य ने माया के दो रूप माने हैं-(1) विद्या माया (2) अविद्या माया। विद्या माया जगत् एवं अविद्या माया संसार का सृजन करती है। अविद्या माया जीव के बन्धन का कारण है तथा विद्या माया बन्धन से छुड़ाने के लिए साधन है। अविद्या के पाँच पर्व हैं-अन्त:करण, प्राण, इन्द्रिय, देह और स्वरूप नाम। जब जीव इन पाँच पर्वों को अपना स्वरूप समझने लगता है तो इनको क्रमश: अन्त:करण, ध्यास, प्राणाध्यास, इन्द्रिय अध्यास, देहाध्यास तथा स्वरूपाध्यास कहा जाता है। यही जीव के बन्धन का कारण है। ब्रह्म की शक्तिस्वरूप माया ही उनकी आविर्भाव एवं तिरोभाव की क्रियाओं को कराती है।

निम्बार्काचार्य ने जीवात्मा के अज्ञान को ही अविद्यारूपिणी 'माया' के नाम से सम्बोधित किया है। वे माया को अनादि और अचेतन कहते हैं। इस अनादि माया से आवृत्त होने के कारण ही जीव अपने नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वरूप को समझ नहीं पाता। अचेतन अर्थात् अविद्या माया त्रिगुणात्मिका होती है। यह अप्राकृत, प्राकृत और कालरूप तीन प्रकार की कही गई है। उसके शुक्ल, रक्त और पीत तीन रूप हैं। जो सत, रज और तम के प्रतीक हैं। इसे ही प्रकृति, माया एवं प्रधान आदि नामों से अभिहित किया जाता है। वस्तुत: इन तीनों गुणों की साम्यावस्था ही परमात्मा की प्राकृत माया है। [क०उ०]

मुकुंददास गोस्वामी

श्री मुकुन्ददास गोस्वामी जी का प्रादुर्भाव 1583 ई. के आसपास मुलतान (अब पाकिस्तान) के एक धनी परिवार में हुआ। किशोरावस्था में ठा. श्री गोविन्द जी का स्वप्नादेश पाकर वृन्दावन चले आये। वे यहाँ आकर 'श्रीचैतन्य चरितामृत' के रचयिता श्री कृष्णदास कविराज गोस्वामी के शिष्य बने। श्री गुरुदेव की आज्ञा से श्री सनातन गोस्वामी के शिष्य श्री कृष्णदास जी जिनका पूर्व नाम था रामदास कपूर से बंगला और संस्कृत भाषा ज्ञान के साथ प्रारम्भिक भक्ति साधना की शिक्षा प्राप्त की। पश्चात श्री कविराज गोस्वामी जी से भक्ति ग्रन्थों का अध्ययन एवं रागानुगा भक्तिमार्गीय गूढ़ रहस्यों का ज्ञान प्राप्त कर पारंगत हो गये। श्री हरिनाम संकीर्तन, श्रीराधाकृष्ण की अष्टयाम लीला स्मरण और श्री गुरु सेवा साधना में तल्लीन रहने लगे। सन् 1616 में श्री गुरुदेव श्री कविराज गोस्वामी जी के तिरोधान के पश्चात तीव्र वैराग्य दशा में श्री मुकुन्ददास जी ब्रजमण्डल के वनों में भ्रमण करते हुए भजन में तल्लीन रहते, देह की सुध-बुध तक नहीं रहती।

एक बार वे श्रीराधागोविन्द जू के साक्षात् दर्शन का संकल्प लेकर अन्न-जल त्याग कर राधाकुण्ड के तट पर कठोर साधना करने लगे। ब्रजरज का सेवन करते और रज में ही लोट-पोट होते, दिन-रात श्रीराधाकृष्ण के विरह में क्रन्दन करते-करते उनकी नेत्र ज्योति चली गयी एवं बिना भोजन के मुकुन्ददास जी का शरीर शिथिल हो गया। अब उठने-बैठने की सामर्थ्य नहीं रही, फिर भी उन्होंने दर्शन की प्रतिज्ञा नहीं छोड़ी। यह करुण दशा देखकर श्रीराधारानी का हृदय करुणा से द्रवित हो उठा और श्रीश्यामसुन्दर से कहने लगीं, "प्रियतम! तुमने क्या मुकुन्द को इस तरह मारने के लिये यहाँ बुलाया था? अब भी कृपा नहीं करोगे क्या? "किशोरी जू! तुम्हारे आदेश के बिना मैं कैसे कृपा कर सकता था, वृन्दावन की अधीश्वरी तो तुम हो, अब तुम्हारी कृपा हो गयी, चलो हम दर्शन देते हैं।" ऐसा कहकर मुकुन्ददास जी के निकट आकर बोले "मुकुन्द! उठो हम आये हैं, दर्शन करो।" युगल सरकार की अमृतमयी वाणी को सुनकर

उनके प्राणों में दिव्य शक्ति का संचार हुआ और चेतना प्राप्त कर वे बोले-"हे प्रिया-प्रियतम जू! मेरी आँखों की दृष्टि चली जाने से आपकी दिव्य रूप छवि का दर्शन नहीं कर पा रहा हूँ।" तब श्रीराधारानी ने मुकुन्ददास जी के नेत्रों में दिव्य सुरमा लगाकर नेत्र ज्योति प्रदान की, साथ ही श्रीराधाजी ने अपने हृदय से श्रीकृष्ण विग्रह और श्रीगोविन्द ने अपने हृदय से श्रीराधा विग्रह प्रकट कर उन्हें प्रदान किए।

गोस्वामी श्रीमुकुन्ददास जी दिव्य दृष्टि तथा अत्यन्त मनोहारी श्री युगल विग्रह प्राप्त कर आनन्द से नाच उठे। ठाकुर का नाम रखा 'श्रीराधानयनानन्द'। अब प्रारम्भ हुई युगल की प्राणभरी सेवा। बाद में श्रीगुरुजी की भजनस्थली वृन्दावन स्थित बड़ी सूरमा कुंज में 'श्रीराधानयनानन्द' जी की स्थापना कर सेवा प्रतिष्ठित की। नयनानन्द जी के साथ मुकुन्ददास जी द्वारा मुल्तान से लाये हुए स्वयं प्रगट श्री नृसिंह शालिग्राम भगवान श्री यहाँ विराजमान किए।

श्री मुकुन्ददास गोस्वामी एक बार बंगाल गये। वहाँ नवद्वीप धाम एवं अन्य श्रीगौरलीला स्थलियों का दर्शन कर भावविह्वल हो उठे। 'श्रीचैतन्य चरितामृत' ग्रन्थ सर्वप्रथम वे ही गौड़देश ले गये और उसकी अनेक प्रतिलिपियाँ स्वयं की तथा करायीं। गोस्वामी श्रीमुकुन्ददास जी के अनेक शिष्य थे उनमें श्रीरूपकवीश्वर गोस्वामी, मधुदास गोस्वामी, नृसिंहानन्द अधिकारी एवं मनीराम घोष प्रमुख थे।

गोस्वामी श्री मुकुन्ददास जी की मुख्य रचनाएँ- 'श्री भक्तिरसामृत सिन्धु' की 'अर्थरत्नावलीदीपिका' नाम की टीका एवं 'मनोऽवलम्बिका' है।

श्री रूप, श्री सनातन, श्री जीव आदि प्रमुख गौड़ीय आचार्यगणों के पश्चात् श्री मुकुन्ददास गोस्वामी ब्रजमण्डल के गौड़ीय वैष्णव समाज के कर्णधार स्वरूप थे। सर्वशास्त्रों में परम निष्णात एवं रसिक शिरोमणि श्री मुकुन्ददास जी महाराज का आश्विन शुक्ल पंचमी सम्वत् 1721 में तिरोधान हुआ। इनकी समाधि बड़ी सूरमा कुंज में अवस्थित है। [प्रे०दा०शा०]

मुकुंददेव

श्री मुकुंददेव जी की दिव्यता इससे प्रमाणित होती है कि तीन सौ वर्षों तक इन्होंने इस देह को धारण किया। इनका जन्म काशी के तैलंग ब्राह्मण कुल में हुआ। जब इन्होंने सुना कि वृंदावन की लता-पतादि भगवान श्रीकृष्ण की सखी-सहचरियाँ हैं तो ये काशी छोड़कर वृंदावन आ गए। इनकी भाव-माधुरी और उत्कट लालसा से इन्होंने जो सुना उसका दर्शन अनुभव भी प्राप्त किया। इन्होंने वृंदावन आकर गुरुदेव श्री हरिवल्लभ देव जी से वैष्णवी दीक्षा ग्रहण की और 24 वर्षपर्यंत उनकी परंपरा को सुशोभित किया। [कुं०बि०श०]

मुण्डकोपनिषद्

यह उपनिषद् अथर्ववेद की शौनक शाखा से सम्बन्धित है। श्वेताश्वतर उपनिषद् के समान इस उपनिषद् का प्रारंभ गुरु-शिष्य परम्परा के रूप में सृष्टिकर्ता ब्रह्मा से बताते हैं। इस उपनिषद् के प्रथम मंत्र की प्रस्तावना में कहा गया है कि सम्पूर्ण देवताओं में पहले ब्रह्मा उत्पन्न हुए जो विश्व के रचयिता और त्रिभुवन के रक्षक थे। उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा को समस्त विद्याओं की आधारभूत ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया। वही ब्रह्मविद्या अंगी ऋषि को बतायी और अंगी से भरद्वाज गोत्र में उत्पन्न सत्यवह नामक ऋषि को। इस प्रकार भरद्वाज ऋषि से ब्रह्म के पर और अपर दो स्वरूपों का ज्ञान कराने वाली यह ब्रह्मविद्या अंगिरा नामक ऋषि को उपदेशित हुई। अंगिरा ऋषि के आश्रम में रहकर शौनक नाम के ऋषि ने ब्रह्मविद्या का ज्ञान प्राप्त किया।

मुण्डकोपनिषद् में ब्रह्म के उपादान के रूप में जगत की उत्पत्ति का वर्णन हुआ है, ब्रह्म से ही वेदों की उत्पत्ति बतायी है। उस पुरुष से ही ऋचाएँ (ऋग्वेद), यजूंसि (यजुर्वेद), साम (सामवेद), दीक्षा, संपूर्ण यज्ञ, क्रतु, दक्षिणा, संवत्सर,

यजमान, लोक और जहाँ तक चंद्रमा पवित्र करता है तथा सूर्य तपता है वे सब लोक उत्पन्न हुए हैं। मुण्डकोपनिषद् में बताया है कि 'इस ब्रह्म से ही प्राण उत्पन्न होता है तथा इसी से मन, इंद्रियाँ, आकाश, वायु, तेज (सूर्य, चंद्र, तारे, विद्युत, अग्नि) और सारे संसार को धारण करने वाली पृथ्वी उत्पन्न होती है।

अर्थात् जब ज्ञान की निर्मल ज्योति से सम्यक् रूप से नैतिक कायाकल्प हो जाता है, उसी स्थिति में ध्यान करते-करते आत्मा का कोई साक्षात्कार पा सकता है। क्योंकि उसे न चक्षु से न वाणी से, न अन्य किसी इंद्रिय से, न तप से और न किसी अन्य कर्म से पाया जा सकता है। कठोपनिषद् में भी नैतिक पुरुष के पापों के सम्यक् धुल जाने पर परमात्मा के दर्शन होने की बात कही है। मुण्डकोपनिषद् और छान्दोग्योपनिषद् के वाक्यों को देखकर यह बात निश्चित रूप से ध्यान देने योग्य है कि साधक् को साध्य की प्राप्ति तक प्रमाद न करके सावधान रहना चाहिए।

[वि०श०]

मुरलीधर

श्री मुरलीधर जी का जन्म सम्वत् 1630 के लगभग माना जाता है। इनके पिता श्री गिरधारी जी अकबर के सम्मान्य दरबारी तथा सम्राट के उपयोग में आने वाले गंगाजल के निरीक्षक थे। श्री मुरलीधर जी वल्लभ गद्दी के आचार्य थे। इनका व्यक्तिव अत्यन्त आकर्षक था। ये कुशल मृदंगवादक थे। [जि०कु०]

मुरलीमनोहर

मुरलीमनोहर संत चरणदास जी के शिष्य थे। ये चरणदास के प्रमुख 108 शिष्यों में गिने जाते हैं। ये लखनऊ के रहने वाले थे, परन्तु इनका कार्यक्षेत्र हाथरस रहा। हाथरस में ठठेरों का मोहल्ला नामक स्थान पर एक चरणदासी संत लालदास ने गद्दी स्थापित की थी। मुरलीमनोहर इस गद्दी पर रहकर ही सम्प्रदाय का प्रचार-प्रसार किया करते थे। इनके विषय में और कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। इनके द्वारा रचे गये साहित्य के बारे में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। [क०उ०]

मुरलीबिहारी

मुरलीबिहारी संत चरणदास जी के शिष्य थे। इनके जीवनवृत्त के विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। ये मूलत: लखनऊ के रहने वाले थे। ये चरणदासी संत सुखविलास मस्तराम एवं श्यामशरण बड़भागी की प्रेरणा से दिल्ली आकर चरणदास जी के शिष्य हो गये थे। गुरु के जीवित रहते हुए ये पूरे समय दिल्ली में रहे। गुरु के देहावसान के बाद ये लखनऊ में आकर सम्प्रदाय के प्रचार-प्रसार में लग गये और साधना में लीन रहने लगे। इनकी बानियों के बारे में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। [क०उ०]

मोक्ष

सांसारिक बन्धनों से जीवात्मा की मुक्ति ही मोक्ष कहलाती है। जीवात्मा के लिए संसार बन्धन स्वरूप है। यह कर्म के फलस्वरूप अथवा आसक्ति से उत्पन्न होता है। शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के कर्म बन्धन उत्पन्न करते हैं। जीव को जब सत्य का ज्ञान हो जाता है कि परब्रह्म ही एकमात्र सत्ता है, संसार कल्पित, मायिक और मिथ्या है, तब उसके सुख-दु:ख भी कल्पित और मिथ्या हैं, तब उसके ऊपर कर्मफल और संसार का प्रभाव नहीं पड़ता और वह इनके बन्धनों से मुक्त हो जाता है। परन्तु यह निषेधात्मक स्थिति न होकर विशुद्ध और पूर्ण आनन्द की स्थिति है।

शंकराचार्य के अनुसार ज्ञान के द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार के साथ-साथ समस्त अज्ञान और उसके कर्मों का भी नाश हो जाता है। ऐसी स्थिति में ब्रह्म के अलावा कुछ भी शेष नहीं रह जाता है, जीव ब्रह्म ही हो जाता है। जीवो ब्रह्मैवनाऽपर:। यही शांकर वेदान्त का मोक्ष है। जीवात्मा अविद्या के नाश हो जाने पर अपने स्वरूप को पहचान ले तो मोक्ष हो जाता है, यही 'अहं ब्रह्मोऽस्मि' की स्थिति है। मोक्ष या मुक्ति व्यक्ति साध्य प्रक्रिया है, जो ज्ञान द्वारा ही सम्भव है।

रामानुज मत में शंकराचार्य की तरह मोक्ष का तात्पर्य जीव तथा ब्रह्म के एक हो जाने से नहीं है। मुक्तावस्था में ईश्वर हो जाना एक बात है तथा ईश्वर के समान दूसरी बात। इस मत के अनुसार मोक्ष दशा में शरीर, ज्ञान तथा आनन्द सबका भान होता है। मुक्तावस्था में जो शरीर मिलता है, वह अलौकिक होता है। बैकुण्ठ में मुक्त जीव शरीरधारी होकर भगवान के सान्निध्य का आनन्द लूटते हैं। मुक्तात्मा को 'स्वराट्' कहा गया है, इसलिए कि वह कर्म विधान के अधीन नहीं है। मुक्तात्मा को किसी चीज की अभिलाषा नहीं रहती, कर्म बन्धन से मुक्त हो जाने के कारण उसका पुनर्जन्म नहीं होता। मुक्त जीव में सर्वज्ञत्व तथा सत्य संकल्पत्व के गुण अवश्य आ जाते हैं, परन्तु सर्वकर्तृत्व गुण ईश्वर के साथ रहते हैं अर्थात् वह जगत की सृष्टि, स्थिति तथा लय नहीं कर सकता। बैकुण्ठ में भगवान का किंकर बनना ही परम मुक्ति है। रामानुज को केवल 'विदेह-मुक्ति' मान्य है, 'जीवन्मुक्ति' नहीं। इनके अनुसार भगवान वासुदेव के अनुग्रह से ही मुक्ति प्राप्त होती है। कर्म योग, ज्ञानयोग, भक्ति योग और प्रपत्ति चार मोक्ष प्राप्ति के उपाय हैं। रामानुज ज्ञान कर्म समुच्चयवादी हैं। वैदिक कर्मों के अनुष्ठान से चित्त की शुद्धि होती है, परब्रह्म जिज्ञासा उत्पन्न होती है। ज्ञानरूप भक्ति जीव के समस्त बन्धनों और क्लेशों का नाश कर देती है, तब उसे ब्रह्म ज्ञान होता है। भक्ति का भी सर्वश्रेष्ठ तात्पर्य 'प्रपत्ति' से है। जब तक जीव भगवान की शरण में नहीं जाता, तब तक उसका कल्याण नहीं हो सकता। ईश्वर का साक्षात अनुभव ही मुक्ति का अन्तिम साधन है।

पुष्टिमार्ग अर्थात् वल्लभ मत के 'पोषणं तद्नुग्रहम्' के अनुसार मुक्ति भगवत अनुग्रह पर निर्भर है, साधना पर नहीं। वल्लभाचार्य ने मोक्ष के तीन साधन स्वीकार किए हैं-ज्ञान, योग और भक्ति। ज्ञान और योग कष्टसाध्य हैं, परन्तु भक्ति सर्वसुलभ एवं उत्तम है। ज्ञान और योग से सायुज्य मुक्ति की प्राप्ति होती है अर्थात् जीव ब्रह्म में मिलकर तदाकार हो जाता है, परन्तु वल्लभाचार्य के अनुसार भक्त भगवान के साथ गोलोक में परमानन्द लाभ प्राप्त करता है, यही 'स्वरूपानन्द' है। इस मुक्ति में रसात्मकता है।

निम्बार्काचार्य के अनुसार मुक्ति दो प्रकार की है- क्रम मुक्ति और सद्यो मुक्ति। निष्काम कर्म एवं विधिपूर्वक अर्चनादि से स्वर्गादि लोकों के अनुभव लेते हुए सायुज्य मुक्ति को प्राप्त करना क्रम मुक्ति है। इसके विपरीत प्रेम लक्षणा भक्ति जिसे रागात्मिका भक्ति भी कहते हैं। भगवान के रूप, गुण, शारीरिक अवयव आदि के प्रति स्वाभाविक प्रेम या शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं मधुर भक्ति के द्वारा सांसारिक बन्धनों से छूटकर भगवत्कृपा से कृष्ण लोक में जाना सद्य: मुक्ति है। निम्बार्काचार्य जी ने राधाकृष्ण की युगल उपासना पर विशेष बल दिया है।

माध्व मतानुसार मुक्ति चार प्रकार की होती है-कर्मक्षय, उत्क्रान्तिलय, अर्चिराहि एवं भोग। कर्मक्षय मुक्ति में जीव के अपरोक्ष ज्ञान से संचित कर्मों एवं प्रारब्ध कर्मों का नाश भोग से होता है। सभी कर्मों का नाश हो जाने पर जीव सुषुम्ना नाड़ी द्वारा देह से निकलकर ऊपर उठता है और उसे परमात्मा की प्राप्ति होती है। उत्क्रान्तिलय मुक्ति में जीव के हृदय में ब्रह्म ज्योति के अलौकिक प्रकाश का आभास होता है। ब्रह्मद्वार पार कर जीव को बैकुण्ठ में ब्रह्म साक्षात्कार होता है। अर्चिरादि मार्ग से जो जीव ब्रह्म में लय हो जाते हैं, वे अपने सूक्ष्म शरीर का त्यागकर आत्मस्वरूप के ज्ञान को प्राप्त करते हैं और बैकुण्ठ में पहुँचकर भगवान का दर्शन करते हैं। भोग जीव की ब्रह्म प्राप्ति की अंतिम अवस्था का नाम है। भोग मुक्ति भी चार प्रकार की है-सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य तथा सायुज्य। इन चारों में से किसी एक को स्वीकार कर वे श्वेतद्वीप स्थित नारायण की आज्ञा से परम आनन्द का भोग करते हैं। ये मुक्त जीव फिर संसार में नहीं आते।

चैतन्य मतानुसार सच्चा भक्त धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन पुरुषार्थों को नहीं चाहता। इनके अनुसार वैधी भक्ति द्वारा भक्त भगवान कृष्ण के मथुरा एवं द्वारका धाम को प्राप्त करते हैं एवं रागात्मिक भक्ति द्वारा गोकुल रस सागर में निमज्जित होकर गोलोक तथा ब्रज वृन्दावन में आनन्द विभोर रहते हैं। निकुंज के महारास का आस्वादन ही परम पुरुषार्थ एवं मुक्ति है। जीव गोस्वामी ने पाँच प्रकार की मुक्ति स्वीकार की है-सालोक्य, सार्ष्टि, सारूप्य, सामीप्य और सायुज्य। परन्तु इस प्रकार की मुक्ति को इस सम्प्रदाय में आदर प्राप्त नहीं हुआ। वास्तव में भगवत् प्रेम के शाश्वत अनुभव में ही मोक्ष है। दिव्य लोक स्थित आत्माएँ अपने ईश्वर से दास, सख्य, वात्सल्य और मधुर भाव से प्रेम करती हैं। यह प्रेमानन्द ही मोक्ष है। [क०उ०]

मोहनचन्द्र

मोहनचंद्र जी का जन्म श्री वृन्दावन धाम में संवत् 1598 कार्तिक वदी 10 को हुआ था। इनकी माता का नाम कृष्णदासी जी था, जो कि गो० हित हरिवंश महाप्रभु का जिन दो ब्राह्मण कन्याओं से विवाह हुआ था, उनमें से एक थीं। इनके द्वारा रचित राधाष्टक दृष्टिगोचर होता है। इनके दो पुत्र हुये-बड़े श्री गोस्वामी गिरधरदास जी तथा छोटे गोस्वामी राधिकादास जी। इन दोनों महानुभावों के जन्म का संवत् नहीं मिलता। मोहनचंद जी के शिष्य परिकर में राधिकादास जी, गिरधरदास जी (गुजराती), श्रीनाथ भट्ट जी, श्री अनन्तानंद जी गोस्वामी (बंग देशीय) हैं। [प्र०श०]

मोहन देव

परमहंस प्रवृत्ति के श्री मोहनदेव जी थानेश्वर के गौड़ ब्राह्मण थे। घर-द्वार तजकर निकुंज भूमि वृंदावन में आए और यहीं पर रमे रह गए। लघुवीठल जी की मोहिनी ने इन्हें सम्मोहित कर लिया। गुरुदेव बनाकर वैष्णवी दीक्षा प्राप्त कर राधा सर्वेश्वर के भजन-कीर्तन के मार्ग का अवलम्बन किया। इनकी ख्याति चहुँओर इतनी फैल गयी कि राजा-महाराजा, सरदार, सामंत बड़ी-बड़ी भेंटें निवेदित करने लगे किंतु परमहंस रहनी-करनी का व्रतपालन करने वाले श्री मोहनदेव जी कुछ भी स्पर्श न करते वरन् संपूर्ण द्रव्य हरि और संतों की सेवा में समर्पित कर देते। इसी प्रकार वृत्ति से आचार्य जी 80 वर्ष तक निधिवन में विराजे। [कुं०बि०श०]

मौनी अमावस्या

माघ मास की अमावस तिथि को मौन रहकर व्रत, नियम, पूजन एवं स्नान, दान का विशेष महत्त्व होता है। मौनी अमावस को सोमवार हो तो महत्त्व और बढ़ जाता है। माघ मास में गंगा, यमुना, सरस्वती (त्रिवेणी) स्नान की बड़ी महिमा है। यहाँ कल्पवास होता है। इस दिन तिल, तेल, आँवला दान का विशेष महत्त्व है। इस अवसर पर यज्ञ, दान, ब्राह्मण तथा दरिद्रों को भोजन कराना चाहिए। सूर्य को अर्घ्य देकर हरि का पूजन या स्मरण करना चाहिये। माघ स्नान के लिये चारों आश्रमों तथा चारों वर्णों के लोग अधिकारी माने गये हैं। इस दिन मौन रहकर भगवान का ध्यान-भजन करना चाहिये। पंच मेवा के साथ सोंठ आदि विशेष प्रकार के व्यंजनों का भोग लगाया जाता है। इस अवसर पर भगवान की विशेष आरती का आयोजन किया जाता है। [प्र०श०]

यजुर्वेद

इष्ट की प्राप्ति और अनिष्ट का परिहार करने का अलौकिक उपाय जिसके द्वारा बताया जाता है, उसे वेद कहते हैं-''इष्टप्राप्ति अनिष्टपरिहारयोः अलौकिकम् उपायं वेद्यते स वेदः।'' अथवा जिसके अन्तर्गत सभी सत्य विद्याओं

का ज्ञान प्राप्त होता है, उसे वेद कहते हैं। यजुर्वेद के लिए वचन है कि ''अनियताक्षरो यजुः'' जिन मंत्रों के अक्षरों का क्रम अनियत (अनिश्चित) होता है, उसे यजु कहते हैं एवं ''गद्यात्मको यजु'' यजुर्वेद के मंत्र प्रधानतया गद्यात्मक होते हैं। पाणिनीय धातु के अंतर्गत पाठ, देवपूजा, संगतिकरण और दान इन तीन अर्थों में 'यज्' धातु से साधित होकर यजुस् शब्द बना है। अतः यजुर्वेद के मंत्रों का देवताओं की पूजा-अर्चना एवं धार्मिक कृत्यों के निमित्त विधियों की दृष्टि से प्रयोग होता है। ''ऋग्भिः स्तुवन्ति यजुर्भिः यजन्ति'' ऋग्वेद के मंत्रों यानि ऋचाओं से स्तुति और यजुर्वेद के मंत्रों से यज्ञ किया जाता है। यजुर्वेद क्रियात्मक होने से यज्ञीय अनुष्ठान में यजुर्वेद के मंत्रों का प्रयोग होता है।

महाभाष्यकार पतंजलि के अनुसार यजुर्वेद की 101 शाखाएँ थीं, जिनमें कृष्णयजुर्वेद की 86 और शुक्ल यजुर्वेद की 15 शाखाएँ प्राप्त हैं। इन शाखाओं में से 4 शाखाओं के ही ग्रंथ प्राप्त होते हैं। तैत्तरीय शाखा, कालाप या मैत्रायणी शाखा, कठ शाखा और कपिष्ठल शाखा। इनमें तैत्तरीय संहिता में सात काण्ड हैं, 44 प्रपाठक हैं। इसी संहिता की आपस्तम्भ और हिरण्यकेशी नाम की दो शाखाएँ विद्यमान हैं। इन शाखाओं के ज्ञाता गोदावरी के परिसर में प्राप्त होते हैं। कालाप शाखा के विद्वान गुजरात में अल्प संख्या में प्राप्त होते हैं। इसी को 'मैत्रायणी संहिता' भी कहा गया है। यह गद्य-पद्यात्मक संहिता चार काण्डों में है। जिसमें प्रत्येक काण्ड में क्रमश 11, 13, 16 और 14 प्रपाठक हैं। इनका कृष्ण यजुर्वेद में अन्तर्भाव है।

यजुर्वेद के दूसरे भाग का नाम है 'शुक्ल यजुर्वेद' अथवा 'वाजसनेयी संहिता'। महर्षि याज्ञवल्क्य ने सूर्य की आराधना से प्राप्त शुक्ल यजुर्वेद का अपने कण्वादि 15 शिष्यों को उपदेश दिया। परम्परानुसार उन्होंने भी इस वेद ज्ञान का अपने शिष्यों को प्रवचन किया। शाखा पाठ के आदि प्रवचनकर्त्ता याज्ञवल्क्य के 15 शिष्य होने के कारण उन शिष्यों के नाम से 15 शाखाओं की प्रसिद्धि हो गयी। इन 15 शाखाओं के अध्ययन करने वाले वाजसनेयी नाम से प्रसिद्ध हैं।

'माध्यन्दिन' और 'काण्व' शुक्ल यजुर्वेद की दो उपशाखाएँ हैं। याज्ञवल्क्य के 15 शिष्यों में एक 'माध्यन्दिन' नामक शिष्य था। उसके मुख से जिन यजुषों का प्रवचन किया गया, वे मंत्र समूह माध्यन्दिन शाखा के नाम से विख्यात हुए। कुछ विद्वानों का मानना है कि वाजिरूप सूर्य के द्वारा याज्ञवल्क्य ऋषि ने दिन के मध्यकाल में यजुर्वेद के जिन मंत्रों का ज्ञान प्राप्त किया उन मंत्रों के समूह को 'माध्यन्दिन' कहा जाने लगा। सम्पूर्ण माध्यन्दिन संहिता 40 अध्यायों और 1975 कण्डिकाओं में विभक्त है।

काण्व शाखा शुक्ल यजुर्वेद की दूसरी उपलब्ध शाखा है। इसके प्रवचनकर्त्ता 'कण्व' होने से इस शाखा का नाम 'काण्व' पड़ा। इस संहिता में भी माध्यन्दिन की तरह 40 अध्याय हैं जो 4 दशकों में विभक्त हैं। सम्पूर्ण ग्रंथ में 328 अनुवाक् और 2086 मंत्र हैं। इस संहिता का पांचरात्र संहिता से विशेष सम्बन्ध है।

शुक्ल यजुर्वेद का शतपथ ब्राह्मण प्रसिद्ध ग्रंथ है। ''शतं पन्थानो यस्य तच्छतपथम्'' इस श्रुतिवाक्य में पथि शब्द से माध्यन्दिन शतपथ ब्राह्मण अध्यायों के बारे में कथन किया गया है। 100 अध्यायों में विभक्त इस ग्रंथ में 14 काण्ड, 438 ब्राह्मण और 7624 कण्डिकाएँ हैं। काण्व शाखा के शतपथ में 17 काण्ड, 101 अध्याय, 436 ब्राह्मण तथा 6806 कण्डिकाएँ हैं। इस ग्रंथ में प्रपाठक नहीं है। इस ग्रंथ में यज्ञ मीमांसा का प्रारम्भ हविर्यागो से किया है।

शुक्ल यजुर्वेद का बृहदारण्यक प्रसिद्ध है। इसके प्रवचनकर्ता याज्ञवल्क्य हैं। आरण्यकों में प्राणविद्या तथा प्रतीकोपासना है, तो वहीं उपनिषदों में निर्गुण ब्रह्म के स्वरूप तथा उसकी प्राप्ति के साधनों का वर्णन है। शुक्ल यजुर्वेद के 19 उपनिषद् हैं इनमें 'ईशावास्योपनिषद्' और 'बृहदारण्यक' मुख्य हैं। 'कात्यायन श्रौत्रसूत्र' शुक्ल यजुर्वेद की 15 शाखाओं के लिए प्रवृत्त है। इसमें कण्डिकाओं से युक्त 26 अध्याय हैं।

शुक्ल यजुर्वेद के अन्य ग्रंथों में 'पारस्कर गृह्यसूत्र' और 'वैखानश गृह्यसूत्र' ये दो ग्रंथ भी मिलते हैं। 'शुल्वसूत्र' और कृष्ण यजुर्वेद का 'वाजसनेयि प्रातिशाख्य' ये दोनों ग्रंथ महर्षि कात्यायन द्वारा रचित हैं।

कृष्ण यजुर्वेद की 86 शाखाओं में 4 शाखाएँ उपलब्ध हैं-तैत्तरीय शाखा, मैत्रायणी शाखा, कठ शाखा और कपिष्ठल शाखा। तैत्तरीय शाखा शुक्ल और कृष्ण के भेद निरूपण में याज्ञवल्क्य ऋषि के द्वारा वमन किये गये यजुषों का वैशम्पायन के शिष्यों ने तित्तिर बनकर ग्रहण कर लिया। तैत्तरीय संहिता में सारस्वत और आर्षेय के रूप में दो पाठभेद हैं। इस संहिता में 7 काण्ड, 44 प्रपाठक, 651 अनुवाक् हैं। चरणव्यूह में 44 प्रपाठकों के स्थान पर 44 प्रश्नों का उल्लेख किया गया है। तैत्तरीय परम्परा में बौधायन, आपस्तम्ब, सत्याषाढ़ आदि आचार्यों के द्वारा तैत्तरीय संहिता के आर्षेय पाठ्यक्रम का भी उल्लेख किया गया है।

मैत्रायणी शाखा 'मित्रयु' नामक आचार्य के द्वारा उपदेशित होने का कारण 'मैत्रायणी शाखा' के नाम से जानी जाती है। गद्य-पद्य मिश्रित इस शाखा में गाय के विभिन्न नामों का उल्लेख करते हुए उसकी महिमा का विवेचन किया गया है।

कठशाखा का प्रवचन 'कठ' नामक आचार्य ने किया है। इसलिए इसे 'काठक संहिता' भी कहा जाता है। काठकों का मूल स्थान गोदा नामक नदी का दक्षिणाग्नेय तटवर्ती स्थान था। 5 खण्डों में विभक्त इस संहिता के खण्डों के टुकड़ों को स्थानक शब्द से अभिहित किया गया है। इसमें कथानक 40, अनुवाचन 13, अनुवाक् 883, मंत्र 3091 तथा ब्राह्मण 98 हजार हैं।

कपिष्ठल ऋषि प्रोक्त होने से इस शाखा का 'कपिष्ठल' नाम पड़ा। यह संहिता आज पूर्ण रूप से उपलब्ध नहीं है। 'तैत्तरीय ब्राह्मण' के नाम से कृष्ण यजुर्वेद का पूर्णरूप से ग्रंथ उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त कृष्ण यजुर्वेद के कल्प ग्रंथों में-बौधायन, आपस्तम्भ, सत्याषाढ़, मानव, वैखानस, भारद्वाज और वाराह भी हैं। शिक्षा ग्रंथों में कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तरीय शाखा से सम्बद्ध भारद्वाज शिक्षा उपलब्ध है। आरण्यकों में तैत्तरीय आरण्यक और उपनिषदों में मैत्रायणी उपनिषद्, कठोपनिषद् और श्वेताश्वतरोपनिषद् उपलब्ध हैं। [स०ना०दा०]

यदुनाथ

वल्लभ सम्प्रदाय के षष्ठ गृह की परंपरा गोस्वामी बिट्ठलनाथ जी के छठे पुत्र श्री यदुनाथजी से चली। श्री यदुनाथ जी का जन्म संवत् 1615 में अड़ैल में और विवाह संवत् 1630 के लगभग गोकुल में हुआ था। वैसे तो यदुनाथ जी का अपने सभी भाइयों से बहुत स्नेह और प्रेम था किंतु अपने भाई श्री बालकृष्ण जी से विशेष लगाव, आत्मीयता व प्रेम था। उनका रहन-सहन बालकृष्ण जी के साथ होता था।

एक बार जब गोस्वामी बिट्ठलनाथजी ने अपने सेव्य स्वरूपों का अपने पुत्रों में बँटवारा किया तो यदुनाथ जी को बालकृष्ण जी का सेव्य स्वरूप तथा बालकृष्ण जी को द्वारकानाथ जी का स्वरूप प्रदान किए गए। उस समय बालकृष्ण जी की आकृति बहुत छोटी होने के कारण यदुनाथ जी ने उन्हें स्वयं स्वीकार न करते हुए अपने बड़े भाई बालकृष्ण जी को ही अर्पित कर दी। दोनों स्वरूपों की सेवा तृतीय गृह में ही होने लगी। अपनी इच्छानुसार स्वरूप न मिलने पर यदुनाथ जी गोस्वामी जी से असंतुष्ट रहने लगे थे। एक बार बिट्ठलनाथजी ने सभी स्वरूपों को जतीपुरा में पधराया तो यदुनाथजी वहाँ नहीं गए। गोस्वामी बिटठलनाथ जी ने उन्हें अपने सेवकों द्वारा बुलवाया। तब मान रखते हुए यदुनाथ जी चले तो गए किंतु उनका असंतोष बराबर बना रहा। तब उन्हें कल्याणराय जी का स्वरूप दिया गया। यदुनाथजी बहुत बड़े ज्ञानी, धर्माचार्य थे। उनका रचा हुआ 'श्रीवल्लभ दिग्विजय' ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध है जिसकी रचना संवत् 1658 में हुई थी। गोस्वामी यदुनाथ जी का देहावसान संवत् 1660 के लगभग हुआ था। [वं०तै०]

यम

हिन्दू धर्म में गर्भधान से लेकर मृत्यु तक 16 संस्कार नियत हैं। इन संस्कारों में अंतिम संस्कार के देवता हैं 'यम'। यम का उल्लेख सभी धार्मिक पुराणों, कथाओं, ग्रंथों एवं देवों में आता है। जिनमें कहीं इन्हें मृत्यु के देवता तो कहीं मृत्यु का

शासक कहा गया है। ब्राह्मण ग्रंथों में यम की प्रतिष्ठा न्यायाधीश और दंडाधिकारी के आधार पर की गयी है। ऋग्वेद में दशम मंडल में यम का उल्लेख स्पष्ट मृत्यु देव के रूप में हुआ है। दशम मंडल के चौदहवें सूक्त में यम के पास सदा सजग रहने वाले चितकबरे दो श्वानों (कुत्तों) का वर्णन हुआ है। ये श्वान देवलोक की सरमा के पुत्र हैं। मृतक को इनसे सावधान रहने के लिए कहा जाता है। लोकविश्वास है कि यज्ञ की अग्नि में समर्पित जीव की समस्त आहुतियाँ सीधे यम के पास जाती हैं। यही कारण है कि दक्षिण दिशा के इन लोकपाल को (यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल, सर्वभूतक्षय, औदुम्बर, दघ्न, नील, परमेष्ठी, वृकोदर, चित्र और चित्रगुप्त) चतुर्दश नामों से नाना प्रकार की स्तुति कर प्रसन्न और तृप्त किया जाता है। महषिवाहन दण्डधर की नगरी पापात्मा जीवप्राणियों के लिये कष्टदायक है। चार द्वारों, सात तोरणों तथा पुष्पोदका, वैवस्वती आदि सुरम्य नदियों से सुसज्जित यमपुरी में पुण्यात्माओं को यमराज विष्णु के रूप में दर्शन देते हैं जबकि पापात्माओं को अत्यंत पीड़ा झेलनी पड़ती है। अत: दीपोत्सव से पूर्व एक दीप यम को समर्पित करके यम से कष्टहीन मृत्यु और लम्बी आयु के लिए प्रार्थना की जाती है। मृत्यु के पश्चात् अंतिम संस्कार के समय मृत व्यक्ति को संबोधित करते हुए कहा जाता है, कि हे पितृ हमारे पूर्व पितृ जिन मार्गों से यम के पास गए हैं, उन्हीं महामार्गों का तुम अनुसरण करो (10.14.7) हे पितृ तुम यम के लिए सोम छानो, यम के लिए हवि होम करो।

महर्षि पतंजलि के बताये राजयोग के आठ अंगों में से प्रथम नियम 'यम' है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि। इन आठ में प्रारंभिक दो अंगों का महत्त्व सबसे अधिक है। इसीलिए उन्हें सबसे प्रथम स्थान दिया गया है। यम और नियम का पालन करने का अर्थ मनुष्यत्व का सर्वतोन्मुखी विकास है। योग का आरंभ मनुष्यत्व की पूर्णता के साथ आरंभ होता है। बिना इसके साधना का कुछ प्रयोजन नहीं। पतंजलि ने कहा कि योग में प्रवेश करने वाले साधक के लिए यह आवश्यक है कि आत्म-कल्याण की साधना पर कदम उठाने के साथ-साथ यम-नियमों की जानकारी प्राप्त करें। उनको समझें, विचारें, मनन करें और उनको अमल में, आचरण में लाने का प्रयत्न करें।

धर्म और योग के अलावा खगोल विज्ञान में यम एक नक्षत्र है। यम या प्लूटो सौरमंडल का दूसरा सबसे बड़ा बौना ग्रह है। प्लूटो को कभी सौरमंडल का सबसे बाहरी ग्रह माना जाता था, लेकिन अब इसे सौरमंडल के बाहरी काइपर घेरे के सबसे बड़ी खगोलीय वस्तु माना जाता है। काइपर घेरे की अन्य वस्तुओं की तरह प्लूटो का आकार और द्रव्यमान काफी छोटा है। प्लूटो को सूरज की एक पूरी परिक्रमा करते हुए 248.09 वर्ष लग जाते हैं। रोमन मिथक कथाओं के अनुसार प्लूटो (ग्रीक मिथक में हेडस) पाताल का देवता है। इस नाम के पीछे दो कारण हैं, एक तो यह कि सूर्य से काफी दूर होने की वजह से यह एक अंधेरा ग्रह (पाताल) है।

पौराणिक आख्यानों में यमपुरी की कल्पना भी अँधेरी नगरी के रूप में हुई है। पुराणों के अनुसार यम भास्कर (सूर्य) के पुत्र हैं। विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा को यम की माता और यमुना (यमी) को यम की जुड़वाँ बहन माना जाता है। हिन्दुओं का विशेष यमद्वितीया पर्व जिसमें भाई-बहन हाथ पकड़कर एक साथ कालिन्दी (यमुना) में स्नान करते हैं, इसी धारणा पर आधारित है कि इस दिवस जो भाई-बहन यम और यमुना के दर्शन व स्नान का पुण्य लाभ अर्जित करेंगे उन्हें यम के पाश से मुक्ति मिलेगी। यमराज परम भागवत, द्वादश भागवताचार्यों में हैं। मान्यता है कि यम जीवात्मा के अंतिम समय में उसके प्राण हरने के लिए काले भैंसे पर बैठकर आते हैं। इसीलिए इन्हें साक्षात काल कहा जाता है। यम के प्राणहर्ता रूप से जुड़ी एक अन्य प्रसिद्ध कथा में पतिपरायण सावित्री, काल यानि यम के पीछे-पीछे चलकर उनसे न केवल अपने मृत पति के प्राण पुन: प्राप्त करती है बल्कि अन्य समस्त इच्छित कामनाओं के साथ जीवन रहस्य को भी ग्रहण करती है। [उ०श्री०]

यमुना छठ

चैत्र शुक्ल पक्ष की छठ को श्री कृष्णप्रिया कालिन्दी का जन्मोत्सव ब्रजमंडल में बड़ी धूमधाम से उत्साह के साथ

मनाया जाता है। श्रीकृष्ण की पटरानियों में इन्हें चौथा स्थान प्राप्त है। श्रीकृष्ण की सोलह हजार एक सौ आठ पटरानियों में ये ही एक ऐसी प्रिय श्रीकृष्ण की पटरानी हैं जिनकी ब्रज में बड़े आदर और श्रद्धा के संग पूजा-आराधना होती है। मान्यता के अनुसार कलिन्द पर्वत से निकलने के कारण इनका नाम कालिन्दी पड़ा है। निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्य हरिव्यास देवाचार्य ने महावाणी में लिखा है कि यमुना वृन्दावन को कंगनाकार रूप में घेरे हुए है। यमुना जी के संग यमराज का मन्दिर मथुरा के विश्राम घाट पर स्थित है। यहाँ पर कार्तिक में यम द्वितीया के दिन स्नान का विशेष माहात्म्य है। वल्लभ कुल सम्प्रदाय से सम्बद्ध देवालयों में श्रीविग्रह के समक्ष यमुना जल की झारी (रजत, ताम्र एवं रज (मिट्टी) से निर्मित करुआ की आकृति का पात्र) रखी जाती है तथा इसे जमुना जी कहकर ही सम्बोधित किया जाता है। ब्रजस्थ विभिन्न वैष्णव सम्प्रदाय के वर्षोत्सवों की पोथियों में ब्रजभाषा में यमुना महिमा विषयक पदों की विद्यमानता तथा संस्कृत में रचित यमुनाष्टक इस बात के द्योतक हैं कि यहाँ सभी वैष्णव आचार्यों ने इसे शीर्ष पर प्रतिष्ठित किया है।

[प्र०श०]

यमुनाष्टकम्

इसमें आचार्य वल्लभ ने बड़े ही सुन्दर और लालित्यपूर्ण श्लोकों में यमुनाजी की स्तुति की है। इस ग्रंथ में आठ श्लोक हैं। यमुनाष्टक अन्य आचार्यों तथा भक्तों के द्वारा भी रचित प्राप्त होते हैं। [क०उ०]

यशुदानन्दनदेव

नित्यकिशोर परिकर के अनन्य उत्सवसेवी थे श्री यशुदानंदनदेव जी। इनकी रहनी बड़ी अलौकिक थी। कई-कई मास तक यमुना जल में ही रहकर उपासना का अनुष्ठान किया करते थे। इनका जन्म गौड़ ब्राह्मण कुल में हुआ। 92 वर्ष तक व्यक्त रूप से श्रीधाम वृंदावन में रहकर सर्वेश्वर भगवान की लीला साधना में रत रहे। [कुं०बि०श०]

युगलकिशोर देव

युगलकिशोर देव जी के भगवदीय प्रभाव की महिमा इसी से कल्पना की जा सकती है कि इन्होंने 150 वर्षों तक निरंतर श्रीनिधिवनराज में निवास किया। आचार्य जी दक्षिण भारतीय ब्राह्मण थे। [कुं०बि०श०]

युगलगीतिशतकम्

वर्तमान चरण में श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, सलेमाबाद के 'श्रीजी' श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य विरचित 'युगलगीतिशतकम्' नामक छन्दोबद्ध संस्कृत काव्य रचना प्रकाश में आई है। इसमें श्रीराधाकृष्ण का परात्परत्त्व वर्णन साम्प्रदायिक सिद्धान्तानुसार ही हुआ है। युगलतत्त्व की उपासना में माधुर्य भक्तिरस की प्रधानता ही इस ग्रंथ का मुख्य प्रतिपाद्य है।

[क०उ०]

योग

महाभारत, श्रीमद्भगवद् गीता तथा उपनिषदों में सांख्य और योग का एक साथ उपयोग हुआ है। योग सांख्य का ही क्रियात्मक रूप है। योग सारे मत-मतान्तरों एवं वाद-विवाद से रहित सार्वभौम धर्म है, जो तत्त्व का ज्ञान स्वयं अनुभव द्वारा प्राप्त करना सिखलाता है। कठोपनिषद् में ज्ञानेन्द्रिय, मन एवं बुद्धि की अविचल स्थिति को योग कहा है।

कपिल ऋषियों में श्रेष्ठ हैं। 'सिद्धानां कपिलो मुनिः' कहकर कपिल मुनि को योग की पराकाष्ठा को प्राप्त बताया

है। साधना की पूर्णावस्था या सिद्धि को प्राप्त ये कपिल ही सांख्य के साथ योग के भी सर्वप्रथम उपदेष्टा हैं। अमरकोश के 'कडारः कपिलः पिङ्गपिशङ्गौ कद्रुपिङ्गलौ' वाक्य के अनुसार कपिल और पिशङ्ग ये दोनों शब्द पर्यायवाची हैं। कपिल को परमर्षि तथा सांख्य योग का आदि उपदेष्टा कहा है वहीं उन्हें 'सिद्धेश' और 'निर्माणचित्त का अधिष्ठाता' कहकर आदर प्रदान किया है। अतः यह निश्चित है कि हिरण्यगर्भ या कपिल ही सांख्य के सर्वप्रथम उपदेष्टा विद्वान हैं तथा 'सिद्धेश' और 'योग श्रेष्ठ' कहने से भी यही अर्थ ग्रहण होता है कि योग के भी प्रवर्त्तक हैं। महाभारत में भी कहा है-

कपिलं परमर्षि च यं प्राहुर्यतयः सदा।
अग्निः स कपिलो नाम सांख्ययोगप्रवर्तकः॥

योग शब्द 'युज' तथा 'युजिर्' धातु से बना है। जिसका अर्थ है-जोड़ना या मिलाना। वेद के 'योगे योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे' एवं 'युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे' इन वाक्यों में 'योग' एवं 'युक्त (मन से जुड़कर) शब्दों का प्रयोग किसी-न-किसी तरह चित्त की एकाग्रता का ही बोध कराते हैं। योग का ज्ञान वेदों से पूर्व प्रचलित था। आसन एवं प्राणायाम के साथ ध्यानयोग का श्वेताश्वतरोपनिषद् में वर्णन किया है।

योगशास्त्र में महर्षि पतंजलि के पश्चात् सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रन्थकार हैं-व्यास। इनके द्वारा रचित योगभाष्य महत्त्वपूर्ण और प्रामाणिक कृति है। योगभाष्य के आधार पर ही योगशास्त्र का व्यावहारिक निरूपण किया जाता है। 'योगभाष्य' को 'सांख्यप्रवचनभाष्य' 'पातञ्जलभाष्य' एवं 'व्यास भाष्य' के नाम से भी प्रसिद्धि मिली। सांख्य शब्द का अर्थ है-'तत्त्वज्ञान'। योग शास्त्र में तत्त्वज्ञान का ही निरूपण किया गया है।

आपस्तम्भ गृह्यसूत्र (ई.पू. चौथी या पाँचवीं शती) में योग को काम, क्रोध, लोभ आदि 15 प्रकार के दोष का शमन करने वाला और शान्ति प्रदान करने वाला कहा है। पातञ्जल का योगसूत्र योगदर्शन का सबसे अधिक प्रामाणिक ग्रंथ है। यह ग्रंथ समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद और केवल्यपाद इन चार अध्यायों में विभक्त है। सांख्य के समान दूसरा ज्ञान नहीं है और योग के समान कोई आध्यात्मिक शक्ति नहीं। योग के फल को श्वेताश्वतरोपनिषद् में बताया है-''योग साधना से साधक का शरीर योगाग्निमय हो जाता है और उसे रोग, जरा और मृत्यु का उपसर्ग नहीं होता।''

बौद्धवाङ्मय में एक पृथक योग शास्त्र का प्रतिपादन हुआ है जो स्वरूपतः पतंजलि के समान है। बौद्धयोगाचार्य 'षडंग योग' को मानते हैं। उन्होंने प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि के साथ अनुमिति का भी अन्तर्भाव किया है। उनके अनुसार अनुमिति शब्द का अर्थ-किसी भी ध्येय का अविच्छिन्न ध्यान, जिससे प्रतिभा की उत्पत्ति होती है।

भगवद् गीता योग का प्रमाणभूत ग्रंथ है। ज्ञान, योग, कर्म, भक्ति योग का वर्णन गीता में किया गया है। इनमें से किसी का भी भलीभाँति अनुष्ठान करने पर मनुष्य को परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है। पहले साधक भेद या अभेद जिस भाव से उपासना करता है, वह अपनी रुचि, समझ तथा किसी द्वारा उपदिष्ट होकर साधन आरम्भ करता है, परन्तु यदि उसका लक्ष्य सचमुच परमात्मा को प्राप्त करना है, तो चाहे वह जिस भाव से उपासना करे अन्त में उसे भगवान की प्राप्ति हो जाती है, क्योंकि सबका अन्तिम परिणाम एक ही है। गीता में भगवान ने बताया है-

यत्सांख्ये प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।
एक सांख्यं च योगं च पश्यति स पश्यति॥

गीता के छठे अध्याय में योगसिद्ध अर्थात् योगारूढ़ पुरुष की श्रेष्ठ अवस्था का वर्णन करते हुए कहा है-

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योग युक्तात्मा सर्वत्र समदर्शिनः॥

अर्थात् योगयुक्त चित्त होने पर साधक सर्वभूतमात्र (प्राणियों) में आत्मा को और आत्मा में समस्त भूतमात्र को देखता है। वह सर्वत्र समदर्शी होता है। [वि०श०]

योगी विद्यानाथ

विद्यानाथ जी एक कनफटा योगी थे। यह मुजफ्फरनगर के निकट शामली में निवास करते थे। इन्होंने कुछ नानकपंथियों से चरणदास जी के बारे में सुना कि वे चमत्कारी और सिद्ध महात्मा हैं। विद्यानाथ जी ने चरणदास जी की परीक्षा लेने का विचार किया। ये चरणदास जी के पास गये और उनसे उनके आश्रम में स्थित आँवले के वृक्ष से स्वर्ण मोहरों की वर्षा कराने का आग्रह किया। चरणदास जी ने उनके आग्रह को स्वीकार किया और गुरु का स्मरण कर स्वर्ण मोहरों की वर्षा करा दी। यह चमत्कार देखकर ये उनके शिष्य हो गये। चरणदास जी ने पीला चोला और टोपी धारण करने का आदेश दिया तथा इनको अपने पूर्व चिह्नों को धारण करने की अनुमति प्रदान की।

ये स्वयं भी बड़े सिद्ध महात्मा थे। इनके चमत्कारों से प्रभावित होकर मुजफ्फरनगर के अनेक सेठ-साहूकार इनके शिष्य हो गये थे। इन्होंने शामली में ही अपना आश्रम स्थापित किया था। [क०उ०]

र

रंग मंदिर सेवा पद्धति

ब्रजधाम के हृदय स्वरूप में यह रंग मंदिर स्थित है। इस मंदिर में मुख्य अर्चाविग्रह भगवान श्रीगोदारंगमन्नार हैं। श्री गोदादेवी जिन्हें दक्षिण में 'आण्डाल' कहा जाता है भगवान श्री गोदारंगमन्नार की अर्द्धांगिनी देवी हैं। श्री गोदारंगमन्नार भगवान ब्रज के प्रसिद्ध भगवान श्रीराधाकृष्ण स्वरूप ही हैं, प्रभु भक्तों के संकल्पानुसार अनेक रूप से अवतार लेकर अपनी सरस लीलाओं से भक्तों को आह्लादित करते हैं।

श्रीरंग मन्दिर का निर्माण कर श्री गोदारंगमन्नार भगवान अर्चाविग्रह की प्रतिष्ठा का श्रेय पूज्यपाद प्रातः स्मरणीय आचार्यवर्य श्रीरंगदेशिक जी महाराज को है। आप 'अगरम' नामक ग्राम राज्य तमिलनाडु में विक्रम संवत् 1866 कार्तिक कृष्ण सप्तमी को अवतरित हुए। ईश्वरेच्छाधीन हो आप उत्तर भारत की यात्रा करते हुए श्री गोवर्धन जी (मथुरा) पहुँचे। वहाँ श्री वैष्णव सम्प्रदाय के गोवर्धन पीठाध्यक्ष स्वामी श्रीनिवासाचार्य से वैष्णव दीक्षा प्राप्त कर वैदिक सनातन धर्म के प्रचार में निरत हो गये। श्रीरंगदेशिक स्वामी जी के निरन्तर तप और पुरश्चरण अनुष्ठान का साकार रूप यह श्रीरंग मंदिर है।

श्रीरंग मंदिर का निर्माण मथुरा के धनाढ्य सेठ श्री लक्ष्मीचन्द, श्रीराधाकृष्ण एवं श्री गोविन्ददास के द्रव्य से हुआ। ये लोग तत्कालीन वैष्णवाचार्य श्रीशठकोप स्वामी जी के प्रेरणा से श्री वैष्णव सम्प्रदाय के महान आचार्य रंगदेशिक स्वामी जी के तपोमय जीवन से प्रभावित हो उनके शिष्य हो गये। गुरुजी ने अपने शिष्यों को दक्षिण यात्रा कराकर वहाँ के भगवद् दर्शनों का लाभ प्राप्त कराया और उसी समय श्री गोदादेवी को श्रीगोदारंगमन्नार के साथ ब्रज में प्रतिष्ठित करने की अपनी हार्दिक इच्छा से अवगत कराया। बस यहीं से इस मंदिर के निर्माण का सूत्रपात हुआ, जिसकी पूर्ति के लिए श्रीलक्ष्मीचंद, श्रीराधाकृष्ण एवं श्रीगोविन्ददास ने अपना तन-मन-धन आचार्य चरणों में समर्पित कर दिया।

अपने आचार्य की आज्ञा को शिरोधार्य कर सेठ लक्ष्मीचंद व श्रीराधाकृष्ण एवं श्री गोविन्ददास ने अपने विपुल धन से सम्वत् 1890 में मंदिर का निर्माण कार्य आरम्भ किया और तोताद्रि स्वामी जी महाराज के तत्त्वावधान में श्रीगोदारंगमन्नार भगवान का मूल विग्रह, उत्सव मूर्ति तथा श्रीगरुड़, श्रीसुदर्शन, श्रीविष्वकसेन, श्रीवेणुगोपाल आदि भगवान की बड़े समारोह के साथ प्रतिष्ठा की। तब से बराबर पांचरात्र आगम विधि से भगवान की सेवा होती आ रही है और उसमें उष:काल, आगमनकाल, समाराधनकाल, इज्याकाल, शयनकाल की सेवा होती आ रही है। इस मंदिर को 'दिव्य-देश' भी कहा जाता है। इस दिव्यदेश (मंदिर) में भगवान श्रीगोदारंगमन्नार के साथ अन्य देव मंदिरों में भगवान के दर्शन होते हैं जैसे-श्रीसुदर्शनजी, श्रीनृसिंह जी, श्रीलक्ष्मीवेंकटेश, श्रीवेणुगोपाल, समस्त आलवार, भगवान भाष्यकार श्रीरामानुजाचार्य, श्रीरंगदेशिक स्वामी जी। द्वितीय प्रदक्षिणा में मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम, जानकी एवं लक्ष्मण, शेषशायी भगवान विष्णु, बाहरी परिक्रमा में श्री हनुमान जी के दर्शन होते हैं।

श्रीरंग मंदिर की पाँच परिक्रमा मुख्य हैं। श्रीमंदिर में प्रवेश पूर्व और पश्चिम से कर सकते हैं। श्रद्धालु जब पश्चिम से प्रवेश करता है तो उस समय उसे सर्वप्रथम विशाल रथ-घर के दर्शन होते हैं। श्रद्धालुगण जब विशाल दो सिंहों से अलंकृत दरवाजे से ज्यों ही आगे बढ़ता है सामने मंदिर का विशाल दरवाजा दिखाई पड़ता है। यह मजबूत पत्थर का जयपुर की पच्चीकारी से युक्त उत्तर भारतीय प्रस्तरकला का उत्तम नमूना है। द्वार के प्रवेश से पहले बायीं ओर एक श्रीरामक्रतु स्तम्भ के दर्शन होते हैं, जिसमें असंख्य 'श्रीराम' नाम की प्रतिष्ठा की गई है। इसके संस्थापक पूज्य त्रिदण्डी

श्रीमन्नारायणजीयर स्वामी जी महाराज थे। उन्होंने भारत में इस प्रकार के 108 श्रीरामक्रतु स्तम्भों की स्थापना की है। इस विशाल द्वार से प्रवेश करते ही बायीं ओर विद्युत चालित लीलाओं के दर्शन होते हैं।

जब यात्री बायीं ओर चौड़े रास्ते से आगे बढ़ते हैं, तो कोने में दीवाल के ऊपर गरुड़जी की मूर्ति तथा शेषशायी भगवान के मंदिर का गोपुरम् (विमान) दिखाई पड़ता है। बायीं ओर रहने की अनेक त्रिमालियाँ हैं, जिसमें अर्चक निवास करते हैं। विस्तृत परिक्रमा के रास्ते से आगे बढ़ते हैं तब एक विशाल तालाब (पुष्करिणी) मिलता है, जिसमें अनेक सीढ़ियाँ तथा चार घाट हैं। इसमें श्रीगजेन्द्र मोक्ष लीला कर्क संक्रांति की शुक्लपक्ष पूर्णिमा को होती है। सहस्रों दर्शक भगवान की लीला के दर्शन करने आते हैं। तालाब के पास ही श्री हनुमानजी का मन्दिर है और बारहद्वारी है। बारहद्वारी के सामने द्वार में प्रवेश कर यात्री आगे वाले घण्टाघर पर पहुँचता है। इस द्वार के ऊपर एक विशाल घण्टा है। जो वृन्दावन के अधिकांश भाग को अपनी ध्वनि से समय की सूचना देता है। इस घण्टा द्वार से प्रवेश कर आप स्वर्ण स्तम्भ के पास अपने को खड़ा पाते हैं। यह सोने का गरुड़-स्तम्भ है जिसकी ऊँचाई लगभग 50 फीट है और जमीन के अन्दर 24 फीट है। यहाँ पर प्रतिदिन अन्न से दिक्पालों का पूजन होता है। अब आप ज्यों ही दक्षिण की ओर मुँह करेंगे तो कोने में भव्य 'शीशमहल' के दर्शन कीजिए, बोर्ड लगा दिखाई देगा। यह शीशमहल दर्शनीय है। इसमें भगवान समय-समय पर विराजते हैं।

अब श्रीगोदारंगमन्नार भगवान के जगमोहन मण्डप में पहुँचकर सीधे द्वार के भीतर श्रीगोदारंगमन्नार भगवान के दर्शन पाते हैं। मध्य में वेणु लिए श्रीगोदारंगमन्नार भगवान उनकी दाहिनी ओर श्रीगोदादेवी, बायीं ओर गरुड़जी के मूल अर्चा विग्रह हैं। दर्शन कर लौटकर दाहिनी ओर से भगवान की भीतरी प्रदक्षिणा का मार्ग है। भगवान का यह गर्भ मन्दिर आनन्दनिलय या श्रीरंगविमान के नाम से कहा जाता है।

यात्री श्रीगोदारंगमन्नार भगवान के दर्शन कर बाहर आकर दायीं ओर की परिक्रमा से पहले श्रीसुदर्शन, श्रीनृसिंह एवं श्री वेंकटेश भगवान जिन्हें तिरुपति बालाजी भी कहते हैं के दर्शन करते हैं। श्रीवेंकटेश भगवान का प्रति शुक्रवार को सवामन दूध से अभिषेक होता है। यहीं पर पोशाक गृह आदि हैं, पीछे चन्दन चौकी है जहाँ भगवान की सेवा के लिए चन्दन घिसा जाता है। आगे श्रीवेणुगोपाल जी की सन्निधि है। ये भगवान मंदिर संस्थापक श्रीस्वामीजी के निजी पूजा के भगवान थे। उनके आगे समस्त आलवार आचार्य हैं। स्वर्ण स्तम्भ से लौटकर यात्री घण्टाघर के दायीं ओर मुड़ता है। सबसे पहले भगवान की पाकशाला, उसके आगे श्रीरामानुज कूट (प्रसाद वितरण स्थान) के दर्शन होते हैं। आगे चलकर श्रीमर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम-लक्ष्मण-जानकी के दर्शन मिलते हैं। उनकी प्रदक्षिणा कर आप तुलसी जी की परिक्रमा करते हुए श्रीशेषशायी भगवान विष्णु के दर्शन प्राप्त करते हैं। नीला देवी, भूदेवी, श्रीलक्ष्मीजी जिनकी चरण सेवा में प्रस्तुत हैं। इनके दर्शन कर आप सीढ़ियों से उतरकर वैकुण्ठ मण्डप में पहुंच जाते हैं। खम्भों में रंगीन मूर्तियों वाले इस मण्डप में भगवान की सवारी वैकुण्ठोत्सव पर पधारती है। इसके आगे चलकर आपको दायीं ओर वैकुण्ठ द्वार के दर्शन होते हैं। श्री वैकुण्ठ एकादशी की प्रात: भगवान श्रीगोदारंगमन्नार की सवारी इस द्वार से निकलकर मन्दिर की परिक्रमा करती हुई वैकुण्ठ मण्डप में पहुँचती है तथा यह क्रम अगले 9 दिन तक सायंकाल में चलता रहता है। आप पुन: पुष्करिणी द्वार पर आ जाते हैं, सामने ही हनुमान जी के दर्शन हैं। वहाँ से दायीं ओर आपको एक सुसज्जित बगीची के दर्शन होते हैं जिसमें विविध पुष्प, वृक्ष तथा फव्वारों की पंक्ति दिखाई पड़ेगी। यहाँ प्रति शुक्रवार को गोदाम्मा जी की सवारी आकर विराजती है, प्रसाद वितरण होता है अत: इसे शुक्रवार बगीचा भी कहा जाता है।

शास्त्रों में कहा गया है कि ''नित्योत्सवैर्मंगलम्'' दिव्यदेश में नित्योत्सव की प्रधानता होनी चाहिए। श्रीरंग मंदिर में भी वर्षभर उत्सव मनाये जाते हैं। उत्सवों का अनुभव कर भक्त वैकुण्ठ के वैभव का इसी भू-मण्डल पर अवलोकन कर लेते हैं। श्रीरंगमंदिर के मुख्य उत्सवों में श्रीरामनवमी, झूला-उत्सव, श्रीगजेन्द्र मोक्ष, श्रीनन्दोत्सव (लट्ठा का मेला), श्रीवैकुण्ठ-उत्सव, श्रीब्रह्मोत्सव आदि हैं। यहाँ के विशेष भोग पुंगल, दहीभात, फुलैरा, मोहनभोग, लड्डू, शकल पुंगल, खीरान, बड़ा, मोहनपूड़ी, बूँदी, डोसा, चावल, बिल्ला आदि हैं। [वि०कि०मि०]

रंगदेशिक स्वामी

रंगदेशिक स्वामी का जन्म संवत् 1841 में दक्षिण में कांचीनगर के पास हुआ था। आपने किशोरावस्था में कांची के एक धार्मिक विद्वान अनंताचार्य के साथ ब्रज की यात्रा की थी। आप गोवर्धन में रामानुज गद्दी के महंत श्री निवासाचार्य जी से प्रभावित हुए और उन्हीं के साथ निवास करने लगे। आपने श्री निवासाचार्य जी से दीक्षा प्राप्त की थी। रंगदेशिक स्वामी विवाहित थे। उन्होंने अपने पुत्र का नाम निवासाचार्य रखा था।

श्री निवासाचार्य जी के पश्चात् संवत् 1892 में गोवर्धन की रामानुज सम्प्रदाय की गद्दी पर आप विराजमान हुए। रंगदेशिक स्वामी प्रकाण्ड विद्वान थे। उन्होंने श्री सम्प्रदाय के कई तमिल ग्रंथों का संस्कृत में अनुवाद किया था। आपके द्वारा 'कर पंचानन' नामक पुस्तक लिखी गयी है। इसके अलावा रंगदेशिक स्वामी जी ने कई पुस्तकों को प्रकाशित किया था। आपके सान्निध्य में मथुरा के धनाढ्यों द्वारा 'रंगजी मंदिर' का निर्माण हुआ। यह मंदिर ब्रजमण्डल में रामानुज सम्प्रदाय का सर्वाधिक प्रसिद्ध देवालय माना जाता है। श्री रंगदेशिक स्वामी चैत्र शुक्ल 10 संवत् 1931 को वृन्दावन में ब्रह्मलीन हो गये। [जि०कु०]

रक्षाबन्धन

ब्रज में रक्षा बन्धन के त्यौहार का विशेष महत्त्व है। श्रावण शुक्ल पक्ष पूर्णिमा को राखी का उत्सव मनाया जाता है। इस दिन को गायत्री जयन्ती के नाम से भी जाना जाता है। ब्राह्मण लोग इस दिन श्रावणी उत्सव मनाते हैं। देवालयों में भी रक्षा बन्धन का उत्सव बहुत धूमधाम के साथ मनाते हैं। मथुरा के द्वारिकाधीश मन्दिर में श्रावण मास के उत्सवों का आयोजन किया जाता है। पूरे श्रावण मास में घटाओं का आयोजन होता है। मथुरा के जन्मस्थान में भी घटाओं आयोजन किया जाता है तथा हिंडोले भी लगाये जाते हैं। ब्रज में इस मास के दौरान रास के आयोजन भी होते हैं। ब्रज के कुछ मंदिरों में सावन के दौरान आयोजित होने वाली घटाओं का अपना महत्त्व है। घटाओं के क्रम में कुछ इस प्रकार आयोजन किया जाता है। एकादशी त्रयोदशी के दिन केसरिया घटा तथा केसरिया रंग के झूले का आयोजन किया जाता है। अमावस को काली घटा लगाई जाती है। श्रावण शुक्ला द्वितीया को जामुनी, तृतीया को हरि, चतुर्थी को आसमानी, छट को गुलाबी, अष्टमी को लाल, दशमी को श्याम, द्वादशी को लहरिया तथा चतुर्थी को श्वेत रंग की छटा का आयोजन किया जाता है, उत्सवों में जिस रंग की घटा होती है, उसी रंग के झूलों का आयोजन किया जाता है। रक्षा-बन्धन के दिन शुभ मुहूर्त में ठाकुर जी के मन्दिरों में भगवान को राखी बाँधी जाती है। वृन्दावन के बिहारीजी के मन्दिर में बिहारीजी महाराज को हजारों श्रद्धालु राखी अर्पित करते हैं। मन्दिर के सेवायत ठाकुरजी को राखी बाँधते हैं तथा ठाकुरजी को घेवर फेनी का भोग लगाते हैं तथा ठाकुरजी के जरी का शृंगार करते हैं। इस दिन वृन्दावन के शाहजी मन्दिर में बसन्ती कमरा खोला जाता है जो कि एक साल में केवल दो बार ही खुलता है। अष्टछाप के कवि गोविन्द स्वामी ने भी श्रीकृष्ण भगवान को रक्षासूत्र बाँधने का उल्लेख किया है—

सिंघ पौरि ठाडे मनमोहन द्विजवर रच्छा बाँधत आनि।

गोविन्द स्वामी कवि, गोविन्द स्वामी पद संग्रह 221
[प्र०श०]

रघुनाथ

गोस्वामी बिट्ठलनाथजी के सात पुत्रों में से पाँचवें पुत्र गोस्वामी रघुनाथ जी थे जिन्हें गोसाईं जी ने ठाकुर गोकुलचंद्रमा जी की स्वरूप प्रदान किया था। श्री रघुनाथ जी बड़े मनोभाव से गोकुल चन्द्रमा जी को सेवा-पूजा किया

करते थे। श्री रघुनाथ जी बड़े ही धर्माचार्य विद्वान थे। सम्प्रदाय कल्पद्रुम ग्रन्थ के अनुसार ज्ञात होता है कि इन्होंने संस्कृत के 14 ग्रंथों की रचना की थी तथा जिनमें आचार्य जी के षोडश ग्रंथों की टीका का विशेष रूप से उल्लेख मिलता है। रघुनाथ जी के पाँच पुत्र और एक पुत्री थी। इनके सबसे बड़े पुत्र का नाम देवकीनंदन था जो बहुत प्रभावशाली धर्माचार्य थे। [वं०तै०]

रघुनाथ गोस्वामी

ये गौड़ीय वैष्णव समाज में 'दास गुसाईं' के नाम से प्रसिद्ध हैं। गौड़ीय वैष्णवों की पुस्तक ठौर को सुगठित करने में आपका महत्त्वपूर्ण योगदान है। उत्तराधिकार विषयक प्राचीन दस्तावेजों के अंतर्गत रूप एवं सनातन के साथ रघुनाथदास गोस्वामी का नाम भी मिलता है, जो तत्कालीन दौर में इनके महत्त्व का प्रतिपादन करने वाला है। ये हुगली जनपद के धनिक कायस्थ जमींदार के एकमात्र पुत्र थे। इनका जन्म सं० 1551 माना जाता है। शैशवकाल से ही इनके हृदय में धार्मिक संस्कार थे। चैतन्य देव के सम्पर्क में आते ही ये परम विरक्त हो गए। महाप्रभु इनकी विरक्ति से बड़े प्रभावित थे। उन्होंने अपने अन्तरंग स्वरूप दामोदर की देखरेख में इन्हें रख दिया। इनकी सेवा एवं भक्ति को देखकर वैष्णवगण विस्मित हो जाते थे। वि०सं० 1590 में ये वृन्दावन आ गए थे। रूप-सनातन को ये चैतन्य देव की दिव्य लीलाएँ सुनाया करते थे। कविराज इनके प्रिय शिष्य थे जिन्होंने इनसे प्रोत्साहित होकर वृद्धावस्था में अथक श्रम कर 'चैतन्य चरितामृत' का प्रणयन किया। राधाकुण्ड में इन्होंने साधनापूर्वक जीवन व्यतीत किया। कहा जाता है कि ये केवल दो-तीन पल तक्र लेते थे और साढ़े-सात प्रहर भजन करते थे। ध्रुवदास हित ने इनके विषय में लिखा है। इन्होंने लगभग 49 वर्ष पर्यन्त ब्रजवास किया। इनका नित्यलीला प्रवेश सं० 1640 वि० माना जाता है। राधाकुण्ड पर इनकी समाधि स्थित है। इनकी रचनाएँ स्तोत्र रूप में ही मिलती हैं। इनके द्वारा रचित ग्रन्थ **स्तवावली** (29 स्तव), **मुक्ताचरित एवं दानकेलि-चिन्तामणि हैं।** [रा०श०]

रघुनन्दन गोस्वामी

रघुनन्दन गोस्वामी श्री नित्यानन्द वंश एवं श्री किशोरी मोहन गोस्वामी महाशय के सबसे छोटे पुत्र थे। आपका जन्म वर्द्धमान प्रदेश के अंतर्गत 'माड़ो' नामक पल्ली में हुआ था। गौड़ीय वैष्णव साहित्य में आपका अवदान अतीव महान एवं चिरस्मरणीय है। श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर एवं श्री बलदेव विद्याभूषण के परवर्ती समय में जिन्होंने गौड़ीय वैष्णव साहित्य की सेवा की है, उनके मध्य में श्री रघुनन्दन का स्थान ही सर्वोच्च है।

संस्कृत एवं बंगला भाषा में आपके द्वारा रचित विपुल साहित्य उपलब्ध है। श्री गौरांग चम्पू, श्री गौरांग विरुदावली, श्री राम रसायन, श्री राधादामोदर काव्य, गीतमाला, देशिक निर्णय, वैष्णव व्रत निर्णय, श्री गौरांग तत्त्व निर्णय, श्रीमद्भागवतीय संशय शातनी टीका एवं छन्दोमंजरी व्याख्यान आपके प्रमुख ग्रंथ हैं। [क०उ०]

रतनदेव

निम्बार्काचार्य श्रीहरिव्यास देवाचार्य जी के शिष्य मुकुंद देवाचार्य जी की परम्परा में श्री रतनदेव जी उच्चकोटि के रसिक संत हुए हैं। साम्प्रदायिक स्रोतों के अनुसार श्रीराधासर्वेश्वर युगल के दिव्य केलि रस में निमग्न होकर आचार्यश्री मानसी सेवा करते और भक्तों को भगवद् रसामृत मंदाकिनी में अवगाहन कराते। रतनदेव जी की भक्ति का प्रभाव उनके संपर्क में आने वाले संपूर्ण रसिक भक्त समाज पर पड़ा। इन्होंने प्रिया-प्रियतम के ध्यान में तन्मय रहते हुए दिव्य सखी समाज में सदा के लिए प्रवेश कर लिया। [कुं०बि०श०]

रथ यात्रा

पुरी की रथयात्रा विश्व प्रसिद्ध है लेकिन ब्रजमण्डल में चैतन्य संस्कृति से प्रेरित गौड़ीय देवालयों के साथ ही अन्य मंदिरों में भी रथयात्रा का उत्सव हर्षोल्लास से होता है। ब्रज क्षेत्र के वृन्दावन में रथयात्रा का उत्सव हर्षोल्लास से होता है। यहाँ सप्त देवालयों के रथ रंग-बिरंगे देशी-विदेशी फूलों से सजाकर उसमें श्री जगन्नाथ जी को विराजमान करके सवारी निकाली जाती है। भक्तगण नाचते-गाते हुये सवारी के साथ चलते हैं। इस दिन वृन्दावन के अन्य मन्दिर भी अपने-अपने रथ को सुसज्जित करके बैण्ड-बाजों के साथ सभी रथ ज्ञान गुदड़ी में एकत्रित होते हैं। ज्ञान गुदड़ी क्षेत्र वह पवित्र स्थल है जहां उद्धव जी ने गोपियों को ज्ञान दिया था। यहाँ सब रथ एकत्रित होते हैं। वैसे तो अनेक मन्दिरों से रथ यात्रा निकलती है लेकिन विशेष आकर्षण का केन्द्र ज्ञानगुदड़ी स्थित जगन्नाथ मन्दिर है। यहाँ से तीन रथ निकलते हैं जिसमें एक पर जगन्नाथ जी दूसरे पर उनके बड़े भाई बलभद्रजी तथा तीसरे रथ में बहिन सुभद्रा जी विराजमान होकर बैण्ड-बाजों के साथ निकलते हैं तथा मार्ग में चलते हुये महन्त जी मार्ग में आम लुटाते हुये चलते हैं। इस दिन मथुरा के द्वारिकाधीश जी में ठाकुर जी के विशेष दर्शन होते हैं। प्रात:काल रथयात्रा की झाँकी के दर्शन तथा दोपहर में ठाकुरजी के विशेष दर्शन कराये जाते हैं। ठाकुरजी को रथ में विराजमान करके मन्दिर के जगमोहन में भ्रमण करते हैं। इस दौरान ठाकुरजी को आम, जामुन, पाग आदि का विशेष भोग लगाया जाता है। गिरि गोवर्धन-गिर्राज जी में भी जगन्नाथ रथ यात्रा का महोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। गिर्राज जी के मुखारविन्द, श्री हरिदेव जी मन्दिर तथा जतीपुरा आदि अनेक मन्दिरों से इस उत्सव का आयोजन बड़े हर्षोल्लास के साथ किया जाता है। इसी क्रम में डीग, कामवन (कामा), बरसाना, नन्दगाँव, बल्देव, गोकुल, महावन, छाता, कोसी आदि में जगन्नाथ रथ यात्रा का महोत्सव बड़े उत्साह के साथ मनाया जाता है। उत्साहपूर्वक छोटे-छोटे बच्चे भी सुन्दर रथ बनाकर जगन्नाथजी को रथ में विराजमान करके रथ यात्रा निकालते हैं। वल्लभ कुल सम्प्रदाय में भी रथ यात्रा की परंपरा दृष्टिगोचर होती है—

देखो माई रथ बैठे गिरधारी।
छतरी अनुपम हाटक जराय की, झूमक लर मुक्तारी।

(सूर पदावली)

[रा०श०]

रसिक दास

श्री रसिकदास जी सखी सम्प्रदाय के आचार्य स्वामी नरहरिदास के शिष्य थे। किसी भी ग्रंथ में उनके जन्म के संवत् का उल्लेख नहीं मिलता है। श्री सहचरिशरण के अनुसार इनका जन्म माघ शुक्ला पंचमी को हुआ था। डॉ. शरणबिहारी गोस्वामी ने लिखा है-''कहा जाता है कि प्रारम्भ में गुरु ने रुष्ट होकर इन्हें अपने यहाँ से निकाल दिया था। परन्तु ये छिपकर गुरु की सेवा करते रहे। अन्त में गुरु ने इनको अपना लिया।'' स्वामी नरहरिदास के पश्चात् ये उनके उत्तराधिकारी हुए।

स्वामी रसिकदास जी की निम्न रचनाएँ मिलती हैं-गुरु मंगल लीला, बाललीला, भक्तिसिद्धांत मणि, पूजा विलास, वाराह संहिता, रसार्णवपटल, कुंज कौतुभ, रससार। रसिकदास जी ने इन ग्रंथों में ऐसे विषयों का भी वर्णन किया है जो सम्प्रदाय की मूल रसदृष्टि से मेल नहीं खाते। डॉ. गोपालदत्त ने लिखा है- ''इन ग्रंथों के वर्ण्य विषय को देखने मात्र से ज्ञात होता है कि स्वामी रसिकदास जी ने अपनी पूर्व परम्परा से चले आये विषयों के अतिरिक्त अन्य अनेक बातों को भी अपनी वाणी में स्थान दिया। उनमें से कुछ सम्प्रदाय में चली आती उपासना पद्धति के विरुद्ध भी थीं। प्रिया-प्रियतम का जन्म, विवाह, निकुंज के आवरण, व्यूह आदि विषय परिपाटी के स्पष्टत: विरुद्ध थे। आगे भी इन विषयों को

सम्प्रदाय की उपासना पद्धति में प्रतिष्ठा नहीं मिली। स्वामी ललितकिशोरी देव जी ने तो अपने गुरु की गद्दी स्वीकार न कर अलग गद्दी की स्थापना की। सम्भवत: गुरु की उपासना पद्धति से मतभेद होने के कारण उन्हें अलग स्थान बनाने की आवश्यकता प्रतीत हुई होगी।

रसिकदास जी के 52 शिष्य थे। रसिकदास जी ने सम्प्रदाय के प्रचार-प्रसार पर विशेष जोर दिया। इन्होंने सम्प्रदाय के वैभव को भी खूब बढ़ाया। उन्होंने डूँगरपुर से ठाकुर रसिकबिहारी जी को मँगवाया तथा उनके नये मंदिर का निर्माण किया। निजमत सिद्धान्त में ठाकुर रसिकबिहारी जी की कथा का भी वर्णन किया गया है। सहचरिशरण जी ने इनका निकुंजवास सं. 1758 में होने का उल्लेख किया है।

जिस प्राचीन हस्तलिखित प्रति से हमने उद्धरण लिया है उसमें गुरुमंगल लीला प्रथम ग्रंथ है, शेष ग्रंथ बाद में लिखे गए हैं। वैसे भी गुरु मंगल की रचना और गान आरम्भ में ही की जाती है। अत: ऐसा प्रतीत होता है कि श्री रसिकदास जी 1759 के बहुत बाद तक जीवित रहे। स्वामी रसिकदास जी की कुछ रचनाओं को ही अष्टाचार्यों की वाणी में सम्मिलित किया गया है। [म०बि०गो०]

रसिक दास

रसिक दास जी राधावल्लभ सम्प्रदाय के गोस्वामी नागेश्वर जी के प्रपौत्र गोस्वामी श्री धीरधर जी के शिष्य थे। धीरधर जी का समय संवत 1670 से संवत 1760 तक है। यही समय श्री रसिकदास जी का होना चाहिए। उनकी कृतियों में रचनाकाल संवत 1743 से संवत 1753 उल्लिखित है। उन्होंने अपनी रचना में गुरु के नाम का उल्लेख किया है।

श्री रसिकदास जी ने राधावल्लभ सम्प्रदाय में प्रचुर साहित्य रचना का कार्य किया। राधावल्लभीय भक्त कवियों में उनकी गणना की जाती है। श्री किशोरीशरण अलि ने उनकी 31 रचनाओं का नामोल्लेख अपनी पुस्तक श्रीहित राधावल्लभीय साहित्य रत्नावली में पृष्ठ 23 पर किया है। डॉ. विजयेन्द्र स्नातक ने अपनी पुस्तक राधावल्लभ सिद्धान्त और साहित्य में पृष्ठ 521 पर उनकी 22 रचनाओं के नाम लिखे हैं। यह संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान और ब्रजभाषा के रससिद्ध कवि थे। 'मनोरथ लता' नामक ग्रंथ में संस्कृत छन्द शास्त्र के आधार पर वर्णवृत्तों में रचना की है। इनके द्वारा रचित 20 लतायें और एक ग्रंथ 'रसकदम्ब चूड़ामणि' उपलब्ध है। इन्होंने अपनी रचनाओं के नाम लताओं के नाम पर रखे हैं। 'मनोरथ लता' के द्वितीय खण्ड में अतिवृत्ति छन्द का प्रयोग दृष्टव्य है।

रसिकदास ने अपनी वाणियों में राधाकृष्ण की प्रेमलीलाओं को विविध रूपों में अंकित किया है। सौन्दर्यलता में राधाकृष्ण का नखशिख वर्णन है। नखशिख वर्णन का उद्देश्य रीतिकालीन शैली में श्रृंगारपरक वर्णन मात्र न होकर राधाकृष्ण की रूपछवि अंकित है जो भक्त हृदय में अपने आराध्य के प्रति आकर्षण का भाव उत्पन्न कर उसे तल्लीन कर सके। विनोदलता में राधाकृष्ण के हास्यविनोद को सरस ढंग से प्रस्तुत किया है-

छके छकाये छैल ये छके छबीले रूप।
छिन में छल सौं छाजनि पर छाजत भये अनूप॥

इनकी वाणी में नवीनता न होने पर भी विषय को पल्लवित करने की अपनी ही शैली थी जिसका विभाजन उन्होंने नवीन ढंग से किया है। इनके द्वारा रचित रचनाओं में-प्रसादलता, मनोरथ लता, मनोरथ लीला, अभिलाषा लता, सौन्दर्यलता, माधुर्यलता, सौभाग्यलता, विनोदलता, तरंगलता, विलासलता, सुखसारलता, अद्भुत लता, कौतुकलता, रहस्यलता, रतनलता, अतनलता, रतिरंगलता, हुलास लता, आनन्द लता, चारुलता, सुकसारीलता, रस कदम्ब चूड़ामणि प्रथम एवं द्वितीय भाग प्रमुख हैं। [उ०भा०]

रसिकानन्द

रसिकानन्द गौड़ीय सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्यों में से एक श्यामानन्द प्रभु के शिष्य थे। ये बहुत ही धनी परिवार से थे। इनका जन्म वि.सं. 1597 ई. में सुवर्ण रेखा नदी के किनारे स्थित रयनी नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम अच्युतानन्द देव था। इनके पूर्व जीवन का नाम रसिक मुरारी था।

इन्होंने 18 वर्ष की अल्पायु में ही श्यामानन्द प्रभु से दीक्षा ले ली थी। उन्होंने इनका नाम रसिक मुरारी से रसिकानन्द कर दिया। ये अपने गुरु के साथ 'खेतुरी महोत्सव' में सम्मिलित हुए थे। इनका कार्यक्षेत्र मुख्य रूप से उड़ीसा ही रहा। इन्होंने मयूरभंज के राजा से प्राप्त श्रीविग्रह की स्थापना मेदिनीपुर के गाँव में की थी जिसे आज 'गोपी बल्लभपुर' के नाम से जानते हैं। लेकिन इष्ट रेमुणा स्थित 'क्षीर चोरा गोपीनाथ' थे। इन्होंने उड़ीसा और दक्षिणी-पश्चिमी बंगाल में लाखों लोगों को दीक्षा प्रदान की थी।

इनके बारे में एक घटना बताई जाती है कि एक बार उड़ीसा के सूबेदार अहमद बेग ने इनकी परीक्षा लेने हेतु इन्हें कैद कर एक पागल हाथी को हरिनाम मंत्र सुनाकर वश में करने के लिए कहा तब इन्होंने उस हाथी को हरि नाम सुनाकर शान्त कर दिया। इससे प्रभावित होकर सूबेदार अहमद बेग इनके शरणागत हो गया। इनके गुरु के तिरोभाव के बाद पुरी स्थित मठ की देखभाल हेतु इन्हीं को नियुक्त किया गया।

इन्होंने अपने इष्ट क्षीर चोर गोपीनाथ के श्रीविग्रह के सम्मुख सन् 1674 ई. में प्राण त्यागे थे। इनके जीवन चरित को इनके शिष्य किशोरानन्द ने लेखनी बद्ध किया था। [क०उ०]

राजसिंह

राठौर नरेश महाराजा राजसिंह का जन्म वि.सं. 1731 में हुआ। इनके पिता का नाम महाराजा मानसिंह था। इनके पूर्वजों ने जब से सलेमाबादस्थ आचार्यपीठ की सन्निधि प्राप्त की तब से इनके कुल में निरंतर भक्ति भावना का अंकुर प्रफुल्लित होने लगा। इनका चित्त राजधर्म के साथ ही ब्रज वृन्दावन के सर्वाधिक निकट था। ब्रजभाषा और राजस्थानी मिश्रित इनके कुछ पद भी मिलते हैं। वृन्दावन से लगाव के कारण ही यहाँ प्रवास करने हेतु राजसिंह जी ने नागर कुंज का निर्माण कराया। लवाण नरेश की सुपुत्री ब्रजकुँवरि जी से इनका विवाह हुआ। जो स्वयं भी भक्तिमती थीं। राजसिंह जी के सुपुत्र महाराजा सावंतसिंह तो प्रसिद्ध रसिक भक्त हुए। इनकी आत्मजा सुंदर कुँवरि जी भी राधाकृष्ण युगल चरणारविंद की अनन्य उपासक थीं। [कुं०बि०श०]

राधाकृष्ण भक्त कोश

यह पाँच भागों में कृष्ण भक्तों का प्रकाशित कोश है। इस ग्रंथ की योजना श्रीमती अरुणा डालमिया के द्वारा बनायी गयी। जिसका सारा अर्थ प्रबंध श्रीमान जयदयाल जी डालमिया ने श्रीकृष्ण जन्मस्थान मथुरा के माध्यम से किया। इस योजना का शुभारम्भ सन् 1981 में हुआ और इसका प्रथम भाग सन् 1987 में प्रकाशित होकर पाँचवाँ भाग सन् 1989 में प्रकाशित हुआ। प्रथम तीन भागों में हिन्दी प्रान्तों के 1630 कृष्ण भक्तों का अकारादि क्रम में वर्णन है जबकि अन्तिम भागों में हिन्दी प्रदेशों के 1763 कृष्ण भक्तों का वर्णन है। इसमें भारतवर्ष के कुल 3392 कृष्ण भक्तों का आधिकारिक शोधपूर्ण वर्णन है। इसके प्रधान सम्पादक डॉ० भगवती प्रसाद सिंह व सम्पादक वासुदेव सिंह हैं। [प्र०श०]

राधावल्लभीय सेवा पद्धति

श्री राधावल्लभीय संप्रदाय में मुख्य रूप से अष्टप्रहर सेवा-विलास ही होता है, सर्वप्रथम 'मंगल समय' यानी प्रात:

5 से 7 बजे तक ही होता है। प्रात: 4 बजे श्रीराधावल्लभ जी का नामोच्चारण करते हुए बैठकर अपने आचार्य, गुरु का ध्यान करते हुए शय्या परित्याग कर दी जाती है। शौच, यमुना स्नान कर आसन पर बैठ कर ललाट पर तिलक लगावें जिसमें श्याम बिंदु हो, निरंतर श्री गुरु से प्राप्त निज मंत्र का मन ही मन उच्चारण किया जाता है। श्रीजी के निज मंदिर पर पहुँच कर देहरी पर निज मस्तक से प्रणाम करें फिर मंदिर खोलकर मंगलगान करते हुए, निज मंदिर में प्रवेश करें। मार्जनी करते हुए शुद्ध जल से साफ कपड़े, सेवोपयोगी पात्र मृत्तिका से मार्जन कर जल से शुद्ध कर लें ताकि सेवा में कार्य आ सकें इस प्रकार रख लें।

आसन पर बैठकर स्वयं को सखी रूप विचार कर जहाँ श्री ललितादिक सखियाँ स्नान करती हों उनके बीच में स्वयं भावना से स्नान कर गुरु प्रदत्त प्रसादी लहँगा, कंचुकी, ओढ़नी आदि विभिन्न वस्त्रों के आभूषण पहनकर, निज शृंगार करें। ध्यान और विचार की एकाग्रता यह होनी चाहिए कि हमारी यूथेश्वरी, श्रीहितअलि जी हैं और उनके अनुगत होकर सेवा भावना में निमग्न होना चाहिए।

ध्यान-सर्वप्रथम श्री वृंदावनधाम का ध्यान कर मध्य में श्री सेवाकुंज जहाँ श्री प्रिया-प्रियतम का महल है, महल के चारों ओर सखियों के महल हैं, निकट ही श्रीहितअलि एवं श्रीगुरुसखी जी का निवास है। पहले जाकर श्री गुरुसखी जी को जगाकर, जलकारी लेकर दंतधावन एवं स्नान आदि से निवृत्त कराकर श्री प्रिया-प्रियतम के प्रसादी वस्त्र धारण कर शृंगार करना चाहिए। जब श्री गुरुसखी तैयार हो जायें तो उनसे श्री प्रिया-प्रियतम के निकुंज महल में जाने के लिये प्रार्थना करें। जब वे जाने के लिये प्रस्थान करें तो उनके पीछे-पीछे स्वयं निकुंज में जायें। निकुंज महल में श्रीहित ललितादिक सखियाँ श्री प्रिया-प्रियतम की टहलतई में लगी हुई हैं, उनके संग में जब श्रीगुरुसखी जब टहलतई करने लग जावें तब उनके पीछे होकर स्वयं टहल उनकी आज्ञानुसार करना प्रारंभ कर दें। श्री गुरुसखी जी के हाथ में कंचल जलझारी देकर पीकदानी ले लें और श्री प्रिया-प्रियतम को कुल्ला कराकर सुगंध युक्त रूमाल से मुखारबिंद पुछवाना चाहिए।

माखन मिश्री, मलाई, मेवा आदि की कटोरी सुंदर कंचन थाल में लगाकर अल्पाहार की प्रार्थना करें। अल्पाहार करने पर सुगंधित शीतल जल अर्पण करें, हस्तप्रक्षालन करने के उपरांत ऋतु के अनुसार मसाले युक्त बीरी अर्पित करें। जब श्री प्रिया-प्रियतम समस्त कार्यों से निवृत्त हो जायें तो रत्नजटित सिंहासन पर विराजमान कर आरती कर पुष्पांजलि अर्पित करनी चाहिए। मंगला आरती के उपरांत श्रीहित ललितादिक सखियाँ श्री प्रिया-प्रियतम का शीथ प्रसादी लेकर अल्पाहार करती हैं, उनके पास जाकर उनका तथा श्री गुरुसखी जी का शीथ प्रसाद लेकर अल्पाहार स्वयं करे, शीघ्र ही निवृत्त होकर पुन: सेवा में लग जाना चाहिए।

शृंगार समय-प्रात: 8:15 से 10:30 बजे तक हो जाता है, मंगला आरती के बाद श्री प्रिया-प्रियतम पुष्टवाटिका में बाग की शोभा देखने को आते हैं जहाँ पर सखियाँ हास-परिहास करती हुई गान करती हैं। तदुपरांत स्नान कुंज में श्री प्रिया-प्रियतम को विराजमान कर उबटना करें, ऋतु के अनुसार सुगंधित गर्म या शीतल जल से विधिपूर्वक स्नान कराने के बाद शृंगार कुंज में विराजमान करें, श्री प्रिया-प्रियतम को सदा एक रूप में ही जानकर सुंदर-सुंदर वस्त्राभूषण धारण करायें। तदुपरांत भोजन गृह में विराजमान करें वहाँ पर चंपकलताजी भोजन की सेवा करने में मुख्य हैं। भोजन गृह में सखियों के साथ मिलकर बंधवादही, मिठाई आदि स्वादिष्ट भोजन श्री गुरुसखी द्वारा श्री प्रिया-प्रियतम को भोजन कराना चाहिए। भोजनोपरांत सुगंधित शीतल जल अर्पित करें फिर कुल्ला कराकर हाथ-मुंह पौंछकर बीरी अर्पित करें। तदुपरांत स्वर्ण के महारत्न जटित षोडश द्वार का सभा मंडप है जिसके मध्य में रत्नजटित सिंहासन शोभायमान है, उस पर फूलों का आसन बिछाकर श्री प्रिया-प्रियतम को विराजमान करें, आरती कर पुष्पों से न्यौछावर करें, समस्त सखी दर्शनकर आनंद विभोर होकर शृंगार आरती के पद गायन कर रही हैं। स्तुति पद के गानोपरांत श्री गुरुसखी जी प्रसाद पा रही हैं। ऐसा विचार कर उनका शीथ प्रसादी स्वयं लें। प्रसाद ग्रहण कर ऊपरी सेवा में संलग्न हो जायें, ध्यान रहे

अपने गुरु प्रदिष्ट निज मंत्र या शरणागति मंत्र जो भी गुरु कृपा से प्राप्त हो गया हो, अनवरत मन ही मन उच्चारण होता रहे। साथ ही अन्य सखियाँ जो राजभोग सामग्री बनाने में संलग्न हैं उनके पास जाकर सहयोग करें जिससे राजभोग में विलंब न हो तथा स्वादिष्ट रुचिकर बने।

राजभोग-जिसका समय प्रात: 10 से 11:30 बजे तक होता है। राजभोग दोपहर का मुख्य भोग है जिसमें सकरी-निखरी सभी सामग्रियाँ लगाई जाती हैं, उसकी कमियों का दृष्टि निरीक्षण कर कमियों को पूरा कर दिया जाता है तब श्री गुरुसखी जी से प्रार्थना की जाती है कि कुंज में राजभोग की समस्त तैयारी पूरी हो गई है, कृपया श्री प्रिया-प्रियतम को कुंज में पुष्प आसन पर विराजमान करावें। तब श्री गुरुसखी जी प्रिया-प्रियतम के कुछेक दिव्य रत्न आभूषणों को उतारकर उन्हें कुंज में पुष्प आसन पर विराजमान कराते हैं। सकरी-निखरी सामग्रियों के थाल तथा फल, मेवा, मिठाई, अचार आदि सामग्री सन्मुख परोस दी जाती है। आचमन कराकर सुंदर, सुगंधित जल अर्पित किया जाता है। हस्तप्रक्षालन के पश्चात बीरी अर्पित की जाती है। पुन: सिंहासन पर विराजकर राजभोग की आरती की जाती है, तदुपरांत मणिमय शैय्या पर पौढ़ाया जाता है।

शैया के निकट बीरी, पुष्प जलादि रख दिया जाता है। बाहर आकर श्री गुरुसखी का शीथ प्रसाद ग्रहण किया जाता है, किसी समय एकांत रहस्य की भावना से प्रेरित होकर, श्रीहित ललितादि सखियाँ जलरंध्रों से अवलोकन कर अपने को कृतकृत्य मान प्रफुल्लित हो रही हैं तब उनके पास जाकर उनकी आज्ञा से उनकी ही रीति से अवलोकन करते हैं। एकांत रहस्य लीलावलोकन कर उसी रस में डूबे हुए, सखी मंडल में श्री प्रिया-प्रियतम की लीलाओं का परस्पर गान करते हुए उत्थापन समय की प्रतीक्षा की जाती है।

उत्थापन-इसका संप्रदायगत समय, मध्याह्नोत्तर 4 से 6 बजे तक है। उत्थापन के समय सखीजन वीणा बजाकर श्री प्रिया-प्रियतम को जगाती हैं। हाथ-पैर धुलाकर मुख प्रक्षालन कराया जाता है। मेवा, फल अर्पित कर शीतल जल या ठंडाई-शर्बत आदि पेय पान कराकर, सिंहासन पर मखमली आसन बिछाकर युगल सरकार को विराजमान कराते हुए, अनेक प्रकार के फल-मेवा, मिश्री, मलाई आदि परोसकर भोजन करने की प्रार्थना की जाती है। भोजनोपरांत शीतल जल पान कराकर बीरी अर्पित करते हैं। सखियों में मिलकर टहल करते हुए बाद में श्री गुरुसखी जी को भोजन कराकर स्वयं प्रसाद लेना चाहिए। बनविहार की भावना से श्री प्रिया-प्रियतम श्रीवन की शोभा देखने के लिये आते हैं। इस शोभा से इतने प्रफुल्लित हो उठते हैं कि क्रीड़ा करने लगते हैं। श्री वन में श्री प्रिया-प्रियतम अनेक प्रकार की लीला करते हैं, जैसे निकुंज विहार, गह्वरवन में खेलना, हिंडोला में झूलना, दानलीला, आँखमिचौनी, जलविहार, नवेलियों के मध्य श्री यमुना जल में तैरना, कभी श्रीलालजी प्रिया रूप हो जायें और श्री प्रियाजी श्रीलालरूप धारण कर क्रीड़ा करने लगते हैं। अवसर देखकर विवाह लीला की तैयारी कर श्री प्रिया-प्रियतम नित्य दूलह-दुलहिनी बनकर वनविहार करते रहते हैं। परस्पर पुष्प कंदुक से खेलने लगते हैं, इस प्रकार उत्थापन के समय श्री प्रिया-प्रियतम अलौकिक लीलाओं में इतने निमग्न हो जाते हैं कि समय का आभास ही नहीं होता तब श्री हित सखी जी सायंकाल होने का आभास कराती हुई कहती हैं कि हे प्रिया-प्रियतम, संध्या भोग का समय हो गया है कृपा कर भोजन कुंज में पधारिये। जिसे सुनकर श्री प्रिया-प्रियतम, भोजन कुंज में पुष्पासन पर आ विराजते हैं।

इस सायंकाल के समय सखियाँ मोदक, मगद-मलाई, मिश्री, मोतीचूर, चंद्रकला, जलेबी, खूरमा, खजला, इमरती, पेड़ा, पगे मखाने, बँधवा, दही आदि सामग्री परोसकर श्री प्रिया-प्रियतम को भोजन कराती हैं, भोजनोपरांत शीतल जल पिलाकर बीरी अर्पित कर आरती आदि सेवा करती हैं। रात्रिपर्यंत ढाई घंटा सायंकाल से रासविलास की प्रार्थना भी की जाती है। उक्त सभी क्रियायें भावना के स्तर पर सेवा में नियुक्त गोस्वामीगण समय और सिद्धांत के अंतर्गत करते हैं।

शयनभोग-उक्त भोग संध्या आरती के 1:30 घंटे बाद धराया जाता है। सुंदर थाल में पूड़ी-कचौड़ी, मोहनभोग, अधौटा अनेक प्रकार के अचार, शाक, लड्डू, बांधवादरी, रबड़ी आदि खाद्य सामग्री परोसकर श्री प्रिया-प्रियतम को

भोजन कराया जाता है। तदनंतर शीतल सुगंधित जल पिलाकर बीरी अर्पित कर शयन आरती कर दी जाती है। तदुपरांत इंद्रनीलमणि जटित दिव्य कंचन के शैया मंदिर में कोमल पुष्पों की शैय्या का निर्माण कर श्री प्रिया-प्रियतम को शयन कराया जाता है। शैय्या के निकट महामधुर मादक रस, बीरी, पानी की झारी आदि सामग्री रख शैय्या मंदिर से बाहर आ जाते हैं, सखियाँ तब भोजन करती हैं उन सखियों के मध्य में बैठ अपने श्री गुरु का शीथ प्रसाद ग्रहण किया जाता है।

शैय्या समय-जिसका समय 9:30 से 5 बजे प्रात: तक होता है। शैय्या पर शयन करने के बाद श्री प्रिया-प्रियतम प्रेमरस में मग्न होकर हास-परिहास करने लगे तब श्री ललितादिक सखियाँ जलरंध्रों से अवलोकन करने लगीं। श्री ललितादिक सखियों के साथ जलरंध्रों से श्री प्रिया-प्रियतम की दिव्य रहस्य केलि का स्वयं भी रसास्वादन करना चाहिए।

डेढ़ प्रहर रात्रि व्यतीत होने पर मेवादि युक्त औंटा हुआ दूध, मोदकादि सामग्री श्री गुरुसखी को सौंपकर श्री प्रिया-प्रियतम को अर्पित करानी चाहिए। शीतल व सुगंधित जलपान कराकर बीरी अर्पित करनी चाहिए। फिर पीछे पौढ़ने की भावना करनी चाहिए। तदुपरांत श्री गुरुसखी जी का शीथ प्रसाद ग्रहण किया जाता है।

श्री राधावल्लभीय संप्रदाय के निर्दिष्ट इसी सेवाक्रम से, इसी प्रकार श्री वृंदावन धाम में रसिक भक्तजनों को श्री प्रिया-प्रियतम की अष्टप्रहर की सेवा भावना नित्यप्रति मानसी भाव से तथा प्रगट भाव में सर्वदा करते रहना चाहिये। ऐसा नियमपूर्वक करते रहने पर वह भी श्री वृंदावनधाम की नित्यविहार लीला के दिव्य दर्शन का अधिकारी हो जाता है। [पु०गो०]

राधामाधव प्रभु

निंबार्क रसिक श्रीजयदेव कवि के संसेव्य विग्रह श्रीराधामाधव भगवान हैं। निंबार्काचार्य पीठ सलेमाबाद में विराजने से पूर्व श्रीमाधव जी राधाकुंड में श्री श्रीनिवासाचार्य जी की बैठक पर विराजते थे। वि.सं. 1823 में जगद्गुरु निंबार्काचार्य श्री गोविन्दशरण देवाचार्य जी महाराज को स्वप्न देकर श्रीमाधव जी ने निंबार्कपीठ में विराजने का आदेश दिया। महाराजश्री ने पूछा कि किस प्रकार ले चलें तो प्रभु ने अपने रथ में बिठाकर ले चलने का आदेश दिया। प्रभु आचार्य के साथ भरतपुर पहुँचकर सेवा ग्रहण कर ही रहे थे कि समस्त ब्रजवासी और गौड़ीय श्रद्धालु श्रीमाधव जी को ब्रज से बाहर जाने से रोकने के लिए पहुँच गए और आचार्य जी से प्रभु को साथ ले जाने का आग्रह किया। आचार्य जी ने प्रभु आज्ञा होने की बात श्रद्धालुओं से कह दी। इसी मध्य महाराजा भरतपुर ने कहा कि यदि श्रद्धालुओं के रथ खींचने से प्रभु ब्रज की ओर लौट जाएँ तो वे उन्हें ले जाएँ। यदि आचार्य जी का रथ प्रभु को आगे ले जाने में समर्थ हो तो श्रीमाधव जी आचार्य पीठ पधारेंगे। यदि दोनों में से रथ कोई भी खींच न पाए तो प्रभु भरतपुर में ही विराजेंगे। ब्रजवासियों का शक्तिपूर्ण प्रयत्न व्यर्थ गया और रथ तनिक भी न खिसका परंतु आचार्य जी द्वारा प्रार्थना करने और घोड़े जुतवाने के साथ ही रथ पुष्कर क्षेत्र की ओर चल पड़ा। इस अद्भुत दृश्य को देखकर सभी श्रीमाधव प्रभु की जय-जयकार करने लगे। वह दिवस ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्थी वि.सं. 1823 का था। इस घटना का उल्लेख किशनगढ़ रियासत के इतिहास रजिस्टरों में कवि जयलाल ने भी किया है। ज्येष्ठ शुक्ल दशमी के पावन दिवस (गंगा दशहरा) को श्रीमाधव प्रभु आचार्य पीठ में श्रीसर्वेश्वर प्रभु के सन्निकट प्रतिष्ठित हुए और तब से अद्यपर्यंत आचार्यपीठ में अविचल रूप से भक्तों को दर्शन लाभ दे रहे हैं। वि.सं. 1860 के लगभग देश में अंग्रेजों का प्रभुत्व बढ़ने लगा। देश में अराजकता और लूटमार का वातावरण था। ऐसे में सं. 1868 में श्रीमाधव जी को रूपनगर के किले में पधराया गया। मंदिर भवन लुटेरों ने ध्वस्त कर दिया था। जोधपुर नरेश के सहयोग (मकराना से संगमरमर पत्थर भेंट) से मंदिर का पुनर्निर्माण हुआ और श्रीविग्रह सं. 1872 में पुन: रूपनगर से आचार्यपीठ में पधराए गए। उसी समय रूपनगर के एक शिल्पी भक्त ने किशोरीजी की प्रतिमा भी श्रीमाधव जी के वाम पार्श्व में प्रतिष्ठित कराई जो आज भी राधामाधव

श्रीविग्रह के रूप में दर्शनीय है। श्रीराधामाधव जी की छवि के सौंदर्य और आकर्षण के विषय में प्रसिद्ध है-

सुंदरता निरखत फिरयौ देव योग ते आय।
राधामाधव देखि छवि, अब न अनत चित जाय॥ [कुं०बि०श०]

राधामोहन दास

श्रीराधामोहन दास जी का जन्म बिहार प्रांत के दसौत ग्राम में एक उच्चकुलीन ब्राह्मण परिवार में सन् 1893 को हुआ। इनके बचपन का नाम रामलखन झा था। बाल्यकाल से ही ये अत्यंत प्रखर बुद्धि संपन्न थे। पंडित मिश्रीलाल जी से विविध विषयों के ज्ञान में प्रवीण होने के बाद योगीराज ढोढ़ाई झा से योग के ज्ञान का अवलंबन किया किन्तु सच्ची शांति की लालसा अभी बनी रही। एक दिन स्वप्न में एक सिद्ध पुरुष ने आनंद की जड़ को पकड़ लेने का इशारा किया। जिससे गृहस्थ जीवन से निवृत्त होकर रामलखन विभिन्न तीर्थों का दर्शन करते हुए वृन्दावन धाम पहुँचे। यहीं परिक्रमा मार्ग में गऊघाट पर बैठे रामलखन को उन्हीं सिद्ध महापुरुष का दर्शन हुआ, जो उनके स्वप्न में आए थे। विस्मित से रामलखन से श्री मुकुन्द देवाचार्य पीठाधीश्वर माधवदास जी महाराज ने कहा कि तुमने तो बहुत दिन लगा दिए। मुझे पहचाना नहीं? ये गुरुदेव के चरणों में गिर पड़े। गुरुदेव ने टोपीकुंज ले जाकर दीक्षा प्रदान की और आपका नाम राधामोहन दास हो गया।

एक दिन गुरुदेव ने मंत्र दीक्षा प्रदान कर सम्प्रदाय की सेवा करने का आदेश दिया। राधामोहनदास मिथिला पहुँचे। वहाँ अनेक भक्तों पर कृपा की। श्री वृन्दावन में मिथिला कुंज का निर्माण करवाया और एकनिष्ठ भाव से वृन्दावनवास का संकल्प ले लिया। जीवन के अंतिम काल में श्रीयुगल शतक, श्रीमहावाणी, श्रीहित चौरासी तथा अन्य विभिन्न सम्प्रदायों के ग्रंथों का अनुशीलन-अनुसंधान किया। राधामोहन दास जी की सरसता, सरलता, उपासना और बौद्धिक गुणों ने साधु-समाज तथा भक्त समुदाय में इनकी महानता को प्रतिष्ठापित किया। वृन्दावन की अलि माधुरी कुटी में ही इन्हें गोलोकवास की प्राप्ति सन् 1979 में हुई। [कुं०बि०श०]

राधारमण मंदिर सेवा पद्धति

वृन्दावन स्थित श्रीराधारमण मंदिर के श्रीराधारमण विग्रह ब्रज के चतुर्थ विशिष्ट विग्रह हैं। इस मंदिर में सेवा पूजा गौड़ीय सम्प्रदाय की भावना के अनुसार की जाती है। इस मंदिर के प्रथम आचार्य श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी ने गौड़ीय सम्प्रदाय के मूर्द्धन्य आचार्य श्री माधवेन्द्रपुरी पाद द्वारा निर्दिष्ट यशोदात्संगलालित श्री गोपाल विग्रह की प्रचलित सेवा प्रणाली के कुछ अंशों को स्वीकार करते हुए साथ ही वैदिक, पौराणिक एवं लौकिक रीतियों का अनुसरण करते हुए यहाँ सेवा प्रविधि का निर्माण किया।

गौड़ीय वैष्णवजनों की उपासना का वास्तविक उत्स गौर श्यामल तेजोदीप्त, युगल विग्रह, श्रीराधाकृष्ण हैं जिनकी सखीगणानुगता, श्रीराधाकृष्णाराधन तत्परा, सर्वांग सौंदर्य, सौगन्ध्य स्वरूपा मंजरीगण संसेवना करती रहती हैं। यह ब्रजेश्वर की सखियाँ हैं जिन्हें अपने जीवन के सुख-दुख का तनिक भी विचार नहीं है, उनके सुख का मूल आधार श्रीकृष्ण हैं।

इस सेवा प्रविधि के अनुसार अर्चक प्रात: प्रणतिपूर्वक तीन बार ताली बजाकर मंदिर में प्रवेश करता है। तीन बार ताली बजाने का मुख्य कारण यह है कि एक बार निकुंज मंदिर में श्रीराधाकृष्ण की मानलीला चल रही थी। इसी समय अर्चक ने कपाट खोले, इस अलौकिक दृश्य को देखकर वह मूर्छित हो गया और इसी अवस्था में वह निकुंज लीला में प्रविष्ट हो गया, तभी से ताली बजाकर मंदिर में प्रविष्ट होने की परम्परा है। इसके पश्चात सर्वप्रथम ठाकुर जी की

मंगला आरती की जाती है। प्रभु की नित्य सेवाविधि से सेवा की जाती है। मंगला आरती में तीन बत्तियों से आरती की जाती है। जिस प्रकार श्रुतियाँ योगनिद्रागत भगवान को जगाने के लिए त्रिगुणातीत तत्व का प्रतिपादन करती हैं, उस त्रिगुणातीत तत्व की भावना को यह प्रज्वलित तीन बत्तियाँ प्रतिपादित करती हैं। इसके साथ ही गरुड़चिन्हनांत घण्टा बजाया जाता है। इस समय शंख से निर्मच्छन नहीं किया जाता है।

इसके पश्चात दन्तधावन, सुगन्धि लेपन, वैदिक मंत्रों से पाद्य अर्घ्य आचमन, मधुपर्क, पुनराचमन विधि के पश्चात ग्रीष्म में शीतल तथा शीत में उष्ण जल से श्रीविग्रह को स्नान कराया जाता है। स्नान के पश्चात ललित तिलक, शृंगार कर सुगन्धित धूप निक्षेप कर एक बत्ती प्रज्वलित कर नाभि प्रदेश पर्यन्त धूप-आरती की जाती है। उसके पश्चात तुलसी दल मिश्रित मीठे-नमकीन पकवान, फल, मोहनभोग, माखन-मिश्री, मेवा, दूध, दही तथा बारह तत्काल निर्मित खीरसा कुल्हियाओं का भोग श्रीजी को निवेदित किया जाता है। भोग के पश्चात यह प्रसाद श्रीराधिका-स्वरूपविग्रह तदनु श्री चैतन्यदेव प्रदत्त पट्टा स्वरूप श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी को समर्पित किया जाता है। प्रत्येक भोग के पश्चात ताम्बूल अर्पित किया जाता है।

शृंगार आरती के अंतर्गत पाँच बत्तियों को प्रज्वलित कर जो कि श्रीगौर, नित्यानन्द, अद्वैत, गदाधर, श्रीवास रूप पंचतत्त्व को उपलक्षित कर चार बार श्रीचरण, एक बार तल प्रदेश, दो बार नाभि तथा एक बार मुख मण्डल एवं सप्त बार सर्वांग विधि से शृंगार आरती सम्पन्न की जाती है। शंख जल से निर्मच्छन किया जाता है। तत्पश्चात् चमर, दर्पण, छत्र, श्रीचरण एवं पादुका स्पर्श कर प्रसाद वितरण होता है।

राजभोग की सेवा में श्रीजी के सम्मुख कच्ची रसोई का भोग अर्पित किया जाता है। भोग लगने के बाद पाँच प्रज्वलित वर्तिकाओं से राजभोग की आरती की जाती है तथा साथ ही शंख जल से निर्मच्छन किया जाता है। इसके पश्चात् श्रीजी को मध्याह्न में श्रीराधाकुण्ड लीला भावना से शयन कुंज में पधराया जाता है।

मध्याह्न के पश्चात् अर्चक पुनः स्नान कर गर्भ मंदिर में प्रविष्ट हो श्रीविग्रह को सिंहासनस्थ कर एक बत्ती को प्रज्वलित कर सुगन्धित धूप से उत्थापन आरती करता है। इसके साथ ही श्रीजी को फल, मेवा, मीठे, नमकीन, पकवान, कुल्हिया आदि भोग सामग्री निवेदित की जाती है। भोग निवेदित होने के पश्चात दर्शन हेतु पट खोले जाते हैं।

संध्या के समय संध्या आरती सम्पन्न की जाती है। यह आरती श्रीकृष्ण गोचारण से अपने घर लौटते हैं अतः नन्दालय के द्वार पर पुत्र प्रेम वत्सला माँ यशोदा अपने लाल पर नवनिधियाँ न्यौछावर करती हैं, इसी भावना को दृष्टिगत रखते हुए नौ बत्तियों द्वारा संध्या आरती की जाती है।

इसके पश्चात् भक्तों को 'ओलाई' के विशेष दर्शन होते हैं। 'ओलाई' दर्शन माँ यशोदा द्वारा अपने थके हुए लाल को विशेष क्षुधा लगने पर ''ओ लाल! लाई'' की भावना को परिलक्षित करते हैं। तत्पश्चात् श्रीजी को 'व्यालू भोग' अर्पण किया जाता है। इसमें छप्पन प्रकार की अनसखरी सामग्री श्रीजी को अर्पित की जाती है। 'श्रीराधारमण व्यालू कीजे' पद का गान किया जाता है। इसे ही श्रीमाधवेन्द्रपुरी पाद प्रतिष्ठित सेवा परम्परा के अनुसार 'हेला' कहते हैं।

श्रीराधारमण मंदिर में 'व्यालू भोग' के बाद 'दूध भोग' के विशेष दर्शन होते हैं। अन्य सम्प्रदायों में 'व्यालू भोग' के साथ ही दूध भोग अर्पित करने का विधान है परन्तु श्रीराधारमण जी में दूध भोग पृथक रूप से अर्पित किया जाता है।

इसके बाद श्रीजी की 'शयन आरती' की जाती है। श्रीजी की निद्रा में बाधा न आये इसलिए मृदु स्वर में घन्टादि वाद्य ध्वनि करते हुए श्रीजी की तीन बत्तियों को प्रज्वलित कर शयन आरती की जाती है। श्रीजी मात्र एक कौपीन धारण कर शयन कक्ष में पधारते हैं।

श्रीमहाप्रभु चैतन्य ने श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी को अपनी प्रसादी कौपीन प्रदान की थी अतः उस स्मृति को चिरस्थायी रूप देने के लिए श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी ने श्रीजी को कौपीन धारण कराने की परम्परा का प्रचलन किया। इसके साथ ही शय्या के पार्श्व में दो ताम्बूल तथा एक सजल मृत्पात्र (करुआ) रखने की परम्परा है।

इस प्रकार श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी की भावना को साकार रूप दे श्रीजी को साष्टांग प्रणति के पश्चात् अर्चक कपाट मंगलकर बाहर आ जाता है। इसके अतिरिक्त श्रीराधारमण जयन्ती, श्रीकृष्ण जन्माष्टमी, श्रीरामनवमी, श्री नृसिंह जयन्ती, श्रीराधाष्टमी, श्रीवामन जयन्ती, श्री गोवर्धन पूजा, प्रबोधिनी एकादशी तथा श्रीकृष्ण चैतन्य जयन्ती पर श्रीजी का अभिषेक एवं उत्सव आरती की जाती है। [पु०गो०]

राधाष्टमी

राधाष्टमी ब्रज के महत्त्वपूर्ण उत्सवों में एक है। बरसाना, रावल, वृन्दावन आदि स्थानों पर राधाजी का जन्मदिवस बड़े उल्लास के साथ मनाया जाता है। भादों मास के शुक्लपक्ष की अष्टमी तिथि को राधाष्टमी का आयोजन ब्रजवासियों के मन में एक नई उमंग का संचार करता है। इस दिन वृन्दावन में स्वामी हरिदासजी का प्राकट्य उत्सव भी मनाया जाता है। यह उत्सव बिहारीजी, टटिया स्थान, निधिवन, रसिक बिहारी मंदिर, गोरेलाल कुंज एवं अन्य हरिदासी सम्प्रदाय स्थलों में बड़े समारोह की तरह मनाया जाता है। इस दिन सायंकाल के समय में बिहारीजी के मन्दिर से बहुत विशाल सवारी 'चाव' का आयोजन किया जाता है, जो वृन्दावन में भ्रमण करने के पश्चात् निधिवन के लिये प्रस्थान करती है। राधाष्टमी के दिन टटिया स्थान का 'अरई' प्रसाद प्रमुख है। जिसके तैयार होने की पारंपरिक विधि है। वृन्दावन के राधावल्लभ जी मन्दिर में राधाष्टमी महोत्सव अत्यन्त आकर्षक होता है। दोपहर को यहाँ 'दधिकाँधा' का आयोजन होता है तथा मंदिर के सेवायत गोसांई जी राधावल्लभजी की न्यौछावर करके भक्तों में कपड़े, बरतन, रुपये, पैसे आदि सब चीजें लुटाते हैं। बरसाना तथा रावल का यह महत्त्वपूर्ण पर्व है। जहाँ सैकड़ों की तादाद में जनसमुदाय सहभागिता करता है। राधा-जन्मोत्सव विभिन्न पारम्परिक रीति-रिवाजों के मध्य बड़े हर्षोल्लास से आयोजित होता है। शयन के समय बरसाना तथा वृन्दावन के मंदिर में ढांढा-ढाँढी नृत्य की परंपरा है। वृन्दावन में चार दिन चाव निकालने की परंपरा है। अष्टमी की इस तिथि के महात्म्य का उल्लेख पुष्टिमार्ग के भक्त कवि परमानंद दास ने किया है—

जनम लियो शुभ लगन विचार, कृष्नपच्छ, भादौं निसि आठैं नच्छत्र रोहिनी और बुधवार . . .

(परमानंद सागर, परमानंद दास कवि)

[प्र०श०]

राधा सिद्धांत

राधा शब्द की व्युत्पत्ति 'राध्' धातु से 'प्रसन्न करने' के अर्थ में 'टाप्' प्रत्यय लगने पर राधा शब्द बनता है। जिसका अर्थ होता है - जो प्रसन्न करे परन्तु श्री वंशीअलि जी के एक शिष्य ने उनके राधा स्तोत्र की टीका में राधा शब्द की सिद्धि करते हुए लिखा है - 'राध् धातु संसिद्धयर्थम् स्त्रियांटापात् राधा' अर्थात राध धातु से संसिद्धि के अर्थ में 'टाप्' प्रत्यय लगाकर राधा शब्द की सिद्धि होती है। राधा शब्द में 'रा' और 'धा' दो वर्ण हैं आदि में 'रा' और अंत में 'धा'। अमर कोष में राद्धान्त शब्द का अर्थ सिद्धांत दिया है जो रा से आरंभ हो और धा पर समाप्त।

वैष्णव आचार्यों ने राधा शब्द की व्युत्पत्ति अलग-अलग ढंग से की। राधा शब्द को श्रीमद्भागवत पुराण की रास पंचाध्यायी में 'अनयाकराधितो नूनं' इत्यादि श्लोक में खोजा गया है। श्री वंशीअलि ने इस पद की व्याख्या करते हुए लिखा है -''अनया राधितः साधितः प्रकटितः इत्यर्थः। आराधित इत्याकार प्रश्लेष्येप्ययमेवार्थः।''

'विशुद्धरसदीपिका' में 'अनयाकराधितो' पद की व्याख्या में 'राधितः' के दो अर्थ बताए हैं। एक पूजित और दूसरा वशीकृत। इस प्रकार जिसने भगवान श्रीहरि की पूजा की है या जो हरि के साथ पूजी जाती हैं अथवा जिसने हरि को अपने वश में कर लिया है वह श्रीराधा हैं।

राधा को श्रीकृष्ण की शक्ति अथवा उनकी प्रकृति के रूप में विभिन्न पुराणों एवं तंत्रों द्वारा स्वीकृत किया गया है। श्रीवंशीअलि जी ने राधा के संबंध में चली आने वाली प्राचीन मान्यताओं पर पुनर्विचार करके उन्हें ही परमब्रह्म के रूप में प्रतिष्ठित किया है। राधा तत्व का बोध कराते हुए श्री वंशीअलि जी कहते हैं कि श्रुतियों में परम ब्रह्म के जिस सच्चिदानंद रूप का निर्वचन मिलता है, वह श्री राधा ही है, जहाँ राधा नहीं है वहाँ केवल असत्य जड़ और निरानंद ही शेष रह जाता है। तात्पर्य यह है कि सम्पूर्ण दृश्यमान तथा सूक्ष्म सत्ताओं में उसी का रूप व्यापक है। वस्तुत: राधा के अतिरिक्त और कुछ सत्य है ही नहीं।

सच्चिदानंदरूपा सा श्रुत्या साक्षात्प्रदर्शिता।
तद्भावे जड़ोकसत्यो निरानन्दोऽवशिष्यते।

श्री वंशीअलि से पूर्व जिस प्रकार परमब्रह्म रूप में श्रीकृष्ण की मान्यता थी, उसी प्रकार उनके स्वातंत्र्य को भी स्वीकार किया जाता था। श्रीवंशीअलि जी ने श्रीराधा को स्वतंत्र शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया। सम्भवत: इसी सिद्धांत के आधार पर उन्होंने 'शक्तिस्वातंत्र्यवाद' और 'शक्तिस्वातंत्र्य परामर्श' नामक ग्रंथों की रचना की थी। ये दोनों ग्रंथ उपलब्ध नहीं हैं, अत: उन पर विचार करना संभव नहीं है, परन्तु अन्यत्र श्रीराधा के स्वतंत्र शक्ति होने के विषय में जो उल्लेख किए गए हैं वे इस संबंध में स्पष्ट हैं। श्री राधा सिद्धान्त में उन्होंने लिखा है-

चित्ति शक्ति स्वतन्त्रा स्यादेकाभिन्नाप्रकारतः।
सामान्यतः शवत्यभावे न किंचिदवशिष्यते।।

अर्थात श्रीराधा को जब परात्पर शक्ति मान लिया गया और उस पर कोई और तत्व है ही नहीं तब उसको स्वतंत्र भी होना चाहिए, किसी के अधीन नहीं। वस्तुत: वह शक्ति एक ही है, अन्य कोई शक्ति है ही नहीं। जहाँ जहाँ शक्ति का उल्लेख किया गया है, वहाँ वहाँ उसी पराशक्ति का एक प्रकार भेद ही मानना चाहिए क्योंकि शक्ति के अभाव में कुछ भी शेष नहीं रहता। आगे वे कहते हैं कि 'ब्रह्म भी उसी शक्ति का पर्याय है, वहीं पराशक्ति प्राणिमात्र में सर्वत्र अनुस्यूतज है और स्वतंत्र है इसलिए जितनी भी शक्ति दिखाई देती है, वे सभी उनके अधीन हैं।

भागवत दशमस्कंध में रासपंचाध्यायी में आए 'अनयाकराधितो नूनं' जिसके अनुसार राधा के द्वारा श्रीकृष्ण को प्रकट करने का अर्थ स्वीकार कर कृष्ण की प्रकाशरूपा या मूलप्रकृति श्रीराधा ही स्वीकार की गई हैं। श्रीकृष्ण को यहाँ श्रीराधा का दूसरा प्रकाश ही कहा गया है। अपने उक्त अर्थ की पुष्टि करते हुए वंशीअलि ने कहा है- 'यहाँ पर भगवान के चार विशेषण कृष्ण के लिए प्रयुक्त किए गए हैं जो उपर्युक्त अर्थ के बिना औचित्यरहित प्रतीत होते हैं। इसके साथ ही आगे का प्रसंग यह सिद्ध करता है कि श्रीकृष्ण सेवक हैं और श्रीराधा सेव्य।'

भविष्योत्तर पुराण में विष्णु ने श्रीराधा को आदि कारण बताया है, विष्णु ने ब्रह्मा से कहा है कि श्रीराधा 'सद्' और 'असद्' तथा 'कार्यकारणसंधात' से परे 'नित्यविहार' में ही लगी रहती हैं, वह केवल हम जैसों को जन्म देने वाली हैं। वस्तुत: उसे सृष्ट्यादि से कोई प्रयोजन नहीं है। उसी के अंश से बहुत से विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र आदि उत्पन्न होते हैं।

श्रीराधा सिद्धान्त में राधा को जीव और ईश्वर की प्रकल्पिका शक्ति बताया गया। श्रीराधा को परात्पर स्वतंत्र शक्ति मानने के पश्चात् सर्वत्र उसी शक्ति का प्रकाश देखा गया। इस प्रकार राधा की सृष्टि अधिष्ठात्री अंश-शक्तियों से जगत की सृष्टि बताई गई है। राधा का मूल रूप तो केवल 'नित्यविहार' में ही रत रहता है। अपनी आत्मा में रत तथा अपने ही एक से अनेक रूप बनाकर विभूत क्रीड़ा में तन्मय। [रं०]

राधा सुधा निधि

'राधा सुधा निधि' संस्कृत ग्रंथ के मूल प्रणेता राधावल्लभ संप्रदाय में हित हरिवंश माने जाते हैं। राधावल्लभीय संस्कृत साहित्य रचना का शुभारंभ हित हरिवंश सुधा निधि और यमुनाष्टक से होता है। इस ग्रंथ के अधिकांश श्लोकों की रचना देववन में हुई थी। यह काल वह था, जब गौड़ीय संप्रदाय के भक्त गोस्वामी की भक्तिरस रचनाएँ नहीं रची गयी थीं तथा सूरसागर भी निर्माणाधीन था। पुष्टिमार्ग में विट्ठल नाथ गोस्वामी के गद्दीस्थ होने के बाद ही संप्रदाय में राधा का महत्त्व बढ़ा था और वल्लभाचार्य जी ने सूरदास को श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध की अनुक्रमणिका सुनाकर श्रीकृष्ण लीला गान की आज्ञा दी थी। दशम स्कंध में राधा का स्पष्ट उल्लेख नहीं हुआ है और वल्लभाचार्य जी की कोई राधा संबंधी रचना भी नहीं मिलती है।

संस्कृत वाङ्मय में संभवत: यह प्रथम ग्रंथ है जिसका आरंभ श्री राधा की वंदना से होता है। इससे पहले किसी ग्रंथ में यह बात नहीं देखी गयी। राधा सुधा निधि का एक बंगीय संस्कृत राधा रस सुधा निधि के संस्करण में इस ग्रंथ को प्रबोधानंद सरस्वती का सिद्ध करने हेतु आरंभ में श्री चैतन्य वंदना का एक श्लोक जोड़ दिया गया था, जिससे इस ग्रंथ की विलक्षणता ही नष्ट हो गयी है।

इस ग्रंथ का प्रतिपाद्य उस काल में प्रचलित श्रीराधा के समस्त स्वरूपों का निर्देश है और उनके स्वदृष्ट परात्पर प्रेम को स्थापित करना है। राधा का यह स्वरूप अत्यंत रहस्यमय, मूर्त से अमूर्त व अमूर्त से विलक्षण है। उनकी राधा स्वामिनी में प्रेमोल्लास, परम रस चमत्कार वैचित्र्य नव वय रूप लावण्य, लीला माधुर्य, औदार्य वात्सल्य, रति कला केलि माधुर्य की सीमाएँ आकर मिली हैं। उनकी राधा का लावण्य, रति कला चातुर्य, लीला गति दृगभंगी, स्मित परम अद्भुत है, वे अद्भुतता की मूर्ति ही हैं। इस प्रकार हित हरिवंश महाप्रभु के द्वारा श्रीराधा जी की निरुपम भ्रू-नर्तन चातुरी, लीला खेलन चातुरी, वचन चातुरी, संकेतागम चातुरी, नव-नव क्रीड़ा कला चातुरी का जय-जयकार पद-पद पर किया है। जिस परात्पर रूप का प्रत्यक्ष हित हरिवंश जी को हुआ, वह प्रचलित रूप से सर्वथा भिन्न था।

राधा के रूप गुण माधुर्य के साथ युगल उपासना की राधा पद्धति का उल्लेख राधा के अनुरूप धर्म कह कर किया है। संपूर्ण राधा सुधा निधि स्तोत्र में केवल राधा दास्य प्राप्ति की प्रार्थना है। राधा के अद्भुत रूप के वर्णन के साथ-साथ उनके दुर्लभ दास्य प्राप्ति की तीव्र आकांक्षा इस ग्रंथ में पद-पद पर दृष्टिगत होती है। राधा दास्य का अधिकारी होना कितना दुर्लभ है इसको स्पष्ट करते हुए हित प्रभु एक श्लोक में प्रार्थना करते हैं, जो लक्ष्मी को गोचर नहीं, कृष्ण सखाओं को भी प्राप्त नहीं और जो ब्रह्म, नारद, शिव आदि के लिए भी संभाव्य नहीं है वह वृंदावन की नागरी सखियों के भाव के द्वारा किस प्रकार लक्ष्य है।

श्रीराधा-माधव की एकांत क्रीड़ा का वह दास्याधिकार रूपी उत्सव मुझे प्राप्त हो। राधा सुधा निधि में राधा को परम रहस्य, पुंजीभूत रसामृत, निखिल निगमागम अगोचर, प्रेमानंद घनाकृति आदि बताने के साथ वृषभानु की कुलमणि और ब्रजेंद्र गृहिणी यशोदा का गोविंद के समान प्रेमैक पात्रमह: (तेज) बताया गया है।

राधा सुधा निधि 270 श्लोकों का ग्रंथ है। इसका रचनाकाल ज्ञात नहीं होता है तथा उपलब्ध प्रतियों में भी ग्रंथ के रचनाकाल का उल्लेख नहीं मिलता। विद्वानों ने श्लोकों के आधार पर इसका रचनाकाल सोलहवीं शताब्दी के आस-पास स्थिर किया है। इस ग्रंथ की अनेक टीकाएँ लिखी गयी हैं।

संतराम (ब्रजभाषा टीका), लोकनाथ (ब्रजभाषा), तुलसीदास (ब्रजभाषा), हरिलाल व्यास (संस्कृत लघु व्याख्या, मध्य व्याख्या रस कुल्या नाम्नी टीका), हितदास (ब्रजभाषा) कृपालाल गोस्वामी (संस्कृत), वृंदावनदास (ब्रजभाषा), लाड़िलीदास गोस्वामी (ब्रजभाषा), मनोहर बल्लभ गोस्वामी (ब्रजभाषा) स्वामिनीशरण (ब्रजभाषा), भोलानाथ (ब्रजभाषा), रतनदास (ब्रजभाषा) भावार्थ वोधनी लेखक ने जिन प्रतियों के दर्शन किये हैं उन सभी में हित हरिवंश कृत लिखा है, किन्तु ग्रंथ के रचनाकाल का उल्लेख नहीं मिला। [अ०सिं०सै०]

राधिकातापिनीयोपनिषद्

यह उपनिषद् अथर्ववेद से सम्बद्ध है। इस उपनिषद् का प्रारम्भ ''भद्रं कर्णेभि:'' इत्यादि शान्ति पाठ से होता है। इस उपनिषद् को पूर्वकाल में बृहस्पति जी को वसिष्ठ जी ने पढ़ाया और बृहस्पति जी से यह उपनिषद् यजमान इन्द्र को उपदेशित हुआ। इस उपनिषद् में श्रुतियों के द्वारा जिनका वर्णन किया गया है वह श्रीराधिका और भगवान श्रीकृष्ण हैं। श्रीराधिका और भगवान श्रीकृष्ण हैं एक ही शरीर एवं परस्पर नित्य अभिन्न हैं। केवल लीला के लिए ही दो स्वरूपों में व्यक्त हुए हैं। इनकी उपासनाओं के स्वरूप और उनके उद्देश्य को लेकर गम्भीर विचार प्रदान करते हुए वेदज्ञ विद्वानों ने राधा की उपासना के हेतु विचार प्रदान करते हुए बताया है कि भगवान आदित्य जो स्वयं वेदों के अधिष्ठाता हैं और प्रकाशमय ज्ञान के रूप हैं, अत्यन्त कृपा के साथ उनसे वैदिक ज्ञान प्रकट हुआ। राधा की उपासना के सम्बन्ध में समस्त श्रुतियों को संलग्न पाया। इससे यह अर्थ निकलता है कि देवताओं में जो देवत्त्व शक्ति विद्यमान है, वही शक्ति राधा है।

यही बात श्रुतियों ने भी कही है कि ''समस्त देवताओं में जो देवत्त्व शक्ति है, वह राधिका ही है। जगत् के सारे प्राणी श्री राधिका के द्वारा ही प्राणवान बने हुए हैं। देवों से लेकर चींटी जैसे क्षुद्र प्राणी श्रीराधाशक्ति से ही चेष्टा यानि क्रिया शक्ति प्राप्त कर क्रियावान बनते हैं। अत: समस्त श्रुतियाँ राधिका को नमन करती हैं। देवताओं के निवास श्रीराधाशक्ति से ही चेष्टा यानि क्रिया शक्ति को प्राप्त कर क्रियावान बनते हैं। अत: समस्त श्रुतियाँ राधिका जी को नमन करती हैं।

अर्थात् देवताओं के निवास पंचभूत, इन्द्रियों आदि में श्री राधिका की प्रेरणा से ही कम्पन (चेष्टा) होती है और उन्हीं की प्रेरणा से वे उल्लास को प्राप्त करते, नाचते और गाते हैं। सबकी अधिदेवता श्रीराधिका शक्ति ही हैं। अनेक प्रकार से श्रीराधाजी की स्तुति करती हुई श्रुतियाँ कहीं परब्रह्म की शक्ति के रूप में तो कहीं जगत की प्रतिपालिका के रूप में श्रीराधा के स्वरूप का वर्णन करती हैं। जिन राधा के पदधूलि को विश्व का भरण करने वाले स्वयं कृष्ण अपने मस्तक पर एकान्त में अत्यन्त प्रेम के साथ धारण करते हैं और जिनके प्रेम में निमग्न होने पर हाथ से गिरी वंशी एवं बिखरी अलकों का भी जिन्हें स्मरण नहीं रहता तथा क्रीत की भाँति उनके वश में रहते हैं। समस्त प्रकार से श्रीकृष्ण के साथ की जाने वाली लीलाओं का स्मरण करती हुई श्रुतियाँ श्रीराधा को नमन करती हैं।

श्रीराधा और आनन्दसिन्धु भगवान् श्रीकृष्ण एक शरीर हैं-अभिन्न हैं। लीला करने के लिए ही दो शक्तियों में ये स्वयं को विभक्त करते हैं, इसलिए दो शरीरों से युक्त होकर की जाने वाली लीलाओं का जो श्रवण करता है, पढ़ता है या मनन करता है वह मनुष्य श्रीकृष्ण के परमधाम गोलोक को प्राप्त करता है। [वि०प्रि०]

राधोपनिषद्

यह उपनिषद् ऋग्वेद से सम्बद्ध है। राधा के स्वरूप और नामों का वर्णन इस उपनिषद् में किया गया है। इस उपनिषद् का आरम्भ ''ॐ वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो वाचि'' इत्यादि शान्तिपाठ के साथ होता है। उपनिषद् का आरम्भ प्रणव से होता है और उपनिषद् के अन्त में 'ॐ तत्सत्' कहा गया है। भगवान श्रीकृष्ण की प्रियता प्राप्त करने के लिए इस उपनिषद् में आये राधा के नामों का उच्चारण करना बताया गया है।

इसमें भगवान की समस्त शक्तियाँ प्रथमा आह्लादिनी शक्ति को राधा बतलाया है। ऊर्ध्वरिता सनकादि महर्षियों ने एक बार ब्रह्माजी की स्तुति करके उनसे यह प्रश्न किया है कि सबसे प्रधान देवता कौन है? और उसकी कौन-कौन सी शक्तियाँ हैं तथा उन शक्तियों में सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ कारण कौन सी शक्ति है? इस प्रश्न का उत्तर ब्रह्मा जी ने भगवान श्रीकृष्ण को सर्वेश्वर, गोप, गोपियों के सेव्य, वृन्दा (तुलसी) देवी से आराधित और वृन्दावन के अधीश्वर और प्रकृति से भी पुरातन और नित्य बताते हुए कहा है कि इन सर्वेश्वर श्रीकृष्ण जो नारायण के स्वरूप हैं उनकी ही

आह्लादिनी सन्धिनी, ज्ञान और क्रिया आदि बहुत-सी शक्तियाँ हैं। उनमें आह्लादिनी सबसे मुख्या है। ये ही परम अन्तरंग रूपा श्रीराधा हैं।

आराधना के अर्थ में इनको राधा कहा जाता है। भगवान श्रीकृष्ण इनकी आराधना करते हैं। इसलिए यह राधा हैं अथवा ये सर्वदा श्रीकृष्ण की आराधना करती हैं, इसलिए राधिका कहलाती हैं। इन्हीं राधा का एक नाम गन्धर्वा भी है। इस उपनिषद् में लक्ष्मी के सहित भगवान की रानियाँ राधिका जी की ही अंशरूपा हैं। वास्तव में राधा और कृष्ण एक ही हैं पर लीला के लिए दो में विभक्त हो गये हैं।

श्रुतियाँ आह्लादिनी शक्ति रूपा राधा के जिन नामों का गान बराबर करती हैं, वे नाम हैं-

राधा रासेश्वरी रम्या कृष्णमन्त्राधिदेवता।
सर्वाद्या सर्ववन्द्या च वृन्दावनविहारिणी।
वृन्दाराध्या रमाशेषगोपीमण्डलपूजिता।
सत्या सत्यपरा सत्यभामा श्रीकृष्णवल्लभा॥
वृषभानुसुतागोपी मूलप्रकृतिरीश्वरी।
गान्धर्वाराधिकाऽऽरम्या रुक्मिणी परमेश्वरी॥
परात्परतरा पूर्णा पूर्णचन्द्रनिभानना।
भुक्तिमुक्तिप्रदानित्यं भवव्याधिविनाशिनी॥

अर्थात् राधा, रासेश्वरी, रम्या, कृष्णमन्त्राधिदेवता, सर्वाद्या, वृन्दावन विहारिणी, वृन्दाराध्या, रमा, अशेष-गोपीजनपूजिता, सत्या, सत्यपरा, सत्यभामा, श्रीकृष्णवल्लभा, वृषभानुसुता, गोपी, मूल-प्रकृति, ईश्वरी, गन्धर्वा, राधिका, आरम्या, रुक्मिणी, परमेश्वरी, परात्परतरा, पूर्णा, पूर्णचन्द्रनिभानना, भक्तिमुक्तिप्रदा तथा भवव्याधिविनाशिनी इन अट्ठाईस नामों का जो जप या पाठ करता है, वह जीवन्मुक्त हो जाता है।

सन्धिनीशक्ति राधा जी की वह शक्ति है जिसमें धाम, भूषण, शय्या और आसनादि मित्र तथा भृत्यादि के रूप में परिणत होती है और मृत्युलोक में अवतार लेने के समय माता-पिता के रूप में परिणता हो जाती है। यही अनेक अवतारों का कारण है। इसके अतिरिक्त तीन शक्तियाँ और हैं- ज्ञानशक्ति, इच्छशक्ति, क्रियाशक्ति। इनमें ज्ञानशक्ति को क्षेत्रज्ञ शक्ति भी कहते हैं तथा इच्छाशक्ति के अन्तर्भूत माया शक्ति है, जो सत्त्व, रज और तमोगुणरूपा है तथा बहिरंग और जड़ है। जड़ होने के कारण ही भगवान की दृष्टि पड़ने से यह अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड की रचना करती है तथा यही माया और अविद्या इन दो रूपों से जीव को बन्धन में डालती है। जो क्रियाशक्ति के नाम से कथित है, वही लीलाशक्ति कहलाती है। इस लीला के माध्यम से ही भगवान श्रीकृष्ण अपनी लीलाओं का विस्तार करते हैं। ब्रज में श्रीकृष्ण ने समस्त लीलाएँ इसी क्रियाशक्ति के माध्यम से की हैं।

इस पवित्र राधोपनिषद् का जो पाठ करते हैं वे भक्त अग्नि, वायु आदि से सभी प्रकार से पवित्र हो जाते हैं और वे राधाकृष्ण के प्रिय बन जाते हैं। जहाँ तक ऐसे भक्तों की दृष्टि पड़ती है, वहाँ तक वे सबको पवित्र कर देते हैं। [वि०प्रि०]

रामकरन

रामकरन जी तत्कालीन ग्वालियर राज्य के दमोह परगने के पिंडौरा नामक गाँव के रहने वाले थे। यह इनका जन्मस्थान भी था। ये उच्च कुल के सद्गृहस्थ थे। ये अल्पायु से ही सत्संग में रुचि लेने लगे थे। जब इनके हृदय में

वैराग्य उत्पन्न हुआ तो ये अपना सारा घर-परिवार छोड़कर गढ़ नामक स्थान पर रहने लगे। वहीं पर ये चरणदासी संतों के सम्पर्क में आये उसी के प्रभाव से ये चरणदासजी के दिल्ली स्थित आश्रम में आकर उनसे दीक्षित हुए। ये कुछ समय दिल्ली स्थित आश्रम में बिताकर जलालाबाद नामक स्थान पर चले गये। वहाँ से भी कुछ समय बाद ये घूमते-फिरते झाँसी में देवा तहसील के अन्तर्गत गाँव लुहारी में आकर रहने लगे। यहाँ पर इन्होंने अपनी गद्दी स्थापित की तथा आश्रम का निर्माण कराया। इसके अलावा इन्होंने तत्कालीन ग्वालियर राज्य के जिला मुरैना की सबलगढ़ तहसील के कल्होली नामक गाँव में भी अपनी गद्दी स्थापित की थी। रामकरन जी इन दोनों स्थानों पर सदैव आते-जाते रहते थे अत: यह दोनों गद्दियाँ संयुक्त रूप से चलती थीं। [क०उ०]

रामकिशोर

गोस्वामी कृष्णाचरण दास जी के बाद श्री सनातन गोस्वामी जी की गद्दी के उत्तराधिकारी उनके जमाई गोस्वामी रामकिशोर जी हुए। गोस्वामी रामकिशोर जी के पूर्वज बंगाल के गजा नामक ग्राम के निवासी थे। कृष्णाचरण दास जी की पुत्री प्रेम कुमारी के अलावा कोई संतान नहीं थी तो इन्होंने अपनी पुत्री का विवाह रामकिशोर जी से कर दिया था और अपनी श्री मदन मोहन जी की गद्दी का उत्तराधिकारी अपने जमाई रामकिशोर जी को बना दिया। सम्वत् 1847 में आपका गोलोकवास हो गया। [जि०कु०]

रामकृष्ण परमहंस

श्रद्धा, भक्ति एवं वैराग्य द्वारा आध्यात्मिक मार्ग को निरन्तर उन्नति के शिखर पर पहुँचाने वाले स्वामी रामकृष्ण परमहंस का जन्म सन् 1836 में कामारपुकुर गाँव के श्री खुदीराम चट्टोपाध्याय के यहाँ हुआ था। उनके पिता गरीब होते हुए भी ईश्वरभक्त और सेवाभावी थे। वे स्वयं भूखे रहकर दीन-दुखियों और आगुन्तक अतिथियों की सेवा करने को सदैव प्रस्तुत रहते थे। उनकी पत्नी चन्दा देवी भी बिल्कुल उन्हीं के स्वभाव की थीं। जिसका प्रभाव स्वामी रामकृष्ण परमहंस पर पड़ना स्वाभाविक था। पांच वर्ष की आयु में उन्हें पढ़ने के लिये पाठशाला भेजा गया किन्तु उनका मन पढ़ाई की ओर बिल्कुल नहीं गया। वे हमेशा भजन-कीर्तन में तल्लीन रहते थे।

जब स्वामी रामकृष्ण परमहंस लगभग 15 वर्ष के हो गये तो वे अपने भाई श्री रामकुमार के पास कलकत्ता आ गये। इनके बड़े भाई कलकत्ता में एक संस्कृत पाठशाला में अध्यापन का कार्य किया करते थे। कुछ समय बाद कलकत्ता जान बाजार की निवासी रानी रासमणि ने दक्षिणेश्वर में हुगली नदी के किनारे एक बहुत बड़ा मन्दिर बनवाया, जहाँ काली मंदिर के अलावा अन्य देवताओं के भी मंदिर थे। पंडित रामकुमार को उसमें पुजारी के रूप में नियुक्त किया गया था। श्री रामकृष्ण परमहंस भी उनके साथ वहीं रहने लगे। हालांकि पहले रामकृष्ण परमहंस ने अपने भाई के इस काम का विरोध किया क्योंकि मन्दिर बनवाने वाली रानी रासमणि जाति की मल्लाह थीं। किन्तु बाद में उनका मन लग गया और वे रानी की ओर से काली देवी के पुजारी बना दिये गये। वे काली माँ से हमेशा प्रार्थना किया करते थे "माँ मुझे दर्शन दो! माँ मुझे दर्शन दो! " वो पूजा करते समय अपनी सुध-बुध छोड़कर घण्टों चिल्लाया करते थे, जिससे कुछ लोग उन्हें पागल समझते थे।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस का विवाह 23 वर्ष की आयु में पाँच वर्ष की वधू शारदामणि देवी के साथ हुआ था जो इनके जन्म स्थान कमारपुकुर गाँव के पास ही जयराम वाटी नामक गाँव की थीं। माता शारदा देवी भी बचपन से ही ईश्वर भक्ति और भजन-साधन की ओर अनुरक्त थीं। 13 वर्ष की आयु में दो-तीन बार श्रीरामकृष्ण परमहंस के घर कामारपुकुर में जाकर रहीं। जहाँ स्वामी परमहंस भी तीन महीने तक रहकर उन्हें लौकिक तथा आध्यात्मिक शिक्षा प्रदान करते रहे।

यद्यपि स्वामी रामकृष्ण परमहंस माँ काली के भक्त थे किन्तु वे अन्य सम्प्रदायों के प्रति समान आदरभाव रखते थे। यही नहीं उन्होंने भगवान राम की उपासना का भी विचार किया। भगवान रामचन्द्र जी की मूर्ति की भी पूजा करने लगे। इसके पश्चात वे श्रीकृष्ण की भक्ति सखी सम्प्रदाय के अनुसार करने में तल्लीन हो गये। इस प्रकार स्वामी रामकृष्ण परमहंस देव ने भक्तिमार्ग की अनेक शाखाओं का अध्ययन किया। उन्होंने मुस्लिम एवं सिक्ख धर्म का भी सम्मान किया।

कुछ समय बाद कुछ लोगों ने माता शारदा से कहा कि परमहंस देव पागल हो गये हैं तो इस बात को मालूम करने के लिए वे स्वयं दक्षिणेश्वर आकर वहाँ मंदिर में ही रहने लगीं। परमहंस देव कभी रात में उठकर ध्यान लगाते, कभी समाधि की अवस्था में जान पड़ते थे। इससे माता शारदा को भय लगने लगा। अत: वे अपनी सास चन्दा देवी जी के साथ एक कुटिया में रहने लगीं। माता शारदा तब से लेकर स्वामी जी के अंत समय तक दक्षिणेश्वर की एक छोटी-सी कोठरी में रहकर अपने पति की सदैव सेवा करती रहीं। माता शारदा देवी परमहंस देव के देहान्त के पश्चात बहुत समय तक जीवित रहीं और उन्होंने सन् 1920 में बैलूर मठ में अपनी इहलीला समाप्त की।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस के 16 अगस्त 1886 ई. को स्वर्ग सिधारने के बाद उनके परम शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने उनका सारा दायित्त्व सम्भाला। स्वामी विवेकानन्द इस गुरुतर भार को बड़े ही गौरव के साथ निभाने में सफल हुए। उन्होंने बाद में स्वामी रामकृष्ण परमहंस मिशन की स्थापना की। हुगली नदी के किनारे बने हुए दक्षिणेश्वर मंदिर की आज भी बहुत बड़ी ख्याति है। स्वामी विवेकानन्द को स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने इसी स्थान पर साक्षात् काली माँ के दर्शन कराये थे। आज भी देश-विदेश के लोग आकर स्वामी रामकृष्ण परमहंस, माता शारदा देवी एवं स्वामी विवेकानन्द को याद करते हैं। [कृ०उ०]

रामगलतान

रामगलतान ने चरणदास जी से दीक्षा ली थी। ये रामोपासक थे। इनके जीवन के विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। इनके गुरु भाई जोगजीत जी ने अपने ग्रंथ 'लीलासागर' में बताया है कि इनको अपने इष्ट के ध्यान में डूबा रहना अच्छा लगता था। इन्हें कई घंटों की समाधि लगाने का अभ्यास था। ये अपने इष्ट के बिना ऐसे नहीं रह सकते थे जिस प्रकार मछली बिना जल के नहीं रह सकती है। ये अपना अधिकांश समय मानसिक आराधना में लगाते थे। इन्होंने अपना जीवन दिल्ली स्थित गुरु आश्रम या दिल्ली के आस-पास के आश्रमों पर ही व्यतीत किया। इन्होंने स्वयं अपनी कोई स्वतंत्र गद्दी स्थापित की हो ऐसा कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। [क०उ०]

रामगोपाल देवाचार्य

निम्बार्क सम्प्रदाय में कन्हर देव जी के पाँच प्रभावशाली शिष्य हुए। जिन्होंने पूर्व भारत विशेषकर बिहार, उड़ीसा में सम्प्रदाय का अच्छा प्रचार किया। श्रीरामगोपाल देवाचार्य कन्हर देव जी के चौथे शिष्य थे। इनकी शिष्य परम्परा का राजस्थान में विशेष प्रभाव रहा। सुरबाल नाम जयपुर राज्य का सुन्दर स्थान उसी शाखा के अन्तर्गत है। इनसे 11 पीढ़ी में बाबा रामचंद्र दास जी हुए जिन्होंने वृन्दावन में दतियावाली कुंज में आजीवन वास करते हुए अनेक साम्प्रदायिक ग्रंथों का प्रकाशन कराया। [शै०च०]

रामचंद्र कविराज

रामचन्द्र कविराज गौड़ीय सम्प्रदाय के प्रसिद्ध आचार्य श्रीनिवासाचार्य के शिष्य थे। इनका जन्म 1537 ई. के लगभग पद्मा नदी के तट पर स्थित तिलिया बुधरी (कुमार नगर) नामक स्थान पर हुआ था। इनके पिता का नाम

चिरंजीव सेन और माता का नाम सुनन्दा था। इनकी माता सुनन्दा उस समय की सुप्रसिद्ध संस्कृत कवयित्री थीं।

इनके सम्बन्ध में एक कथा कही जाती है कि एक बार रामचन्द्र कविराज एक विवाह में सम्मिलित होने के लिए बारातियों के साथ जा रहे थे। जिस गाँव में विवाह था वहाँ पर श्रीनिवासाचार्य जी रुके हुए थे। विवाह के बाद कविराज जी श्रीनिवासाचार्य से मिले। दोनों के बीच काव्य शास्त्र एवं व्याकरण पर चर्चा छिड़ गयी। परस्पर चर्चा होते हुए संध्या हो गयी। श्रीनिवासाचार्य ने कविराज जी की प्रतिभा को स्वीकार करते हुए कहा, ''जो विद्वान कृष्ण भक्ति से अनभिज्ञ है उसका समस्त ज्ञान व्यर्थ है।'' इस बात से कविराज जी के अंत:करण में प्रभु कृपा एवं प्रेम पाने की इच्छा उत्पन्न हो गयी। उन्होंने श्रीनिवासाचार्य जी से दीक्षा ली और उनसे वैष्णव धर्म एवं दर्शन का अध्ययन किया और भक्ति तत्व को हृदयंगम किया।

कालांतर में ये संसार त्यागकर नरोत्तम ठाकुर के खेतुरी स्थित आश्रम में भजन करते हुए जीवनयापन करने लगे।

[क०उ०]

रामचंद्र भट्टाचार्य

मुमुक्षजनों और शरणागतों को भगवत प्रप्रत्ति योग के परम उपदेष्टा श्री रामचंद्र भट्टाचार्य जी ही थे। इन्होंने भगवान और उनके बीच के मार्ग को मानो सेतुबंध बाँधकर पाट दिया था। इसी से इनका रामचंद्र नाम चरितार्थ हुआ। श्रीरामचंद्र भट्टाचार्य जी का पाटोत्सव वैशाख कृष्ण पंचमी को मनाया जाता है। इन्होंने 'गोष्ठी रहस्य' नामक ग्रंथ की रचना की थी।

[कुं०बि०श०]

रामदास

रामदास द्वितीय एक वैभव संपन्न गृहस्थ थे। ये वैराग्य स्वभाव के थे, अंतत: ये सब कुछ त्यागकर साधु हो गये थे। ऐसी अनुश्रुति है कि इन्होंने 14 गाँवों की चौधराई त्याग कर संन्यास लिया था परन्तु इनके बाद जो व्यक्ति उस चौधरी पर बैठा। वह बहुत ही क्रूर और दुष्ट था। उसने इन्हें भी बहुत परेशान किया। अत: उससे तंग आकर इन्होंने अपना गाँव त्याग दिया और चरणदास जी की शरण में आ गये। जोगजीत ने अपने ग्रंथ 'लीलासागर' में इनका गाँव बाबा गाँव बताया है, जोकि संभवत: दिल्ली के आस-पास ही होना चाहिए। ये भी रामदास प्रथम की भाँति त्यागी, वैराग्य संपन्न, निरभिमानी, संतोषी एवं गुरु वाणी को लिखने-पढ़ने में संलग्न रहने वाले महात्मा थे। ये मुख्यत: दिल्ली के आस-पास ही रहकर भक्ति प्रचार करते थे। इनके द्वारा रचित साहित्य के विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है।

[क०उ०]

रामदास काठिया बाबा

श्री हरिव्यास देवाचार्य जी के कृपापात्र शिष्य श्री स्वभूराम देवाचार्य जी की संप्रदाय परम्परा में श्री हंस भगवान से 50वें स्थान पर हैं। इन परम्परानुवर्ती श्रीरामदास काठिया बाबा महाराज का जन्म पंजाब प्रान्त के अमृतसर से लगभग 20 कोस की दूरी पर स्थित लोनाघमारी ग्राम के विप्रकुल में हुआ। इनका बाल्यकालीन नाम जयराम था। बाल अवस्था में ही सिद्ध संतों का आश्रय और सान्निध्य इन्हें प्राप्त हुआ, जिसके इनकी अनुरक्ति भगवत चरणारविन्दोन्मुख हुई। सात वर्ष की अवस्था में संत आज्ञा शिरोधार्य करने के फलस्वरूप इन्हें योगीराज होने का संत आशीर्वाद मिल गया। बाबाश्री के जीवन के अनेकों प्रसंग संत जीवन में आने वाले मोह और विषमताओं के उदाहरण हैं। इन्होंने अल्पायु में ही भगवत और गुरु कृपा से गायत्री मंत्र की सिद्धि कर ली। इन्होंने परम योगीसिद्ध श्री देवदास जी काठियाबाबा महाराज से दीक्षा ग्रहण की। अपने गुरु के चरणों में आपकी निष्ठा, चिंतन और प्रेम सनातन था। रामदास जी की तपश्चर्या का स्तर इतना

उच्च था कि भीषण ग्रीष्म में वे पंचाग्नि तापते हुए समाधिस्थ रहते थे वहीं अत्यन्त शीतकाल में भी ब्रह्म मूहुर्त में जल शय्या में समाधिस्थ होना उनका साधना नियम था। उन्होंने मानसरोवर से कन्याकुमारी तक भारत भूमि के विभिन्न तीर्थों की पदयात्रा की किन्तु सदैव ब्रजवास में ही उनकी निष्ठा और आसक्ति रही।

एक बार अपनी सेवा और मीठे वचनों से हाथरस में एक जमींदार ने उनको प्रसन्न कर लिया। संत की अनुकूलता जानकर नि:संतान जमींदार ने पुत्र प्राप्ति का वरदान माँग लिया। बाबा ने कहा कि यदि तुम मेरे लिए वृन्दावन में मंदिर बनवा दो तो तुम्हारे एक वर्ष के अंदर अवश्य ही पुत्र होगा किन्तु यदि तुमने मंदिर न बनवाया तो तुम्हारा पुत्र नहीं रहेगा। जमींदार पुत्र प्राप्ति के अभिमान में अपने वचन का उल्लंघन कर बैठा तो बाबा ने तीसरे ही दिन उसके पुत्र के मर जाने का शाप दे दिया। ऐसा ही हुआ जिससे दुखित हो जमींदार की पत्नी बाबा के चरणों में गिरकर पुत्रदान की भीख माँगने लगी। इस पर बाबा ने उसे दो जीवित पुत्रों का भी आशीर्वाद दिया और भविष्य में इस तरह का व्यवहार किसी भी संत की भावनाओं से न करने की बात कही। वृन्दावन में आपके प्रवास के दौरान एक कुख्यात चोर आपके प्रभाव में आकर साधु बन जाने और ब्रजवासियों द्वारा आपकी परीक्षा के लिए भेजी गई स्त्री के प्रभावहीन होकर वापस लौट जाने की घटना ने आपकी मान्यता और महानता दोनों ही की समवृद्धि ब्रजवासियों के साथ ही इस नश्वर संसार में की।

बाबा महाराज ने ब्रजविदेही चतुरचिंतामणि नागाजी महाराज की परम्परानुसार अनेकों गौरवपूर्ण ब्रज यात्राएँ कीं। ब्रज के वैष्णव सम्प्रदाय के समस्त साधु-संतों द्वारा इन्हें ही सर्वसम्मति से वैष्णव चतु: संप्रदाय श्री महंत की उपाधि दी गई। सर्वप्रथम रामदास महाराज द्वारा ही वृन्दावन धाम में काठियाबाबा का स्थान निर्मित किया गया। बाबा कहा करते थे 'भजन का घर तो बहुत दूर है, अभी सेवा करता जा' अर्थात ध्यान में समाधिस्थ होने का अभ्यास तभी हो सकेगा जबकि जीवमात्र की निष्काम सेवा की जाए।

[कुं०बि०श०]

रामधड़ल्ला

रामधड़ल्ला जी के विषय में इनके गुरु भाई जोगजीत जी ने अपने ग्रंथ 'लीलासागर' में यह बताया है कि ये जिला मुजफ्फरनगर के निकट सिलसिली ग्राम के निवासी थे। पहले ये एक योगी जोकि बहुत चमत्कारी भी था उसके शिष्य थे। ये उसके बल पर लोगों को परेशान किया करते थे। एक बार चरणदास जी अपनी शिष्य मंडली के साथ सिलसिली जा रहे थे तब उन्हें लूटने के उद्देश्य से यह उनका रास्ता रोक कर खड़े हो गये। तब चरणदास जी इन्हें चुपचाप खड़े देखते रहे, देखते ही देखते इनका हृदय परिवर्तन हो गया और यह उनके चरणों में गिर पड़े। चरणदास जी ने इन्हें अपने शिष्य के रूप में स्वीकार कर लिया और रामधड़ल्ला नाम देकर उन्हें झंडा-वाहक का काम सौंप दिया। इन्होंने इस कार्य-भार का आजीवन निर्वाह किया। ये स्वयं भी सिद्ध महात्मा थे। इन्होंने कोई भी गद्दी स्थापित नहीं की। यदि स्थापित की हो तो भी इसका कोई विवरण प्राप्त नहीं है।

[क०उ०]

राम नवमी

कृष्ण भक्ति का प्रमुख केन्द्र होने के साथ ही ब्रज में राम भक्ति उपासना भी प्रमुखता से देखी जा सकती है। लगभग 18वीं शताब्दी के दौरान यहाँ रामभक्ति उपासना से जुड़े मंदिर-देवालय एवं अनी-अखाड़े तीव्रता से स्थापित हुए। चैत्र शुक्ल नवमी के दिन भगवान रामचन्द्र का जन्मोत्सव मनाया जाता है। ब्रज में राम नवमी के अवसर पर राम मन्दिरों में भव्य फूल बंगलों का आयोजन किया जाता है। राम जन्म की बधाईयाँ गायी जाती हैं तथा इस अवसर पर ठाकुरजी का दूध, घृत, शक्कर, शहद व दही आदि सामग्री को मिश्रित कर पंच द्रव्य से अभिषेक कराया जाता है। जिसमें दिव्य जड़ी-बूटियाँ, इत्र इत्यादि सामग्री को मिश्रित किया जाता है। इस दिन भगवान राम को पीले रंग के वस्त्र धारण कराये जाते हैं। मन्दिरों को भव्य तरीके से सजाया जाता है।

'नौमी के दिन नौबत बाजे कौसल्या सुत जायो।
सात घरी दिन उदित भयौ है सब सखियनि मंगल गायौ।

(परमानन्द दास कवि, परमानन्द सागर 337)
[प्र०श०]

रामप्रताप

रामप्रताप चरणदास जी के प्रमुख शिष्यों में से एक थे। इनकी गुरु चरणों में दृढ़ आस्था थी। ये चरणदास जी को श्रीकृष्ण का अवतार मानते थे और दूसरों को भी ऐसा मानने के लिए प्रेरित करते थे। इनका जन्म रिवाड़ी के सम्पन्न दूसर वंश में हुआ था। ये गृहस्थ थे। इन्होंने गृहस्थ जीवन बिताने के बाद चरणदास जी से दीक्षा ली थी।

ये गुरु के देहावसान तक गुरु के पास दिल्ली में ही रहे। गुरु के देहावसान के पश्चात रिवाड़ी की नई बस्ती में अपना थांबा स्थापित कर संप्रदाय के प्रचार-प्रसार में रत हो गये। इनके बारे में संप्रदाय के प्रमुख ग्रंथ 'गुरु भक्ति प्रकाश' एवं 'लीलासागर' में कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। इनके शिष्यों में भगतदास का नाम प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है जो कि इनके बाद इनकी गद्दी पर बैठे। इनके द्वारा रचित कोई भी साहित्य प्राप्त नहीं होता है या फिर अभी तक प्रकाश में नहीं आया है। [क०उ०]

राममौला

राममौला एक मुसलमान पठान थे। चरणदास जी से दीक्षित होने से पूर्व इनका नाम शाहमौला था। पूर्व जीवन में ये एक प्रख्यात सूफी संत थे। ये अफगानिस्तान में कंधार के रहने वाले थे। ये हिन्दी, संस्कृत तथा फारसी के ज्ञाता थे। ये बहुत विद्वान थे तथा सदैव शास्त्रार्थ के लिए तत्पर रहते थे। इन्होंने शास्त्रार्थ में अनेक हिन्दू-मुस्लिम विद्वानों को पराजित किया था। इसी क्रम में ये दिल्ली आये वहाँ पर इन्होंने चरणदास जी का बहुत नाम सुना तब इन्होंने चरणदास जी से शास्त्रार्थ किया परन्तु इस शास्त्रार्थ में ये पराजित हो गये। तब इन्होंने चरणदास जी से दीक्षा ग्रहण की। चरणदास जी ने इनका नाम शाहमौला से राममौला कर दिया। कुछ दिन ये दिल्ली में रहे, इसके बाद ये वापस कंधार जाकर सम्प्रदाय का प्रचार-प्रसार करने लगे। इन्होंने वहाँ पर गद्दी भी स्थापित की। वहाँ से इनके शिष्यगण समय-समय पर दिल्ली आकर दर्शन एवं सत्संग के लिए आते रहते थे। [क०उ०]

रामसनातन

राम सनातन जी शुक संप्रदाय के आचार्य श्री चरणदास जी के शिष्य थे। इनका व्यक्तिगत परिचय अप्राप्त है। इनके गुरु भाई जोगजीत जी ने अपने ग्रंथ 'लीलासागर' में बतलाया है कि रामसनातन जी हमेशा गुरु और इष्ट के ध्यान में मग्न रहते थे। इनके इष्ट भगवान राम थे इसलिए गुरु ने इनका नाम राम सनातन रखा। ये आजीवन दिल्ली स्थित गुरु के आश्रम में ही रहे। अत: इन्होंने किसी गद्दी की स्थापना नहीं की। [क०उ०]

रामहेत (रामहेतु)

रामहेत जी चरणदास जी के प्रमुख शिष्यों में से थे। इनका जन्म दिल्ली के निकट स्थित सुलहेड़ा नामक स्थान पर हुआ था। ये गृहस्थ थे। इन्होंने अपनी गृहस्थ की पूरी जिम्मेदारी निभाकर ही चरणदास जी से विरक्त वेश धारण करने

की दीक्षा ली थी। ये भगवान राम को अपना इष्ट मानते थे। इनकी साधना रसिक परम्परा की थी। ये अपने गुरु को भी अपने इष्ट भगवान राम के समान मानते थे। इनके गुरु भाई जोगजीत ने अपने ग्रंथ 'लीलासागर' में लिखा है कि ये ज्ञान-ध्यान में पारंगत थे साथ ईश्वरीय प्रेम के मतवाले थे। कभी वे प्रेममग्न होकर गुणगान करते तथा कभी मुरली बजाते थे। इनके द्वारा रचित साहित्य के बारे में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। [क०उ०]

रामानंद (रामानंदी संप्रदाय)

इस संप्रदाय के धर्मपंथ के प्रचारक एवं प्रसारक उत्तर भारत में स्वामी श्री रामानंद थे तथा इसमें भगवान श्रीराम की उपासना, भक्ति को प्रमुखता दी गयी है। इसलिए इसे रामानंदी अथवा रामवत् संप्रदाय या पंथ कहा जाता है।

स्वामी रामानंद श्री संप्रदाय के आद्य प्रवर्तक, प्रचारक एवं प्रसारक आचार्य रामानुज (11-12वीं शताब्दी) की शिष्य परंपरा में हुए थे। अत: यह संप्रदाय भी श्री संप्रदाय की शाखा के रूप में विकसित एवं पल्लवित हुआ है। इसीलिए दोनों के कुछ अपवादों को छोड़कर दार्शनिक सिद्धांतों में परस्पर प्रचुर समानता है। जहाँ भक्ति, उपासना का संबंध है उनकी कुछ एक बातों में अंतर है।

स्वामी रामानंद, दाक्षिणात्य मनीषी धर्माचार्य विद्वान श्री रामानुजाचार्य की शिष्य परंपरा में वे स्वामी राघवानंद के शिष्य थे। इस संप्रदाय की मान्यता के अनुसार स्वामी रामानंद का आविर्भाव संवत् 1356 की माघ कृष्णा सप्तमी, गुरुवार को प्रयाग (तीर्थराज प्रयाग) में एक सनातन धर्मी कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके (रामानंद के) पिता का नाम पुण्यसदन, माता का नाम सुशीलादेवी था तथा आपका राशि (पंचांग) का नाम रामदत्त था। वे जन्मजात नैसर्गिक प्रतिभा संपन्न मेधावी बालक थे।

एक बार आपके पिताजी रामायण का पाठ कर रहे थे। सुनते-सुनते ही बालक रामदत्त को वह समस्त पाठ कंठाग्र हो गया। ऐसी मेधा के कारण 12 वर्ष की आयु में आपको दर्शन शास्त्र पढ़ने काशी भेजा गया। जन्मजात प्रतिभा के बल से आप सर्वशास्त्र धुरीण पंडित हो गये तथा अध्ययन के अनंतर आपने वैष्णवी दीक्षा ले ली। उस समय घोर हिन्दू धर्म विरोधी क्रूर कट्टर धर्मांध मुसलमानों का भारत में साम्राज्य था तथा सर्वत्र उनका आतंक व्याप्त था।

जब मुसलमानों द्वारा निरीह हिन्दुओं पर नाना प्रकार के घनघोर अत्याचार किये जा रहे थे, तब कुछ धार्मिक हिन्दुओं ने स्वामी रामानंद से प्रार्थना की थी। आपने सबको धैर्य बँधाया। दूसरे दिन अजान के समय लोगों ने सुना कि मुसलमानों के मुखों से आवाज निकलना बंद हो गया। ऐसी स्थिति में मुसलमानों ने रामानंद से क्षमा माँगी। स्वामी जी ने उनसे कहा ''जजिया कर, मंदिरों के बनवाने की मनाही, मस्जिदों के सामने से बरातों का न निकलने देना, गोवध करना जब तक तुम बंद न करोगे तब तक तुम्हारी यही दशा रहेगी।'' आपके इस आदेश पर तत्काल बादशाह मुहम्मद तुगलक से लिखित प्रार्थना की। स्वामी जी द्वारा यह महदुपकार हुआ। अपने भ्रमणकाल में बीजापुर आदि नरेशों को उपदेश दिया गया जिनका उन पर अनुकूल प्रभाव पड़ा था। स्वामी रामभक्त उपासक हैं, किन्तु वे गोस्वामी तुलसीदास के तुल्य कट्टर रामभक्त नहीं थे।

स्वामी रामानंद जाति-पाति, ऊँच-नीच, सवर्ण-असवर्ण, शूद्र-अन्त्यज, छूत-अछूत आदि भेदभावों से परे थे। जुलाहा कबीर मुसलमान, सेना नाई, रैदास चमार, धन्ना जाट आदि उनके शिष्य थे। वे दूरदर्शी क्रांतिकारी बिखरे हुए हिन्दू समाज के संगठनकर्ता थे। 'हरि कों भजै सो हरि कौ होई, जाति पांत माने नहीं कोई' उक्ति उन्हीं की है। वे सीता-राम के भक्त अवश्य थे किन्तु गोस्वामी तुलसीदास की भांति 'तुलसी माथा जब नबै धनुस बान लेहु हाथ' से सहमत नहीं थे। यही कारण था कि स्वामी रामानंद ने शैव, शाक्त, तांत्रिक धर्माचार्यों एवं उनके अनुयायियों के साथ भी ताल-मेल बनाये रखा था। विशेष पथ्य या दूरी नहीं रखी थी एवं अपने विशिष्टाद्वैत और प्रवृत्ति के आधार पर स्वीकार किया था। वैसे उनकी दास्य भक्ति थी। उन्होंने बलपूर्वक मुसलमान बनाये गये हिंदुओं को 'राम तारक' मंत्र देकर शुद्ध

किया था और सही अर्थों में भगवान श्रीराम के आदर्शों का निर्वाह किया था। आप वैष्णव आचार्यों में अग्रणी क्रांतिकारी आचार्य थे। लोकोपकर्ता सामाजिक भेदभाव अपसारक स्वामी रामानंद का तिरोभाव सांप्रदायिक मान्यता के अनुसार 111 वर्ष की अवस्था में 1469 वैशाख शुक्ल 1 को हुआ था। कुछ विद्वान उनका देहावसान काल को जन्मकाल मानने के पक्ष में हैं। जिससे उनकी विद्यमानता का समय एक शताब्दी आगे तक हो जाता है। उनके जीवन से संबंधित घटनाओं और उनकी शिष्य परंपरा से भी इसी काल की संगति बैठती है। श्री बलदेव उपाध्याय के मतानुसार स्वामी रामानंद का संवत् 1469 से 1569 ठहरता है। सांप्रदायिक विद्वान भले ही एक मत न हों 'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना' स्वाभाविक रूप से उनमें रहती है। वे प्रगतिशील आचार्यों में अग्रणी थे। वे सगुण-निर्गुण के झमेले में कभी नहीं पड़े थे, यद्यपि उनके शिष्य कबीर, रैदास, धन्ना आदि सगुण-निर्गुणिया थे। कबीर के समान वे शाक्त विरोधी नहीं थे। वे भगवान श्रीराम की दास्य भक्ति के पोषकोपासक थे। किन्तु आचार्य शंकर की भाँति किसी भी सांप्रदायिक धर्माचार्य के साथ शास्त्रार्थ नहीं किया। नाभादास ने व्यक्तित्व एवं कृत्तित्व निम्न छप्पय में सटीक रूप से उजागर किया है-

देवा चारज दुतिय महामहिमा हरि आनन्द।
तस्य राघवानन्द भए भक्तन को मानद॥
पृथ्वी पत्रावलंब करी काशी अस्थायी।
चारि वरन आश्रम सबई की भक्ति दृढ़ाई॥

श्री रामानुजाचार्य जी मुख्यतया श्री नारायण मंत्र द्वारा दक्षिण में विष्णु की उपासना का प्रचार-प्रसार किया और श्री रामानंदाचार्य ने श्रीराम मंत्र द्वारा परात्पर परमब्रह्म श्री जानकी-जीवन की उपासना का एक (विशिष्टाद्वैत) ही माना है। ''विशिष्टञ्च विशिष्टञ्च विशिष्टे तयौरद्वैतम्'' इस व्युत्पत्ति के अनुसार सूक्ष्म चिद चिद्विशिष्ट (कारण ब्रह्म) और स्थूल चिदचिद्विशिष्ट (कार्य ब्रह्म) दोनों अभिन्न अंग ही हैं। श्री रामानुजाचार्य एवं श्री रामानंदाचार्य जी में बस इतना ही भेद है।

स्वामी रामानंद का दृष्टिकोण केवल धार्मिक ही नहीं था अपितु राजनीतिक भी था। उनका उद्देश्य विदेशियों के चंगुल में बुरी तरह फँसे हुए सुप्त भारत के सांस्कृतिक, सामाजिक गौरव को जागृत भी करना था। सामाजिक ऐक्य भी स्थापित करना था। उन्होंने बिखरे भारतीय समाज को जोड़ने का सक्रिय प्रयास किया था। सामाजिक कुरीतियों को तोड़ा और बिखरे हुए समाज को जोड़ा। [प्रे०द०मि०]

रामानन्दी सम्प्रदाय का दार्शनिक सिद्धान्त

रामानन्दी सम्प्रदाय जिसे रामावत सम्प्रदाय भी कहते हैं। यह सम्प्रदाय श्री सम्प्रदाय की ही एक शाखा है जो कि दक्षिण भारत से उत्तर भारत में आकर प्रस्फुटित हुई। स्वामी रामानन्द जी को ही इस सम्प्रदाय का आदि प्रवर्त्तक माना जाता है लेकिन इस सम्प्रदाय के इतिहास का अनुशीलन करने पर पता चलता है कि स्वामी रामानन्द के गुरु राघवानन्द जी काशी पंचगंगा घाट पर आकर रहने लगे थे। यहीं पर स्वामी रामानन्द के माता-पिता उनको लेकर आये थे। तब स्वामी राघवानन्द जी ने अपने योगबल से रामानन्द जी के मृत्यु योग को टाल दिया था। बाद में रामानन्द जी ने स्वामी राघवानन्द जी से शिष्यत्त्व ग्रहण किया।

इस सम्प्रदाय की दार्शनिक पृष्ठभूमि पर विचार से पता चलता है कि राम भक्ति की परम्परा तो आलवार संतों से ही प्राप्त होती है। नम्मालवार (शठकोप) भगवान राम के विशिष्ट उपासक माने जाते हैं। राजा कुलशेखरालवार के बारे में प्रसिद्ध है कि राम कथा सुनते समय वे इतने तन्मय हो गये कि खरदूषण प्रसंग सुनते समय वे अपने सेनानायक को सेना

तैयार करने का आदेश देकर स्वयं भी धनुष-बाण तैयार कर भगवान राम की सहायता हेतु उद्यत हो गये थे। रामानुजाचार्य ने भी अपने गद्यात्मक स्तोत्रों में भी भगवान राम की काकुत्स्थ रूप से स्तुति की है। यदि राघवानन्द जी की साधना पद्धति पर नजर डालें तो पता चलता है कि उनकी साधना भक्ति और योग का समन्वित रूप है। ग्रंथ 'हरिभक्ति सिंधुबेला' के कर्ता अनंत स्वामी ने बताया है कि उन्होंने दक्षिण भारत से आकर उत्तर भारत में राम मंत्र का प्रचार किया था।

रामानन्द जी के दार्शनिक पक्ष को समझने के लिए उनके द्वारा रचित ग्रंथ 'वैष्णव-मताब्ज-भास्कर' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह ग्रंथ प्रश्नोत्तर संवाद के रूप में रचित है। इसके 192 पद्यों में वैष्णव सिद्धान्तों तथा आचारों का वर्णन है। इस ग्रंथ में स्वामी जी के शिष्य सुरसुरानन्द जी ने दस प्रश्न किये हैं जिनके उत्तर के रूप में वैष्णव सिद्धान्तों का वर्णन किया है। रामानन्द जी को श्री वैष्णवों का तत्त्वत्रय सर्वथा मान्य है। तत्व तो चिद्चिद् विशिष्ट रूप से एक ही है, परन्तु नाम तथा पदार्थ से वह तीन प्रकार को होता है-चित् (चेतन), अचित् (अचेतन) एवं ईश्वर। चित् तथा अचित् से विशिष्ट होने के कारण 'ईश्वर' ही 'चिद्चिद्विशिष्ट' माना गया है। ईश्वर के लिए चित् तथा अचित् पृथक अस्तित्त्व रखने वाले विशेष नहीं हैं अर्थात् चित् तथा अचित की सत्ता ईश्वर से भिन्न किसी भी स्थान पर सिद्ध नहीं हो सकती। चित् से विशिष्ट ईश्वर तथा अचित् से विशिष्ट ईश्वर एक ही है। ईश्वर ही जगत का कारण भी है तथा कार्य भी है। अंतर केवल स्थूल तथा सूक्ष्म रूप का ही होता है। स्थूल चित्-अचित् से विशिष्ट ईश्वर जगत का कारण होता है। अत: दोनों दशाओं में भी उसके स्वरूप का व्याघात नहीं होता। वह सदैव विशिष्ट रूप से एक ही रहता है। अत: विशिष्टाद्वैत कहलाता है। ये तीनों तत्त्व ही नित्य हैं। ये तीनों तत्त्वत्रय के नाम से अभिहित किये जाते हैं। यही सिद्धान्त रामानन्दी सम्प्रदाय में मान्य है। तत्त्वत्रय के रूप में श्रीराम, श्री सीताजी, श्री लक्ष्मण इसके द्योतक हैं। जिसमें भगवान श्रीराम ईश्वर तत्त्व के द्योतक हैं, श्रीसीताजी प्रकृति तत्त्व या जगत तत्त्व की द्योतक हैं एवं श्रीलक्ष्मण जी जीव तत्व के द्योतक हैं। इसी कारण रामानन्द जी ने सीता तथा लक्ष्मण से संयुक्त श्रीरामचंद्र जी के ध्यान का आदेश अपने अनुयायियों को दिया। यह त्रिमूर्ति तत्त्वत्रय का ही बाह्य विग्रह है। इस त्रिमूर्ति की अर्चना का विधान स्वामी जी ने किया। रामानन्दी सम्प्रदाय के प्राचीन मंदिरों में इस सिद्धान्त के अनुसार ही त्रिमूर्ति की स्थापना की जाती थी।

इस सम्प्रदाय के आद्य उपदेष्टा भगवान श्रीराम माने गये हैं। इस सम्प्रदाय की 'श्री' शक्ति श्रीसीता जी हैं। इस सम्प्रदाय की गुरु परम्परा में प्रथमाचार्य के रूप में श्री हनुमान जी महाराज मान्य हैं। परम भागवत कौशलेन्द्र दास हनुमान जी ने सृष्टिकर्ता ब्रह्मा को मंत्रराज षडाक्षर मंत्र का उपदेश किया था। ब्रह्मा जी से वशिष्ठ जी को, वशिष्ठ जी से पाराशर जी को, पाराशर जी से महर्षि बादरायण (कृष्ण द्वैपायन व्यास) को यह मंत्र प्राप्त हुआ। व्यास जी ने यह मंत्र अपने पुत्र शुकदेव जी को दिया। इस प्रकार रामानन्दी सम्प्रदाय की गुरु परम्परा को बताया जाता है।

इस सम्प्रदाय में भक्ति को ही मुक्ति का एकमात्र साधन माना गया है। भक्ति से तात्पर्य है कि भगवान श्रीरामचंद्र का अनुरागपूर्वक नित्य स्मरण कर नाम भक्ति है। भगवान राम की प्राप्ति ही मोक्ष है। जिसके अंत में साधक साकेत धाम (अयोध्या पुरी) में हमेशा के लिए निवास करता है और परब्रह्म श्रीराम की निर्हेतुकी दया का भाजन बनकर दर्शन पाता है। [क०उ०]

रामानुज

आचार्य रामानुज का जन्म 1014 वि. में दक्षिण भारत के भूतपुरी (वर्तमान पेरेम्बुपुरम्) नामक स्थान में हुआ था। ये कांची नगरी में यादवप्रकाश के पास वेदान्त का अध्ययन करने गये। इनका वेदान्त का ज्ञान थोड़े समय में ही इतना बढ़ गया कि कभी-कभी इनके तर्कों का उत्तर देना यादवप्रकाश के लिए कठिन हो जाता था। इनकी विद्या की ख्याति धीरे-धीरे बढ़ने लगी। यामुनाचार्य इन्हीं दिनों गुप्त रूप से आकर इन्हें देख गये और इनकी प्रतिभा से बड़े प्रसन्न हुए। यामुनाचार्य की तीन इच्छाएँ जीवन में अपूर्ण रह गयी थीं, जिन्हें वे अपनी मृत्यु से पहले रामानुज को बताना चाहते थे, किन्तु इनके पहुँचने

के पूर्व ही वे दिवंगत हो गये थे। उनकी तीन उँगलियाँ मुड़ी रह गयी थीं। लोगों ने इसका कारण वे तीन प्रतिज्ञाएँ बतायीं, जो इस प्रकार थीं-ब्रह्मसूत्र का भाष्य लिखना, दिल्ली के तत्कालीन सुलतान के यहाँ से श्रीराम मूर्ति का उद्धार करना तथा दिग्विजयपूर्वक विशिष्टाद्वैत मत का प्रचार करना। रामानुज ने ज्यों ही इन्हें पूरा करने का वचन दिया त्यों ही उनकी उँगलियाँ सीधी हो गयीं। यामुनाचार्य का अन्तिम संस्कार कर वे सीधे कांची चले आये। यहाँ महापूर्ण स्वामी से व्यासकृत वेदान्तसूत्रों के अर्थ के साथ तीन हजार गाथाओं का उपदेश भी प्राप्त किया। वैवाहिक जीवन से ऊबकर वे संन्यासी हो गये थे।

संन्यास लेने पर रामानुज स्वामी की शिष्यमण्डली बढ़ने लगी। उनके बचपन के गुरु यादवप्रकाश ने भी उनका शिष्यत्त्व ग्रहण कर लिया तथा 'यतिधर्मसमुच्चय' नामक ग्रंथ की रचना की। अनेक शिष्य उनके पास आकर वेदान्त का अध्ययन करते थे। उन्हीं दिनों यामुनाचार्य के पुत्र वरदराङ्क कांची आये तथा आचार्य से श्रीरंगम् चलकर वहाँ का अध्यक्ष पद ग्रहण करने की प्रार्थना की। रामानुज उनकी प्रार्थना स्वीकार कर श्रीरंगम् में रहने लगे। उन्होंने यहाँ फिर गोष्ठीपूर्ण से दीक्षा ली। गोष्ठीपूर्ण ने योग्य समझकर उन्हें मन्त्ररहस्य बता दिया और आज्ञा दी कि वे किसी को मन्त्र न दें। रामानुज को जब यह ज्ञात हुआ कि इस मंत्र के सुनने से मनुष्य मुक्त हो सकता है तो वे मंदिर की छत पर चढ़कर चिल्ला-चिल्लाकर सैकड़ों नर-नारियों के सामने मन्त्र का उच्चारण करने लगे। गुरु ने इससे क्रुद्ध होकर उन्हें नरक जाने का शाप दिया। इस पर रामानुज ने कहा कि गुरुदेव, यदि मेरे नरक जाने से हजारों नर-नारियों की मुक्ति हो जाय तो मुझे वह नरक स्वीकार है। रामानुज की इस उदारता से प्रसन्न हो गुरु ने कहा-'आज से विशिष्टाद्वैत मत तुम्हारे ही नाम पर 'रामानुज दर्शन' के नाम से विख्यात होगा। मैसूर के राजा विट्टिदेव की सहायता से रामानुज ने श्रीवैष्णव मत का प्रचार करने के लिए 74 शिष्य नियत किये। इस प्रकार सारा जीवन भजनसाधन तथा धर्मप्रचार में व्यतीत कर आचार्य ने 1194 वि.सं. में दिव्यधाम को प्रस्थान किया।

यतिराज रामानुज ने अपने मत की पुष्टि के लिए 'श्रीभाष्य' के अतिरिक्त वेदान्तसंग्रह, वेदान्तदीप, वेदान्तसार, वेदान्ततत्त्वसार, गीताभाष्य, गद्यत्रय, भगवदाराधन क्रम की भी रचना की। इसके अतिरिक्त अष्टादशरहस्य, कण्टकोद्धार, कूटसन्दोह, ईशावास्योपनिषद्भाष्य, गुणरत्नकोश, चक्रोल्लास, राममन्त्रपद्धति, विशिष्टाद्वैत भाष्य, वैकुण्ठगद्य, संकल्प सूर्योदय टीका आदि ग्रंथों की भी रचना की। किन्तु यह पता नहीं लगता कि कौन-सा ग्रंथ कब लिखा गया। उन्होंने अपने ग्रंथों में शांकर मत का जोरदार खण्डन करने की चेष्टा की है।

रामानुज ने यामुनाचार्य के सिद्धान्त को और भी विस्तृत करके सामने रखा है, ये भी तीन ही मौलिक पदार्थ मानते हैं-चित् (जीव), अचित् (जड़ समूह) और ईश्वर या पुरुषोत्तम। स्थूल-सूक्ष्म, चेतन-अचेतन, विशिष्ट ब्रह्म ही ईश्वर है। अनन्त जीव और जगत् उसका शरीर है। वही इस शरीर की आत्मा है। ब्रह्म सगुण और सविशेष है। उसकी शक्ति माया है। ब्रह्म अशेष कल्याणकारी गुणों का आलय है। उसमें निकृष्ट कुछ भी नहीं है। जीव और जगत् उसका शरीर है। वह सृष्टि-स्थिति-संहारकर्ता है, पर व्यूह, विभव, अन्तर्यामी और अर्चावतार भेद से वह पाँच प्रकार का है, शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी चतुर्भुज है। श्री, भू, लीला देवी सहित है, किरीटादि से विभूषित है। जगत् जड़ है और ब्रह्म का शरीर है। ब्रह्म ही जगत का उपादान और निमित्त कारण है।

जीव भी ब्रह्म का शरीर है। ब्रह्म और जीव दोनों चेतन हैं। ब्रह्म विभु है, जीव अणु है। ब्रह्म पूर्ण है, जीव खण्डित है। प्रत्येक शरीर में जीव भिन्न है। भगवान के दासत्व की प्राप्ति ही मुक्ति है। वैकुण्ठ में श्री, भू, लीला देवियों के साथ नारायण की सेवा करना ही परम पुरुषार्थ कहा जाता है। उपासनात्मक भक्ति ही मुक्ति के साधन हैं। नारायण विभु हैं, भूमा हैं, उनके चरणों में आत्मसमर्पण करने से जीव को शान्ति मिलती है। उनके प्रसन्न होने पर मुक्ति मिल सकती है। सब विषयों का त्यागकर उनकी ही शरण लेनी चाहिए। [क०उ०]

राय रामानन्द

राय रामानन्द गौड़ीय सम्प्रदाय के प्रवर्तक चैतन्य महाप्रभु के अंतरंग भक्त थे। चैतन्य महाप्रभु ने राय रामानन्द के बारे में कहा है कि ''राय रामानन्द और मुझमें केवल शरीर का अन्तर है।'' राय रामानन्द जगन्नाथपुरी के बेंटपुर नामक ग्राम में रहने वाले थे। इनके पिता का नाम भवानन्द पटनायक था। वे स्वयं चैतन्य महाप्रभु के अंतरंग भक्त थे। इनके पाँच पुत्र थे-गोपीनाथ, वाणीनाथ, कलानिधि, रामानन्द, सुधानिधि। रामानन्द इन भाइयों में सबसे बड़े थे। चैतन्य महाप्रभु स्नेहपूर्वक इनको 'पाँच पांडव' कहकर पुकारते थे।

रामानन्द के पिता भवानन्द राय की उड़ीसा के तत्कालीन राजा गजपति महाराज प्रताप रुद्र देव के साथ घनिष्ठ मित्रता थी। उन्होंने रामानन्द को अपना प्रतिनिधि बनाकर दक्षिण में गोदावरी के तट पर स्थित विद्यानगर राज्य का शासक नियुक्त किया था। इसी प्रकार उनके अन्य भाइयों को भी महाराज ने राजपद प्रदान किए थे। महाराज ने ही रामानन्द को 'राय' की उपाधि प्रदान की थी।

चैतन्य चरितामृत के अनुसार चैतन्य महाप्रभु संन्यास लेने के बाद दक्षिण की ओर जा रहे थे तब सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा कि ''आप वहाँ रामानन्द राय से मिलें क्योंकि इस समय पृथ्वी पर उनके समान राधाकृष्ण भक्ति का अधिकारी एवं रस मर्मज्ञ व्यक्ति और कोई नहीं है।'' जब चैतन्य महाप्रभु राय रामानन्द से मिले तब रामानन्द उनसे दुगनी अवस्था के थे। महाप्रभु और रामानन्द के बीच दस दिनों तक प्रेमाभक्ति साधना के सभी बिन्दुओं पर चर्चा हुई। चैतन्य ने उनसे प्रश्न किया, ''रामराय! जिस भजन की सहायता से जीव को परमतत्त्व की प्राप्ति होगी, वह समझाकर कहो।'' रामानन्द ने वर्णाश्रम निर्देशित स्वधर्माचरण से प्रारम्भ कर कर्म समर्पण तत्त्व, ज्ञानमिश्रित भक्ति, दास्य, सख्य, वात्सल्यमय भक्ति, माधुर्य भक्ति का निरूपण किया साथ ही कृष्ण तत्त्व, राधातत्त्व, राधाकृष्ण तत्त्व का एवं प्रेम विलास विस्तार का भी विवेचन किया। चैतन्य महाप्रभु और रामानन्द का यह संवाद गौड़ीय सम्प्रदाय में बहुत प्रसिद्ध है। इसको 'रामानन्द संवाद' के नाम से जाना जाता है।

इसके बाद रामानन्द राजपद त्यागकर जगन्नाथपुरी में रहकर महाप्रभु की सेवा करने लगे। चैतन्य महाप्रभु की गम्भीरा लीला में जब महाप्रभु विरह में अत्यन्त पीड़ा महसूस करते थे तब राय रामानन्द उन्हें स्वरचित और विद्यापति एवं चण्डीदास के भजन सुनाकर सुख पहुँचाते थे। इस प्रकार राय रामानन्द एवं स्वरूपदामोदर के भजन महाप्रभु को जीवित रखते थे।

एक दिन एक भक्त ने महाप्रभु से श्रीकृष्ण लीला श्रवण का अनुरोध किया। तब महाप्रभु ने उन्हें राय रामानन्द के पास भेजा। वे भक्त रामानन्द के पास गये तब रामानन्द दो युवतियों को कृष्ण सुखवर्धन में चेहरे के हाव-भाव, भ्रू-लताओं की भंगिमा और कटाक्ष की भूमिका का गूढ़ रहस्य समझा रहे थे। वे भक्त यह देखकर लौट आये और चैतन्य महाप्रभु के समक्ष संदेह प्रकट किया तब महाप्रभु ने कहा, ''यद्यपि मैं हर समय महाभाव में निमग्न रहता हूँ परन्तु यदि मुझे लकड़ी की स्त्री भी दिख जाए तो मेरा चित्त अस्थिर हो जाता है लेकिन रामानन्द युवतियों के बीच रहकर भी निर्विकार रहते हैं, उनका चित्त अस्थिर नहीं होता हैं यही उनकी श्रेष्ठता का प्रमाण है।''

राय रामानन्द रागानुगा भक्ति के उच्चतम शिखर को स्पर्श कर चुके थे। साधना के इस परम लक्ष्य को प्राप्त करने के कारण प्रेमा भक्ति, साधना में जहाँ श्री चैतन्य को राधाभाव स्वरूप तथा दामोदर को ललिता भावस्वरूप वहाँ पर राय रामानन्द को विशाखा स्वरूप माना गया है। [क०उ०]

रुद्र

'रुद्र' शब्द की व्युत्पत्ति 'रुद्' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है-रुदन या गर्जन। यजुर्वेद के 'शतरुद्रिय प्रकरण' में रुद्र को पशुपति, शम्भु, शंकर और शिव नाम से उच्चारित किया गया है। 'कृतवास' और 'आपार्थ' भी रुद्र के बहुप्रचलित नाम हैं। कतिपय स्थानों पर विश्वकर्मा के पुत्र के रूप में उल्लेखित रुद्र ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार भय और भास के ऐसे देव हैं जिनके नाम में भूत या पशु शब्द आते हैं और उनमें सभी देवों के उग्र अंश समाहित हैं। अथर्ववेद में इसे 'भूपति',

'नीलोदर', 'लोहितपृष्ठ' तथा 'नीलकण्ठ' कहा गया है। स्मरण रहे कि जलधारा के साथ बहकर चिकने पत्थर हो आए नीलोहित पत्थरों को शिव अथवा रुद्र का प्रतीक मानकर पूजने की परम्परा अत्यंत प्राचीन है।

हड़प्पा में उत्खनन से प्राप्त एक विशेष आकृति जिसे पुरातत्व विश्लेषक रुद्र अथवा शिव मानते हैं। अनुसंधानकर्ता श्री एस.आर. राव के दृष्टिकोण में वह अग्नि का प्रत्यंकन है। वैसे शिव और रुद्र दोनों शब्दों का प्रयोग 'रक्तवर्ण' अथवा 'लालिमा' के लिए किया जाता है। अग्नि का प्रत्यंकन भी लाल होता है अत: कहा जा सकता है कि अंतत: दोनों एक ही हैं, चूँकि पाषाणकाल के उग्र देव रुद्र को विध्वंसक प्राकृतिक शक्तियों का प्रतीक माना गया है और रुद्र स्वभाव से क्रोधी, स्वरूप से भयानक और कर्म से संहारक हैं। इसीलिए उनके क्रोध, विध्वंस और भयावहता के कारण उन्हें मातृदेवियों के समान अनैतिक आचरणों से जोड़कर देखा गया। सौन्दर्यवादियों ने रुद्र को अनार्य देवता सिद्ध करने का प्रयास किया एवं ऋग्वेद (2.33.1) के 'रुद्र' को ऐतरेय ब्राह्मण (13.9-10) ने जानबूझकर 'रुद्रय' के रूप में गलत ढंग से अंकित किया। यद्यपि रुद्र एक पाषाण देवता थे और अनार्य देव के रूप में प्रतिष्ठित रुद्र की गणना वैदिककाल ने साधारण देव के रूप में की तथापि वेदों में रुद्र के प्रलयकारी और सृजनकारी दोनों रूप समाहित हैं।

रुद्र कितने थे इस सम्बन्ध में मतैक्य नहीं है। कहीं 1, कहीं 10 और कहीं 100 रुद्रों का उल्लेख मिलता है। अनुमान है कि संख्या में यह वृद्धि उनके गुणों का परिचायक रही होगी। इस संदर्भ में शिव और विष्णु पुराण में कथा मिलती है कि दैत्यों से व्यथित देवताओं की सहायता के लिए उनके पिता कश्यप ने भगवान शिव की तपस्या करके वरदान प्राप्त किया कि वे उनकी पत्नी वसुधा के पुत्र बनकर जन्म लें और दैत्यों को परास्त करें। कश्यप को दिए वचन के अनुसार शिव ग्यारह रुद्र (कपाली, पिंगल, भीम, विलोहित, शस्त्रभृत, अभय, अजपाद, अहिबुध्न्य, शंभु, भव तथा विरूपाक्ष) के रूप में वसुधा के गर्भ से प्रकट हुए। जबकि कूर्मपुराण में प्रसंग आता है कि सृष्टि उत्पन्न करने में असमर्थ ब्रह्मा के नेत्रों से विवशता से आँसुओं से भूत-प्रेतों का जन्म हुआ और मुख से ग्यारह रुद्रों का; ब्राह्मण ग्रंथों के अनुसार जन्म लेते ही रुदन के कारण इनका नाम रुद्र पड़ा। कुछ कथाओं में रुद्र को भगवान शंकर का अवतार माना जाता है। जिनका अवतरण कामदेव को भस्म करने एवं दक्ष का यज्ञ ध्वस्त करने के लिए हुआ। ऋग्वेद के मात्र तीन सूक्त ही रुद्र पर केंद्रित हैं जहाँ रुद्र के उग्र एवं विनाशकारी रूप के समक्ष अश्वों, परिजनों, गायों को विनाश का शिकार न बनाने की स्तुति की गयी है और कहा गया है कि हे रुद्र हमारी प्रजाएँ तुम्हारी स्तुतियाँ करती हैं, तुम उनकी रक्षा करो, उन्हें रोग मुक्त बनाओ, शेष ऋचाओं में सोम आदि के साथ उनके नाम का उल्लेख आता है। अज्ञात कारणों से वैदिक धर्म में 'पशुपति' अथवा 'रुद्र' की स्थिति बहुत अस्पष्ट सी थी। याज्ञकीय गतिविधियों में अन्य समस्त देवताओं का आहवान किया जाता था और रुद्र व उनके अनुगामियों (रुद्रियों) का नाम भी वर्जित था किन्तु भक्ति के उदय के साक्षी पौराणिक काल में रुद्र से जुड़े मिथकों ने आकार लिया और वैदिककालीन प्रलयंकारी 'रुद्र' को सहस्र औषधियों का ज्ञाता, मंगलकारी 'शिव' बनाकर चराचर के केन्द्रीय देवता के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। शीघ्र ही रुद्र की गणना त्रिदेवों में महेश के रूप में होने लगी। वास्तव में रुद्र एक साथ कल्याण और विनाश के देवता हैं। शांत शिव और क्रोधित रूप रुद्र हैं, किन्तु क्रोध में 'महाकाल' बनकर भी रुद्र विनाश नहीं सृजन के भाव का पोषण करते हैं। शिवलिंग अथवा योनि पूजा की पृष्ठभूमि में निहित तर्क और संदेश भी यही है। रुद्र की चर्चा अक्सर रुद्रों, रुद्रियों और मरुतों के पिता के रूप में की जाती है (ऋग्वेद 1.38.4, 1.64.2)। क्योंकि मरुत, रुद्र की तरह 'धनुष-बाण' धारण करते हैं और उनमें रोगनाश की सामर्थ्य भी है। इंद्र से रुद्र की साम्यता का आधार है, विद्युत की तरह गर्जन करने की क्षमता, रुद्र द्वारा वज्र को धारण करना भी इस कल्पना की पुष्टि करता है। [अ०श्री०]

रूपकवीश्वर (कविराज)

श्री रूपकवीश्वर गोस्वामी का आविर्भाव पश्चिमी बंगाल में मुर्शिदाबाद जिले के अन्तर्गत सैदाबाद गाँव में 1624

ई. कार्तिक पूर्णिमा के दिन हुआ। पिता का नाम महादेव पण्डित और माता का नाम विमला देवी था। इनका बचपन का नाम 'विश्वरूप' था। पाँच वर्ष की आयु में विद्याध्ययन प्रारम्भ किया। विद्यागुरु श्रीकृष्णचरण चक्रवर्ती जी से अल्पकाल में ही व्याकरण, काव्य आदि संस्कृत शास्त्रों में पारंगत हो गये। बाद में भवानन्द सिद्धान्त वागीश से अलंकार एवं वेदान्त शास्त्रों का अध्ययन किया।

विश्वरूप को प्रबल कृष्णानुराग ने 16 वर्ष की अवस्था में ही वृन्दावन जाने के लिये विवश कर दिया। श्रीकृष्ण प्रेमोन्मत्त होकर वे गृहत्याग कर मार्ग में काशी, प्रयाग आदि तीर्थों का दर्शन करते हुए वृन्दावन आ पहुँचे। वृन्दावन के मन्दिरों के दर्शन कर राधाकुण्ड पधारे। वहाँ जाकर श्री मुकुन्ददास गोस्वामी के चरणाश्रित हुए। दीक्षा तथा वेषाश्रय के पश्चात इनका नाम हुआ 'रूपदास'। इनकी विलक्षण विद्वत्ता के कारण आगे चलकर वे 'श्रीरूप कवीश्वर गोस्वामी' नाम से विख्यात हुए।

18वीं शताब्दी में इनके प्रशिष्य श्रीकानुदास जी द्वारा विरचित 'श्रीरूप चरितामृत' में श्रीरूपकवीश्वर जी का दिव्य चरित का विस्तार से वर्णन हुआ है। त्याग-वैराग्य की प्रतिमूर्ति श्रीरूपकवीश्वर जी करुआ, कौपीन और फटी कंथा मात्र धारण करते, भूमि में शयन करते, अन्य वार्ता से दूर रहकर सर्वथा गुरुसेवा, शास्त्र, अध्ययन स्तुति पाठ, परिक्रमा के अलौकिक आनन्द के नशे में डूबे रहते। श्रीगुरुदेव की प्रतिदिन सात बार परिक्रमा एवं 108 बार साष्टांग दण्डवत प्रणाम करते।

श्रीरूपकवीश्वर गोस्वामी के काल में एक बार श्रीराधाकृष्ण विषयक स्वकीया-परकीया को लेकर विवाद खड़ा हो उठा था। स्वकीयावादियों ने परकीया को निन्दनीय कहकर जयपुर राजदरबार में आपत्ति उठाने पर राजा से इस पर विचार के लिए विद्वत् संगोष्ठी बुलायी, जिसमें श्रीरूपकवीश्वर गोस्वामी पधारकर परकीया विरोधियों को शास्त्र-प्रमाण एवं युक्तिबल से पराजित कर दिया। वे परकीया भाव के कट्टर समर्थक थे। जयपुर नरेश ने इनकी असाधारण पाण्डित्य-प्रतिभा से विमुग्ध होकर इन्हें ब्रजभक्ति क्षेत्र का महान पुरुष घोषित करते हुए 'सूरमा' उपाधि प्रदान की। तभी से इन्हीं तथा इनके अनुयायियों को 'सूरमा' कहा जाने लगा। कुंज भी सूरमा कुंज नाम से प्रसिद्ध हो गयी।

श्री रूपकवीश्वर जी ने श्रीराधाकृष्ण भक्ति के प्रचार हेतु मध्य एवं पूर्वी भारत की कई यात्रायें कीं। उनके अनगिनत शिष्य थे। उनमें सवा सौ विरक्त शिष्य थे। श्री रूपकवीश्वर गोस्वामी ने श्रीकृष्ण विरह में रोते-रोते संकीर्तन के बीच विजयादशमी (1684 ई.) के दिन 60 वर्ष की आयु में श्रीराधागोविन्द की नित्यनिकुंज में प्रवेश किया। इनकी समाधि बड़ी सूरमा कुंज में विद्यमान है। इनकी रचनाएँ 'सार संग्रह', रागानुगाविवृति' एवं 'पद्यावली की टीका' हैं।

[प्रे०दा०शा०]

रूप गोस्वामी

रूप गोस्वामी जी आयु में सनातन प्रभु से दो वर्ष छोटे थे किन्तु चैतन्य महाप्रभु के प्रथम कृपापात्र होने के कारण वैष्णव समाज में ये ज्येष्ठ समझे जाते हैं। इनका हस्तलेख काफी सुन्दर था। कृष्णदास कविराज द्वारा रचित चैतन्य चरितामृत में उल्लिखित है कि इनकी लिखावट मोतियों की लड़ी की तरह थी। महाप्रभु के कृपापात्रों में रूप एवं सनातन दोनों अभिन्न हैं। न केवल गौड़ीय वैष्णव साहित्य बल्कि अन्य वैष्णव सम्प्रदायी वाणीकारों ने भी रूप एवं सनातन गोस्वामी का नाम साथ ही लिया है। रूप गोस्वामी के सेव्य विग्रह गोविन्ददेव जी हैं जिनका प्राकट्य गोमा टीले से हुआ था। कालांतर में गोविन्ददेव जी का भव्य मंदिर आमेर के राजा मानसिंह के द्वारा बनवाया गया। यह मंदिर भी मदनमोहन मंदिर की भाँति भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के अधीन है। औरंगजेब के दमन चक्र के दौरान गोविन्ददेव जी का श्रीविग्रह जयपुर पहुँचा जहाँ ये अद्यावधि विराजमान हैं। रूप गोस्वामी जी के द्वारा रचित ग्रंथ भक्तिरसामृतसिन्धु, उज्ज्वलनीलमणि, विदग्धमाधव (नाटक), ललितमाधव (नाटक), लघुभागवतामृत, नाटक-चन्द्रिका, पद्यावली,

मथुरा महिमा, निकुंजरहस्यस्तव, स्मरणमंगलस्तोत्र, वैष्णवपूजाविधि, सामान्य विरुदावली लक्षण, स्तव-माला, दानकेलिकौमुदी, हंसदूत, उद्धव संदेश एवं राधाकृष्णगणोद्देशदीपिका हैं। संस्थान के द्वारा प्रकाशित संस्कृत केटलॉगों में इन पांडुलिपियों की सूचनायें उपलब्ध हैं। [रा०श०]

रूपनिधान

श्री रूपनिधान जी उत्कट सखी भाव से परिपूर्ण हृदय के स्वामी थे। इनका जन्म माथुर ब्राह्मण कुल में हुआ था। युवा होने पर विवाह की तैयारियों को अधूरा छोड़कर ही आचार्य जी वृंदावन भाग आए। परिजनों ने बहुत समझाया किंतु लगन प्रिया-प्रियतम की सन्निधि की प्रबल थी। इनके दृढ़ भाव जानकर गुरुदेव ने इन्हें वैष्णवी मंत्रोपदेश कर निज परिकर में प्रवेश किया। श्री रूपनिधान जी की प्रभु चरणों में निष्ठा और तन्मयता उस कोटि की थी कि निकुंजवास के समय श्रद्धालुओं को इनके दर्शन सखी स्वरूप में हुए थे। इन्होंने 40 वर्षों तक व्यक्त रूप से यहाँ निवास किया। [कुं०बि०श०]

रूपसखी

रूपसखी हरिदासी संप्रदाय के एक रसिक भक्त थे, जो सखी भाव के उपासक थे। उनका मूल नाम और जीवनवृत्त अज्ञात है। केवल इतना पता है कि वे आचार्य रसिकदास के शिष्य थे। उनकी वाणी 'सिद्धांत के पद' नाम से 'सिद्धांत रत्नाकर' ग्रंथ में प्रकाशित हुई है। इसके अतिरिक्त उनके रचे हुए 800 रस के पद तथा 100 कवित्त-सवैया भी प्राप्त हैं, जिनका लिपिकाल सं०1809 बतलाया गया है। श्री रूपसखी की रचना का एक उदाहरण—

रसिकन के धन स्यामा-स्याम।
अनमिष निरखि धरैं उर संपुट, अद्‌भुत रतन महा अभिराम॥
वृंदाबन राजैं, छवि साजैं, लाजैं देखत कोटिक काम।
श्री गुरु संत दया करि दीनों, रूपसखी पायौ विश्राम॥ [वि०का०]

ल

लक्ष्मीप्रिया

लक्ष्मीप्रिया गौरांग महाप्रभु की प्रथम गृहिणी थीं। 'गौरगणोद्देश दीपिका' में श्रीपाद कर्णपूर गोस्वामी ने कहा है कि रामावतार की जानकी जी और कृष्णावतार की रुक्मिणी जी दोनों सम्मिलित होकर लक्ष्मीप्रिया के रूप में अवतरित हुई थीं। इनके पिता का नाम बल्लभाचार्य मिश्र था जोकि राजा जनक के अवतार माने गये हैं। गौरांग महाप्रभु से विवाह के समय इनकी आयु 10 वर्ष की थी। विवाह के पश्चात् महाप्रभु बंग प्रदेश की यात्रा पर चले गये, उनके पीछे ही सर्प दंश के कारण इनकी मृत्यु हो गई। इनके रूप-लावण्य का वर्णन कवि जपानन्द ठाकुर ने अपने ग्रंथ 'श्रीचैतन्य मंगल' में किया है। [क०उ०]

लघु भागवतामृत

रूप गोस्वामी द्वारा लिखित लघु भागवतामृत ग्रंथ सनातन गोस्वामी के बृहद भागवतामृत ग्रंथ की सम्पुष्टि के लिए लिखा गया प्रतीत होता है। इसके दो खण्ड हैं-कृष्णामृत और भक्तामृत। पूर्व खण्ड कृष्णामृत में कृष्णावतार का सविस्तार वर्णन है। उत्तर खण्ड भक्तामृत में भक्तों के श्रेणी भेद का प्रतिपादन किया गया है। इस ग्रंथ पर बलदेव विद्याभूषण ने 'सारंग रंगदा' और वृन्दावन तर्कालंकार ने 'रसिक रंगदा' नामक टीकाएँ लिखी हैं। [क०उ०]

× × ×

इस ग्रंथ की एक प्रति बंगाल एशियाटिक सोसाइटी कोलकाता के संस्कृत हस्तलिखित ग्रंथागार में रखी हुई है। स्थानीय कागज से निर्मित इस ग्रंथ का आकार 15×5'' है। इसमें कुल 23 पत्र हैं। प्रत्येक पृष्ठ पर 13 पंक्तियाँ हैं। ग्रंथ की कुल श्लोक संख्या 750 है। बंगाली लिपि में इस ग्रंथ को निमानन्ददेव शर्मण ने शक सं. 1714 में लिपिबद्ध किया है। ग्रंथ के निर्माण का उद्‌देश्य तथा विषय-क्षेत्र भगवान कृष्ण की लीलाएँ हैं। इस तरह इस ग्रंथ का प्रथम भाग श्रीकृष्ण को तथा दूसरा साक्षी रूप से भक्तों को समर्पित है। मूल रूप से यह ग्रंथ भागवतपुराण पर आधारित है लेकिन साथ ही अतिरिक्त रूप से अन्य पुराणों से भी दृष्टांत दिए गए हैं। [सू०या०]

लघुवीठल

श्री लघुवीठल जी का जन्म दिल्ली के गौड़ ब्राह्मण कुल में हुआ। प्रारंभिक अवस्था में ही वैराग्य उत्पन्न होने के कारण ये वृंदावन आ गए। गुरुदेव श्यामखोजी से युगल मंत्र की वैष्णवी दीक्षा लेकर इन्होंने सहचरी भाव की अनन्य उपासना प्रारंभ कर दी। इनकी सेवा से प्रसन्न होकर इन्हें अपना उत्तराधिकारी बना लिया। गुरुदेव के निकुंजवास के पश्चात् लघुवीठल जी गद्‌दी पर सुशोभित हुए और 60 वर्ष वृंदावन में रहे। [कुं०बि०श०]

लपटगोपाल देवाचार्य

श्रीहरिव्यास देवाचार्य जी के प्रधान शिष्यों में 11वें श्री लपटगोपाल देवाचार्य (लफरा गोपाल देवाचार्य) जी

महाराज हैं। हरियाणा के रोहतक जिले में इनका जन्म हुआ। आचार्यश्री स्वभावत: विरक्त भाव से भजनासक्त थे। गुरुदेव ने इन्हें एक आश्रम का भार सौंप दिया। आश्रमादि प्रपंचों में फँसने की इच्छा न होते हुए भी प्रथम तो ये गुरुदेव की आज्ञा के वशीभूत कुछ भी न कह सके किन्तु एक दिन तीर्थयात्रा का बहाना कर सब कुछ त्याग दिया और लौटे नहीं। काफी समय बाद जब ये लौटे नहीं तो गुरुदेव ने इन्हें 'लफरा' कह दिया। अत: इनका नाम लापर या लफरा गोपाल देवाचार्य हो गया। 'भक्तदामगुणचित्रणी' में इस घटना का उल्लेख भी प्राप्त होता है। [कुं०बि०श०]

ललितकिशोरी दास

सखी सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य श्री ललितकिशोरी दास जी श्री रसिकदास जी के शिष्य थे। इनके दो नामों का उल्लेख प्राप्त होता है। इनका दीक्षा पूर्व नाम गंगाराम था तथा गुरु से दीक्षा लेने के बाद का नाम 'ललितकिशोरी' था। इनका जन्म भदावर के हथरात्ति नामक गाँव में हुआ था। यह गाँव चामिल (चम्बल) नदी के किनारे स्थित था। इनका जन्म सं. 1733 में अगहन वदी अष्टमी को हुआ था।

ये 25 वर्ष की उम्र तक परिवार में रहे। तत्पश्चात् विरक्त होकर, जगन्नाथपुरी गए जहाँ उन्होंने प्रसिद्ध भक्त नाभा जी द्वारा लिखित भक्तमाल के स्वामी हरिदास जी से सम्बन्धित छप्पय को सुना। ये स्वामी जी के रस यश के प्रति आकर्षित होकर, वृन्दावन आ गए। यहाँ आकर हरिदासी सम्प्रदाय के तत्कालीन आचार्य रसिकदास जी से दीक्षा ली। सं. 1823 में यहीं इनका निकुंजवास हुआ। ललितकिशोरी दास जी ने सम्प्रदाय में विलुप्त होते हुए विशुद्ध सखी भाव की पुनर्प्रतिष्ठा की। इसके लिए इन्होंने स्वामी हरिदास जी की विरक्त परम्परा की स्वतन्त्र गद्दी 'टही स्थान' या 'टटिया स्थान' की स्थापना की। बाँस की टटियों से घिरा होने के कारण इसे टही स्थान या टटिया स्थान कहा गया। इनका सम्पूर्ण जीवन ही स्वामी जी के रस यश को समर्पित था। इन्होंने स्वामी जी के जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में अष्ट दिवसीय समाज गायन का प्रारम्भ किया। टटिया स्थान में यह परम्परा आज भी प्रचलित है। इन्होंने सम्प्रदाय के पूर्ववर्ती आचार्यों की वाणियों के संग्रह का कार्य भी किया। इसमें उनके शिष्य माधोदास और मनसाराम ने इनका सहयोग किया।

स्वामी हरिदास जी की विशुद्ध सखीभावमयी रस पद्धति को समर्पित इनका व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली था। इनके रसमय व्यक्तित्व का वर्णन 'निजमत सिद्धान्त', ललित-प्रकास' तथा 'आचार्य मंगल' में हुआ है। इन्होंने प्रभूत मात्रा में वाणी रचना की। इनके द्वारा रचित 1236 सखियों तथा 321 पदों का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'वचनिका सिद्धान्त' की रचना की जो ब्रजभाषा गद्य में है। इन्होंने सिद्धान्त सम्बन्धी वाणी में गुरु महिमा, नाम महिमा, परोपकार, सत्संगति की महत्ता, यमुना स्नान, अनन्यता, संसार से विरक्ति आदि अनेक विषयों पर अपने भाव प्रकट किए हैं।

सम्प्रदाय में नित्यबिहार रस की पुन: प्रतिष्ठा करने के कारण ललितकिशोरी दास जी के विषय में कहा गया-

जो न प्रगटती ललितकिसोरी तौ न प्रगटतौ नित्य-बिहार।

समग्रत: कहा जा सकता है कि ललितकिशोरी दास जी सखी सम्प्रदाय में विशेष महत्त्व के अधिकारी हैं।

[म०बि०गो०]

× × ×

श्री ललितकिशोरीदास आचार्य श्री रसिकदास के शिष्यों में से थे। उनका जन्म सं० 1733 में भदावर राज्य के एक ग्राम में हुआ था। वे माथुर ब्राह्मण थे और उनका आरंभिक नाम गंगाराम था। बाल्यावस्था में ही उनके चित्त में वैराग्य उत्पन्न हो

गया था। वे घर-बार छोड़कर सत्संग करते हुए भ्रमण करने लगे। अंत में वृंदावन पहुँचकर श्री रसिकदास जी के शिष्य हो गये। उनका नाम ललितकिशोरी दास रखा गया। वे स्वामी हरिदास जी के आदर्श पर केवल कोपीन, कंथा और करुआ का उपयोग करते हुए अत्यंत विरक्त भाव से वृंदावन में निवास करते थे। रसिकदास जी का देहावसान होने पर वे सं०1758 में उनके उत्तराधिकारी बनाये गये थे।

उनके समय में हरिदासी संप्रदाय के विरक्त संतों और गृहस्थ गोस्वामियों में पारस्परिक विद्वेष पराकाष्ठा पर पहुँच गया था; जिसके कारण लड़ाई-झगड़ा और राजकीय हस्तक्षेप तक की नौवत आ गई थी। इसके फलस्वरूप श्री ललितकिशोरी जी को निधिवन से हटकर यमुना किनारे के एकांत स्थल में जाना पड़ा था। उनके शिष्य, सेवक और भक्तगण भी वहाँ पर ही एकत्र होने लगे। वह स्थान एकदम खुला हुआ और अरक्षित था; इसलिए उसे चारों ओर बाँस की टट्टियों से घेर दिया गया। टट्टियों के उस घेरे में ही वे भक्तगण अपना भजन-ध्यान, सेवा-पूजा और उत्सवादि करने लगे। कालांतर में वह स्थान 'टट्टी संस्थान' के नाम से प्रसिद्ध हुआ और वृंदावन में हरिदासी संप्रदाय का प्रधान केन्द्र बन गया।

ललितकिशोरी जी की वाणी प्रचुर परिमाण में उपलब्ध है; जो बिहारिनदास जी के बाद अष्टाचार्यों में सबसे अधिक है। उसकी रचना अधिकतर दोहा छंद में हुई है; किंतु स्थान-स्थान पर सोरठा, चौपाई, अरिल्ल आदि छंद तथा पद भी मिलते हैं। उनकी वाणी में हरिदासी संप्रदाय की भक्ति, उपासना और वैराग्य भावना का सीधी-सादी भाषा में कथन हुआ है। उनका देहावसान सं०1823 में हुआ था। श्री ललितकिशोरीदास जी की रचना का एक उदाहरण—

साधन सिद्ध भयौ मन प्रेम। छूटि गयौ सब देही नेम॥
श्रुति स्मृति सकल पुराना। संत समागम इही प्रमाना॥
अनभै करि हरि कों पहिचाना। नाना संसै भरम भुलाना॥
एक बेर स्वामी गुन गाय। आवागमन भरम नसि जाय॥
गौर स्याम के सुखै समाइ। श्री ललितकिशोरी यों समुझाइ॥

[वि०कृ०भ०]

ललितभानुदेव

श्री ललित भानुदेव जी मूल रूप से बीजापुर के द्रविड़ ब्राह्मण थे। इनके पिता श्री नृसिंहाचार्य जी दक्षिण से आकर अयोध्या में बस गए थे। पिताजी के देहावसान के पश्चात माताजी की प्रेरणा से ललितभानुदेव जी वृंदावन चले आए और श्री मुकुंददेव जी से वैष्णवी दीक्षा ग्रहण की। ये निधिवन में निवास करते थे, उसी समय यहाँ के दिव्य रंगमहल में श्री रसिकबिहारी जी का प्राकट्य हुआ। एक बार गुजरात के कृपाराम नामक ब्राह्मण ने इनसे दीक्षा लेकर स्वयं को गुरुदेव के चरणों में समर्पित कर दिया। कुछ दिनों बाद वह श्री रसिकबिहारी जी के आदेशानुसार गिरनार (गुजरात) चला गया। जहाँ के राजा-रानी उसके शिष्य बन गए। उन्होंने वृंदावन आकर श्री ललितभानुदेव जी के दर्शन किए और ठा. श्री रसिकबिहारी जी को खूब सेवा समर्पित की। आचार्य जी 80 वर्षों तक श्री मुकुंददेवाचार्य जी के उत्तराधिकार में विराजे।

[कुं०बि०श०]

ललित माधव नाटक

ललित माधव नाटक रूप गोस्वामी द्वारा रचित है। इस नाटक की रचना शक सम्वत् 1459 ज्येष्ठ मास की चतुर्थी, रविवार के दिन हुई थी। यह नाटक भगवान श्रीकृष्ण की कादाचित्की लीला पर आधारित है। यह सर्वांगपूर्ण नाटक है। श्रीकृष्ण की द्वारका लीला को आधार बनाते हुए 10 अंकों में इसकी रचनी की गई है। इसमें कृष्ण की चन्द्रावली राधा

आदि नायिकाओं से प्रणयात्मक क्रीड़ाओं की कथा तथा कृष्ण-विरह का वर्णन किया गया है। ललित माधव की रचना कवि ने अपने अलंकार ग्रंथ 'नाटक चंद्रिका' के अनुरूप, रूपक के सन्धि, संध्यङ्ग, संध्यन्तर, नाटक-लक्षण आदि के उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए की है। [क०उ०]

ललितमाधुरी (गौड़ीय सम्प्रदाय)

ललितमाधुरी जी का गृहनाम शाह फुन्दनलाल था। इनका जन्म लखनऊ में सं. 1885 वि. मिती माघ शुक्ला 14 के दिन हुआ था। ये अपने अग्रज ललितकिशोरी जी के सदैव अनुगामी रहे। बचपन में ललितकिशोरी जी के साथ इन्होंने भी फारसी के साथ-साथ बंगला, हिन्दी, गुजराती तथा पंजाबी भाषा का अध्ययन किया। ललितमाधुरी जी भी ललितकिशोरी जी के साथ सं. 1913 में वृन्दावन आ गए थे। ये उनके साथ ही ललित निकुंज में निवास करते थे।

अपने अग्रज के समान ललितमाधुरी जी की भी रासलीला में अनन्य निष्ठा थी। रास के स्वरूपों को शिक्षा देना, उनका श्रृंगार करना, रासमंच के लिए आवश्यक सामग्री जुटाना आदि सभी कार्यों में ये ललितकिशोरी जी की सहायता करते थे। पक्षाघात हो जाने के पश्चात् भी पेड़ की डालियों में हाथ फैलाकर खड़े रहकर ही वे रासलीला का आनन्द लेते थे।

ललितमाधुरी जी नि:संतान थे अत: ललितकिशोरी जी के पुत्र उनके भी सर्वस्व थे। ललितकिशोरी जी और ललितमाधुरी जी के चित्र ललित निकुंज में फर्श पर उत्कीर्ण किए गए हैं। इसके पीछे दोनों भाइयों की यही आकांक्षा थी कि जो रसिक-जन वृन्दावन धाम आएँ उनकी चरणधूलि प्राप्त कर वे भी पवित्र हो सकें।

ललितमाधुरी जी के द्वारा रचित पद भक्ति, वैराग्य, विनय, प्रिया-प्रियतम के लीला वर्णन आदि से आपूरित हैं। उन्होंने ललितकिशोरी जी के लीलालय होने के पश्चात् उनके पदादि कोश का समुच्चय करके पुस्तक रूप में लिखवाया। कहा जाता है कि ललितकिशोरी जी के लीलालीन होने के पश्चात उन्होंने जो भी पद रचना की, उनमें ललित माधुरी छाप न रखकर ललितकिशोरी छाप रखी। ललितमाधुरी जी ने किसी स्वतंत्र ग्रंथ की रचना नहीं की। ललितकिशोरी जी के ग्रंथों में उनकी भी रचनाएँ संग्रहीत हैं। ललित माधुरी जी का निकुंजवास सं. 1942 की ज्येष्ठ शुक्ला 5 को हुआ। उनकी समाधि भी उनकी इच्छानुसार ललितकिशोरी जी की समाधि के निकट ही बनायी गयी। ललितमाधुरी जी जीवन-भर अपने अग्रज के अनुगामी रहे तो निकुंज गमन के पश्चात् भी उनसे अलग कैसे रह सकते थे। [म०बि०गो०]

ललितमोहिनी दास

श्री ललितमोहिनीदास प्रसिद्ध भक्त हरिराम जी व्यास के वंशज कहे जाते हैं। उनका जन्म ओरछा में सं०1780 में हुआ था। जब वे विरक्त होकर वृंदावन में आये, तब श्री ललितकिशोरी जी के शिष्य हुए थे। वे बड़े ही गुरु-भक्त तथा सेवा-परायण संत थे। साथ ही परम भक्त और अनन्य रसिक भी थे। श्री ललितकिशोरीदास जी के अनंतर उन्हें सं० 1823 में उनका उत्तराधिकारी बनाया गया था। उनके गुरु के समय में जो 'टट्टी संस्थान' बना था, उसकी समुचित व्यवस्था और उन्नति का श्रेय उनको ही है। इसीलिए इसे 'मोहिनीदास की टट्टी' भी कहते हैं। उन्होंने श्री राधिकाबिहारीजी के स्वरूप की प्रतिष्ठा कर उनकी सेवा-पूजा का भी समुचित प्रबंध किया था। वे हरिदासी संप्रदाय की विरक्त परंपरा के अंतर्गत 'टट्टी संस्थान' के प्रथम महंत थे। उन्होंने परंपरागत तिलक में कुछ परिवर्तन कर उसे अर्ध नासिका से बढ़ाकर संपूर्ण नासिका तक कर दिया था। इसके अतिरिक्त अपनी संप्रदाय के चिह्नस्वरूप कुछ अन्य विशिष्टताएँ भी निश्चित कीं; जिनके कारण इसका पृथक् महत्त्व स्थापित हो गया। उनके समय में 'टट्टी संस्थान' की विशेष उन्नति हुई और उसकी ख्याति भी बहुत बढ़ गई। बड़े-बड़े राजा और सेठ-साहूकार उनके दर्शन तथा सत्संग के लिए लालायित रहते थे। कहते हैं, पंजाब केसरी रणजीत सिंह और मराठा वीर महादजी सिंधिया भी उनके भक्तों में थे। उनका देहावसान सं०1858 में हुआ था। वे अष्टाचार्यों में अंतिम माने जाते हैं। उनकी वाणी

अष्टाचार्यों की वाणी के साथ संकलित है। उनके शिष्यों में श्री भगवतरसिक प्रसिद्ध वाणीकार हुए हैं।

श्री ललितमोहिनीदास जी के पद का एक उदाहरण—

बिहारी! तेरे नैना रूप भरे।
निरखि-निरखि प्यारी राधे कों, अनत न कहूँ टरे॥
सुख कौं सार समूह किसोरी, उमँगि-उमँगि अंकौ भरे।
श्री ललितमोहिनी की निज जीवनि, उर सों उरज अरे॥

[गो०श०श०]

लाल गिरधर

श्री लाल गिरधर जी का जन्म वि.सं. 1688 वैशाख शुक्ल सप्तमी को हुआ था। इनके पिता का नाम श्रीनाथ था। ये वल्लभ गद्दी के सेवायत गुसाईं थे। ये सीधी प्रकृति के सत्यनिष्ठ विरक्त महानुभाव थे। इनके समय में ही जतीपुरा में यवनों ने बड़ा उपद्रव किया था। परन्तु युद्ध में आपका कतई विश्वास नहीं था अत: उसे आपने सीधेपन से ही निबटा दिया। ये सरस कवि थे। आपने बहुत ही सुन्दर पदों की रचना की थी। वि.सं. 1723 में इनका गोलोक गमन हो गया था।

[जि०कु०]

लालदास

लालदास जी चरणदास जी के शिष्य थे। इनके विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। चरणदासी सम्प्रदाय के प्रमुख ग्रंथ 'लीलासागर' में चार संतों के नाम एक साथ लिये गये हैं वे हैं-लालदास, हरिदास, मुरली मनोहर, मुरलीबिहारी। इन चारों संतों को ग्रंथ में सर्वगुण सम्पन्न, परमप्रेमी तथा भजनानंदी बताया गया है। कुछ अन्य सूत्रों से पता चलता है कि ये मूलत: लखनऊ के रहने वाले थे। इन्होंने हाथरस के ठठेरों के मुहल्ले में अपनी गद्दी स्थापित की और अपना कार्यक्षेत्र हाथरस रखा। यहीं पर इनकी छतरी और पादुका बनी हुई है। संभवत: इनकी मृत्यु यहीं पर हुई होगी। [क०उ०]

लिंगपुराण

लिंगपुराण दो भागों में विभक्त है, इसके पूर्वार्ध में 108 अध्याय हैं तथा उत्तरार्ध में 55 अध्याय हैं। लिंगपुराण के कुल 163 अध्यायों में शिव महिमा एवं शिवभक्ति का साकार रूप में साक्षात्कार होता है। अष्टादश पुराणों में यह ग्यारहवाँ पुराण है। ब्रह्मा जी ने ईशान कल्प की कथा के अनुसार इस लिंगपुराण की रचना की है। इसमें ग्यारह हजार श्लोक हैं।

चंद्रवंश में ययाति, यदु आदि के वर्णनोपरान्त 68वें अध्याय में श्रीकृष्ण चरित्र का संक्षेप में वर्णन है। यहाँ भी कृष्ण को महारानी जाम्बवन्ती से शिवाराधन के फलस्वरूप पुत्र साम्ब की प्राप्ति का विशेष उल्लेख है। इस पुराण में भगवान विष्णु के वाराह अवतार की कथा वर्णित है। इसके साथ ही प्रहलाद उपाख्यान का भी वर्णन है। लिंगपुराण के उत्तरार्ध में नारायण महिमा का वर्णन प्राप्त होता है।

लिंगपुराण में ब्रह्माजी ने अष्टाक्षर (ॐ नमो नारायणाय) एवं द्वादशाक्षर (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) दोनों मंत्रों की महिमा श्रीवशिष्ठ जी से कही है। लिंगपुराण की फलश्रुति में कहा गया है कि इस पुराण के सुनाने तथा सुनने वाले को परागति प्राप्त होती है। [क०उ०]

व

वंशीअलि

भक्त प्रवर श्री वंशीअलि जी, ललित संप्रदाय के प्रवर्तक एवं श्री कृष्णरस के रसिक थे। श्रीललित संप्रदाय में वंशीअलि जी ने श्रीराधाकृष्ण की परम अंतरंगा एवं मुख्य सखी श्रीललिता जी की उपासना को सर्वश्रेष्ठ रूप में प्रतिपादित किया है।

श्रीवंशीअलि जी के पूर्व पुरुष श्री मिश्रनारायण थे। इनका वंश 'नवला वंश' के नाम से प्रसिद्ध रहा है। मिश्रनारायण जी भागवत के अनूठे वक्ता और परम विद्वान थे। उनके संबंध में श्री नाभादास जी ने अपनी 'भक्तमाल' में निम्नलिखित छप्पय लिखा है-

मिश्र नारायण नाम वंश नवला जो उजागर।
भागवत की अति भीर, भक्ति दशधा कौ आगर।
आगम निगम पुराण शास्त्र सबही करि देखे।
सुर गुर शुक सनकादि, व्यास नारद जु विसेखे।
सुधा बोध रस सुनधुनी, जस वितान जग में तन्यौ।
भागौत भलीविधि कथन कों, धनि जननी एके जन्यौ।

श्री मिश्रनारायण जी के वंश में नवीं पीढ़ी पर श्रीवंशीधर जी उत्पन्न हुए जिनका उपासना संबंधी नाम वंशीअलि था। श्रीवंशीअलि जी का जन्म वृंदावन में अश्विन शुक्ला 01 संवत 1764 को हुआ। उस समय दिल्ली में औरंगजेब का बड़ा पुत्र बहादुरशाह राज्य करता था। बचपन से ही वंशीधर जी के चमत्कार देखने में आने लगे। श्रीराधा नाम में उनकी रुचि बचपन से ही थी। शिक्षा-दीक्षा में भी वे बड़े ही तेज थे। श्रीमद्भागवत के अध्ययन में इन्हें विशेष आनंद मिलता था।

तर्कशास्त्र के वे अद्वितीय विद्वान थे तथा दस वर्ष की अवस्था में ही श्रीमद्भागवत के एक-एक श्लोक के कई-कई अर्थ करते थे। किशोरी अलि ने लिखा है कि वे एक-एक श्लोक के सौ-सौ तक अर्थ करते थे और उन्हें देखकर बड़े-बड़े पंडित भी चकित रह जाते थे।

पन्द्रह वर्ष की अवस्था में गोस्वामी जी का विवाह हुआ और बीस वर्ष की आयु में इनके पुत्र पुंडरीकाक्ष का जन्म हुआ। अपने पूर्वजों के मन्दिर और संपत्ति की देखभाल ये स्वयं करते थे परन्तु जो कुछ आय होती थी, उसे राधाजन्मोत्सव पर खर्च कर दिया करते थे। श्रीमद्भागवत की कथा वे प्रेमविह्वल होकर कहते थे। उनके जीवन में वैराग्य क्रमशः बढ़ता जा रहा था। 30 वर्ष की अवस्था में वे वृंदावन आ गये और वहीं रहने लगे। चार वर्ष पश्चात् वे विरक्त हो गए और सखीभाव के उपासक के रूप में प्रसिद्ध हुए। संवत 1822 में 58 वर्ष की अवस्था में आश्विन शुक्ल 01 को श्रीवृंदावन में गोविंद घाट पर स्थित ललितकुंज में वे निकुंजवासी हुए।

राधाचरण गोस्वामी ने अपने छप्पय में इनके द्वारा 12 वर्ष तक बरसाने में रहकर तप किए जाने और श्रीकिशोरी व

उनके दर्शन करने का उल्लेख किया है। ब्रज के भक्त महात्माओं में भी इनके जीवन की उक्त किंवदन्ती के रूप में प्रचलित है कि इन्होंने बरसाने में बारह वर्ष तक पीलीपोखर के निकटस्थ एक घूरे पर बैठकर श्रीराधा जी की घोर तपस्या की थी। वहीं पर श्रीकिशोरी जी ने प्रसन्न होकर उन्हें साक्षात दर्शन दिए। जुगल किशोर गोस्वामी के अनुसार यह घटना इस प्रकार है-

श्रीवंशीअलि जी एक बार बरसाने में श्रीकिशोरी जी का ध्यान कर रहे थे। तभी उन्होंने आकर उन्हें दर्शन दिया और पहाड़ पर बुलाकर ले गई। उस समय पहाड़ पर स्थित 'श्रीजी' के मंदिर में चिन्तामणि नामक पुजारी सेवा में थे। श्रीवंशीअलि को भाव में विभोर मंदिर में जाते हुए देखकर चिन्तामणि को क्रोध आ गया। यह सोचकर कि यह धृष्ट साधु 'श्रीजी' के मंदिर में प्रवेश करने का दुस्साहस कर रहा है। पुजारी ने उन्हें वर्जित किया परन्तु वंशीअलि जी को तो श्रीकिशोरी जी ने अपने पीछे-पीछे बुलाया था। अतः पुजारी की बात न सुन सके। पुजारी ने एक खड़ाऊँ उठाकर उनके सिर पर मार दी परिणामस्वरूप रक्त बह चला। श्रीवंशीअलि ने कहा-'तुमने मेरे भाग्य का कलंक धो दिया है, तुम आज से मेरे पुरोहित हो।' इसके पश्चात् उन्होंने पुजारी को अपना पुरोहित बना लिया। अद्यावधि श्रीवंशीअलि के कुल के पुरोहित बरसाने के उन्हीं पुजारी के वंशज चले आ रहे हैं।

महात्मा वंशीअलि एक ऐसे पिता के पुत्र थे जिनकी कीर्ति दिगन्त तक व्याप्त थी। वे रूप गुण सम्पन्न, सौम्य, सहृदय, स्निग्धवासी और अतिशय उदार महात्मा थे। उनका व्यक्तित्व हठात् सबकी दृष्टि को आकर्षित करने वाला था। इनके साथ ही उनमें अगाध पाण्डित्य, वाणी की सिद्धता, विलक्षण विदग्धता, रसज्ञता आदि श्रेष्ठ गुण पूर्ण रूप से विकसित थे। उन सब गुणों से महत्वपूर्ण बात यह थी कि वे एक निस्पृही भक्त थे। श्रीराधा के चरणों में उनकी अनन्य प्रीति थी और उन्होंने निज को श्रीराधा के चरणों में पूर्णतया अर्पित कर दिया। घर गृहस्थ की ओर से उनका चित्त सर्वथा विरक्त था। श्रीराधा की भक्ति के आगे वे लोक और वेद के नियमों को नहीं मानते थे।

श्रीवंशीअलि रचित साहित्य-संस्कृत ग्रंथ श्रीमाधुर्य शतकम् (वाणी में संग्रहीत), श्रीकीर्तिवृषभानु स्तोत्रम् (वाणी में संग्रहीत), श्री ललितास्तोत्रम् (वाणी में संग्रहीत), श्रीवृषभानुपुराष्टकम् (वाणी में संग्रहीत) श्री अष्टपदी (वाणी में संग्रहीत), श्री राधासिद्धान्त (वाणी में संग्रहीत), श्रीराधातत्व प्रकाश (वाणी में संग्रहीत), श्री राधा स्तोत्रम् (वाणी में संग्रहीत), श्री राधा सिद्धान्त की टीका (वाणी में संग्रहीत), श्री रास पंचाध्यायी की टीका (अप्राप्त), मोक्षवाद (अप्राप्त) भेदाभेदवाद (अप्राप्त), शक्ति स्वातंत्र्यवाद (अप्राप्त), शक्ति स्वातंत्र्यप्रदीप (अप्राप्त), राधालेश (अप्राप्त), राधोपनिषत् की टीका (अप्राप्त)।

हिन्दी ग्रंथ-ललिता मंगल (वाणी में संग्रहीत), वृन्दावन मंगल (वाणी में संग्रहीत), हृदय सर्वस्व (वाणी में संग्रहीत), सिद्धान्त के पद (वाणी में संग्रहीत), वात्सल्य के पद (वाणी में संग्रहीत), माधुर्य शत् (वाणी में संग्रहीत), वर्षोत्सव के पद (वाणी में संग्रहीत), माँझ (वाणी में संग्रहीत)।

ललित सम्प्रदाय के अन्तर्गत राधा के रूप में ब्रज की ही प्रतिष्ठा की गई है। समस्त प्राणी मात्र इन्हीं ब्रजस्वरूप श्रीराधा के पूर्णाश्रित रहते हैं। ये ही राधा जहाँ एक ओर प्रेमी भक्तों के सर्वदा वश में रहती हैं, वहीं दूसरी ओर भक्तों के लिए ही लीलाएँ करते हुए अपने अनुयायी भक्त शिरोमणि श्रीकृष्ण के साथ समत्व भावनायुक्त होकर रमणरत हो जाती हैं। इस प्रकार वंशीअलि ने अत्यंत मौलिक रूप में अपने संप्रदाय में, श्रीराधा की महत्ता को महानतम रूप में प्रतिपादित किया है। स्वयं श्रीकृष्ण भी यहाँ राधा के भक्त के रूप में ही दृष्टिगोचर हुए हैं। रासलीलान्तर्गत भी श्रीकृष्ण के स्थान पर रासेश्वरी श्रीराधा की ही प्रतिष्ठा सर्वोच्च रूप में परिलक्षित है। ललित संप्रदाय की मान्यता में राधा से प्रीति करने वाले रसिकों का, श्रीराधाकुंड, बरसाना (राधावन) तथा रावलवन आदि में निवास करना परम सिद्धि प्रदाता है। संप्रदाय प्रवर्तक श्रीवंशीअलि ने वृन्दावन को ललितासखी का प्रकट रूप स्वीकार करते हुए कहा है कि यहाँ की समस्त लीलाएँ ललिता जी की गोद में ही सम्पन्न होती हैं। [रं०]

वंशीदास

गोस्वामी वंशीदास जी श्री मदनमोहन जी के सेवायत गोस्वामी चन्द्रदास जी के शिष्य थे। चन्द्रदास जी ने मदनमोहन जी की सेवा का भार इन्हीं पर सौंप दिया था। यह मदनमोहन जी के तृतीय अधिकारी बने। यह भी बंगाल प्रान्त के थे। जैसा कि सनातन गोस्वामी जी ने अपने शिष्य गोस्वामी कृष्णदास जी से कहा था कि मेरी गद्दी का अधिकारी केवल बंग प्रान्त का ही होना चाहिये। गोस्वामी वंशीदास जी श्री मदनमोहन जी की सेवा बड़े प्रेम और परिश्रम से करते थे। [जि०कु०]

वंशीधर देव

श्रीराधासर्वेश्वर प्रभु की निकुंज लीलाओं के प्रेमी भ्रमर श्री वंशीधर देव जी की नित्य निवासस्थली श्रीवंशीवट थी। भगवान की दिव्य रासलीला का आस्वादन करते हुए आपने यहाँ 35 वर्षों तक निवास किया। [कुं०बि०श०]

वनचंद जी

श्रीहित हरिवंश महाप्रभु जी के बड़े पुत्र श्री वनचंद जी थे। राधावल्लभ जी के पाटोत्सव वाले दिन कार्तिक सुदी 13 चंद्रवार को वनचंद जी को हिताचार्य जी की गादी पर विराजमान किया गया। गादी पर बैठने से ही आपका नाम वनमाली दास जी हुआ। पहले इनका नाम वनचंद जी था। इन्होंने राधावल्लभीय धर्म का प्रचार देश-देशान्तर तक किया तथा श्रीहित दंपति विलास नामक ग्रंथ बनाया। उस ग्रंथ को सब ने श्रीहित महाप्रभु जी की वाणी से भी श्रेष्ठ बताया। यह सुनकर वनचंद जी ने उसे श्री यमुना जी में पधरा दिया फिर इन्होंने फुटकर पद तो भेंट किये पर किसी ग्रंथ की रचना नहीं की। इनके चार पुत्र थे। सबसे बड़े श्री सुंदरवर जी, दूसरे श्री राधावल्लभदास जी, तीसरे नागरवर जी, चौथे श्री ब्रजभूषण जी। इन चारों पुत्रों को राधावल्लभ जी की सेवा बाँटकर ये श्री चरणों में लीन हुये। इनके शिष्यों में मुख्य नाम चतुर्भुज दास जी, भुवन नागरीदास जी, झूंठा स्वामी जी, भागमती जी, कल्याण पुजारी जी, माधो मुकुन्द जी, सूरध्वज, माधो रसिक जू, जयदेव जी, कल्याणी बाई, भगवानदास जी, सोमनाथ भट्ट (दक्षिणी) इनमें से सभी गृहस्थ थे केवल झूंठा स्वामी जी तथा चतुर्भुजदास जी ने ही वैराग्य लिया था। [प्र०श०]

वरुण

वरुण खगोलशास्त्रीय वर्णन वैदिक देव से मिलते-जुलते हैं। देवताओं के तीन वर्गों (पृथ्वी, वायु, आकाश) में वरुण का स्थान सर्वोच्च है। वरुण ऋतु संरक्षक हैं अत: इनका एक नाम 'ऋतस्यगोप' भी है। हिन्दू धर्म के प्राचीनतम, उच्चतम व उदात्ततम देव वरुण को वेदों में धर्माधिपति, प्राकृतिक नियमों का अटल संरक्षक और नैतिक शक्तियों का महान पोषक माना गया है। ऋग्वेद में वरुण को वायु की श्वास कहा गया है। देवलोक में सितारों का मार्ग निर्धारित करने वाले वरुण सत्य (ऋत), पुण्य और भलाई के देवता हैं। वरुण पश्चिम दिशा के लोकपाल और जलाधिपति हैं। वरुण के पास 'माया' नामक एक दिव्य शक्ति और दिव्य अस्त्र 'पाश' है जिसके द्वारा वह धर्म की रक्षा और पापियों को दंडित करते हैं। मान्यता है कि 'जलोदर रोग' वरुण के कोप के कारण होता है। वरुण सम्पूर्ण सम्राटों के सम्राट हैं। सर्वप्रथम समस्त सुरासरों को जीत कर राजसूय यज्ञ जलाधीश वरुण ने ही किया था। पश्चिम समुद्र गर्भ में इनकी रत्नपुरी विभावरी है। वरुण के दक्षिण भाग में पुत्र पुष्कर का निवास है। प्राचीन काल से ही अनावृष्टि के समय भगवान वरुण की उपासना होती रही है।

काल-क्रमानुसार विश्लेषण से ज्ञात होता है कि पूर्व वैदिककाल में वरुण का स्थान अधिक महत्त्वपूर्ण था। इस युग में चूँकि वरुण की प्रकृति अमूर्त थी, इसीलिए उन्हें किसी प्राकृतिक उपादान के वाचक भी नहीं माना गया था और वरुण

की उपासना अमूर्त तत्त्वों यथा धर्म, नैतिकता, सत्य, सामाजिक नियम आदि के लिए की जाती थी। अग्नि व इंद्र की अपेक्षा वरुण को संबोधित सूक्तों की मात्रा का कम होना इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि कालांतर में वरुण का स्थान इंद्र ने ले लिया था, तथापि शून्याकाश के देवता वरुण का माहात्म्य कम नहीं हुआ। आगे चलकर वरुण मूर्त प्रकृति से जुड़े और समुद्र व जल देवता के रूप में स्तुत्य हुए। विश्व के त्रिकालदर्शी शासक और अनुशासक के रूप में वरुण की कल्पना की गयी। मानव पाप-शांति के लिए उनसे प्रार्थना करने लगे और ऋषियों ने वरुण के प्रति कुछ अतिशय रसार्द्र स्तवन किए। हालांकि विश्व व्यवस्था, सृष्टि व्यवस्था, समाज व्यवस्था, नैतिकता आदि पक्ष अभी भी वरुण में समाहित थे। वरुण की देव समूह से श्रेष्ठता सिद्ध करने के उन्हें 'असुर' की उपाधि दी गयी। इतिहासकारों का मत है कि लघु एशिया (तुर्की) के राजाओं के उपास्य, पारसी 'अहुरमज्द' और यूनानी 'यूरेनस' यही असुर वरुण है।

वरुण की स्तुति लगभग 30 वैदिक सूक्तों में अलग-अलग प्रकार से की गयी है, कहीं पर उन्हें सर्वेश और सर्वसाक्षी कहा है तो कहीं पर वरुण से पापों के लिए क्षमा- प्रार्थना की गई है। अनेक सूक्तों में वरुण का आह्वान इंद्र के साथ किया गया है। ऋग्वेद का सातवाँ मंडल तो पूर्णत: वरुण को समर्पित है, जिसके प्रत्येक श्लोक में भक्तिभाव की पराकाष्ठा है। ऋग्वेद में ही मित्र और वरुण का उल्लेख 'मित्र-वरुण' के रूप में मिलता है। सहस्र स्तम्भों वाले भवन में निवास करने वाले 'मित्र-वरुण' के अतिरिक्त 'आप' अर्थात् 'जल' का भी वर्णन वैदिक सूक्तों में है।

विशेष-धातुत: असुर शब्द का सम्बन्ध 'अस्' धातु से बना है, जिसका अर्थ होता है 'चमकना' इसी आधार पर असुर शब्द का प्राचीनतम अर्थ 'सूर्य' था, आगे चलकर असुर शब्द देववाची हुआ। ऋग्वेद में आता है-'स्वस्ति पूषा असुरो दधातु न: ध्वन्यांतर' से यही शब्द 'अहुर' (अहुरमज्द) के रूप में देव या ईश्वरवाची था। जब आर्यों और पारसियों में विरोध हुआ तो उनके देववाची शब्द को हमने पदच्युत कर राक्षसवाची करार दिया तथा 'अ' हटाकर 'सुर' शब्द को देववाची बनाया। [उ०श्री०]

वल्लभ सम्प्रदाय की प्रमुख गद्दियाँ

पुष्टि सम्प्रदाय के संस्थापक वल्लभाचार्य जी को विभिन्न स्थानों में भगवान श्रीकृष्ण के अनेक स्वरूप एवं श्री विग्रह प्राप्त हुए थे, इन विग्रहों की सेवा उन्होंने अपने कई शिष्यों को सौंप दी थी। वल्लभाचार्य जी ने बाद में अडैल (इलाहबाद) में अपना निवास स्थान बनाया था। उनके निकुंजगमन के पश्चात्, उनके पुत्र श्री विट्ठल नाथ जी सभी सेव्य विग्रहों सहित गोकुल आ गये, उनके जीवन काल में इन श्री विग्रहों की सेवा गोकुल में ही चलती रही।

वि०सं० 1638 में विट्ठलनाथ जी ने इन सेव्य विग्रहों की सेवा का बँटवारा अपने पुत्रों में किया। इस प्रकार उनके प्रत्येक पुत्र की वंश परम्परा से एक गृह की परम्परा का प्रचलन हुआ। इस प्रकार सात पुत्रों से सप्त गृह की परम्परा प्रारम्भ हुई। इन गृहों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

प्रथम गृह- इस गृह के अन्तर्गत तीन सेव्य श्री विग्रह आती हैं। इन सेव्य विग्रहों में प्रथम श्री नाथ जी, द्वितीय नवनीतप्रिया जी एवं तृतीय मथुरेश जी हैं। श्री नाथ जी एवं नवनीतप्रिया जी के सेव्य विग्रह पर विट्ठलनाथ जी के सभी पुत्रों का समान अधिकार माना गया है। गिरधर जी ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण इन दोनों विग्रहों की सेवा का अधिकार प्राप्त हुआ। मथुरेश जी का श्री विग्रह इन्हें व्यक्तिगत सेवा हेतु प्राप्त हुआ। इस प्रकार इनकी गृह परम्परा चली।

1. श्रीनाथ जी- इस श्री विग्रह का प्राकट्य गोवर्धन में गिर्राज पहाड़ी से हुआ। वल्लभाचार्य जी ने वहीं श्रीनाथ जी का मंदिर बनवाकर उनकी सेवा प्रारम्भ कर दी। वर्तमान समय में यह विग्रह नाथद्वारा में विराजमान है। दूसरी चरण चौकी मथुरा के 'सतघरा' में स्थित है। जहाँ श्रीनाथ जी वि०सं० 1623 को जतीपुरा से पधारे थे और लगभग 40 दिन तक यहीं विराजे।

2. श्री नवनीत प्रिया जी-श्री नवनीत प्रिया जी का विग्रह महावन की एक क्षत्राणी को ब्रह्मांड घाट पर यमुना नदी

से प्राप्त हुआ था। उस महिला ने इनके श्री विग्रह को वल्लभाचार्य जी को प्रदान कर दिया था। आचार्य जी ने श्री विग्रह की सेवा हेतु अपने शिष्य को सौंप दिया था। कुछ समय पश्चात् वल्लभाचार्य जी ने इस श्री विग्रह को वापस ले लिया और 'अडैल' ले गये। विट्ठलनाथ जी के बँटवारे के समय इनकी सेवा का भार विट्ठल जी के ज्येष्ठ पुत्र गिरिधर जी को सौंपा गया। वर्तमान में यह श्री विग्रह नाथद्वारा के बाद में विराजमान हैं।

द्वितीय गृह-द्वितीय गृह के अन्तर्गत श्री विट्ठलनाथ का सेव्य श्री विग्रह आता है। इस श्री विग्रह की सेवा विट्ठलनाथ जी के द्वितीय पुत्र गोविन्दराय जी को प्राप्त हुई। इस प्रकार इसे द्वितीय गृह के नाम से जाना जाता है। वर्तमान समय में यह विग्रह नाथद्वारा में विराजमान है।

तृतीय गृह-इस गृह के अन्तर्गत श्री द्वारका नाथ जी का सेव्य विग्रह आता है। इस श्री विग्रह को कन्नौज के नारायणदास नामक एक दर्जी ने वल्लभाचार्य जी को प्रदान किया था। आचार्य जी ने इस विग्रह की सेवा अपने शिष्य को सौंप दी थी। 'अडैल' जाने से पूर्व उन्होंने इस विग्रह को वापस ले लिया था। विट्ठलनाथ जी के बँटवारे के समय इस श्री विग्रह की सेवा उनके तृतीय पुत्र श्री बालकृष्ण जी को प्राप्त हुई। वर्तमान में यह स्वरूप मेवाड़ के कांकरौली में विराजमान है।

गोकुलनाथजी (गोकुल, चतुर्थ गृह)-आचार्य गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के सात पुत्र हुए थे जब घरेलू बँटवारा हुआ तो गोकुलनाथ जी ने इस सेव्य स्वरूप की सेवा चतुर्थ पुत्र गोकुलनाथ जी को प्रदान की थी। आरंभ में इस स्वरूप की सेवा श्रीबल्लभाचार्य जी की ससुराल में होती थी। वहाँ से इन्हें आचार्य जी ने प्राप्त किया और इसकी सेवा अपने चतुर्थ पुत्र गोकुलनाथ जी को दी थी। इस समय चतुर्थ गृह की गद्दी के अन्तर्गत गोकुल के मंदिर में यह विराजमान है और ये गोकुल में चतुर्थ गद्दी के रूप में जानी जाती है।

पंचम गृह- इस गद्दी का सेव्य विग्रह श्री गोकुल चन्द्रमा जी है। यह श्री विग्रह महावन को एक क्षत्राणी को ब्रह्माण्ड घाट पर यमुना नदी में प्राप्त हुआ था। उन्होंने इस विग्रह को आचार्य जी को प्रदान किया था और आचार्य जी ने गोकुल चन्द्रमा जी के विग्रह की सेवा का भार अपने शिष्य श्री नारायण दास ब्रह्मचारी को सौंप दिया था। बाद में ये विट्ठलनाथ जी को प्राप्त हुए और विट्ठलनाथ जी इन्हें गोकुल में ले आये। बँटवारे के समय विग्रह की सेवा गुंसाई जी के पंचम पुत्र श्री रघुनाथ जी को प्राप्त हुई। वर्तमान समय में यह गद्दी कामवन में विराजमान है। इस गद्दी की सेवा-पूजा श्री रघुनाथ जी के वंशजों के द्वारा की जा रही है।

बालकृष्ण जी (षष्ठम गृह सूरत)-जैसा कि विदित है घरेलू बँटवारा जब हुआ था तब गोस्वामी बिट्ठलनाथ जी ने अपने छठे पुत्र यदुनाथ जी को बालकृष्ण जी का स्वरूप प्रदान किया था। बालकृष्ण जी का स्वरूप बहुत छोटा होने के कारण यदुनाथ जी को इससे संतुष्टि नहीं मिली। यदुनाथ जी ने बालकृष्ण जी का स्वरूप तृतीय गृह के द्वारकानाथ जी की गोद में पधरा दिया। तृतीय गृह की गद्दी की सेवा बालकृष्ण जी को प्राप्त हो गई। अत: तृतीय गृह में दो स्वरूपों की सेवा (द्वारकानाथ एवं बालकृष्ण जी) की सेवा प्राप्त हो गई।

सप्तम गृह- इस गद्दी के सेव्य श्री विग्रह श्री मदनमोहन जी हैं। गुंसाई जी के बँटवारे के समय इस गद्दी की सेवा उनके सप्तम पुत्र श्री घनश्याम जी को प्राप्त हुई। मुगल सम्राट औरंगजेब के अत्याचार के कारण श्री मदनमोहन जी और श्री गोकुल चन्द्रमा जी को जयपुर ले जाया गया, उसके पश्चात् जयपुर से बीकानेर में विराजित किया कुछ समय पश्चात् इन दोनों श्री विग्रहों को पुन: कामवन में विराजित किया, तब से कामवन में ही विराजमान हैं। वर्तमान में श्री मदनमोहन की सेवा-पूजा श्री घनश्याम जी के वंशजों द्वारा की जाती है।

कल्याणराय प्रभु (बड़ौदा)-गोस्वामी बिट्ठलनाथजी ने घरेलू बँटवारा किया तो यदुनाथ जी को बालकृष्ण का सेव्य स्वरूप प्रदान किया था। किंतु यदुनाथ जी ने उसे स्वीकार नहीं किया और द्वारकानाथ के साथ ही पधरा दिया था। तब यदुनाथ जी को उदास देखकर गोस्वामी जी ने कल्याण राय प्रभु का स्वरूप प्रदान किया। मुगल बादशाह औरंगजेब के

समय में जब अत्याचार हुए तो यदुनाथ जी के वंशजों ने उन्हें गोकुल से हटा दिया था। इस समय यह छठे घर शेरगढ़ राजस्थान के खानपुर से (बड़ौदा) स्थित प्रथम गद्दी के मंदिर में विराजमान हैं। जहाँ इस समय के तृतीय गृह के गोस्वामी बृजेश कुमार जी के पुत्र द्वारकेश लाल जी गोद आए हैं और वे आचार्य हैं।

गोपालराय जी (वाराणसी)-गोस्वामी बिट्ठलनाथजी के ज्येष्ठ पुत्र कल्याणराय जी तथा कनिष्ठ पुत्र ब्रजनाथ जी थे। उनका जन्म क्रमश: संवत 1895 और संवत 1903 में हुआ था। दोनों ही भाई परम भक्त और ज्ञान के ज्ञाता थे। गोस्वामी ब्रजनाथ जी ने बहुत से ग्रंथों की रचना की थी, उनमें से एक 'श्रीब्रजपरिक्रमा' नामक पुस्तक की भी रचना की थी। इस पुस्तक में ब्रज चौरासी कोस परिक्रमा यात्रा का वर्णन किया गया है। ब्रजनाथ जी का देहावसान संवत 1960 में हो गया था। गोस्वामी कल्याण राय के तीन पुत्र हुए श्री गोपाललाल, जीवनलाल और बालकृष्ण लाल। कल्याणराय जी के द्वितीय पुत्र जीवन लाल जी काशी स्थित तीसरे उपगृह में गोद चले गए थे और बालकृष्ण लाल जी तृतीय गृह में गोद जाकर कांकरोली की गद्दी के तिलकायत हुए। सबसे बड़े गोपाल लाल मथुरा की गद्दी पर आसीन हुए। मुकुंदराय जी का यह स्वरूप आजकल छठे घर की काशी गद्दी के मंदिर में है। छठे घर की गद्दियों के सेव्य स्वरूप, कल्याणराय जी और मुकुंदराय जी बड़ौदा तथा काशी में प्रतिष्ठित हैं। तीनों ही स्वरूपों के छठे गृह की प्रधानता अभी विचारणीय है।

गोपीनाथ जी (डेरागाजी खां)-श्री तुलसीदास जी का उपनाम ही लालजी के पुष्टि सम्प्रदाय की परम्परा जो पश्चिमोत्तर सीमा के पास डेरागाजी खां नामक स्थान व डेरास्माइल खां जो इस समय पाकिस्तान के अंतर्गत है। सन् 1641 से लेकर पंजाब और सिंध प्रदेशों पर मुगलों एवं अंग्रेजों का शासनकाल सन् 1947 तक रहा था। संवत् 2004 में जब अंग्रेजी शासन समाप्त हुआ तब इस देश का विभाजन हुआ। उस समय इस घर के प्रमुख केन्द्र डेरागाजी खां, डेरास्माइल खां, वहावलपुर सभी पाकिस्तान में चले गए। उस संकट काल के समय इस घर के नगरों को छोड़कर भारत के नगरों में आकर बस गए। इस समय अधिकतर दिल्ली, हरिद्वार, वृन्दावन आदि में बसे हुए हैं। इसके सेव्य स्वरूप, गोपीनाथ जी जो पहले डेरागाजी खां में प्रतिष्ठित थे इस समय वृन्दावन की सुक्खन माता गली जो बिहारी जी मंदिर के समीप है के पास विराजमान हैं। इस घर के अधिपति श्री बांकेलाल जी जन्म संवत् 1953 और उनके पुत्र रतनलाल जी जन्म संवत् 1982 है। [वं०तै०] [जि०कु०]

वल्लभाचार्य

'शुद्धाद्वैतवाद' के प्रवर्तक बल्लभाचार्य जी का जन्म संवत् 1535 में हुआ था। इनके पिता विष्णु भक्त लक्ष्मण भट्ट थे। बल्लभाचार्य जी वेदशास्त्र में पारंगत विद्वान थे। विजयनगर के राजा कृष्णदेव की सभा में विभिन्न विद्वानों को पराजित करके 'महाप्रभु' की पदवी प्राप्त की। भारत के विभिन्न भागों में अनेक बार यात्राएँ करके अपने मत का प्रचार किया। 'रामानुज' से लेकर बल्लभाचार्य तक सभी आचार्यों का लक्ष्य शंकराचार्य के मायावाद और विवर्त्तवाद से पीछा छुड़ाना था जिसके अनुसार भक्ति अविद्या या भ्रांति ही ठहरती है। शंकराचार्य ने निर्गुण ब्रह्म की सत्ता को स्वीकार किया, बल्लभाचार्य ने ब्रह्म में सब धर्म माने। शंकर ने निर्गुण को ब्रह्म का असली रूप कहा था और सगुण को व्यावहारिक या मायिक कहा। बल्लभाचार्य ने इसके विपरीत सगुण को असली रूप कहा और निर्गुण को अंशत: तिरोहित रूप कहा। 'भक्ति की साधना के लिए बल्लभ ने उसके 'श्रद्धा' के अवयव को छोड़कर जो महत्व की भावना में मग्न रहता है, केवल 'प्रेम' लिया। उन्होंने शंकर के मतवाद का खंडन यह कहकर नहीं किया कि अद्वैत (ब्रह्म और जीव की एकता) भ्रम है अपितु उन्होंने यह सिद्ध किया कि 'शंकर का अद्वैतवाद शुद्ध अद्वैतवाद ही नहीं है, वे ब्रह्म को सत्य एवं जगत को मिथ्या मानते हैं, ऐसी स्थिति में स्वत: ही दो प्रकार के तत्वों की सत्ता प्रमाणित हो जाती है। एक सत्य और दूसरा असत्य। बल्लभाचार्य के अनुसार ब्रह्म, जीव और जगत तीनों को अभिन्न घोषित किया, उनकी दृष्टि में मूलत: तीनों ही सत्य तथा एक ही हैं, उनमें अंतर केवल अवस्था का है। ब्रह्म में सत, चित् और आनंद, जीव में सत् और चित् तथा जगत में एक ही तत्व सत् जाग्रत रहता है बाकी

तत्व निष्क्रिय रहते हैं। वे ब्रह्म के दोनों रूपों निर्गुण और सगुण को स्वीकार करते हैं। पारमार्थिक रूप सगुण है जबकि निर्गुण ब्रह्म उसका तिरोहित रूप। सभी गुणों से युक्त श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं। श्रीकृष्ण की भक्ति के लिए उन्होंने प्रेमलक्षणा भक्ति का चुनाव किया। इस भक्ति में मर्यादा के लिए कोई स्थान नहीं है। यह भगवान के अनुग्रह से प्राप्त होती है। इसलिए इसे पुष्टि (पोषण, अनुग्रह) कहा जाता है। उनके अनुसार जीव तीन प्रकार के होते हैं- प्रवाह जीव, मर्यादा जीव और पुष्टि जीव।

प्रवाह जीव जगत प्रवाह में सुखोपभोग में लगे रहते हैं, मर्यादा जीव वेदों में बताये गये दिशा-निर्देशों का पालन करते हुए स्वर्ग प्राप्ति की कामना रखते हैं। पुष्टि जीव भगवान के पोषण या अनुग्रह पर आश्रित होते हैं और उनकी नित्य लीला के भागीदार होते हैं। प्रेम साधना में बल्लभाचार्य ने लोक मर्यादा और वेद मर्यादा दोनों का त्याग विधेय ठहराया। इस प्रेम लक्षणा भक्ति की ओर जीव तभी प्रवृत्त होता है जब भगवान का अनुग्रह होता है, इसे ही पुष्टि कहा गया है। 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' में सूरदास की एक वार्ता के अंतर्गत प्रेम को मुख्य और श्रद्धा को सहायक माना है।

बल्लभाचार्य ने भक्ति में निहित माहात्म्य या श्रद्धा के अवयव की उपेक्षा करके प्रेम के तत्त्व को ही अपनाया है। इस मार्ग के अनुयायी आत्म-सर्म्पण के द्वारा अपने आराध्य देव की अनुकंपा प्राप्त करना ही अपनी भक्ति का चरम लक्ष्य मानते हैं। श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं जो दिव्य गुणों से संपन्न होकर पुरुषोत्तम कहलाते हैं। आनंद का पूर्ण आविर्भाव इसी पुरुषोत्तम रूप में रहता है, अत: यही श्रेष्ठ रूप है। पुरुषोत्तम कृष्ण की सब लीलाएँ नित्य हैं। वे अपने भक्तों के लिए 'व्यापी वैकुंठ' में (जो विष्णु के वैकुंठ से ऊपर है) अनेक प्रकार की क्रीड़ाएँ करते रहते हैं। गोलोक इसी व्यापी वैकुंठ का एक खंड है जिसमें नित्य रूप में यमुना, वृंदावन, निकुंज इत्यादि सब कुछ है। भगवान की इस 'नित्य लीला सृष्टि' में प्रवेश करना ही जीव की सबसे उत्तम गति है।

रामानुजाचार्य के समान बल्लभाचार्य ने भी भारत के बहुत से भागों में पर्यटन और विद्वानों से शास्त्रार्थ करके अपने मत का प्रचार किया था। अंत में अपने उपास्य श्रीकृष्ण की जन्मभूमि में जाकर उन्होंने अपनी गद्दी स्थापित की और अपने शिष्य पूरनमल खत्री द्वारा गोवर्धन पर्वत पर श्रीनाथ जी का बड़ा भारी मंदिर स्थापित किया। आचार्य जी स्वयं यात्राओं में व्यस्त रहते थे अत: उन्होंने इसकी पूजा का कार्य बंगाली वैष्णवों को सौंप दिया था तथा भजन-कीर्तन के लिए कुंभनदास, सूरदास, परमानंददास जैसे भक्तों को नियुक्त किया। तदनन्तर भारत के विभिन्न भागों में अनेक बार यात्राएँ करके अपने मत का प्रचार किया तथा कई ग्रंथों की रचना की जिनमें पूर्व मीमांसा भाष्य, उत्तर मीमांसा भाष्य या ब्रह्मसूत्र भाष्य जो कि अणुभाष्य के नाम से प्रसिद्ध है। इनके शुद्धाद्वैतवाद का प्रतिपालक यही प्रधान दार्शनिक ग्रंथ है। श्रीमद्भागवत की सूक्ष्म टीका तथा सुबोधिनी टीका, तत्त्वदीप निबंध, दशम स्कंध अनुक्रमणिका, सिद्धांत मुक्तावली, गायत्री भाष्य, त्रिविध नामावली, पुरुषोत्तम सहस्रनाम, पत्रावलंबन इत्यादि हैं।

इसके अतिरिक्त कुछ प्रकरण ग्रंथ भी मिलते हैं। बल्लभाचार्य जी की आज्ञा से सूरदास जी ने श्रीमद्भागवत की कथा को पदों में गाया। गीतों की परंपरा तो प्राचीनकाल से चली आ रही है पर कृष्ण भक्ति गीतों को जनमानस के हृदय में बसाने का श्रेय बल्लभाचार्य जी व उनके अष्टछाप कवियों को ही प्राप्त है। बल्लभाचार्य जी ने उपासना का स्वरूप भी नवीन ढंग से शुरू किया अत: नृत्य, संगीत, समन्वित कीर्तन को उनके संप्रदाय में प्रमुख स्थान मिला। इसी को ध्यान में रख वैष्णव मंदिरों में 'अष्टयाम' की उद्भावना की गई। इसमें आठ झाँकियां उपास्य देव के नित्यकर्मों के अनुसार सजाई जाती थीं बाद में बल्लभाचार्य की 'अष्टयाम' पद्धति का एक सुव्यवस्थित रूप उस समय मिल गया जब उनके पुत्र विट्ठलनाथ ने अष्टछाप की स्थापना की। इन आठों भक्तों का समय आचार्य की व्यवस्था के अनुसार निर्धारित कर दिया गया जिसमें प्रत्येक भक्त आत्मनिवेदन के रूप में पदों को गाता था। [नि०क०]

वल्लभाचार्य की बैठकें

महाप्रभु वल्लभाचार्य के पूर्वज दक्षिण निवासी तैलंग ब्राह्मण थे। उनके पिता श्री लक्ष्मण भट्ट तैलंग प्रदेश में

कांकवाड़ नामक ग्राम के निवासी थे। लक्ष्मण भट्ट अपने उत्तर जीवन में काशी आ बसे थे। काशी उस समय उत्तर भारत का प्रमुख तीर्थ स्थल था। हिन्दू सद्गृहस्थ अपने उत्तर जीवन को शांति से व्यतीत करने के लिए काशीवास किया करते थे, इसी धारणा से लक्ष्मण भट्ट भी अपनी पत्नी इलम्मागारू के साथ काशी आ बसे थे। उस समय दिल्ली में लोदी वंश का बहलोल लोदी नामक बादशाह राज्य कर रहा था। उसने काशी पर भी चढ़ाई की थी। फलस्वरूप लक्ष्मण भट्ट आक्रान्त नगर निवासियों के साथ काशी छोड़कर दक्षिण प्रदेश की ओर चले पड़े। संवत् 1535 वैशाख कृष्ण 11 की सायंकाल के समय रायपुर (मध्यप्रदेश) जिले के चम्पारण्य नामक स्थान पर महाप्रभु जी का जन्म हुआ था तथा देहावसान संवत् 1557 में काशी में हुआ था। इस प्रकार महाप्रभुजी का जन्म मध्य भारत में हुआ था। उनका बाल्यकाल काशी में व्यतीत हुआ था। उन्होंने अपनी अल्पायु में ही पंडित समाज में प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी। वह युग संस्कृत के पाण्डित्य का युग था। भारतवर्ष में संस्कृतज्ञ आचार्य अपनी-अपनी साम्प्रदायिक मान्यताओं के लिए शास्त्रार्थ कर रहे थे। जब महाप्रभु जी ने इन आचार्यों के वाद-विवादों में अपना आदरणीय स्थान बना लिया, तब सम्भवत: उन्हें अपने दार्शनिक विचारों का प्रचार भी आवश्यक प्रतीत हुआ। महाप्रभु जी अपने दार्शनिक विचारों और सिद्धान्तों को जन-जन में घोल देना चाहते थे। इसके लिए क्षेत्र तथा माध्यम की उपयुक्तता का प्रश्न था। क्षेत्र की दृष्टि से महाप्रभु जी की दृष्टि उत्तर भारत के रमणीय स्थलों पर जा टिकी। जहाँ कभी उनके इष्ट श्रीकृष्ण ने अपनी विविध लीलाओं के द्वारा उन स्थानों को प्रसिद्ध किया था। मथुरा, वृन्दावन, गोकुल, नंदगाँव, गिरिराज जैसे शांत एवं सुंदर स्थानों पर उनका ध्यानाकर्षण सर्वथा बुद्धिसम्मत था। यहाँ के निवासी सरल, भावुक तथा निष्ठावान थे।

अभिव्यक्ति के लिए यहाँ की लोकभाषा 'ब्रजभाषा' थी। संस्कृत लोकभाषा नहीं थी। महाप्रभु वल्लभाचार्य ही नहीं, अन्य और भी अनेक मनीषी धर्माचार्यों की दृष्टि इस ओर उठी और वे सभी ब्रजक्षेत्र में आकर बसने लगे। भारत के प्राय: सभी भागों से संत-महात्माओं का आगमन मथुरा, वृन्दावन में होने लगा। महाप्रभु वल्लभाचार्य और अष्टछाप के प्रसिद्ध संत-कवियों ने इस काल में मथुरा और उसके आसपास के धार्मिक स्थानों का महत्व बढ़ाया।

15वीं शताब्दी में 84 बैठकों का साहित्यिक अर्थ संदर्भित करते हुए 84 स्थानों पर समर्पित दार्शनिक वल्लभाचार्य जी ने श्रीमद्भगवत गीता में अपने वक्तव्य दिये थे। भारत में पुष्टिमार्ग की महत्त्वपूर्ण अवधारणायें स्थापित की गयीं और उनके अनुयायियों द्वारा भक्तिमय कृत्यों द्वारा प्रदर्शित की गई थीं। वे बैठकें इस प्रकार हैं-

श्रीमहाप्रभु जी की बैठक (गोकुल), महाप्रभु जी की बड़ी बैठक (गोकुल), महाप्रभु जी का शय्या मंदिर बैठक, द्वारिकाधीश मंदिर (गोकुल), महाप्रभु बैठक (बंशीवट, वृन्दावन), महाप्रभु बैठक (विश्रामघाट, मथुरा), महाप्रभु बैठक, मधुवन (महोली, मथुरा), महाप्रभु बैठक, कामदवन (मथुरा), महाप्रभु बैठक, बहुलावन (मथुरा), महाप्रभु बैठक श्रीराधाकृष्ण कुंड (मथुरा), मानसीगंगा बैठक, वल्लभघाट (मथुरा), चंद्रसरोवर बैठक, परासोली (मथुरा), सद्दू पांडेय की घर की बैठक, आन्यौर (मथुरा), गोविन्द कुंड बैठक, गिरिराज जी (मथुरा), सुंदर शिला बैठक, गिरिराज जी के सामने, जतीपुरा (मथुरा), गिरिराज जी की बैठक (गुप्त बैठक) श्रीनाथ मंदिर, जतीपुरा (मथुरा), श्रीकुंड की बैठक, कामवन (भरतपुर), गहवरवन की बैठक (मोरकुटी, बरसाना), संकेतवन की बैठक (बरसाना), मानसरोवर की बैठक (नंदगांव), कोकिलावन की बैठक, जॉव (मथुरा), भांडीरवन बैठक, भांडीर गांव (मथुरा), मानसरोवर बैठक (यमुना किनारे, मांट), सूकरक्षेत्र की बैठक (सौरभघाट, एटा), चित्रकूट की बैठक कामता (सतना), अयोध्या रामघाट की बैठक (फैजाबाद, अयोध्या), नैमिषारण्य की बैठक (नैमिषारण्य, सीतापुर), सेठ पुरुषोत्तमदास गृह की बैठक, जतनबड़ (वाराणसी), हनुमानघाट की बैठक (वाराणसी), हरिहर क्षेत्र की बैठक, हाजीपुर (वैशाली, बिहार), जनकपुर की बैठक (गुप्त) जनकपुर (वैशाली, बिहार), गंगासागर की बैठक (पश्चिम बंगाल), चम्पारण्य की बैठक, रायपुर (छत्तीसगढ़), जगन्नाथपुरी की बैठक, पुरी (उड़ीसा), पंढरपुर की बैठक, पंढरपुर (महाराष्ट्र), महाप्रभु जी की तपोवन बैठक, पंचवटी (नासिक), महाप्रभु की पन्नासिंह की बैठक, मंगलगिरि,

विजयवाड़ा (आंध्रप्रदेश), श्रीलक्ष्मणबाला की बैठक, तिरुमाला (आंध्रप्रदेश), श्रीरंगजी की बैठक, त्रिचनापल्ली (तमिलनाडु), विष्णुकांची वेगावती मुटुकोलम की बैठक, विष्णुकांची (तमिलनाडु), सेतुबंध रामेश्वरम की बैठक, रामानंद (तमिलनाडु), मलयाचल पर्वत की बैठक (गुप्त बैठक), कर्नाटक, महाप्रभु जी की लोहगढ़ की बैठक, पणजी (गोवा), ताम्रपर्णी नदी की बैठक, त्रिचनापल्ली (तमिलनाडु), कृष्णा नदी तट की बैठक, कृष्णधाम (आंध्रप्रदेश), पम्पा सरोवर की बैठक, हम्पी ग्राम (कर्नाटक), पद्मनाभ जी की बैठक, त्रिवेन्द्रम (केरल), श्री जनार्दनक्षेत्र की बैठक, बरकला (केरल), विद्यानगर की बैठक, हम्पी ग्राम (कर्नाटक), त्रिलोकभान जी की बैठक (तमिलनाडु), तोताद्री मठ की बैठक, नांगनेरी (तमिलनाडु), दर्भशर्यन की बैठक, आदि सेतुगांव (तमिलनाडु), अश्विनी कुमार घाट की बैठक, ताप्ती नदी तट, सूरत (गुजरात), बडुच की बैठक (गुजरात), मोरबी की बैठक, मांचू नदी के सामने (गुजरात), नवनगर बैठक, नागमती नदी के निकट (गुजरात), जमखम्बालिया की बैठक, जामनगर (गुजरात), पिण्डतारक की बैठक, जामनगर (गुजरात), हरिकुण्ड की बैठक, द्वारका (गुजरात), गोपीतालाब की बैठक, जामनगर (गुजरात), शंखोद्धार की बैठक, द्वारका (गुजरात), नारायण सरोवर की बैठक, कच्छ (गुजरात), दामोदर कुण्ड की बैठक, जूनागढ़ (गुजरात), प्रभास क्षेत्र घाट की बैठक, त्रिवेणी नदी (गुजरात), कदम्ब कुण्ड की बैठक, पोरबन्दर (गुजरात), गुप्तप्रयाग दिलवाड़ा की बैठक, सोमनाथ (गुजरात), तगादी बैठक, अहमदाबाद (गुजरात), श्री वल्लभाचार्य चौक, नरोदा की बैठक (गुजरात), रनव्यास मार्ग की बैठक, गोधरा (गुजरात), खेरादुश्री मदिवास की बैठक, मेहसाना (गुजरात), सिद्धपुर की बैठक, पाटन (गुजरात), अवंतिकापुरी की बैठक, संदीपनी आश्रम (उज्जैन), वल्लभघाट, पुष्कर की बैठक (अजमेर), सरस्वती कुण्ड, कुरुक्षेत्र की बैठक (कुरुक्षेत्र), रामघाट की बैठक, कनखल (हरिद्वार), बद्रिकाश्रम की बैठक (उत्तराखंड), कुंड केदारनाथ की बैठक (हरिद्वार), अलकनंदा, केशव प्रयाग व्यास आश्रम की बैठक, बद्रीनाथ (उत्तराखंड), हिमाचल पर्वत की बैठक (हिमाचल), व्यासगंगा की बैठक, व्यासघाट (हिमाचल प्रदेश), मद्रांचल पर्वत की बैठक, अड़ैल त्रिवेणी संगम की बैठक, नैनी (इलाहाबाद), चरनातआचार्यकम की बैठक, चुनार (मिर्जापुर)। [रे०मि०]

वसुदेव

श्री वसुदेव जी वृंदावनस्थ श्रीराधासर्वेश्वर प्रभु की नित्य रासस्थली श्रीवंशीवट के विशेष अनुरागी रसिक थे। भगवदीय कृपा से इन्होंने अनेकों भावुक रसिक प्रेमीजनों को वंशीवट की महिमा का अनुभव कराया। श्री वसुदेव जी साठ वर्षों तक भूतल पर सदेह रहे। [कुं०बि०श०]

वामन पुराण

श्री नारद पुराण के अनुसार वामन पुराण 18 महापुराणों में चौदहवाँ है। इसके 95 अध्याय और 10000 श्लोक हैं। पुराण के मुख्य वक्ता पुलस्त्य मुनि और मुख्य श्रोता देवर्षि नारद हैं।

पुराण के प्रारम्भ में भगवान शिव के कपाली होने तथा कपालमोचन तीर्थ का वर्णन है। इसके पश्चात शिव विवाह, शिव के लिंग गिरने का वृत्तान्त का वर्णन पुराण में किया गया है। सप्तम अध्याय में कामदेव और नारायण के युद्ध का वर्णन है। इसी पुराण में 43वें और 44वें अध्याय में ऋषियों के क्रोध के कारण शिव के लिंग के गिरने का वृत्तान्त अन्य प्रकार से वर्णित है। सुकेशी दैत्य की कथा का 11वें से 15वें अध्याय में वर्णन है। कात्यायनी देवी, महिषासुर और रक्तबीज की कथा का भी विस्तार से वर्णन है। विवाह के उपरान्त भगवान गजानन और षडानन के जन्म की कथा एवं तारकासुर वध की कथा का आख्यान है। भगवान विष्णु के द्वारा मुर दैत्य के वध का प्रसंग है। भगवान विष्णु द्वारा मुर दैत्य का वध करने के कारण उनका एक नाम मुरारि पड़ा।

82वें अध्याय में वर्णन है कि भगवान विष्णु की तपस्या से प्रसन्न हो भगवान शंकर ने उन्हें सुदर्शन चक्र प्रदान किया। इस पुराण में राजा बलि एवं भगवान वामन का उपाख्यान वर्णित है। 78वें अध्याय में धुन्ध दैत्य और वामन का प्रसंग है। 67वें अध्याय में हरि और हर के व्यक्तित्त्व का सुन्दर वर्णन है। रुद्र ने अपने गणों को कहा कि वह और विष्णु एक ही हैं। गणों ने रुद्र एवं विष्णु के हजारों चिन्हों से युक्त एक मुख शंकर को देखा। उसका आधा भाग शंकर के शरीर का था और आधा भाग गरुड़ध्वज था। गरुड़ध्वज वृषारूढ़ और वृषभध्वज गरुड़ारूढ़ था।

अन्य पुराणों के अनुरूप इस पुराण में तत्वों और सृष्टि का विवेचन, वंशावलियों का वर्णन, सर्ग, विसर्ग, भूगोल-खगोल वर्णन, आश्रम व्यवस्था, श्राद्ध, तीर्थों का वर्णन और उनके माहात्म्य का वर्णन है। कुरुक्षेत्र तीर्थ का वर्णन बहुत विस्तार से है। इस पुराण के पठन-पाठन का बहुत माहात्म्य है। [क०उ०]

वामन भट्टाचार्य

भवरोगों की औषधि भगवन्नाम के प्रवीण-प्रतापी सद्वैद्य श्रीवामन भट्टाचार्य जी हैं। शरणागतों के प्रति अत्यंत दयालुता का भाव रखने वाले आचार्य जी श्रीरामचंद्र भट्टाचार्य जी के कृपापात्र शिष्य थे। भक्ति, वैराग्य और ज्ञान के समुद्र श्रीवामन भट्टाचार्य जी संप्रदाय की अद्भुत निधि हैं। इनका पाटोत्सव ज्येष्ठ कृष्णा षष्ठी को समारोहपूर्वक आयोजित होता है। [कुं०बि०श०]

वायुपुराण

जहाँ तक पुराणों की ठीक-ठाक सूची का प्रश्न है महापुराण अठारह हैं पर वायु पुराण कहीं उनमें सम्मिलित किया गया है कहीं नहीं। यदि वायुपुराण को शिवपुराण का विकल्प रूप मान लिया जाए तो उसकी गणना अठारह पुराणों में हो सकती है। मत्स्यपुराण के अनुसार वायुपुराण के श्लोकों की संख्या 24000 है। वर्तमान समय में उसके उपलब्ध संस्करण में श्लोकों की संख्या लगभग 11000 है। अध्याय 112 हैं।

पुराण के आरम्भिक दस अध्याय सृष्टि, चारों आश्रमों तथा देवताओं की उत्पत्ति आदि का वर्णन करते हैं। तत्पश्चात् योग साधना द्वारा विविध प्रकार की सिद्धियों का विस्तृत वर्णन है। सत्रहवें अध्याय में त्रिदण्ड का अर्थ स्पष्ट किया गया है। वायुपुराण के भुवनविन्यास शीर्षक अध्यायों का लम्बा आख्यान है जिसमें देव-वंश, युग, धर्म आदि के अनेक द्वीपों का विस्तृत वृत्तान्त है। धरती के ऊपर तथा नीचे के लोकों का विवरण चार अध्यायों में दिया गया है।

54वें तथा 55वें अध्याय दो अध्याय क्रमशः नीलकण्ठ स्तवः एवं लिंगोद्भव स्तवः नाम से भगवान शंकर के नीलकण्ठ एवं लिंग (शिवलिंग) रूप धारण करने की कथा प्रस्तुत करते हैं। उपर्युक्त उपाख्यानों के पश्चात आगामी नौ अध्यायों में पृथ्वी के दोहन, पृथु की वंश परम्परा, प्रजापति के वंश और कश्यप की संतानों का निरूपण है। तदनन्तर श्राद्ध विधि, उसकी महिमा और फल का लगभग सोलह अध्यायों में विस्तृत विवेचन है। इसी अनुक्रम में संगीत विद्या के विविध पक्षों एवं स्वरालंकारों की सूक्ष्म मीमांसा है। अग्रिम प्रसंग सत्यव्रत, विश्वामित्र, त्रिशंकु, राजा सगर के वंश, असमंजस, तुम्ब तथा उसके 60000 पुत्रों का निरूपण है। वंशावली के प्रसंग में सत्यव्रत की कथा का वर्णन है। उपर्युक्त कथा शृंखला में कार्तवीर्य अर्जुन का प्रसंग आता है। जिसे दत्तात्रेय ने युद्ध में महान भुजाओं वाला हो जाने का वरदान दिया था। परशुराम ने उसका वध किया। परवर्ती तीन अध्याय विष्णु के अवतार तथा माहात्म्य के अनन्तर स्यमन्तक मणि का विख्यात आख्यान प्रस्तुत है जिसमें सत्राजित, प्रसेनजित, कृष्ण, जाम्बवान, शतधन्वा, अक्रूर, बलराम आदि की संलिप्तता तथा भूमिकाओं का सजीव चित्रण है।

भगवान कृष्ण के जन्म, कंस के भय से उन्हें गोकुल ले जाना, यशोदा की कन्या से उनकी अदला-बदली का प्रसिद्ध प्रसंग इस पुराण में भी है। 97वें अध्याय में विष्णु के अवतारों का तथा बारह अध्यायों में देवासुर युद्धों का वर्णन

है। समापन से पूर्व वायुपुराण पुन: आठ अध्यायों में श्राद्ध को परिभाषित करने, श्राद्ध सामग्री तथा गया-माहात्म्य एवं गयासुर के विस्तृत वृत्तान्त को प्रस्तुत करता है। [क०उ०]

वाराह पुराण

अठारह मुख्य महापुराणों में वाराह पुराण वैष्णव पुराण है। जिसका मुख्य विषय वाराह भगवान द्वारा पृथ्वी के उद्धार एवं पृथ्वी-वाराह सम्वाद में विविध पौराणिक विषयों का वर्णन है। प्राप्त वाराह पुराण में 9471 श्लोक एवं 10 अध्यायों में गद्यभाग है। इस प्रकार इसमें लगभग 14000 श्लोक (अग्नि पुराण के अनुसार) प्राप्त होते हैं। वाराह पुराण में दो कल्पों का वर्णन है। पूर्व कल्प (1 से 111 अध्याय) एवं वर्तमान कल्प (112वें अध्याय से 144 तक) द्वितीय 'वर्तमान कल्प' है। यहाँ से पुन: नए क्रम का प्रारम्भ है। जिसमें पृथ्वी का उद्धार, विष्णु पूजा एवं मथुरा माहात्म्य का वर्णन है।

मथुरा माहात्म्य-पृथ्वी देवी ने पूछा-तीर्थों में सर्वोत्तम तीर्थ कौन सा है? वराह ने उत्तर दिया-तीन लोकों में मथुरा के समान कोई दूसरा तीर्थ नहीं है। वह मेरा सर्वाधिक प्रिय तीर्थ है। मथुरा मण्डल का नामोच्चारण पाप-निवृत्ति करता है। सब तीर्थ एवं सरोवर मथुरा में निवास करते हैं। कुब्जाम्रक, सौकरव और मथुरा ये तीन विशिष्ट तीर्थ हैं। ये तीनों सिद्धि दाता हैं।

मथुरा के तीर्थ-विश्रान्ति (भगवत लोक प्राप्ति), कनखल, बिन्दुक, सूर्यतीर्थ, ध्रुवतीर्थ, तीर्थराज, कोटितीर्थ, वायुतीर्थ, शिवकुण्ड (यक्ष्म धनु राजा की कथा में धारपतन तीर्थ) प्रमुख हैं।

वन-मधुवन, कुंदवन, काम्यक वन (विमल कुण्ड), वकुलवन, भद्रवन, खदिरवन, महावन, लौहजंघवन, विल्ववन, भाण्डीर वन, श्रीवृन्दावन (जिसकी वृन्दादेवी अधिष्ठात्री हैं जहाँ गोविन्द-दर्शन होता है।

अन्यतीर्थ-घण्टाभरण, सोमतीर्थ, मानसतीर्थ, अक्रूर तीर्थ (अयन में होमदान से राजसूय अश्वमेध की प्राप्ति।) केशी तीर्थ, द्वादशादित्य तीर्थ, कालियदह (हरदेव के उत्तर एवं कालियदह के दक्षिण में देहत्याग करने से पुनर्जन्म नहीं होता) एवं यमलार्जुन (यमुना के उस पार)। वृन्दावन में ही गोविन्दाभिषेक (इन्द्र द्वारा पूजन) का स्थान, सप्तसामुद्रिक कूप, गोपीश्वर, रासस्थली, तालवन (धेनुकासुर), शान्तनु कुण्ड (भीष्म नामक पुत्र की प्राप्ति) का वर्णन है। मथुरा देवता, शक्ति एवं आयुधों से रक्षित हैं।

कभी सुग्रीव, मार्कण्डेय एवं पाण्डवों ने परिक्रमा कर पृथ्वी पर 60 हजार करोड़ तीर्थों की गणना की थी। मथुरा परिक्रमा करने पर उन सब तीर्थों के सेवन का फल मिल जाता है। मथुरा परिक्रमा की विधि का वर्णन इस प्रकार किया गया है। कार्तिक मास शुक्ल पक्ष की अष्टमी को मथुरा निवास एवं नवमी को परिक्रमा करें- दक्षिण कोटितीर्थ में स्नान कर दीर्घविष्णु, केशवदेव का दर्शन कर परिक्रमा करें। परिक्रमा में अनेकों देवी-देवताओं का वर्णन है।

मथुरा में चक्रतीर्थ की महिमा-मिथिला में एक ऐसा ब्राह्मण था जिसने कभी ब्रह्म हत्या की थी। हत्या के चिह्न उनके अंग से चिपक गए थे। उसके हाथ से रक्त की धारा बहती रहती थी। मथुरा में वैकुण्ठ तीर्थ में स्नान करने से वे चिह्न मिट गए। मथुरा मंडल की सीमा 20 योजन है। (अध्याय-183) जिसके मध्य में केशवदेव विराजमान हैं। इस विग्रह को भगवान ने मांधाता को दिया था।

कपिल वराह-कभी कपिल देव ने वराह मूर्ति की रचना की एवं उसे इन्द्र को दिया। दिग्विजय में रावण ने कपिल वराह का दर्शन किया एवं मूर्ति को उठाना चाहा। कैलाश उठा लेने वाले रावण से मूर्ति हिली भी नहीं। रावण का असुर (तामस) भाव मूर्ति के दर्शन से ही नष्ट हो गया। भगवान ने कृपा की एवं रावण के साथ आप लंका पधारे। वहाँ विभीषण ने उनकी सेवा की। रावण को मारकर श्रीराम उस प्रतिमा को अयोध्या अपने साथ ले आए। श्री शत्रुघ्न ने मथुरा के शासक लवणासुर का वध किया तथा वहाँ 26 हजार वैदिक ब्राह्मणों को बसाया। श्रीराम से शत्रुघ्न ने वरदान

में कपिल वराह माँगे एवं मथुरा में उन्हें स्थापित किया।

मथुरा मण्डल में-विश्रान्ति संज्ञक (गतश्रम) गोविन्द, केशव एवं दीर्घविष्णु विराजमान हैं। गोवर्धन के विविध तीर्थों का भी यहाँ वर्णन किया गया है। मथुरापुरी में चतु:सामुद्रिक कूप पर पिण्डदान करने से प्रेतत्त्व मुक्ति होती है।

असिकुंड-किसी सुमति नामक राजा की तीर्थयात्रा में मृत्यु हो गई एवं यात्रा अधूरी रह गई। उसका पुत्र विमति मथुरा आया। उसके यहाँ आने से पिता की अधूरी तीर्थयात्रा तो पूर्ण हो ही गई एवं उनकी मुक्ति भी हो गई। परन्तु विमति ने वहाँ 'विमति' ही फैला दी। वराह ने विमति का तलवार से शिरच्छेद किया। उस शिर से एक कुण्ड बन गया 'असिकुण्ड'।

गोकर्ण तीर्थ-माथुर वसुकर्ण वैश्य की स्त्री वंध्या थी। किसी मुनि के कहने से उसने गोकर्णनाथ महादेव का पूजन किया। उसे संतान प्राप्त हुई। ऐसे कई प्रसंग हैं। मथुरा में यमुना सरस्वती संगम (सरस्वती कुण्ड) पर स्नान करने से प्रेतत्व मुक्ति होती है। कृष्ण-गंगोद्भव तीर्थ में अगम्या गमन पाप की निवृत्ति होती है। इस पाप का प्रायश्चित करने के लिए एक ब्राह्मण कुमार चितारोहण कर रहा था, तभी आकाशवाणी हुई-मथुरा के पंच तीर्थों में स्नान करने से तुम्हारे पापों की निवृत्ति होगी। देह त्याग मत करो। ये पाँच तीर्थ हैं- एकादशी (विश्रामतीर्थ), द्वादशी (सौकरव तीर्थ), त्रयोदशी (नैमिषारण्य तीर्थ), चतुर्दशी (प्रयाग तीर्थ) एवं पूर्णिमा (कार्तिक) पुष्कर।

साम्ब के शाप निवृत्ति का प्रसंग-श्रीकृष्ण पुत्र शाम्ब की सुन्दरता से स्त्रियों को क्षोभ होता था। उनकी चंचलता देख कृष्ण ने उन्हें रूपहीन होने का शाप दे डाला। साम्ब को कुष्ठ हो गया। नारद जी ने उपाय बतलाया-साम्ब ने मथुरा आकर साम्ब-पंचाशिका (50 श्लोक) द्वारा स्तुति की एवं कृष्णगंगा तीर्थ पर, प्रात:, मध्याह्न, सायं, सूर्य को अर्घ्य आदि दिया एवं रोग मुक्त हुए।

लवणासुर वध (राजवध) के पाप से निवृत्ति के लिए शत्रुघ्न ने ब्राह्मणों का समाराधन मथुरा में किया। श्रीराम भी अगहन शुक्ल दशमी के दिन मथुरा आए, एकादशी को विश्रान्ति तीर्थ पर स्नान कर उन्होंने उत्सव किया। मथुरा में 32 सेवापराधों से मुक्ति होती है।

श्राद्धकल्प-मथुरा के प्राचीन राजा चंद्रसेन की प्रभावती नामक एक दासी के परिवारीजन सदाचार विहीन होकर मरे एवं सारा कुल वर्णशंकर हो गया, अत: पितर दु:खी थे। प्रभावती के पितरों ने ध्रुव क्षेत्र में किसी अगस्त्य ऋषि से कहा-हमारा उद्धार करो। हमारा श्राद्ध तर्पण कुछ नहीं हुआ है। अगस्त्य ने दासी को बुलवाया। ध्रुवतीर्थ पर श्राद्धकर्म सम्पन्न कराया। जिससे पितर तृप्त एवं मुक्त हुए।

इसमें नचिकेता प्रसंग का भी वर्णन किया गया। जिसमें गौ महात्म्य का वर्णन चित्रगुप्त द्वारा बताया गया है। इस पुराण में कहा गया है कि-हजारों वर्षों की शिवोपासना से वैष्णवता प्राप्त होती है। वैष्णवता सर्वश्रेष्ठ है। ''दुर्लभं वैष्णवत्वं हि त्रिषु लोकेषु सुन्दरि! जन्मान्तर-सहस्त्रेषु समाराध्य वृषध्वजं। वैष्णवत्वं लभेत् कश्चित् सर्वपापक्षये सति। (211/86-88) [क०उ०]

वाल्मीकि रामायण

भगवद् गीता में भगवान श्रीकृष्ण का वचन है कि ''दैवी सम्पद् विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता'' अर्थात् दैवी सम्पदा के गुण मोक्ष के लिये और आसुरी सम्पदा के अवगुण संसार बन्धन के लिए कारणीभूत होते हैं। महर्षि वाल्मीकि की अद्भुत रचना 'वाल्मीकि रामायण' में इन दोनों सम्पदाओं का शाश्वत चित्रण कर पृथ्वी के समस्त मानवों के लिए सन्देश दिया है कि ''रामादिवत् वर्तितव्यं न रावणदिवत्''।

रामायण को 'आदिकाव्य' और इसके रचयिता वाल्मीकि को 'आदिकवि' माना जाता है। ऋषि वाल्मीकि प्रचेता (वरुण) के दसवें पुत्र हैं। परम पुरुष भगवान नारायण के श्रीराम के रूप में अवतीर्ण होने पर वेद ही साक्षात रामायण

के रूप में अवतरित हो गया हो, प्रतीत होता है। ऋषि वाल्मीकि ने अपनी रामायण में भगवान राम का ही नहीं, अपितु नर से नारायण बनाने वाले राम का चरित्र वर्णन किया है। इसमें श्रीराम की भार्या सीता जी के अद्‌भुत चरित्र का वर्णन है। भगवान के राघव के रूप में अवतरित होने पर श्रीलक्ष्मी जी श्री सीताजी के रूप में अवतरित हो गयीं। श्रीशेष जी राम के अनुज लक्ष्मण जी के रूप में हर प्रकार की सेवा करने के लिए सेवक के रूप में अवतरित हुए। रामायण में चौबीस हजार दो सौ श्लोक हैं। अपने देश भारत के राष्ट्रीय धर्म तथा नैतिक मूल्यों का जैसा चित्रण रामायण में उपलब्ध होता है अन्यत्र दुर्लभ है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि श्रुति, स्मृतियों के बाद रामायण में प्रतिपादित नैतिक सिद्धान्तों का प्रभाव एक अकेले भारत में नहीं जाति एवं उपजातियों में और पंथ-उपपंथों में विभाजित अखिल विश्व के हिन्दू धर्म के नर-नारियों, वृद्धों एवं बालकों के अन्दर चिरकाल तक बना रहेगा।

वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड के साठवें सर्ग से बहत्तरवें सर्ग तक मधुवन के शासक लवणासुर के आतंक से च्यवन आदि यमुना तट पर रहने वाले ऋषियों को मुक्त कराने हेतु शत्रुघ्न जी को राज्याभिषेक कर भगवान राम भेजते हैं तथा लवणासुर का वध करने का उपाय भी बताते हैं एवं एक दिव्य अमोघ बाण भी प्रदान करते हैं। शत्रुघ्न चार हजार घोड़े, दो हजार रथ, सौ हाथी एवं हजारों पैदल सैनिकों के साथ शत्रुघ्न जी मधुवन प्रस्थान करते हैं। मधुवन पहुँचकर उनकी च्यवन आदि ऋषियों से भेंट होती है और वे भयंकर युद्ध में लवणासुर का वध करते हैं। लवणासुर के वध पश्चात उन्होंने मधुवन में मधुपुरी नामक नगरी को बसाया तथा धीरे-धीरे शूरसेन जनपद की स्थापना की। मधुपुरी में बारह वर्ष व्यतीत करने के पश्चात वे पुनः अयोध्या भगवान राम के पास वापस आते हैं तथा सात दिन अयोध्या में व्यतीत कर पुनः मधुपुरी लौट आते हैं। इस विवरण से स्पष्ट है कि वाल्मीकि ऋषि मधुपुरी एवं वहाँ घटित घटनाओं के समकालीन साक्षी हैं। अयोध्या से मधुपुरी आने के रास्ते में वाल्मीकि ऋषि का आश्रम पड़ता था, जिसमें जाते एवं लौटते समय शत्रुघ्न जी ने विश्राम किया था।

रामचरित को विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं में लिखा गया है जैसे- तमिल में कम्ब रामायण, तेलगू में रंगनाथ रामायण और भास्कर रामायण, प्रेमानन्द और प्रीतमदास की गुजराती भाषा में रामायण, अवधी में तुलसीदास का रामचरित मानस और हिन्दी में मैथिलीशरण गुप्त का साकेत काव्य, पंजाबी में गुरुगोविन्द सिंह की गोविन्द रामायण है।

विदेशी भाषाओं में भी रामायण का अनुवाद किया गया है जैसे-अंग्रेजी में ग्रिफिथ ने छन्दोबद्ध अनुवाद किया, एम. एन. दत्त ने गद्यानुवाद किया। इटालियन में जी गैरिसी कृत चार भागों में, पैरिस में प्रकाशित, जर्मन में एफ स्कर्टकृत पद्यानुवाद, ए. वेबर (उबेर डास रामायण) विषयक शोध प्रबन्ध। इसके अतिरिक्त रामायण विषयक अनेक विद्वत्तापूर्ण शोध प्रबन्ध और ग्रन्थ लिखे गये। स्वामी करपात्री जी महाराज ने हिन्दी में 'रामायण मीमांसा' नामक ग्रन्थ रचा, जिसे सर्वत्र सम्मान मिला। रामायण पर अन्य संस्कृत में भी ग्रन्थ रचे गये जैसे-अगस्त्य रामायण, अध्यात्म रामायण, अद्‌भुत रामायण, आनन्द रामायण और भुशुण्डी रामायण इत्यादि।

संस्कृत साहित्य में रामकथा को आधार मानकर चम्पूकाव्य, नाटक, चम्पू स्तोत्र काव्य प्रकारों की रचना की गयी जिनका संक्षेप में विवरण इस प्रकार है-अप्पय दीक्षित ने रामायण सार संग्रह, रामायण तात्पर्य निर्णय, रामायण तात्पर्य संग्रह और रामायणसारस्तव रचा। रघुनाथ नायक ने रामायण सार संग्रह, राजचूड़ामणि दीक्षित ने मंजुभाषिणी। इस मंजुभाषिणी ग्रन्थ में रामकथा का श्लेष गर्भ भाषा में वर्णन किया गया है। श्रीनिवास पुत्र वेंकटेश ने रामायणकार्णव और रामचन्द्रोदय दो ग्रन्थ लिखे, श्रीनिवासपुत्र वरदशिक ने गद्यरामायण, रघुवीरविजय और रामायण संग्रह ये तीन ग्रंथ रचे और शम्भुकालिदास ने रामचन्द्र काव्यम् की रचना की।

आसुरी अनन्ताचार्य द्वारा लिखित चम्पूराघवम्, सुन्दरवल्ली के द्वारा रचित रामायण चम्पू, कृष्ण कवि का रघुनाथविजय चम्पू और गुण्डुशास्त्री का सीता चम्पू, वेंकेटकृष्ण का उत्तरचम्पू रामायण, देवराजदेशिक का रामकथा सुधोदय चम्पू इस प्रकार अनेक चम्पू काव्य लिखे गये। इसके अतिरिक्त 30 से अधिक अर्वाचीन संस्कृत नाटक भी लिखे गये।

वैष्णव सम्प्रदायों ने इसे अपना धर्मग्रन्थ माना है। इसलिए रामायण के उपासकों ने इस ग्रन्थ पर अपनी-अपनी धारणाओं के अनुसार टीका ग्रन्थ लिखे हैं। इस पर लगभग 30 टीका ग्रंथ लिखे गये हैं, जिनमें से मुख्य टीका ग्रन्थों के रचनाकारों का विवरण इस प्रकार है-वैद्यनाथ दीक्षित की रामायण दीपिका, वेंकटकृष्णाध्वरी द्वारा रचित सर्वार्थसार, वंशीधर की रामायण शिरोमणि, लोकमान्य चक्रवर्ती की मनोहरा टीका प्रसिद्ध है। [स०ना०दा०]

वासुपूज्य

तीर्थंकरों में वासुपूज्य का बारहवाँ स्थान है। जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में चम्पा नगरी थी। इस नगरी में राजा वसुपूज्य की जया नाम की रानी थी। ज्येष्ठ सुदि के नौवें दिन शतभिशाखा नक्षत्र में जया देवी के गर्भ में स्वर्ग से चलकर जीव आया। इन्द्रादि देवों ने गर्भ कल्याणक किया। नौ माह साढ़े सात दिन के पश्चात् फाल्गुनवदि चौदहवें दिन वरुण नक्षत्र में जया देवी के गर्भ से महिषि लक्षण युक्त पुत्र का जन्म हुआ। पुत्र का नाम वासुपूज्य रखा गया। यौवन काल आने पर पिता के आग्रह करने भी इन्होंने विवाह नहीं किया और न ही राज्य करने में अपनी इच्छा दिखाई। ये बाल-ब्रह्मचारी रहे। ये संसार को असार और भोगों को किम्पाक फल के समान समझते थे। इसी कारण वासुपूज्य उदास रहते थे।

एक दिन लोकान्तिक देवों ने आकर दीक्षा लेने की प्रार्थना की। वासुपूज्य स्वामी ने वर्षादान देकर फाल्गुन वदि 30वें दिन वरुण नक्षत्र में हट्ठ तप सहित दीक्षा ली। दूसरे दिन महापुर नगर में राजा सुनन्द के यहाँ वासुपूज्य ने पारणा किया। प्रभु वासुपूज्य एक मास छद्‌म स्वप्न में विहार कर गृह उद्यान में आए और पाटल (गुलाब) वृक्ष के नीचे कायोत्सर्गपूर्वक रहे। वहाँ पर माघ सुदि दूसरे दिन शतभिशाखा नक्षत्र में प्रभु को केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। प्रभु ने भव्य जीवों को उपदेश दिया और नाना देशों में विहार किया।

वासुपूज्य के शासन में 66 गणधर, 72 हजार साधु, 1 लाख साध्वियाँ, 414 पूर्वधारी, 5 हजार चार सौ अवधिज्ञानी, 108 मनःपर्यायज्ञानी, 6 हजार केवली, 10 हजार वैक्रियक लब्धिधारी, 4 हजार 8 सौ वादी, 1 लाख 15 हजार श्रावक, 4 लाख 36 हजार श्राविकाएँ तथैव चन्द्रा नाम की शासन देवी और कुमार नामक यक्ष थे।

मोक्षकाल निकटस्थ जानकर प्रभु वासुपूज्य चम्पा नगरी पधारे। वहाँ छः सौ मुनियों के साथ अन्नशन व्रत ग्रहण किया। एक मास के अन्त में आषाढ़ सुदि 14वें दिन उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र में प्रभु ने मोक्ष प्राप्त किया। प्रभु 18 लाख वर्ष कुमारवय में और 54 लाख वर्ष दीक्षा पर्याय में व्यतीत कर 72 लाख वर्ष की आयु समाप्त कर मोक्ष में आए। इनका शरीर 70 धनुष ऊँचा था। श्रेयांसनाथ के मोक्ष में जाने के 54 सागरोपम बीतने पर वासुपूज्य प्रभु ने मोक्ष प्राप्त किया। इनके समय में द्विपृष्ठ वासुदेव, विजय बलभद्र और तारक प्रतिवासुदेव हुए थे।

वासुपूज्य का प्रतीक महिष है तथा यक्ष-यक्षी कुमार एवं चन्द्रा (चण्डा या अजित) दिगम्बर परम्परा में यक्षी का नाम गान्धारी है। दशवीं शती ई. की मूर्तियों में वासुपूज्य के साथ उनके प्रतीक एवं यक्ष-यक्षी का उत्कीर्णन प्रारम्भ हुआ। लगभग दसवीं शती ई. की एक प्रतिमा मध्यप्रदेश के शहडोल से प्राप्त है जो ध्यानस्थ मुद्रा में है। इसकी पीठिका पर महिष प्रतीक और यक्ष-यक्षी तथा परिकर में 23 जिन मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। कुम्भारिया (गुजरात) के पार्श्वनाथ मंदिर की देवकुलिका सं. 12 में भी एक मूर्ति है, जिस पर उत्कीर्ण 1202 ई. के लेख में वासुपूज्य नाम प्राप्त है।

[दु०न०ति०]

विज्ञप्ति

श्री कृष्णदास अधिकारी द्वारा मंदिर प्रवेश निषेध के अवसर पर गोसाईं जी ने भाव विह्वल होकर जिन श्लोकों से प्रभु श्रीनाथ जी के समक्ष अपना दैन्य, आत्म-निवेदन और विरह-व्यथा व्यक्त की थी-इस ग्रंथ में उसी का वर्णन है। इसे प्रार्थना ग्रंथ भी कहा जाता है। [क०उ०]

विट्ठल नाथ

अष्टछाप के संस्थापक महाप्रभु विट्ठलनाथ जी वल्लभाचार्य के अनुज पुत्र थे। इनका जन्म संवत सं. 1572 वि. को पौष कृष्ण शुक्रवार के दिन काशी के पास चुनार नामक गाँव में हुआ था। जन्म के बाद इनके पिता अपने पैतृक निवास स्थान आ गये जहाँ इनका उचित संस्कार हुआ। इनके जन्म के विषय में कल्याण के 'भक्त चरितांक' में लिखा है-''उनके प्रकट होने पर केवल तैलंग कुल ही पवित्र नहीं हुआ अपितु सम्पूर्ण भारत देश पवित्र और कृतार्थ हो गया।''

ऐसे भाग्यशाली बालक के जन्म पर अनेक उत्सवों का आयोजन किया तथा मंगल गीत गाये गये। आठ वर्ष की अवस्था होते ही उपनयन संस्कार कराकर विद्याध्ययन का मार्ग खोल दिया गया। उनकी आरम्भिक शिक्षा अड़ैल में हुई। वे अत्यंत मेधावी तथा कुशाग्र बुद्धि के थे और इसी कुशाग्रता के कारण अल्पायु में ही वेदों, उपनिषदों, दर्शन तथा भागवतादि ग्रंथों का अधिकतम ज्ञान अर्जित कर लिया। इनके दो विवाह हुए हैं। पहला विवाह लगभग संवत 1589 वि० रुक्मिणी जी से हुआ। जो इनके अग्रज गोपीनाथ जी ने कराया था जिनसे 6 पुत्र हुए। सम्वत् 1616 में रुक्मिणी जी का देहावसान हो जाने के बाद दूसरा विवाह सम्वत् 1624 के लगभग पद्मावती जी से हुआ। जिनके एक पुत्र रत्न हुआ, जिनका नाम घनश्याम था। यह भी माना जाता है कि इनके चार पुत्रियाँ भी थीं जो कुल मिलाकर ग्यारह संतानें हुईं।

विट्ठलनाथ जी के सात पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं- श्री गिरिधर जी, श्री गोविन्दराय जी, श्री बालकृष्ण जी, श्री गोकुलनाथ जी, श्री रघुनाथ जी, श्री यदुनाथ जी एवं श्री घनश्याम जी।

महाप्रभु वल्लभाचार्य जी ने सम्वत् 1576 में गोवर्धन पहाड़ी में श्रीनाथ जी का मन्दिर बनवाया। अपनी यात्राओं की व्यस्तता के कारण पूजा का कार्यभार बंगाली वैष्णवों के हाथों सौंप दिया और कृष्णदास जी को उसका अधिकारी बना दिया गया था। वल्लभाचार्य जी के तिरोधान के बाद आचार्य के पद पर विट्ठलनाथ जी के अग्रज गोपीनाथ को बिठाया गया पर वह अधिक समय तक जीवित न रहे, जिसके कारण गद्दी के दायित्त्व का भार विट्ठलनाथ जी के ऊपर आ गया। विट्ठलनाथ जी बाल्यकाल से ही श्रीनाथ जी के अनन्य भक्त थे। उनका अधिकतर समय श्रीनाथजी की सेवा में व्यतीत होता।

विट्ठलनाथ जी की भक्ति और सेवा के कारण वल्लभाचार्य जी की शिष्य मंडली में उनका विशेष स्थान था। पुष्टि सम्प्रदाय के आचार्य होते ही श्रीनाथजी की सेवा प्रणाली में वे विशेष परिवर्तन करना चाहते थे जिससे श्रीनाथ जी के वैभव की प्रतिष्ठा बढ़े। इस मंशा को उन्होंने कृष्णदास जी के सामने प्रकट किया। कृष्णदास जी ने सुनते ही इस बात को सहर्ष स्वीकार कर लिया। इसके बाद उन्होंने अनेकों यात्राएँ कर पुष्टि सम्प्रदाय का प्रचार-प्रसार किया। इस यात्रा के दौरान उन्हें जो द्रव्य प्राप्त हुआ उसे उन्होंने श्रीनाथ जी की सेवा में समर्पित कर दिया। उस धन से श्रीनाथ जी की पूजा अर्चना भली-भाँति चलने लगी किन्तु कृष्णदास जी को सन्तोष प्राप्त नहीं हुआ। उन्हें सदैव इस बात की चिन्ता घेरे रहती थी कि वह और अधिक द्रव्य कहाँ से प्राप्त करें। उसी समय एक धनी महिला गंगाबाई जो वल्लभाचार्य जी की शिष्या थी, वह श्रीनाथ जी के दर्शन के लिए मन्दिर आती रहती थी। उसके धन का कोई उत्तराधिकारी नहीं था। यह बात कृष्णदास जी को ज्ञात थी। उन्होंने उसकी प्रतिष्ठा को बढ़ाते हुए उसे अनेकों अधिकार दे दिये, जिसके कारण वह श्रीनाथ जी के भोग के समय भी उपस्थित होने लगी। इस बात को अनुचित समझकर अन्य अधिकारी कृष्णदास जी पर सन्देह करने लगे। विट्ठलनाथ जी को भी यह बात उचित नहीं लगी। अत: उन्होंने अधिकारी कृष्णदास को बिना सूचना के गंगाबाई को मन्दिर में प्रवेश करने से मना कर दिया। यह बात सुनते ही अधिकारी कृष्णदास जी ने विट्ठलनाथ जी का ही मन्दिर में प्रवेश निषेध कर दिया।

विट्ठलनाथ जी श्रीनाथ जी के दर्शनों को न पाकर अत्यंत व्याकुल हो उठे। पर अधिकारी कृष्णदास जी का भला वे उल्लंघन कैसे कर सकते थे, इसलिए वे चुपचाप परासौली गाँव के निकट चन्द्रसरोवर के किनारे फलाहार से ही अपना जीवन व्यतीत करने लगे। समय-समय पर वल्लभाचार्य जी के कई शिष्य उनसे मिलने आते और वह उनसे भगवत्

लीलाओं का प्रसंग सुना करते। इस तरह से वह छ: महीनों तक शांतिपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करते रहे, परन्तु उनके ज्येष्ठ पुत्र गिरिधर जी ने मथुरा के हाकिम से अधिकारी कृष्णदास जी की शिकायत कर उनको कैद करवा दिया। जब यह बात विट्ठलनाथ जी को ज्ञात हुई तो वे अत्यंत विचलित हो उठे और जल तक ग्रहण करने से मना कर दिया। ऐसी प्रतिज्ञा सुन मथुरा के हाकिम को तत्काल कृष्णदास को मुक्त करना पड़ा। विट्ठलनाथ जी की ऐसी उदारता से प्रभावित होकर उनके अनन्य भक्त बन गये। उन्हें श्रीकृष्ण का अवतार मान उनका गुणगान करने लगे।

कृष्णदास जी ने अपना सम्पूर्ण जीवन श्रीनाथ जी के सेवाभाव में व्यतीत कर दिया। संवत् 1607 विक्रमी में गोस्वामी विट्ठलनाथ जी को विधिवत आचार्य का पद ग्रहण कराया गया। इस पद को ग्रहण करते ही वे सम्प्रदाय की उन्नति में जुट गये। अल्पायु में ही पिता की मृत्यु हो जाने के कारण विट्ठलनाथ जी को सम्प्रदाय की भक्ति और सेवा की पद्धति का ज्ञान उन्होंने वल्लभाचार्य जी के प्रिय शिष्य श्री दामोदरदास हरसानी एवं प्रच्युतदास से प्राप्त की। विट्ठलनाथ जी ने श्रीनाथ जी सेवा भाव का विस्तार किया, उन्होंने शृंगार, भोग एवं राग में श्रीवृद्धि की एक रूपरेखा बनाई। कीर्तन की सुव्यवस्था हेतु उन्होंने 'अष्टछाप' की स्थापना की। वल्लभाचार्य जी के समय जहाँ शृंगार के दो ही उपकरणों पाग और मुकुट का प्रयोग किया जाता था वहीं अब आठ उपकरणों का प्रयोग होने लगा जो श्री बांके बिहारी जी के मस्तक पर सुशोभित होते थे। मुकुट, सेहरा, टिपारा, कुलहा, पाग, दुमाला, फेंटा, ग्वाल पगा आदि। इसके अलावा वस्त्राभूषणों की भी ऋत्वानुसार व्यवस्था की गयी थी। भोग के लिए अनेक प्रकार के व्यंजनों जैसे, छप्पन भोग, अन्नकूट आदि को ठाकुर जी के सामने समर्पित किया गया। ठाकुर जी की आठों पहर झाँकियाँ तथा विभिन्न वाद्य यंत्रों के माध्यम से पद-गान आदि की व्यवस्था आज भी देखने को मिलती है। श्रीनाथ जी की ऐसी सुन्दर झाँकियों को देखकर भक्तगण आनन्द रस में सराबोर होने लगते हैं।

गोस्वामी जी को ब्रजभूमि से बहुत स्नेह था, इसलिए वह अपना निवास स्थान वहीं बनाना चाहते थे, पर महारानी दुर्गावती के आग्रह से कुछ दिन गढ़ा नामक स्थान पर रहे। वहाँ से लौटते समय तानसेन से मिलते हुए मथुरा आ गये। जहाँ रानी दुर्गावती ने उनके लिए एक भवन बनवाया था। जिसमें वह अपने सातों पुत्रों सहित निवास कर सके। वह स्थान आज भी 'सतघरा' नाम से विख्यात है। मुगलों के अशान्त वातावरण के कारण वह स्थान उन्हें नहीं भाया। गोस्वामी जी ने अकबर से सम्पर्क किया और अकबर ने उनसे प्रभावित होकर गोकुल में उन्हें भूमि प्रदान की। इसके साथ ही तीर्थयात्रा कर, जजिया कर जैसे अनेक करों से हिन्दुओं को मुक्त कर दिया। इतना ही नहीं विट्ठलनाथ जी के निवेदन पर गौ हत्या बन्द कर तथा हत्या करने वाले को फाँसी आदि की व्यवस्था निर्धारित कर दी। यह तो निश्चित है कि अकबर के दरबार में इनकी अत्यधिक प्रतिष्ठा थी। अकबर ने फतेहपुर सीकरी में धर्मसभा का आयोजन किया था। उस सभा में विट्ठलनाथ जी भी पहुँचे वहाँ अपनी प्रबुद्धता से सभी प्रकाण्ड पंडितों को मुग्ध कर, अकबर के विशेष कृपापात्र बन गये।

वे समय-समय पर अनेकों यात्राएँ कर पुष्टि सम्प्रदाय का प्रचार-प्रसार करते और जो धन एकत्रित होता उसे वे श्रीनाथ जी की सेवा में अर्पण कर देते। 'दौ सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में उल्लखित है कि गोस्वामी जी ने 252 शिष्य बनाए तथा वेद, उपनिषद, पुराण, दर्शन आदि सैद्धान्तिक ग्रंथों का अनुशीलन कर अनेक ग्रंथों का प्रणयन किया। जिनमें से मुख्य ग्रंथ इस प्रकार हैं-सुबोधिनी की पूर्ति एवं टिप्पणी, षोडश-ग्रंथ टीका, विद्वन्मण्डन, निबन्ध प्रकाश टीका, भक्ति हंस, स्वामिनी स्तोत्र सर्वोत्तम स्तोत्र, भक्ति निर्णय तथा अनेकों टीकाएँ आदि। ब्रजभाषा के प्रति जो उनका स्नेह है वह अष्टछाप स्थापना से प्रकट होता है। उन्होंने अपना जीवन पुष्टि सम्प्रदाय की उन्नति में समर्पित कर दिया। किन्तु जब उन्हें मृत्यु निकट का आभास हुआ तो वे अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति को सात सेव्य स्वरूपों में विभाजित कर सातों पुत्रों को सौंप दिया।

इस प्रकार देवस्वरूपों को विभाजित कर सम्वत् 1642 की फाल्गुन कृष्ण सप्तमी के दिन गोस्वामी जी गिरिराज की

एक कन्दरा में प्रवेश हो गये। जब उनके ज्येष्ठ पुत्र गिरिधर जी ने उन्हें खोजने के लिये उस कन्दरा में प्रवेश किया तो केवल उनको उनका अन्तरीय वस्त्र प्राप्त हुआ, जिसे लेकर अंतिम संस्कार क्रिया सम्पन्न हुई।

पुष्टि सम्प्रदाय के प्रवर्तक तो वल्लभाचार्य जी थे पर उन्नति एवं उसको सही दिशा देने का श्रेय विट्ठलनाथ जी को ही जाता है। उन्होंने अपने कठिन परिश्रम से कृष्ण भक्ति की बेल को खूब विकसित किया यह बेल उत्तर एवं पश्चिम भारत ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारत में फैली। वे प्रकाण्ड पंडित, धर्माचार्य, श्रेष्ठ संगीतज्ञ तथा ब्रजभाषा के पोषक थे, अष्टछाप कवियों की स्थापना कर एक अमूल्य धरोहर को सँजोया। प्रभुदयाल मीतल ने अपने ग्रंथ 'ब्रज के धर्म सम्प्रदाय' में लिखा है-''ब्रज, ब्रजभाषा और ब्रज साहित्य के लिये तो उनकी देन इतनी महान है कि उसका यथार्थ मूल्यांकन करना संभव नहीं है। एक भक्ति सम्प्रदाय के गुण होते हुए भी उनके धार्मिक विचार अत्यंत उदार थे और उनका सामाजिक दृष्टिकोण प्रगतिशील था। यही कारण है कि उनके शिष्यों में बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं से लेकर शिक्षक तक धुरन्धर विद्वानों से लेकर मूर्ख तक एवं कुलीनों से लेकर क्षुद्र, अन्त्यज एवं म्लेच्छ तक थे। इन सबको उन्होंने सेवा का समान अधिकार दिया था। विभिन्न वर्णों एवं जातियों के हिन्दुओं के साथ ही साथ उस काल के अनेक मुसलमानों ने भी उनसे दीक्षा ली थी। भारत के धर्माचार्यों में गोस्वामी विट्ठलनाथ जी का स्थान अनेक दृष्टियों से अनुपम और बेजोड़ है।"

कल्याण के भक्त-चरितांक में गोस्वामी जी की महिमा का वर्णन करते हुए लिखा है कि ''गोस्वामी विट्ठलनाथजी की महिमा का वर्णन असंभव तो नहीं लेकिन कठिन अवश्य है। उनकी कीर्ति सुधा के अपार पारावार में अष्टछाप के महाकवियों ने राजरानी भक्ति का अभिषेक कर के भागवत धर्म की जो विजयिनी पताका फहराई, वह अनंतकाल तक ब्रज क्षेत्र में लहराकर स्वर्ग को पृथ्वी पर उतर आने के लिये चुनौती देती रहेगी। इनका जीवन चरित्र भगवान श्रीकृष्ण के ललित सौन्दर्य का बोध है। वे अपने समय के बहुत बड़े भागवत और भक्ति के विशेषज्ञ थे।" अत: यह कहा जा सकता है कि विट्ठलनाथ का यश कालजयी है। वह सदैव कृष्ण भक्त कवियों का मार्ग प्रशस्त करते रहेंगे।

[सं०द्वि०]

विट्ठलनाथ जी की बैठकें

श्री विट्ठलनाथ महाप्रभु वल्लभाचार्य के छोटे पुत्र थे। उनका जन्म संवत् 1572 में चरणाट में हुआ। उनकी प्रारंभिक शिक्षा काशी में हुई। पंद्रह वर्ष की आयु में ही उन्होंने वेद-वेदांग, दर्शन, पुराणादि की शिक्षा संपूर्ण कर ली थी। इसके अतिरिक्त सांप्रदायिक ग्रंथों का अनुशीलन भी भलीभाँति किया था। उनके ग्रंथों से उनकी विद्वत्ता तथा संप्रदाय की बहुमुखी उन्नति से उनकी संगठन क्षमता का परिचय मिलता है। उनके द्वारा रचित ग्रंथों में वल्लभाचार्य जी के दार्शनिक सिद्धांतों तथा भक्तितत्त्व पर प्रकाश डाला गया है। उन्होंने पुष्टि संप्रदाय का सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक विवेचन किया। उनके प्रसिद्ध ग्रंथ इस प्रकार हैं-विद्वन्मंडन, भक्ति हंस, भक्ति हेतु, शृंगार रस मंडन, विज्ञप्ति, सर्वोत्तम स्तोत्र, स्वामिनी स्तोत्र, चतु:श्लोकी, दानलीला, निबंध प्रकाश की पूर्ति और टीका, सुबोधिनी टिप्पणी, न्यासादेश विवृत्ति तथा षोडश ग्रंथ विवृत्ति आदि। 'सर्वोत्तम स्तोत्र' में वल्लभाचार्य के 108 नामों का भावनात्मक कथन किया गया है। इनके सर्वप्रसिद्ध शिष्य गोविन्द स्वामी, नंददास, चतुर्भुजदास और छीतस्वामी थे, जिन्हें अष्टछाप में सम्मिलित किया गया है।

विट्ठलनाथ जी ने श्री वल्लभाचार्य के सिद्धांतों को आत्मसात करके उनका व्यापक प्रचार किया। श्री वल्लभ की तरह उन्होंने भी अनेकों यात्रायें कीं और पुष्टि संप्रदाय की लोकप्रियता में वृद्धि की। इन्होंने प्रथम यात्रा संवत् 1600 में शुरू की और गुजरात, सौराष्ट्र से होते हुए द्वारका तक गये। संवत् 1610 में मगध तथा संवत् 1614 में गौड़ प्रदेश की यात्रायें कीं। संवत् 1616 में वे जगन्नाथपुरी की यात्रा पर गये और वहाँ जगन्नाथ जी का रथोत्सव देखने के बाद पुष्टि संप्रदाय में भी उसी प्रकार का उत्सव करना प्रारंभ कर दिया। इन सभी यात्राओं द्वारा उन्होंने कृष्ण भक्ति का प्रचार संपूर्ण

उत्तर भारत में कर दिया। उन्होंने छ: बार द्वारका की यात्रा की जिसके फलस्वरूप गुजरात, सौराष्ट्र में वल्लभ संप्रदाय की जड़ें मजबूत हो गईं। संपूर्ण ब्रज की 84 कोस की यात्रायें, जिन्हें परिक्रमा भी कहा जाता है, उन्होंने कई बार की।

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने पुष्टि संप्रदाय को व्यापक तथा लोकप्रिय बनाने के लिए अनेकों प्रयास किये। साधारण तथा विशिष्ट दोनों वर्गों से अंतरंगता स्थापित करने की दृष्टि से उन्होंने पुष्टिमार्गीय सेवा का विस्तार किया। इन्होंने संवत् 1602 में अष्टछाप की स्थापना की। श्री विट्ठलनाथ जी की साधना को जन-जन तक पहुँचाने का श्रेय अष्टछाप को ही है। गुसाईं विट्ठलनाथ जी के सात पुत्र थे, जिन्होंने अलग-अलग स्थानों पर बैठकें कीं।

गुसाईं विट्ठलनाथ जी द्वारा की गई बैठकों का विवरण इस प्रकार है-गोकुल की बैठक, गोकुल की बड़ी बैठक, वृंदावन की बैठक (वंशीवट) पर, राधाकुंड की बैठक (गोकुल), चंद्रसरोवर की बैठक, चंद्रसरोवर फूलघर की बैठक, मथुरानाथ जी मंदिर, जतीपुरा की बैठक, श्रीकुंड, कामवन की बैठक, प्रेम सरोवर की बैठक, संकेतवन की बैठक, चंद्रावली कुंड में रिथौरी की बैठक, श्रीकुंड की बैठक, श्री काराहाता की बैठक निकट जालाघेरा श्रीनाथजी, कोटवन श्री सीताकुंड की बैठक, चीरघाट की बैठक, बचावन की बैठक, श्री बेलावरी की बैठक, श्री चरनात की बैठक, श्री अदेल की बैठक, मांदादेसा की बैठक, श्री सोरभ जी की बैठक (श्रीमहाप्रभु जी की बैठक), गोधरा की बैठक, महीधर जी फूलबाई के गृह में बैठक, असाखा की बैठक, नारायण तालाब पर श्री खंभात की बैठक, श्री नारायण नगर में बाला बाद्रायन के गृह में बैठक, श्री गाग गुरग्रध की बैठक, श्री द्वारका की बैठक (निकट दौला जी मंदिर), श्री रामलक्ष्मन मंदिर में द्वारिका की बैठक। [रे०मि०]

विदग्धमाधव नाटक

'विदग्धमाधव' नामक नाटक के रचयिता श्री रूप गोस्वामी हैं। इस ग्रन्थ की रचना 1580 सम्वत में गोकुल में हुई एवं इस नाटक का नामकरण विदग्धमाधव हुआ। 'विदग्ध' शब्द का अर्थ रसिक निपुण, पारंगत, सर्वमनोहर, सुप्रसिद्ध है किन्तु विदग्ध शब्द का अर्थ ग्रन्थकार के मत में चतुषष्टि कलान्वित है। सुरम्य, मधुर, सर्वसल्लक्षणान्वित, धीर, विदग्ध, चतुर, सुखी, कृतज्ञ, दक्षिण, प्रेमवश्य, गम्भीरताम्बुधि, वरीयान, कीर्तिमान नारी मोहन, नित्य नूतन, अतुल्यकोलि, सौंदर्य, श्रेष्ठ वंशीस्वनान्वित गुण युक्त विशेष प्रेमानन्द रसों के उत्ताल-तरंगमय महावारिधि-श्रीराधा विलास विच्छेद चिन्हित माधव हैं, श्रीमान् गोकुल-युवराज।

प्रस्तुत ग्रंथ रंगालय में अभिनय के योग्य दशविध रूपक में प्रथम व प्रधानतम है। ग्रन्थकार ने साहित्य दर्पण की प्रक्रिया के वर्जनपूर्वक श्री भरत मुनि के मत से 'नाटक-चन्द्रिका' नामक ग्रन्थ की रचना की है। उस लक्षण ग्रन्थ के दृष्टान्त रूप से विदग्ध माधव, ललित माधव नाटकद्वय का प्रणयन किया। इन ग्रन्थों में नाटक के लक्षण पूर्णरूप से रक्षित हैं। नायक भेद-दिव्य, दिव्यादिव्य, आदिव्य रव्यात-मिश्र, कलृप्त, प्रस्तावना, आशीर्वाद, नमस्क्रिया, वस्तु निर्देश, नान्दी प्ररोचना, आमुख बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी एवं प्रधानकार्य व अंग कार्य अवस्था आरंभ, यत्न, प्रत्याशा, नियताप्ति, फलागम, सन्ध्यंग-मुख, प्रतिमुख, गर्भ विमर्श, उपसंहृत, द्वादश बीजभेद, त्रयोदश प्रतिमुख सन्धिभेद, चतुर्दश निर्वहण संधिभेद 36 भूषण भेद, 4 पताका स्थान, विष्कम्भक, चुलिका, अंकास्य अंकावतार, प्रवेशकादि, अर्थोपक्षेप, समूह, स्वगत, प्रकाश-जनान्तिक आदि आदि नाट्योक्ति समूह, अंकस्वरूप, गर्भांकस्वरूप अंकसंख्या: नाटकीय रस, संस्कृत प्राकृत भाषा विधान, भारती प्रभृति वृत्ति चतुष्ट्य नर्म और उसके भेद प्रभञ्जति लक्षण ग्रन्थोत्क विषयों का निर्वाह इन नाटक द्वय में सुन्दर रूप से हुआ है। प्रस्तुत ग्रन्थ में धीरोदात्त व लालित्य गुण युक्त श्रीकृष्ण ही दिव्य नायक एवं रसराज श्रृंगार हैं। इस ग्रन्थ में ब्रजलीला का वर्णन है, अर्थात् श्रीकृष्ण ब्रज से बाहर नहीं जाते हैं।

इस ग्रन्थ में सात अंक हैं-प्रथम में वेणुनाद विलास, द्वितीय में मन्मथलेख, तृतीय में श्रीराधासंगम, चतुर्थ में वेणुहरण, पंचम में राधाप्रसादन, षष्ठ में शरदबिहार एवं सप्तम में गौरी तीर्थ-बिहार वर्णन है। राधाकञ्चकण के मधुर लीला से

सम्बद्ध गौड़ीय मत का सप्तांकीय एक महत्वपूर्ण संस्कृत नाटक है। श्रृंगारिक केलियों में छल-छद्म सौन्दर्य वर्धन सिद्ध होते हैं। श्रीकृष्ण की नायकता यहाँ छल-छद्मपूर्ण है, इसमें श्रीकृष्ण एवं राधारानी की अनुरक्ति कथा को वेणुदान विलास, मन्मथलेख, राधा समागम, वेणुहरण, राधा अभिसार, शरद बिहार तथा गौरी तीर्थ विद्या के माध्यम से वर्णित किया गया है। इसके द्वार से नाटककार ने श्रीकृष्ण के माधुर्य की लोकोत्तरता का भी अभिव्यंजन किया है। इस विदग्धमाधव नाटक के सम्पूर्ण अंकों में चौंसठ कलामय श्रीराधाविलास वर्णित हुआ है। जो रस को जानने में चतुर महत पुरुष हैं वे इसका अनुशीलन करें। [शै०चौ०]

विद्वन्मण्डल

इस उच्चकोटि के ग्रंथ में प्रश्नोत्तर पद्धति पर, शंका-समाधान की दृष्टि से शुद्धाद्वैत सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। इस ग्रंथ के विषय में यह उल्लेख है कि श्री विट्ठलनाथ जी के ज्येष्ठ पुत्र श्रीगिरिधर जी युक्तिपूर्वक पक्ष प्रस्तुत करते थे, विट्ठलनाथ जी उसका खण्डन करते हुए, उत्तर पक्ष रूप में शास्त्र मर्यादित सिद्धान्तों की स्थापना करते थे। यह ग्रंथ गोकुल में विर्निमित हुआ था। इसमें 'अणुभाष्य' की पूर्ति करने का प्रयत्न किया गया है। [क०उ०]

विट्ठलराय

आचार्य विट्ठलराय जी श्री दामोदर जी के द्वितीय पुत्र थे। इनका जन्म सम्वत् 1657 के लगभग हुआ था। ये वल्लभ गद्दी के सेवायत आचार्य थे। जनश्रुति के अनुसार शाहजहाँ ने जिस काल में मंदिर निर्माण का आदेश दिया उसके कुछ समय पश्चात् सम्वत् 1690 के लगभग उसने दो फरमान जारी किये। उसी आदेश को रोकने के लिए इन्होंने गोकुल की जमींदारी की माफी मंदिरों के व्यय के लिए प्रदान की। तभी से शाहजहां के पदाधिकारी इशहाक आजम खां के द्वारा इनको सम्वत् 1703 के लगभग गोकुल में हाट बाजार पर कर लगाने तथा वसूलने का अधिकार प्रदान किया। [जि०कु०]

विमलनाथ

विमलनाथ जैन धर्म के 13वें तीर्थंकर हैं। कम्पलिपुर के शासक कृतवर्मा इनके पिता और श्यामा इनकी माता थीं। जैन परम्परा के अनुसार रानी श्यामा के गर्भ में वैशाख सुदि 12वें दिन इन्होंने प्रवेश किया। गर्भ का समय पूरा होने पर माघ सुदि तीसरे दिन उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र में वराह (शूकर) चिह्न युक्त पुत्र को श्यामा देवी ने जन्म दिया। गर्भ के समय में माता के परिणाम निर्मल रहे थे, जिससे पुत्र का नाम विमलकुमार रखा गया। युवा होने पर पिता कृतवर्मा ने विमल कुमार का विवाह अनेक कन्याओं के साथ कर दिया। विमलनाथ 15 लाख वर्ष तक युवराज पद पर रहे। 30 लाख वर्ष तक राज्य किया। फिर लोकान्तिक देवों ने आकर प्रार्थना की-हे प्रभु! दीक्षा धारण कीजिए। विमलनाथ ने सेवत्सरी दान देकर, एक हजार राजाओं के साथ हट्ठ तप सहित सहसाम्र वन में दीक्षा ग्रहण की। तीसरे दिन प्रभु विमलनाथ ने राजा जय के यहाँ पारण किया। दो वर्ष अनेक देशा में विहार कर प्रभु फिर उसी स्थान पर आए और जम्बू वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग पूर्वक रहे। क्षपक श्रेणी में आरूढ़ होकर उन्होंने धातिया कर्मों का क्षय किया और पौष वदि छठवें दिन उत्तर भाद्रपद नक्षत्र में केवल्य ज्ञान प्राप्त किया।

प्रभु विमलनाथ के शासन में 57 गणधर, 68 हजार साधु, एक लाख आठ सौ साध्वियाँ, एक हजार एक सौ चौदह पूर्वधारी, चार हजार आठ सौ अवधि ज्ञानी, नौ हजार पाँच सौ मन:पर्यायज्ञानी, पाँच हजार सौ वैक्रिय लब्धिधारी, दो लाख आठ हजार श्रावक, चार लाख चौंतीस हजार श्राविकाएँ, षड् मुख नामक यक्ष और विदिता शासन देवी सम्मिलित थे। अपना मोक्षकाल समीप जानकर प्रभु सम्भेदांचल पर आए और छ: हजार मुनियों के साथ एक मास का अन्नशन व्रत

धारण कर आषाढ़ वदि सातवें दिन मोक्ष में गए।

15 लाख वर्ष कुमारवय में, 30 लाख वर्ष तक राज्य शासन में और 15 लाख वर्ष संयम में व्यतीत कर प्रभु विमलनाथ मोक्ष को प्राप्त किए। इनका शरीर 60 धनुष ऊँचा था। प्रभु वासुपूज्य के 30 सागरोपम बाद विमलनाथ मोक्ष में गए। इनके तीर्थ में स्वयंभू वासुदेव, भद्र नामक बलदेव और मेरक प्रतिवासुदेव हुए।

विमलनाथ का प्रतीक चिह्न वराह है और यक्ष-यक्षी षण्मुख एवं विदिता (वैरोट्या) है। नवीं शती ई. की एक मूर्ति वाराणसी से प्राप्त है जो सारनाथ संग्रहालय (सं. 236) में सुरक्षित है। विमलनाथ कायोत्सर्ग मुद्रा में साधारण पीठिका पर निर्वस्त्र खड़े हैं। 1009 ई. की एक कायोत्सर्ग मूर्ति लखनऊ के राज्य संग्रहालय में है। बटेश्वर (आगरा) से मिली इस मूर्ति में विमलनाथ निर्वस्त्र हैं। 11वीं शती ई. की एक कायोत्सर्ग मूर्ति पटना संग्रहालय (सं. 10676) में सुरक्षित है। प्रतीक युक्त दो मूर्तियाँ बारभुजी एवं त्रिशूल गुफा (खण्डगिरि, ओडिशा) में हैं। विमलवसही की देवकुलिका सं. 50 में एक मूर्ति है, जिस पर अंकित 1188 ई. के लेख में विमल नाम प्राप्त है तथा पीठिका के बाएँ छोर पर यक्षी अम्बिका निरूपित है। [दु०न०ति०]

विरजानन्द

पुराणों में वर्णित पुराण धर्म का पालन करने वाली, भगवान कृष्ण की जन्मस्थली मथुरा में रहकर 'आर्यसमाज' के जन्मदाता श्री विरजानन्द ने अपनी विद्वत्ता एवं योग्य शिष्य दयानन्द द्वारा पुराणों के मूर्तिपूजन के विपरीत निराकर ईश्वर, वेद वर्णित ज्ञान के परिष्कृत प्रकाश को विकीर्ण करना प्रारम्भ कर सम्पूर्ण भारत एवं अन्यान्य देशों में उसका प्रकाश फैलाया।

आर्यसमाज मत के आदि प्रवर्त्तक श्री विरजानन्द जी का जन्म वि. सं. 1835 में पंजाब के करतारपुर नगर के गंगापुर गाँव में हुआ। आपके पिता भारद्वाज गोत्र के सारस्वत विप्र थे जिनका नाम श्री नारायण दत्त था। दण्डी विरजानन्द जी का मूल नाम क्या था यह अभी तक अज्ञात है। किन्तु यह निश्चित है कि इनके संन्यास आश्रम में दीक्षित होने के पश्चात् इनका गुरुप्रदत्त नाम दण्डी स्वामी विरजानन्द हुआ।

जब विरजानन्द केवल 5 वर्ष की अवस्था के थे तभी शीतला रोग के कारण उनकी नेत्र ज्योति समाप्त हो गई। ये जन्मजात मेधावी थे अत: इनका अन्धत्त्व इनकी विद्या प्राप्ति में बाधक नहीं हुआ। इनके पिताश्री ने इनको योग्य शिक्षा दीक्षा के लिये अग्रसर किया, ये शिक्षा में आगे बढ़ते गये। इस मध्य में जब यह 11 वर्ष के थे तब इनके माता-पिता इन्हें छोड़कर स्वर्गवासी हो गये। कुछ दिनों तक इनके भाई-भाभी ने इनका सहयोग किया। किन्तु भाई-भाभी की घोर उपेक्षा से पीड़ित होकर आप अपने जन्मस्थान को छोड़कर हरिद्वार चले गये।

हरिद्वार के निकटवर्ती क्षेत्र ऋषिकेश तथा कनखल में इन्होंने संस्कृत तथा व्याकरण की उच्च कोटि की शिक्षा ग्रहण की। व्याकरण में दक्ष होने के कारण इन्होंने वेदों का भी अध्ययन सुचारु रूप से किया। कनखल में विद्यार्थी जीवन में ही इन्होंने 'पूर्णाश्रम' नामक सुशिक्षित संन्यासी से संन्यास आश्रम की दीक्षा ग्रहण की। संन्यास ग्रहण करने के समय ही गुरु प्रदत्त नया नाम दिये जाने के कारण ये दण्डी स्वामी विरजानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुये। नेत्र शक्ति रहित होने के कारण इनको प्रज्ञा चक्षु कहा जाने लगा।

वि.सं. 1904 में श्री दण्डी स्वामी विरजानन्द जी मथुरा आये। इनके आगमन के समय यह मथुरा (समस्त ब्रज क्षेत्र) प्राचीन भारतीय सभ्यता, भागवदीय धर्म एवं संस्कृत भाषा का शिक्षण केन्द्र था। मथुरा के संस्कृति एवं संस्कार सम्पन्न मथुरा वासियों से वह प्रभावित हुये। आपने पूर्ण मनोयोग से यहाँ एक विद्यालय की स्थापना की।

विरजानन्द जी के आगमन के समय प्राचीन मथुरा नगरद्वार वर्तमान होली गेट से प्रारम्भ होकर यमुना किनारे-किनारे कंस किला एवं गऊघाट तक था। आपने नगर द्वार से थोड़ा आगे चलकर विश्राम घाट के सामने गताश्रम नारायण में

पहला विद्यालय प्रारम्भ किया। कुछ माह पश्चात ही कंसखार नामक स्थान पर दो मंजिला मकान किराये पर लेकर स्थायी रूप से संस्कृत विद्यालय का संचालन किया। आप विद्या दान का कोई शुल्क नहीं लेते थे। मथुरा आगमन से पूर्व दण्डी स्वामी जी से रजवाड़ों के परिवार के बच्चों ने भी अध्ययन किया था अत: वह सभी राजा स्वामी जी की सेवा करते रहते थे।

स्वामी विरजानन्द सिद्धान्त कौमुदी आदि ग्रंथों को न पढ़ाकर ऋषि प्रणीत अष्टाध्यायी, भाष्य आदि ग्रंथों का अध्ययन कराते थे। उनका विद्यालय शिक्षणकाल और शिक्षा प्रणाली आर्यसमाज के इतिहास में बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। गुजरात से आने वाले दयानन्द स्वामी को वैदिक धर्म के उद्धार हेतु आर्यसमाज संस्थान निर्माण करने की प्रेरणा विरजानन्द से ही प्राप्त हुई।

श्री दण्डी स्वामी विरजानन्द जी का अन्तिम समय मथुरा में ही व्यतीत हुआ। अपने अंतिम समय तक छात्रों को आप अध्ययन कराते रहे। श्री स्वामी जी चाहते थे कि ऋषि प्रणीत ग्रंथों का पठन-पाठन तथा उनका प्रचार सम्पूर्ण भारत देश में होना चाहिये। इसके लिए उन्होंने आगरा, जयपुर, अलवर आदि के राजाओं से आग्रह किया किन्तु उनकी इच्छा की पूर्ति न हो सकी। किन्तु कुछ काल पश्चात उनके प्रिय शिष्य स्वामी दयानन्द जी ने उनकी इच्छा को सब प्रकार से पूर्ण किया।

आश्विन कृष्णा 13 विक्रम सम्वत 1925 को 89 वर्ष की अवस्था में दण्डी स्वामी श्री विरजानन्द जी ने परलोक को प्रस्थान किया। उनके आर्य सम्बन्धी तथा वेद सम्बन्धी सभी सिद्धान्तों का प्रकाश सम्पूर्ण भारत में उनके प्रिय शिष्य स्वामी दयानन्द सरस्वती ने विकीर्ण किया। श्री दयानन्द जी तथा उनको वैदिक शिक्षा देने वाले विरजानन्द जी की तपस्थली यह मथुरा आज भी इन दोनों महापुरुषों का गुणगान करती है। [गो०प्र०पा०]

विल्बमंगल

श्रीकृष्ण भक्ति के अद्‌भुत ग्रंथ श्रीकृष्ण कर्णामृत के रचयिता आचार्य श्री लीलाशुक विल्वमंगल का नाम संस्कृत के श्रीकृष्ण भक्ति साहित्य में प्रमुखता से लिया जाता है। प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन करने से विल्बमंगल नाम से तीन आचार्यों का पता चलता है, किंतु प्रमुख विद्वानों के कथन-उपकथनों से यह सिद्ध होता है कि श्री कृष्ण कर्णामृत के रचयिता श्री लीलाशुक विल्बमंगल का जन्म दक्षिण भारत में कृष्णवेना नदी के पश्चिमी तट पर स्थित एक ग्राम के कुलीन ब्राह्मण परिवार में हुआ था। विद्वानों ने उनका जन्म 12वीं शताब्दी निर्धारित किया है, कुछ विद्वानों ने इनके पिता का नाम 'श्री रामदास' माना है, किंतु प्रसिद्ध विद्वान श्रीकृष्णदास कविराज ने अपनी टीका में 110वें श्लोक का उदाहरण देते हुये इनके पिता का नाम ''दामोदर और माताश्री का नाम नीवी'' माना है। उन्होंने लिखा है कि ''राधाकृष्ण चरण अनुरागी श्री दामोदर-नीवी के पुत्र श्री लीलाशुक विल्ब द्वारा रचित श्रीकृष्ण कर्णामृत शत-शत् कल्पों तक भक्तों के हृदय में कृष्ण भक्ति का आनंद सागर प्रवाहित करता रहेगा।''

उक्त नदी के पूर्वीतट पर एक दूसरा नगर था, वहाँ चिंतामणि नामक अति रूपवती वाद्य नृत्य-गायन में प्रवीण वेश्या रहती थी। एक दिन श्री विल्बमंगल अपने निजी कार्य से उस नगर में गये और वहाँ चिंतामणि का नृत्य-गान देखा जिससे पूर्वजन्म की स्मृति जाग्रत हुई और वे उसे देखते ही मंत्रमुग्ध हो गये। ऐसे ब्रह्मतेज युक्त विल्बमंगल को देखकर नवयौवना चिंतामणि भी उन पर आसक्त हो गयी। उसने विल्बमंगल को पाकर अन्यत्र जाना आना छोड़ दिया। विल्बमंगल ने भी अपने घर आना-जाना छोड़ दिया और विवाहित होते हुए भी वे चिंतामणि के यहाँ रहने लगे। विल्बमंगल के इस आचरण का प्रभाव उनके पिता के मन पर बहुत बुरा पड़ा, वे बीमार पड़ गये और कुछ ही दिनों में स्वर्गवासी हो गये, पत्नी की अनुनय-विनय और चिंतामणि के समझाने पर वह अपने पिताश्री का श्राद्ध कर्म करने घर तो गये किंतु वहाँ उनका मन नहीं लगा। श्राद्ध कर्म पूर्ण करके घोर रात्रि में ही विल्बमंगल अपने घर से चल दिये, रात्रि

में नदी पर नाव न मिलने से नदी में बहते हुए शव को पकड़कर नदी पार की किंतु रात्रि में चिंतामणि का द्वार बंद था। घोर अंधकार था, घर के पिछवाड़े विल्बमंगल को एक लटकती रस्सी दिखाई दी उसे पकड़कर चढ़ गये और अंधकार के कारण मकान के आँगन में गिर गये और ऊपर से गिरते ही बेहोश हो गये।

कुछ गिरने की आवाज सुनकर घर की सेविका जागी, दीप जलाकर देखा कि विल्बमंगल घायल अवस्था में पड़े हैं। उसने मालकिन चिंतामणि को जगाया और बताया। चिंतामणि उन्हें उठवाकर अंदर लाई। कुछ उपचार के बाद विल्बमंगल को चेतना आई। उसने उन्हें सूखे वस्त्र दिये, सारा वृत्तांत पूछा और जाकर देखा, घर के पिछवाड़े एक विषधर लटक रहा है। नदी पार करने की बात से ज्ञात हुआ कि कोई बहते हुए मृत शरीर को पकड़कर पार आये, उधर विल्बमंगल के घोर रात्रि में घर से जाने पर उनकी पतिव्रता साध्वी पत्नी अति दुखी हुई। उसने जाकर नदी में कूदकर प्राण त्याग दिये।

इस सारे वृत्तांत से चिंतामणि को दुख हुआ और क्रोधित होकर विल्बमंगल से बोली-

जैसौ मन मेरे हाड़ चाम सौं लगायौ,
तैसौ श्याम सौ लगावे तोपै जानिये सयानिके।
मै तो भयै भोर, भजौ युगलकिशोर,
अब तैरो तुही जाने, चाहौ करौ मन मानिके॥

अरे मूर्ख धिक्कार है जैसा मन तूने मेरे में लगाया है, ऐसा मन यदि तूने भगवान श्यामसुंदर में लगाया होता तो मैं तुम्हें सयाना मानती। मैं प्रात: होते ही जुगलकिशोर के भजन में ध्यान लगाऊँगी, अब तू जान तेरा काम जाने।

चिंतामणि की सच्ची फटकार का प्रभाव विल्बमंगल के हृदय पर पड़ा। उनके हृदय कपाट खुल गये, धिक्कार-धिक्कार शब्द कहते हुये विल्बमंगल फूट-फूट कर विलाप करने लगे। मन को कुछ धैर्य होने पर विल्बमंगल उठे और चिंतामणि को गुरु रूप में प्रणाम किया और नगर के पास के सोमगिरी जी के आश्रम पहुँचकर अपनी समस्त आपबीती पूज्य सोमगिरी जी को सुनाकर चरणों में प्रणाम कर दीक्षा लेने का आग्रह किया। एक वर्ष तक गुरु आश्रम में गुरु सेवा की। गुरु कृपा से विल्बमंगल के हृदय में वृंदावनबिहारी, ब्रजनंदन श्रीकृष्ण के प्रति प्रेमाभक्ति जाग्रत होकर मन में रोमांच होने लगा। भक्तिशास्त्रों तथा काव्यों का अध्ययन होने से अद्‌भुत भावपूर्ण श्लोकों में श्रीकृष्ण का लीलागान होने लगा। रसिक मुकुटमणी श्री शुकदेव मुनि की भाँति सरस श्रीकृष्ण लीलागान की अद्‌भुत शक्ति का विकास देखकर गुरु श्री सोमगिरी जी ने इन्हें लीलाशुक नाम प्रदान किया, तभी से उनका लीलाशुक विल्बमंगल नाम विख्यात हुआ। गुरु आज्ञा और हृदय सागर में श्रीकृष्ण भक्ति का ज्वार विल्बमंगल को वृंदावन की ओर ले चला। मार्ग में नेत्रों की चंचलता के कारण एक सुंदर युवती से सुई लेकर अपने दोनों नेत्र फोड़ लिये। वृन्दावन आकर यमुना किनारे एक कुटिया में रहने लगे। ऐसा कहा जाता है कि विल्बमंगल पर रीझे श्रीकृष्ण उन्हें प्रतिदिन दूध-भात भरा दौना खिलाने आते थे।

वृन्दावनबिहारी के हाथ से दूध-भात का दौना पाकर तथा मधुर, मृदुल वंशी की ध्वनि सुनकर अपने हाथों से फोड़े हुये उनके नेत्रों में पुन: नेत्र ज्योति आ गयी। उधर जुगलबिहारी के गुणगान गाती, वीणा बजाती चिंतामणि भी वृंदावन आ पहुँची। सामने चिंतामणि को देख स्वयं ही प्रथम स्वर निकल पड़ा, ''चिंतामणि जयति'' जिसकी कृपा से यह सौभाग्य पथ प्राप्त हुआ है उस भक्ति पथ प्रदर्शक गुरु स्वरूपा श्री चिंतामणि की जय हो। विल्बमंगल की दिव्य वाणी मुखरित होती गयी और श्रीकृष्ण कर्णामृत के श्लोकों की माला बनती चली गयी।

लीलाशुक विल्बमंगल और चिंतामणि की दिव्य जोड़ी के भेंट होने पर विल्बमंगल के हाथ में दूध-भात का दौना देखकर चिंतामणि ने पूछा यह दूध-भात कहाँ से आया। जुगलबिहारी की कृपा का सारा वृत्तांत विल्बमंगल ने चिंतामणि

को बताया और अपने हाथ के दौना को चिंतामणि की ओर बढ़ाया। चिंतामणि ने मना करते हुए कहा "हाँ जब श्री श्यामसुन्दर ही अपने हाथों से ऐसा कृपा प्रसादी दूध-भात का दौना देंगे, तभी ग्रहण करूँगी। विल्वमंगल घर आये अतिथि और परमार्थ पथ दिखाने वाले गुरु के सामने कैसे प्रसाद ग्रहण करते। दोनों ही भूखे रहकर अपने जुगलबिहारी का कीर्तन करने लगे, दोनों की भक्ति और प्रेमनिष्ठा को देखकर भक्तवत्सल श्री श्यामसुन्दर श्री राधारानी के साथ प्रकट हो गये। श्रीराधारानी जी ने अपने हाथ से दूध-भात का दौना मुस्कराते हुये चिंतामणि को दिया। इस रासविलासिनी अनुपम अनूठी जोड़ी का दर्शन कर के दोनों कृतार्थ हुए।

श्रीधाम वृन्दावन के सुख पुंज कुंजों में श्री प्रिया-प्रियतम की नित्य निकुंज लीलाओं का मधुरगान करते रहे और इन भावना के साथ समयान्तर पर नित्य लीला में प्रविष्ट हो गये। उनके भक्तों ने दोनों की समाधि बनवा दी। आज भी वृन्दावन धाम के गोपीनाथ बाजार में दोनों की समाधि है। जिनका पुन: जीर्णोद्धार एक भव्य समारोह में भारत के उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश श्री रंगनाथ मिश्र जी द्वारा संपन्न हुआ। विद्वानों द्वारा श्री विल्वमंगल का काल निर्धारण संवत् 1250 से 1350 के मध्य किया जाता है।

श्री लीलाशुक विल्वमंगल ने श्री कृष्ण कर्णामृत के अतिरिक्त निम्नलिखित ग्रंथों की रचना भी की थी–

श्री कृष्ण बाल चरित्र-इस ग्रंथ में श्रीकृष्ण के बालस्वरूप और बाल लीलाओं के 285 श्लोक हैं।

श्री कृष्ण क्रीड़ा काव्य-इसमें श्रीकृष्ण की क्रीड़ाओं का सरस वर्णन है।

श्री विल्वमंगल स्तोत्र- इस ग्रंथ में कई अध्याय हैं, जिनमें श्रीकृष्ण चरित्र के अतिरिक्त शिव, नृसिंहादि अवतारों के स्तोत्र हैं। इसमें 369 श्लोक हैं।

श्री कृष्णाह्निक कौमुदी- इसमें श्रीराधाकृष्ण की अष्टयाम लीलाओं का वर्णन है।

सुमंगल स्तोत्र-इस ग्रंथ में तीन शतक तथा कुल 383 श्लोक हैं।

श्री कृष्णा स्तोत्र-इसमें 1091 श्लोक हैं।

विल्वमंगल नाम कोष-इसमें 101 श्लोक हैं। आज भी बंगाल में इसका प्रकाशन हो रहा है।

श्री गोविन्द दामोदर स्तोत्र-यह स्तोत्र आज भी गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित हो रहा है। [श०बि०दु०]

विलासाचार्य

श्री किशोरदास जी कृत निजमत सिद्धांत के अनुसार श्री विलासाचार्य जी सखी भावना में उच्च कोटिस्थ थे। स्वभावत: अत्यंत निस्पृही और निरपेक्ष रहते हुए आप युगल सेवापरायण और शरणापन्न रहते थे। निरंतर वृन्दावन में ही इनका निवास रहता था। पहले 60 फिर और फिर 30 वर्षों तक इन्होंने ऐसे कठिन व्रत का पारायण किया कि किसी का अन्न-जल न लेते हुए आप केवल श्रीसर्वेश्वर प्रभु को समर्पित प्रसाद को ही ग्रहण करते थे। विद्वानों के मतानुसार 25 श्लोकी 'सविशेष-निर्विशेष श्रीकृष्णस्तवराज' इन्हीं की रचना है। आचार्य पीठ पर वैशाख शुक्ल अष्टमी को श्रीविलासाचार्य जी पीठासीन हुए। इसी दिवस इनका पाटोत्सव समारोहपूर्वक मनाया जाता है। [कुं०बि०श०]

विवेकधैर्याश्रय:

इस प्रकरण ग्रंथ में 17 श्लोक हैं। इसमें वल्लभ ने 'विवेक' और 'धैर्य' के स्वरूप की व्याख्या की है। विवेक का अर्थ है यह जानना कि ईश्वर की इच्छा ही बलवती है। जीव को वे ही वस्तुएँ प्राप्त होती हैं जो भगवान उसे देना चाहते हैं। जीव को किसी वस्तु के प्रति लालसा या आकांक्षा रखना उचित नहीं है। जो कुछ भगवान दें, उसे सादर ग्रहण करना चाहिये, वही उनका प्रसाद है। धैर्य का अर्थ है- त्रिविध तापों और सर्वविध दु:खों को अनुद्विग्नभाव से सहन करना। जीव की नियति भगवान की इच्छा है, उसका आदर करना जीव का कर्तव्य है। [क०उ०]

विश्वाचार्य

भगवान निंबार्क के शिष्य पांचजन्य शंखावतार श्रीनिवासाचार्य जी के शिष्य श्री विश्वाचार्य जी हैं। इन्होंने गुरुदेव के पश्चात् 80 वर्षों तक निंबार्काचार्य पद का निर्वहन किया। निजमत सिद्धांतकार के अनुसार विश्वाचार्य जी का जन्म गंगा तटस्थ ब्रह्मावर्त क्षेत्र में हुआ। इनके पिता मारिष्ट द्विज थे, जो स्वयं अत्यंत विद्वद् पुरुष थे। विश्वाचार्य जी की गुरुदेव श्रीनिवासाचार्य जी भेंट तीर्थाटन करते हुए काशी, जगन्नाथ धाम (पुरी), दक्षिण प्रदेश, राजस्थान, पंजाब तथा कश्मीर आदि क्षेत्रों के बाद कुरुक्षेत्र में सरस्वती नदी के तट पर हुई। जहाँ श्रीनिवासाचार्य जी से चर्चा का इनके जीवन दर्शन पर व्यापक प्रभाव पड़ा। इन्होंने शास्त्रोक्त मर्यादा, वाद-विवाद और युगल उपासना का अद्भुत समन्वय अपने गुरुदेव में पाया। इन्होंने विश्वधारी स्तोत्र, प्रपत्ति चिंतामणि की टीका आदि की रचना की। विश्वाचार्य जी का पाटोत्सव फाल्गुन शुक्ल चतुर्थी को मनाया जाता है। निकुंज उपासना में आप 'विश्वाभा' सखी के अवतार माने जाते हैं।[कुं०बि०श०]

विशिष्टाद्वैत दर्शन

चेतनाचेतन विभाग विशिष्ट ब्रह्म के अभेद के प्रतिपादक सिद्धांत को विशिष्टाद्वैत कहते हैं। श्री यामुनाचार्य ने अपने ग्रंथों में इसी सिद्धांत का युक्तियुक्त प्रतिपादन किया है। इसी मत को रामानुजाचार्य ने आगे बढ़ाया। आचार्य जी के सिद्धांत प्रतिपादन के उपजीव्य ग्रंथ बोधायन टीका और श्री द्रविड़ाचार्य के भाष्य थे। वेदांत सूत्रों के प्रथम भाष्यकार आचार्य द्रविड़ थे जिसको परवर्ती आचार्यों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से अपनाया है।

आचार्य रामानुज ने अपने पूर्व प्रचलित अद्वैतवाद को ही अपने ढंग से प्रस्तुत किया है। अद्वैतवाद में एकमात्र ब्रह्म की सत्ता स्वीकार की गई है किन्तु रामानुज ने चित्-अचित् और ब्रह्म एक में ही तीन का समावेश माना है। यद्यपि जीव, जगत और ब्रह्म ये तीनों तत्त्व भिन्न-भिन्न हैं। तथापि जीव और जगत ये दोनों ईश्वर के ही शरीर हैं। आचार्य जी ने ब्रह्म में स्वगत भेद को स्वीकार किया है। इसके अनुसार ब्रह्म विराट पुरुष है और सम्पूर्ण विविध विश्व उसमें समाविष्ट है तो ब्रह्म का जीव एवं जगत के साथ स्वगत भेद है। रामानुज ब्रह्म को अद्वैत मानते हुए भी उसे जीव और जगत इन दोनों से विशिष्ट मानते हैं। इस प्रकार रामानुज का सिद्धांत अद्वैत है, लेकिन उस अद्वैत में भी एक विशिष्टता है, वह एक के अंतर्गत भेद भी मानता है। विशेषणों से युक्त 'विशेष' को मानने के कारण ही इस मत को विशिष्टाद्वैत कहते हैं। रामानुज के अनुसार उपनिषदों के निर्गुण ब्रह्म का अर्थ है कि ब्रह्म में अशुभ गुण नहीं हैं, ब्रह्म सभी पूर्णताओं और शुभ गुणों की परिणति है। ब्रह्म अनन्त, ज्ञानवान, आनन्दस्वरूप, ज्ञानशक्ति आदि अच्छे गुणों से युक्त, समस्त जगत का सृष्टि, स्थिति एवं संहार करने वाला, विचित्र शरीर धारण करने वाला, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को देने वाला तथा लक्ष्मी, भू एवं लीला का नायक है। वह भक्तों का आश्रयदाता, अशक्तों के लिए शक्तिस्वरूप, अपराधियों के लिए क्षमा-स्वरूप, अज्ञानियों के लिए ज्ञानस्वरूप तथा दुष्ट हृदय वालों के लिए सुहृद स्वरूप है। वह भक्तों के ऊपर अनुग्रह करने तथा जगत की रक्षा करने के उद्देश्य से स्वकीय लीला से पाँच प्रकार के रूपों को धारण करता है-(1) पर (2) व्यूह (3) विभव (4) अर्चावतार तथा (5) अन्तर्यामी। परब्रह्म की उच्चतम अवस्था है जिसे नारायण भी कहा गया है। वह बैकुंठ में निवास करता है। यहाँ उनकी धर्मपत्नी भी उनके साथ है। यह लक्ष्मी ईश्वर की सृजनात्मक शक्ति का प्रतीक है। व्यूह वे स्वरूप हैं, जिन्हें ब्रह्म भक्तों पर दया दिखाने के लिए धारण करता है। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध चतुर्विध व्यूह। वासुदेव ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति तथा तेज षड्गुणों से सम्पन्न परब्रह्म हैं। संकर्षण में ज्ञान तथा बल, प्रद्युम्न में ऐश्वर्य और वीर्य, अनिरुद्ध में शक्ति और तेज गुण प्रकट रहते हैं। विभव भगवान के रामादि अवतार विभव रूप हैं। ईश्वर दुष्टों के नाश, साधुओं की रक्षा तथा धर्म की संस्थापना के लिए अवतार लेते हैं। अन्तर्यामी रूप में परमात्मा जीवों की आत्मा का अन्तर्यामी होकर नियमन करता है। अर्चावतार रूप में ईश्वर विधिपूर्वक मंत्रों द्वारा पवित्र की गयी प्रतिमाओं अथवा विग्रह में निवास करता है।

विशिष्टाद्वैत सिद्धांत में जीव ब्रह्म के समान चेतन है और ब्रह्म का शरीर है, किन्तु ब्रह्म विभु है जीव अणु है। ब्रह्म जीव में सजातीय या विजातीय भेद नहीं है अपितु स्वगत भेद है। यद्यपि जीव संख्या में अनन्त हैं, फिर भी उनके तीन वर्ग हैं–(1) नित्य (2) मुक्त और (3) बद्ध। नित्य जीव वे जीव हैं जो बैकुंठ में निवास करते हैं। ये सदा ईश्वर की सेवा में रहते हैं। भगवान के अवतार के समान इनके अवतार भी स्वेच्छा से ही होता है। अनन्त, गरुड़ आदि नित्य जीव हैं। मुक्त जीव वे जीव हैं जो अपने ज्ञान तथा भक्ति के द्वारा मोक्ष को प्राप्त करते हैं। बद्ध जीव वे जीव हैं जिनका सांसारिक जीवन अभी समाप्त नहीं हुआ है। ब्रह्मा से लेकर अति तुच्छ कीड़े-मकोड़े तक सभी जीव बद्ध हैं।

रामानुज ब्रह्म को 'प्रकारी' तथा जीव एवं जगत् को 'प्रकार' मानते हैं। जगत ईश्वर के अचित् तत्त्व की अभिव्यक्ति है, जगत को प्रकृति कहते हैं। जीव के समान जड़ जगत भी ब्रह्म का विशेषण है, इस प्रकार प्रकृति ब्रह्म से अपृथक है। शंकराचार्य के 'विवर्तवाद' के स्थान पर रामानुज 'परिणामवाद' पर विश्वास करते हैं। ब्रह्म का जगत में परिवर्तन उतना ही वास्तविक है, जितना दूध का दही में परिवर्तन। इसे कभी-कभी 'ब्रह्म परिणामवाद' के नाम से भी जाना जाता है। अचित् तत्त्व जड़ तथा विकार युक्त है। इसके तीन भेद माने गये हैं-(1) शुद्ध तत्त्व (2) मिश्र तत्त्व (3), सत्व शून्य। शुद्ध तत्त्व को 'नित्य विभूति' भी कहते हैं। इसमें शुद्ध सत्व गुण रहता है। रजोगुण तथा तमोगुण नहीं रहते। इसीलिए यह नित्य है। इसी से भगवान के व्यूह, विभव आदि निर्मित होते हैं। मिश्र तत्त्व में तीनों के गुणों के मिश्रित होने के कारण यह प्राकृतिक सृष्टि का कारण है। इसी का दूसरा नाम माया, अविद्या तथा प्रकृति है। सत्व शून्य तीनों गुणों से शून्य तत्त्व है। इसे 'काल' भी कहते हैं। यह प्रकृति तथा प्राकृतिक पदार्थों का हेतु है। यह ईश्वर की लीला में सहायक है। रामानुज ने इसे माया रूप में स्वीकार किया है।

रामानुज मत में मोक्ष का तात्पर्य जीव तथा ब्रह्म के एक हो जाने से नहीं है। मोक्ष दशा में शरीर, ज्ञान तथा आनन्द सबका भान होता है, परंतु मुक्तावस्था में जो शरीर मिलता है, वह अलौकिक है। मुक्त जीव बैकुंठ में शरीरधारी होकर भगवान के सान्निध्य का आनन्द लूटते हैं। रामानुजाचार्य के अनुसार मोक्ष की प्राप्ति भगवान के अनुग्रह से ही होती है। मोक्ष प्राप्ति के चार उपाय हैं-कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग और प्रपत्ति। इन चारों में से रामानुज 'प्रपत्ति' को सर्वश्रेष्ठ मार्ग मानते हैं। जब तक जीव भगवान की शरण में नहीं जाता उसका कल्याण नहीं हो सकता। बैकुंठ में भगवान का किंकर बनना ही परम मुक्ति है। [क०उ०]

विष्णुपुराण

विष्णु पुराण के मुख्य वक्ता ऋषिवर पराशर और मुख्य श्रोता मैत्रेय ऋषि हैं। इसके छः भाग और 97 अध्याय हैं। नारद पुराण के अनुसार इसकी श्लोक संख्या 23000 है परन्तु उपलब्ध पुराण में श्लोक संख्या लगभग 16000 है। इसमें महापुराण के सभी लक्षण विद्यमान हैं। आदि अंश (सर्ग) में देवताओं आदि की उत्पत्ति, समुद्र मंथन, ध्रुव, प्रह्लाद आदि के उपाख्यान हैं। दूसरे अंश में भूगोल विवरण, नरकों का वर्णन, प्रियव्रत आदि का चरित है। तृतीय खंड में 35वें से 37वें अध्यायों में ऋग्वेद और अन्य वेदों की शाखाओं आदि का वर्णन है। चतुर्थ भाग में वैवस्वत मनु, इक्ष्वाकु, मांधाता, निमि आदि की वंशावलियों का निरूपण है। भगवान राम के अवतार का 52वें अध्याय में संक्षिप्त वर्णन है। ययाति की वंशावलि का वर्णन करते हुए यदुवंश, कार्तवीर्य सहस्रार्जुन के चरित्र का वर्णन किया गया है। पंचम भाग में केवल वासुदेव श्रीकृष्ण की कथा है। जिसके अंतर्गत भगवान श्रीकृष्ण के जन्म की कथायें हैं।

69वें अध्याय में पूतना द्वारा विषयुक्त स्तन से कृष्ण को मारने का प्रयास और उसका उद्धार, शकटभंजन और यमलार्जुन के उद्धार की कथा है। 70वें अध्याय में कालिय दमन का वर्णन है। 72वें तथा 73वें अध्याय में गोवर्धन पूजा का वर्णन है। 74वें अध्याय में रासलीला का वर्णन है। 75वें से 80वें अध्याय में अक्रूर का वृन्दावन में आगमन और श्रीकृष्ण द्वारा कंस के वध का वर्णन है।

उपनयन संस्कार के उपरान्त दोनों भाई अविन्तपुर में सांदीपनि मुनि से 64 दिनों में ही सम्पूर्ण विद्या की प्राप्ति करने का वर्णन है। इसके पश्चात् रहस्य संग्रह सहित सम्पूर्ण धनुर्वेद में पारंगत हो गये। जरासन्ध ने अठारह बार मथुरा पर आक्रमण किया, जिसमें सत्रह बार उसे पराजय का मुँह देखना पड़ा एवं अठारहवीं बार आक्रमण से पहले ही कृष्ण ने समुद्र में द्वारका नगरी बसाने तथा मथुरावासियों को वहाँ भेजने का वर्णन है। बलराम एवं रेवती तथा कृष्ण-रुक्मिणी विवाह का वर्णन किया गया है। प्रद्युम्न जन्म, शम्बरासुर वध, नरकासुर वध, उषा-अनिरुद्ध विवाह इत्यादि का भी वर्णन है। जाम्बवन्ती के पुत्र साम्ब का दुर्योधन की पुत्री लक्ष्मणा से विवाह, यदुवंश के नाश एवं श्रीकृष्ण के परम धाम गमन की कथा का वर्णन है।

छठे भाग में ही नैमित्तिक और प्राकृत प्रलय का विस्तार से वर्णन है। पराशर जी कहते हैं कि इस पुराण के श्रवण मात्र से पाप पुंज नष्ट हो जाते हैं। प्रथम यह पुराण ब्रह्मा जी ने भृगु ऋषि को सुनाया था। पराशर जी ने पुलस्त्य ऋषि जी से यह पुराण प्राप्त किया। [क०उ०]

विष्णुप्रिया

गौरांग महाप्रभु की दूसरी पत्नी विष्णुप्रिया थीं। इनके पिता का नाम सनातन मिश्र था। अपनी माता के बहुत आग्रह पर गौरांग महाप्रभु ने इनसे विवाह किया था। विवाह के पश्चात महाप्रभु अपने पूर्वजों के श्राद्ध हेतु गया तीर्थ की यात्रा पर गये। वहाँ पर ही उनकी भेंट ईश्वरपुरी से हुई। उनसे दीक्षा लेकर वे कृष्ण-चैतन्य हो गये। गया से लौटकर वे भजन-कीर्तन में निमग्न रहने लगे। उसके बाद उन्होंने संन्यास ले लिया।

विष्णुप्रिया जी का पूरा जीवन करुण विलाप की कथा है। उनके ऊपर बंग साहित्य में अनेक रचनायें लिखी गई हैं-जपानन्द का 'चैतन्य मंगल', लोचनदास का 'श्रीचैतन्य मंगल', ईशान नागर के 'अद्वैत प्रकाश', मनोहर दास के 'अनुराग वल्ली', नित्यानन्द के 'प्रेम विलास', प्रेमदास के 'बन्शीशिक्षा', शिशिर कुमार घोष के 'अमिय निमाई चरित', 'निमाई संन्यास नाटक' तथा मैथिलीशरण गुप्त के काव्य 'विष्णुप्रिया' में विष्णुप्रिया की जीवन-लीला के विभिन्न पक्षों का वर्णन किया गया है। [क०उ०]

विष्णुसहस्रनाम भाष्य

भगवान गणेश द्वारा लेखनीबद्ध तथा श्रीकृष्णद्वैपायनव्यास द्वारा विरचित ज्ञान के अथाह महासागर के पाँच दिव्य रत्न विद्वानों द्वारा परम आदर से ग्रहण किये गये हैं। ये हैं विदुर नीति, यक्ष-प्रश्न, श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीविष्णुसहस्रनाम तथा सनत्सुजातीय।

श्रीविष्णुसहस्रनाम महाभारत के अनुशासनिक पर्व के अन्तर्गत भीम, युधिष्ठिर संवाद के रूप में है। श्रीविष्णुसहस्रनाम में 142 श्लोक हैं जिनमें सहस्रनाम की विशेषता तथा इसके पाठ से भगवान विष्णु की स्तुति तथा प्राप्त होने वाले फल का वर्णन है।

महाभारत में कथा आती है कि भीष्म पितामह रणभूमि में अर्जुन के बाणों से हत होकर बाणशय्या पर मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे थे। मृत्युवरण के समय निर्धारण का उन्हें वरदान प्राप्त था। सूर्य के उत्तरायण होने पर शुभ घड़ी में वे शरीर त्याग करना चाहते थे। युद्ध समाप्त हो चुका था तथा युधिष्ठिर हस्तिनापुर के शासक बनाये गये थे। युधिष्ठिर को महान भीष्म पितामह से अधिक विद्वान तथा अनुभवी व्यक्ति नहीं मिल सकते थे। अनुशासनिक पर्व युधिष्ठिर और भीष्म पितामह के प्रश्नोत्तर रूप में है। युधिष्ठिर के प्रश्नों के समाधानस्वरूप भीष्म पितामह ने भगवान के जिन परम पवित्र सहस्रनामों का उपदेश किया उसे ही श्रीविष्णुसहस्रनाम कहा जाता है। इसमें भगवान के एक हजार नामों के माध्यम से उनके चरित्र का वर्णन किया गया है जिसे बिना भाष्य के समझ पाना दुरूह है। इसी कारण से आचार्यों के द्वारा इसका भाष्य किया गया

है। इन भाष्यों में आद्यशंकराचार्य जी के द्वारा किया गया सबसे प्राचीन भाष्य सर्वप्रतिष्ठित है। इनके अतिरिक्त पराशरभट्ट, श्रीरामानुजाचार्य के अनुयायी के द्वारा किया गया भाष्य भी प्राप्त होता है। श्रीमध्वाचार्य के द्वारा किये गये प्रत्येक नाम के 100 अर्थ भी प्राप्त होते हैं। सहस्रनाम से तात्पर्य एक हजार नामों से है।

श्रीविष्णुसहस्रनाम में 815 नाम एक बार, 75 नाम दो बार, 9 नाम तीन बार तथा 02 नाम चार बार आये हैं। किन्तु आचार्यों ने एक से अधिक बार आये नामों के भाव भिन्न-भिन्न किये हैं। वास्तव में श्रीविष्णुसहस्रनाम श्रीमद्भगवद्गीता, उपनिषद् तथा पुराणों के अनुसार परमात्मा के संबंध में की गई व्याखाओं का सार है। आद्यशंकराचार्य जी ने तो प्रत्येक नाम के संबंध में अन्य शास्त्रों के संदर्भ भी विस्तार से उद्धृत किये हैं। इससे उनका भाष्य परम दिव्य, सारगर्भित होने के साथ-साथ आध्यात्मिक साहित्य में अद्वैतवाद के महत्वपूर्ण आलेख के रूप में प्रतिष्ठित है।

भगवद्पाद आद्यशंकराचार्य जी के द्वारा श्रीविष्णुसहस्रनाम का भाष्य किये जाने के पीछे कुछ कथायें हैं। वास्तव में आद्यशंकराचार्य जी श्रीललितासहस्रनाम पर भाष्य लिखना चाह रहे थे। इस हेतु उन्होंने अपने शिष्य को श्रीललितासहस्रनाम की पांडुलिपि लाने का आदेश दिया। शिष्य श्रीविष्णुसहस्रनाम की पांडुलिपि लेकर आ गया। उन्होंने शिष्य को पुनः श्रीललितासहस्रनाम की पांडुलिपि लाने का आदेश दिया किन्तु शिष्य पुनः श्रीविष्णुसहस्रनाम की पांडुलिपि ले आया। तीन बार इसकी पुनरावृत्ति होने पर आद्यशंकराचार्य जी ने उनके द्वारा श्रीविष्णुसहस्रनाम का भाष्य किये जाने को भगवान का आदेश माना। श्रीललितासहस्रनाम पर भाष्य बाद में श्रीभाष्कराय जी के द्वारा किया गया।

एक अन्य कथा के अनुसार सात वर्ष की अवस्था में आद्यशंकराचार्य जी किसी प्रकार अपनी माता से संन्यास की आज्ञा लेने के पश्चात् नर्मदातट पर स्थित आश्रम में गुरु गोविन्दपादाचार्य जी के पास पहुँचे। गुरु से संन्यास दीक्षा प्रदान किये जाने का निवेदन किया। गोविन्दपादाचार्य जी ने उनकी कम आयु देखकर उनके ज्ञान की परीक्षा लेनी चाही। उन्होंने पूछा कि क्या श्रीविष्णुसहस्रनाम के विषय में जानते हो। तुरन्त आद्यशंकराचार्य जी ने कहा क्या मैं सुनाऊँ। गोविन्दपादाचार्य जी ने कहा कक्ष में जाओ और इस पर अपना मत लिखो। गुरु ने प्रातः पूजन के उपरांत शंकराचार्य जी से उनके मत के विषय में जानना चाहा। आद्यशंकराचार्य जी ने उनके समक्ष परम ज्ञान से परिपूर्ण भाष्य प्रस्तुत किया। उनके द्वारा इसमें श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास आदि शास्त्रों से संदर्भ ग्रहण कर अद्वितीय भाष्य अति उत्तम संस्कृत भाषा में किया गया था। विद्वानों का मत है कि आद्यशंकराचार्य जी कृत भाष्य इतना सटीक, स्पष्ट और श्रेष्ठ है कि इसमें से न तो एक भी शब्द हटाया जा सकता है और न ही जोड़ा जा सकता है। गोविन्दपादाचार्य जी ने उस दिव्य कृति को देखकर निश्चित कर लिया कि आद्यशंकराचार्य जी को इतनी कम आयु में भी वेद, वेदांगों तथा संस्कृत भाषा का परिपूर्ण ज्ञान है। गुरु ने उन्हें संन्यास दीक्षा प्रदान कर दी। आद्यशंकराचार्यजी ने भाष्य में कहा है-'आत्मानं विष्णुं ध्यात्वाऽर्चनस्तुतिनमस्कारादि कर्तव्यम्'। अर्थात् यह पूजा-स्तुति और नमस्कारादि विष्णु भगवान् को आत्मरूप से चिन्तन करके करने चाहिये। इससे अद्वैतभाव की पुष्टि होती है। [ग०शं०पा०]

विष्णुस्वामी

विष्णुस्वामी को लेकर मतभेद है कि वल्लभ सम्प्रदाय के आदि संस्थापक कौन से विष्णुस्वामी हैं क्योंकि इतिहास में कई विष्णुस्वामियों का उल्लेख मिलता है। विष्णुस्वामी का समय-निर्धारण भी सम्भावना के ही आधार पर किया जाता है। आधुनिक विद्वान तीन-चार विष्णुस्वामियों की कल्पना करते हैं। पहले विष्णुस्वामी तमिल प्रदेश के पाण्ड्य राजा के राजपुरोहित देवेश्वरभट्ट के पुत्र थे 'वल्लभदिग्विजय' में देवेश्वरभट्ट का नाम देवस्वामी बताया गया है। इन विष्णुस्वामी का दूसरा नाम देवतनु भी था। इन्होंने 'सर्वज्ञसूक्त' नामक ग्रंथ की रचना भी की थी। यह ग्रंथ भाष्यरूप था किन्तु यह भाष्य किस ग्रंथ अथवा विषय पर था, यह ज्ञात नहीं है। दूसरे विष्णुस्वामी कांचीपुरम् के निवासी राजगोपाल विष्णुस्वामी थे। इनका जन्म सन् 830 के लगभग हुआ था। तीसरे विष्णुस्वामी वल्लभ सम्प्रदाय के आदि आचार्य माने

जाते हैं, सर भण्डारकर इनका समय तेरहवीं शताब्दी मानते हैं। प्रोफेसर काणे ने अपने धर्मशास्त्र के इतिहास में एक और विष्णुस्वामी का उल्लेख किया। ये तमिल प्रदेश के ब्राह्मण थे तथा कावेरी नदी के तट पर रहते थे। इस कारण इन्हें 'कावेरी-विष्णुस्वामी' भी कहा जाता था।

यदुनाथ जी महाराज द्वारा रचित 'वल्लभदिग्विजय' में इन विष्णुस्वामी का परिचय इस प्रकार दिया गया है-विष्णुस्वामी दक्षिण के पाण्ड्य राजा विजय के राजगुरु देवस्वामी के पुत्र थे। इन्होंने अपने मत का प्रचार करने के लिए द्वारका, वृन्दावन और पुरी की यात्रा की। अधिक आयु होने पर इन्होंने अपने द्वारा अभिपूजित भगवद्विग्रह (मूर्तियाँ) अपने पुत्र को सौंप कर वैष्णव विधि से संन्यास ग्रहण किया और कांची चले आए। यहाँ पर इनके अनेक शिष्य बने, जिनमें से देवदर्शन, श्रीकण्ठ, शतधृति और पराभूति आदि प्रमुख थे। अपनी मृत्यु के पूर्व इन्होंने अपने मत के प्रचार का भार देवदर्शन को सौंपा। देवदर्शन के सात सौ प्रमुख शिष्य थे जो इस मत के प्रचार में संलग्न थे। दक्षिण में विष्णुस्वामी सम्प्रदाय के जो मंदिर और ग्रंथ थे उन्हें बौद्धों ने जला दिया था। 'श्रीकृष्णकर्णामृतम्' के रचयिता लीलाशुक बिल्वमंगल इन विष्णुस्वामी की ही शिष्य परम्परा में थे। विष्णुस्वामी के सम्प्रदाय के ही एक और प्रसिद्ध आचार्य थे गोविन्दाचार्य, वल्लभाचार्य इनके शिष्य कहे जाते हैं। इस विवरण से स्पष्ट ज्ञात होता है कि 'वल्लभदिग्विजय' के रचयिता यदुनाथ महाराज वल्लभाचार्य को निश्चित रूप से विष्णुस्वामी की ही परम्परा में मानते हैं। [क०उ०]

विहार पंचमी

ब्रजमंडल के वृन्दावन में मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमी विहार पंचमी के नाम से संज्ञित है। इस दिन ठा. बांकेबिहारी महाराज का प्राकट्योत्सव श्रद्धा और धूमधाम से मनाया जाता है। प्राकट्य स्थली पर भोर से ही बधाई गायन व महाभिषेक की प्रक्रिया आरम्भ होती है। ठा० बांकेबिहारी आज से लगभग 500 वर्ष पूर्व मार्गशीर्ष मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी को प्रकट हुये थे। प्राकट्यस्थली निधिवनराज मंदिर में इस अवसर पर हजारों भक्त दुग्ध, दही, घृत, शहद, यमुना जल, गुलाब जल, जड़ी-बूटियों एवं पारंपरिक पद-पदावलियों की अनुगूँज के मध्य ठाकुरजी के महाभिषेक में सम्मिलित होते हैं और बधाई गायी जाती है। मंदिर प्रांगण और बाहर चबूतरे पर वस्त्र और झालरों की आकर्षक सजावट होती है। इस दिन बांकेबिहारी जी महाराज को पीत वस्त्र धारण कराते हैं और वे मोर मुकुट, कटि-काछनी पहन तथा स्वर्ण आभूषण धारण कर भक्तों को दर्शन देते हैं। वैसे तो ठाकुरजी को अनेक सामग्रियों का भोग लगता है। किन्तु आज के दिन भगवान को पंच मेवा युक्त हलुआ का विशेष भोग अर्पण किया जाता है। आज के दिन ठाकुरजी का भोग स्वामी हरिदास जी के साथ लगाया जाता है तथा इस दिन पारंपरिक चाव (शोभायात्रा) का आयोजन होता है। [प्र०श०]

वीठल विपुल

स्वामी हरिदास जी के प्रधान शिष्य स्वामी वीठल विपुल जी थे। ये स्वामी जी के रक्त संबंधी और भतीजे थे। आशुधीर जी के तीन पुत्र थे-स्वामी हरिदास जी, स्वामी जगन्नाथ जी एवं स्वामी गोविन्द जी। बीठल विपुल जी गोविन्द जी के ज्येष्ठ पुत्र थे। इनका जन्म हरिदासपुर (अलीगढ़) में मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमी को हुआ था। स्वामी जी के वंशज होने के कारण ये भी सारस्वत ब्राह्मण थे। ये स्वामी जी के अनुयायी और भक्त थे। स्वामी विरक्त होकर जब वृन्दावन आए तो बीठल विपुल जी भी उनके साथ वृन्दावन आए और उनके प्रथम शिष्य हुए। ये जीवन भर स्वामी जी के साथ निधिवन में निवास कर प्रिया-प्रियतम की सेवा में और उनके लीलागान में रत रहे। गुरु के प्रति इनका तीव्र भाव था, उनसे थोड़ी देर का वियोग भी उनके लिए असहनीय था। गुरु के निकुंजगमन के बाद सात दिन पर्यंत इन्होंने अन्न-जल नहीं लिया।

संतों ने जब उनकी यह स्थिति देखी तो उनके सहज आनंद के लिए रास का आयोजन किया। वहाँ स्वामी जी को

न देख अपना शरीर इन्होंने त्याग दिया। हरिदासी सम्प्रदाय के अष्टाचार्यों में इनका प्रथम स्थान है। इनकी वाणी का संकलन अष्टाचार्यों की वाणी में आदरपूर्वक किया गया है। कुल चालीस पदों की रचना इन्होंने की है, लेकिन इनके भाव और अनुपमेयता के आधार पर भक्तमालकार श्रीनाभा जी ने इन्हें रससागर कहा है। राधावल्लभीय रसिक श्री ध्रुवदास जी ने भी उनकी प्रशंसा करते हुए कहा है-

हमारें माई स्यामा जू कौ राज।
जाके आधीन सदाई साँवरौ या ब्रज कौ सिरताज॥
यह जोरी अविचल वृन्दावन नाहिं आन सों काज।
श्रीबीठलविपुल बिहारिनि के बल दिन जलधर ज्यौं गाज॥ [ल०बि०गो०]

वेदान्त कामधेनु

यह श्री निम्बार्काचार्य की रचना है। इसमें केवल दस श्लोक होने कारण यह 'दशश्लोकी' के नाम से प्रसिद्ध है। सम्प्रदाय के सिद्धान्त पक्ष के उद्घाटन में यह बड़ी महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई है। इसके आरम्भिक दो श्लोकों में जीव तत्त्व निरूपण, तृतीय श्लोक में जगत् या अचेतन तत्त्व निरूपण, चतुर्थ श्लोक में श्रीकृष्ण का परात्परत्व वर्णन, पंचम श्लोक में श्रीकृष्ण के वामांग में विराजमान श्रीराधा का तात्त्विक चिन्तन तथा युगलोपासना का रहस्य-निरूपण, षष्ठ श्लोक में ब्रह्म-विद्या निरूपण, सप्तम श्लोक में जीव, जगत और ब्रह्म का स्वाभाविक भेदाभेद सम्बन्ध निरूपण, अष्टम श्लोक में साधन प्रणाली, नवम श्लोक में भक्ति तत्त्व निरूपण और दशम श्लोक में शरणागति एवं कृपा तत्त्व का विवेचन किया गया है। इस ग्रंथ पर श्री पुरुषोत्तमाचार्य ने 'वेदान्त रत्न मंजूषा' नाम से भाष्य लिखा है तथा श्री हरिव्यास देवाचार्य ने 'सिद्धान्त रत्नांजलि' नाम से विस्तृत व्याख्या की है। [वै०ना०ज्ञा०]

वेदान्त कौस्तुभ

वेदान्त कौस्तुभ के रचयिता श्री निम्बार्काचार्य के प्रधान शिष्य श्री निवासाचार्य जी थे। इस ग्रंथ में निम्बार्क कृत 'वेदान्तपारिजात सौरभ' की विशद् व्याख्या की गई है। श्री निवास जी ने इस वृहत् भाष्य की रचना निम्बार्क कृत ब्रह्मसूत्र भाष्य की सरल, संक्षिप्त व्याख्या पर शास्त्रार्थ में उत्पन्न तर्क-वितर्क के समाधानार्थ की थी। वेदान्तकौस्तुभ की प्रस्तावना से इस बात की पुष्टि होती है। इसमें विपक्षियों का प्रबल खण्डन तथा द्वैताद्वैत मत का पूर्ण समर्थन किया गया है। यह प्रकाशित ग्रंथ है। [क०उ०]

वेदान्त कौस्तुभ प्रभा भाष्य

उपनिषद् का दूसरा नाम वेदान्त है। वेद का तात्पर्य है-ज्ञान। वेदान्त का तात्त्पर्य है-जहाँ ज्ञान का अन्त हो। अत: ज्ञान की जहाँ चरम सीमा हो, उसे वेदान्त कहते हैं। इसे वेद का अन्तिम भाग भी कह सकते हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने वेदव्यास के रूप में अवतार लेकर 'ब्रह्मसूत्र' शास्त्र की रचना की। उपनिषदों का तात्पर्य निर्धारण करने वाला एक विशेष शास्त्र ब्रह्मसूत्र है।

जगद् विजयी केशव काश्मीरि भट्टाचार्य ने 'वेदान्त कौस्तुभ प्रभा भाष्य' की रचना की है। आप श्री निम्बार्क सम्प्रदाय के आद्याचार्य निम्बार्क महामुनीन्द्र के पश्चात् तेतीसवीं पीढ़ी के आचार्य हुए हैं। आप आदिवाणी युगल शतक के रचयिता श्री भट्ट देव के दीक्षा गुरु थे।

वेदान्त कौस्तुभ प्रभा भाष्य के संस्कृत टीकाकार पं. अमोलक राम जी शास्त्री के अनुसार इनका जन्म आंध्रप्रदेश के

वैदूर्यपत्तन नामक नगर में हुआ था। ये वेद-वेदांग के महान पंडित कहलाए। इन्होंने अपने समय में अनेकानेक प्रतिद्वन्द्वियों को शास्त्रार्थ में परास्त किया था। आपका अधिकांश समय कश्मीर में व्यतीत हुआ, इसलिए आप केशव काश्मीरि भट्टाचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुए।

द्वैताद्वैत मत का खण्डन एवं इस प्रकार की विचारधाराओं के निराकरण हेतु एक विशिष्ट भाष्य ग्रंथ की जरूरत थी। अत: तेरहवीं सदी में अवतरित होने वाले प्रकाण्ड विद्वान केशव काश्मीरि भट्टाचार्य ने 'वेदान्त कौस्तुभ प्रभा भाष्य' नामक ग्रंथ का निर्माण कर उक्त आवश्यकता को पूर्ण किया। ब्रह्म सूत्र वृत्ति वाले इस ग्रंथ में मायावादियों के अध्यासवास, निर्विशेष ब्रह्मवाद, नि:सम्बोधित मोक्षवाद, अवच्छेद वाद, प्रतिबिम्बवाद आदि का खण्डन विभिन्न तर्कों के आधार पर किया गया। इनके द्वारा प्रस्तुत सभी तर्क उच्चतम दार्शनिक भाषा में हैं।

उपर्युक्त बिन्दु के अतिरिक्त अन्यान्य विषयों से सम्बन्धित सूत्रों का विश्लेषण करते हुए शांकर विचारधारा की श्रीकेशव काश्मीरि ने विस्तार से समीक्षा की है। श्री शंकराचार्य के निर्विशेष ब्रह्म आदि सिद्धान्तों को श्री केशव काश्मीरि जी ने श्रुति, स्मृति तथा भगवद गीता के विरुद्ध सिद्ध करके दिखाया है।

श्री भट्टाचार्य कृत 'वेदान्त कौस्तुभ प्रभा भाष्य' ग्रंथ वास्तव में निम्बार्क सम्प्रदाय का महान गौरव है तथा समस्त वैष्णव सम्प्रदाय अनुरागियों के लिए पूर्णरूपेण सम्माननीय है। निम्बार्क सम्प्रदाय के अतिरिक्त अन्य कृष्णानुरागी भगवद् भक्त प्रेमियों के लिये तथा विभिन्न दार्शनिकों के लिये यह ग्रंथ अवश्य ही शोध का विषय है और अध्यात्म जगत एवं दर्शन शास्त्र की बहुत-सी दुविधाओं को दूर करने वाला ग्रंथ है। [गो०प्र०पा०]

वेदान्त पारिजात सौरभ

वेदान्त पारिजात सौरभ निम्बार्काचार्य प्रणीत सिद्धान्त ग्रन्थ है। बादरायण व्यास के ब्रह्मसूत्र की व्याख्या इसमें देखने को मिलती है। 'निम्बार्क भाष्य' तथा 'निम्बार्क वेदान्त' नाम से भी इसका उल्लेख किया जाता है। ब्रह्मसूत्र की यह वृत्ति सरल और वेदान्त सार संयुक्त है। यह खण्डन-मण्डन आदि आक्षेपों से भी सर्वथा रहित है। ब्रह्मसूत्र के अनुसार ही इसका क्रम रखा गया है। इसमें चार अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में चार पाद हैं और प्रत्येक विषय को अधिकरण की संज्ञा दी गई। ऐसे सूत्र समूहों के अनेक अधिकरणों में यह वृत्ति पूर्ण हुई है। सूत्रों की व्याख्या के साथ ही उपनिषद्ों के प्रमाण सहित उनकी पुष्टि भी की गई है। इसमें निम्बार्काचार्य ने तत्त्वत्रय अर्थात् ब्रह्म, जीव और जगत का विवेचन करते हुए उनमें अपने द्वैताद्वैत मत का प्रतिपादन किया है। इसमें अन्य पक्ष जैसे माया, मुक्ति एवं साधन आदि का भी विश्लेषण किया गया है। श्रीनिम्बार्काचार्य के शिष्य श्रीनिवासाचार्य ने इस ग्रंथ का विस्तृत भाष्य 'वेदान्त कौस्तुभ' नाम से लिखा तथा काश्मीरी केशवाचार्य ने 'प्रभा' नामक इस ग्रंथ की टीका लिखी है। [वै०ना०ज्ञा०]

वेदान्तरत्नमंजूषा

यह निम्बार्क कृत वेदान्त कामधेनु पर वृहत् विवरणात्मक भाष्य है। इसके रचयिता श्रीनिम्बार्काचार्य से सातवें आचार्य श्री पुरुषोत्तमाचार्य थे। वेदान्तरत्नमंजूषा में ब्रह्म, जीव, जगत् आदि तत्त्वत्रय-निरूपण के साथ ही उसमें स्वाभाविक भेदाभेद सम्बन्ध का प्रतिपादन किया गया है। साथ ही माया, मुक्ति, ज्ञान, भक्ति तथा परिणामादि पर भी विशद् चर्चा की गई है। अद्वैतवाद की आलोचना भी इसमें दृष्टव्य है। यह प्रकाशित ग्रंथ है। [क०उ०]

वेदान्तस्यमन्तक

आकार दृष्ट्या यह भी प्रमेयरत्नावली के सदृश लघुकाय है। इसको भी सिद्धान्तरत्न की भांति कतिपय विद्वान् बलदेव विद्याभूषण की रचना नहीं मानते हैं। परन्तु अनेक विदग्ध मनीषी इसे बलदेव की कृति स्वीकार करते हैं। इसके

विवेच्य को देखकर इसे विद्याभूषण की निर्मिति माना जाना असमीचीन नहीं प्रतीत होता। ब्रह्मसूत्र गोविन्द भाष्य के सामासिक तत्त्व बोधनार्थ इस ग्रंथ की भी अपनी स्थिति है। इसलिए इसे गोविन्द भाष्य की लघु सिद्धान्त कौमुदी भी कहा जा सकता है।

इसमें कुल 6 किरण (अध्याय) हैं। प्रमाण की मीमांसा प्रथम किरण में हुई है। प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि, सम्भव एवं ऐतिह्य प्रमाणों में मात्र तीन प्रत्यक्ष अनुमान और शब्द प्रमाणों को असन्दिग्ध कोटि में रखा गया है। इस त्रयी में भी शब्द प्रमाण की प्रामाणिकता सर्वाधिक है। यह अत्यभिचारी, स्वतन्त्र तथा सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है।

प्रमेयों की द्वितीय किरण में प्रस्तुति है। ईश्वर, जीव, प्रकृति, काल एवं कर्म-ये 5 प्रमेय हैं। प्रमेयों में स्वातन्त्र्य तथा सर्वनियामकत्त्व का सौभाग्य मात्र ईश्वर को प्राप्त है। जीव का स्वरूप एवं ईश्वर से उसके पृथक रूप का ज्ञान तृतीय किरण का वर्ण्य है। इसमें जीवात्मा के भगवत्दासत्त्व का भी कथन है। ब्रह्म तथा जीव के वैभिन्न को तात्त्विक प्रतिष्ठा देते हुए वेदान्तस्यमन्तक इन्हें कल्पना या किसी की बुद्धि की उपज नहीं मानता, प्रत्युत इन्हें शास्त्र प्रमाणित बतलाता है।

प्रकृति का स्वरूप चतुर्थ किरण में लक्षित है। पंचम किरण काल तत्त्व का परिचय प्रस्तुत करता है। षष्ठ किरण का सम्बन्ध कर्म परिचय से है। कर्म के लक्षण के साथ इसके भेदों की भी यहाँ चर्चा है। शुभ और अशुभ कर्म के प्रकार हैं। काम्य, नित्य एवं नैमित्तिक भी उसके अन्य भेद हैं।

अनुवाद के साथ श्री श्यामलाल गोस्वामी के निर्देशन में यह बंग लिपि में प्रकाशित हुआ था। देवनागरी में भी यह सानुवाद वृन्दावन से प्रकाशित किया गया था। [क०उ०]

वैष्णव सम्प्रदायों में वृन्दावन वास

ब्रज-वृन्दावन में निवास और यहीं मुक्ति की चाह रखने वाले साधकों ने पिछले सैकड़ों वर्षों में इस विषय की लिखित परम्परा को इतना समृद्ध किया कि इनका संकलन स्वयं में एक महाग्रंथ रचने में सक्षम है। इस परम्परा पर केन्द्रित प्रकाशित साहित्य के साथ ही इसका एक बड़ा पक्ष आज भी पाण्डुलिपियों के रूप में निम्बार्क, राधावल्लभ, गौड़ीय हरिदासी, ललित एवं चरणदासी आदि वैष्णव सम्प्रदायों के साहित्य में अप्रकाशित ही बना हुआ है जो वृन्दावनी उपासना के इस अनूठे वैशिष्ट्य से जुड़ा स्वतन्त्र विषय है। उपासना के इस धरातल को उसी पवित्र दृष्टि से देखें तो आज भी वो वृन्दावन है, वह भाव भी है और वे साधक भी, जो वृन्दावन को इसी भाव से जीते हैं कि मृत्यु के बाद भी हम इन्हीं निकुंजों में रमे रहें और रसपान करते रहें युगल सरकार के नित्य विहार का। तभी तो सब जग में अनूठा है— ''वृन्दावन वास पाइबे कौ बुलउआ।''

बुलावे शब्द का जगत में बड़ा विस्तार है। ब्रजभाषा में कहें तो 'बुलउआ'। सांसारिक बंधनों में बुलउआ कई तरह के हैं जो अवसर विशेष पर इस आशय से लगाये जाते हैं कि समाज एकत्र हो, लोग आवें और मनोरथ सफल होवै। पर इसके विपरीत इन बंधनों से मुक्त होने वाला एक बुलउआ और भी है, वृन्दावनवास पाइबे कौ बुलउआ। वृन्दावनी समाज में इस बुलावे की परम्परा बहुत पुरानी है। आज भी यहाँ किसी पुरुष या महिला की पूर्णायु होने पर व्यवहारी जनों के घर के मुख्य द्वार पर यह टेर दी जाती है कि ... ''फलाने नैं वृन्दावनवास पायौ है।'' वृन्दावन में निवास करते हुए परलोक प्रस्थान, फिर इसके बाद कौन से वृन्दावन का वास? आवश्यकता इस पारम्परिक मर्म को समझने की है। प्रसिद्ध वाणीकार ध्रुवदास जी ने कहा है - ''वृन्दावन की भूमि में, मरिवो मंगल आहि . . .'' बात कोई एक या दो दिन की नहीं, यह वृन्दावन में सैंकड़ों सालों से पल्लवित उस भावात्मक मान्यता का प्रतिफल है जिसमें राधा-कृष्ण के चिंतन में रचे-पगे विरक्त-गृहस्थ साधक यही चाहते थे कि मैं मृत्यु-पर्यन्त ब्रज-वृन्दावन में ही निवास करूँ। यहाँ इस बात का महत्त्व तब और अधिक बढ़ जाता है जब दृष्टि इस मान्यता से जुड़ी लिखित परम्परा पर केन्द्रित होती है। ब्रज-वृन्दावन में निवास और यहीं मुक्ति की चाह रखने वाले साधकों ने पिछले सैंकड़ों वर्षों में इस विषय की लिखित परम्परा को इतना समृद्ध किया कि इनका संकलन स्वयं में

एक महाग्रंथ रचने में सक्षम है। इसके अन्तर्गत वन-वृन्दावन गायन की 500 सालों की समृद्ध शृंखला में धाम निष्ठा, वृन्दावन महिमा, वृन्दावन-अष्टक, षोडसी, बत्तीसी, शतक एवं मृत्युपर्यन्त वृंदावन की लता-कुंजों में निवास जैसी वैविध्यपूर्ण मान्यताओं का चरम उत्कर्ष ब्रजभाषा साहित्य के इस पक्ष की अपनी विशेषता है। 16वीं सदी में वृन्दावनी उपासना के साधक हरिराम व्यास जी की वृन्दावन के प्रति चाहना देखिये—

किशोरी मोहि अपनौ करि लीजै।
और दिये कछु भावत नांहि, श्री वृन्दावन दीजै॥
खग मृग पशु पंछी या वन के, चरन सरन रख लीजै।
व्यास स्वामिनी की छवि निरखत, महल टहलनि कीजै॥

इस परम्परा पर केन्द्रित प्रकाशित साहित्य के साथ ही इसका एक बड़ा पक्ष आज भी पाण्डुलिपियों के रूप में निम्बार्क, राधाबल्लभ, गौड़ीय हरिदासी, ललित एवं चरणदासी आदि वैष्णव सम्प्रदायों के साहित्य में अप्रकाशित ही बना हुआ है जो वृन्दावनी उपासना के इस अनूठे वैशिष्ट्य से जुड़ा स्वतन्त्र विषय है। ब्रजभाषा के समानान्तर ही यह परम्परा संस्कृत में भी चली जिसमें प्रबोधानन्द सरस्वतीपाद की रचना 'वृन्दावन महिमामृतम' का अपना विशेष स्थान है। वास्तव में मृत्यु पर्यन्त वृन्दावन निवास से जुड़े इस पवित्र भाव की परिणति ही तो थी कि वृन्दावन भक्ति और भक्तों की राजधानी बन उठा। ब्रज की लोकमान्यता में मोक्षप्रदायिनी मुक्ति भी स्वयं की मुक्ति के लिये यहाँ की पावन रज को मस्तक पर धारण करने हेतु लालायित दिखती है—

मुक्ति कहै गोपाल सौं मेरी मुक्ति बताय।
ब्रज रज उड़ि मस्तक लगै मुक्ति मुक्त भई जाय॥

मोक्ष प्रदायिनी मुक्ति ही नहीं स्वयं भक्ति भी वृन्दावन की पुण्य भूमि पर आकर निहाल हुयी थी। श्रीमद्भागवत में उल्लेख है भक्ति द्रविण में जन्मी, पालन-पोषण कर्नाटक में हुआ और गुर्जर आदि प्रदेशों में काल के प्रवाह से जर्जर हो चली। यह वृन्दावन की दिव्यता का प्रभाव ही है कि वृन्दावन आगमन के साथ ही वह अपने पूर्ण स्वरूप को प्राप्त कर नृत्यरत हुयी—''**धन्यं वृन्दावनं तेन भक्तिर्नृत्यति यत्र च**'' भक्ति का यह नर्तन ही तो यहाँ उपासना की विविधताओं को बताने वाला है। साधकों लिये तो यहाँ आज भी युगल सरकार का नित्य रास है, तभी तो ये किसी भी कीमत पर इस दिव्य रास स्थली को नहीं छोड़ना चाहते। किसी भी परिस्थिति में वृन्दावनवास न छूटे, यहाँ के साधक इसके प्रति तटस्थ थे। राधाबल्लभ सम्प्रदाय के वाणीकार ध्रुवदास जी ने कहा भी है—

खण्ड-खण्ड ह्वै जाय तन अंग-अंग सत टूक।
वृन्दावन नहीं छाड़िवौ, छाड़िवौ है बड़ी चूक॥

वृन्दा की इन निकुंजों का आकर्षण ही तो था कि 16वीं सदी में ओरछा दरबार के राजगुरु हरिराम व्यास जी वृन्दावन आने को लालायित हो उठे—

हरि हम कब होंगै वनवासी।
कब मिलि हैं वे सखी-सहेली हरिवंशी-हरिदासी॥

यहाँ प्रिया-प्रियतम का नित्य रास है और नित्य बसंत। शुक सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य श्यामाचरणदास जी ने अमर लोक लीला में लिखा है—

अखण्ड रास लीला अमर, नित वृंदावन धाम।
नित विहार जंह होत है चरन दास कौ वास॥

वास्तव में वृन्दावनी उपासना के साधक इसी दिव्य वृन्दावन में निवास के लिये ही यहाँ जीवनभर साधनारत रहकर उस दिन की प्रतीक्षा करते हैं कि कब इनके युगल सरकार उन्हें यह सौभाग्य प्रदान करेंगे। यही कारण है कि वृन्दावन की कुंज गलियों में भ्रमण करते समय पग-पग पर उन श्रद्धावान सन्त-साधकों, रानी-राजमाताओं और राजे-महाराजों के समाधि स्मारक दर्शित होते हैं जो बस यही चाहते थे कि हम मृत्युपर्यन्त इसी दिव्य वृन्दावन में रमे रहें। [रा० श०]

वृन्दावन की कुंज संस्कृति, मंदिर

वृंदावन के प्रति आकर्षण से जुड़े युग-युगीन कारण बताते हैं। इसका वन से नगर बनना और कालांतर में मंदिर-नगर के रूप में प्रतिष्ठित होने के पीछे दो बातें खास हैं। पहली बात युगल सरकार राधा-कृष्ण एवं उनकी सखी-सहचरियों के द्वारा महारास हेतु, ब्रज के 12 वनों में से वृंदावन का चयन और दूसरे वृन्दावन की लोकप्रियता से जुड़ी अभिव्यक्तियों की वह शृंखला जो यह बताती है कि ये हर युग में खास रहा है। वास्तव में ये दोनों दृष्टि आज भी वृंदावन के लिये उतनी ही प्रासंगिक हैं जितनी तब थीं। ''**मंदिरों का नगर वृंदावन**'' की दृष्टि से अगर हम इस पवित्र वन की पूर्व पीठिका को समझने की कोशिश करें तो 16वीं सदी की विभाजन रेखा के आधार पर, इससे पूर्व एवं बाद में वृंदावन के विषय में अलग-अलग कालक्रमों से प्राप्त विचार यही बताते हैं, कि जब अपनी रासस्थली के रूप में स्वयं युगल सरकार राधाकृष्ण ने ही इसे प्रतिष्ठित किया हो तो इसकी मूल पहिचान, कुछ और हो ही नहीं सकती। यही कारण है कि लगभग 6वीं सदी के दौरान रघुवंशम् जैसे प्रसिद्ध महाकाव्य की रचना करने वाले महाकवि कालिदास जब चैत्ररथ के उद्यान की उपमा देने के लिये विचार कर रहे होंगे, तो उन्हें हरीतिमा से परिपूर्ण पूरे तत्कालीन भारत में वृंदावन से ज्यादा उपयुक्त कुछ और न लगा— ''वृंदावन चैत्ररथाद्नूने निर्विशयतां सुन्दरि यौवनश्री...'' श्रीविग्रह की सेवा-आराधन के लिये रामानुज सम्प्रदाय की तरह दिव्य देश की परिकल्पना हो या गौड़ीय मान्यता में प्रचलित वृन्दावन योगपीठ की पवित्र परिकल्पना और इसी के साथ वल्लभ कुल की हवेली संस्कृति, ब्रज में सभी कुछ भक्ति के धरातल पर मंदिर संस्कृति से जुड़ा अनूठा संस्कार है। इसी क्रम में कुंज संस्कृति तो स्वयं में अद्भुत ही है। 16वीं सदी वृन्दावन के पुनरोद्धार का दौर था। उस दौरान यहाँ आने वाले साधकों ने युगल सरकार की आराधना का सूत्र इस पवित्र वन की लता-कुंजों से जुड़े सेवाभाव को माना। यही कारण है कि आरम्भ में कुंज-वृक्षावलियों के मध्य स्थापित श्रीविग्रह जब कालांतर में पक्के भवन रूपी मंदिरों में स्थापित हुये तो इन्हें भी उसी 'कुंज' शब्द से सम्बोधित किया, जिसके अर्थ की अभिव्यक्ति संस्कृत, हिन्दी कोशों में वन संस्कृति से अभिप्रेत प्राकृतिक कुंजों के अनुरूप प्राप्त होती है।

वृन्दावन का नगरीय संरचना की ओर उन्मुख होना, एक सहज प्रक्रिया थी तथापि इस पवित्र वन के साधकों ने यहाँ की लता-निकुंजों को श्रद्धा के धरातल पर श्यामा-श्याम की लीलाओं का साक्षी माना और 16वीं सदी से पल्लवित इस आध्यात्मिक संविधान का ताना-बाना यहाँ 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध तक ठीक-ठाक गुँथा रहा। वृन्दावन आगमन के दौरान मीरा वृंदावन में तुलसी के पौधों की अधिकता एवं ठाकुर सेवा को देख प्रभावित हुयी थीं—''आलि री मोहि लागि वृंदावन नीकौ, घर-घर तुलसी, ठाकुर सेवा दर्शन गोविन्द जी कौ।...'' स्वयं को ठाकुर सेवा के प्रति समर्पित कर चुकी मीरा के द्वारा वृंदावनी साधकों की ठाकुर सेवा को देख यह अभिव्यक्ति यहाँ लता कुंजों के मध्य सेवित तत्कालीन श्रीविग्रहों के सेवा-संस्कारों को दर्शाने वाली है। मीरा ही क्या 16वीं सदी में वृन्दा के इस रमणीय वन का आकर्षण ओरछा महाराज के राजगुरु हरिराम व्यास जी को ऐसा भाया कि वे वृंदावन आकर यहाँ गो. हित हरिवंश महाप्रभु तथा स्वामी हरिदास जी से मिलकर इस वृंदा विपिन की रस माधुरी के आस्वाद के लिये व्याकुल हो उठे-

हरि हम कब होंगै वनवासी।
कब मिलि हैं वे सखी सहेली, हरिवंशी-हरिदासी॥

वृन्दावनी उपासना में रत साधकों के लिये इस पवित्र वन की लता-पतायें और कुंजें श्यामा-श्याम की भक्ति की राह दिखाने वाली थीं। वृन्दावन के साधकों ने इन्हें अपना सर्वस्व माना और पीढ़ी दर पीढ़ी इन लता-निकुंजों के मध्य ठाकुर-सेवा के द्वारा रिझाते रहे श्यामा-श्याम को—

कुञ्ज-कुञ्ज निरखत फिरूं, जमुना जल में न्हाऊं।
रे मन वृन्दा विपिन तजि, अनत न कितहूं जाऊं॥

(दामोदर स्वामी 17वीं सदी)

साधकों के लिये वृंदावन में राधा-कृष्ण का रास और नित्य विहार आज भी है। वृन्दावनी साधकों की यह विशिष्टता रही है कि वे इस पवित्र वन में विहार करने वाले युगल स्वरूप के ही उपासक हैं। वृंदा के विपिन की सीमा के बाहर अगर इन्हें प्रभु-साक्षात्कार होता है तो उस प्रभु के दर्शन की अभिलाषा ये साधक नहीं रखते। निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्य श्रीभट्ट जी ने कहा है-

रे मन वृन्दा विपिन विहार,
विपिन राज सीमा के बाहर हरिहुँ कूं न निहार॥ ...

वृंदावन की कुंज संस्कृति को जीवंत बनाये रखने में यहाँ के विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायों, निम्बार्क, राधावल्लभ, गौड़ीय, हरिदासी एवं ललित आदि सम्प्रदायों का महत्वपूर्ण स्थान है। इन वैष्णव सम्प्रदायों में लता-कुंजें युगल सरकार की भक्ति का मार्ग प्रशस्त करने वाली हैं। अपने विग्रहों को वृन्दावन की उन्हीं कुंजों में विराजित करना, जिसे कभी युगल सरकार ने महारास के लिये चुना था, साधकों का श्रद्धा से जुड़ा पवित्र भाव था।

16वीं सदी में यहाँ प्रस्फुटित कुंज संस्कृति कालांतर में भारत की विभिन्न रियासतों के द्वारा निर्मित पक्की कुंजों के रूप में दर्शित होती है। विभिन्न अंचलों की रियासतों के राजे-महाराजों के साथ ही रानी-राजमाताओं, सेठ-साहूकारों और धनिकों ने यहाँ संत-साधकों के प्रभाव में आकर कुंजें बनवायीं। 18-19वीं शताब्दी के दौरान यहाँ कुंज निर्माण की प्रक्रिया देखने लायक है। राजस्थान, बुंदेलखण्ड एवं बिहार की विभिन्न रियासतों के साथ ही यहाँ असम एवं मणिपुर तक की कुंज वृंदावन की मंदिर संस्कृति से जुड़ी इस यशगाथा की साक्षी हैं। 18वीं सदी में राजसत्ता का त्याग कर वृंदावन में कुंज बनाकर रहने वाले नागरीदास (सावंत सिंह) वृंदावन की इन कुंजों के आकर्षण में ऐसे रमे कि उन्हें इस बात की पीड़ा रही कि, राजसत्ता के सुख-भोगने वाला इनका वह समय व्यर्थ ही गया—

इते दिन वृथा वृन्दावन खोये।
छांड़ि कुंज-फूलनि की सज्जा सूल सरनि पर सोये॥ . . .

नागरीदास की वाणी

यह इन मंदिर रूपी कुंजों का आकर्षण ही था कि 20वीं शताब्दी में महाराजा छत्रसाल बुंदेला की परवर्ती पीढ़ी की रानी कमल कुंवरि अपनी वृन्दावन यात्रा के दौरान यहाँ इस मंदिर सदृश कुंज परम्परा को देखकर गा उठीं—

वृंदावन में कुंजें भारी।
भए नवीन भवन बनवाई, सुभग बाग फुलवारी॥
ठौर ठौर संतन के आसन, श्री वनवास बिचारी।
कोउ कुंजन वन-बाग निवासी, सेवत जुगलविहारी॥
कालिंदी वट बसत हरी जन दरस परस सुखकारी।
कमल कुंवरि सबके पद वंदै दिन प्रति सांझ सकारी॥

– कमल कुँवरि की वाणी-अप्रकाशित पांडुलिपि

कुंज संस्कृति के इस भाव के उपांग व्यापक थे। यहाँ साधकों ने कुंज संस्कृति को जिया। सन् 1829 में वृंदावन आने वाले फ्रांसिसी यात्री विक्टर जैक मांट की इस अभिव्यक्ति से यहाँ 19वीं सदी तक उस कुंज संस्कृति का जीवंत परिदृश्य समझा जा सकता है जिसमें उसने कहा—''वृक्षों की अधिकता के चलते यह एक हरे द्वीप की तरह लगता है....।'' यह संत-साधकों का संस्कार ही था कि भले ही कुंज रूपी मंदिर बनने से, अपने कोशगत अर्थ में अभिव्यक्त प्राकृतिक कुंज प्रभावित हुई हों लेकिन कुंज संस्कृति के प्रति यहाँ के साधक सजग थे। पक्की कुंज बनती तो उस कुंज के बगीचे में वृक्षावलियों का संरक्षण होता। कुंज में स्थान न हो तो पृथक से बगीचा स्थापित किया जाता था। आज भी प्राय: पुरानी कुंजों के बाग-बगीचे वृन्दावन में प्रतीक रूप में देखे जा सकते हैं। इतना ही नहीं यहाँ वैष्णव सम्प्रदायों में यह भाव इतना प्रबल रहा कि उस जमाने में वृंदावनवास की सार्थकता तभी सफल थी जब यहाँ निवास करने वाला साधक अपने हाथ से वृक्षारोपण करें। राधावल्लभ सम्प्रदाय के साधक चाचा हित वृंदावनदास ने यह सन्दर्भ स्वयं के विषय में 18वीं शताब्दी में कलमबद्ध किया कि गुरु-आज्ञा के अनुसार वृंदावन के केंवारी वन में कदम्बखण्डी लगाने से मेरा वृंदावनवास सार्थक हुआ है—

सुंदर बनी कदम्ब तरु सैनी, तहं विहरत हरि कदंब विहारी।
आज्ञा दै मो कर लगवाये, हौं समुझत के प्रीतम प्यारी॥

(इष्ट पद वंदन बेली)

19-20वीं सदी तक वृंदावन की प्राकृतिक लता-कुंजों ने अपने आकर्षण को बचाये रखा, जिसे देखकर फ्रांसिसी यात्री विक्टर जैक मांट और रानी कमल कुंवरि और न जाने कितनी अप्रसारित अभिव्यक्तियाँ खो गयीं यहाँ की उन कुंज वृक्षावलियों में जो नित्य रास की साक्षी हैं, युगल सरकार की। वर्तमान नगर-वृन्दावन में निधिवन, सेवाकुंज, जीव गोस्वामी की कुंज, राधादामोदर मंदिर, टटिया स्थान, किशोर वन एवं रसिक बिहारी जैसे स्थलों पर ही कुंज संस्कृति जीवंत है तथापि हिन्दी-संस्कृत कोशों के अनुरूप अपना अर्थ न देने वाली रजवाड़ों के द्वारा अलग-अलग कालक्रम में यहाँ स्थापित मंदिर रूपी कुंज शृंखला, अपने अस्तित्व से जूझते हुए आज भी अपने उस पारंपरिक संस्कार का परिदर्शन करा रही है। वर्तमान में भले ही वृंदावन 'मंदिरों का नगर' के रूप में प्रसिद्धि पा चला हो लेकिन इसकी पूर्व पीठिका यहाँ की कुंज संस्कृति ही है। जिसके पल्लवन में वृंदावन के सभी वैष्णव सम्प्रदायों का उल्लेखनीय योगदान है। यही कारण है कि प्राचीन शिलालेख, मंदिरों के दानपत्र एवं पांडुलिपियों में मंदिरों को कुंज शब्द द्वारा ही सम्बोधित किया गया है। जो इस गौरवशाली कुंज संस्कृति के प्रामाणिक संदर्भ हैं। वृंदावन के कुंज-मंदिरों को लिखना एक स्वतंत्र कोश तैयार करने जैसा है तथापि सूचनात्मक दृष्टि से वार्ता के अनुसार विश्वकोश के प्रथम खण्ड से अलग कुछ प्रमुख स्थलों की बानगी दृष्टव्य है—

अक्रूर मंदिर-यह मंदिर वृन्दावन और मथुरा के मध्य यमुना के किनारे अवस्थित है। जिसमें प्रवेश की स्थिति आज मथुरा-वृन्दावन मार्ग से होकर है। अक्रूरजी मंदिर निम्बार्क मठ द्वारा संचालित है। मंदिर के गर्भगृह में श्रीअक्रूर जी तथा भगवान श्रीकृष्ण बलराम के विग्रह विराजमान हैं। ऐसा माना जाता है कि वृन्दावन से मथुरा जाते समय श्रीकृष्ण-बलराम एवं अक्रूर जी ने यहाँ विश्राम किया था। सूर्यग्रहण पर्व पर यहाँ स्नान करने का बड़ा महत्त्व माना जाता है। यहाँ की सेवा- पूजा निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्यों द्वारा की जाती है। अपनी वृन्दावन यात्रा के दौरान चैतन्य महाप्रभु यहाँ पधारे थे तथा राधावल्लभ सम्प्रदाय की पाण्डुलिपियों में भी यहाँ राधावल्लभियों के द्वारा वन भोज मनोरथ मनाये जाने के उल्लेख सम्प्रदाय की पोथियों में मिलते हैं।

अवधबिहारी मंदिर-यह मंदिर वंशीवट क्षेत्र के मलूकपीठ नामक स्थान के समीप स्थित है। मंदिर का नाम श्रीसुदामा कुटी के नाम से भी जाना जाता है। मंदिर में भगवान श्रीराम, लक्ष्मण, सीताजी के दिव्य विग्रह विराजमान हैं। इस मंदिर की स्थापना श्री सुदामा दास जी महाराज ने की थी। यह मंदिर श्रीरामानन्दी सम्प्रदाय का एक प्रमुख मंदिर है। रामानन्दी सम्प्रदाय से जुड़े हुए साधु-संत वर्तमान में यहीं रहकर सेवापूजा में लीन रहते हैं। मंदिर में प्रतिवर्ष पौष शुक्ल पूर्णिमा से दस दिनों तक श्री जगत्गुरु रामानन्दाचार्य जी का जन्मोत्सव बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है।

आनन्द कुँवरि श्रीजी मंदिर-यह मंदिर वृन्दावन में रेतिया बाजार में स्थित है। इस मंदिर का निर्माण जयपुर रियासत की भटयाणी रानी ने संवत् 1883 सन् 1826 में कराया था। मंदिर के निर्माण का कार्य जयपुर के शिल्पकारों से करवाया गया था। मंदिर के शिलालेख में कामदार जूथाराम का नाम दर्ज है। वृन्दावन के सभी मंदिरों में एकमात्र यही मंदिर है जहाँ संगमरमर से बने सुन्दर हाथियों की प्रतिमा प्रवेश द्वार पर स्थित है। इस मंदिर में ठाकुर श्रीआनन्दमोहन वृन्दावन चन्द्र जू एवं रूपमनोहर युगल विग्रह प्रतिष्ठित है। वर्तमान में यह मंदिर 'श्रीजी की बड़ी कुंज' के नाम से प्रसिद्ध है तथा निम्बार्क सम्प्रदाय का प्रमुख केन्द्र है। इस कुंज की स्थापना से पूर्व वृन्दावन में निम्बार्काचार्यों की साधनास्थली विहार घाट पर रही। उस प्राचीन कुंज पर आज निम्बार्क सम्प्रदाय की गद्दी के द्वारा विद्यालय संचालित है। पाण्डुलिपियों में

इस कुंज का उल्लेख मिलता है–

जगत सिंह महाराज नृपति की आनंद कुंवरि जी रानी।
जैपुर की भटयानी तिनि यह मंद्र बनायौ आनी॥
लै आनन्द मनोहर ठाकुर ताके मधि पधराये।
मेला किये अनेकन जाने, उत्सव करे सुहाये॥

(वृंदावन धामानुरागावली–गोपाल राय)

इमलीतला मंदिर–यह मंदिर वृन्दावन की परिक्रमा मार्ग में विहार घाट एवं रानापत घाट के मध्य यमुना नदी के किनारे स्थित है। यह अत्यंत प्राचीन स्थान है जहाँ चैतन्य महाप्रभु के द्वारा विश्राम करने का उल्लेख चैतन्य चरितामृत में मिलता है। यह गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय का प्रसिद्ध तीर्थस्थल है। वृन्दावन यात्रा की पोथियों में इस पारम्परिक स्थल का उल्लेख मिलता है।

करौली कुंज–गौड़ीय सम्प्रदाय की यह कुंज वृन्दावन के परिक्रमा मार्ग में स्थित है। इस कुंज की दीवारों पर केशी दैत्य वध, चीरहरण, माखनचोरी व गोवर्धन लीला इत्यादि की झाँकियाँ चित्रों द्वारा दर्शायी गई हैं, जो भित्ति चित्रांकन का अनूठा उदाहरण है। गर्भगृह में ठा.हरिशिरोमणि जी विराजमान हैं। समीप ही राधारानी व ललिता सखी का विग्रह विराजमान है। कुंज का निर्माण महाराज हरबख्शपाल के द्वारा कराया गया। यहाँ की सेवा–पूजा राजस्थान सरकार के देवस्थान विभाग के अधीन होती है। करौली के राजा गोपाल सिंह के द्वारा यहाँ मंदिर के समीप यमुना पर घाट बनवाया गया, जिसका उल्लेख रसिक अनन्यमाल पाण्डुलिपि में मिलता है जो चैतन्य सम्प्रदाय के महात्मा भगवत मुदित जी की रचना है। उन्होंने लिखा है कि पूर्व में इनकी राधावल्लभ मंदिर बनवाने की अभिलाषा थी। पर हरिवंश महाप्रभु के पुत्र वनचन्द्र जी की अटपटी शर्त के चलते यह संकल्प पूर्ण न हो सका। कालांतर में यह कुंज बनी और कुंज के समीप यमुना तट पर घाट निर्माण भी हुआ जिसका उल्लेख वि.सं.1824 की रचना वृन्दावन प्रकाशमाला में भी मिलता है जो राधावल्लभ सम्प्रदाय के गो.चन्द्रलाल जी द्वारा रचित है–

आगे गोपाल सिंह जू कौ घाट सोवत है, निकट मदनमोहन जू कौ बाग,
तुलसी दो घाट कुटी सन्तन की आस–पास दम्पति प्रकाश हिय अति अनुराग है।

करौली नरेश गोपाल सिंह की कुंज एवं घाट एक समय वृन्दावन में आने वाले तीर्थयात्रियों के लिये श्रद्धा और आकर्षण का केन्द्र थे जिनका विस्तृत उल्लेख सम्भव नहीं तथापि सन् 1822 ई. में बुंदेलखण्ड की दतिया रियासत जिसे लघु वृन्दावन भी कहा जाता है, के राव राजा पारीछत देव जू की वृन्दावन यात्रा के क्रम में मंदिर आदि दर्शनों के साथ ही, वृन्दावन के घाटों का दर्शन किया गया जिसका क्रम कालियदह घाट से शुरू होता है। ब्रज भूमि प्रकाश शीर्षक इस पोथी में कालियदह घाट के तुरन्त बाद गोपाल सिंह के घाट का उल्लेख किया है, जो इसके तत्कालीन महत्व की परिचायक है–

द्वितीय घाट गोपाल तत्र ठाकुर गिरधारी।
गनपति नंदी गवर जुक्त राजत त्रिपुरारी॥ . . .

करौली कुंज से जुड़े गोपाल घाट का पुराना स्वरूप ब्रिटिश लाइब्रेरी लंदन में संरक्षित मदनमोहन मंदिर के एक

प्राचीन चित्र से भी समझा जा सकता है जिसे 1796 ई. के दौरान यमुना के रास्ते दिल्ली से आगरा जाने के दौरान ब्रिटिश चित्रकार थामस डेनियल और विलियम डेनियल ने वृन्दावन में रुक कर यमुना किनारे की तरफ से बनाया था। चित्र की प्रति वृन्दावन शोध संस्थान के ब्रज संस्कृति संग्रहालय में भी दर्शित है।

बड़े दाऊजी मंदिर–बड़े दाऊजी का यह मंदिर वृन्दावन की अनाज मण्डी में स्थित है। इस मंदिर के गर्भगृह में ठा. कारेदाऊजी की विशाल मूर्ति के साथ श्री रेवती माता विराजमान हैं। यह मंदिर लगभग 500 वर्ष प्राचीन माना जाता है। औरंगजेब के आक्रमण के समय दाऊजी को इसी मोहल्ले के कुण्ड में छिपा दिया गया था। यह मंदिर वृंदावन में बड़े दाऊ जी के नाम से विख्यात है। यह अपने समय के लोक विख्यात देवालयों में रहा है। मंदिर के सम्बन्ध में वि.सं. 1900 की रचना वृन्दावन धामानुरागावली में गोपाल राय ने लिखा है–

मंडी लाल बिहारी ढिंग, बल्देव यक तहं जानौं।
गोविन्द राम ब्राह्मन के तहं परम पुरातन मानौ॥

कलाधारी मन्दिर—यह मन्दिर राधावल्लभ मन्दिर से जुगल घाट की ओर जाने वाले मार्ग पर बड़वाले मौहल्ले में स्थित है। यहाँ संत नामदेव जी की बैठक है। मन्दिर के उत्सव–मनोरथ प्रसिद्ध हैं, विशेषकर नन्दोत्सव वाले दिन मन्दिर का आनन्द देखते ही बनता है। मन्दिर के गोस्वामी के रूप में यहाँ किन्हीं रामदास गोस्वामी का उल्लेख पुरानी पोथियों में है। वहीं कृष्ण दास मुखिया के द्वारा यहाँ श्री विग्रह की सेवा–पूजा किये जाने की जानकारी वि॰सं॰ 1900 की रचना अप्रकाशित पाण्डुलिपि वृन्दावन धामानुरागवली में अंकित है–

कुंज कलाधारी की में, श्रीबिठ्ठलनाथ सुहायौ।
नामदेव की बैठक तहाँ तिन, हरि कौं दूध पिवायौ॥
दरसन जिन्हें बहत्तर बिरियाँ, श्रीबिठ्ठलनाथ प्रभु दीनौं।
परचै भये अनेकनि तिनकौं, भगतमाल तें चीनौं॥
रामदास तहँ कौ सु गुसाँई, भगलपुर में राजे।
ह्याँ अब कृष्णदास मुखिया, सो वृन्दावनहिं विराजै॥

कालियमर्दन कुंज— अठखम्भा से विहार घाट जाने वाले मार्ग पर यशोदा नंदन मन्दिर के समीप यह प्राचीन कुंज स्थित है, जो 18वीं शताब्दी के आरम्भ की है। मन्दिर में कालियमर्दन करते हुए प्रभु का मोहक विग्रह विद्यमान है। पुराने समय में यहाँ गंगादास जी नामक वैष्णव–साधक का उल्लेख मिलता है। वर्तमान में इस मंदिर के सेवायत मुरारीलाल जी पारीक हैं।

कालीदह मंदिर–यह मंदिर वृन्दावन के परिक्रमा मार्ग पर वराह घाट नामक स्थान पर स्थित है। यहीं पर भगवान श्रीकृष्ण ने कालिय नाग को नाथा था। इसलिए यह स्थान कालीदह के नाम से जाना जाता है। यहाँ भगवान श्रीकृष्ण एक प्राचीन कदम्ब के वृक्ष के नीचे कालिय नाग के फन पर नृत्य करते दर्शन दे रहे हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु के वृंदावन आगमन के दौरान यहाँ स्नान किये जाने का उल्लेख मिलता है। कालियदह मंदिर से लगा कालियदह घाट भी है, जिसका निर्माण इंदौर रियासत के द्वारा कराया गया था। वनयात्रा की पुरानी पोथियों में इस मंदिर एवं घाट का उल्लेख प्रचुरता से मिलता है। वृंदावन का पुरोहित परिवार यहाँ प्राचीन काल से ही सेवायत रहा है। जिनमें राधाकृष्ण, वासुदेव नारायण और गंगाराम पुरोहित बड़े प्रतापी थे। पाण्डुलिपियों में ये उल्लेख है कि वृंदावन बसने के आरम्भिक समय में

ही पुरोहित लोग निवास करने लगे थे तथा उस दौरान इनके 16 घरों से पुरोहितपाड़ा बसा-

जिनकौ कालीमरदन ठाकुर, ताके ते अधिकारी।
नऊ थोक में करें होइ जो तिनकी है विरदारी॥
षोडस घर जिनके बुनियारी सबते पहलौ बासा।
प्रोहित खेरपति जोइ सी जाहर जगत प्रकासा॥

कुंजकिशोर मंदिर (साधु माँ)-यह मंदिर श्री रंगनाथ मंदिर के बगीचे से जिसे रंगजी का बगीचा कहा जाता है से पूर्व दिशा की ओर स्थित है। यह लगभग 100 वर्ष पुराना है। इस मंदिर का निर्माण बंगाल की एक महिला साधक सिद्धेश्वरी देवी ने कराया था। जिनकी जनमानस में साधु माँ के नाम से प्रसिद्धि थी। मंदिर के गर्भगृह में ठाकुर श्रीराधाकुंजकिशोर विराजित हैं।

कौशलकिशोर मंदिर-यह मंदिर वृन्दावन से छटीकरा जाने वाले मार्ग पर बांकेबिहारी कालोनी में स्थित है। मंदिर के गर्भगृह में श्रीराम, लक्ष्मण, जानकी एवं हनुमान जी की प्रतिमायें विराजित हैं। ऐसा माना जाता है कि प्राचीन समय में यह स्थान संत-साधकों की साधना स्थली रही है।

कुंजबिहारी कुंज-यह कुंज वृन्दावन की छीपी गली में स्थित है। इस कुंज का निर्माण लगभग 200 वर्ष पूर्व उड़ीसा प्रदेश के बहरामपुर के निवासी रामचन्द्रराय द्वारा 18वीं शताब्दी में करवाया गया था। मंदिर परिसर में श्री कुंजबिहारी जी का विग्रह विराजित है।

खपाटिया कुंज-रामानंदी सम्प्रदाय की यह कुंज वृन्दावन के केशीघाट नामक स्थान पर स्थित है। इस कुंज का मुख्यद्वार आकर्षक है। इस कुंज का निर्माण सन् 1853 ई. में भरतपुर के निवासी महात्मा बालकदास जी द्वारा कराया गया था। मंदिर की दीवारों पर जयपुर की शैली द्वारा निर्मित पुष्प व पक्षी बने हुए हैं। खम्भों पर कुम्भ कलश तथा आम्र-पत्ते उकरे हुए हैं। मंदिर के गर्भगृह में श्री बालकदास जी द्वारा सेवित श्रीराधाकृष्ण व सीताराम के श्रीविग्रह विराजित हैं। इस प्राचीन कुंज की सेवा-पूजा रामानंदी सम्प्रदाय के अनुसार की जाती है।

ग्वालियर मंदिर-यह मंदिर वृन्दावन के प्राचीन मंदिर गोपेश्वर महादेव के निकट स्थित है। एफ.एस.ग्राउस ने इस मंदिर को राधागोपाल मंदिर के नाम से सम्बोधित किया है। निम्बार्क सम्प्रदाय से सम्बन्धित इस मंदिर का निर्माण जीवाजी राव द्वारा करवाया गया था। इस विशालकाय मंदिर की पच्चीकारी व कलात्मक शिल्प शैली देखने योग्य है। इस मंदिर को 'ब्रह्मचारी जी' का मंदिर भी कहते हैं। सिंधिया महाराज ने इस मंदिर का निर्माण कराकर अपने गुरु को अर्पित किया था। मंदिर परिसर में मुख्य रूप से ठाकुर राधागोपाल, हंस गोपाल एवं नृत्यगोपाल जी के विग्रह विराजित हैं। इनके अतिरिक्त निम्बार्क आचार्यों की प्रतिमायें विद्यमान हैं।

गरुड़ गोविन्द मंदिर- वृन्दावन में छटीकरा की तरफ से प्रवेश मार्ग पर स्थित यह मंदिर ब्रज के प्राचीन मंदिरों में से एक है। मान्यता के अनुसार इस मंदिर की स्थापना भगवान श्रीकृष्ण के प्रपौत्र बज्रनाभ ने की थी। लोक परम्परा में प्रचलित है कि युगल स्वरूप राधा-कृष्ण की लीलाओं का दर्शन किसी भी देवता अथवा देवपुरुष को सहज संभव नहीं। इसी के अनुपालन में प्रभु के महारास दर्शन के आकांक्षी भगवान शिव को वृन्दावन में गोपी वेश धारण करना पड़ा और लक्ष्मी जी प्रभु-दर्शन की अभिलाषा में वृन्दावन की सीमा के बाहर बेलवन में साधनारत हुई थीं। इस स्मृति के परिचायक गोपेश्वर महादेव एवं बेलवन में लक्ष्मी जी का मंदिर अद्यतन विद्यमान हैं। इसी श्रृंखला में वृन्दावन की सीमा पर स्थित गरुड़ गोविन्द का मंदिर स्वयं में अद्भुत है। मंदिर के पास ही बलुआ पत्थरों से निर्मित गरुड़ गोविन्द कुण्ड स्थित है। कालसर्प दोष निवारण हेतु इस मंदिर में पूजा- अर्चना की जाती है। इस मंदिर में प्रतिवर्ष गरुड़ गोविन्द मेला भी लगता है।

गुपाल बाई की कुंज— यह कुंज नागरीदास जी (सावंत सिंह) की समाधि के समीप ही है। राजा सावंत सिंह (नागरीदास) की पुत्री गुपाल बाई के द्वारा यहाँ राधामोहन जी का श्रीविग्रह पधराया गया। यहाँ पुराने समय में संत-समूह के निवास करने तथा भगवद् चर्चा करते हुए पाण्डुलिपियाँ रचे जाने के उल्लेख पुरा ग्रंथों में मिलते हैं। 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध में राधावल्लभ सम्प्रदाय के हित परमानन्द जी ने यहाँ के पुजारियों का उल्लेख करने के साथ ही इस स्थल पर पोथियाँ रचने वाले लछमनदास का उल्लेख स्व-रचना नित्य हित मण्डल यात्रा में किया है—

नागरीदास जी की बेटी गुपाल बाई,
तिन तें बनाई कुंज लागति अति सोंहनी।
श्री राधामोंहन जू ठाकुर विराजत हैं,
देखत दृगनि पढि डारी मनु मोंहनी॥
पुजारी प्रियादास, संझादास-हरिदास,
लिखारी लछमनदास जोरी मुख जोंहनी॥

गोदाविहार मंदिर-गोदाविहार मंदिर रंगनाथ मंदिर के समीप लालाबाबू मंदिर के पास स्थित है। श्री बलदेवाचार्य जी ने इस मंदिर की स्थापना की थी। देवी लक्ष्मी जी जिनका एक नाम 'श्रीगोदाम्मा' है, उनके नाम पर इस मंदिर का नाम गोदाविहार पड़ा। मंदिर के मध्य भाग में श्रीलक्ष्मीनारायण जी का विग्रह विराजित है। मंदिर परिसर में सनातन धर्म के अनेक देवताओं, साधु, महात्माओं, ऋषि-मुनियों की प्रतिमायें दर्शनीय हैं। इनके अलावा मंदिर में बैकुण्ठ द्वार, नवगृह, भगवान सूर्य का रथ, शिवलोक, ब्रह्मलोक एवं भगवान विष्णु के दस अवतारों की प्रतिमायें विद्यमान हैं।

गोपीनाथ मंदिर (डेरागाजी खाँ)- यह मंदिर वृन्दावन में सुक्खन माता गली में बांकेबिहारी मंदिर जाने वाले मार्ग के समीप स्थित है। गोपीनाथ जी पुष्टिमार्गीय परम्परा की अष्टम गद्दी है। गोपीनाथ जी का प्राकट्य काल वि.सं. 1640 के आसपास माना जाता है। आज से लगभग 68 वर्ष पूर्व सन् 1946 में जब हिन्दुस्तान का बँटवारा होने के पश्चात श्री गोपीनाथ जी को लगभग 300 वर्षों के बाद पाकिस्तान से लालजी के वंशजों द्वारा पुनः वृन्दावन में लाया गया। जनश्रुति है कि काबुल, कंधार आदि मुस्लिम देशों में भी गोपीनाथ जी की पूजा-अर्चना, भोगराग वल्लभ सम्प्रदाय की रीति के अनुसार ही होती आई। कालान्तर में आचार्य लाल जी महाराज वृंदावन आकर ही भजन करने लगे थे। मदन मोहन मंदिर के पास इनकी समाधि आज भी मौजूद है। वर्तमान में यह मंदिर वृन्दावन के सुक्खन माता गली में अद्यतन वल्लभ कुल की परम्परा के अनुसार संचालित है।

गोरीलाल कुंज- हरिदासी परम्परा से संबद्ध यह मंदिर वृन्दावन में रसिकबिहारी मंदिर के निकट प्रेमगली में स्थित है। मंदिर के गर्भगृह में श्री नरहरि देव के सेवित विग्रह गोरीलाल जी विराजमान हैं। यहाँ पर गोरी श्रीराधा जी का तथा लाल श्रीकृष्ण जी को माना है। रसिकबिहारी जी ने गोरीलाल मंदिर की सेवा अपने बड़े शिष्य गोविन्ददेव जी को सौंप दी थी। स्थानीय इतिहासकार गोपाल राय ने वि.सं.1900 की रचना वृन्दावन धामानुरागावली में इस कुंज का उल्लेख किया है—

गोरीलाल मंद्र पुनि जहं, तहं गोरीलाल विराजें।
श्री नरहरि के सेव्य जु ठाकुर, अतिहि अनूपम राजैं॥

गोरेदाऊजी मंदिर-श्री गोरेदाऊजी का मंदिर वृन्दावन के अटल्ला चुंगी से परिक्रमा मार्ग में यमुना की ओर जाने वाले मार्ग पर स्थित है। मान्यता है इस ऐतिहासिक मंदिर का निर्माण श्री जीवाजी राव सिंधिया ने कराया था। मंदिर में

विराजित श्रीदाऊजी महाराज का विग्रह गौर वर्ण का है। इसी कारण इस मंदिर का नाम गोरेदाऊजी पड़ा। रामानंदी सम्प्रदाय से संचालित इस मंदिर में साधु-संतों का संकीर्तन गायन निरंतर होता रहता है।

गौरांग महाप्रभु मंदिर-श्री गौरांग महाप्रभु का यह मंदिर श्रीधाम वृन्दावन के गोपीनाथ बाजार में स्थित है। मंदिर का निर्माण कलकत्ता के एक बाबू शिशिर कुमार घोष ने कराया था। मंदिर में सेवित विग्रह को अमिय-निमाई के रूप में जाना जाता है। मंदिर में सेवित गौरांग मूर्ति, जिसे चैतन्य गोस्वामी कलकत्ता से लेकर आये और यहीं गोपीनाथ बाजार में मंदिर निर्माण कराकर विराजित कर दिया तभी से ठाकुर का नाम अमिय-निमाई पड़ा। वर्तमान में इस मंदिर की सेवा-पूजा श्रीराधारमण मंदिर के श्री चैतन्य गोस्वामी के वंशजों द्वारा की जाती है।

गंगा मोहन कुंज— राधादामोदर मंदिर के आगे रासमंडल की ओर जाने वाले मार्ग पर इस कुंज का निर्माण भरतपुर के राजा सूरजमल की रानी गंगादेवी के द्वारा करवाकर यहां गंगामोहन ठाकुर पधराये गये। इसका उल्लेख स्थानीय कवि गोपाल राय ने अपनी रचना वृन्दावन धामानुरागावली में किया है—

गंगारानी सूरजमल की तानैं कुंज बनाई।
गंगा मोहन ठाकुर तामें, मंडल ढिंग सुखराई॥

पांडुलिपियों में इसका उल्लेख राधावल्लभ सम्प्रदाय के गो॰ कमलनैन जी की कुंज के नाम से भी मिलता है। यहाँ भरतपुर के सूरजमल के परिवर्ती नरेश जवाहर सिंह के द्वारा बाग भी लगाया गया था—

ताकैं आगे गुसाँई कमलनैन जू की कुंज,
सदा सुख पुंज रूप मेरे मन भायौ है।
तिनहीं की इच्छा सौं लै जवाहरसिंह जू ने,
फुलवारी बाग एक सुन्दर लगायौ है॥

वहीं 19वीं शताब्दी की रचना श्यामदास जी कृत वृन्दावन प्रदक्षिणा में गंगामोहन कचहरी का उल्लेख मिलता है—

आगे घाट कचहरी जानौं। गंगा मोहन दरस महानौं॥

छत्तीसगढ़ कुंज-यह कुंज वृन्दावन के ज्ञानगुदड़ी मुहल्ले में स्थित है। पूर्व समय में यह स्थान हरिव्यासी महानिर्वाणी अखाड़ा के नाम से जाना जाता था बाद में छत्तीसगढ़ की महारानी हुलास कुँवरि ने अपनी दोनों पुत्रियों के दान द्वारा इस कुंज का निर्माण कराया था। गर्भगृह में मथुरामल्ल व हुलासबिहारी विग्रह स्थापित हैं। मंदिर में सात आरती एवं पाँच भोग की परम्परा चली आ रही है।

जगन्नाथ मंदिर-यह मंदिर यमुना तट पर केशीघाट के पास टिकारी मंदिर के आगे जाने वाले मार्ग पर स्थित है। यहाँ श्रीजगन्नाथ जी, सुभद्रा एवं बलराम जी के विग्रह दर्शनीय हैं। इन विग्रहों के अलावा श्रीराधाकृष्ण का विग्रह भी विराजित है। यमुना किनारे यह मंदिर काफी विशाल आकार में बना हुआ है। श्री जगन्नाथ मंदिर के समीप में जगन्नाथ घाट भी प्रसिद्ध है। आषाढ़ शुक्ल द्वितीया को मंदिर से जगन्नाथ रथयात्रा की भव्य झाँकी निकलती है। इस अवसर पर यहाँ मेले जैसा माहौल रहता है।

जमाईठाकुर मंदिर-यह मंदिर वृन्दावन से मथुरा जाने वाले मार्ग पर रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम के समीप गुजरने वाले

मार्ग पर स्थित है। इस मंदिर का निर्माण बंगाल प्रांत के श्री वनमाली राय तराश स्टेट के जमींदार ने बनवाया था। मंदिर परिसर में श्री ठाकुर राधाविनोद विराजित हैं। श्री ठाकुर राधाविनोद विग्रह तराश स्टेट के एक भक्त श्री बांछाराम जी को नदी में स्नान करते समय प्राप्त हुए थे। इन्होंने इस विग्रह को श्री वनमाली राय जी को सौंप दिया था। कुछ समय तक इस विग्रह की सेवा-पूजा तराश स्टेट में हुई। वृन्दावन में यह मंदिर तराश वाला मंदिर एवं जमाई ठाकुर मंदिर के नाम से प्रसिद्ध है। कुछ समय पश्चात श्री वनमाली राय जी श्रीराधाविनोदबिहारी विग्रह को साथ लेकर वृन्दावन चले आये और इसी स्थान पर मंदिर बनवाकर ठाकुर जी को विराजमान किया। इस मंदिर में श्रीविग्रह का हुक्का भरे जाने की अनूठी परम्परा है।

जयपुर मंदिर-यह मंदिर वृन्दावन से मथुरा जाने वाले मार्ग पर स्थित है। यह देवालय निम्बार्क सम्प्रदाय के संत गिरधारीशरण की प्रेरणा से जयपुर के महाराजा सवाई माधोसिंह द्वारा सन् 1881 में बनवाया गया था। जयपुर मंदिर अपनी सुन्दर नक्काशी एवं स्थापत्य शैली के लिए प्रसिद्ध है। मंदिर निर्माण के दौरान भारी-भरकम बलुआ पत्थरों की ढुलाई के लिए राजा माधोसिंह ने रेलवे सम्पर्क मार्ग स्थापित किया। जयपुर मंदिर के तोरण द्वार की पच्चीकारी स्वयं में अद्‌भुत है। मुख्य मंदिर के हॉल के अन्दर तीन कक्ष स्थापित हैं। जिनमें से बायीं ओर के कक्ष में श्री आनन्दबिहारी जी, बीच के कक्ष में भगवान राधामाधव तथा दायीं ओर के कक्ष में श्री नृत्यगोपाल जी, श्री नारद जी, श्री गिरधारी जी एवं श्री सनक, सनातन, सनतकुमार इत्यादि के विग्रह विराजमान हैं। वृन्दावन के अतिरिक्त बरसाना में भी जयपुर वाला मंदिर विद्यमान है। वृन्दावन एवं बरसाना में स्थित जयपुर मंदिर के विग्रहों की सेवा-पूजा देवस्थान विभाग, राजस्थान सरकार की ओर से संचालित है।

जीवन वल्लभ मन्दिर (कलकत्ता वाला मन्दिर)— राधावल्लभ घेरे में स्थित यह मन्दिर कलात्मक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। मन्दिर में विराजित युगल सरकार की नयनाभिराम झाँकी मानव मन को सहज ही अपनी ओर आकर्षित करती है। मन्दिर का निर्माण कलकत्ता की रईस माँजी साहब इमरत वीवी के द्वारा कराया गया। वर्तमान में मन्दिर की व्यवस्था बाबू गणेश शरण जी के द्वारा संचालित है। मन्दिर के समीप ही मूजी वल्लभ एवं आनन्द वल्लभ मन्दिर भी है जहाँ उत्सवों का अपना अलग ही आनन्द है।

जीवाराम कुंज-यह कुंज वृन्दावन में स्थित है। इस कुंज का निर्माण 19वीं शताब्दी में भरतपुर के दीवान श्री जीवाराम जी ने करवाया था। उन्हीं के नाम पर इस कुंज का नाम रखा गया था। मंदिर के गर्भगृह में ठा. श्री सहजबिहारी जी विग्रह विराजमान हैं।

जुगलकिशोर मंदिर- केशीघाट के समीप स्थित यह मंदिर वृन्दावन के प्राचीन मंदिरों में से एक है। मंदिर का निर्माण मुगल सम्राट जहाँगीर के शासनकाल में नोनकरण राजपूत ने वि.सं. 1684 के आसपास करवाया था। मंदिर लाल बलुआ पत्थरों से निर्मित शिखर युक्त बना था किन्तु वर्तमान में मंदिर गुम्बदविहीन है। मुख्य मंदिर के बाहरी और आन्तरिक वर्ग अष्टकोणीय हैं। मंदिर के प्रवेश द्वार की शिल्पकारी शिल्पकला का एक उत्कृष्ट नमूना है। वर्तमान में मंदिर पुरातत्त्व विभाग के संरक्षण में है। वि.सं.1714 में बीकानेर (राजस्थान) के एक माहेश्वरी परिवार के द्वारा यहाँ दर्शन किये जाने का उल्लेख मिलता है। पाण्डुलिपि की उपलब्धता अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर में बतायी जाती है।

टिकारी मंदिर- ब्रिटिश जिलाधिकारी ग्राउस के ग्रंथ मथुरा ए डिस्ट्रिक्ट मैमॉयर के अनुसार इस मंदिर का निर्माण बिहार प्रान्त के टिकारी के जमींदार हितकाम ब्राह्मण की रानी इन्द्रजीत ने कराया था। 6 वर्षों के अन्तराल में यह मंदिर सन् 1871 में बनकर पूर्ण हुआ। टिकारी मंदिर को 'राधाइन्द्र किशोर' मंदिर के नाम से भी जाना जाता है। निम्बार्क सम्प्रदाय के संत श्री गोपेश्वरशरण देवाचार्य ने इस मंदिर का शिलान्यास वि.सं. 1900 में किया था। टिकारी मंदिर के प्रवेश द्वार एवं मंदिर परिसर की दीवारों पर भगवान के दशावतार के स्वरूपों को पत्थर पर शिल्पकला द्वारा दर्शाया गया है। मंदिर के शिखर पर ताँबे के कलश स्थापित हैं। मंदिर में ठाकुर श्रीराधाकृष्ण, लड्डूगोपाल एवं राधागोपाल जी के

विग्रह विराजित हैं। मंदिर के निकट ही ठाकुर जी का बगीचा एवं एक पक्का घाट बना हुआ है जिसका निर्माण महारानी विद्यावती कुँवरि ने सन् 1940 में कराया था। वर्तमान में इस मंदिर का संचालन देवरहा बाबा के स्थान द्वारा किया जा रहा है।

टोपीकुंज– हरिव्यास देवाचार्य जी के द्वादश शिष्यों में एक मुकुन्दशरण देवाचार्य द्वारे का यह प्रमुख घराना है। यह कुंज वृन्दावन के राधावल्लभ मंदिर के मार्ग पर विहार घाट के समीप स्थित है। यह वृन्दावन के प्राचीन स्थानों में एक है। इस स्थान की आचार्य परम्परा में बाबा कल्याण दास जी सदैव टोपी धारण किया करते थे। इसी कारण इस स्थान का नाम टोपी कुंज पड़ गया। वर्तमान में इस कुंज की सेवा का संचालन श्री ललिताशरण दास जी महाराज के द्वारा किया जा रहा है। विहारघाट के समीप स्थित यह निम्बार्कीय परम्परा की प्राचीन कुंजों में एक है। टोपी वाले महात्मा के राधामोहन श्रीविग्रह का उल्लेख गोपाल राय ने वृन्दावन धामानुरागावली में किया है–

ओलीराम ब्रह्मचारी के, लक्ष्मिनारायण जानौं।
वृंदावन टोपी वारे के, राधामोहन मानौं॥ . . .

ढूसर कुंज— बड़वाले मौहल्ले में स्थित इस कुंज का आज भग्नावशेष दर्शित है। लेकिन ढूसर कुंज के घाट की छतरी अद्यतन विद्यमान है। राधावल्लभ सम्प्रदाय से जुड़े नवलदास जी भी ढूसर भार्गव थे। जो हित हरिवंश महाप्रभु से प्रभावित होकर वृन्दावन आये थे। इनके सन्दर्भ में जानकारी भगवत मुदित जी ने रसिक अनन्यमाल में दर्ज की है। कालातंर में ढूसर कुंज एवं घाट का निर्माण हुआ। ढूसर घाट का उल्लेख मथुरा के ब्रिटिश जिलाधिकारी एफ.एस. ग्राउस ने मथुरा ए डिस्ट्रिक्ट मेमोयर में किया है। वृन्दावनी इतिहासकार गोपाल राय ने अपनी वि.सं.1900 की रचना वृन्दावन धामानुरागावली में ढूसर घाट का उल्लेख करते हुए इसे जतनलाल गोस्वामी की राधामोहन कुंज के समीप बताया है–

जतनलाल गोस्वामी के तहं, राधामोहन जानौं।
राधा माधौ राजत जहं, तहं ढूसर घाट पुरानौं॥

वहीं 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में राधावल्लभी हित परमानन्द जी ने स्व रचना नित्य हित मण्डल यात्रा में भी ढूसर कुंज का उल्लेख किया है–

धूसर जी की कुंज में, ठाकुर है गोपाल।
माता वृंदावनी कें, वैष्णव दास प्रतिपाल॥

तुलसीराम मंदिर–यह मंदिर वृन्दावन धाम के ज्ञानगुदड़ी स्थान पर बना हुआ है। प्रारम्भ में इस मंदिर के संस्थापक श्री परशुराम जी महाराज थे। पूर्व में यह स्थान 'हृदयराम वाली कुंज' के नाम से भी जाना जाता था। पहले कभी इस स्थान पर साधु संगत होती थी। इसी स्थान पर गोस्वामी तुलसीदास जी को भगवान श्रीकृष्ण ने राम रूप में दर्शन दिये थे। कुछ समय बाद वृन्दावन के आशुकवि श्री बलराम मिश्र जी को प्रभु ने कुछ प्रेरणा दी और उन्होंने इस मंदिर का सन् 1975 ई. में जीर्णोद्धार कराया। गर्भगृह के द्वार पर मुगल शैली की चित्रकला दर्शनीय है। प्रवेश द्वार के दाहिनी ओर गोस्वामी तुलसीदास जी की भजन कुटी आज भी विद्यमान है। मंदिर के गर्भगृह के दोनों ओर गरुड़, हनुमान जी, सूर्य

एवं चन्द्र की प्रतिमायें बनी हुई हैं।

दत्ता महल कुंज–वृंदावन के गौतमपाड़े मौहल्ले में स्थित यह कुंज वृंदावन की प्राचीन कुंजों में एक है। जिसका निर्माण म.प्र.के किसी महानुभाव द्वारा कराया गया। कुंज समृद्ध परिक्षेत्र में स्थापित है तथा मुख्य द्वार कलात्मक है। पूर्व में यहाँ सेव्य विग्रह भी स्थापित थे, जिनके सन्दर्भ में अब कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है।

दतिया कुंज–दतिया रियासत के महाराज पारीक्षित देव जी की रानी के द्वारा निर्मित यह कुंज मोटे गणेश एवं वनखण्डी के मध्य भाग में अवस्थित है। स्थानीय इतिहासकार गोपाल राय ने अपनी वि.सं. 1900 की रचना वृन्दावन धामानुरागावली में इसका उल्लेख किया है–

पारीछित दतिया वारे की, हीरा कुमरिजु रानी।
ठाकुर तहं हीरा बिहारि, उहि मंदिर मधि सुखदानी॥

यहाँ युगल सरकार राधाकृष्ण की सेवा–पूजा भली–भाँति होती है। समीप ही दतिया रियासत से संबंधित विशाल नौहरा भी था जिस पर वर्तमान में निर्माण हो चुका है। नौहरे में गंगादास नामक महात्मा के द्वारा साँझी उत्सव किये जाने का उल्लेख गोपाल राय (स्थानीय कवि) ने अपनी रचना वृन्दावन धामानुरागावली में किया है।

नागरी कुंज–यह कुंज वृन्दावन की दान गली के सामने यमुना किनारे स्थित है। इस कुंज का निर्माण 18वीं सदी के लगभग राजस्थान स्टेट के किशनगढ़ के राजा सावंतसिंह द्वारा करवाया गया था। जिनका नाम आगे चलकर गुरु प्रदत्त नाम नागरीदास पड़ा। मंदिर परिसर में ठाकुर युगलकिशोर जी का विग्रह विराजमान है। इनकी सेविका बनी–ठनी थीं। ये दोनों मंदिर परिसर में भजन किया करते थे। आज भी नागरी कुंज में इन दोनों की समाधियाँ विद्यमान हैं। यह स्थल नागरीदास का घेरा तथा नागरीदास का क्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध है। नागरीदास साहित्य तथा कला के पारखी थे। इनकी समस्त रचनायें नागर समुच्चय के नाम से प्रकाशित हैं। बनी–ठनी भी रसिक बिहारी नाम से काव्य रचनायें करती थीं। नागरीदास जी ने वृन्दावन के ब्रह्मकुण्ड स्थल पर साँझी के मेले आयोजित कराये थे जिसकी जानकारी गोपाल राय की पाण्डुलिपि वृन्दावन धामानुरागावली से मिलती है–

नृपति नागरीदास ने तहं, मेला ए लगवाये।
पिय प्यारी संवादहि के, अप आप कवित्त बनाये॥ . . .

18वीं सदी में वृन्दावन आकर निवास करने वाले साधक कृष्णगढ़ाधीश नागरीदास वृन्दावन की पवित्र लता–पताओं में इस कदर रमे कि यहाँ आने के बाद इन्हें अपने राजसी वैभव वाले दिन व्यर्थ ही लगे। अपनी रचनाओं में इन्होंने ब्रज–वृन्दावन के प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति की है–

इते दिन वृथा वृन्दावन खोये।
छांड़ि कुंज फूलनि की सज्जा, सूल सरनि पर सोये॥

18वीं सदी के उत्तरार्द्ध में राधावल्लभ सम्प्रदाय के हित परमानन्द जी ने नागरी दास का उल्लेख अपनी रचना नित्य हित मंडल यात्रा में किया है–

राजा रूप नगर कौ नागरी दास नाम,
बसे वृन्दावन धाम छांडौ सब राज है।
सुन्दर बनाई कुंज ठाकुर पधराइ सदा,
द्रव्य पहुँचाइ साधु-सेवा कौ समाज है॥

निधुवन-निधुवन वृन्दावन का प्राचीन स्थल है एवं स्वामी श्री हरिदास जी की साधना स्थली है। निधुवन रसिकशेखर स्वामी हरिदास जी की भजन स्थली है। यह श्रीबांकेबिहारी जी का प्राकट्य स्थल भी है। इसी स्थान पर बादशाह अकबर ने तानसेन के साथ स्वामी जी के दर्शन किये थे। स्वामी श्रीहरिदास जी महाराज की साधनास्थली निधुवनराज में कई सन्त-साधकों की समाधियाँ अद्यतन विद्यमान हैं। अकबार बादशाह के द्वारा स्वामी जू से भेंट का 18वीं सदी में किशनगढ़ शैली का चित्र भी प्राप्त होता है जिसकी एक प्रति ब्रज संस्कृति संग्रहालय, वृन्दावन शोध संस्थान में दर्शित है तथा प्राचीन पाण्डुलिपियों में अकबर के द्वारा यहाँ स्वामी जी भेंट किये जाने के विवरण भी मिलते हैं—

हरषे अति अकबर छबि लखि, पुनि कछु महि गाइ गवायौ।
स्वामी मेघ मलार गाइ वरषाय जु रस बरसायौ॥
मेघ मल्हार अलापी जब, तब तहं घन बरसन लागे।
हरित भई सब सघन भूमि, द्रुम दादुर बोलन लागे॥ . . .

इसी के साथ निधुवन से जुड़े कथा-प्रसंगों की जानकारी निजमत सिद्धान्त ग्रंथ में भी उपलब्ध है जिसके रचनाकार महंत किशोरदास जी हैं तथा ब्रजयात्रा करने वाले अनेक वन यात्रियों ने इस पवित्र स्थल के सन्दर्भ में उल्लेख पुरा ग्रंथों में दर्ज किये हैं।

निताई-गौर मंदिर (पीशी माँ)-निताई गौर मंदिर, वृन्दावन में बनखण्डी महादेव मंदिर के सामने बना है। इस मंदिर में मुरारी गुप्त द्वारा सेवित विग्रह निताई-गौर विराजमान हैं। नदिया जिला के प्रसिद्ध डेला ग्राम के धनी उपाध्याय परिवार की 20 वर्षीय कुलवधू श्रीमती चंद्रशशि गोस्वामी वृन्दावन में पीशी माँ के नाम से प्रसिद्ध थीं। बुआ शब्द बंगला में पीशी माँ के लिये सम्बोधन में प्रयुक्त होता है। इस दिव्य विग्रह की सेवा आज भी उसी भाव से सतत् जारी है।

निम्बार्क कोट कुंज-यह कुंज वृन्दावन की छीपी गली में स्थित है। इस कुंज का निर्माण निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्य श्री गोपालदास जी द्वारा करवाया गया था। यह कुंज लगभग 150 वर्ष पुरानी है। इसके मंदिर परिसर में श्रीराधारमणलाल जी का श्रीविग्रह विराजमान है। प्रारम्भ से ही यहाँ रासलीला, निम्बार्क जयन्ती तथा समाज गायन पर्व महोत्सव मनाने की परम्परा चली आ रही है। वृन्दावन में निम्बार्क सम्प्रदायान्तर्गत आचार्य पञ्चायतन की सबसे पहिले स्थापना श्री स्वयंभूरामदेव जी की शिष्य परम्परा के अन्तर्गत बालगोविन्ददास जी ने अनाजमण्डी में एक मंदिर बनवाकर करायी थी। कालांतर में इन्हीं के द्वारा निम्बार्क कोट का निर्माण कराया गया था। वर्तमान में यहाँ के महंत श्री वृन्दावन बिहारी गोस्वामी जी हैं।

पड़रौना कुंज-यह कुंज वृन्दावन में पुराना बजाजा बाजार में स्थित है। इस कुंज का निर्माण वि. सं. 1910 में गोरखपुर के राजा ईश्वरीप्रताप के भाई श्री जयप्रकाश राय जी ने करवाया था। इन्होंने पड़रौना वाली कुंज का निर्माण अपने गुरु बाबा किशोरीदास जी की आज्ञानुसार करवाया। इस कुंज में निम्बार्क सम्प्रदाय से सम्बन्धित मंदिर भी है। जिसमें ठाकुर श्री किशोरीवल्लभ जी विराजमान हैं।

प्रतापगढ़ स्टेट कुंज-यह कुंज श्रीधाम वृन्दावन में स्थित है। इस कुंज का निर्माण राजस्थान के प्रतापगढ़ शहर के

राजा ने करवाया था। मंदिर परिसर में स्थित विग्रह ठाकुर श्रीराधामोहन जी का है। यहाँ अखण्ड हरिनाम संकीर्तन प्रतिदिन होता रहता है।

पागलबाबा मंदिर-यह मंदिर सन् 1960 में सर्वप्रथम वृन्दावन के ज्ञानगुदड़ी क्षेत्र में श्री लीलानन्द ठाकुर 'पागलबाबा' के द्वारा बनवाया गया था। सन् 1970 के आस-पास वृन्दावन से मथुरा जाने वाले मार्ग पर विशाल संगमरमर के पत्थरों के द्वारा सात मंजिला एक भव्य मंदिर का निर्माण हुआ। पागलबाबा का यह मंदिर तीर्थयात्रियों के लिए आकर्षण का केन्द्र है। मंदिर परिसर में समस्त देवी-देवताओं के दर्शन के अलावा मुख्य रूप से निताई-निमाई, राधाकृष्ण एवं माता दुर्गा के भी दर्शन होते हैं। इस मंदिर का वास्तविक नाम श्री लीलानन्द ठाकुर के नाम पर 'श्रीलीलानन्द ठाकुर' मंदिर था किन्तु जनमानस के मध्य यह स्थल पागलबाबा मंदिर के नाम से जाना जाता है। मंदिर के समीप ही श्रीलीलानन्द ठाकुर चिकित्सालय भी संचालित है।

प्रियावल्लभ कुंज- वृन्दावन में श्री प्रियावल्लभ कुञ्ज छीपी गली में स्थित है। मुख्य द्वार छीपी गली एवं दक्षिण द्वार पुराना बजाजा में स्थित है, इस कुञ्ज के गर्भगृह में ठाकुर जी के तीन स्वरूप विराजमान हैं- ठा॰ श्री विजय राधा वल्लभ जी, ठा॰ श्री प्रियावल्लभ जी, श्री किशोरी वल्लभ लाल जी। ठा॰ श्री विजयवल्लभ लाल जी, श्री हित परमानन्द जी नागार्च के सेव्य हैं, ठा॰ श्री प्रियावल्लभ लाल जी, महारानी बखतकुँवरि (प्रियासखी जी) के सेव्य हैं, ठा॰ श्री किशोरी वल्लभ लाल जी किसी अज्ञात भक्त के सेव्य हैं, जो बाद में स्थापित किए गए। ठा॰ श्री प्रियावल्लभ जी की स्थापना माघवदी अष्टमी विक्रम संवत् 1870 को प्रिया सखी जी के गुरुदेव हित परमानन्द जी नागार्च की प्रेरणा से की गई थी। यह स्थान राधावल्लभ परम्परा का है। प्रियासखी जी दतिया नरेश शत्रुजीत जू देव की ज्येष्ठ महारानी थी, आपका मायका केरुआ ग्राम था जो कि तहसील भितरवार, जिला ग्वालियर में आता है। मंदिर के आचार्य हित परमानन्द जी के द्वारा यहाँ तत्कालीन समय में उत्सव-मनोरथ किये जाने का उल्लेख पुरा ग्रंथों में मिलता है—

उत्सव बहु किए , परमानन्द अति आनन्द सौं।
रसिकन के संग समाज गायौ रु गवायौ है॥ (वृन्दावन धामानुरागावली-गो.चन्द्रलाल जी)

दतिया नरेशों की ब्रजयात्रा में इस कुंज का उल्लेख मिलता है।

फावड़िया कुंज— यह प्राचीन स्थल रंग जी मंदिर के पीछे की ओर यमुना किनारे टटिया स्थान मार्ग पर अवस्थित है। यमुना के कच्चे घाटों को निरन्तर व्यवस्थित करने के क्रम में इनके साथ सदैव फावड़ा रहता था। वृन्दावन आने वाले तीर्थयात्रियों एवं स्थानीय ब्रजवासी जनों के प्रति सेवा के इस अनूठे भाव के कारण इनकी लोकप्रियता 'फावड़िया' के नाम से हुई। इनकी कुंज ''फावड़िया वाली कुंज'' तथा समाधि फावड़िया की समाधि के नाम से लोकप्रिय है। इनके श्रीविग्रह का नाम श्री राधा ब्रजभूषण था—

राधा ब्रजभूषण ठाकुर, फावड़िया जी के जानौं।
तिनकौं तहं अखाड़ौ मंदिर, बड़े बीच में मानौं॥
तहं महंत फावड़िया जी की बनी समाधि सुहाई।
तहाँ फुलवारी अनूप अगारी, ललिता-ललित पर छाई॥

वहीं वि.सं.1824 में गोस्वामी चन्द्रलाल जी के द्वारा रचित वृन्दावन प्रकाशमाला पोथी में इनका नाम गोवर्धन दास फावड़िया बताया गया है जिसमें उल्लखित है कि साधकों की तरह श्रीविग्रह की सेवा के साथ ही वृंदावन की सेवा का

भाव इनकी अपनी अनूठी विशेषता थी—

आगे फावड़िया गोवर्धन दास जी की कुंज,
संत प्राचीन सब ही के सुखदाई हैं।
तहं साधु सेवा मांझ निस दिन छके रहैं,
लता द्रुम बेलि झूमि भूमि पर छाई हैं॥
वृंदावन सेवत करत जे अखण्ड प्यारे,
तिनि ही की बातें सदा मेरे मन भाई हैं...

फौजदार कुंज-यह कुंज वृन्दावन के रेतिया बाजार में श्रीजी कुंज के निकट स्थित है। इस कुंज में श्रीगोपाल जी का विग्रह विराजमान है। साथ ही चैतन्य महाप्रभु की प्रतिमा भी विद्यमान है। वृन्दावन धामानुरागावली शीर्षक रचना में गोपाल राय ने लिखा है कि किसी चेतनदास फौजदार नामक व्यक्ति ने यह देवस्थान बनवाया था—

चेतनदास फौजदार हि के मंदिर में गोपाला।
अब महंत करि ख्यात बात है जाकी सब में बाला॥

बनखण्डी महादेव मंदिर-यह मंदिर वृन्दावन में बनखण्डी तिराहे पर स्थित है। मंदिर वि.सं. 1600 के आसपास का माना जाता है। मान्यता है कि श्री सनातन गोस्वामी नित्यप्रति गोपेश्वर दर्शन करने जाते थे। मदनमोहन मंदिर से गोपेश्वर तक वृद्धावस्था होने के कारण जाना सम्भव नहीं हो पाता था। श्री सनातन गोस्वामी की भक्त भावना से प्रसन्न होकर भगवान शिव ने उन्हें दर्शन दिया और कहा कि तुम इतनी दूर न आया करो, मैं बीच में ही कहीं प्रकट होकर दर्शन दूँगा। तुम वहीं से दर्शन कर लौट जाया करना। ऐसा ही हुआ। वन के एक खण्ड भाग में भगवान शिव शिवलिंग रूप में प्रकट हुए। श्री सनातन गोस्वामी जी को जब ये पता चला तो उन्होंने शिवलिंग का अभिषेक कराकर पूचा-अर्चना की। तभी से यह शिवलिंग वनखण्डी महादेव के नाम से प्रसिद्ध हो गये। मंदिर के प्रवेश द्वार के ऊपर गजमोक्ष की प्रतिमा बनी हुई है। वर्तमान में मंदिर की सेवा व्यासवंशी गोस्वामियों द्वारा की जाती है। पाण्डुलिपियों में उल्लेख है कि उस जमाने में यह सघन लता-वृक्षावलियों से आच्छादित वन का एक खंड था। गोपाल राय ने वृंदावन धामानुरागावली में वनखण्डी महादेव की लोकप्रियता को रेखांकित किया है—

वनखण्डी महादेव पुरानौ, तहं वनखण्ड अगारी।
बीच तिराहे के सो राजत पूजत तहं नर नारी॥ . . .

बुंदेलखण्ड के प्रतापी राजा पारीछत देव जू महाराज ने अपनी ब्रजयात्रा के दौरान वृंदावन मुकाम के अवसर पर यहाँ दर्शन किये थे। इसका उल्लेख उनके साथ आये राजकवि नवल सिंह प्रधान ने किया है—

वनखण्डी सिव कौ दरस, तीज सुक्र कौ कीन।
चौथ सनीचर राति के, गनपति पूजन कीन॥

बरसानियाँ कुंज-यह कुंज वृन्दावन में श्रीजी की कुंज के पास स्थित है। इस कुंज में श्री गोपाल जी का विग्रह विराजमान है। यहीं पर उनकी सेवा-पूजा होती है। यह वृंदावन की प्राचीन कुंजों में एक है। पोथियों में उल्लेख मिलता है कि किन्हीं तुलसीदास महाराज के द्वारा यहाँ गोपाल जी की सेवा-पूजा बड़े मनोयोग से की जाती थी। वृंदावनी साहित्यकार गोपाल राय के द्वारा वि.सं. 1900 के लगभग रचित पाण्डुलिपि में इसका उल्लेख मिलता है—

पुनि सिंगार वट कुंज जहां, बरसानियन की बाजै।
श्री गोपाल तहं ठाकुर, तुलसीदास के राजैं॥

बीकानेर कुंज-यह कुंज वृन्दावन की छीपी गली में स्थित है। इस कुंज में ठाकुर श्री अजबमनोहर लाल जी का मंदिर भी स्थित है। मंदिर लगभग 250 वर्ष प्राचीन माना जाता है। यह कुंज देवस्थान विभाग, राजस्थान के अंतर्गत आती है। यह वृंदावन की प्राचीन कुंजों में एक है।

भीमकुंज-यह कुंज वृन्दावन की सेवाकुंज गली में स्थित है। इस कुंज का निर्माण राजस्थान नरेश श्री भीमसिंह ने करवाया था। यह कुंज राजा भीम सिंह के नाम से भी जानी जाती है। मंदिर परिसर में श्यामा-श्याम युगल सरकार विराजमान हैं। मंदिर परिसर में ही एक प्राचीन कुआँ तथा बगीचा है। पुराने समय में यहाँ बंदरों के लिये चना के क्षेत्र का संचालन तथा दैनिक श्रीमद्भागवत कथा के आयोजन का उल्लेख मिलता है। पोथियों में उल्लेख है कि भीमसिंह के सेव्य विग्रह जुगल किशोर थे तथा यहाँ कुंज के साथ यमुना तट पर सुन्दर घाट भी राजा के द्वारा बनवाया गया, जो आज भीम घाट के नाम से प्रसिद्ध है—

भीम सेन कोटा वारे के, जुगल किशोर सरूपा . . .
भीम सिंह की कुंज अरु, भीम घाट छवि छायौ।
अबहु चनन को क्षेत्र तहं, बंदरन हेत लगवायौ॥
कृष्ण कथा श्रीकृष्ण भट्ट, ते प्रथम तहं बहु बांची।
अबहू कथा कहत तहं कुल के, सुनत संत सुख सांची॥

(वृन्दावन प्रकाशमाला-गो.चन्द्रलाल जी)

18वीं सदी के उत्तरार्द्ध में राधावल्लभ सम्प्रदाय के हित परमानन्द जी ने भीम कुंज का उल्लेख अपनी रचना नित्य हित मंडल यात्रा में किया है—

भीम सिंह जी कुंज रंग भरि राजति है,
सदाई समाज श्री भागवत बंचत है . . . .

मदन मोहन जी मन्दिर (भट्ट जी का मन्दिर)—पुराना शहर, अठखम्भा की मन्दिर श्रृंखला में भट्ट जी के मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध इस स्थल की अपनी पहिचान है। रघुनाथ भट्ट गोस्वामी जी के शिष्य गदाधर भट्ट के सेव्य विग्रह मदनमोहन जी यहाँ विराजित हैं। गदाधर भट्ट जी गौड़ीय षड गोस्वामियों में एक जीव गोस्वामी पाद के अभिन्न थे। यह जीव गोस्वामी पाद का भट्ट जी के प्रति प्रेम ही था कि उनकी संकल्प पत्री (उत्तराधिकार पत्र) गदाधर भट्ट जी ने लिखी थी। जिसकी मूल प्रति वृन्दावन शोध संस्थान में संरक्षित है। चैतन्य महाप्रभु के द्वारा रघुनाथ भट्ट गोस्वामी जी को

प्रदत्त 14 हाथ लम्बी तुलसी की माला एवं महाप्रभु के द्वारा प्रदत्त श्रीमद भागवत की पवित्र पोथी अद्यावधि यहाँ विद्यमान है। वृन्दावन में श्रीमद भागवत के प्रसार में इस भट्ट घराने का अतुलनीय योगदान है, साथ ही सेवा उपक्रम में मनोरथों के आयोजन की विशिष्ट प्रविधि इस देवालय की अपनी पहिचान है। भट्ट जी की साँझी एवं समाज की परम्परा वृन्दावनी समाज में बहुत लोकप्रिय है। वि.सं.1900 की अप्रकाशित पाण्डुलिपि वृन्दावन धामानुरागावली में यहाँ भट्ट जी के वंशज माधो भट्ट जी के द्वारा सेवा किये जाने का उल्लेख मिलता है—

माधो भट्टहि को मंदिर, तहं मदन मुहन विख्याता।
वर्षोत्सव नित भजन कथा, कहि सबकों करत सनाथा॥

मदनमोहन कुंज-निम्बार्क सम्प्रदाय की यह कुंज वृन्दावन के ज्ञानगुदड़ी मुहल्ले में स्थित है। कुंज का जीर्णोद्धार बिहार के राजा राय बहादुर जी ने कराया था। पूर्व में यह स्थान केशव काश्मीरी भट्ट देवाचार्य की तपोस्थली भी माना जाता है। कुंज में केशव जी द्वारा सेवित विग्रह श्रीराधामदन मोहन सरकार जी विराजमान हैं। वर्तमान में यहाँ विद्यार्थियों की शिक्षा हेतु विद्यालय चलाया जाता है।

महोत्तरा वाली कुंज-वृन्दावन को कुंज गलियों का शहर कहा जाता है। महोत्तरा वाली कुंज वृन्दावन में ही स्थित है। इस कुंज का निर्माण निम्बार्काचार्य श्रीराधिकादास जी ने करवाया था। इस कुंज में श्रीराधिकादास जी के सेवित श्रीविग्रह ठा. श्रीराधाबिहारी जी विराजमान हैं। यह निधिवन के समीप मार्ग पर स्थित है।

मिथिला कुंज-यह कुंज वृन्दावन में परिक्रमा मार्ग में अटल्ला चुंगी के निकट स्थित है। इस कुंज का निर्माण निम्बार्कीय मठ के संत श्रीराधेश्याम दास जी द्वारा करवाया गया था। मंदिर के गर्भगृह में राधेश्यामदास जी द्वारा सेवित विग्रह श्री श्यामाश्याम जी विराजित हैं। इस मंदिर में अखंड हरिनाम संकीर्तन होता रहता है।

यशोदानंदन मंदिर- निम्बार्काचार्य श्री गोविन्दशरण देवाचार्य जी महाराज के शिष्य दूल्हैराम जी की शिष्य परम्परा में क्रमशः ब्रजदास, रतनदास जी एवं धर्मदास जी लक्ष्मण दास जी जमुनादास जी एवं हरगोविन्द जी हुए। आरम्भ में यह गद्दी विरक्त परम्परा में चली जिसमें इस परिवार के जमुना दास जी के बाद हरगोविन्द जी एवं देवकी नंदन जी महाराज गृहस्थ रहे। कालांतर में गौड़ ब्राह्मण धर्मदास जी की प्रेरणा से वि.सं.1822 में देलवाड़ा की बाई जसकुंवरि ने इस स्थान पर मंदिर का निर्माण कराया। स्थापना के कुछ समय बाद मंदिर के जीर्ण होने पर कोटा की माँ साहिबा महताब कुँवरि के द्वारा इसका जीर्णोद्धार कराया गया। वर्तमान में आचार्य नत्थीलाल शास्त्री जी के निकुंजगमन के उपरान्त राधेश्याम गौड़ जी यहाँ के सेवायत हैं। गोपाल राय की रचना वृन्दावन धामानुरागावली शीर्षक पाण्डुलिपि में इस मंदिर के सन्दर्भ में उल्लिखित है—

दूल्है रामहि के सु जसोदानंदन जान्यौं।
रतनदास कौ सिष्य तहां रहै, धरमदास सुख सान्यौं॥
झाला राधोदेव देलवारे कौ नृपति सुहायौ।
ताकी रानी जसु बाई नैं, मंदिर यहै बनायौ॥

यशोदानंदन मंदिर की उत्सव परम्परा के अन्तर्गत सांवरी सखी कथा उत्सव बहुत प्रसिद्ध है तथा मंदिर में विद्यमान पटेबाजी के आयुध सहज ही लोगों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। इसी परम्परा से सम्बद्ध राधमोहन जी का मंदिर समीप ही विद्यमान है।

युगलकिशोर मंदिर-यह मंदिर वृन्दावन में किशोरवन क्षेत्र के अन्तर्गत व्यासघेरा में स्थित है। वृंदावन की निधि हरित्रयी में एक संत प्रवर हरिराम व्यास जी के सेव्य युगल किशोर का मंदिर वृन्दावन के प्राचीनतम मंदिरों में से एक है। श्री व्यासजी को युगलकिशोर विग्रह स्वप्न में आदेशानुसार प्राप्त हुए थे। कालांतर में यवनों के आतंक से श्री युगलकिशोर जी को पन्ना (मध्यप्रदेश) ले जाया गया जहाँ आज भी सेवित हैं। समीप ही किशोरवन में श्री व्यास जी की समाधि स्थित है जिसका निर्माण सन् 1675 में राजा वीरसिंह ने कराया, जो आज भी दर्शनीय है। हरिराम व्यास जी ने इस पवित्र वन की लता-वृक्षावलियों को युगल सरकार का स्वरूप माना, जिसका उल्लेख उनकी वाणी में मिलता है—

वृन्दावन के रूख हमारे मात-पिता सुत बन्धु।

व्यास घेरे में हरिराम व्यास जी की समाधि अद्यतन विद्यमान है। पाण्डुलिपियों में उल्लेख मिलता है—

व्यासहि कौ घेरो बाजत, जहं व्यास समाधि सुहाई।
सघन लता द्रुम हींस, प्रथम तह बैठक परम सुहाई॥

(गोपाल राय-धामानुरागावली)

रसिकबिहारी मंदिर- हरिदासी सम्प्रदाय का यह स्थल नगर के वनखण्डी मार्ग पर स्थित है। मंदिर के गर्भगृह में रसिकदेव जी के सेवित विग्रह विराजमान हैं। मान्यता है 300 वर्ष पूर्व में यह विग्रह राजस्थान के डूँगरपुर जिले में विराजमान थे। एक दिन रसिक देव जी को स्वप्न में ठाकुर जी ने कहा कि मैं तुम्हारे पूर्वजों का सेवित विग्रह यहाँ डूँगरपुर में हूँ। मुझे भी वृन्दावन में स्थापित करो। उसी क्षण डूँगरपुर के नरेश को भी स्वप्न में कहा कि मुझे तत्क्षण वृन्दावन भेज दो। उसी समय रसिकदेव जी ने अपने शिष्यों को ठाकुर जी को लाने हेतु भेज दिया। डूँगरपुर के राजा ने बड़े हर्षोल्लास के साथ ठाकुर जी को वृन्दावन में विराजमान कराया। वृन्दावन में आकर ठाकुर रसिकबिहारी जी कुछ समय कालीदह पर विराजे। यह वृन्दावन के प्राचीन स्थलों में एक है, मंदिर परिसर में आचार्य महानुभावों की समाधियाँ विद्यमान हैं। मंदिर का चंदिया उत्सव प्रसिद्ध है। कालांतर में किशनगढ़ के महाराज सावंत सिंह, नागरीदास की रानी बनी-ठनी यहीं की शिष्या बनी थीं। जिन्होंने रसिक बिहारी छाप से कवितायें की हैं। वृन्दावन के मंदिरों का वि.सं. 1900 के दौरान विवरण प्रस्तुत करने वाले स्थानीय कवि गोपाल राय ने अपनी रचना वृन्दावन धामानुरागावली (अप्रकाशित पांडुलिपि) में इस स्थल का उल्लेख करने के साथ ही यह विवरण भी दर्ज किया है कि रसिक बिहारी मंदिर के तत्कालीन महन्त श्री की प्रेरणा से उन्होंने अपने ग्रंथ की रचना की थी।

वहीं 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध में राधावल्लभ सम्प्रदाय के हित परमानन्द जी ने रसिक बिहारी मंदिर का उल्लेख अपनी रचना नित्य हित मंडल यात्रा में किया है—

रसिकदेव के रसिक बिहारी लसैं, बसैं भीतर कुंज सबै सुख-सागर।
माधुरी मूरति मोहित ह्वै रहैं, गोवर्धन दास महंत उजागर॥ . . .

राधाकृष्ण मंदिर (संकीर्तन भवन)-यह संकीर्तन भवन मंदिर वंशीवट से यमुना तट को जाने वाले मार्ग के मध्य दायीं ओर स्थित है। सन् 1958 में इस जीर्ण-शीर्ण प्राचीन मंदिर का जीर्णोद्धार श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी महाराज ने

कराकर मंदिर में विग्रह की स्थापना कराई थी। मंदिर में एक ओर श्रीराधाकृष्ण एवं दूसरी ओर ब्रह्मचारी जी महाराज के सेवित श्री गोपाल जी का विग्रह विराजित है। मंदिर की सम्पूर्ण भूमि श्री ब्रह्मचारी जी महाराज ने अवागढ़ नरेश से पट्टे पर प्राप्त की थी। मंदिर के अन्दर हरिनाम संकीर्तन होता रहता है।

राधा मोहन मन्दिर (जुगलघाट)— यह वृन्दावन के प्राचीन मन्दिर में से एक है। जहाँ गोस्वामी हरिवंश महाप्रभु के पुत्र मोहनचंद जी के द्वारा सेवित राधामोहन जी का विग्रह विराजित है। मन्दिर की कारीगरी 16वीं सदी के मन्दिरों जैसी लगती है, जिसका प्रमुख कारण यह है कि बादशाह अकबर के शासनकाल में वनचन्द्र महाप्रभु जी की कृपा से अब्दुल रहीम खान खाना के दीवान सुन्दरदास कायस्थ के द्वारा बनवाये गये मन्दिर में से शेष पत्थरों का उपयोग यहाँ किया गया था। मन्दिर के आस-पास का क्षेत्र राधामोहन घेरा के नाम से प्रसिद्ध है। इसका उल्लेख वि॰सं॰ 1900 की रचना, वृन्दावन धामानुरागावली, दम्पत्ति वाक्य विलास सहित राधावल्लभ सम्प्रदाय की कई पोथियों में मिलता हैं। वहीं 18वीं शताब्दी के रचनाकार परमानन्द जी (राधावल्लभी) ने इनका उल्लेख नित्य हित मण्डल यात्रा नामक पोथी में किया है—

श्री हरिवंश गुंसाई के पुत्र हैं, कृष्णचन्द्र के ठाकुर जानिये।
श्री राधामोहन नाम रसीलौ, छबीले दोउ ये सदा उर आनिये॥

राधामोहन कुंज (अठखम्भा)— यहाँ स्थापित राधामोहन जी की सेवा-पूजा निम्बार्क परम्परा के अनुसार संचालित है। वि॰सं॰ 1900 में रचित वृन्दावन धामानुरागावली से ज्ञात होता है कभी अठखम्भा गली के प्रवेश द्वार पर यह पहला प्राचीन मन्दिर रहा है। दूल्हैराम जी की परम्परा में यहाँ एक से एक भजनानंदी साधक हुए जिनमें धर्मदास जी, ब्रजदास जी, लक्ष्मणदास जी, जमुनादास जी, मन्सुखदास जी, हरगोविन्द जी एवं देवकी नंदन जी के नाम उल्लेखनीय हैं। इस स्थल एवं यशोदानंदन मन्दिर का परिवार एक होने के कारण राधामोहन लाल जी का श्री विग्रह कुछ समय के लिये यशोदानंदन मन्दिर में भी विराजित रहा। यही कारण है कि आज भी आरतियों के बाद राधामोहन लाल जू का जैकारा यशोदानंदन मन्दिर में लगता है। मन्दिर के वर्तमान सेवायत गोवर्धन लाल एवं मोहनलाल जी गौड़ हैं। मन्दिर में समय-समय पर विभिन्न उत्सव-मनोरथों का आयोजन हर्षोल्लास से होता है।

राधामोहन मंदिर (मुंगेर मंदिर)- यह मंदिर वृन्दावन से मथुरा जाने वाले मार्ग पर स्थित है। इस मंदिर का निर्माण बिहार राज्य में स्थित मुंगेर स्टेट के राजा रघुनन्दन प्रसाद सिंह ने सन् 1932 ई. में करवाया था। मंदिर के गर्भगृह में संगमरमर के अति दिव्य राधामोहन विग्रह विराजित हैं। वर्तमान में इस मंदिर की देख-रेख राधारमण मंदिर के गोस्वामियों द्वारा की जाती है। मंदिर परिसर में विशाल अतिथि गृह बना हुआ है। इस मंदिर के संचालन की व्यवस्था वर्तमान में मुंगेर स्टेट के राजपरिवार द्वारा संचालित है।

राधाकान्त मंदिर-यह मंदिर वृन्दावन में वंशीवट के निकट स्थित है। यह मंदिर वृन्दावन के प्राचीन मंदिरों में से एक है। जो श्रीगोपाल गुरु मंदिर के नाम से विख्यात है। मंदिर का नाम श्रीचैतन्य महाप्रभु के शिष्य गोपालगुरु के नाम पर पड़ा था। मान्यता है मंदिर के आँगन में सैकड़ों वर्ष प्राचीन दो वृक्ष हैं, जो गोपालगुरु के एक शिष्य ध्यानचंद्र के रूप में प्रसिद्ध हैं। मंदिर में स्थापित श्रीराधाकान्त जी के विग्रह को गोपालगुरु के शिष्य ध्यानचंद्र ने स्थापित कराया था।

राधाकान्त मंदिर-यह मंदिर वृन्दावन की भूतगली में स्थित है। इस मंदिर का निर्माण 18वीं शताब्दी में पश्चिम बंगाल के जमींदार द्वारा करवाया गया। मंदिर के गर्भगृह में श्रीराधाश्यामराय जी का विग्रह विराजमान है। यह श्रीविग्रह दिनाचपुर के राजा एवं रानी को वृन्दावन के केशीघाट पर स्थान करते समय प्राप्त हुआ था। प्राप्त विग्रह को मंदिर का निर्माण कराकर पधरा दिया। मंदिर की पूजा-अर्चना गौड़ीय सम्प्रदाय के अनुसार होती है।

राधाकान्त मंदिर बड़ी सरकार— यह अठखम्भा मार्ग पर स्थित राधावल्लभ सम्प्रदाय की प्राचीन कुंज है। गोस्वामी रूपलाल जी महाराज के द्वारा सेवित मनमोहन विग्रह के इस प्रांगण में पाण्डुलिपि लेखन का कार्य वृहद पैमाने पर हुआ। परिमाण की दृष्टि से ब्रजभाषा के सशक्त रचनाकार चाचा हित वृंदावनदास ने यहाँ भजन-साधना की। उनके लिखिया केलिदास के द्वारा इस स्थल पर लिखी पाण्डुलिपियाँ आज भी विद्यमान हैं। इसी के निकट छोटी सरकार स्थित है, जहाँ राधावल्लभ सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार श्रीविग्रह की सेवा भाव से होती है।

राधाब्रजमोहन कुंज-यह कुंज वृन्दावन की छीपी गली में स्थित है। पूर्व में यह कुंज ब्रज में छटीकरा के निकट आझई ग्राम में विद्यमान थी। इस कुंज का निर्माण उड़ीसा के राजा श्री सुन्दरसिंह ने करवाया था। मंदिर परिसर में ठाकुर श्री ब्रजमोहनजी का श्रीविग्रह विराजित है। कालांतर में राजा ने इस कुंज की सेवा का भार अपने गुरुदेव श्रीनृसिंहदास जी को सौंप दिया। श्री नृसिंहदास जी निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्य थे। ठाकुर ब्रजमोहन जी के वर्तमान मंदिर का जीर्णोद्धार हो चुका है। मंदिर परिसर में सेवकों की समाधियाँ भी बनी हुई हैं।

राधानिकेतन कुंज-यह कुंज वृन्दावन में सेवाकुंज के समीप स्थित है। इस कुंज का निर्माण लगभग 90 वर्ष पूर्व नथियाबाई ने करवाया था। मंदिर परिसर में श्रीबिहारी जी का विग्रह विराजित है।

राम मंदिर-यह मंदिर वृन्दावन से मथुरा जाने वाले मार्ग पर अटल्ला चुंगी के समीप स्थित है। इस मंदिर की स्थापना स्वामी रामनरेशदास जी द्वारा की गई थी। यह मंदिर अति सुंदर व आकर्षक है। इस मंदिर में श्रीराम दरबार की मधुर झाँकी के दर्शन होते हैं जो कि मानव तन को सहज ही विमोहित करने वाले हैं।

रामबाग मंदिर-यह मंदिर श्रीधाम वृन्दावन के ज्ञानगुदड़ी क्षेत्र में अवस्थित है। इस मंदिर का निर्माण स्वामी संकर्षणदास ने बम्बई के एक धनाढ्य परिवार के सहयोग द्वारा कराया था। यह मंदिर रामानुज सम्प्रदाय का एक प्रमुख मंदिर है। मंदिर में श्रीराम एवं सीता जी की झाँकियाँ देखने को मिलती हैं। मंदिर परिसर में एक सुन्दर बगीचा, विद्यालय एवं अतिथि निवास बना हुआ है। मंदिर में स्थित संस्कृत विद्यालय की स्थापना स्वामी हयग्रीव जी द्वारा की गयी।

रूपमनोहर मंदिर-यह मंदिर ब्रज स्थल वृन्दावन में स्थित श्रीजी मंदिर के समीप बना हुआ है। निम्बार्क सम्प्रदाय के इस मंदिर का निर्माण जयपुर के राजा जयसिंह की माता भटियानी महारानी की दासी रूपा ने करवाया था। इस मंदिर के निर्माण तिथि के विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। मंदिर के गर्भगृह में ठा. श्रीरूपमनोहर जी का विग्रह विराजित है। रूप मनोहर मंदिर को बाँदी वाली कुंज के नाम से भी जाना जाता है। इस मंदिर की सेवा श्रीजी मंदिर के अधीन होती है। इस मंदिर के भोगराग सेवा हेतु जयपुर के राजा जयसिंह जी ने कुछ गाँव भेंट किये थे। निम्बार्क सम्प्रदाय के श्री गोपीश्वरशरण देवाचार्य जी महाराज ने इन गाँवों की जमीन का भी त्याग कर दिया था। वर्तमान समय में इस मंदिर की पूजा-अर्चना निम्बार्काचार्य द्वारा की जाती है। वृन्दावन निवासी गोपाल राय ने वि.सं.1900 की पाण्डुलिपि वृन्दावन धामानुरागावली में इस मंदिर का उल्लेख करते हुए लिखा है कि यहाँ कभी गेहूँ का आटा (चून) का क्षेत्र चलता था—

तहां चून कौ छेत्र लगायौ बीच बजार मझारी।
रूप मनोहर ठाकुर रूप वडारिन मंद्र अगारी॥

ललित कुंज-यह कुंज श्रीधाम वृन्दावन में श्रीराधादामोदर मंदिर से श्रीरासमण्डल को जाने वाले मार्ग पर स्थित है। इस कुंज का निर्माण लगभग 300 वर्ष पूर्व वंशीअलि जी ने करवाया था। इस कुंज को वंशीवाली कुंज के नाम से सम्बोधित किया जाता है। वंशीअलि जी ने इस कुंज में रहते हुए ही दोहा, पदावलियाँ तथा समाज गायन आदि लिखे थे। उपासना में राधा की प्रधानता इस कुंज की सेवा पद्धति का अपना वैशिष्ट्य है। यहाँ के साँझी उत्सव साहित्य की ख्याति

विशेष है। वर्तमान में यह कुंज शाहजहाँपुर वाले मंदिर के नाम से प्रताप बाजार में स्थापित है। बुंदेलखण्ड के प्रतापी राजा पारीछत देव जू महाराज ने अपनी ब्रजयात्रा के दौरान वृंदावन मुकाम के अवसर पर यहाँ दर्शन किये थे। इसका उल्लेख उनके साथ आये राजकवि नवल सिंह प्रधान ने ब्रज भूमि प्रकाश में किया है—

राजत रहस चबूतरा, गोविन्द घाट समीप।
मंडल आक्रत रुचिर दुत गवनैं तहां महीप॥
ललित लाड़िली लाल कौ मंदिर तहं रमनीय।
दरसन लै देखी दिपत, दीपत अति कमनीय॥

18वीं सदी के लगभग राधावल्लभ सम्प्रदाय के हित परमानन्द जी ने वंशी अलि जी की कुंज का उल्लेख अपनी रचना नित्य हित मंडल यात्रा में किया है—

वंशी अलि के शिष्य इक, ठाकुर दास विरक्त।
नित्यानंद सखा मिलें, हास्य रसहिं अनुरक्त॥

लाल जी की कुंज–यह कुंज परिक्रमा मार्ग में मदनमोहन जी के मंदिर एवं सनातन गोस्वामी जी की समाधि के समीप स्थित है। लाल जी महाराज का नाम तुलसीदास था। वल्लभकुल के आचार्य विट्ठलनाथ जी ने इन्हें गोपीनाथ जी का विग्रह प्रदान करते हुये सिंध प्रान्त की ओर भेजा था। जहाँ इनके द्वारा सेवित विग्रह डेरागाजी खां में विराजित हुये। यह वल्लभ कुल की अष्टम गद्दी कहलाती है। कुछ समय के बाद अपने पुत्रों को सेवा-पूजा सौंप कर लाल जी महाराज वृन्दावन आ गये थे और यहाँ परिक्रमा मार्ग के इस मनोरम वातावरण में यमुना तट पर साधनारत हुये। लालजी की कुंज का उल्लेख वि.सं.1824 की रचना वृन्दावन प्रकाशमाला में गो.चन्द्रलाल जी ने किया है। जहाँ इनकी समाधि अद्यतन विद्यमान है—

आगे श्रीलाल जू गुसांई को कुञ्ज, द्रुम,
सोहत समाधि गुन तिनके अपार हैं।
बहुतिक द्यौस लौं अपुनपौ छिपाये रहे,
वस्तु न छिपाई छिपै यह निरधार है॥

लालाबाबू मंदिर–श्री लालाबाबू मंदिर वृन्दावन में ब्रह्मकुण्ड से पहले एवं रंगनाथ मंदिर से उत्तर की ओर स्थित है। मंदिर का उत्कृष्ट शिल्प कौशल एवं वास्तुकला देखते ही बनती है। लालाबाबू ने मंदिर में सेवित ठाकुर श्रीराधाकृष्णचन्द्र की प्रतिष्ठा करायी थी, जिससे इस मंदिर का एक नाम 'राधाकृष्णचन्द्रमा' भी विख्यात है। मंदिर में राधाकृष्ण के साथ ललिता सखी का विग्रह विराजित है। मंदिर में दो द्वार हैं जो पूर्व और पश्चिम की ओर खुलते हैं। मंदिर में पश्चिम दरवाजे के समीप ही लालाबाबू की विशाल समाधि बनी हुई है। यह मंदिर अपने निर्माण काल से ही काफी लोकप्रिय रहा है। कभी यहाँ चलने वाले अन्न क्षेत्र की बड़ी प्रसिद्धि थी। गोपाल राय कृत वृन्दावन धामानुरागावली में इसका उल्लेख है—

लाला बाबू मंद्र तहं कृष्ण चन्द्रमा राजैं।
नाना भोग राग उत्सव नित, छेत्ररू भजन समाजैं॥

सन् 1822 ई. के लगभग ब्रज यात्रा को आये दतिया रियासत के महाराज पारीछत देव महाराज के साथ आये राजकवि नवल सिंह प्रधान ने महाराज द्वारा यहाँ दर्शन किये जाने का उल्लेख अपनी पोथी ब्रजभूमि प्रकाश में किया है—

ह्वां पुलिन वंशीवट विलोकत लाला बाबू कुंज।
फिर स्याम सुंदर जी लखे अभिराम वपु छवि पुंज॥

वन विहार— वृन्दावन के प्रदक्षिणा पथ पर ललिता बाग से आगे रमणरेती की ओर बढ़ने पर वन विहार स्थल की सीमा आरम्भ होती है। वर्तमान में वन विहार निम्बार्क सम्प्रदाय की टोपी कुञ्ज से सम्बद्ध स्थान है। वन विहार का यह परिक्षेत्र कभी लता-वृक्षावलियों के आच्छादन के लिये प्रसिद्ध था, जिसके विवरण पाण्डुलिपियों में मिलते हैं। इस परिक्षेत्र की पवित्र रज का बड़ा महात्म्य रहा है जिसे पुरा ग्रंथों में 'विहार चंदन' शब्द के द्वारा सम्बोधित किया गया है, जिसका उपयोग श्री विग्रहों की सेवा के साथ ही साधक लोग मस्तक पर तिलक लगाने हेतु करते रहे हैं। राधावल्लभ सम्प्रदाय के गोस्वामी श्री हित चन्द्रलाल ने अपनी वि॰सं॰ 1824 की रचना वृन्दावन प्रकाश माला में विहार वन के विहार चन्दन का उल्लेख किया है-

आगे नीकी विहार चंदन ही की खान लसै,
आगै पै जाये तो लागत सुहाये हैं।
आगे राधिका दास जी की बगीची तंहा,
कूप कुटी चौंतरा सघन द्रुम छाये हैं। . . .

वृन्दावन की विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायों में वन विहार, मनोरथ के रूप में भी अभिव्यक्त है। जिसकी अपनी समृद्ध परम्परा है। वन विहार की पदावलियों में विभिन्न प्रकार के पकवानों की नामावली तथा नाना प्रकार के खेलों के उल्लेख मिलते हैं। लोक परम्परा में वन भोज के आयोजन तथा वन विहार की परिक्रमा भी इसी परम्परा का क्रमिक विकास है।

वंशीवट मंदिर–यह पावन मंदिर श्रीधाम वृन्दावन की हृदय स्थली परिक्रमा मार्ग एवं यमुना तट के समीप स्थित है। यह स्थान भगवान श्रीकृष्ण एवं गोपियों से जुड़ा एक प्राचीन पौराणिक स्थल है। भगवान श्रीकृष्ण ने जिस कदम्ब के वृक्ष पर बैठकर वंशी बजायी थी वो स्थान आज 'वंशीवट' के नाम से प्रसिद्ध है। मंदिर परिसर के मध्य एक छोटा-सा मंदिर बना हुआ है जिसे 'चरण मंदिर' के नाम से जाना जाता है। इस मंदिर में राधाकृष्ण के पवित्र चरणों की स्थापना आचार्य श्री गिरधारीशरण देव ने सन् 1820 में की थी। राधावल्लभ, गौड़ीय तथा निम्बार्क सम्प्रदायों के भक्तों के लिये वंशीवट एक प्रमुख स्थान रहा है। गोस्वामी हित हरिवंश महाप्रभु के तृतीय पुत्र गोपीनाथ जी के शिष्य लाल स्वामी ने इसी वंशीवट में साधनारत रहते हुए अपार साहित्य सृजित किया। उन्होंने अपनी वाणी में अपने निवास स्थल वंशीवट के रमणीय वातावरण का उल्लेख किया है। राधावल्लभ सम्प्रदाय के वाणीकार दामोदर स्वामी इन्हीं के शिष्य थे। जब चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन आये तो यहीं रुके थे। मंदिर के अन्दर गोपियों के साथ रास करते हुए भगवान श्रीकृष्ण के यहाँ प्राचीन चित्र अंकित हैं। ब्रज में चार वटों का प्राचीन उल्लेख पाण्डुलिपियों में मिलता है। वल्लभ सम्प्रदाय कवि जगतानंद के ग्रंथ ब्रज ग्राम वर्णन में इनका उल्लेख है। वृन्दावन का यह वंशीवट युगल सरकार राधाकृष्ण के महारास के लिये प्रसिद्ध है। दतिया के महाराज पारीछत देव जू महाराज ने अपनी ब्रज यात्रा के दौरान यहाँ दर्शन कर पुण्य लाभ प्राप्त किया था। उनके साथ आये राजकवि नवल सिंह प्रधान ने यह विवरण दर्ज किया—

वंसीवट, शृंगार अच्छय वट सुख कारि।
बहुर चन्द्रवट आदि दै हैं ब्रज में वट चारि॥

वर्द्धमान कुंज-यह कुंज वृन्दावन के रेतिया बाजार में स्थित है। इस कुंज का निर्माण वर्द्धमान स्टेट के राजा ने करवाया था। इसी स्थान पर ठाकुर जी भी पधराये गये। वर्द्धमान कुंज की वर्तमान सेवा आनन्दमयी माँ के द्वारा की जा रही है। मंदिर परिसर में राजपरिवार की समाधियाँ भी विद्यमान हैं। यहाँ वृंदा विपिन बिहारी सेव्य विग्रह का उल्लेख स्थानीय साहित्यकार गोपाल राय ने वि.सं.1900 की रचना वृन्दावन धामानुरागावली में किया है—

वर्धमान वाटी में वृन्दा विपिन बिहारी राजै।
सो इहि कुंज बहादुर बाबू वीरचंद की बाजै॥

वृन्दा देवी मंदिर-पूर्व में यह मंदिर श्री गोविन्द देव जी के प्राचीन मंदिर के निकट स्थित था। मंदिर में वृन्दादेवी का विग्रह विराजित था परंतु औरंगजेब के अत्याचारों के कारण वृन्दा देवी का विग्रह यहाँ से कामवन ले जाया गया था। पुरा ग्रंथों में वर्णित है कि गोविन्ददेव के समीप ही कहीं वृंदा देवी का मंदिर था। गोपाल राय द्वारा वृन्दावन धामानुरागावली में गोविन्द देव मंदिर की सुन्दरता का वर्णन करते हुए वृंदा देवी का मंदिर समीप ही बताया गया है—

ऐसौ मंद्र त्रिलोकी में कोऊ नहीं दूसरो दीसै।
ताकौ देख विश्वकरमा हू अपने मन में रीसै॥
वृंदा देवी कौ मंदिर तिहि पास वन्यौ अति नीकौ।
सो अब कामवनहि में राजत है वृंदावन तीकौ॥

मान्यता है वृंदादेवी ब्रज से बाहर नहीं जाना चाहती थीं। कामवन से जिस दौरान जयपुर के राजा गोविन्ददेव जी को लेकर जयपुर प्रस्थान की तैयारी में थे तो वृंदा देवी के विग्रह को भी रथ में विराजित किया गया पर वृंदा देवी का रथ काफी प्रयासों के बाद भी आगे न बढ़ सका। वृंदावन धामानुरागावली में उल्लेख है कि रथ के आगे न बढ़ पाने पर उसमें हाथी भी लगाये गये कि श्रीविग्रह को जयपुर ले जाया जा सके। तब राजा ने स्वप्न में आदेशानुसार वृंदादेवी को वहीं विराजित किया और गोविन्ददेव को लेकर जयपुर प्रस्थान किया—

जब जैपुर कौं गोविन्द जीकूं नृप जैसिंघ सु लायौ।
वृंदा देवी धरी रथहि सौं चलत न बहुत चलायौ॥
तब तामें हाथी जोरे तऊ न रथ चल्यौ न थल में।
करे उपाय अनेकन नृप नै तब अपनी बुधि बल ते॥
तब नृप कों निसि स्वप्न दियौ, मैं ब्रजहि छांडि नंहि जेहौं।
कोटि उपाय करौ तोउ, कामा ते पाइ न दैहौं॥

वराह कुंज-यह प्राचीन कुंज वृन्दावन की छीपी गली में स्थित है। यहाँ मंदिर में नागाओं की वाराह प्रतिमा स्थित है। इस कुंज में लगभग 300 वर्ष पुराना मंदिर है। यहाँ पर प्राचीन नृसिंह मुखौटा सेवित है। नृसिंह चतुर्दशी के अवसर पर

केवल एक बार इस मुखौटे के दर्शन होते हैं। यह इस मंदिर की तत्कालीन प्रसिद्धि का प्रमाण है कि इस स्थान से ही यह गली वराह वाली गली के नाम से प्रसिद्ध है—

पुनि वराह वारी सु गली, के ठाकुर सुनहु अनूपा।
परमारथी कल्याणदास के, केसव देव सरूपा॥

वनचन्द्र जी का डोल— यह स्थान विहार घाट के समीप कालियमर्दन कुंज के समीप स्थित है। वनचंद्र जी गोस्वामी हित हरिवंश महाप्रभु के ज्येष्ठ पुत्र थे। यहाँ रास के आयोजन की पुरानी परम्परा है। कालांतर में रामरतन नामक महानुभाव के द्वारा इस स्थल का जीर्णोद्धार कराया गया तो रामरतन के डोल के नाम से भी इसकी लोकप्रियता का उल्लेख पाण्डुलिपियों में मिलता है। यहाँ वनचन्द्र महाप्रभु जी की समाधि भी विराजमान है। स्थानीय साहित्यकार गोपाल राय ने वि.सं.1900 की स्व-रचना वृन्दावन धामानुरागावली में इस स्थल का उल्लेख किया है—

रामरतन को डोल वहाँ, वनचन्द्र समाधि सुहाई।
कोई दिन राधाबल्लभ जी, झूले डोल जहाई॥

शाहजहांपुर मंदिर-यह मंदिर वृन्दावन के प्रताप बाजार क्षेत्र में स्थित है। इस मंदिर का निर्माण शाहजहांपुर राज्य के राज्य दीवान लाला बृजकिशोर जी ने सन् 1873 ई. में करवाया था। मंदिर की शिल्पकला एवं अष्टसखियों की मूर्तियाँ बड़ी ही मनमोहक हैं। मंदिर में श्रीराधागोपाल जी का विग्रह प्रतिष्ठित है। इस विग्रह में श्रीकिशोरी जी त्रिभंग मुद्रा में वंशी लिये हुये हैं। मंदिर के दर्शन अत्यंत सुंदर एवं भव्य हैं। भाद्रपद मास की प्रतिपदा तिथि से अष्टमी तक समाज गायन होता है। इस मंदिर की एक कुंज ललित कुंज के नाम से गोविन्द घाट रासमण्डल के समीप स्थित है।

सत्यनारायण मंदिर-श्री सत्यनारायण जी का मंदिर श्रीधाम वृन्दावन में अठखम्भा बाजार में अवस्थित है। यह मंदिर वृन्दावन के मंदिरों में पुष्टिमार्गीय उपासना से सम्बन्धित होने के कारण महत्त्वपूर्ण है।

समथर वाली कुंज- वृन्दावन में समथर वाली कुञ्ज व्यास घेरा में सेवाकुञ्ज के दक्षिण की ओर एक विशाल भू-भाग में स्थित है। इस कुञ्ज के मुख्य दरवाजे के अतिरिक्ति दो छोटे दरवाजे और भी हैं। कुञ्ज का निर्माण समथर के प्रथम नरेश विष्णु सिंह विक्रम संवत् 1602 -1837 के शासनकाल में महारानी रतनकुँवरि ने करवाया था और ठा० श्री विजय किशोर जी महाराज की स्थापना करवाकर सेवा-पूजा का प्रबंधन के साथ मन्दिर हित परमानन्दजी नागार्च को सौंप दिया था, बाद में हित परमानन्द जी के वंशज नागार्च मन्दिर के सेवायत रहे। इन्होंने अपनी इकलौती बेटी प्रेमकुँवरि के विवाह में अपने दामाद श्री बटेरी लाल मिश्रा को कुञ्ज एवं ठाकुर जी दहेज में देकर श्री बटेरी लाल मिश्रा को कुञ्ज का सेवायत बना दिया। कुञ्ज में विराजमान मूलस्वरूप श्री विजय किशोर का ही है, कालान्तर में किसी भक्त ने श्री राधावल्लभ लाल जी (राधा-कृष्ण) का एक स्वरूप और विराजमान कर दिया। विराजमान करने वाली माँजी साहब समथर राज्य से ही संबंधित थीं। समथर नरेश विष्णु सिंह के बाद भी उनके वंशज ब्रज यात्रा करते रहे हैं। विक्रम संवत् 1878 में राजा रणजीत सिंह गुर्जर ने ब्रज यात्रा की है, साथ में नवल सिंह प्रधान नायक कवि ने ब्रज यात्रा का वर्णन अपने वृन्दावन शतक नामक काव्य में किया है। राजा चतुर सिंह गुर्जर ने वि० संवत् 1948 में ब्रजयात्रा की है, जिसका वर्णन ब्रजयात्रा दरशमाल में जगन्नाथ कवि ने किया है।

सवामन शालिग्राम मंदिर-यह मंदिर वृन्दावन के लोई बाजार के निकट श्री श्यामसुन्दर मंदिर के सामने स्थित है। इस मंदिर का निर्माण मध्यप्रदेश के रींवा रियासत के महाराज रघुराजसिंह के वंशजों ने वि.सं. 1823 में करवाया था।

मंदिर परिसर में दो शालिग्राम शिलाओं की पूजा-अर्चना की जाती है। जिसमें प्रथम शालिग्राम शिला का वजन सवामन है वहीं दूसरी शिला का वजन एक मन है। प्रथम सवामन शालिग्राम शिला को श्रीलक्ष्मीनारायण एवं द्वितीय एक मन की शिला को श्री लक्ष्मीनरसिंह के नाम से सम्बोधित किया जाता है। ऐसी दुर्लभ एवं पवित्र शालिग्राम शिलाएँ नेपाल स्थित गण्डकी नदी से प्राप्त हुई थीं। इनके अलावा मंदिर में भगवान राम एवं सीता सहित अन्य विग्रहों की भी पूजा-अर्चना की जाती है।

साक्षीगोपाल मंदिर-यह मंदिर वृन्दावन के श्री गोविन्द देव मंदिर के उत्तर दिशा में स्थित है। इस मंदिर के बारे में श्रीचैतन्य चरितामृत ग्रंथ में प्रसंग आता है कि एक वृद्ध विप्र ने अपने सहायक विप्र की सेवा से प्रसन्न होकर अपनी कन्या का विवाह उसके साथ करने का वचन दिया था। इसके साक्षी स्वयं गोपाल जी बने थे। वर्तमान में श्री साक्षीगोपाल जी का विग्रह जगन्नाथपुरी से लगभग 20 कि.मी. दूर सत्यवादीपुर में विराजमान है। अब सत्यवादीपुर को साक्षीगोपाल के नाम से जाना जाता है। वर्तमान में मंदिर के अवशेष मात्र ही दिखाई देते हैं। अब मंदिर की जगह पर संत-महात्माओं ने रामानन्दी अखाड़े की स्थापना की हुई है।

सिंहपौर हनुमान-यह मंदिर वृन्दावन धाम में श्री गोविन्द देव मंदिर के निकट स्थित है। इस मंदिर का विग्रह अति प्राचीन है जोकि श्री साक्षीगोपाल जी के समय के माने जाते हैं। जब साक्षीगोपाल जी विद्यानगर चले गये तो मंदिर की पौरी पर इन्हीं के विग्रह को पहरेदार बनाकर विराजित कर गये। अंतत: हनुमंत लाल जी यहीं विराजित रह गये। उसके पश्चात् श्री गोविन्द देव जी प्रकट हुए तब भी सिंहपौर हनुमान जी यहीं रहे। जब औरंगजेब के आतंक के कारण सारे विग्रह जयपुर चले गये तब भी इन्होंने अपना स्थान नहीं छोड़ा और पौरी की रक्षा करते रहे। इसलिए इन्हें 'पौरी हनुमान' के नाम से जाना जाता है। जब औरंगजेब ने इस मंदिर को तोड़ने हेतु सीढ़ियों के ऊपर चढ़ने का प्रयास किया तो आपकी चमत्कारी शक्ति के कारण वह चढ़ नहीं सका। वर्तमान समय में अखाड़े वाले साधु-संतों के हाथ में इस मंदिर की सेवा-पूजा का भार है। [रा०श०]

वृंदावन की गौशालायें

गौशाला शब्द दो शब्दों के मेल से बना है गौ+शाला अर्थात् वह स्थान जहाँ गौओं का सेवाकार्य किया जाता है। गौशाला को गऊशाल भी कहते हैं। गौशाला धार्मिक क्रियाकलापों की मेरुदण्ड है। हमारे जीवन के सोलह संस्कारों में गौदान तथा गौ से प्राप्त पंचगव्य का विशेष महत्व है। धार्मिक मान्यताओं के अनुसार गौ की पूँछ पकड़ कर ही वैतरणी नदी पार होती है। अथर्ववेद में तो ''रूपायाध्वे ते नम:'' कहकर गौपूजा का विधान किया गया है। वेद कहता है जहाँ गौ निवास करती हैं वह स्थान सबसे पवित्र है। पुराणों और स्मृतियों में गौ की महिमा का गान किया गया है, ऐसी मान्यता है कि गौ में सभी देवता निवास करते हैं। अत: मानव मात्र की गौ की महिमा को ध्यान में रखकर प्राण-प्रण से सेवाकार्य करना चाहिये।

वृन्दावन श्रीधाम को गोलोक धाम भी कहा जाता है। इसी वृन्दावन में श्रीकृष्ण ने गौचारण किया था इसलिए वृन्दावन की रज का कण-कण पवित्र है। वृन्दावन में प्राचीन समय से ही अनेकों गौशालायें हैं जिनमें गौ पालन और गौ सेवा हो रही है। वृन्दावन के घर-घर तुलसी (वृन्दा) और गौ सेवा देखने को मिलती है।

आज के विज्ञान और चिकित्सकों ने सिद्ध किया है कि गौ से प्राप्त दूध, दही, घृत, मूत्र और गोबर से ऐसे रासायनिक तत्व पाये जाते हैं जो मानव शरीर के लिये बहुत उपयोगी और आवश्यक हैं। पाश्चात्य संस्कृति सभ्यता के लोग भी गौ को एक उपयोगी पशु मानते हैं। वृन्दावन में उस संस्कृति के लोग गौ सेवा करते हुए देखे जा सकते हैं। वृन्दावन ही नहीं देश की अनेक संस्थायें गौ के मूत्र, गोबर तथा पंचगव्य का शोधन करके अच्छी पैकिंग में उपलब्ध करा रही हैं जिनकी माँग देश में नहीं बल्कि विदेशों में भी हो रही है।

वृन्दावन की गौशालाओं को चार भागों में बाँट सकते हैं। पहली वह गौशालायें जो केवल गौ-सेवा के उद्देश्य से संचालित हैं, दूसरी वह गौशालायें जो गौ-सेवा के साथ-साथ धनोपार्जन भी करती हैं। तीसरी वह गौशालायें जो केवल व्यावसायिक रूप में संचालित हैं और केवल गौशाला का बोर्ड लग रहा है, चौथी प्रकार की वह गौशालायें हैं जो अधिक से अधिक दान प्राप्त करने हेतु संचालित हैं।

वृन्दावन की कुछ गौशालायें गौ से प्राप्त पंचगव्य का सम्मिलित या पृथक-पृथक शोधन करके उनकी पैकिंग करके जनहित में विक्रय कर रही हैं।

वृन्दावन की प्राचीन गौशालाओं का वर्णन निम्न प्रकार है-

पुराना काठियाबाबा गौशाला-यह गौशाला गांधी मार्ग पर है। इसकी व्यवस्था महंत प्रियाशरण जी करते हैं।

भतरोड बिहारी गौशाला-प्राचीन भतरोड बिहारी जी मंदिर के पास यह गौशाला स्थित है। यहाँ काफी समय से गौ-सेवा होती है। इसके संचालक बाबा दामोदरदास हैं।

श्री कृष्ण गौशाला-यह गौशाला मथुरा मार्ग पर बहुत बड़े क्षेत्र में संचालित है। यहाँ गौ-सेवा के साथ गौवंश की चिकित्सा का भी प्रबंध है।

श्री चैतन्य कुटी गौशाला-यह गौशाला पानीघाट पर है। इसकी व्यवस्था श्री फूलडोल बिहारीदास जी करते हैं।

श्री गोविन्द धाम गौशाला-यह बहुत ही व्यवस्थित गौशाला है। इसकी प्रधान गौशाला लुधियाना में है। वहाँ 2300 गायों की सेवा होती है। वृन्दावन की यह गौशाला अपने साथ-साथ अन्य छोटी गौशाला को पशुचारे का भी वितरण करती है। यहाँ गौवंश की अच्छी चिकित्सा होती है तथा सूचना मिलने पर अपने वाहन से बीमार, अपाहिज गौवंश को लाकर उनकी सेवा चिकित्सा होती है।

श्री पंचायती गौशाला-यह बहुत पुरानी और व्यवस्थित गौशाला है। यहाँ भली प्रकार से गौ-सेवा होती है।

श्री फलहारी गोपाल गौशाला-यह गौशाला बिहारी जी मंदिर के समीप है। इसकी देखभाल स्वयं फलहारी बाबा करते हैं।

श्री भक्ति वेदान्त स्वामी (इस्कॉन) गौशाला-इस गौशाला में विदेशी भक्तों द्वारा गौ-सेवा होती है।

श्रीरामकृष्ण मिशन गौशाला-यह वृन्दावन मथुरा रोड पर है। व्यवस्थापक श्री स्वामी सुप्रकाशानंद हैं।

श्री लीलानंद पागलबाबा गौशाला-श्री पागल बाबा ने अपने प्रत्येक आश्रम में गौशालायें खोली थीं। बाबाश्री सभी को गौ-सेवा का उपदेश देते थे। यहाँ बहुत बड़ी संख्या में गौ-सेवा हो रही है।

श्री वंशीवाले बाबा की गौशाला-इस गौशाला का निर्माण जय जय वंशी वाले बाबा ने किया था।

श्री श्याम गौशाला-यह मथुरा मार्ग पर स्थित है। यहाँ बड़ी संख्या में गौ-पालन और सेवा हो रही है।

स्वामी अखण्डानंद आश्रम गौशाला-आश्रम में आरंभ से ही गौ-सेवा की भावना से गौशाला का संचालन हो रहा है।

श्री हाथरस वाली श्रीकृष्ण गौशाला-यह प्राचीन गौशाला है। गौ-सेवा की भावना से संचालित है।

श्री हासानंद गोचर भूमि गौशाला-यह मथुरा-वृन्दावन मार्ग स्थित धौरेरा ग्राम के समीप स्थित है। इस गौशाला को महामना मदनमोहन मालवीय जी का आशीर्वाद प्राप्त हुआ था। यहाँ बहुत बड़ी संख्या में गौ सेवा हो रही है।

वृन्दावन में बहुत ही बड़ी संख्या में गौशालायें हैं। शेष प्रमुख गौशालाओं की नामावली अंकित की जा रही है-

गुरु गंगेश्वरानंद गौशाला, श्री मोहिनी उपवन गौशाला, टटियास्थान, श्री गोपेश्वर गऊशाला, गऊघाट, श्री जगन्नाथ गौशाला, श्रीकृष्णधाम गौशाला, कामधेनु विहार गौशाला, श्री गोपीनाथ गौड़ियमठ गौशाला, श्री गोपालखार गौशाला, श्रीपाद बाबा गौशाला, श्री देवरिया बाबा गौशाला, श्री सर्वेश्वरनाथ गौशाला, श्री महावीर गौशाला, श्रीमद्वल्लभ गौशाला, श्री रसिकापागल गौशाला, श्रीराधिका गौशाला, श्री बिहारीजी गौशाला, श्री अक्रूर अनाथ गौशाला, श्री

गौरीशंकर धाम गौशाला, श्री गोपाल अनाथ गौशाला, श्रीहरिदास गौशाला, श्री टाटबाबा गौशाला, श्री सत्या निकेतन गौशाला, श्री वैष्णो देवी मंदिर गौशाला, श्री वृन्दावाटिका गौशाला, श्रीराम धाम आश्रम गौशाला, श्री गोरेलाल जी की गौशाला, श्री राजेन्द्र दास जी की गौशाला, श्री वृन्दावन गौशाला, श्री शशि पहलवान की गौशाला, श्री टोपीकुंज गौशाला, श्री सूरमाकुंज गौशाला, श्री सुदामाकुटी गौशाला, श्री बाबा नीमकरौरी गौशाला, श्री शीतलामाता कुटी गौशाला, श्री साधककुटी गौशाला।

श्री वृन्दावन धाम और आसपास के सारे ब्रज क्षेत्र में गौ पालन की भावना प्रमुखता से है। यहाँ के निवासी भी अपने आवास में गौपालन करते हैं।

कामधेनु तरसत हिये, क्यों नही भइ ब्रज गाय।
राधा लाती दोहनी, मोहन दुहवे आय॥ [श०बि०दु०]

वृन्दावनदास (चाचा जी)

वृन्दावनदास के जन्म सम्वत् और स्थान के बारे में अभी तक प्रामाणिक निर्णय नहीं हो सका है। ललिता चरण गोस्वामी ने उनकी कृतियों में उल्लिखित संवतों को ध्यान में रखते हुए लिखा है कि सम्वत् 1800 में वृन्दावनदास की अवस्था अधिक नहीं थी और सम्प्रदाय में वे अपना कोई निश्चित स्थान नहीं बना पाये थे। इस समय उनकी अवस्था 30-35 मानने से जन्म काल सं. 1765-70 के लगभग निश्चित होता है। मिश्र बन्धुओं ने इनका जन्म सं 1700 के आसपास माना है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनका जन्म स्थान पुष्कर तथा जन्म सं. 1765 माना है। यह इनकी रचनाओं द्वारा या किसी ऐतिहासिक आधार पर पुष्ट नहीं होता है। कृष्णगढ़ के राजा बहादुर सिंह के साथ इनके सम्बन्ध का वर्णन अवश्य मिलता है। यह सम्भव है कि उसी आधार पर इनका जन्मस्थान पुष्कर लिखा गया हो।

वृन्दावनदास की भाषा को देखकर तो ऐसा प्रतीत होता है कि ये ब्रजमण्डल के ही निवासी थे। युवावस्था में ही विरक्त होकर वृन्दावन आ गये थे। बाद में मुगलों के आक्रमणों से तंग आकर इधर-उधर अनेक स्थानों में निवास करते रहे। किशोरीशरण अलि ने इनका जन्म सं. 1750 के लगभग तथा जन्मस्थान वृन्दावन के अतिरिक्त ब्रज के किसी ग्राम में माना है, जिसकी पुष्टि करते हुए डॉ. खण्डेलवाल इनका जन्मस्थान ब्रजमण्डल में बरसाने के आस-पास किसी गाँव के ब्राह्मण कुल में स्थिर करते हैं और जन्म सं. 1760 मानते हैं। राधाचरण गोस्वामी भी 'आर्त्त पत्रिका' के अन्तर्साक्ष्य के आधार पर इनका जन्म ब्रज का कोई गाँव विशेष निर्धारित करते हैं।

वृन्दावनदास का जन्म ब्रजमण्डल के आसपास किसी गांव के ब्राह्मण परिवार में सम्वत् 1765 के लगभग माना जाना उचित प्रतीत होता है। इन्होंने सम्वत् 1777 में गो. हित रूपलाल से दीक्षा ग्रहण की थी। वृन्दावनदास के साथ 'चाचा' शब्द का प्रयोग इस कारण होने लगा था कि तत्कालीन गोस्वामी के पिता श्री गुरु-भ्राता होने के कारण गोस्वामीजी की देखा-देखी और लोग भी इन्हें चाचा कहकर पुकारने लगे और ये समस्त समाज के चाचाजी नाम से विख्यात हो गये। वृन्दावनदास जी के साहित्य में उनकी प्रमुख चार छाप मिलती है-वृन्दावन हित रूप, वृन्दावन हित, हित वृन्दावनदास, वृन्दावन हित रूपिनी या वृन्दावन हित रूप।

वृन्दावनदास एक निश्चित स्थान पर न रहकर श्रद्धालु भक्तों के राज्यों को पवित्र करते रहे। इस प्रकार वृन्दावन, कामवन, भरतपुर, किशनगढ़, कोसी, पुष्कर आदि स्थान इनकी निवास स्थली बने। हदय में प्रेम उदय होने पर गान का प्रादुर्भाव होता है और प्रेम के अनन्त गुणों का गान ही 'वाणी' कहलाता है। वृन्दावनदास एक महान वाणीकार थे। ऐसा प्रतीत होता है कि वृन्दावनदास ने सं. 1795 के आस पास काव्य रचना आरम्भ की होगी, क्योंकि इनकी प्रथम रचना 'अष्टयाम' में सं. 1800 का उल्लेख मिलता है। कतिपय प्रतियों में सम्वत् नहीं है, किन्तु वे सम्वत् 1800 से पूर्व की

रचनाएँ प्रतीत होती हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि वृन्दावनदास स्वयं अपने हाथ से नहीं लिखते थे, उनके साथ लेखक रहता था। जब इनकी इच्छा होती तब वे पद रचना में लीन हो जाते थे। ब्रजभूमि से बाहर आप सं. 1831 से सं. 1836 तक रहे थे। उस काल का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'लाड़ सागर' का प्रणयन किया था।

ब्रज के भक्ति-सम्प्रदायों में जितने कवि हुए हैं उनमें वृन्दावनदास की रचनाओं की संख्या सबसे अधिक प्रतीत होती है। सवा लाख पद रचना की बात वृन्दावन में प्रसिद्ध है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने बीस हजार पद रचना का संकेत किया है। किशोरीशरण अलि ने अपने सूची पत्र 'साहित्य रत्नावली' में इनके छोटे-बड़े 158 ग्रन्थों का नामोल्लेख किया है। डॉ. जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल चाचा वृन्दावनदास को आशुकवि एवं वाणी के वरद पुत्र बताकर इनकी रचनाओं की संख्या लगभग 200 बताते हैं और कहते हैं कि उनके शिष्य केलिदास के द्वारा ये सभी रचनाएँ लिपिबद्ध की गयीं।

इनके प्रमुख ग्रन्थों में से कुछ प्रकाशित हो चुके हैं- लाड़सागर, ब्रज प्रेमानन्द सागर, वृन्दावन जस, प्रकाश बेली, विवेक पत्रिका बेली, कृपा अभिलाषा बेली, रसिकपथ चन्द्रिका, जुगल सनेह पत्रिका, हित हरिवंश सहस्रनाम, कलिचरित्र बेली, आर्त्त पत्रिका, छद्म लीला एवं स्फुट पद। इनके अतिरिक्त लगभग 80 फुटकर ग्रन्थ हस्तलिखित रूप में छतरपुर, भरतपुर, कृष्णगढ़ और वृन्दावन में उपलब्ध होते हैं। चाचा वृन्दावनदास के नाम से ब्रजभाषा गद्य-पद्य में चार लीलाएँ प्रकाशित हैं, किन्तु इनकी हस्तलिखित प्रति उपलब्ध नहीं है। इनके गद्य में रासधारियों की मिलावट प्रतीत होती है, यह गद्य चाचाजी का नहीं लगता है। ब्रजभाषा गद्य रचना 'स्वप्न विलास' मिलती है। इसका रचना काल नहीं है। राधावल्लभ-सम्प्रदाय में यह रचना चाचाजी कृत मानी जाती है। यह अनुमान है कि यह रचना 18वीं शती के अन्तिम चरण की हो सकती है। सुना जाता है कि वृन्दावनदास सम्वत् 1850 के आसपास श्री सेवाकुंज में समाज सुनते-सुनते अन्तर्धान हो गये थे। [अ०सिं०सै०]

वृन्दावनमहिमामृत

प्रबोधानन्द जी की सर्वश्रेष्ठ महान एवं धामनिष्ठा की परिचायक कृति है। वेदान्त चूड़ामणि के हृदय में महाप्रभु चैतन्य की कृपा से जब भक्ति की सुरसरिता प्रवाहित हुई जिसके फलस्वरूप वे वृन्दावन पहुँचे। अपनी चिरकांक्षित, आराध्य की क्रीड़ास्थली को निहार मंत्रमुग्ध हो गये। श्री प्रबोधानन्द ने श्रीराधाकृष्ण की मधुर रसमय लीलागान एवं वृन्दावन की महिमारूपी अमृतनाद से समस्त संसार को रससिक्त कर दिया। इसीलिए इसकी प्रशंसा में कहा गया है कि वृन्दावनमहिमामृतम् के अतिरिक्त इतना प्रभावशाली कोई दूसरा ग्रंथ अभी तक नहीं लिखा गया। यह ग्रंथ प्रबोधानन्द जी की प्रसिद्धि का प्रमुख कारण है।

कहते हैं, उन्होंने सौ-सौ श्लोकों के 100 शतक रचे थे, किन्तु अब 17 शतक ही प्राप्त हैं, जो बंगाक्षरों में सानुवाद प्रकाशित भी हो चुके हैं। शेष शतक प्राप्त नहीं होते हैं। प्रथम चार शतक नागरी अक्षरों में हिन्दी अनुवाद सहित वृन्दावन से प्रकाशित हुए हैं। इसके एक शतक का ब्रजभाषा काव्यानुवाद भगवत मुदित जी ने संवत् 1707 में किया था। [अ०सिं०सै०]

वृन्दावन स्थित शुक सम्प्रदाय के स्थान

कृष्ण की लीला-स्थली होने के कारण, वृंदावन भक्तों के आकर्षण का केंद्र बना रहा है। 'शुक संप्रदाय' भी इसका अपवाद नहीं है। इसके प्रवर्त्तक चरणदास राधाकृष्ण के परम भक्त थे। उन्होंने अनेक बार वृंदावन की यात्राएँ भी कीं। उनके शिष्यगण भी बार - बार वृंदावन आते थे। उनकी सुविधा के लिए उन्होंने 'तीर्थ पुरोहिताई' श्रीकृष्ण पुत्र रामकृष्ण के नाम लिख दी-

''श्री शुकदेव जी सहाय। दिल्ली ते डहरे को आये ता समय कामवन में तीर्थ पुरोहिताई श्री वृंदावन की लिष दीनी।''

यह लेख पंडित गोपालाचार्य शास्त्री, छीपी गली, वृंदावन के पास संरक्षित है। इस पत्र पर 'राम राम' लिखा है, जो चरणदास जी के हस्ताक्षर हैं तथा संप्रदाय की मुहर भी लगी है। संप्रदाय के बहुत सारे संतों-महंतों के हस्ताक्षर भी इस पत्र पर हैं। वृंदावन के प्रति अगाध प्रेम के कारण 'शुक सम्प्रदाय' के अनुयायियों ने अनेक स्थान बना लिए, जिनका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है।

ग्वालियर कुंज - यह स्थान दूसर कुंज के ठीक सामने है। चरणदास जी के पौत्र शिष्य वृंदावनदास (शिष्य जुगतानंद) बहुत पहुँचे हुए महात्मा थे। ग्वालियर नरेश दौलतराव सिंधिया तथा महारानी बायजाबाई उनके शिष्य थे। महारानी ने यह स्थान खरीद कर एक कुंज बनवाई, जिसका नाम 'ग्वालियर कुंज' रखा। ठीक रख-रखाव न होने के कारण इस कुंज का प्रवेश द्वार जीण-शीर्ण अवस्था में है। आँगन पार कर चार-पाँच सीढ़ी चढ़ने के बाद एक ऊँचे चबूतरे पर राधाकृष्ण का मंदिर है। मंदिर के दाहिनी ओर थोड़ा हटकर गुसाईं जुगतानंद तथा गुसाईं वृंदावनदास की छतरियाँ बनी हुई हैं, जिनमें उनकी चरण पादुकाएँ भी हैं। जुगतानंद जी की छतरी का निर्माण वृंदावनदास ने संवत् 1900 वि. में करवाया था। मंदिर के दाहिनी ओर का भाग मकान के रूप में निर्मित है। छतरियाँ भी उस घेरे में छिप गई हैं। वहाँ तक पहुँचने का रास्ता मंदिर के दार्यी ओर की गली से है।

गोविन्ददास जी का स्थान - लोई बाजार, बुन्देला बाग, वृंदावन में अवस्थित इस स्थान पर बाबा गोविंददास रहते थे। इस स्थान पर एक भवन है, जिसके चारों ओर 'श्री' का निशान बना हुआ है। बाबा गोविंददास के परलोक गमन पर उनके शिष्य प्रियादास ने यहाँ उनकी छतरी और चरण पादुकाएँ स्थापित करवाईं। चरण पादुका वाले पत्थर पर लिखा है-

पुरषोत्तम था मास तब सुक्रवार दिन मान।
छासठ और उनीस सौ संवत् विक्रम जान।।
श्रावण शुक्ल त्रयोदसी बाबा गोविन्ददास।
वृंदावन मैं पा गये निज वृंदावन वास ।।

अब यह स्थान व्यास गद्दी वालों के कब्ज़े में है।

चैनबिहारी जी का मंदिर-चरणदास जी के पौत्र शिष्य अखैराम (शिष्य गुरुछौना) ने जुगलघाट, वृंदावन में इस मंदिर का निर्माण करवाया था। इसकी पुष्टि जयपुर नरेश सवाई प्रताप सिंह द्वारा अखैराम को दिए 'आज्ञा पत्र' (जो अखैराम की गद्दी, अटलबिहारी जी का मंदिर, खंडहार का रास्ता, मोती कटला, जयपुर में संरक्षित है) की अग्रलिखित पंक्तियों से होती है -

''सिधश्री महाराजाधिराज महाराजा श्री सवाई प्रतापसिंहजी देववचना तकेनमैती प्रगनां सवाई जैपुर का दसे सुप्रसाद वंच्या। अपरंच बाबति भोग गाँव ठाकुर श्रीचैनबिहारीजी विराजमान श्रीवृन्दावन में जुगलघाट परि मंदि स्वामी अखैरामदास बणायौ।''

दूसरा कुंज ... भाद्रपद कृष्ण पंचमी संवत् 1797 वि. को वृंदावन गए और वहाँ ... घाट पर ... उनके

शिष्य यहाँ रहते थे। यह मंदिर अब विनष्ट हो चुका है और स्थान दूसरे लोगों के कब्ज़े में है। अवशेष के रूप में श्यामरूप जी (शिष्य चरणदास) की छतरी मौजूद है।

फतहपुरवाली कुंज-इस कुंज का निर्माण केशीघाट पर फतहपुरवासी लाला अवधबिहारीशरण जी ने करवाया था। उनके पूर्वज कई पीढ़ियों से 'शुक संप्रदाय' अनुयायी थे। यहाँ राधाकृष्ण का मंदिर है।

रामसखी निकुंज-यह स्थान श्रीधाम, वृंदावन में अवस्थित है। यहाँ राधाकृष्ण का छोटा-सा मंदिर है।

श्रीश्यामचरणदास कुंज-इस कुंज का निर्माण श्री अलबेलीमाधुरीशरण, जयपुर ने कुछ समय पूर्व करवाया। यह कुंज तराश मंदिर घेरा, श्रीधाम, वृंदावन में अवस्थित है। इसका क्षेत्र विशाल है। सीढ़ी से चढ़कर ऊपर जाने पर एक बड़ा-सा कमरा (हॉल) है। उसके पीछे राधाकृष्ण का भव्य मंदिर है, जिसमें चरणदास शुकदेव मुनि के चित्र भी लगे हुए हैं। भक्तों के रहने के लिए आधुनिक साज-सज्जा से सुसज्जित कमरे भी हैं।

शुक भवन-यह कालीदह मार्ग, मुहल्ला दुसायत, वृंदावन में अवस्थित है। इस स्थान पर पहुँचने के लिए एक छोटी-सी गली से होकर जाना पड़ता है। रामनारायण ठेकेदार ने 22 अप्रैल सन् 1940 ई. को यह भूखंड खरीदा था। सुश्री प्रेम माधुरी बाई, किशोरी बाई, श्रीमती ज्ञानवती आदि के सहयोग से यह विशाल भवन निर्मित हुआ। इस भवन के एक कक्ष में वैशाख शुक्ल पंचमी संवत् 1999 वि. को शास्त्रीय विधि से शुकदेव मुनि की प्रतिमा स्थापित की गई। इस भवन का प्रवेश द्वार बहुत छोटा है। प्रवेश करते ही थोड़ी दूर चलने पर दाहिने हाथ के कक्ष में शुकदेव मुनि की प्रतिमा तथा कुछ चित्र हैं। उस कक्ष के सामने भजन-कीर्तन के लिए एक विशाल प्रांगण है, जिसके अगल-बगल भक्तों के रहने के लिए कोठरियाँ बनी हुई हैं।

सरस कुंज-दूसर कुंज के पास जुगलघाट, वृंदावन में यह स्थान पं. श्यामाचरण जी ने बनवाया था। इस स्थान पर पं. श्यामाचरण, रूपमाधुरीशरण आदि रहते थे। यहाँ राधाकृष्ण का एक छोटा-सा मंदिर है जिसमें सखी भावपरक कई चित्र लगे हुए हैं। [म०गो०भा०]

व्यंजन द्वादशी

मार्गशीर्ष शुक्ला द्वादशी को ब्रज के मंदिरों में व्यंजन द्वादशी का उत्सव मनाया जाता है। ब्रजमंडल में अगर इस पर्व को लघु अन्नकूट कहा जाये तो अतिश्योक्ति न होगी। यहाँ अलग-अलग वैष्णव सम्प्रदायों के देवालयों में इसका अपना महत्व है। महाभारत में उल्लेख है कि इस शुभ दिन पर माँ यशोदा ने अनेक प्रकार के स्वादिष्ट पकवान बनाकर प्रिय पुत्र कृष्ण को प्रेमपूर्वक खिलाये थे। गौड़ीय वैष्णवों में मान्यता के अनुसार कलियुग में एक बार फिर इसी दिन शची माता ने बालक श्री चैतन्य महाप्रभु को इसी तरह पकवान खिलाये। इस दिन निम्बार्क सम्प्रदाय के मंदिरों में नारद जयंती का उत्सव भी उत्साह के साथ मनाया जाता है। नारद जी निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्य माने जाते हैं। इसलिए यहाँ यह उत्सव अत्यधिक हर्षोल्लास से मनाया जाता है। मान्यता के अनुसार ऋतु परिवर्तन होते ही ठाकुर जी को नवान्न निवेदन के अंतर्गत विभिन्न भोग व्यंजन अर्पित किये जाते हैं। ठाकुर जी को मंदिर गर्भगृह में ही विभिन्न प्रकार के भोग व्यंजन आरोगे जाते हैं। इस दिन यहाँ मंदिरों में विभिन्न प्रकार के व्यंजनों का ठाकुरजी को भोग लगाया जाता है। [प्र०श०]

व्याकरण कौमुदी

चैतन्य सम्प्रदाय की शास्त्रीय परम्परा में प्रभु नाम की व्याख्या आदि के रूप में व्याकरण ग्रंथों के लेखन का वैशिष्ट्य आचार्य बलदेव के पहले से ही विद्यमान रहा। विद्याभूषण द्वारा इस क्रम में व्याकरण कौमुदी प्रणीत हुई। गौड़ीय मत के व्याकरण ग्रंथों में इसका भी अपना स्थान है। [क०उ०]

''श्री शुकदेव जी सहाय। दिल्ली ते डहरे को आये ता समय कामवन मैं तीर्थ पुरोहिताई श्री वृंदावन की लिष दीनी।''

यह लेख पंडित गोपालाचार्य शास्त्री, छीपी गली, वृंदावन के पास संरक्षित है। इस पत्र पर 'राम राम' लिखा है, जो चरणदास जी के हस्ताक्षर हैं तथा संप्रदाय की मुहर भी लगी है। संप्रदाय के बहुत सारे संतों-महंतों के हस्ताक्षर भी इस पत्र पर हैं। वृंदावन के प्रति अगाध प्रेम के कारण 'शुक सम्प्रदाय' के अनुयायियों ने अनेक स्थान बना लिए, जिनका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है।

ग्वालियर कुंज - यह स्थान ढूसर कुंज के ठीक सामने है। चरणदास जी के पौत्र शिष्य वृंदावनदास (शिष्य जुगतानंद) बहुत पहुँचे हुए महात्मा थे। ग्वालियर नरेश दौलतराव सिंधिया तथा महारानी बायजाबाई उनके शिष्य थे। महारानी ने यह स्थान खरीद कर एक कुंज बनवाई, जिसका नाम 'ग्वालियर कुंज' रखा। ठीक रख-रखाव न होने के कारण इस कुंज का प्रवेश द्वार जीण-शीर्ण अवस्था में है। आँगन पार कर चार-पाँच सीढ़ी चढ़ने के बाद एक ऊँचे चबूतरे पर राधाकृष्ण का मंदिर है। मंदिर के दाहिनी ओर थोड़ा हटकर गुसाईं जुगतानंद तथा गुसाईं वृंदावनदास की छतरियाँ बनी हुई हैं, जिनमें उनकी चरण पादुकाएँ भी हैं। जुगतानंद जी की छतरी का निर्माण वृंदावनदास ने संवत् 1900 वि. में करवाया था। मंदिर के दाहिनी ओर का भाग मकान के रूप में निर्मित है। छतरियाँ भी उस घेरे में छिप गई हैं। वहाँ तक पहुँचने का रास्ता मंदिर के दायीं ओर की गली से है।

गोविन्ददास जी का स्थान - लोई बाजार, बुन्देला बाग, वृंदावन में अवस्थित इस स्थान पर बाबा गोविंददास रहते थे। इस स्थान पर एक भवन है, जिसके चारों ओर 'श्री' का निशान बना हुआ है। बाबा गोविंददास के परलोक गमन पर उनके शिष्य प्रियादास ने यहाँ उनकी छतरी और चरण पादुकाएँ स्थापित करवाईं। चरण पादुका वाले पत्थर पर लिखा है-

पुरषोत्तम था मास तब सुक्रवार दिन मान।
छासठ और उनीस सौ संवत् विक्रम जान।।
श्रावण शुक्ल त्रयोदसी बाबा गोविन्ददास।
वृंदावन मैं पा गये निज वृंदावन वास ।।
अब यह स्थान व्यास गद्दी वालों के कब्ज़े में है।

चैनबिहारी जी का मंदिर-चरणदास जी के पौत्र शिष्य अखैराम (शिष्य गुरुछौना) ने जुगलघाट, वृंदावन में इस मंदिर का निर्माण करवाया था। इसकी पुष्टि जयपुर नरेश सवाई प्रताप सिंह द्वारा अखैराम को दिए 'आज्ञा पत्र' (जो अखैराम की गद्दी, अटलबिहारी जी का मंदिर, खंडहार का रास्ता, मोती कटला, जयपुर में संरक्षित है) की अग्रलिखित पंक्तियों से होती है -

''सिधश्री महाराजाधिराज महाराजा श्री सवाई प्रतापसिंहजी देववचना तकेनमैती प्रगनां सवाई जैपुर का दसे सुप्रसाद वंच्या। अपरंच बाबति भोग गाँव ठाकुर श्रीचैनबिहारीजी विराजमान श्रीवृन्दावन में जुगलघाट परि मंदिर स्वामी अखैरामदास बणायौ।''

ढूसर कुंज -भक्त चरणदास भाद्रपद कृष्ण पंचमी संवत् 1797 वि. को वृंदावन गए और वहाँ उन्होंने जुगल घाट पर एक स्थान खरीदा, जिसका नाम 'ढूसर कुंज' रखा। इस स्थान पर उन्होंने राधाकृष्ण का एक भव्य मंदिर बनवाया। उनके शिष्य यहाँ रहते थे। यह मंदिर अब विनष्ट हो चुका है और स्थान दूसरे लोगों के कब्ज़े में है। अवशेष के रूप में श्यामरूप जी (शिष्य चरणदास) की छतरी मौजूद है।

फतहपुरवाली कुंज-इस कुंज का निर्माण केशीघाट पर फतहपुरवासी लाला अवधबिहारीशरण जी ने करवाया था। उनके पूर्वज कई पीढ़ियों से 'शुक संप्रदाय' अनुयायी थे। यहाँ राधाकृष्ण का मंदिर है।

रामसखी निकुंज-यह स्थान श्रीधाम, वृंदावन में अवस्थित है। यहाँ राधाकृष्ण का छोटा-सा मंदिर है।

श्रीश्यामचरणदास कुंज-इस कुंज का निर्माण श्री अलबेलीमाधुरीशरण, जयपुर ने कुछ समय पूर्व करवाया। यह कुंज तराश मंदिर घेरा, श्रीधाम, वृंदावन में अवस्थित है। इसका क्षेत्र विशाल है। सीढ़ी से चढ़कर ऊपर जाने पर एक बड़ा-सा कमरा (हॉल) है। उसके पीछे राधाकृष्ण का भव्य मंदिर है, जिसमें चरणदास शुकदेव मुनि के चित्र भी लगे हुए हैं। भक्तों के रहने के लिए आधुनिक साज-सज्जा से सुसज्जित कमरे भी हैं।

शुक भवन-यह कालीदह मार्ग, मुहल्ला दुसायत, वृंदावन में अवस्थित है। इस स्थान पर पहुँचने के लिए एक छोटी-सी गली से होकर जाना पड़ता है। रामनारायण ठेकेदार ने 22 अप्रैल सन् 1940 ई. को यह भूखंड खरीदा था। सुश्री प्रेम माधुरी बाई, किशोरी बाई, श्रीमती ज्ञानवती आदि के सहयोग से यह विशाल भवन निर्मित हुआ। इस भवन के एक कक्ष में वैशाख शुक्ल पंचमी संवत् 1999 वि. को शास्त्रीय विधि से शुकदेव मुनि की प्रतिमा स्थापित की गई। इस भवन का प्रवेश द्वार बहुत छोटा है। प्रवेश करते ही थोड़ी दूर चलने पर दाहिने हाथ के कक्ष में शुकदेव मुनि की प्रतिमा तथा कुछ चित्र हैं। उस कक्ष के सामने भजन-कीर्तन के लिए एक विशाल प्रांगण है, जिसके अगल-बगल भक्तों के रहने के लिए कोठरियाँ बनी हुई हैं।

सरस कुंज-ढूसर कुंज के पास जुगलघाट, वृंदावन में यह स्थान पं. श्यामाचरण जी ने बनवाया था। इस स्थान पर पं. श्यामाचरण, रूपमाधुरीशरण आदि रहते थे। यहाँ राधाकृष्ण का एक छोटा-सा मंदिर है जिसमें सखी भावपरक कई चित्र लगे हुए हैं। [म०गो०भा०]

व्यंजन द्वादशी

मार्गशीर्ष शुक्ला द्वादशी को ब्रज के मंदिरों में व्यंजन द्वादशी का उत्सव मनाया जाता है। ब्रजमंडल में अगर इस पर्व को लघु अन्नकूट कहा जाये तो अतिश्योक्ति न होगी। यहाँ अलग-अलग वैष्णव सम्प्रदायों के देवालयों में इसका अपना महत्व है। महाभारत में उल्लेख है कि इस शुभ दिन पर माँ यशोदा ने अनेक प्रकार के स्वादिष्ट पकवान बनाकर प्रिय पुत्र कृष्ण को प्रेमपूर्वक खिलाये थे। गौड़ीय वैष्णवों में मान्यता के अनुसार कलियुग में एक बार फिर इसी दिन शची माता ने बालक श्री चैतन्य महाप्रभु को इसी तरह पकवान खिलाये। इस दिन निम्बार्क सम्प्रदाय के मंदिरों में नारद जयंती का उत्सव भी उत्साह के साथ मनाया जाता है। नारद जी निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्य माने जाते हैं। इसलिए यहाँ यह उत्सव अत्यधिक हर्षोल्लास से मनाया जाता है। मान्यता के अनुसार ऋतु परिवर्तन होते ही ठाकुर जी को नवान्न निवेदन के अंतर्गत विभिन्न भोग व्यंजन अर्पित किये जाते हैं। ठाकुर जी को मंदिर गर्भगृह में ही विभिन्न प्रकार के भोग व्यंजन आरोगे जाते हैं। इस दिन यहाँ मंदिरों में विभिन्न प्रकार के व्यंजनों का ठाकुरजी को भोग लगाया जाता है। [प्र०श०]

व्याकरण कौमुदी

चैतन्य सम्प्रदाय की शास्त्रीय परम्परा में प्रभु नाम की व्याख्या आदि के रूप में व्याकरण ग्रंथों के लेखन का वैशिष्ट्य आचार्य बलदेव के पहले से ही विद्यमान रहा। विद्याभूषण द्वारा इस क्रम में व्याकरण कौमुदी प्रणीत हुई। गौड़ीय मत के व्याकरण ग्रंथों में इसका भी अपना स्थान है। [क०उ०]

श, ष

शंकराचार्य

भारतवर्ष में एक समय ऐसा आया जब हमारी सात्विक सनातन परम्परा का ह्रास हो रहा था। धार्मिक आयोजनों में वैदिक कर्मकाण्ड के स्थान पर मात्र आडम्बर ने स्थान ले लिया था। पंचमकार की आड़ में स्वच्छंदता को बढ़ावा दिया जाने लगा था। वैदिक मूल्यों का लोप हो चुका था। समस्त देश अनाचार और व्यभिचार से त्रस्त था। सभी प्रकार के कर्मकाण्ड में बलिदान प्रथा का बाहुल्य हो गया था। वैदिक धर्मावलम्बियों का घोर उत्पीड़न हो रहा था। सनातन धर्मियों को अग्नि में जलाया जा रहा था तथा पर्वत से गिराकर उनके विश्वास की परीक्षा ली जा रही थी।

ऐसे ही समय में भगवान् शंकराचार्य जी का जन्म केरल के कालडी में वैशाख शुक्ल पंचमी ई. सन् 788 में हुआ। कुछ विद्वान इनका जन्म लगभग 2516 वर्ष पूर्व का मानते हैं। ज्योतिषपीठ, बद्रिकाश्रम के पू. शंकराचार्यजी के द्वारा ज्योतिष पीठ की स्थापना के आगामी वर्ष में 2500 वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में ज्योतिर्मठ महिमा महोत्सव का आयोजन किया जा रहा है।

शंकराचार्यजी के जन्म के संबंध में भी एक कथा प्रचलित है। कहा जाता है कि इनके पिता शिवगुरु के यहाँ विवाह के कई वर्षों बाद तक कोई संतान न होने पर उन्होंने अपनी पत्नी आर्याम्बा के साथ पुत्रप्राप्ति की कामना से दीर्घकाल तक भगवान चंद्रमौलीश्वर शंकर की कठोर आराधना की। प्रसन्न होकर भगवान चंद्रमौलीश्वर ने उन्हें स्वप्न में दर्शन देकर वर माँगने को कहा। शिवगुरु ने सर्वज्ञ दीर्घायु पुत्र माँगा। भगवान शंकर ने शिवगुरु से कहा सर्वज्ञ पुत्र दीर्घायु नहीं होगा तथा दीर्घायु पुत्र सर्वज्ञ नहीं होगा। बोलो तुम कैसा पुत्र चाहते हो? तब धर्मप्राण शास्त्रसेवी शिवगुरु ने सर्वज्ञ पुत्र की याचना की। औढरदानी भगवान शंकर ने कहा तुम्हें सर्वज्ञ पुत्र की प्राप्ति होगी। मैं स्वयं पुत्र रूप में तुम्हारे यहाँ अवतीर्ण होऊँगा। कुछ समय पश्चात वैशाख शुक्ल पंचमी को मध्याह्न में आर्याम्बा ने अति सुन्दर, दिव्य कांतियुक्त बालक को जन्म दिया। देवज्ञ ब्राह्मणों ने उस बालक के मस्तक पर चक्र, ललाट पर नेत्र तथा स्कंध पर शूल चिह्न परिलक्षित कर उसे शिवावतार निरूपित किया तथा उसका नाम शंकर रखा।

शंकराचार्यजी ब्रह्मचारी, तपस्वी, विद्वान तथा योगी थे। अपने ज्ञान के बल से तथा शास्त्रार्थ के बल से उन्होंने नास्तिकवाद का खण्डन कर सनातन मूल्यों की पुनर्स्थापना की। उन्होंने पूरे देश का भ्रमण भी इस हेतु किया। अल्पायु में ही वे उच्चकोटि के विद्वान के रूप में सम्पूर्ण देश में प्रतिष्ठित हो चुके थे। आद्यशंकराचार्य जी अद्वैतवादी थे। वे जीव और ब्रह्म में अभेद मानते थे। ब्रह्म को सत्य जगत को मिथ्या मानते थे। उनका कथन था-

श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः।
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।।

उन्होंने वैदिक सनातन धर्म की संस्थापना, धर्मप्रचार तथा कुप्रथाओं को समूल नष्ट कर हिन्दुओं की एकता के लिये देश के चार आम्नायों (दिशाओं) में चार पीठ अथवा मठ स्थापित किये। पश्चिमाम्नाय अर्थात् पश्चिम दिशा में शारदापीठ द्वारिका, पूर्वाम्नाय में गोवर्धनपीठ पुरी, उत्तराम्नाय में ज्योतिर्मठ (ज्योतिष्पीठ) बद्रिकाश्रम तथा दक्षिणाम्नाय

में श्रंगेरीपीठ श्रंगेरी में। आद्य शंकराचार्य जी के प्रादुर्भाव के समय में ही विद्वानों में बहुत मतभेद है तो इन मठों की स्थापना के समय एवं प्रथम आचार्य के विषय में मतभेद होना स्वाभाविक है। मठों की संचालन व्यवस्था तथा विधान की दृष्टि से भगवद्पाद द्वारा विरचित ग्रन्थ 'मठाम्नाय महानुशासनम्' को प्रमुख स्थान दिया जाता है किन्तु मठों के संबंध में विवरण अन्य ग्रन्थों यथा मठाम्नायोपनिष्टद्, मठाम्नायसेतु, मठेतिवृत्ति तथा उड्डामहेश्वर तन्त्र में भी प्राप्त होता है।

सनातनधर्म की संस्थापना तथा हिन्दुओं की एकता के उद्देश्य से शंकराचार्यजी ने पूरे भारतवर्ष की यात्रा की। विभिन्न मतों के आचार्यों को शास्त्रार्थ में पराजित कर अपना शिष्य बनाया। इस सबका विस्तृत विवरण शंकरदिग्विजय नामक ग्रन्थ में उपलब्ध है। संस्कृत में शंकरदिग्विजय तथा शंकरविजय नामक दस ग्रन्थ उपलब्ध हैं। इनमें विद्यारण्यस्वामी जो कि भगवद्पाद शंकराचार्यजी के प्रमुख शिष्य थे, के द्वारा रचित शंकरदिग्विजय को बहुत आदर की दृष्टि से प्रामाणिक माना जाता है। इसमें शंकराचार्यजी के अनेकों अमानुषिक कार्यों का उल्लेख किया गया है। उन्हें साक्षात भगवान शंकर का अवतार माना गया है।

पिता के देहावसान के बाद बालक शंकर का मन इस संसार में नहीं लगता था। वे एकान्त में बैठकर केवल ईश्वर आराधन, चिंतन तथा अध्ययन में लगे रहते। माँ से संन्यास की आज्ञा लेकर वे सद्गुरु की खोज में निकल पड़े। अंत में उन्हें पू. गौड़पादाचार्य के शिष्य पू.गोविन्दपाद गुरु के रूप में मिल गये। उन्होंने 16 वर्ष की अवस्था में बालक शंकर को संन्यास धर्म में दीक्षित किया तथा उनका नाम शंकर से शंकराचार्य हो गया। तदोपरान्त शंकराचार्य ने गुरु से आज्ञा लेकर दिग्विजय के संकल्प के साथ आश्रम से प्रस्थान किया तथा वैदिक धर्म का प्रचार करते हुये विचरण करने लगे। शीघ्र ही शंकराचार्यजी की गुण-गरिमा की चारों ओर ख्याति होने लगी। पूज्य महात्मा के रूप में उनका सभी जगह आदर होने लगा। एकमात्र सच्चिदानन्द ब्रह्म ही सत्य है और सब मिथ्या है तथा वेदान्त का विशुद्ध अद्वैतवाद ही उनके प्रचार का प्रमुख बिन्दु था। इस सब में बौद्ध अनुयायियों के द्वारा सनातन धर्म के विरुद्ध किये जा रहे दुष्प्रचार एवं षड्यंत्रों को समूल नष्ट कर वैदिक सनातन धर्म की संस्थापना करना उनका मूल उद्देश्य था। कहना न होगा कि यदि शंकराचार्य जी न होते तो वैदिक सनातन धर्म कभी का लोप हो चुका होता।

इसी क्रम में शंकराचार्यजी ने लगभग चार सौ ग्रन्थों की रचना की। उनके महानतम कार्यों में से एक है प्रस्थानत्रयी अर्थात् श्रीमद्भगवद्गीता, ब्रह्मसूत्र और उपनिषदों पर भाष्यों की रचना करना। आज भी सारे विश्व की मनीषा इनके सम्मुख नतमस्तक है। शंकराचार्यजी के इस वैदिक धर्म के शंख-निनाद से भारत की चारों दिशायें मुखरित हो गयीं तथा शनैः-शनैः नास्तिक बौद्ध धर्म का संहार होने लगा और नर-नारियों के झुंड-के-झुंड शंकराचार्यजी के अनुयायी हो गये तथा वैदिक सनातन धर्म पुनर्स्थापित होने लगा।

शंकराचार्यजी के दिग्विजय भ्रमण के समय उनके साथ उनके प्रधान शिष्य पद्मपाद, हस्तामलक, समितपाणि, विष्णुगुप्त, शुद्धकीर्ति, भानुमरीच, कृष्णदर्शन, बुद्धि-विरंचि, पदशुद्धान्त और आनन्दगिरि के नाम उल्लेखनीय हैं। ये सभी अत्यन्त विद्वान पाण्डित्य से परिपूर्ण थे तथा गुरु आज्ञा से शास्त्रार्थ में नास्तिकों को पराजित कर देते थे। शंकराचार्यजी ने मण्डनमिश्र आदि विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित कर अपना शिष्य बना लिया था। इस प्रकार भगवद्पाद शंकराचार्य जी ने अपनी असीम विद्वत्ता एवं दृढ़ संकल्प के बल पर वैदिक सनातन धर्म की पुनर्स्थापना की तथा हिन्दुओं का बहुत उपकार किया। मात्र बत्तीस वर्ष की आयु में उन्होंने शरीर त्याग दिया। [अ०पा०]

शरद पूर्णिमा

सम्पूर्ण ब्रजमण्डल के चौरासी कोस परिमाण में शरद पूर्णिमा की रात्रि को योगीराज श्रीकृष्ण के महारास का सौभाग्य प्राप्त है। इसी रात्रि को रासेश्वर श्रीकृष्ण ने अपनी आल्हादिनी शक्ति श्रीराधा को रासेश्वरी शब्द से संबोधित करते हुए गोपियों के साथ अनेक रूपों में महारास किया। आयुर्वेद की मान्यता है कि शरद पूर्णिमा की रात्रि में चन्द्रमा अमृत वृष्टि

करता है। उस रात्रि में चन्द्रमा का प्रकाश भी अन्य पूर्णिमाओं की अपेक्षा अधिक तीव्र होता है। यही कारण है कि आज भी अनेकों व्यक्ति तथा आयुर्वेद शास्त्री शरद रात्रि को दूध, चावल तथा मिश्री मिलाकर खीर बनाते हैं तथा उस रात्रि में चन्द्रमा के प्रकाश में रात्रि भर रखकर उस औषधियुक्त खीर का सेवन रोगियों को कराते हैं। यह कई रोग व्याधियों की अचूक चिकित्सा है। चन्द्रमा को रसराज कहा गया है। इस शरद रात्रि में मनुष्यों को वस्त्रविहीन होकर अमृततुल्य चन्द्र किरणों का आवश्यकतानुसार सेवन करना चाहिये तथा नेत्रों से जितना हो सके अपलक चन्द्रमा की ओर देखना चाहिये। इससे नेत्र रोग दूर होते हैं तथा ज्योति बढ़ती है। चन्द्रमा की इन्हीं अमृत किरणों द्वारा ब्रजगोपियों को आरोग्य प्रदान करने हेतु भी श्रीकृष्ण ने इस दिन वासनारहित महारास किया। आश्विन मास का आखिरी त्यौहार शरद पूर्णिमा है। इस दिन ब्रज में जगह-जगह रासलीला का आयोजन होता है। शरद पूर्णिमा के दिन सम्पूर्ण ब्रजमंडल कृष्ण और राधामय हो जाता है। ब्रज क्षेत्र में शरद पूर्णिमा का पावन उत्सव बड़े धूमधाम से मनाया जाता है। शरद की रात्रि को चन्द्रमा पूरी आभा से प्रकाशित होकर पृथ्वी पर मानो अमृत की वर्षा करता है। द्वापर युग में भगवान श्रीकृष्ण ने इसी रात को ब्रज की गोपियों के साथ महारास किया था। ब्रज के मन्दिर-देवालयों में यह उत्सव बड़े समारोह के रूप में सम्पन्न होता है। इस अवसर पर ठाकुरजी को श्वेत वस्त्र धारण कराये जाते हैं तथा ठाकुरजी को दूध एवं दूध से बनी सामग्री भोग में लगाई जाती है। मंदिर प्रांगण को सफेद रंग से सजाया जाता है। शरद के पदों का गायन होता है। वृन्दावन के सप्त देवालयों में भी यह उत्सव अत्यन्त धूमधाम से आयोजित किया जाता है। शरद पूर्णिमा से ही सप्त देवालय में कार्तिक नियम सेवा का आयोजन किया जाता है। कहते हैं कि भगवान शंकर भी इस महारास को देखने के लिये गोपी बनकर वृन्दावन आये थे। इस कारण से यहाँ पर भगवान शंकर गोपेश्वर कहलाये थे। सप्त देवालय के अतिरिक्त श्रीबाँकेबिहारी जी के मन्दिर में भी शरद पूर्णिमा मनायी जाती है। इस दिन ठाकुरजी अपने गर्भ गृह से जगमोहन में विराजते हैं तथा साल में एक ही बार आज ही के दिन भगवान मुकुट व वंशी, छड़ी (लकुट) धारण करते हैं। भगवान को सफेद श्रृंगार किया जाता है। वृन्दावन के अतिरिक्त मथुरा, नन्दगाँव, गोकुल, बरसाना आदि स्थानों पर भी यह आयोजन होता है। ब्रज में संचालित सभी वैष्णव सम्प्रदायों के अन्तर्गत शरद पूर्णिमा के पद प्राचीन वर्षोत्सव के पोथियों में मिलते हैं, जिनका गायन इस अवसर पर होता है।

रास विलास गहै कर पल्लव 'इक इक भुजा ग्रीवा मेली'।
द्वै द्वै गोपी विच-विच माधव निरतत संग सहेली।

परमानन्द दास कवि, परमानन्द सागर पृ० 228

[प्र०श०]

शारदा पीठ (द्वारका)

आद्यशंकराचार्य जी के द्वारा प्रथम पीठ पश्चिमाम्नाय शारदामठ (शारदापीठ) द्वारका, गुजरात में स्थापित किया गया। कालक्रमानुसार इसका स्थापना काल 491 बी.सी. माना गया है तथा स्थापना तिथि माघ शुक्ल सप्तमी है। शारदापीठ का संप्रदाय कीटवार (मात्र मनुष्यों पर ही नहीं अपितु कीट आदि के प्रति भी समदृष्टि रखते हैं)। इस मठ के संन्यासियों तथा आचार्यों के नाम में तीर्थ (जो 'तत्वमसि' के त्रिवेणी (ज्ञान) तीर्थ में तत्व बोध हेतु स्नान करते रहते हैं) अथवा आश्रम (परम तत्व की प्राप्ति हेतु संन्यास आश्रम ग्रहण करने में जो स्थिर है तथा इच्छाओं के पाश से मुक्त है) पद एवं ब्रह्मचारियों के नाम में स्वरूप (जो आत्मानन्द में ही नित्य रमण करते हैं) पद होता है। मठ का क्षेत्र द्वारका तथा देवता सिद्धेश्वर हैं, देवी भद्रकाली हैं। वेद सामवेद तथा महावाक्य तत्वमसि है। गोत्र अविगत है। इसके अनन्तर आने वाले प्रदेश सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र, महाराष्ट्र तथा पश्चिम दिशा के भाग हैं। शारदामठ (शारदापीठ) के प्रथम आचार्य हस्तामलक थे।

भगवद्पाद शंकराचार्यजी अपनी यात्रा के अनंतर कर्नाटक के मूकाम्बी के प्रसिद्ध मंदिर में पधारे। वहाँ एक दिन एक ब्राह्मण अपने गूँगे पुत्र के साथ उनके दर्शनों के हेतु आया। आचार्य शंकर ने उस बालक से प्रश्न किया-तुम कौन

हो? चमत्कारपूर्वक उस बालक ने स्पष्ट शब्दों में उत्तर दिया, ''मैं यह शरीर नहीं हूँ, मैं सर्वव्यापी सत्य हूं''। वह गूँगा बालक वेदान्त प्रतिपादित सत्य को उसी प्रकार छिपाये हुआ था जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपनी मुठ्ठी में आँवला फल छिपाये रहता है। इसीलिये आचार्य शंकर ने इसका नाम 'हस्तामलक' रख दिया। संप्रति स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज इस पीठ पर विराजमान हैं।

[ग०शं०पा०]

शाह बरकतुल्ला पेमी

चिश्तियां, कादरिया, सुहरवर्दिया तथा नक्शबंदिया ये चार सूफी संप्रदाय प्रसिद्ध माने जाते हैं। सूफी संत शाह बरकतुल्ला पेमी कादरिया संप्रदाय के कालपी के सूफी संत शाह सैयद अहमद के शिष्य थे। सैयद शाह उवैस उनके पिता थे। इनके तीन पुत्र थे-सैयद बरकतुल्ला, सैयद अजमतउल्ल तथा सैयद रहमतुल्ला। सैयद बरकतुल्ला बिलग्राम (मारहरा की तारीख 'बयांज' में कस्बा श्रीनगर को बिलग्राम बताया गया है) में उत्पन्न हुए और वहीं के रहवासी थे, परंतु एटा जिले के मारहरा में आ बसे थे। फारसी रचनाओं में शाह बरकतुल्ला पेमी अपना तखल्लुस 'इश्की' रखते थे।

पंडित लक्ष्मीधर शास्त्री ने अपने शोधग्रंथ में शाह बरकतुल्ला पेमी की सात रचनाओं का जिक्र किया है-मसनवी रियाजे इश्क, दीवाने इश्की, तरजीअबंद, पेम परकास, चहार अनवाअ, रिसाला सवालो जवाब तथा अवारिफे हिंदी। पेम परकास और अवारिफे हिंदी हिन्दी भाषा में रचित है शेष अरबी-फारसी में हैं। मसनवी रियाजे इश्क और दीवाने इश्की पद्य रचनाएँ हैं। दीवाने इश्की में गजलें और रुबाइयां हैं। चहार अनवाअ 1711 रचित गद्य रचना है। 'अवारिफे हिंदी' में हिन्दी मुहावरों तथा लोकोक्तियों का अतिशय सूक्ष्म अध्ययन फारसी में किया गया है।

[वि०प्र०सिं०]

शिकोहाबाद के ईसाई धार्मिक स्थल

मूरे मेमोरियल गिरजाघर (चर्च)-यह गिरजाघर शिकोहाबाद में राष्ट्रीय राजमार्ग-2 पर आगरा गेट पर स्थित है, जो इस मार्ग से गुजरने वाले लोगों को दोराहे पर लगे क्रास के कारण दूर से दिखायी देता है। यह गिरजाघर बहुत बड़े क्षेत्र में फैला हुआ है। यह प्रोटेस्टेण्ट ईसाइयों का गिरजाघर है जो 'चर्च ऑफ नॉर्थ इण्डिया' द्वारा संचालित है। जिसका सूत्र वाक्य एकता, साक्ष्य, सेवा अंकित है। यह संस्था किसी अन्य देश की ईसाई संस्था से सम्बद्ध नहीं है। इस गिरजाघर की आधारशिला ब्रिटिश काल में सन् 1936 में रखी गयी। इसका नामकरण अमरीकी पादरी मूरे की स्मृति में किया। उन्होंने इस इलाके में शिक्षा, चिकित्सा क्षेत्र में काफी काम किया था। वे बहुत लोकप्रिय थे। इस गिरजाघर के अलावा पादरी आवास के साथ-साथ कर्मचारियों के निवासघर बने हुए हैं। इस गिरजाघर में हर रोज की सुबह-शाम की प्रार्थना होती है। प्रति रविवार को सामूहिक प्रार्थना होती है जिसमें बड़ी संख्या में प्रोटेस्टेण्ट ईसाई सम्मिलित होते हैं।

[ब०सिं०सि०]

शिकोहाबाद के जैन धार्मिक स्थल

मुगल सम्राट शाहजहाँ के ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह के नाम पर बसा शिकोहाबाद नगर वर्तमान में फिरोजाबाद की तहसील है। यह फिरोजाबाद के जनपद बनने से पूर्व मैनपुरी जनपद की तहसील हुआ करता था। दाराशिकोह पंजाब, इलाहाबाद और मुल्तान का बहुत समय तक सूबेदार रहे। वह धार्मिक रूप से सहिष्णु और उदार विचारों का विद्वान शासक था। उसके दरबार में हिन्दू पण्डितों, कवियों, जोगियों और संन्यासियों का आना-जाना बना रहता था। जिनके साथ वह विभिन्न विषयों पर विचार-विनिमय किया करता था। धार्मिक स्वतंत्रता प्राप्त होते ही जैन समुदाय ने अपने तीर्थंकरों के नाम से नये मन्दिरों का निर्माण करना शुरू कर दिया। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं-

पंचबालयति दिगम्बर जैन मन्दिर-यह मन्दिर गढ़ैया मुहल्ला में बना हुआ है जो साठ-सत्तर साल पुराना है। इसका पुनर्निर्माण सम्वत् 2052 में हुआ था। इसमें भगवान पंचबालयति की पाँच फीट की धातु से निर्मित प्रतिमा है। इस मन्दिर में भगवान विमलनाथ, सिद्धनाथ की धातु और मल्लिनाथ, शान्तनाथ, नेमिनाथ की पाषाण की मूर्तियाँ हैं।

श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन (नसिया जी)-यह स्थल स्टेशन रोड, भरतेशपुरम में स्थित है। इसका संचालन श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन नसिया जी कमेटी एवं सकल दिगम्बर जैन समाज, शिकोहाबाद द्वारा किया जाता है। नसिया जी परिसर में 32 फीट के गुलाबी पत्थर से निर्मित तीन खण्डों के खूबसूरत आसन पर सुन्दर पाषाण के ही जालीदार घेरे में विराजमान 31 फीट की भगवान भरतेश जी की यह विशाल प्रतिमा बहुत दूर से ही राहगीरों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। इस मन्दिर में मुख्य वेदी पर पार्श्वनाथ की अष्टधातु तथा अन्य वेदियों पर आदिनाथ तथा नेमिनाथ की श्वेत संगमरमर की एक फुट ऊँचाई की प्रतिमाएँ आसीन हैं। नसिया जी अत्यन्त प्राचीन है जहाँ दिगम्बर यानी निर्वस्त्र संत आकर ठहरते थे। यह स्थान पहले नगर से बाहर था और यहाँ केवल धर्मशाला हुआ करती थी।

श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन पंचायती मन्दिर-यह मन्दिर जैन मुहल्ला, मण्डी श्रीगंज के पास में स्थित है। जो दो सौ साल पुराना बताया जाता है। यह मन्दिर बहुत सुन्दर है तथा इसका ऊँचा शिखर मन्दिर की उपस्थिति को दर्शाता है। इस मन्दिर का रखरखाव बहुत अच्छा है। इस मन्दिर में मुख्य वेदी पर भगवान पार्श्वनाथ की श्वेत पाषाण प्रतिमा आसीन है। अन्य वेदियों पर भगवान महावीर स्वामी, चन्द्रप्रभु, आदिनाथ, मल्लिनाथ के विग्रह विराजमान हैं।

श्री 1008 नेमिनाथ जी दिगम्बर जैन मन्दिर (कलकत्ता वाला)-यह मन्दिर बड़ा बाजार, मिश्राना मुहल्ला में बना हुआ है। यह बादामी रंग के पत्थर से बना हुआ है जिस पर सुन्दर बेलबूटे उत्कीर्ण हैं। इसमें मूल वेदी पर भगवान नेमिनाथ का विग्रह विराजमान है। इनके अलावा अन्य वेदियों पर भगवान आदिनाथ, पार्श्वनाथ आदि हैं।

श्री 1008 महावीर दिगम्बर जिनालय- यह मन्दिर कटरा बाजार, चूड़ी वाली गली में बना हुआ है। इसे पहले 'काँच वाला मन्दिर' के नाम से भी जाना जाता था, जो काफी पुराना था। पहले छोटा-सा यह मन्दिर दूसरी मंजिल पर बना हुआ था और नीचे घर था। इसके मकान मालिकों के निधन के बाद इसका जीर्णोद्धार सन् 2015 में किया गया है। इस मन्दिर में एक ही वेदी है जिस पर भगवान महावीर स्वामी की तीन फीट की श्वेत संगमरमर की प्रतिमा विराजमान है। इसमें अनेक मूर्तियाँ तथा चौबीसी भी हैं।

श्री 1008 श्री महावीर दिगम्बर जैन मन्दिर-यह मन्दिर मण्डी श्रीगंज में अवस्थित है। जो सेठ जी के मन्दिर के नाम से भी जाना जाता है। यह मन्दिर बहुत भव्य है। इसका निर्माण मुरारीलाल जैन ट्रस्ट शिकोहाबाद द्वारा कराया गया है। इस मन्दिर की मुख्य वेदी पर महावीर स्वामी की पाँच फीट की श्वेत संगमरमर की प्रतिमा विराजमान है। मुख्य वेदी के एक ओर चन्द्रप्रभु, पार्श्वनाथ, नेमिनाथ तथा दूसरी ओर आदिनाथ, शान्तनाथ, भरतेश जी, सिद्धनाथ की मूर्तियाँ हैं। इनके अलावा चौबीसी, पदमावती, क्षेत्रपाल, धरेन्द्र स्वामी के विग्रह भी हैं। मन्दिर परिसर में बने मन्दिर के द्वार पर दो सिंह बैठे हैं। [ब०सिं०सि०]

शिकोहाबाद के मुस्लिम धार्मिक स्थल

कर्बला-यह पक्का तालाब पर स्थित है, जहाँ शिया मुसलमान मुहर्रम और चेहल्लुम पर ताजिए ठण्डे करते हैं। यहाँ शिया मुसलमानों द्वारा शोक जताते हुए ताजिए लाए जाते हैं और उन्हें दफन होते देखने वालों की काफी भीड़ एकत्र हो जाती है। यह पक्का तालाब में कर्बला के पास स्थित है।

तितली वाली मस्जिद-यह मस्जिद भी बड़ा बाजार में बनी हुई है। इसमें गुम्बद और चार मीनारें हैं। यह भी सौ वर्ष से अधिक पुरानी बतायी जाती है। इसमें दो से ढाई सौ लोग एक साथ नमाज पढ़ सकते हैं।

मदीना मुजाबरान मस्जिद-यह छोटी-सी मस्जिद कटरा मीरा, पंजाबी मुहल्ला वाली एक सँकरी गली में स्थित

है। यह मस्जिद भी कोई सौ साल से अधिक पुरानी है। समय-समय पर इसकी मरम्मत होती आयी है। मस्जिद परिसर में खजूर का वृक्ष भी है।

शाही जामा मस्जिद-यह मस्जिद बड़ा बाजार चौराहा पर स्थित है जो मुगल सम्राट शाहजहाँ के ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह के समय की बनी बतायी जाती है। यह ककइया ईंटों से बनी है। इस मस्जिद के तीन गुम्बद और चार मीनारें इसकी खूबसूरती बढ़ाती हैं। यह जमीन से कई फीट ऊँचाई पर बनी हुई है। इस कारण सीढ़ियाँ चढ़कर मस्जिद में प्रवेश करना होता है। इसमें एक हजार से अधिक लोग नमाज पढ़ सकते हैं।

शिया मस्जिद-यह मस्जिद मुहल्ला कटरा मीरा की दर्जी गली में स्थित है जो डेढ़ सौ साल पुरानी है। यह शिया मुसलमानों द्वारा बनायी है इसलिए इसे 'शिया मस्जिद' कहा जाता है। यह छोटे आकार की खूबसूरत मस्जिद है। इसमें केवल शिया मुसलमान ही नमाज पढ़ते हैं। [ब०सिं०सि०]

शिकोहाबाद के सिक्ख धार्मिक स्थल

गुरुद्वारा श्री गुरु सिंह सभा-यह गुरुद्वारा बड़ा बाजार में स्थित है जो लगभग 60-70 साल पहले का बना हुआ है। यह दो मंजिला इमारत है। इसमें हर रोज गुरु ग्रन्थ साहिब का पाठ और शब्द कीर्तन होता है। यहाँ सभी गुरु पर्वों और बैशाखी पर विशेष आयोजन किये जाते हैं।

गुरुद्वारा श्री संगत सभा- यह गुरुद्वारा शान वाली गली, कटरा बाजार में स्थित है। यह गुरुद्वारा थोड़ा सँकरे मार्ग पर जरूर बना है, लेकिन बहुत भव्य है। यह गुरुद्वारा देश के स्वतंत्र होने के बाद सन्त सुन्दरदास ने समाज से धन एकत्र कर बनवाया था। सन्त सुन्दरदास सिन्ध प्रान्त के रहने वाले थे जो देश के विभाजन के बाद इधर आ गए थे। इस गुरुद्वारे में राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह आ चुके हैं। इस गुरुद्वारे में भी नित्य गुरुग्रन्थ साहिब का पाठ और शब्द-कीर्तन होता है। इसके अलावा सभी गुरुपर्वों और बैशाखी पर विशेष कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं। [ब०सिं०सि०]

शिकोहाबाद के हिन्दू धार्मिक स्थल

काली देवी मन्दिर-यह मन्दिर मेला बाग, स्टेशन रोड पर एक बगीची में बना हुआ है जो सौ साल से अधिक पुराना है। इस छोटे-से मन्दिर में काले कसौटी के पत्थर से बनी शिवजी पर पाँव रखकर खड़ी काली माता की साढ़े तीन फीट की प्रतिमा है, जो बहुत ही भव्य और आकर्षक है। इनके अलावा इस मन्दिर में हनुमान जी और दुर्गा माँ के विग्रह भी विराजमान हैं। इस मन्दिर के परिसर में पीपल, कदम्ब, चाँदनी, हरसिंगार, अशोक, चमेली, बेलपत्र, बरगद के वृक्ष लगे हैं। यह मन्दिर की शोभा, सुरम्यता को बढ़ा रहे हैं।

कैलाशपति टुइयां बाबा मन्दिर-यह मन्दिर मेलाबाग में एक बड़े परिसर में स्थित है जो दो सौ साल से अधिक पुराना है। इसमें मुख्य मन्दिर भगवान शिव का है। इस मन्दिर में शिव परिवार विराजमान है। इसमें कोई डेढ़ फुट चौड़ा और लम्बा पाषाण का शिवलिंग है जो जलहरी में स्थित है। इसके साथ माता पार्वती जी, गणेश जी, कार्तिकेय और नन्दी जी के विग्रह भी हैं। मुख्य मन्दिर के पूर्व में हनुमान जी का मन्दिर है। इस मुख्य मन्दिर के चारों ओर भगवान के विभिन्न नाम अंकित हैं।

गंगेश्वरनाथ मन्दिर -यह मन्दिर बस स्टैण्ड परिसर में स्थित है। इसका निर्माण सन् 1970 से पहले का है। इस मन्दिर के प्रांगण में मुख्य मन्दिर भगवान शिव जी का है, जिसमें शिव परिवार विराजमान है। इसमें शिवलिंग काले कसौटी पत्थर से बना है। पार्वती जी, गणेश जी, कार्तिकेय, नन्दी की प्रतिमाएँ संगमरमर की हैं। इसके अलावा मन्दिर में राधा-कृष्ण, हनुमान जी, पथवारी माता, भैरव बाबा इत्यादि के विग्रह स्थापित हैं।

गंगेश्वर महादेव मन्दिर-यह मन्दिर गंगेश्वर पाठशाला, आगरा रोड, बस स्टैण्ड के पास स्थित है, जो लगभग दो सौ

साल पुराना है। यह छोटा-सा खूबसूरत मन्दिर है। इसमें शिवलिंग दो फीट ऊँचा पाषाण से निर्मित है जो जलहरी में अवस्थित है। इसके पास में नन्दी जी विराजमान हैं। इनके अलावा शिव-पार्वती, गणेश जी की सफेद पाषाण की प्रतिमाएँ हैं।

गुलाब बाड़ी शिवालय-यह मन्दिर गुलाबबाड़ी मुहल्ले में एक बड़े मैदान में बना हुआ है। इस मुख्य मन्दिर में शिवलिंग दक्षिणमुखी है। उसके सामने नन्दी जी बैठे हुए हैं। इस मन्दिर के आले में देवी दुर्गा, दूसरे आले में गणेश जी विराजमान हैं। इस मन्दिर परिसर में पथवारी माता और हनुमान जी के अलग-अलग मन्दिर भी बने हुए हैं।

चौमुखी महादेव मन्दिर-यह मन्दिर एटा जाने वाली सड़क यानी एटा रोड पर पूर्व दिशा में स्थित है। यह मन्दिर अपने ऊँचे और बहुरंगी आकर्षक शिखर के कारण राहगीरों का ध्यान अपनी ओर खींचता है। इसके शिखर में कई और शिखर समाये हुए हैं। इनमें राधा-कृष्ण, शिवजी, पार्वती, सूर्यदेव, हनुमान जी के विग्रह विराजमान हैं। यह मन्दिर मुगल सम्राट औरंगजेब से पहले का बना हुआ है। इस तरह यह चार सौ साल से अधिक प्राचीन है। इस मन्दिर में चार मुख वाला पाषाण से निर्मित खण्डित शिवलिंग है। कहा जाता है कि इसे औरंगजेब के काल में खण्डित किया गया था, जब वह हिन्दू मन्दिरों का विध्वंस करा रहा था। जलहरी के पास धातु का नाग भी विराजमान है। इसी तरह नन्दी पर सवार अर्द्धनारीश्वर, उन पर जल छिड़कती पार्वती माता, नृसिंह अवतार, राधाकृष्ण, गणेशजी, ब्रह्मा जी के रंगीन चित्र अंकित हैं। मन्दिर की दीवार पर मृत्युंजय मंत्र भी अंकित है।

दाऊजी मन्दिर-यह मन्दिर मिश्राना मुहल्ला, बड़ा बाजार में है जो कोई तीन सौ साल पुराना है। कुछ लोग इसे दाराशिकोह के समय का बताते हैं। इस मन्दिर के पश्चिम में शाही जामा मस्जिद है जो बहुत नजदीक है। इस मन्दिर में दाऊजी और कृष्ण जी की पाँच फीट के पाषाण से बने आकर्षक विग्रह हैं। इनके समीप में अष्टधातु से निर्मित रेवती जी की प्रतिमा भी है। इस मन्दिर के महन्त पण्डित सतीश कुमार का कहना था कि दाऊजी की यह प्रतिमा कहीं से लाकर स्थापित नहीं की गयी है, बल्कि यहीं से निकली है। इसके बारे में मान्यता यह है कि यह जितनी भूमि से ऊपर दिखायी देती है, उतनी भूमि के अन्दर है।

रामचन्द्र मन्दिर-तहसील के सामने एक बगीची में स्थित यह मन्दिर सौ साल से अधिक पुराना बताया जाता है। इसमें भगवान रामचन्द्र, सीता माता, लक्ष्मण जी, हनुमानजी की ढाई फीट की पाषाण प्रतिमाएँ हैं। इस मन्दिर परिसर में दुर्गा माँ, भोलेनाथ की काले कसौटी पत्थर तथा गणेश जी की श्वेत संगमरमर के विग्रह विराजमान हैं।

हनुमान मन्दिर-यह मन्दिर खेड़ा मुहल्ला में स्थित है जो तीस-चालीस साल पुराना है। इसमें मुख्य विग्रह हनुमान जी का है जो पाषाण से निर्मित है। इनके अतिरिक्त शिव परिवार भी विराजमान है। इसमें जलहरी में स्थित शिवलिंग काले कसौटी के पत्थर से निर्मित है। इनके साथ माता पार्वती, नन्दी, गणेशजी, कार्तिकेय जी हैं। आले में काले पत्थर से बनी काली माता की प्रतिमा भी विराजमान है। [ब०सिं०सि०]

शिखी महती

शिखी महती चैतन्य महाप्रभु के अंतरंग शिष्यों में से एक थे। शिखी महती जगन्नाथ मंदिर में लेखाधिकारी थे। इनका मंदिर के पूरे वर्ष का लेखा-जोखा प्रकाशित करने का कार्य था जिसे मातालापंजी कहते हैं। इनके एक बहिन माधवी और एक भाई मुरारी महती भी थे। ये दोनों शिखी महती से पूर्व ही महाप्रभु के शिष्य हो गये थे। इनकी बहिन माधवी महाप्रभु के प्रमुख शिष्यों में थी। महाप्रभु की नीलांचल लीला ने उनके साढ़े तीन भक्त बनाये जोकि उनके साथ हमेशा रहते थे। उनमें स्वरूपदामोदर, राय रामानन्द, शिखी महती तीन थे और आधी माधवी दासी थी।

इनके शिष्य बनने के पीछे एक घटना का जिक्र चैतन्य चरितामृत में कृष्णदास कविराज ने किया है। एक दिन इनके भाई मुरारी और बहन माधवी इनको महाप्रभु के दैवीय गुणों के विषय में बता रहे थे। रात्रि में चर्चा के बाद ये सो गये।

इन्होंने रात्रि में स्वप्न देखा कि इनके भाई और बहन चैतन्य महाप्रभु के चरणों में बैठे हैं और महाप्रभु इनसे जागने के लिए कह रहे हैं। ये जगकर बैठ गये और इस स्वप्न के बारे में सोचकर भावुक हो गये। ये सुबह होने पर जगन्नाथ मंदिर में पहुँचे वहाँ इन्होंने जगमोहन में चैतन्य महाप्रभु को खड़े हुए देखा। उन्होंने इनसे कहा कि "तुम मुरारी क़े भाई हो।" ये भावुक होकर उनके चरणों में गिर पड़े तब महाप्रभु ने इन्हें हृदय से लगा लिया।

इसके बाद शिखी महती सब कुछ भूलकर एकमात्र महाप्रभु की सेवा में लग गये। गौर-गणोदेश-दीपिका के अनुसार शिखी महती और माधवी राधारानी की सेविका थी, जिनके नाम रागलेखा और कलाकेलि था। [क०उ०]

शिवदयाल सिंह (स्वामी जी)

बृज क्षेत्र की समृद्ध संस्कृति ने अपनी बाँहों में विश्वास एवं मतों के इतने मोती समेटे हुए हैं कि किसी भी अन्य क्षेत्र को इससे सात्विक ईर्ष्या हो जाना स्वाभाविक है। कृष्ण भक्ति की सनातन लहर के साथ-साथ शैवमत एवं जैन संप्रदाय का भी केन्द्र ब्रजमंडल रहा है। पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में नाथ संप्रदाय एवं अकबर द्वारा प्रवर्तित दीन-ए-इलाही का भी यहाँ पोषण हुआ। इस सत्य के सिक्के का दूसरा पहलू यह भी है कि मुगल एवं अंग्रेजों के शासनकाल में पराधीनता को अपनी नियति स्वीकार कर लेने वाले बहुसंख्यक हिन्दू समाज ने अपनी वास्तविक स्वस्थ परंपराओं वाले वैदिक धर्म के मूल तत्व को भुलाकर जिस प्रकार धर्म के नाम पर बहुदेववाद, मूर्तिपूजा, कर्मकांड, अन्धविश्वास, रूढ़िवाद और पुरोहितवाद के सींखचों में स्वयं को बन्द कर इसमें अपनी प्रतिष्ठा एवं गौरव मंडित करना चाहा उसने पूरे देश में अनेक नवीन मतों को जन्म दिया। से सभी मत यद्यपि सनातन धर्म के मूल सिद्धांतों पर ही आधारित थे, किन्तु सहजता, सरलता एवं आडंबरहीनता इनके वे प्राणतत्व थे, जिन्होंने न केवल पुरोहितवाद से आतंकित भारतीय मानस को आकर्षित किया वरन् ये बहुत कम समय में ही पुष्पित एवं पल्लवित हो गये। इन नव उदित मतों में ब्रजमंडल के आगरा नगर से प्रारंभ हुए 'राधा स्वामी मत' ने बहुत शीघ्र ही नगर या मंडल ही नहीं देश की सीमाओं को भी लाँघ कर स्वयं को एक ऐसी ज्योति के रूप में स्थापित कर लिया, जिसके प्रकाश में आज करोड़ों परिवार परम सत्य की सत्ता को अनुभव कर रहे हैं।

राधास्वामी मत की स्थापना-मत एवं संप्रदायों की पारंपरिक स्थापना के विपरीत राधा स्वामी मत, जिसे संत मत भी कहा जाता है, की स्थापना का श्रेय जिस समृद्ध गृहस्थ संत को जाता है, वे हैं परम पुरुष पूरनघनी स्वामी जी महाराज के नाम से प्रतिष्ठित सेठ शिवदयाल सिंह। 25 अगस्त सन् 1818 को जन्माष्टमी के पावन पर्व पर आगरा के एक प्रतिष्ठित समृद्ध व्यवसायी परिवार में जन्मे सेठ शिवदयाल सिंह के पिता श्री राय दिलवाली सिंह यद्यपि अत्यन्त निष्ठावान एवं भक्त प्रवृत्ति के थे, किन्तु उस समृद्ध खत्री परिवार को यह कल्पना तो स्वप्न में भी नहीं थी कि उनके परिवार में एक ऐसे महापुरुष ने जन्म लिया है जो एक दिन परम संत के रूप में प्रतिष्ठित होगा।

संत विचारकों का विश्वास है कि अनेक जन्मों की साधना जब पूर्णता प्राप्त करती है तो परम सत्ता से तादात्म्य स्थापित होने की प्रक्रिया स्वाभाविक रूप से प्रारंभ हो जाती है। 6 वर्ष की अल्पायु से ही योग एवं ध्यान की ओर उन्मुख शिवदयाल जी किशोरवय तक पहुँचते-पहुँचते अपने आध्यात्मिक उपदेशों एवं दार्शनिक विचारों से न केवल आमजनों को वरन् विज्ञ-जिज्ञासुओं को भी चमत्कृत करने लगे थे।

तत्कालीन धर्मवेत्ताओं एवं धार्मिक नेतृत्व को भी उन्होंने अपने विलक्षण तर्कों से सन्तुष्ट किया। उर्दू, फारसी, गुरुमुखी की शिक्षा प्राप्त कर अरबी और संस्कृत का अध्ययन, फरीदाबाद (हरियाणा) के राय इज्जतराय की सुपुत्री नारायणी देवी से विवाह, बल्लभगढ़ के ताल्लुकेदार के यहाँ फारसी शिक्षक का कार्यभार और उसका त्याग जैसे आयामों को तय करने के बाद अपने प्रिय शिष्य पूरनघनी हुजूर महाराज राय सालिगराम बहादुर के आग्रह पर वसंत पंचमी के पर्व पर सन् 1861 में स्वामी जी ने सत्संग की स्थापना की ।

माइथान स्थित मौज प्रकाश की धर्मशाला में आयोजित प्रथम आम सत्संग से जो सिलसिला प्रारंभ हुआ, वह उनके पन्नी गली निवास पर 17 वर्षों तक निरंतर चलता रहा। 15 जून सन् 1878 को उन्होंने देह त्याग दी। राधास्वामी बाग में उनकी समाधि उनके अनगिनत अनुयायियों की श्रद्धा का केन्द्र है।

स्वामी जी महाराज द्वारा स्थापित राधास्वामी मत के आधारभूत वैचारिक तत्व-आध्यात्मिक पुनर्जागरण के प्रथम सूत्रधार माने जाने वाले स्वामी जी महाराज ने कुल मालिक (ईश्वर या परमसत्ता) को निराकार, अकह, अपार, अनंत, अनाम, सर्वशक्तिमान, सर्वदृश्य एवं सर्वव्यापी के रूप में विश्लेषित किया। भारतीय आध्यात्मिक चिंतन में वर्णित अद्वैतवाद के एवं निराकार स्वरूप की धारणा के यह विश्लेषण काफी निकट है।

स्वामी जी ने अपने विश्लेषण को विस्तार देते हुए सृष्टि के विविध खंडों, आत्मतत्व, मोक्ष, शाश्वत शब्द एवं सतगुरु के विषय में भी अपने विचार प्रस्तुत किये। आत्म-तत्व को उन्होंने 'सुरत' नाम से संबोधित किया। सुरत-साधना राधास्वामी मत का वैशिष्ट्य मानी जाती है।

राधास्वामी मत में दीक्षित सभी साधकों के लिये स्वामी महाराज ने दो नियम अनिवार्य साधन के रूप में घोषित किये—गुरुभक्ति एवं सुरत शब्द योग।

स्वामी जी के अनुसार कुल-मालिक अर्थात् निराकार परमसत्ता द्वारा प्रवाहित आध्यात्मिक धारा का मूर्त रूप सतगुरु के रूप में इस जगत में सदैव ही उपस्थित रहता है। सतगुरु ही जीवों के अन्तर में पवित्र नाम उद्भाषित कर सकते हैं और यही आवागमन चक्र से मुक्ति का मार्ग है। सतगुरु के सत्संग से भक्त के हृदय में प्रेम और भक्ति का प्रादुर्भाव होता है और मन निर्मल हो जाता है।

सुरत योग राधास्वामी मत में आध्यात्मिक साधना का आधार एवं मोक्ष का एकमात्र रास्ता है किन्तु यह सतगुरु के बिना मुश्किल है। विश्व के जितने भी रचना-खंड हैं, उनमें प्रतिध्वनि का गुंजन निरंतर होता रहता है। इसे ही 'शब्द' का नाम स्वामी जी द्वारा दिया गया। स्वामी जी ने इसका रहस्य भी उद्भाषित किया।

सामान्य धारणा के विपरीत राधा स्वामी मत में स्वामी जी ने संसार से अथवा सांसारिक कर्तव्यों से विरत होने को अनावश्यक बताया। राधास्वामी मत की दीक्षा लेकर सद्गुरु की प्रेरणा एवं मार्गदर्शन में इस योग का अभ्यास अथवा यूँ कहें कि आंतरिक योग का अभ्यास कोई भी कर सकता है। गृहस्थ जीवन एवं व्यावसायिक दायित्वों का निर्वाह करते हुए बड़ी ही सरलता से इस आंतरिक योग का अभ्यास किया जा सकता है।

भारतीय पातंजलि योग साधना पद्धति में जिस अष्टांग योग का वर्णन किया गया है उसमें आसन से लेकर समाधि तक का क्रम निर्वाह की दृष्टि से सामान्य प्राणी के लिये असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। योग शास्त्र की अन्य प्रचलित पद्धतियाँ भी कहीं न कहीं थोड़ा फेर-बदल कर इसी अष्टांग योग के नियमों को प्रतिपादित करती हैं, किन्तु सुरत शब्द योग का अभ्यास न केवल सरलतम है वरन् आध्यात्मिक राह पर चलने वाले प्राणियों के लिये श्रेष्ठतम है।

नियमित सत्संग इस योग के लिये सहज साधन है। वैचारिक मंथन से प्राप्त सत्य के निर्वहन एवं जन कल्याण हेतु राधास्वामी मत के रूप में इसे उद्भाषित करने के कारण ही द्वितीय गुरु हुजूर महाराज ने स्वामी जी को परमपिता राधास्वामी से अभिन्न माना। उनके द्वारा स्थापित राधास्वामी मत आज विश्व के असंख्य श्रद्धालुओं को राह दिखा रहा है। [सु०स०]

शिवपुराण

शिवपुराण के प्रवक्ता श्री वेदव्यास जी के शिष्य सूत जी एवं श्रोता मुनिगण हैं। अपितु बहुत सी कथायें ब्रह्माजी के द्वारा श्रीनारद जी को सुनाई गई हैं। पुराण बारह भागों में विभाजित है। इसमें सात संहिताएँ हैं। विद्येश्वर संहिता, रुद्र संहिता, शतरुद्र संहिता, कोटिरुद्र संहिता, उमा संहिता, कैलाश संहिता और वायवी संहिता। रुद्र संहिता के पाँच तथा

वायवी संहिता के दो भाग हैं।

सर्वप्रथम पुराण में विद्येश्वर संहिता के अंतर्गत शिवलिंग के आविर्भाव के विषय में ब्रह्मा और विष्णु के विवाद का प्रसंग वर्णित है। रुद्रसंहिता में नारद के मोह का वर्णन है। विष्णु भगवान की नाभि से ब्रह्मा के प्रादुर्भाव आदि का भी वर्णन है। रुद्रसंहिता के द्वितीय भाग में सती खण्ड है। इसमें मुख्य रूप शिव का दक्ष पुत्री सती से विवाह एवं सती का पिता के घर में आत्मदाह का वर्णन है। इसी संहिता के पार्वती खण्ड में सती के पार्वती के रूप में पुनर्जन्म एवं शिव के साथ विवाह का मुख्य रूप से वर्णन है। पितरों की तीन कन्यायें थीं। ज्येष्ठ कन्या मैना का विवाह हिमालय से हुआ। उसी की कन्या पार्वती नाम से विख्यात हुई। पितरों की दूसरी कन्या योगिनी धन्या राजा जनक की पत्नी हुई। उसी की पुत्री सीता हुई, जिसका विवाह श्रीराम से हुआ। सबसे छोटी कन्या कलावती वृषभानु की पत्नी हुई। जिसकी पुत्री श्रीराधा जगत प्रसिद्ध है। संहिता के कुमारखंड में कार्तिकेय और गणेश के जन्म की कथा है।

रुद्रसंहिता के पंचम (युद्ध) खंड में तारक पुत्रों द्वारा तप से ब्रह्मा से वर प्राप्ति और मय दानव द्वारा उनके लिये तीन पुरों के निर्माण और अन्ततः त्रिपुर के ध्वंस की कथा है। इसमें शंखचूड़ और तुलसी की कथा का भी वर्णन है। जिसके अंतर्गत शंखचूड़ का ब्रह्माजी से कृष्ण कवच प्राप्त करना, तुलसी से विवाह, तुलसी के सतीत्व से शंखचूड़ की विजय, भगवान विष्णु द्वारा तुलसी का सतीत्व भंग, उसके बाद तुलसी का भगवान विष्णु को पाषाण होने का शाप देने के प्रसंग का वर्णन है। इसके पश्चात भक्त प्रहलाद की कथा के अंतर्गत भगवान विष्णु के वाराह एवं नृसिंह अवतार की कथा का वर्णन है।

शतरुद्र संहिता में शिवजी के अवतारों का विस्तार से वर्णन है। सद्योजात, वामदेव, तत्पुरुष, अघोर, ईशान, इन पाँच अवतारों के अतिरिक्त शिवजी की अष्टमूर्तियाँ, अर्धनारीश्वर का रूप, वराह कल्प में अट्ठाइस अवतारों का वर्णन, नन्दीश्वर अवतार, महाकाल एवं ग्यारह रुद्रों इत्यादि की कई कथायें हैं। कोटिरुद्र संहिता में सभी ज्योतिर्लिंगों के प्रादुर्भाव की कथा और महिमा बताई गई है।

उमा संहिता में विभिन्न पापों और फलस्वरूप प्राप्त होने वाले नरकों, भिन्न-भिन्न प्रकार के दान और उनके फल का भी वर्णन है। चार प्रकार के प्राणायाम द्वारा वृत्ति को जीतकर अमरत्व प्राप्त करने की यौगिक साधनायें बताई गई हैं। उमा संहिता में ही उमा के कालिका अवतार और मधु कैटभ के वध का प्रसंग आता है। इसी प्रकार देवताओं के तेज से महालक्ष्मी के अवतार और महिषासुर के वध की कथा है। चण्ड-मुण्ड, रक्तबीज, शुम्भ-निशुम्भ आदि अत्याचारी राक्षसों के संहार की भी कथायें हैं।

कैलाश संहिता में प्रणव विवेचन, संन्यास विवेचन, संन्यास विधि, यति की अंत्येष्टि आदि पर विचार और महावाक्यों की व्याख्या आदि का वर्णन है। बाईस महावाक्यों का वर्णन किया गया है।

वायवीय संहिता के पूर्व और उत्तर दो खण्ड हैं। इसमें वक्ता वायुदेव हैं, प्रश्नकर्ता ऋषिगण हैं। वायुपुराण स्वतन्त्र पुराण के रूप में भी उपलब्ध है। इसमें ब्रह्माजी के द्वारा सृष्टि का वर्णन है। कैलाश संहिता में स्कन्द कुमार वक्ता हैं और ऋषि वामदेव प्रश्नकर्ता हैं। इसमें शुम्भ और निशुम्भ के वरदान प्राप्ति एवं देवी पार्वती के अंश से उत्पन्न अयोनिज कन्या देवी कौशिकी द्वारा शुम्भ-निशुम्भ के वध की कथा का वर्णन है। इसी संहिता में उपमन्यु की तपस्या और शंकर की उस पर कृपा का सुन्दर वर्णन है। उपमन्यु द्वारा ही श्रीकृष्ण को पाशुपत आदि ज्ञानोपदेश का भी उल्लेख है। उपमन्यु ने श्रीकृष्ण से कहा कि ज्ञानी गुरु ही मोक्ष प्राप्त करा सकता है। गुरु सर्वमन्त्रमय होता है। यदि गुरु गुणवान, विद्वान, परमानन्द का प्रकाशक, तत्त्ववेत्ता और शिवभक्त है, तभी वह मुक्ति दिला सकता है। ज्ञान रहित नाम मात्र का गुरु ऐसा नहीं कर सकता। शिवपूजन का विस्तार से विधान बताया गया है।

व्यासजी का कथन है कि आदर के साथ, प्रयत्नपूर्वक इस पुराण का पठन करने और श्रवण करने से सारे पाप भस्म हो जाते हैं। दूसरी बार सुनने से भक्ति और तीसरी बार सुनने से मुक्ति सुलभ हो जाती है। अतः उत्तम फल पाने के लिए इसकी आवृत्ति करते रहना चाहिये। [क०उ०]

शिवानन्द सेन

शिवानन्द सेन गौड़ीय सम्प्रदाय के प्रवर्तक चैतन्य महाप्रभु के निकटवर्ती भक्तों में थे। इनके जीवनवृत्त के विषय में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। इन्होंने अपने ग्रंथ 'गौरपद तरंगिणी' में इतना परिचय दिया है कि ये वैद्य कुल में उत्पन्न एक सम्पन्न सद्गृहस्थ थे। चैतन्य चरितामृत में इनका उल्लेख अनेक स्थानों पर आया है। गौड़ीय सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य कवि कर्णपूर इनके कनिष्ठ पुत्र थे।

शिवानन्द जी प्रत्येक वर्ष चातुर्मास में रथयात्रा महोत्सव में भाग लेने बंगाल से जगन्नाथपुरी जाते थे। इनके साथ जितने भी लोग उस महोत्सव में भाग लेने जाते थे उनके खाने-पीने, रहने तथा यात्रा आदि का व्यय भी ये स्वयं वहन करते थे। शिवानन्द जी सभी प्राणी मात्र में वैष्णव भाव रखते थे। एक बार एक कुत्ता भी उनके साथ यात्रा मंडली में सम्मिलित हो गया तब उन्होंने नाव द्वारा नदी पार करने पर उसका भी किराया दिया था। उसके बाद वह कुत्ता कहीं खो गया तो उन्होंने बहुत से लोगों को उसे ढूँढ़ने भेजा लेकिन वह कुत्ता उन्हें जगन्नाथपुरी में चैतन्य महाप्रभु के हाथों से नारियल के टुकड़े खाता हुआ मिला। इससे उन्होंने समझा कि वह कुत्ता चैतन्य महाप्रभु की कृपा से ही उनके साथ यहाँ आया था।

शिवानन्द जी का समस्त परिवार एवं नौकर आदि भी चैतन्य महाप्रभु के भक्त थे। वे हमेशा कृष्ण एवं वैष्णवों की सेवा में लगे रहते थे। कवि कर्णपूर ने अपने ग्रंथ 'गौर-गणोद्देश-दीपिका' में उन्हें 'वीरा-गोपी' का अवतार बताया है जोकि 'श्रीमती राधारानी' की संदेशवाहक थी। इनकी समाधि नवद्वीप के चौंसठ समाधि घेरा में स्थित है।

[क०उ०]

शुकदेव

पुराण पुरुष भगवान कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास के सुपुत्र हैं शुकदेव। इनके जन्म के विषय में प्रसिद्ध है कि एक बार घृताची नामक सुन्दरी अप्सरा को देखकर अरणि मंथन करते समय व्यास जी का वीर्यपात हो जाने से इनका जन्म हुआ। उस समय घृताची सुग्गी (तोती) का रूप धारण कर वेदव्यास जी के सामने से निकली थी। इसी कारण बालक का नाम 'शुकदेव' रखा गया। शुकदेव जन्म से ही वेद-पुराणों के ज्ञान से कृतकृत्य थे। देवगुरु बृहस्पति को इन्होंने अपना गुरु बनाया। पिता की इच्छा के विपरीत इन्होंने गृहस्थाश्रम का परित्याग करने का निश्चय किया। देवगुरु बृहस्पति के अतिरिक्त अपने पिता व्यास देव एवं मिथिला नरेश महाराजा जनक से भी इन्होंने शिक्षा ग्रहण की। समस्त चराचर जगत में इनकी दृष्टि अभेद होने के कारण आत्मभाव था। श्रीमद्भागवत महापुराण की रचना वेदव्यास जी ने की किंतु इस परमहंस संहिता का लोककल्याणकारी व्यापक प्रसार श्री शुकदेव जी ने ही किया। जब महाराज परीक्षित को शमीक ऋषि का अपराध होने के कारण उनके पुत्र शृंगी ऋषि ने सातवें दिन सर्पराज तक्षक द्वारा डसे जाने का श्राप दिया तो आत्मकल्याण के भाव में निमग्न परीक्षित को श्रीमद्भागवत महापुराण के सप्ताह पारायण श्रवण शुकदेव मुनि के द्वारा ही कराया गया। श्रीमद्भागवत महापुराण ब्रज की आत्मा का ग्रंथ है और शुकदेव जी इस ग्रंथ के परम प्रचारक भ्रमर हैं।

आधुनिक काल में भी कई सम्प्रदायों के आचार्यों ने शुकदेव जी को अपना गुरु या गुरुतुल्य माना है जैसे कि शुक सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य श्यामचरण दास जी ने शुकदेव जी को अपना गुरु बताया। इसी कारण उन्होंने अपने सम्प्रदाय का नाम शुक सम्प्रदाय रखा। इसके अलावा आदि शंकराचार्य ने भी शुकदेव मुनि के दर्शन किये थे। उन्हीं की प्रेरणा से उन्होंने ब्रह्मसूत्र, गीता एवं उपनिषदों का अद्वैत सिद्धान्तपरक भाष्य किया था। [म०दी०]

शुक संप्रदाय का दार्शनिक सिद्धांत

शुक संप्रदाय का दर्शन ज्ञान, योग एवं भक्ति की समन्वित पीठिका पर निर्मित है। 'भक्तिसागर' एवं शिष्यों-प्रशिष्यों का साहित्य इस बात का प्रमाण है।

ज्ञान के प्रसंग में ब्रह्म, जीव, माया, जगत्, गुरु, मोक्ष एवं पुनर्जन्म विचारणीय हैं। जिस परम तत्व की उपासना एवं अनुभूति अनुयायियों ने की है, वही ब्रह्म है। वह सर्वत्र व्याप्त, एक, संसार का कर्त्ता और गुणों की खान है। वह निर्गुण-सगुण से परे है। वह अवतार भी ग्रहण करता है। जीव ब्रह्म का ही अंश है, किंतु शरीर धारण करने पर वह कुटिल, मायाबद्ध, कालग्रस्त, जगत् स्नेही, सुप्त आदि अवस्थाओं से ग्रसित हो जाता है। चरणदास जी के अनुसार माया अभावरूपा, व्यापक, प्रभावशाली, आकर्षक स्वरूपा तथा भगवत् दिशि प्रेरिका है, जबकि रामरूप जी के अनुसार माया के दो रूप हैं- आसुरी, ईश्वरी। उन्होंने हरि की ओर उन्मुख करने वाली ईश्वरी माया की प्राप्ति के प्रति जोर दिया। कालांतर में सैद्धांतिक पक्ष गौण हो गया और माया केवल मोह, कर्मजाल या बंधन ही रह गई। चरणदास एवं उनके अनुयायियों ने जगत् के मिथ्यात्व का प्रतिपादन किया है। उन लोगों की दृष्टि में गुरु समस्त मानवोचित संस्कारों का पुरोधा होता है। गुरु ज्ञानरूपी दीपक द्वारा ज्ञान का प्रकाश देता है। वह आध्यात्मिक प्रेम जाग्रत करता है। गुरुओं में सद्गुरु ही श्रेष्ठ है। पुनर्जन्म न लेना ही मोक्ष है। मोक्ष की प्राप्ति के लिए वासना से निवृत्ति आवश्यक है। वस्तुत: मोक्ष पुनर्जन्म की वह अवस्था है, जिसमें दु:ख-सुख, पाप-पुण्य सब नष्ट हो जाते हैं तथा आत्मा-परमात्मा के लोक में पहुँच जाती है। मोक्ष या मुक्ति छह प्रकार की होती है। सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य, विदेह, जीवन्मुक्ति। किसी प्राणी का एक बार जन्म लेने के बाद दोबारा जन्म लेना ही पुनर्जन्म है। मनुष्य को कर्मानुसार योनियाँ मिलती रहती हैं। इन योनियों में मनुष्य योनि श्रेष्ठ है, जिसको पाने के लिए सद्कर्म करने चाहिए।

जीवात्मा और परमात्मा का मिलन ही योग साधना है। यह मिलन चित्तवृत्ति निरोध से ही संभव है, जिसके लिए अष्ट प्रक्रियाओं (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि) को करना पड़ता है। इस प्रक्रिया में पाँचों मुद्राओं, चार बंधों, षट्कर्म, छह चक्रों का भेदन का भी महत्वपूर्ण योगदान रहता है। वस्तुत: योग इन संतों का साधन पक्ष था तथा तदनुरूप तल्लीनता का अनुभव करना उनका मुख्य उद्देश्य था।

ईश्वर से प्रेम करना या ईश्वर में अपने को लगाना ही भक्ति है। संप्रदाय में भक्ति के कई रूप मिलते हैं - वैधी, प्रेमा, परा, माधुर्य। वैधी भक्ति प्राय: नौ प्रकार से की जाती है। इस भक्ति के अंतर्गत ही एकादश आसक्तियाँ तथा छह प्रवृत्तियाँ आती हैं। जिस भक्ति में प्रेम की प्रधानता होती है उसे प्रेमाभक्ति कहते हैं। समर्पण भाव की पराकाष्ठा ही इसका प्रमुख गुण है। पराभक्ति में तद्रूपता को ही लक्ष्य मानकर भक्ति के प्रेम तत्व पर बल दिया जाता है। भगवान् के मधुर प्रेम का आस्वादन करने के लिए भक्तों ने जिस उपासना को स्वीकार किया उसे माधुर्य भक्ति कहते हैं। इसके लिए भक्त की भगवान् के प्रति तन्मयता होनी आवश्यक है। इस तन्मयता की अनुभूति तीन प्रकार से होती है-कांताभाव, गोपीभाव, सखी भाव। शुक संप्रदाय में प्रधानता सखी भाव की है। यह भावोपासना मुख्यत: चार तत्त्वों पर आधारित है। लीला तत्त्व, राधा तत्त्व, धाम तत्त्व, रासलीला तत्त्व। भक्त द्वारा भगवल्लीला की संप्राप्ति का प्रयत्न ही लीला तत्त्व है। भगवान् की लीलाएँ अनंत हैं। राधा तत्त्व में राधा की ही प्रधानता है। राधा जहाँ एक ओर कृष्ण की आराध्या हैं, वहीं दूसरी ओर सखीभावोपासकों की भी। धाम वह स्थल है, जहाँ लीलाएं संपन्न होती हैं। यह उपासक का प्राप्तव्य स्थल होता है। भगवान् का धाम दिव्य है। वृंदावन लाल-लाडली का लीला धाम है, जिसके दो रूप हैं-

(क) दिव्य या नित्य वृंदावन-यह अप्रकट है। इसको वही देख सकता है, जिसने मन तथा इंद्रियों पर विजय प्राप्त कर ली हो।

दिव्य वृंदावन दिव्य कालिंद्री। देखें सो जीतें मन इंद्री।।

(ख) निज वृंदावन-यह शरीरस्थ वृंदावन है, जो हृदय में विद्यमान है।

निज वृंदावन है वह ठाहीं। सदा बसो मेरे मन माहीं।।

इस वृंदावन की नित्य निकुंजों में रंग महल हैं जिनमें राधाकृष्ण निवास करते हैं।

रास एक प्रकार का मंडलाकार नृत्य है, जिसमें कृष्ण केन्द्रस्थानीय होते हैं। गोपिकाएँ उनके चारों ओर एक, दो या तीन

मंडल बनाती हैं। ये रासलीला दो प्रकार की होती है-प्रकट और अप्रकट। रासलीला में राधा कुंडलिनी स्वरूपा है। इड़ा-पिंगला नाड़ियाँ गोपियाँ या सखियाँ हैं। चक्र निकुंज है। हृदयस्थ वृंदावन में कृष्ण विद्यमान हैं। यहीं राधा और कृष्ण का मिलन होता है, रस की अखंड वर्षा होती है, अनंत आनंद की उपलब्धि है। यहाँ महासुख तथा नित्य रास है। वस्तुत: शरीरस्थ चक्रों पर ही विभिन्न तीर्थ अवस्थित हैं। जैसे-मूलाधार-मायापुरी, स्वाधिष्ठान-कांची, मणिपूरक-अवन्तिका, अनाहत-मथुरा (वृंदावन), विशुद्ध-द्वारका, आज्ञा-काशी, सहस्रार-अयोध्या (गोकुल)। हृदयस्थ अनाहत चक्र ही निज वृंदावन है क्योंकि इस चक्र में द्वादश दल हैं, जो वृंदावन के द्वादश वनों के प्रतीक हैं। [म०गो०भा०]

शुक संप्रदाय का स्थान (डहरा)

राजस्थान के अलवर ज़िले में डहरा नाम का एक गाँव है, जो दो कारणों से विशेष प्रसिद्ध है। यह शुक संप्रदाय के प्रवर्त्तक चरणदास की जन्मस्थली है। यहाँ शुकदेव मुनि ने स्वयं पधारकर चरणदास (रनजीत) को दर्शन दिए थे। इस स्थान का इतिहास पुराना है। सन् 1450 ई. के लगभग, शोभनराय नामक एक भक्त ढोसी (नारनौल, हरियाणा) से यहाँ आकर बस गए। उन्होंने विशाल परिसर में एक भवन बनवाया। इस परिसर में एक कुआँ है, जो 'शोभनराय का कुआँ' कहलाता है। यहाँ रहकर शोभनराय ने महान् यश और संपत्ति अर्जित की। भाटों की बहियों में उनके वंशजों को 'डहरोलिया सरदार' कहा गया है। वे गृहस्थ थे तथा राधाकृष्ण के परम उपासक थे। पास ही शाहपुरा (अलवर) में उन्होंने 'राधाकृष्ण' का मंदिर बनवाया जहाँ वे नित्य पूजा करने जाते थे। उनके घर के प्रांगण में भी भजन-कीर्तन होता था। उनकी नवधा भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान् कृष्ण ने उनसे वर माँगने को कहा। इस घटना का वर्णन जोगजीत (शिष्य चरणदास) ने इस प्रकार किया है-

शोभन सुन कर जोरि के, वर मांग्यो तब येहि।
मेरे कुल में भगति ही, सदा रहे यह देहि।।
प्रसन्न होहिं बोले गोपाला। भगति दई कुल कियो निहाला।।
तो कुल मांहि भगति चलेगी। अठवीं पीढ़ी जाय फलेगी।।

तदनुसार शोभनराय की आठवीं पीढ़ी में भाद्र पद शुक्ल तृतीया संवत् 1760 वि. को डहरा के इसी भवन में रनजीत नाम बालक ने जन्म लिया, जो बाद में 'चरणदास' नाम से विख्यात हुए। जन्म-स्थान विषयक प्रमाण स्वयं चरणदास की कृति 'ज्ञान स्वरोदय' में उपलब्ध है।

डहरे में मेरौ जनम नांव रनजीत बषानौ।
मुरली को सुत जांन जात ढूसर पहचानौ।।
बाल अवस्था माहिं बहुरि दिल्ली में आयौ।
रमत मिले सुषदेव नांव चरनदास धरायौ।

डहरा एक सुरम्य एवं रमणीय स्थल था। तत्कालीन ग्रंथों में डहरा की शोभा का वर्णन किया गया है। चरणदास जी के शिष्य रामरूप जी ने लिखा है-

मेवात देश में अलवर पासा। डहरा गांव जु अधिक सुवासा।।
ताके निकटै सरिता बहै। जितकी सृष्टि महा सुख लहै।।
आस-पास बहु बाग सुहावैं। फूलैं फलैं हरष छवि छावैं।।

चरणदास के शिष्य जोगजीत जी ने भी डहरे की शोभा का वर्णन किया है -

है मेवात में नगर ही, अलवर जाको नाम।
डहरा ताके निकट ही, शोभन बसें सुधाम।।
अब डहरे की शोभा भाखूं। ताको ध्यान हृदय में राखूं।।
आस-पास ताके चहुं ओरा। बाग बगीचे कुहके मोरा।।
फूले फले जो द्रुम सुहाये। खग मृग मनुषन के सुखदाये।
सरिता बहत सु ताके धोरे। निरमल नीर जु लेत झकोरे।

उपर्युक्त विवरणों से ज्ञात होता है कि डहरा की भूमि शस्य-श्यामला थी। यद्यपि वर्तमान में यह स्थिति नहीं है। डहरा में अवस्थित परिसर का नाम 'श्री रनजीत सरस भवन' है। इसके प्रवेश द्वार का जीर्णोद्धार 16 नवम्बर, सन् 1939 ई. को हुआ। प्रवेश द्वार के ऊपर लिखा है-

संप्रदाय शुकदेव मुनि चरणदास गुरुद्वार।
परम धर्म भागवत मत भक्ति अनन्य विचार।।

अनुयायी इस पवित्र स्थान को 'गुरुद्वार' मानते हैं। परिसर चारों ओर से ऊँची दीवारों से घिरा है। इसमें एक स्थल पर चरणदास जी की नाल गड़ी हुई है। यह नाल पहले एक गुफा के अंदर थी, जिसमें चरणदास और बाद में उनके शिष्य डंडौतीराम योग-साधना करते थे। बाद में उस गुफा को तोड़कर उस स्थान पर चरणदास जी की छतरी बनवा दी गई, जिसमें उनके चरण चिह्न अंकित हैं। वहाँ एक पत्थर लगा हुआ है, जिस पर लिखा है -

डहरा बास महा सुखदाई। जहाँ बिराजे शोभनराई।।
तिनके चतुरदास भए ज्ञानी। ताके सुत गिरधर परमानी।।
गिरधर के लाहड़ बड़भागी। नौधा भगति मांहि अनुरागी।।
जगनदास तिनके सुत जानौ। उनके प्रागदास पहचानौ।।
जिनके मुरलीधर सुत भए। सो भी सदा भगति में रहे।।
तिनके चरणदास सुखदाई। अलबेली तिनकी सरनाई।।
भगतमाल सम कुरसीनामा। पाठक जन के पूरे कामा।।

इस छतरी का जीर्णोद्धार सन् 1972 ई. में जगदीश भार्गव, अलवर तथा भवानी प्रसाद भार्गव, जोधपुर ने करवाया था। छतरी के सामने खटीक समाज ने एक विशाल कमरा (हॉल) बनवा दिया है। इस कमरे में भक्तजन कीर्त्तन-भजन करते हैं। संत-महात्मा प्रवचन देते हैं तथा जन्मोत्सव के अवसर पर गोष्ठियों, भाषणों आदि का आयोजन होता है। सामने ही भक्तों के बैठने के लिए हरी घास से युक्त एक बहुत बड़ा मैदान है। परकोटे में लोगों के रहने के लिए आठ-दस कोठरियाँ थीं, जिनका निर्माण जयपुर निवासी धर्ममित्र भार्गव ने करवाया था। बाद में लोगों ने उन कोठरियों का जीर्णोद्धार कर उन्हें कमरे का रूप दे दिया और उन्हें आधुनिक फर्नीचरों से सुसज्जित कर दिया है।

चरण चिह्न के पीछे महाराज चरणदास जी की संगमरमर की एक सुन्दर मूर्ति प्रतिष्ठित है, जिसको महावीर प्रसाद,

जयपुर ने भाद्र पद शुक्ल 3 संवत् 2016 वि. को स्थापित करवाया था। विभिन्न लोगों के सहयोग से बारहदरी तथा फर्श का जीर्णोद्धार हुआ। मंदिर के अन्दर कई चित्र हैं।

जन्म-स्थली से एक रास्ता 'चरणगंगा' नामक एक बरसाती नदी की ओर जाता है। वहीं एक वट वृक्ष है जहाँ शुकदेव मुनि ने चरणदास (रनजीत) को, जब वे पाँच वर्ष के थे, दर्शन दिए थे तथा गोद में बैठाकर पेड़ा खिलाया था। पास में ही 'शुकदेव मुनि की छतरी' भी बनी हुई है, जिसमें उनके चरण चिह्न हैं।

डहरे में प्रतिवर्ष भाद्र पद शुक्ल तृतीया को महाराज चरणदास का तीन दिन तक जन्मोत्सव बड़े धूमधाम से मनाया जाता है। हजारों श्रद्धालु एकत्रित होते हैं। नित्य भंडारा होता है। जन्म-स्थली से शुकदेव जी की छतरी तक शोभायात्रा भी निकलती है। [म०गो०भा०]

शुक संप्रदाय से सम्बन्धित स्थान (जयपुर)

जयपुर चरणदास जी का प्रमुख कार्यक्षेत्र रहा। उनके शिष्यों-प्रशिष्यों ने उनकी विचारधारा का अत्यधिक प्रचार एवं प्रसार किया, जिसके कारण जयपुर नरेश की कई पीढ़ियाँ तथा सामान्य जन संप्रदाय के अनुयायी बने। जयपुर में इस संप्रदाय से संबंधित अग्रलिखित स्थान हैं।

अटलबिहारी जी का मंदिर-खंडहार का रास्ता, मोती कटला, जयपुर में अवस्थित इस मंदिर का निर्माण चरणदास जी के पौत्र शिष्य अखैराम जी ने करवाया था। इस मंदिर के मुख्य द्वार पर एक विजय स्तंभ लगा हुआ है, जिससे ज्ञात होता है कि गुसांई अखैराम ने इस मंदिर का निर्माण संवत् 1845 वि. को पूर्ण किया था। इस भव्य मन्दिर में राधाकृण की सुन्दर मूर्तियाँ हैं साथ ही शुकदेव मुनि की स्फटिक की मूर्ति भी है। अखैराम जी ने इसी स्थान पर जीवित समाधि ली थी। उनके परलोक गमन के पश्चात् उनकी मृत देह को जयपुर नगर सीमा के बाहर ले जाने का अथक प्रयास किया गया, क्योंकि जयपुर नरेश की आज्ञा के अनुसार दाह संस्कार नगर सीमा के बाहर करना अनिवार्य था। किन्तु उनकी मृत देह टस से मस नहीं हुई। अतएव परिसर में ही उनकी समाधि बना दी गई।

आत्मकुंज-आत्मराम जी ने भक्तों की सुविधा को देखते हुए बारह गनगौर, जयपुर में राधाकृष्ण का एक भव्य मंदिर बनवाया और इस स्थान का नाम 'आत्मकुंज' रखा। आत्मराम जी के परलोक गमन के बाद यह स्थान गद्दियों में गिना जाने लगा और आत्मराम जी के शिष्य मानदास यहाँ के प्रथम महंत हुए।

आत्मराम जी की गद्दी-आमेर की सड़क पर शहर से लगभग सवा किलोमीटर की दूरी पर बजाजों की बगीची के पीछे, बदरी विशाल की डूँगरी, जयपुर पर एक स्थान लेकर चरणदास जी ने अपने शिष्य आत्मराम इकंगी को महंत नियुक्त किया। इस स्थान का परिसर बहुत विशाल है। इसमें राधाकृष्ण की मूर्तियाँ तथा शिवलिंग था। इस स्थान पर कई महात्माओं की छतरियाँ एवं चरणपादुकाएँ भी बनी हुई हैं। एक कुआँ भी है। अवस्थित छतरियों का विवरण इस प्रकार है—

(क) एक चबूतरा है, जिस पर चरणदास जी की संगमरमर की पादुकाएँ बनी हुई हैं। संवत् के प्रथम दो अंक '18' ही पढ़े जाते हैं, शेष अंक अपाठ्य हैं।

(ख) यह सबसे बड़ी छतरी है जो आत्मराम जी की है, इसकी चरणपादुकाएँ उखड़ गई हैं। एक-दो पत्थर भी उखड़ गए हैं। उसके अन्दर महाराज चरणदास जी की रंगीन मूर्ति है, जिनके आगे तीन महात्मागण हाथ जोड़े बैठे हैं। उनके पीछे खड़े हुए महात्मा चंवर डुला रहे हैं। शुकदेव जी की नीले रंग की मूर्ति बनी हुई है, साथ ही अन्य भगवानों की मूर्तियाँ भी हैं।

(ग) यह महात्मा लक्षिदास की छतरी है, जो आत्मराम इकंगी के शिष्य थे। छतरी में इनकी चरण पादुकाएँ बनी हुई हैं जिनके नीचे लिखा हुआ है-

श्री शुक सिष चरणदासजी ता सिष आतमराम।
तिन सिष श्री लक्षिदास जी तिनकी चरणपादुका नाम।।
संवत् अष्टादस सु पर षठसत भये जु विनीत।
जेठ सुदी तिथि पंचमी बृहस्पतिवार पुनीत।।

(घ) यह छतरी आत्मराम के शिष्य मानदास जी की है। इसमें जो चरण पादुकाएँ बनी हुई हैं, उसके नीचे लिखा है-

संवत् अष्ट दस जु पर त्रेपन भये व्यतीत।
मास फाल्गुन शुक्ल तिथि पून्यौं परम पुनीत।।

(ङ) यह छतरी लक्षिदास के शिष्य गुरुसरनदास जी की है। इनकी चरणपादुका के नीचे का लिखा हुआ अंश इस प्रकार है-

''श्री राम जी श्री लक्षिदास शिष्य श्री आत्मराम तिन शिष्य महन्त श्री गुरुसरनदास जी की पादुका नाम-सं. 1875 वि.।''

गोविन्द देव जी का मन्दिर-यह स्थान 1007, दरीबा पान, जयपुर में है। इस स्थान का निर्माण सरस माधुरीशरण (मूलनाम शिवदयालु गौड़) जी ने करवाया था। वर्तमान में यह स्थान 'सरस निकुंज' के नाम से जाना जाता है। इस स्थान पर राधाकृष्ण की मूर्तियों के अलावा अनेक महात्माओं के सखी वेश-भूषा में चित्र हैं। इस स्थान से संबंधित रसिक भाव से युगलोपासना करते हैं। सांप्रदायिक प्रचार एवं प्रसार की दृष्टि से, वर्तमान में, यह स्थान सर्वोपरि है।

बिहारी जी का मन्दिर-धर्ममित्र जी ने अपने निज व्यय से चौड़ा रास्ता, जयपुर में राधाकृष्ण का मंदिर बनवाया था।

मानदास जी का स्थान-मानदास जी ने रामगंज चौपड़, जयपुर में एक स्थान खरीद कर वहाँ एक भव्य भवन बनवाया जिसका नाम 'राम बंगला' दिया। इस स्थान पर रहते हुए उन्होंने 'भाषा ज्ञान नौका' नामक कृति की रचना की। इस कृति में उन्होंने लिखा है कि -

जैपुर राजस्थान में, रामगंज शुभ ठांम।
ज्ञान नाव पूरन भई, राम बंगला धाम।।

यहाँ पर आत्मराम जी के प्रपौत्र शिष्य रामसंत जी (शिष्य रूपदास शिष्य मानदास) की छतरी एवं चरण पादुकाएँ बनी हुई हैं।

श्री चरणदास धाम-यह स्थान शिवानंद मार्ग, मालवीय नगर, जयपुर में अवस्थित है। इसका क्षेत्रफल 40'x 86' है। यहाँ एक भव्य मंदिर है, जिसका शुभारंभ 3 जून, सन् 2013 ई. को हुआ। मंदिर में शुकदेव, चरणदास की मूर्तियाँ तथा राधाकृष्ण की प्रतिमाएँ हैं। इस परिसर की देख-भाल स्वामी चरणदास मैमोरियल ट्रस्ट, जयपुर द्वारा की जाती है। इसके प्रबंध न्यासी डॉ. ऋषि भार्गव, जयपुर हैं।

साधुराम जी का स्थान-चरणदास जी ने जयपुर में सर्वप्रथम अपने शिष्य साधुराम जी का पुरानी कोतवाली के पास, घाट दरवाजा, जयपुर में अभिषेक किया। इस स्थान पर राधाकृष्ण की पीतल की प्रतिमाएँ थीं। संप्रदाय के प्रचार एवं प्रसार में साधुराम जी का विशेष योगदान था। [म०गो०भा०]

शुद्धाद्वैत दर्शन

ऐसी मान्यता है कि वल्लभाचार्य जी के पिता श्री लक्ष्मण भट्ट जी विष्णु स्वामी सम्प्रदाय के अनुयायी थे। अत: उन्होंने अपने पुत्र आचार्य वल्लभ को विष्णु स्वामी सम्प्रदाय में ही दीक्षित किया था। विष्णु स्वामी सम्प्रदाय के तत्त्कालीन आचार्य विल्वमंगल जी के पश्चात श्री वल्लभाचार्य जी को सम्प्रदाय के आचार्य की गद्दी पर आसीन किया गया था। उन्होंने इसी सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के आधार पर अपने शुद्धाद्वैत सिद्धान्त की स्थापना की। अपने मत की पुष्टि की लिए वल्लभाचार्य ने प्रस्थान चतुष्ट्य अर्थात् ब्रह्मसूत्र, गीता, उपनिषद् और भागवत पर भी टीका लिखी।

शुद्धाद्वैत दर्शन में दो शब्द शुद्ध और अद्वैत पर विशेष जोर दिया गया है। शुद्ध का अर्थ है माया के सम्बन्ध से रहित एवं अद्वैत से तात्पर्य है माया से अलिप्त नितान्त शुद्ध ब्रह्म। वल्लभाचार्य ने ब्रह्मसूत्र के अणुभाष्य में परब्रह्म के शुद्धाद्वैत स्वरूप का प्रतिपादन किया है। इसके अनुसार परब्रह्म का आदि दैविक स्वरूप पुरुषोत्तम है, आध्यात्मिक स्वरूप अक्षर ब्रह्म है और भौतिक स्वरूप जगत है। परब्रह्म को जब-जब बाह्य प्रकार से रमण करने की इच्छा होती है, तब वह दिव्य आदि दैर्विक पुरुषोत्तम रूप से कृष्ण के रूप में प्रकट होकर अपनी शक्तियों के साथ अवतरित होता है। श्रीराधा जी, चन्द्रावलि जी एवं अन्य सखियाँ, गोपियां आदि उनकी आदि दैविक शक्तियाँ हैं। वे क्रीड़ास्थली ब्रजभूमि को भी अपने में से प्रकट करते हैं। परब्रह्म कृष्ण ही सत्, चित् और आनन्द रूप में सभी जगह विद्यमान हैं। जन्म की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय आदि समस्त स्थितियों में वही ब्रह्मा हैं, वही विष्णु हैं और वही शिव हैं। वल्लभाचार्य ने अपने ग्रंथ 'अन्त:करण प्रबोध' के प्रथम श्लोक में बताया है कि कृष्ण से बढ़कर दोषरहित देवता अन्य नहीं है, इसलिए भक्ति एवं उपासना के लिए श्रीकृष्ण ही सर्वोपरि देवता हैं। इनके मतानुसार श्रीकृष्ण निराकार होते हुए भी साकार हैं, क्योंकि वे सत, रज और तम जैसे प्रकृतिजन्य गुणों के अभाव में जैसे निर्गुण हैं, वैसे ही आनन्द जैसे दिव्य गुणों के कारण सगुण भी हैं। वे लघु रूप में अणु हैं और महान से भी महान हैं। वे सर्वथा स्वतंत्र हैं और भक्तों के अधीन भी हैं।

शुद्धाद्वैत दर्शन में जीव ब्रह्म चिदंश है। अग्नि और चिंगारी की भाँति दोनों के स्वरूप में कोई तात्त्विक भेद नहीं है। जीव भी उतना ही सत्य है जितना ब्रह्म। फिर भी जीव ब्रह्म नहीं है क्योंकि ब्रह्म अंशी है और जीव अंश है। ब्रह्म और जीव में अन्तर यह है कि जीव की शक्ति क्षमतानुसार सीमित है जबकि ब्रह्म की शक्तियाँ अनन्त हैं। वल्लभाचार्य जी ने जीव की तीन अवस्थाएँ मानी हैं-शुद्ध जीव, संसारी जीव और मुक्त जीव। आचार्य जी ने तीनों अवस्थाओं में भगवद् भजन और ईश्वर आराधना की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है। जीव की लघुता आचार्य वल्लभ ने पूर्ववर्ती आचार्यों के समान स्वीकार की है।

शुद्धाद्वैत दर्शन में जगत को अलग तरह से व्याख्यायित किया गया है। सामान्यत: यह समझा जाता है कि जगत और संसार समानार्थी शब्द हैं किन्तु शुद्धाद्वैत दर्शन में इनमें भारी भेद बताया गया है। जगत ब्रह्म रूप है अत: सत्य है। 'संसार' मैं और मेरी कल्पना से भरा है, मायाग्रस्त है, अविद्या और अज्ञानादि का जनक है। अत: मिथ्या है, असत्य है। वल्लभ सम्प्रदाय के अलावा जगत और संसार की अलग-अलग व्याख्याएँ नहीं मिलतीं, अत: यह वल्लभ सम्प्रदाय की विशेषता है। इसमें बताया गया है कि प्रलय काल में भी जगत का नाश नहीं होता, उसका तिरोभाव हो जाता है अर्थात् मूल रूप से ही परब्रह्म में लीन हो जाता है। जगत का आविर्भाव और तिरोभाव भगवान की इच्छा पर आश्रित रहता है।

वल्लभाचार्य जी के अनुसार माया परब्रह्म की स्वरूपा शक्ति है, इसलिए इसे आत्ममाया नाम से अभिहित करते हैं। जिस प्रकार अग्नि से दाहिका शक्ति और सूर्य से प्रकाश को अलग नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार परब्रह्म से आत्म माया अलग नहीं हो सकती।

वल्लभाचार्य जी के मतानुसार जीव की जन्म-मृत्यु, जरा, व्याधि से छूटकर अखण्ड आनन्द प्राप्त करने की दशा को मोक्ष कहा गया है। इसके तीन साधन हैं-ज्ञान, योग और भक्ति, परन्तु उनमें भक्ति को ही सर्वसुलभ एवं उत्तम बताया

है। पुष्टिमार्ग के अनुसार विद्या (ज्ञान) के द्वारा अविद्या का नाश हो जाने से जीव मुक्त हो जाता है। स्थूल लिंग शरीर को छोड़कर तथा भगवल्लीलोपयोगी देह पाने के बाद ब्रह्म के साथ आनन्द लाभ करना ही पुष्टिमार्गीय मुक्ति फल है।

[क०उ०]

शेख सलीम चिश्ती

चिश्ती सम्प्रदाय के अन्तिम सूफियों में शेख सलीम चिश्ती का नाम अपना अलग स्थान रखता है। इनके पिता का नाम शेख बहाउद्दीन था। शेख सलीम चिश्ती ने अपना लम्बा समय अरब में व्यतीत किया और वहाँ के लोगों ने इनको 'शेख-उल-हिन्द' की उपाधि से सम्मानित किया। उसके बाद यह भारत लौट आये और आगरा के निकट फतेहपुर सीकरी अपना स्थान बनाकर रहने लगे। वह भारतीय महान बादशाह अकबर के समकालीन थे। उन्होंने फतेहपुर सीकरी की पहाड़ी की एक गुफा में अपनी इबादत (पूजा) का स्थान चुना था। कहा जाता है कि अकबर को जहांगीर की प्राप्ति इन्हीं के आशीर्वाद से हुई थी। इसी कारण जहांगीर को सलीम या फिर शेखू बाबा कहा जाता है।

शेख सलीम चिश्ती की सन्तानें भी थीं। शेख निजामुद्दीन औलिया को छोड़कर चिश्ती सम्प्रदाय के सभी प्रसिद्ध सूफियों ने गृहस्थ जीवन अपनाया। इन महान सूफियों की सन्तानें अधिकतर अयोग्य ही निकलीं पर इसके विपरीत शेख सलीम चिश्ती की सन्तानों ने अकबर के शासन में या उसके उत्तराधिकारियों के समय में राजकीय सेवा में उच्च पदों पर अपना सहयोग दिया। चिश्तिया सम्प्रदाय की परम्पराओं को शेख सलीम चिश्ती ने बनाए रखा और बहुत ही प्रसिद्धि प्राप्त की। इनका निधन अकबर के जीवन काल में ही हो गया था और उन्हें फतेहपुर सीकरी की प्रसिद्ध जामा मस्जिद के आँगन में बड़े ही सम्मान के साथ दफनाया गया। बाद में उनकी कब्र को संगमरमरी पत्थरों के द्वारा एक खूबसूरत मकबरे की शक्ल दे दी गई। यह फतेहपुर सीकरी में मुगल स्थापत्य कला का एक बेजोड़ रत्न माना जाता है।

[आ०स०]

शैव सम्प्रदाय

भारत आस्था और विश्वास की धरती है। जहाँ धर्म भी लोकतान्त्रिक भावना का सम्मान करते हुए अपने अनुयायियों को व्यक्तिगत सोच और मान्यताओं के आधार पर अपनी राह चुनने की स्वतंत्रता देता है। इसी का प्रमाण है-धर्म के अंतर्गत समय-समय पर आकार लेने वाले सम्प्रदाय। हिन्दू धर्म में इस प्रवृत्ति का प्राचीनतम उदाहरण शैव सम्प्रदाय है।

जैसा कि नाम से ही विदित है यह सम्प्रदाय शिव से जुड़ा था, इसीलिए इसके उपासक गण शैव और उनका धर्म शैव धर्म कहलाया। शाक्त, नाथ, दसनामी, नागा आदि शैव के उप सम्प्रदाय माने जाते हैं। महाभारत माहेश्वरों अर्थात शैव के चार सम्प्रदाय की घोषणा करती है-शैव, पाशुपत, कालदमन और कापालिक। वामनपुराण में भी शैव सम्प्रदाय की संख्या चार है, किन्तु वहाँ उनके नाम अलग हैं। वामनपुराण में शैव, पाशुपत, कालमुख और कापलिक नामक वर्णों का उल्लेख मिलता है। गोरखनाथ (नाथ सम्प्रदाय) के बाद चार महेश्वर सम्प्रदाय कहलाए-शैव, दर्शन, प्रत्यभिज्ञा दर्शन (त्रिक सम्प्रदाय), रासेश्वर दर्शन और लकुलीश पाशुपत दर्शन। कालमुख राक्षसों का गण था और नरमेघ कालमुखों से चलता था। रामानुज का हवाला देते हुए डॉ. आर.सी. मजूमदार लिखते हैं-''कापलिक भैरव को पूजते थे और दारू पीकर, मन में जिगुप्सा जगाने वाली चीजें खाकर सिद्धि प्राप्त करने की बात कहते थे और नरबलि भी देते थे। इनके कुछ अघोरी साथी कालमुख कहलाते थे। वे नर-कपाल में भोजन करते थे। इसमें जरा भी संदेह नहीं कि शैवमत के (गहन) दार्शनिक पक्ष और शिव भक्ति के उच्चतर विकास के साथ वहाँ ऐसे चरमपंथी (भी) विद्यमान थे।''

मूलत: यह एकेश्वरवादी सम्प्रदाय है। इसके साधुओं को नाथ, नागा, अघोरी, अवधूत, बाबा, औघड़, योगी, सिद्ध आदि कहा जाता है। नागा और दसनामी साधक अपने रहस्यमय व्यक्तित्व और तांत्रिक क्रियाओं के कारण विशेष रूप

से उल्लेखनीय हैं। यह मंत्रादि के साथ रात्रि अनुष्ठान करते हैं। कमंडल एवं चिमटा धारण करते हैं। कई बार भगवा वस्त्र पहनते हैं और कई बार निर्वस्त्र भी रहते हैं। चंद्र की गति पर आधारित व्रत उपवास करने वाले शैव सम्प्रदाय में समाधि की परम्परा है। शिवपुराण, आगम ग्रंथ और तिरुमुराई प्रमुख शैव ग्रंथ हैं। जबकि बनारस, केदारनाथ, सोमनाथ, रामेश्वरम्, चिदम्बरम, अमरनाथ एवं कैलाश मानसरोवर आदि प्रमुख शैव तीर्थ हैं। महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, केरल और तमिलनाडु राज्यों के अलावा इस सम्प्रदाय की पहुँच अफगानिस्तान, पाकिस्तान, कश्मीर, पंजाब, हरियाणा में भी रही है। कश्मीर भी शैव सम्प्रदाय का प्राचीन क्षेत्र है। नवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में बौद्ध और नाथ सम्प्रदायों के बीच वसुगुप्त ने कश्मीरी शैव सम्प्रदाय का गठन किया। कल्लट और सोमानंद नामक वसुगुप्त के दो शिष्यों ने यहीं शैव दर्शन की नींव रखी। तमिल में इस धर्म को शिवाद्वैत अथवा लिंगायत धर्म भी कहते हैं। ठीक उसी तरह जैसे उत्तर भारत में इसका नाम 'शैवागम' है। चालुक्य, राष्ट्रकूट, पल्लव और चोलों के काल में यह दक्षिण भारत में बहुत लोकप्रिय हुआ। जिसके चलते नयन्नारों ने शैव धर्म का प्रचार-प्रसार किया। राष्ट्रकूटों ने ऐलोरा के कैलाश मंदिर का निर्माण करवाया और चोल शासक राजराज प्रथम ने तंजौर में राजराजेश्वर शैव मंदिर बनवाया। सुविधा के लिए शैव सम्प्रदाय से संबंधित सभी प्रमुख मतों का एक संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है-

आंध्र, कालमुख शैव-कालमुख सम्प्रदाय के अनुयायियों को शिवपुराण महाव्रतधर के रूप में संबंधित करता है। मान्यता है कि कृष्णदेवराय के काल में रामानुज आचार्य ने प्रसिद्ध तिरुपति मंदिर का वैष्णवीकरण करवाया और वीरभद्र की मूर्ति को बालाजी का नाम दिया, लेकिन मूलत: यह कालमुख शिव सम्प्रदाय का स्थान था। ऐतिहासिक साक्ष्य बताते हैं कि सन् 1162 में आंध्रप्रदेश के काकतीयों की प्राचीन राजधानी वारंगल में एक हजार स्तम्भों वाला शिव मंदिर शहर के भीतर स्थित था।

कापालिक सम्प्रदाय-कापालिक अथवा महाव्रत सम्प्रदाय एक तांत्रिक सम्प्रदाय है। कुछ विद्वान इस नामकरण के पीछे कपाल पर ध्यान लगाने की प्रवृत्ति को देखते हैं, लेकिन माना जाता है कि नर कपाल धारण करने के कारण इस सम्प्रदाय के उपासक कापालिक कहलाते थे। पुराणों के अनुसार इस मत को धनद या कुबेर ने शुरू किया था। इनके इष्ट देव भैरव थे और सम्प्रदाय का प्रमुख केंद्र शैल नामक स्थान था। सरबरतंत्र में आदिनाथ, अनादि, काल, अमिताभ, कराल, विकराल आदि समेत 12 कापालिक गुरुओं और उनके नागार्जुन, जड़भरत, हरिश्चन्द्र, चर्पट आदि 12 शिष्यों के नाम मिलते हैं।

नाथ सम्प्रदाय-कहा जाता है कि नाथ सम्प्रदाय की स्थापना मत्स्येंद्रनाथ ने दसवीं शताब्दी में की। लेकिन सम्प्रदाय को विस्तार बाबा गोरखनाथ के माध्यम से प्राप्त हुआ।

पाशुपत सम्प्रदाय-यह शैवों का सबसे प्राचीनतम सम्प्रदाय है। इसके अनुयायियों का पंचार्थिक कहा जाता है। इनका सैद्धान्तिक ग्रंथ 'पाशुपत सूत्र' है। कूर्मपुराण में पाशुपत मत की तीन शाखाएँ स्वीकार की गई हैं-वैदिक, तांत्रिक एवं मिश्र। दसवीं सदी के बाद इस सम्प्रदाय का ह्रास होना आरंभ हो गया।

लिंगायत सम्प्रदाय-भारत में लिंग पूजा का इतिहास अत्यंत प्राचीन है किन्तु दक्षिण भारत में लिंगायत, वीरशैव और जंगम सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव बारहवीं सदी के आसपास कल्चुरी राजा के मंत्री बसव (जिन्हें शिव का नंदी रूप कहा जाता है) से होना बताया जाता है। हालांकि स्वयं बसवपुराण उल्लभ प्रभु को लिंगायत समुदाय का प्रवर्तक मानता है, जिनके शिष्य बसव थे। संभव है कि दोनों बातें सत्य हों, क्योंकि गुरु, लिंग, जंगम (शिष्य), विभूति (राख), रुद्राक्ष, प्रसाद, पदोदक और पंचाक्षर का इस सम्प्रदाय में विशेष महत्व है। एक क्षेत्र विशेष (कर्नाटक) में सीमित होने के बाद भी लिंगायत सम्प्रदाय भारत का तीसरा सबसे बड़ा शैव मत है।

लकुलीश या नकुलीश सम्प्रदाय-इसके संस्थापक लकुलीश थे, जिन्हें भगवान शिव के 18 अवतारों में से एक के रूप में मान्यता प्राप्त थी। शोधकर्ता लकुलीश का संबंध पाशुपत और कापालिक मत से होने के प्रमाण देते हैं। जिनके आधार पर कहीं-कहीं लकुलीश सिद्धांत को पाशुपतों का ही एक विशिष्ट मत कहा जाता है। छठी से नौवीं शताब्दी के बीच का समय प्रसार के लिहाज से अच्छा माना जा सकता है, जिसमें यह मैसूर और राजस्थान तक फैला।

[उ०श्री०]

श्यामखोजी

इनका जन्म चंपावती के गौड़ ब्राह्मण कुल में ही हुआ। एक बार अपने पिताजी के साथ बाल्यकाल में वृंदावन आगमन हुआ। वृंदावन धाम में पिता-पुत्र की प्रीति ऐसी बढ़ी कि फिर लौटकर नहीं गए। पिताजी के गोलोकगमन के पश्चात् विरक्त वैष्णव वृत्ति और वेष धारण कर लिया। सद्गुरु श्री अनन्यदेव जी के चरणों में समर्पित होकर मंत्रोपदेश ग्रहण किया। गुरु की आज्ञानुसार श्री श्यामखोजी जी यमुना तट पर विराजने लगे। किंतु किसी से न माँगने के संकल्प स्वरूप आठ दिनों तक भूखे ही भगवदचिंतन में तल्लीन रहे। इनकी साधना से द्रवित होकर स्वयं श्रीकृष्ण ने इन्हें भोजन कराया। गुरुदेव की कृपास्वरूप इन्होंने प्रभु को पहचान लिया और युगल स्वरूप में साक्षात्कार का वर माँगा। इनसे प्रसन्न होकर प्रभु ने युगल रूप में दर्शन दिए और ऐसा हठ फिर न दोहराने का आदेश दिया। ये सशरीर 52 वर्षों तक वृंदावन में विराजे।

[कुं०बि०श०]

श्याम चरणदास

शुक संप्रदाय (चरणदासी संप्रदाय) के प्रवर्तक श्याम चरणदास का जन्म अलवर (राजस्थान) जिले के डहरा नामक ग्राम में हुआ था। इनकी जन्मतिथि भाद्रपद शुक्ल तृतीया वि.सं. 1760 बतायी जाती है। इनके पिता का नाम पं. मुरलीधर तथा माता का नाम श्रीमती कुंजो देवी था। इनके परिवार का उस क्षेत्र में बड़ा सम्मान था। प्राय: वे सभी कृष्ण भक्त थे। कहते हैं कि उनके किन्हीं पूर्वज श्री शोभन जी ने अपनी तपस्या से भगवान श्रीकृष्ण से वचन प्राप्त किया था कि उनकी आठवीं पीढ़ी में स्वयं अपने अंश से प्रकट होऊँगा। अत: चरणदास श्री शोभन की आठवीं पीढ़ी में उत्पन्न हुए थे।

श्याम चरणदास में भक्ति के लक्षण बालपन से ही दिखायी देने लगे थे। चार वर्ष की अवस्था में ही ये मस्तक पर तिलक तथा सुमिरन माला फेरने लगे थे। पाँचवें वर्ष में गाँव की नदी के किनारे इन्हें शुकदेव के दर्शन हुए जिन्होंने इन्हें प्रसादस्वरूप दो पेड़े दिये। छटे वर्ष में इनके पिता ने गाँव के पांडेजी की पाठशाला में पढ़ने भेजा। वहाँ उन्होंने वर्णमाला पढ़नी आरंभ की। एक दिन इन्होंने पांडेजी से कहा "आप मुझे भगवन्नाम क्यों नहीं पढ़ाते?" पांडेजी ने इन्हें पढ़ाने के कई प्रकार से प्रयत्न किए, किंतु वे इन्हें पढ़ाने में सफल न हुये। वि.सं. 1767 में पिता, पितामह व पितामही की मृत्यु हो गयी। इनकी माँ इन्हें लेकर अपने मायके दिल्ली पहुँच गयी, वहाँ इनके नाना भिखारीदास व नानी अंबिका देवी रहती थीं। उन लोगों ने इनको मुल्ला शेख कादिर बक्ख के मकतब में पढ़ने के लिए बैठाया। मुल्ला के यहाँ पढ़ते हुए आठ माह व्यतीत हुए, फिर वहाँ पढ़ने से इनका मन उचट गया। इस बीच इनके विवाह की बात चली परंतु पढ़ने तथा विवाह दोनों से रणजीत ने मना कर दिया।

नाना के घर श्रीमद्भागवत का नित्य पाठ होता था, जिसका इन पर काफी प्रभाव पड़ा। संवत् 1776 में ये योग्य गुरु की खोज में निकल पड़े। सांप्रदायिक ग्रंथों के अनुसार चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को संवत् 1779 में शुकताल के पास उन्हें व्यास पुत्र शुकदेव मुनि के दर्शन हुए। उन्होंने कंठी देकर दीक्षित किया तथा इनका नाम रणजीत से बदलकर श्यामचरण रखा। कई विद्वानों में उनके गुरु के संबंध में मतभेद हैं। सर जार्ज ग्रियर्सन ने इन शुकदेव मुनि को किसी बाबा शुकदेव के रूप में माना है न कि पौराणिक शुकदेव के रूप में। डॉ. रामकुमार वर्मा की मान्यता है कि श्याम चरणदास ने किसी सुखदेव नामक साधु से दीक्षा ली थी। किंतु सांप्रदायिक मान्यताओं, मठों में अवस्थित प्राचीन मूर्तियों, छतरियों तथा पांडुलिपियों के प्राचीन चित्रों को देखकर ऐसा लगता है कि श्याम चरणदास को वास्तव में शुकदेव मुनि के दर्शन प्राप्त हुए थे, किंतु

काल का दीर्घ अंतराल इस बात को सहज रूप में स्वीकार न करने को प्रेरित करता है। श्यामचरणदास ने एक स्थान पर लिखा भी है-''व्यासपुत्र तुम मम गुरूदेवा, करूं मानसी तुम्हरी सेवा'' इस आधार पर हम कह सकते हैं कि व्यासपुत्र शुकदेव इनके मानस गुरु थे। शुकताल से दिल्ली आकर इन्होंने योग साधना आरंभ की। वही संवत् 1781 की माघ शुक्ल पंचमी (वसंत पंचमी) को संप्रदाय की स्थापना की तथा शिष्य बनाने प्रारंभ किए। श्याम चरणदास जी पीली टोपी व पीला चोला धारण करते थे।

अपने अनेक चमत्कार दिखाए। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं-सिंह को दीक्षा देना, घोड़े से राम-राम बोलवाना, नरक का दर्शन कराकर भक्त बनाना, माता को गोलोक का दर्शन व गंगा स्नान कराना, लड़की से लड़का बना देना आदि। इनमें सबसे महत्वपूर्ण घटना नादिरशाह के आक्रमण से संबद्ध है, जिसका उल्लेख जेम्स हेस्टिंग्ज ने अपने 'इन्साइक्लोपीडिया' तथा मार्डन सैण्डर्स ने 'दि लिस्ट ऑफ मुहम्मडन एण्ड हिन्दू मॉन्यूमेन्ट्स' में किया है। संवत् 1795 के भाद्रपद मास में नादिरशाह के आगमन की श्याम चरणदास ने भविष्यवाणी की तथा एक कागज पर आक्रमण तिथि, कत्ल-ए-आम, गमन तिथि आदि विस्तारपूर्वक लिखवाकर बादशाह मुहम्मद शाह 'रंगीला' के पास भिजवा दी। भविष्यवाणी के अनुसार फाल्गुन कृष्ण दशमी, दिन शुक्रवार संवत् 1795 को नादिरशाह ने दिल्ली में प्रवेश किया तथा कत्ल-ए-आम करवाया। मुहम्मद शाह ने नादिरशाह से जब इस भविष्यवाणी के संबंध में बतलाया, तो उसे आश्चर्य हुआ। उसने अपने संदेश वाहक को भेजकर श्याम चरणदास को बुलवाया। श्याम चरणदास ने आने से मना कर दिया। तब नादिरशाह ने अपने सिपाहियों को हुक्म दिया कि इन्हें पकड़कर ले आओ। दरबार में पहुँचने पर नादिरशाह ने इन्हें चमत्कार दिखाने को कहा। इन्होंने उसके सिर की ओर देखा तो उसकी कलंगी पक्षी बनकर उड़ गई। उसने इन्हें जादूगर समझा और पैर में बेड़ियाँ डलवाकर जेल में डलवा दिया। दूसरे दिन काजी ने इनके लिए 'संगसार' (पत्थर की मार) की सजा निर्धारित की। ताला खोलकर जब देखा गया तो बेड़िया पड़ी थीं, किन्तु श्याम चरणदास गायब थे। सिपाहियों ने यह संदेश नादिरशाह को सुनाया। चरणदास तुरंत ही दरबार में प्रकट हो गये। नादिरशाह ने स्वयं इन्हें कोठरी में बंद कर ताला लगाया और महल में जाकर सो गया। कहते हैं कि अर्द्धरात्रि के समय महाराज श्याम चरणदास ने उसके पास पहुँचकर लात मारकर जगाया और कहा कि ''व्यर्थ अपना जन्म बर्वाद न कर। खुदा को याद कर।'' नादिरशाह ने इनसे माफी माँगी और इनकी आज्ञानुसार निश्चित तिथि को स्वदेश के लिए कूच कर गया।

आपकी अलौकिक शक्तियों से प्रभावित होकर मुगल सम्राट आलमगीर द्वितीय, शाहआलम द्वितीय, जयपुर नरेश ईश्वरीसिंह, सवाई प्रतापसिंह आदि नतमस्तक हुए। श्याम चरणदास की मृत्यु उन्यासी वर्ष की आयु में अगहन शुक्ल सप्तमी, बुधवार संवत् 1839 को उनके शुकदेवपुरा (दिल्ली) स्थित गुरुद्वारे में हुई। उन्होंने अपनी मृत्यु के बारे में अपने शिष्यों से संकेत कर दिया था। अत: उनकी मृत्यु पर दूर-दूर से अधिकांश शिष्य एवं भक्तगण एकत्र हुए।

श्याम चरणदास ने भक्ति, ज्ञान तथा योग से युक्त रचनाओं का भी प्रणयन किया। उनकी लगभग 22 रचनायें उपलब्ध होती हैं-

(1) योगपरक रचनाएँ-अष्टांग योग वर्णन, योग संदेह सागर और ज्ञान स्वरोदय।

(2) ज्ञान और भक्तिपरक रचनाएँ-पंचोपनिषद सार, मन विरक्त करण गुटका सार और ब्रह्मज्ञान सागर।

(3) धर्माचरण एवं उपदेश मूलक रचनाएँ-नासकेत लीला, धर्म जहाज, जागरण महात्म्य, अमरलोक, अखंड धाम वर्णन और शब्द।

(4) भक्तिपरक रचनाएं - भक्ति सागर और भक्ति पदार्थ वर्णन।

लीला विषयक रचनाएँ-दान लीला, माखन चोरी लीला, मटकी लीला तथा ब्रज चरित। [क०उ०]

श्यामदेव

गोवर्धन देव जी के प्रिय शिष्य श्री श्यामदेव जी गौड़ ब्राह्मण थे। गुरुदेव के परमधाम गमन से इन्हें ऐसी निवृत्ति हुई कि विरहाकुल भाव में ये ब्रज के वनों में विचरते रहे। कोकिलावन में इन्हें भगवान राधासर्वेश्वर के दर्शन प्राप्त हुए। इसके पश्चात् इन्होंने कुछ दिनों तक यहीं निवास किया। श्री श्यामदेव जी 70 वर्षों तक इस धराधाम पर विराजे। [कुं०बि०श०]

श्याम भट्टाचार्य

श्री माधव भट्टाचार्य जी के शिष्य श्रीश्याम भट्टाचार्य जी हैं। इन्होंने अनेकों श्रद्धालुओं को भगवतोन्मुख किया तथा अनेकों मुमुक्षुओं को श्रीराधाकृष्ण युगल का साक्षात्कार कराया। प्रतिवर्ष चैत्र कृष्णा द्वादशी को इनका पाटोत्सव समारोहपूर्वक मनाया जाता है। [कुं०बि०श०]

श्यामरूप

श्यामरूप जी संस्कृत के विद्वान एवं ज्ञानी महात्मा थे। ये चरणदास जी की ख्याति सुनकर जिज्ञासु रूप में उनके समक्ष उपस्थित हुए। जब चरणदास जी ने इनकी समस्त जिज्ञासाओं का समाधान कर दिया तब ये उनके चरणों में नतमस्तक हो गये तब चरणदास जी ने इनको दीक्षा देकर अपना शिष्य स्वीकार कर लिया। यह हमेशा गुरु के साथ रहते थे, उनके साथ तीर्थयात्रा पर जाते थे, उन्हीं के साथ वापस आ जाते थे। गुरु के परलोक जाने के बाद ये वृन्दावन के जुगल घाट पर आकर रहने लगे। इनके साथ इनके गुरु भाई गुसाईं नागरीदास भी रहते थे। उन्हीं दिनों श्री अखैराम दास जी ने जुगल घाट पर चैनबिहारी जी मंदिर निर्मित कराया। इनके समकालीन वृन्दावन की ग्वालियर वालों की कुंज में गो. जुगतानन्द के शिष्य वृन्दावनदास रहते थे। डीग में चरणदास जी के शिष्य पूर्णप्रताप रहते। ये इन सभी चरणदासी संतों के साथ आत्मीय परिवेश में रहते थे। ये स्थान आज चरणदासी संतों के आकर्षण के स्थल हैं। जहाँ आज भी चरणदासी परम्परा के संत निवास करते हैं। [क०उ०]

श्यामाचार्य

बाल्यकाल से ही उत्कट वैराग्य इनका आभूषण था। माथुर-चतुर्वेद विप्र कुल में इनका जन्म हुआ। इनकी प्रिया-प्रियतम और उनकी लीलाओं के प्रति ऐसी अनुरक्ति थी कि न तो किसी देहधारी से ये संबंध रखते थे और यदि किसी से मिलना या क्षणिक संबंध रखना हो तो अनमिल से ही रहते थे। गोकुल धाम में नित्य निवास करते थे। इच्छा होने पर वृंदावन की निधिवनीय निकुंजों में इनका आश्रय होता था। जहाँ प्रतिक्षण ये श्यामा-श्याम के नित्य-विलास के साक्षी बनते रहते थे। वैराग्य भाव की प्रगाढ़ता के कारण ही आपने कभी संग्रह-परिग्रह को महत्व नहीं दिया। इनके ऊपर ऐसी भगवदीय कृपा थी कि प्रतिदिन यमुना मैया ही इन्हें प्रसाद खिलाती थीं। निरंतर श्यामा-श्याम को निरखते रहने के कारण ही गुरु प्रसाद इनका नाम श्यामाचार्य चरितार्थ हुआ। श्यामाचार्य जी 50 वर्षों तक निंबार्काचार्य पद को सुशोभित करते रहे। इनका पाटोत्सव आश्विन शुक्ल त्रयोदशी को मनाया जाता है। [कुं०बि०श०]

श्रवण भट्टाचार्य

श्री श्रवण भट्टाचार्य की रहनी अत्यंत सरल और भगवदोन्मुख थी। केवल्य भजन, शास्त्रानुशीलन और शरणागतवत्सलता आपका स्वाभाविक गुण था। आचार्य श्रीनिंबार्काचार्य भगवान की परंपरा के 20वें आचार्य हैं। इनके द्वारा रचित ग्रंथ

अभी तक ज्ञात नहीं हैं। इनका पाटोत्सव कार्तिक कृष्णा नवमी को ही आयोजित किया जाता है। [कुं०बि०श०]

श्राद्ध

श्राद्ध शब्द श्रद्धा से सम्बद्ध है। श्राद्धकर्ता का यह विश्वास रहता है कि मृत प्राणी या पितरों के कल्याण के लिये ब्राह्मणों को जो कुछ दिया जाता है वह उन्हें अवश्य प्राप्त होता है। श्राद्ध को यदि परिभाषित करें तो ब्रह्मपुराण के अनुसार श्राद्ध वह है जो द्रव्य आदि उचित पात्र, काल एवं स्थान के अनुसार उचित विधि द्वारा पितरों को लक्ष्य करके श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणों को दिया जाता है।

देशेकाले च पात्रे च श्रद्धया विधिना च यत्।
पितृमुद्दिश्य विप्रेभ्यो दत्तं श्राद्धमुदाहृतम्॥

पितरों को उद्देश्य करके किसी वस्तु या उससे सम्बन्धित द्रव्य का श्रद्धापूर्वक त्याग श्राद्ध कहलाता है-'**श्राद्धं नामापादनीयस्य तत्स्थानीयस्य वा द्रव्यस्य प्रेतोदेशेन श्रद्धया त्यागम्॥**' मिताक्षरा (याज्ञवल्क्य 6/217)

श्राद्ध कल्पतरु में-पितरों को उद्देश्य करके यज्ञीय वस्तु का त्याग ब्राह्मणों द्वारा उसका ग्रहण प्रधान श्राद्ध स्वरूप है-

तेन पित्हनुद्दिश्य द्रव्यत्यागो ब्राह्मस्वीकरणपर्यन्तं श्राद्धस्वरूपं प्रधानम्।

बृहस्पति स्मृति में श्राद्ध-'**संस्कृतं व्यञ्जनाहर्यं च पयोमधुघृतान्वितम्। श्रद्धया दीयते यस्मात श्राद्धं तेन निगद्यते।**'

धर्मसिन्धु में श्राद्ध के भेदों का कथन है-'**पित्रादीन्मृतानुद्दिश्य विहिते कालेदेशे पक्वान्नमापन्न। हिरण्यान्यतम द्रव्यस्य विधिना दानं श्राद्धम्॥**'

श्राद्ध के चार भेद हैं-पार्वण, एकोद्दिष्ट, नान्दी, सपिण्डीकरण। (धर्मसिन्धु 3/323)

विश्वामित्र के अनुसार श्राद्ध के बारह भेद हैं-

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं वृद्धि श्राद्धसपिण्डकम्।
पार्वण चेतियिज्ञेयं गोष्ट्या शुद्धयर्थभष्टमम्॥
कर्मांग नवमं प्रोक्तं दैविकं दशम स्मृतम्।
द्वादशं प्रोक्तं पुष्टयर्थं द्वादशं स्मृतम्॥

श्राद्ध क्रिया की उत्पत्ति-निमि के पुत्र आत्रेय मुनि महान तपस्वी थे। वह पञ्चाग्नि तप एवं वायु भक्षण करते थे। सहस्र वर्ष तक कृच्छ्र व्रत करके वह कालानुसार मृत्यु को प्राप्त हुए। पुत्रशोक से व्याकुल निमि ने पुत्र के श्राद्ध कल्प के सम्बन्ध में विचार किया। जो भी उनका प्रिय भोजन था जो-जो चेष्टा करते थे वही सब निमि ने किया। तत्पश्चात् ब्राह्मण को बुलाकर विधिवत श्राद्ध किया। पिण्डदान करके पश्चात्ताप किया। मुनि जो करते थे वह निमि ने किया। वह बहुत ही भयभीत होने लगे। तब नारदमुनि ने आकर ज्ञानोपदेश के द्वारा उनका सन्ताप और भय दूर किया। तभी से श्राद्ध या पितृ यज्ञ प्रारम्भ हुआ।

श्राद्ध का उपयुक्त काल-आपस्तम्बधर्मसूत्र (2/7/16/4-7) के अनुसार प्रत्येक मास के अंतिम पक्ष में अपराह्न (दोपहर) में श्राद्ध सम्पादन होना चाहिए। गौतम तथा वशिष्ठ स्मृति (12/16) में प्रतिमास के कृष्णपक्ष की चतुर्थी के अतिरिक्त किसी भी दिन श्राद्ध हो सकता है। अग्नि पुराण (115/8) में वर्णित है कि श्राद्ध किसी भी दिन किया जा

सकता है। मनुस्मृति (3/276-268) के अनुसार चतुर्दशी को छोड़कर दशमी से किसी भी दिन किया जा सकता है। मार्कंडेय्य पुराण (24/20) में ग्रहण के स्पर्शकाल में श्राद्ध को उपयुक्त काल माना है। वाराह पुराण में वर्णित है-व्यतीपात योग, सूर्य के अयन विषुव योग में आने पर, सूर्य के सभी राशियों में संक्रमित होने पर, सूर्य-चंद्र ग्रहणकाल में, बुरे नक्षत्र और ग्रहों के समय, नवीन अन्न आने के समय श्राद्ध करना चाहिए।

श्राद्ध के योग्यायोग्य ब्राह्मण-मनुस्मृति में 3/174 में कुंड, गोलक ब्राह्मणों को निमंत्रित करने का निषेध है-परदारेषु जायेते द्वौ सुतौ कुण्ड गोलकौ। पत्यौ जीवति कुण्डः स्यान्भृते भर्तरि गोलकः॥ वेद विद्या में निष्णात, धर्मशील युक्त, सत्य वक्ता, शास्त्रविद् तथा अहिंसक ब्राह्मण को श्राद्ध हेतु निमंत्रित करना चाहिए। वाराह पुराण (188/20-22) में वर्णित है-देव पितृकार्यों में दयादानादि युक्त पितरों का उद्धार करने में सक्षम ब्राह्मण श्राद्ध के योग्य है, कुण्ड, गोलक सर्वथा वर्ज्य है। [उ०भा०]

श्रेयांसनाथ

जैन धर्म के 24 तीर्थंकरों में श्रेयांसनाथ 11वें तीर्थंकर हैं। सिंहपुर के शासक विष्णु तथा वेणुदेवी (विष्णु देवी) इनके माता-पिता थे। ज्येष्ठवदि छठवें दिन श्रावण नक्षत्र में ये रानी के गर्भ में आए। इन्द्रादि देवों ने इनका गर्भकल्याणक मनाया। गर्भकाल पूरा होने पर विष्णु माता के गर्भ से भाद्रपद वदि 12वें दिन श्रावण नक्षत्र में गेंडे के चिह्न सहित पुत्र रत्न का जन्म हुआ। पुत्र का नाम श्रेयांस कुमार रखा गया, क्योंकि उनके जन्म से राजा के घर सर्वकल्याण हुआ था।

जब श्रेयांस युवा हुए तब उनके पिता ने अनेक राजकन्याओं के साथ इनका विवाह करा दिया। ये 21 लाख वर्ष तक युवराज रहे और 42 लाख वर्ष तक इन्होंने राज्य किया। जब लोकान्तिक देवों ने आकर दीक्षा लेने की विनती की, तब श्रेयांस ने वर्षा दान दिया और सहसाम्र वन में जाकर आभूषणों आदि का त्याग कर फाल्गुनवदि 13वें दिन श्रावण नक्षत्र में केशलुंचन कर दीक्षा ली। दूसरे दिन उन्होंने राजा नन्द के यहाँ जाकर पारणा किया। वहाँ से अन्यत्र विहार कर एक मास बाद लौटकर वे उसी वन में आए। अशोक वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग धार शुक्लध्यान के साथ कर्मों का नाश कर माघवदि पाँचवें दिन चन्द्र नक्षत्र में प्रभु श्रेयांस ने केवल्यज्ञान प्राप्त किया। इन्द्रादि देवों ने केवल्य ज्ञान कल्याणक किया।

श्रेयांसनाथ के केवल्य प्राप्ति के पश्चात् तीर्थंकर पद प्राप्त करने पर उनके शासन देवता के रूप में ईश्वर नाम का यक्ष और मानवी नाम की यक्षी उनसे सम्बद्ध हुए। इसी तरह 76 गणधर, 84 हजार साधु, 1 लाख 3 हजार साध्वियाँ, 1314 पूर्वधारी, 6 हजार मनःपर्वयज्ञानी, साढ़े छः हजार केवली, 11 हजार वैक्रिय लब्धिधारी, 5 हजार बादलाब्धिधारी, 2 लाख 11 हजार श्रावक और 4 लाख 36 हजार श्रविकाएँ उनके संघ शासन में सम्मिलित थे।

श्रेयांस अपना मोक्षकाल समीप जानकर सम्मेद शिखर गए। एक हजार मुनियों के साथ उन्होंने व्रत लिया और एक मास के अंत में श्रावणसुदि दूसरे दिन धनिष्ठा नक्षत्र में प्रभु निर्वाण प्राप्त किए। इन्द्रादि देवों ने मोक्ष कल्याणक उत्सव मनाया। श्रेयांसनाथ की आयु 84 लाख वर्ष थी। उसमें उन्होंने 21 लाख वर्ष कुमारवय में, 42 लाख वर्ष राज्य में और 21 लाख वर्ष धर्म देशना में व्यतीत किया। इनका शरीर 80 धनुष ऊँचा था। श्रेयांस के तीर्थ में त्रिपुष्ट वासुदेव, चल नामक बलदेव और अश्वग्रीव प्रतिवासुदेव हुए, जिनकी गणना त्रिशष्टिशलाका पुरुषों में की जाती है।

श्रेयांसनाथ का प्रतीक गैंडा (खड्गी) है और यक्ष-यक्षी ईश्वर एवं मानवी है। दिगम्बर सम्प्रदाय में यक्षी गौरी है। मूर्तियों में यक्ष और यक्षियों का निरूपण नहीं किया गया है। यक्षी का निरूपण केवल बारभुजी गुफा (खण्डगिरि, ओडिशा) में 12वीं शती ई. में मिलता है। श्रेयांसनाथ की एक मूर्ति इन्दौर संग्रहालय में सुरक्षित है। कुम्भारिया स्थित पार्श्वनाथ मंदिर की देवकुलिका सं. 11 में श्रेयांसनाथ की मूर्ति का सिंहासन (1202 ई.) सुरक्षित है तथा इसकी पीठिका पर श्रेयांस नाम भी उत्कीर्ण है। वर्तमान में वाराणसी स्थित सारनाथ में 19वीं शती का श्रेयांसनाथ मंदिर निर्मित है। [दु०न०ति०]

शृंगार रस मण्डन

यह गोसाईं विट्ठलनाथ जी की प्रारम्भिक रचना है। इसे उन्होंने दामोदरदास हरसानी की सहायता से संवत् 1613 में तैयार किया था। फिर भी यह एक प्रौढ़ ग्रंथ है। इसमें पुष्टि सम्प्रदाय के शृंगार, रस, व्रतचर्या, दानलीला, दशोल्लास आदि का वर्णन तो है ही, साथ ही रस पक्ष एवं लीला भावना का भी मार्मिक विवेचन किया गया है। इसमें राधा और दाम्पत्यरति की महत्ता प्रतिपादित की है। [क०उ०]

शृंगेरी पीठ

आद्यशंकराचार्य जी के द्वारा चतुर्थपीठ दक्षिणाम्नाय शृंगेरी शारदापीठ शृंगेरी, जिला चिकमंगलूर, कर्नाटक (वर्तमान नामकरण) में स्थापित किया गया। श्रंगेरीपीठ के अनुसार इसका स्थापना काल द्वारका, पुरी आदि पीठों से भिन्न माना गया है। क्योंकि इस मठ से संबद्ध विद्वान आद्यशंकराचार्य जी का काल 788 से 820 ई. मानते हैं। श्रीशंकर भगवद्पाद् की विदेह मुक्ति 820 ई. में मानते हुये इसके प्रथम आचार्य श्री सुरेश्वराचार्यजी का काल 820 से 834 ई.पर्यन्त मानते हैं। शृंगेरी शारदापीठ का संप्रदाय भूरिवार (जीवन में स्वर्ण/धन को निरुद्ध करने वाले यति) है तथा गोत्र भूर्भुवः है।

इस मठ के संन्यासियों तथा आचार्यों के नाम में सरस्वती (शब्दशास्त्र, व्याकरणशास्त्र में पारंगत हैं, नित्य शब्द-स्वर के ज्ञान में निरत हैं तथा संसार सागर के सार को जानने वाले) भारती (जो सभी प्रकार के भार का त्याग कर केवल विद्या के भार से युक्त है तथा दुःख के भार को जानते नहीं) तथा पुरी (जो ज्ञान तत्व से परिपूर्ण हैं, उस पूर्ण तत्व-ब्रह्म में स्थित हैं तथा सदा सर्वदा परब्रह्म में ही निरत हैं) पद एवं ब्रह्मचारियों के नाम में चैतन्य पद (जो ज्ञानरूप, अजर, अनन्त-कल्याणरूप परमेश्वर को जानता है) होता है। मठ का क्षेत्र रामेश्वर देवता श्रीवाराह हैं तथा देवी कामक्षी हैं, जो सभी कामनाओं की प्रदात्री हैं। तीर्थ तुंगभद्रा है। वेद यजुर्वेद तथा महावाक्य अहं ब्रह्मास्मि है। इसके अनन्तर आने वाले प्रदेश आंध्र, द्रविड़, केरल, कर्नाटक आदि दक्षिण दिशा में स्थित क्षेत्र हैं। जैसा कि हम पूर्व में लिख आये हैं कि शृंगेरीपीठ के प्रथम आचार्य सुरेश्वराचार्य हैं। इनके विषय में जान लेते हैं:-

नर्मदा नदी के किनारे माहिष्मती नगरी में कर्म मीमांसा के महान विद्वान मण्डन मिश्र निवास करते थे। आचार्य शंकर ने अद्वैत दर्शन की महत्ता स्थापित करने के लिये मण्डन मिश्र को शास्त्रार्थ में पराजित करने का निश्चय किया। कहा जाता है कि मण्डन मिश्र का ज्ञान माहिष्मती नगरी में इतना व्यापक था कि घरों में पलने वाले शुक भी कर्म मीमांसा की चर्चा विस्तार से कर सकते थे। उनका मत था कि वेदों में निर्धारित तपस्या तथा कर्मों को नियम-निष्ठापूर्वक उसी रीति से करना चाहिये जैसा कि विधान किया गया है। इसके अतिरिक्त वे अन्य किसी मौलिक सत्य पर विश्वास नहीं करते थे।

आचार्य शंकर ने वेदों की सर्वोच्चता स्वीकार करते हुये यह अनुभव किया कि वेदों में केवल भौतिक लाभ के लिये किये जाने वाले कृत्यों के अतिरिक्त ज्ञान का असीम भण्डार भी भरा है। उचित चिंतन तथा अन्तर्निरीक्षण द्वारा यह अनुभव किया जा सकता है तथा जीवन को बहुत ऊँचा उठाया जा सकता है।

जब आचार्य शंकर मण्डन मिश्र के घर पहुँचे तो वे श्राद्ध कर रहे थे तथा मुख्य द्वार बंद था। फिर भी आचार्य अपनी दैविक शक्ति से गृह के अन्दर प्रवेश पा गये। इससे मण्डन मिश्र बहुत नाराज हुये। आचार्य शंकर ने मण्डन मिश्र के द्वारा पूछी गयी बहुत-सी बातों का उत्तर हास्य-व्यंग्य भरे शब्दों में हँसते हुये दिया। किन्तु विद्वान मण्डन मिश्र ने उनकी हास्य में स्पष्ट की गयी बातों के महत्व को समझ लिया। उन्होंने शंकर के साथ शास्त्रार्थ करना चाहा जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया।

श्राद्ध कर्म के पूर्ण होने के पश्चात् शास्त्रार्थ हेतु मंच का निर्माण कराया गया। मण्डन मिश्र की विदुषी पत्नी को आचार्य शंकर के प्रस्ताव पर न्यायाधीश नियुक्त किया गया। वे सरस्वती का अवतार थीं, उन्हें यह समझते देर न लगी कि आचार्य

शंकर भगवान दक्षिणामूर्ति के अवतार हैं। उनके पति शास्त्रार्थ में पराजित हो जायेंगे। पति की हार का निर्णय सुनाने की विषम परिस्थिति से बचने के लिये उन्होंने दोनों को एक-एक विशिष्ट हार गले में पहनने को दिया तथा बताया कि पराजित व्यक्ति के हार के पुष्प मुरझा जायेंगे और उस व्यक्ति को स्वेच्छा से अपनी हार स्वीकार कर लेनी चाहिये। लंबे चले शास्त्रार्थ में मण्डन मिश्र के हार के पुष्प मुरझा गये। इससे उनकी पत्नी को बहुत कष्ट हुआ। शास्त्रार्थ से पूर्व यह भी निश्चय हुआ था कि यदि आचार्य शंकर पराजित होंगे तो वे संन्यास त्याग कर गृहस्थ जीवन में प्रवेश करेंगे। इसके विपरीत यदि मण्डन मिश्र पराजित होंगे तो वे गृहस्थ जीवन एवं समस्त सांसारिक सुखों का त्याग कर संन्यास ग्रहण कर लेंगे तथा आचार्य शंकर का शिष्यत्व ग्रहण करेंगे। दिये वचन के अनुसार मण्डन मिश्र ने आचार्य शंकर का शिष्यत्व ग्रहण कर उनके साथ भ्रमण पर निकलने की तत्परता व्यक्त की। इससे उनकी पत्नी को बहुत दुःख हुआ और वे शंकर से बोलीं-हे महानुभाव आप जानते हैं कि शास्त्रों के अनुसार पति-पत्नी दो भौतिक शरीरों में रहते हुये भी एक हैं। अतः आपने मेरे पति को पराजित कर आधी विजय पाई है। आचार्य शंकर सहर्ष उनसे शास्त्रार्थ करने को तैयार हो गये। विद्वत्ता में अतुलनीय आचार्य शंकर से उन्होंने हार स्वीकार की।

मण्डन मिश्र आचार्य शंकर से पराजय स्वीकार कर उनका शिष्यत्व ग्रहण कर संन्यासी हो गये। संन्यस्थ होने पर उनका ही नाम सुरेश्वर हुआ। उनके साथ ही उनके समस्त शिष्य भी कर्मपथ त्याग कर शंकराचार्य जी के ज्ञानमार्ग के अनुगामी हो गये। संप्रति जगद्गुरुशंकराचार्य स्वामी श्री भारती तीर्थ जी सन् 1989 से इस पीठ पर आसीन हैं। उनके उत्तराधिकारी के रूप में श्री विधुशेखर भारती विधिवत घोषित किये जा चुके हैं। [ग०शं०पा०]

श्रीमद्देवी भागवत

श्रीमद्देवी भागवत पुराण की प्रतिष्ठा एक महत्वपूर्ण पुराण के रूप में आध्यात्मिक जगत में सर्वमान्य है। इसको भारतवर्ष के अधिकांश भागों में महापुराण माना जाता है किन्तु कुछ लोग इसे उप-पुराण की श्रेणी में रखते हैं। बारह स्कंधों में विभाजित इस महापुराण में 318 अध्याय हैं। शाक्त मत में यह महापुराण बहुत आदर के साथ देखा जाता है। शाक्त मत में महाशक्ति की आराधना मातृ रूप में मान्य है। ये महाशक्ति ही नवदुर्गा तथा दस महाविद्याओं के रूप में शाक्तों द्वारा पूजित हैं। यह ग्रन्थ अद्वैत सिद्धांत का पोषक है। शाक्त इसे शाक्तभागवत भी मानते हैं।

श्रीमद्देवी भागवत पुराण में श्लोकों की संख्या 18,000 है। स्कंध सात के अंतिम दस अध्याय 31वें से 40वें तक को अलग ग्रन्थ के रूप में भी पढ़ा जाता है। इसे देवी गीता नाम से प्रतिष्ठित किया गया है। इसका महत्व भगवद्गीता से कम नहीं है। इस स्कंध में देवी से संबंधित पर्वों की विशद व्याख्या की गयी है। स्कंध नौ में म्लेच्छों तथा यवनों का वर्णन मिलता है। अन्य पुराणों की भाँति इसमें ईश्वर की आराधना मातृ रूप में किये जाने के विषय को अति विस्तार से वर्णित किया गया है। इससे पूर्व मार्कण्डेय पुराण में भी परमेश्वर को देवी अथवा दुर्गा के रूप में पूजे जाने की व्याख्या रोचक ढंग से की गयी है। स्कंध दस में मन्वन्तरों का विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है जो इसे महापुराण की श्रेणी में रखता है। ग्यारहवें स्कंध में सदाचार धर्म की व्याख्या के पश्चात् श्रुति, स्मृति एवं पुराणों का वर्णन किया गया है। बारहवें स्कंध में गायत्री मंत्र की विशद व्याख्या की गयी है। श्रीमद्देवी भागवत के श्रवण एवं पारायण की बहुत महिमा है। इससे भवरोगों से मुक्ति तो मिलती ही है साथ में साधक का आध्यात्मिक एवं भौतिक उत्कर्ष भी अवश्यंभावी है। [अ०पा०]

श्रीमद्भगवत गीता भाष्य

प्रायः आध्यात्मिक जगत में सामान्य रूप में श्रीमदभगवत् गीता उपदेशात्मक ग्रन्थ गीता के नाम से जाना जाता है। किन्तु गीता अनेकों शास्त्र उपलब्ध हैं यथा अष्टावक्र गीता, उद्धव गीता, श्रुतिगीता, दत्तात्रेय गीता, पराशर गीता

तथा श्रीमदभगवत् गीता आदि। प्राय: अष्टावक्रगीता के अतिरिक्त गीता नाम से प्रचलित यह ग्रन्थ स्वतंत्र ग्रन्थ नहीं हैं अपितु किसी ग्रन्थ विशेष का भाग हैं। वास्तव में गीता शब्द से तात्पर्य उस ग्रन्थ से है जिसमें परब्रह्म, जीव तथा सृष्टि की चर्चा के साथ मनुष्यों के लिये आवश्यक सत्कर्मों का भी उपदेश हो।

श्रीमद्भगवत गीता के नाम से जो ग्रन्थ प्रचलित है वह इतिहास श्रेणी के ग्रन्थ महाभारत भीमपर्व में विद्यमान 700 श्लोकों का ग्रन्थ है, जिसकी हम यहाँ चर्चा करेंगे। ग्रन्थ के नाम में प्रारंभ में विशेषण श्रीमत् लगा हुआ है। इसका तात्पर्य है श्रीयुत। कौन है यहाँ श्रीयुत-यह हैं भगवान अर्थात् छ: भगों से विभूषित। इस ग्रन्थ का साक्षात् उपदेश भगवान श्रीकृष्ण ने युद्धभूमि में अर्जुन को किया। किन्तु ग्रन्थ में कहीं भी श्रीकृष्ण उवाच नहीं कहा गया है अपितु श्री भगवान् उवाच ही कहा गया है। अत: ग्रन्थ श्रीमद्भगवत गीता के नाम से ही विख्यात है।

जहाँ तक इस ग्रन्थ की प्रसिद्धि एवं प्रचलन का प्रश्न है संसार में इतना अधिक कोई अन्य ग्रन्थ प्रतीत नहीं होता है। गोस्वामी तुलसीदासकृत रामचरितमानस की तुलना में भी यह ग्रन्थ अधिक प्रचलित है। किसी भी साधु के पास और कुछ हो न हो किन्तु उसकी झोली में श्रीमद्भगवत गीता की प्रति अवश्य मिल जायेगी जिसका वह नियमित पारायण भी करता होगा। श्रीमद्भगवत गीता महात्म्य में कहा गया है-

सर्वोपनिष्टदो गावो दोग्धा गोपालनंदन:।
पार्थो वत्स: सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामञ्जतं महत्।।

अमृतमय श्रीमद्भगवत गीता को वह दुग्ध कहा गया है जिसे अर्जुन सहित सुधीजनों के लिये गौचारण करने वाले स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने उपनिषद् रूपी गायों से दुहा है।

श्रीमद्भगवत गीता का स्थान प्रस्थानत्रयी में स्मृतिप्रस्थान के अन्तर्गत माना गया है अर्थात् इस ग्रन्थ को ब्रह्मसूत्र एवं उपनिषद की श्रेणी में मनीषियों के द्वारा रखा गया है। इसकी पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि प्रत्येक अध्याय के अंत में 'श्रीमद्भगवत गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे' वाक्यांश से किया गया है।

प्रस्थानत्रयी के अन्तर्गत आने के कारण सम्प्रदायाचार्यों के द्वारा इस ग्रन्थ का भाष्य अपने मत को प्रतिष्ठापित करने के लिये किया गया है। भगवान आद्यशंकराचार्य जी के द्वारा भी श्रीमद्भगवत गीता पर भाष्य किया गया है। भगवान आद्यशंकराचार्य अद्वैतवाद के प्रवर्तक थे। अत: उनके भाष्य में उनका यही दर्शन परिलक्षित होता है।

भगवान आद्यशंकराचार्य ने उपोद्घात के पश्चात द्वितीय अध्याय के श्लोक संख्या 10 से प्रारंभ किया है। उपोद्घात से स्पष्ट हो जाता है कि भाष्यकार क्या विषय ग्रन्थ में कहने जा रहे हैं। उपोद्घात का प्रारंभ मंगलाचरणरूपी निम्न श्लोक से किया गया है :

नारायण: परोऽव्यक्तादण्डमव्यक्तसंभवम्।
अण्डस्यान्तस्त्विमे लोका सप्तद्वीपा च मेदिनी।।

यहाँ अव्यक्त (ब्रह्म) ही मायायुक्त नारायण (ईश्वर) के नाम से पुकारा गया है। उसी से समस्त ब्रह्माण्ड (सृष्टि) जिसके अन्दर सप्तद्वीप, समस्त लोक हैं की उत्पत्ति कही गई है।

आत्मसाक्षात्कार में रत साधक के लिये निर्लिप्तभाव की आवश्यकता बतलाते हुये संन्यासी के लिये कहा गया है-ज्ञानं संन्यासलक्षणम्। इसी प्रकार आगे के अध्याय में मोक्ष का लक्षण सूत्ररूप में इन शब्दों में कहा है-चरम वैराग्यो मोक्षलक्षण:। इसी प्रकार की व्याख्यायें करते इस उपनिषद् में की गई हैं। [ग०शं०पा०]

श्रीमद्भागवत महापुराण

श्रीमद्भागवत पुराण में 18000 श्लोक हैं, जो 12 स्कन्धों में बँटे हुए हैं। महापुराण के सभी लक्षण इसमें विद्यमान हैं। ज्ञातव्य है कि सप्ताह कथा श्रीमद्भागवत माहात्म्य से प्रारम्भ होती है न कि भागवत महापुराण से। माहात्म्य तो पद्मपुराण से लिया गया है जिसे भागवत पुराण में जोड़ दिया गया है।

श्रीमद्भागवत की कथा भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा उत्तरा के गर्भ में परीक्षित की रक्षा से प्रारम्भ होती है। श्री शुक मुनि ने भागवत के द्वितीय स्कन्ध के प्रथम अध्याय में परीक्षित महाराज को बताया कि मुमुक्षजनों को सदा ही हरि के ही नाम, रूप, लीला का ध्यान, मनन करना चाहिये। शुकदेव महाराज ने कहा उनकी निर्गुण स्वरूप परमात्मा में पूर्ण निष्ठा है फिर भी भगवान श्रीकृष्ण की मधुर लीलाओं ने उन्हें बलात् अपनी ओर आकर्षित किया है। श्रीमद्भागवत पुराण का अध्ययन उन्होंने अपने पिता श्री वेदव्यास जी से किया है, क्योंकि परीक्षित परम भक्त हैं अत: उसी पुराण को वे उन्हें सुनायेंगे।

दूसरे स्कन्ध में ही भगवान के विराट स्वरूप का वर्णन है। सृष्टि का वर्णन और चतु:श्लोकी भागवत का उपदेश है। तृतीय स्कन्ध में उद्धव (जो भगवान कृष्ण के परम भक्त और सखा थे) की भेंट विदुर जी से होती है। वस्तुत: इस पुराण का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय यही है कि सृष्टि भगवान से उत्पन्न होती है, उन्हीं में लीन हो जाती है। इसी स्कन्ध में वराह अवतार की कथा, जय-विजय को सनकादि ऋषियों का शाप और उनका हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु के रूप में दिति के गर्भ से जन्म और हिरण्याक्ष का वराह भगवान द्वारा वध का विस्तार से वर्णन है। कर्दम ऋषि का देवहूति से विवाह, कपिल अवतार और उनके द्वारा देवहूति को सांख्य योग द्वारा तत्त्वज्ञान का वर्णन है।

चतुर्थ स्कन्ध में भगवान शिव के प्रति दक्ष प्रजापति का रोष एवं सती का दक्ष के यज्ञ में शरीर का त्याग, शिवा के अनुचरों और वीरभद्र आदि शंकर के अनुचरों द्वारा दक्ष का सिर काटकर उसके यज्ञ का विध्वंस तथा शंकर को प्रसन्न करने पर दक्ष को बकरे का सिर लगाकर पुन: जीवनदान का वर्णन है। अपनी छोटी माता के तिरस्कार और पिता की उपेक्षा के कारण ध्रुव तपस्या लीन हो गये। छ: मास उपरान्त उन्हें भगवान के दर्शन हुए और ध्रुवलोक की प्राप्ति हुई। महाराजा पृथु द्वारा पृथ्वी के दोहन, पृथु को भगवान रुद्र का उपदेश और पुरंजन उपाख्यान का भी चतुर्थ स्कन्ध में वर्णन है।

पंचम स्कन्ध में विष्णु के अवतार ऋषभदेव जी का उपाख्यान है। ऋषभ जी ने अधर्म को पीछे की ओर धकेल दिया इसीलिये सत्पुरुषों द्वारा वे ऋषभ कहलाये। ऋषभदेव जी के वंश में राजा भरत हुए जिनके नाम से इस भूमि का नाम भारतवर्ष पड़ा। इसका नाम पहले अजनाभ वर्ष था। उन्होंने बहुत देर तपस्या की किन्तु अन्त समय में मृग के मोह में पड़ने के कारण अगली योनि मृग रूप में हुई। तत्पश्चात् ब्राह्मण कुल में जन्म लिया। इस जन्म में व्यवहार न अपनाने के कारण जड़भरत कहलाये और अन्तत: मोक्ष प्राप्त किया।

छठे स्कन्ध में अजामिल का प्रसिद्ध आख्यान है। दक्ष का पुनर्जन्म और उसकी साठ कन्याओं की वंश परम्परा का वर्णन है। इसी स्कन्ध में चित्रकेतु का बहुत सुन्दर उपाख्यान है। वह पार्वती के शाप से राक्षस वृत्ति को प्राप्त हो वृत्रासुर रूप में त्वष्टा ऋषि के यज्ञ से प्रकट हुआ।

सातवें स्कन्ध में हिरण्यकशिपु के वध और प्रहलाद उपाख्यान का वर्णन है। अष्टम् स्कन्ध में गज और ग्राह के युद्ध की प्रसिद्ध कथा है। गजेन्द्र द्वारा भगवान की सुन्दर स्तुति इसी स्कन्ध में है। देवासुर संग्राम, समुद्र मंथन और मोहिनी रूप में भगवान के अमृत बाँटने का हृदयग्राही वर्णन भी है। प्रहलाद के पौत्र बलि का आख्यान भी इसी स्कन्ध में है। मत्स्यावतार की कथा भी इसी स्कन्ध में है। भगवान ने हयग्रीव असुर से वेद छीनकर प्रलय के उपरान्त ब्रह्माजी को दिये।

नवम् स्कन्ध में महर्षि च्यवन और सुकन्या के विवाह का वर्णन है। महाराज अम्बरीष और दुर्वासा के दु:ख निवृत्ति

की बहुत सुंदर कथा है। अन्य कथाओं के अतिरिक्त राजा त्रिशंकु और हरिश्चंद्र की कथा, भगीरथ द्वारा गंगा को पृथ्वी पर लाने का वृत्तान्त, राजा निमि के वंश का वर्णन, श्री परशुराम जी का चरित्र-चित्रण और विश्वामित्र, रन्तिदेव, दुष्यन्त और उसके पुत्र भरत के चरित्रों का भी चित्रण है। इसी स्कन्ध में इक्ष्वाकुवंशीय भगवान श्रीराम की लीलाओं का संक्षिप्त वर्णन है। यदुवंश के राजाओं का भी वर्णन है।

दशम स्कन्ध सबसे प्रमुख और विस्तृत है। भगवान श्रीकृष्ण की लीलाओं का इसमें विस्तृत वर्णन है। पूर्वार्ध में जन्म से लेकर अक्रूर जी के हस्तिनापुर से जाने तक का वर्णन है। उत्तरार्ध में जरासन्ध के आक्रमण से लेकर भगवान श्रीकृष्ण के लीला संवरण तक का वर्णन है।

एकादश स्कन्ध में मुख्य रूप से ज्ञान निरूपण किया गया है। शेष बचे पृथ्वी का भार उतारने के लिए यादवों के संहार के लिए उनको ब्राह्मणों का शापदान, श्री नारद जी द्वारा वसुदेव जी को नवयोगेश्वरों के माध्यम से भागवत धर्म का उपदेश आदि का वर्णन है। ब्रह्माजी द्वारा भगवान को स्वधाम पधारने की प्रार्थना, उद्धव जी का बदरीवन गमन आदि कथाएँ हैं।

बारहवें स्कन्ध में कलियुग के राजवंशों और कलियुग के धर्म का वर्णन है। अन्तिम उपदेश देते हुए शुकदेव जी ने परीक्षित को कहा-जैसे आग लकड़ी से अलग रहती है और लकड़ी की उत्पत्ति और विनाश से परे है ऐसे ही वह भी शरीरादि से सर्वथा भिन्न है। वह स्वयं ही सर्वाधिष्ठान ब्रह्म है। अत: वह आत्म-स्वरूप में स्थित हो जाएँ और इस बात की चिन्ता न करें कि तक्षक आयेगा और उन्हें काटेगा। परीक्षित ने शुकदेव जी की बड़े प्रेम से पूजा की और शुकदेव जी महात्माओं के साथ वहाँ से चले गये। परीक्षित ने आत्मा को परमात्मा में समाहित किया। तक्षक के काटने से पूर्व ही वह ब्रह्मलीन हो चुके थे। सबके सामने ही उनका शरीर विष से भस्म हो गया। क्रोधित हो परीक्षित के पुत्र जनमेजय ने तक्षक इत्यादि सर्पों को भस्म करने के लिए सर्प यज्ञ किया। महर्षि बृहस्पति ने यज्ञ बन्द करवाया। इसी स्कन्ध में मार्कण्डेय जी की तपस्या और माया दर्शन का विस्तृत वर्णन है। मार्कण्डेय ने माया दर्शन में प्रलय का दृश्य देखा।

इसी प्रकार यह श्रीमद्भागवत महापुराण व्यास जी के हृदय में भी संतोष प्रदान करने वाला सूत्र, ब्रह्मपूजा तथा ज्ञान, भक्ति, वैराग्य प्रदायक, श्रीकृष्ण लीला रसास्वादक, शैव, शाक्त, स्मार्त एवं शांकर सम्प्रदाय सहित चतु: सम्प्रदायी वैष्णवाचार्यों द्वारा प्रमाणित सर्वोपरि महापुराण माना गया है। [क०उ०]

श्रीवास पण्डित

श्रीवास पण्डित श्री चैतन्य महाप्रभु के परमप्रिय परिकर हैं। वे देवर्षि श्रीनारद जी के अवतार माने जाते हैं। गौड़ीय सम्प्रदाय के आराध्य पंचतत्त्व (श्री चैतन्य महाप्रभु, श्री नित्यानन्द प्रभु, श्री अद्वैत प्रभु, श्री गदाधर पण्डित एवं श्रीवास पण्डित) में अन्यतम हैं।

श्रीवास जी का आविर्भाव सन् 1470 के आसपास श्रीहट्ट (बंगलादेश) में हुआ है। इनके पिताजी का नाम श्री जलधर मिश्र था। जलधर मिश्र के चार पुत्रों में (श्रीवास, श्रीराम, श्रीपति व श्रीनिधि) में वह बड़े थे। नवद्वीप तथा श्रीहट्ट दोनों जगह इनके भवन थे। श्रीवास जी अनुजों के साथ नवद्वीप में निवास करते थे। इनकी पत्नी का नाम मालिनी था। इनका समस्त परिवार सेवकों सहित श्रीचैतन्य महाप्रभु के अनन्य भक्त थे। इनका भवन 'श्रीवास-अंगन' के नाम से विख्यात है, जहाँ महाप्रभु भक्तों के साथ संकीर्तन विलास करते थे। श्री गौरांग एवं नित्यानंद प्रभु के विविध विहारों का मुख्य स्थल श्रीवासांगन ही था। श्रीवास भवन में हुई अनेक श्रीचैतन्यदेव की लीलाओं और घटनाओं का विस्तृत वर्णन 'श्रीचैतन्य चरितामृत' एवं 'श्रीचैतन्य भागवत' ग्रंथों में प्राप्त होता है।

श्रीचैतन्य रूपी प्रेमकल्पवृक्ष की दो मुख्य शाखाओं के रूप में श्रीवास और श्रीराम पण्डित की गणना चैतन्य चरितामृत में हुई है। इनके सहोदर एवं दास-दासियों की गिनती उपशाखा के रूप में की गई है। श्रीध्यानचंद्र गोस्वामी

की पद्धति में (53, 72) श्रीवास पण्डित का ध्यान मंत्र तथा गायत्री उपलब्ध है। श्रीवास जी की वन्दना में 'श्रीवासाष्टकम्' नामक एक अष्टक भी मिलता है।

श्री गौरांग महाप्रभु के संन्यास के पश्चात् श्रीवास पण्डित जी सपरिवार नवद्वीप को त्याकर कुमार हट्ट (हालिशहर) में आकर बस गये। जब तक महाप्रभु प्रकट थे तब तक प्रतिवर्ष श्रीवास जी श्री गौरहरि के दर्शनाथ जगन्नाथपुरी जाते थे। महाप्रभु श्री चैतन्य देव की कृपा से इनके घर में भक्ति महारानी निरन्तर निवास करती थीं, साथ ही लक्ष्मी जी की भी कृपा वर्षित थी। श्रीवासांगन में महाप्रभु का नित्य निवास है, ऐसा चरितामृत में वर्णन हुआ है। [प्रे०दा०शा०]

षट् संदर्भ

षट् संदर्भ नामक ग्रंथ के रचयिता श्री जीव गोस्वामी, श्री रूप गोस्वामी व श्री सनातन गोस्वामी के लघु भ्राता अनुपम उपनाम बल्लभ के एकमात्र पुत्र थे। उनका जन्म वि.सं. 1568 में हुआ था। रूप सनातन के वैराग्य व भक्तिपूर्ण जीवन से वे अनुप्रेरित थे। उन्होंने काशी में सार्वभौम भट्टाचार्य के अनुज मधुसूदन वाचस्पति से वेदांत आदि विविध शास्त्रों का गहन अध्ययन किया। अपनी अप्रतिम प्रतिभा के बल पर वे अनेक शास्त्रों में पारंगत हो गए। बाल्यावस्था में ही विरक्त होकर वे घर से चल दिए। नवद्वीप में श्रीवास के घर पर उन्हें नित्यानंद प्रभु के दर्शन करने का सुयोग मिला। उस समय तक चैतन्य महाप्रभु का तिरोधान हो चुका था। नित्यानंद जी के आदेशानुसार वे संवत् 1598 के लगभग वृंदावन आ गए और रूप गोस्वामी से दीक्षा ली व शास्त्र अनुशीलन किया। वे जीवनपर्यंत भगवद् भक्ति और वैष्णव सिद्धांत ग्रंथों की रचना में प्रवृत्त रहे। रूप सनातन के सुयोग्य उत्तराधिकारी के रूप में वे ब्रज बंग के भक्तों का कुशलतापूर्वक नेतृत्व करते रहे। चैतन्य मत को दार्शनिक भित्ति पर प्रतिष्ठित करने का उन्होंने विद्वतापूर्ण कार्य किया। उन्होंने अनेक ग्रंथों व टीकाओं की रचना की। संवत् 1599 में उन्होंने श्रीराधादामोदर की सेवा प्रकट की। वृंदावन में गोविंददेव जी का भव्य मंदिर वि.सं. 1644 में उनकी विद्यमानता में पूर्ण हुआ। उनका देहावसान वि.सं. 1671 के लगभग वृंदावन में ही हुआ था। उनकी समाधि राधादामोदर मंदिर की दक्षिण दिशा में बनी हुई है।

षट् संदर्भ संस्कृत भाषा में रचित यह ग्रंथ वैष्णव भक्ति दर्शन का अनुपम शास्त्र है। यह पृथक-पृथक छह संदर्भों (खंडों) में विभक्त है। तत्त्व, भगवत, परमात्म, कृष्ण, भक्ति व प्रीति संदर्भ। ये सभी संदर्भ श्रीमद्भागवत की तत्त्व व्याख्या स्वरूप है, इसलिए इन्हें 'भागवत संदर्भ' कहा गया है। ये सभी संदर्भ (ग्रंथ) पृथक-पृथक रूप में प्रकाशित हैं। प्रथम चार संदर्भों में संबंध तत्त्व का विशद विवेचन है और पाँचवें भक्ति संदर्भ में अभिधेय तत्त्व (भक्ति) का तथा छठे प्रीति संदर्भ में प्रयोजन तत्त्व (प्रेम) का विस्तृत निरूपण है। इनमें उपनिषदों, ब्रह्म सूत्रों, पुराणों व स्मृति वचनों के विभिन्न उदाहरण समाविष्ट हैं।

बंगला भाषा में छहों संदर्भ बहुत पहले प्रकाशित हुए। नागरी अक्षरों में गोस्वामी श्री श्यामलाल सिद्धांत वाचस्पति द्वारा केवल मूल रूप में छहों संदर्भ सन् 1901 में प्रकाशित किए गए थे। श्रीपाद पुरीदास महाशय द्वारा संपादित व प्रकाशित इसका बंगला संस्करण प्रकाशित हुआ। इनसे मूल पाठ ग्रहण करते हुए नागरी भाषा में ये सभी छहों सदंर्भ पृथक-पृथक पुस्तक के रूप में मूल संस्कृत रूप, हिंदी अनुवाद तथा श्री श्यामदास (श्यामलाल हकीम) कृत गोपालतोषणी टीका (खड़ी बोली हिन्दी में विस्तृत व्याख्या) सहित प्रकाशित किए गए हैं।

ग्रंथ के मंगलाचरण में जीव गोस्वामी ने लिखा है-''भगवान का तत्त्व प्रकाशित करने के लिए रूप सनातन ने मुझे इस पुस्तिका को लिखने में प्रवृत्त किया। दाक्षिणात्य द्विज वंशज उनके किसी बांधव ने वृद्ध वैष्णवों द्वारा लिखित ग्रंथों का सार संग्रह करके एक ग्रंथ लिखा जो कहीं क्रमानुसार, कहीं बिना क्रम के व कहीं खंडित रूप में था। उस ग्रंथ को पर्यालोचित कर क्षुद्र जीव ने उसे क्रमानुसार लिखा है।'' वृद्ध वैष्णवों से जीव गोस्वामी का अभिप्राय श्रीमन्माध्वाचार्य, श्रीधर स्वामी आदि प्राचीन वैष्णवाचार्यों से है और दाक्षिणात्य भट्ट बंधु से उनका अभिप्राय श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी

से है जैसा कि बलदेव विद्याभूषण ने 'तत्त्व संदर्भ' की टीका में स्पष्ट लिखा है।

'तत्त्व संदर्भ' में मूलपाठ के साथ बलदेव विद्याभूषण कृत संस्कृत टीका भी प्रकाशित है। इसमें जीव गोस्वामी ने भागवत को पंचम वेद मानते हुए उसका श्रेष्ठत्व प्रतिपादित किया है। भागवत को सर्ववेदवेदांतार्थ निर्णायक सिद्ध करते हुए संबंध तत्त्व (परब्रह्म तत्त्व) के साथ जीव-जगत् के संबंध का निर्णय किया है। उन्होंने भागवत को व्यास द्वारा रचित ब्रह्मसूत्र का स्वरचित भाष्य मानते हुए पृथक रूप से भाष्य रचना के प्रयोजन को अस्वीकार किया है। इस ग्रंथ के प्रकाशित संस्करण में कुल 145 श्लोक हैं। 'भगवत संदर्भ' में परब्रह्म के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। अद्वय ज्ञान तत्त्व परब्रह्म स्वयं श्रीकृष्ण की स्वरूप शक्ति के विकास-क्रमानुसार उनके अनंत रूपों में तीन मुख्य हैं- ब्रह्म, परमात्मा और भगवान। भगवान में स्वरूप शक्ति का पूर्णतम विकास है। जिनमें ऐश्वर्य, माधुर्य और सौंदर्य की पूर्ण अभिव्यक्ति है। उनके अनेक रूपों में श्रीकृष्ण रूप सर्वश्रेष्ठ है, वे स्वयं भगवान हैं। अन्य भगवद् स्वरूप उनके अंश और कला हैं। इस संदर्भ (ग्रंथ) में भगवान के स्वरूप तत्त्व, उनके धाम व विविध शक्तियों व पार्षदों का सूक्ष्म विवेचन किया गया है।

'परमात्म संदर्भ' में परमात्मा के जीव और प्रकृति के साथ संबंध पर प्रकाश डाला गया है। परमात्मा परब्रह्म का वह अंश है जिसके द्वारा वह अनंत कोटि ब्रह्मांड की सृष्टि व संचालन करता है। जीव और जगत के ब्रह्म से अचिन्त्य भेदाभेद संबंध पर भी प्रकाश डाला गया है जो चैतन्य संप्रदाय का प्रमुख दार्शनिक सिद्धांत है। 'श्रीकृष्ण संदर्भ' में कृष्ण के स्वरूप, धाम, परिकर, लीलादि का विस्तृत वर्णन किया गया है। कृष्ण अवतारी हैं, अन्य अवतार उनके अंश हैं। भगवद् धाम मायातीत है। भगवान की प्रकट और अप्रकट दो प्रकार की लीलाएँ हैं। नित्य सिद्ध और साधनसिद्ध दो प्रकार के परिकर हैं। स्वरूप शक्ति की तीन वृत्तियों में सर्वश्रेष्ठ आह्लादिनी की परम घनीभूत मूर्ति हैं राधा। रसस्वरूप श्रीकृष्ण माधुर्य स्वरूप हैं, राधाकृष्ण का प्रेम माधुर्य असीम है।

'भक्ति संदर्भ' में भक्ति के स्वरूप, नवधा भक्ति के प्रकार, अंग व सोपान आदि का वर्णन किया गया है। भक्ति कर्म, ज्ञान और योग से श्रेष्ठ है। वह साधन भी है और साध्य भी। वह भगवद् प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ मार्ग है। भक्ति दो प्रकार की है-वैधी और रागानुगा। ब्रज सुंदरियों की रागात्मिका भक्ति श्रेष्ठ है। 'प्रीति संदर्भ' में भगवद् प्राप्ति के प्रयोजन अर्थात् प्रेम तत्त्व का अद्भुत चित्रण है। भगवद् प्रीति परम पुरुषार्थ है। प्रीति के विभिन्न स्तरों—रति, प्रेम, प्रणय, मान, स्नेह, राग, अनुराग और महाभाव का सूक्ष्म व सरस विवेचन किया गया है। प्रीत के चरमोत्कर्ष की अवस्था महाभाव है जिसकी साकार स्वरूप श्री राधा हैं। शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर रस उत्तरोत्तर श्रेष्ठ है। श्रीकृष्ण-राधा के प्रेम में मधुर रस उज्ज्वल रस की अभिव्यक्ति होती है। [उ०गो०]

स

संकल्पकल्पद्रुम

इस काव्य ग्रंथ की रचना श्री जीव गोस्वामी के द्वारा हुई है। यह चार भागों—जन्मलीला, नित्यलीला, सर्वर्तुलीला तथा फल निष्पत्ति से भगवान कृष्ण की लीलाओं का प्रतिपादन करता है। प्रथम में प्रभु कृष्ण के जन्म से प्रारम्भ करके अन्य वृन्दावनीय लीलाओं का वर्णन है। द्वितीय ब्रजवासियों के बीच सम्पादित भगवान् कृष्ण की नित्य लीलाओं से सम्बद्ध है। यह इस काव्य-कृति का सबसे बड़ा भाग है। वृन्दावन दिव्य ब्रज का प्रतिरूप है। यहाँ की गाएँ, वत्स-वत्साएँ, गोप, गोपिकाएँ, श्रीकृष्ण के मित्र एवं सम्बन्धी सब भगवान कृष्ण की प्रकट लीला के सहयोगी हैं। इन सबका स्वरूप अलौकिक है। राधारानी प्रभु की परम वल्लभा हैं। इनके साथ परमात्मा कृष्ण की मधुर लीला अनन्त काल से चल रही है। गोपिकाओं के साथ मदनमोहन के विविध केलियों, गोचारण और विविध आमोद-प्रमोद का चारु चित्रण यहाँ हुआ है। सख्य तथा वात्सल्य रूप में जिस अनुराग की चर्चा हुई है, उसके आस्पद क्रमशः गोप और नन्द यशोदा हैं। विभिन्न ऋतुओं पर संश्रित सर्वर्तुलीला में भगवान कृष्ण एवं भगवती राधिका के मधुर वार्तालाप का वर्णन हुआ है। इसमें गोपिकाओं के साथ सुन्दर मनोविनोद को भी यहाँ स्थान मिला है। फल निष्पत्ति में राधाकृष्ण युगल मूर्ति की पूजा उपासना के वैशिष्ट्य का ज्ञापन है। [क०उ०]

संगीत माधव

यह जयदेव कृत 'गीतगोविन्द' जैसा अनूठा गीत काव्य ग्रंथ है। गीत-गोविन्द में जहाँ 12 सर्ग हैं, वहाँ इसमें 16 सर्ग हैं। इसके गीतों की संख्या 139 है, जो विभिन्न रागों में कथित है। इसमें गीतगोविन्द की सी कोमलकांत पदावली, उसी की-सी स्वर-लहरी और संगीतात्मकता तथा उस जैसी ही राधाकृष्ण के उत्तान शृंगार की उन्मादकारिणी केलि क्रीड़ाओं का गायन हुआ है। [क०उ०]

संदीपनी मुनि

संदीपनी वह है, जो संपूर्ण जागृति का कारक है। 64 विद्याओं और 16 कलाओं के ज्ञाता होने के कारण संदीपनी का नाम उनके व्यक्तित्त्व को परिभाषित करने वाला था। महाभारत के अनुसार वह कृष्ण के गुरु थे और उनका शिक्षा केंद्र अवन्तिपुर (वर्तमान उज्जैन) में गोमती नदी के किनारे बसा था। श्रीमद्भागवत, महाभारत तथा अन्य कई पुराणों में इस जगह के बारे बताया जाता है। कहा जाता है कि श्रीकृष्ण ने कंस का वध करने पश्चात मथुरा का राज्य अपने नाना उग्रसेन को सौंप दिया था। इसके उपरांत वसुदेव और देवकी ने कृष्ण को यज्ञोपवीत संस्कार और शिक्षा के लिए उज्जैन में संदीपनी ऋषि के आश्रम में भेज दिया। श्रीकृष्ण ने यहीं रहकर 64 विद्याओं और 16 कलाओं का ज्ञान अर्जित किया था। उनके साथ उनके भाई बलदाऊ ने भी गुरु संदीपनी से शिक्षा ग्रहण की थी।

संदीपनी को द्वापरकालीन शिक्षा के उच्चतम मूल्यों का प्रतीक कहा जा सकता है। पुराकथाओं के अनुसार गुरु संदीपनी ने कृष्ण को 18 दिनों में 18 पुराण, 4 दिन में 4 वेद, 6 दिन में 6 शास्त्र, 16 दिन में 16 कलाएँ, 20 दिन में गीता का ज्ञान प्रदान किया, साथ ही साथ गुरु दक्षिणा और गुरुसेवा के संस्कार भी प्रदान किए। शिक्षा पूर्ण हो जाने के

बाद महर्षि संदीपनी ने श्रीकृष्ण से कहा कि मेरे पास जो भी ज्ञान था वो तो मैं दे चुका हूँ। अब तुम्हारी शिक्षा पूर्ण होती है, जाओ जीवन में आगे बढ़ो और जगत का कल्याण करो।

कृष्ण ने गुरु को प्रणाम किया और गुरु दक्षिणा देने की इच्छा प्रकट की। गुरु बोले शिक्षा का कोई मूल्य नहीं होता कृष्ण! गुरु शिष्य के मध्य पशोपेश की स्थिति को देखकर गुरुमाता ने कृष्ण से गुरु दक्षिणा में अपना पुत्र वापस माँग लिया, जिसकी मृत्यु प्रभास क्षेत्र में जल में डूबकर हो गई थी। गुरुमाता की आज्ञा का पालन करते हुए कृष्ण ने समुद्र में मौजूद शंखासुर नामक एक राक्षस का पेट चीरकर एक शंख निकाला, जिसे पांचजन्य कहा जाता है। इसके बाद वे यमराज के पास गए और संदीपनी मुनि का पुत्र वापस लाकर गुरुमाता को सौंप दिया। इस कथा का निहितार्थ गुरु और शिष्य के प्रेम और अपने-अपने कर्तव्यों के प्रति निष्ठा को प्रकट करना है।

सुरम्य प्राकृतिक छटा से समृद्ध इस आश्रम के पास एक पत्थर पर आज भी 1 से 100 तक गिनती लिखी हैं। ऐसा माना जाता है कि यह गिनती गुरु संदीपनी द्वारा लिखी गई थीं। इस स्थान पर एक कुंड भी है जिसे गोमती कुंड कहा जाता है। इसी गोमती कुंड के पास एक स्थान है अंकपात। कहा जाता है कि यहाँ पर कृष्ण अपनी पाटी (भोजपत्र) साफ किया करते थे। पाटी से झरते अक्षरों के कारण ही इस स्थान को अंकपात नाम मिला।

यहाँ गुरु संदीपनी, कृष्ण, बलराम एवं सुदामा की मूर्तियाँ स्थापित हैं। आश्रम में जहाँ गुरु संदीपनी बैठते थे वहाँ उनकी प्रतिमा और चरण पादुकाएँ रखी हैं। जहाँ कृष्ण बैठकर विद्यार्जन किया करते थे, वहाँ उनकी अध्ययनरत प्रतिमा विराजमान है। कृष्ण की ऐसी प्रतिमा अन्यत्र कहीं नहीं मिलती। आश्रम परिसर में स्थित श्री सर्वेश्वर महादेव मंदिर में 6000 वर्ष पुराना शिवलिंग स्थापित है। ऐसा माना जाता है कि संदीपनी ने अपने तपोबल से बिल्व पत्र द्वारा इस शिवलिंग को प्रकट किया था। इस शिवलिंग के सामने खड़े हुए नंदी की दुर्लभ मूर्ति भी स्थापित है। [उ०श्री०]

संन्यासनिर्णय:

इसमें बाईस श्लोक हैं। इस ग्रंथ की पुष्टिमार्ग की साधना पद्धति का स्वरूप स्पष्ट करने में विशेष उपयोगिता है। इसमें वल्लभ ने पुष्टिमार्गीय संन्यास के स्वरूप पर प्रकाश डाला है। वास्तविक संन्यास तो मन का संन्यास है जो भगवान में अनन्य आसक्ति होने पर स्वत: ही सिद्ध हो जाता है। इसके लिए किसी बाह्य क्रिया अनुष्ठान या शास्त्रीय औपचारिकता की आवश्यकता नहीं होती। पुष्टिमार्ग में इसी संन्यास की उपयोगिता है। [क०उ०]

संस्कार

गौतम धर्म सूत्र के अनुसार -संस्कार उसे कहते हैं, जिससे दोष हटते हैं और गुणों की वृद्धि होती है।

शंकराचार्य के अनुसार-**संस्कारो हि नाम संस्कार्यस्य गुणाधानेन वा स्याद् दोषापनयनेन वा।**

-ब्रह्मसूत्र भाष्य 1/1/4

अर्थात् व्यक्ति में गुणों का आरोपण करने अथवा उसके दोषों को दूर करने के लिए, जो कर्म किया जाता है उसे संस्कार कहते हैं।

महर्षि चरक के मतानुसार- **संस्कारो हि गुणान्तराधान मुच्येत।** अर्थात् व्यक्ति या वस्तु में नये गुणों का आधान (जमा करने, समाने) करने का नाम संस्कार है।

संस्कार विधि में लिखा है-**जन्मना जायते शूद्र: संस्काराद् द्विज उच्यते।**

अर्थात् जन्म से सभी शूद्र होते हैं, लेकिन संस्कारों द्वारा व्यक्ति को द्विज बनाया जाता है।

मीमांसा दर्शनकार के मतानुसार-**कर्मबीजं संस्कार:।** अर्थात् संस्कार ही कर्म का बीज है तथा **'तन्निमित्ता'** अर्थात् वही सृष्टि आदि का कारण है।

संस्कारों की संख्या अलग-अलग विद्वानों ने भिन्न-भिन्न बतायी है। गौतम स्मृति में 40 संस्कारों का उल्लेख किया गया है। चत्वारिंशत्संस्कारै: संस्कृत:। कहीं-कहीं 48 संस्कारों का भी उल्लेख मिलता है। महर्षि अंगिरा ने 25 संस्कार बताये हैं। दस कर्म पद्धति के मतानुसार संस्कारों की संख्या 10 मानी गयी है, जबकि महर्षि वेदव्यास ने अपने ग्रन्थ 'व्यास स्मृति' में प्रमुख सोलह (षोड्श) संस्कारों का उल्लेख किया है-

गर्भाधानं पुंसवनं सीमांतो जात कर्म च।
नामाक्रियानिष्क्रमणेन्नशनं
कर्णवेधो व्रतादेशो वेदारम्भक्रिया विधि:।
केशांत: स्नानमुद्वा हो विवाहाग्निपगृह:।।
त्रेताग्निसंग्रहश्चेति संस्कारा: षोडश स्मृत:।

व्यास स्मृति1/13-15

वेद का कर्म मीमांशा दर्शन 16 संस्कारों को ही मान्यता प्रदान करता है।

आधुनिक विद्वानों ने इन्हें सरल और कम खर्चीला बनाने का प्रयास किया है जिससे अधिक से अधिक लोग इनसे लाभ उठा सकें। इनमें प्रथम 8 संस्कार प्रवृत्ति मार्ग में एवं शेष 8 मुक्ति मार्ग के लिए उपयोगी हैं।

भारतीय संस्कृति का मूलभूत उद्देश्य श्रेष्ठ संस्कारवान मानव का निर्माण करना है। सामाजिक दृष्टि से सुख-समृद्धि और भौतिक ऐश्वर्य आवश्यक है, किन्तु मनुष्य जीवन केवल खाने-पीने और मौज-मस्ती करने के लिए ही नहीं है। हमारे ऋषियों ने भौतिक उन्नति को गौण और आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्ति को जीवन का मुख्य उद्देश्य बताया है। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए स्वयं को तैयार करने की क्रिया का नाम ही संस्कार है। संस्कारों से व्यक्ति के मन के विकार नष्ट होते हैं तथा व्यक्तित्व प्रभावशाली और जीवन आनन्दपूर्ण बनता है।

जिस श्रौत स्मार्त विधि से पुरुष को संस्कृत किया जाए, वह संस्कार कहलाता है। अत: वह विधि जिस दिन सम्पन्न की जाए, वह दिन शुद्धि भी लक्षणा से संस्कार शब्द से यहाँ गृहीत है। सोलह संस्कार प्रसिद्ध हैं। लेकिन स्मृतियों में 48 तक संस्कार बताये गए हैं। आज सोलह में से भी बहुत से लुप्त होते जा रहे हैं।

48 संस्कारों का उल्लेख इस प्रकार है-1. गर्भाधान, 2. पुंसवन, 3. सीमांतोन्नयन, 4. जातकर्म , 5. नामकरण, 6. अन्नप्राशन, 7.मुण्डन, 8. उपनयन, 9.,10.,12., चार पूर्वोक्त महानाम्नी आदि वेद व्रत, 13. प्रथम पत्नी संयोग, 14,15,16,17,18 पाँच यज्ञों का विशेष अनुष्ठान 19. अष्टका 20. पार्वण श्राद्ध 21. श्रावणी, 22. आग्रहायन 23. चैत्री 24. आश्वयुजी 25. सप्तपाक संस्था 26. अग्न्याधान 27. दर्शपौर्णमास क्रिया 28. चातुर्मास्य, 29. अग्रयणेष्टि, 30. विरुद्ध पशबन्ध, 31. सौत्रामणि, 32. सप्तहवि, 33. यज्ञ संस्था, 34. वाजपेयी, 35.अतिराम, 36. सप्तरोग संस्था आदि में मुख्य प्रसिद्ध संस्कार मिलाने से 48 बनते हैं।

आजकल 16 संस्कार इस प्रकार हैं-1. गर्भाधान, 2. पुंसवन, 3. सीमांतोन्नयन, 4. जातकर्म, 5. नामकरण, 6. निष्क्रमण 7.अन्नप्राशन, 8. चूड़ाकर्म, 9. कर्णबेध, 10. वेदारम्भ 11. यज्ञोपवीत, 12. समापवर्तन, 13. विवाह, 14. वानप्रस्थ, 15. संन्यास, 16.अन्त्येष्टि।

गर्भाधान संस्कार-दाम्पत्य जीवन का सर्वोच्च उद्देश्य है-श्रेष्ठ गुणों वाली स्वस्थ, ओजस्वी, चरित्रवान और यशस्वी सन्तान प्राप्त करना। श्रेष्ठ सन्तान की प्राप्ति के लिए विधि-विधान से किया गया सम्भोग ही 'गर्भाधान संस्कार' कहा जाता है।

आहारचारचेष्टाभिर्यादृशोभिः समान्वितौ।
स्त्रीपुंसौ समुपेयातां तयोः पुत्रोऽपितादृशः।।

-सुश्रुत संहिता/ शारीर 2/46/50

अर्थात् स्त्री और पुरुष जैसे आहार, व्यवहार तथा चेष्टा से संयुक्त होकर समागम करते हैं, उनका पुत्र भी वैसे ही स्वभाव का होता है।

पुंसवन संस्कार- गर्भ जब 2-3 माह का हो जाता है, तब गर्भस्थ शिशु के विकास के लिए पुंसवन संस्कार किया जाता है। गर्भस्थ शिशु पर माता-पिता के मन और स्वभाव का गहरा प्रभाव पड़ता है। अतः माता को मानसिक रूप से गर्भस्थ शिशु की भली प्रकार से देखभाल करने योग्य बनाने के लिए इस संस्कार का विशेष महत्त्व है।

सीमान्तोन्नयन संस्कार-यह संस्कार गर्भ के चौथे, छठे या आठवें मास में किया जाता है, जिसका उद्देश्य गर्भ की शुद्धि और माता को श्रेष्ठ चिन्तन करने की प्रेरणा प्रदान करना होता है, क्योंकि इस समय शिशु शिक्षण योग्य बनने लगता है। उसके मन और बुद्धि में नई चेतना शक्ति जागृत होने लगती है। ऐसे में जो प्रभावशाली अच्छे संस्कार डाले जाते हैं, उनका शिशु के मन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है।

जातकर्म संस्कार-प्रसव के तुरन्त बाद नाल छेदने से पहले जातकर्म होना चाहिए। यदि ऐसी व्यवस्था न हो सके, तो नामकरण के दिन पहले जातकर्म करके तब नामकरण करें। यह संस्कार प्रसूता और शिशु की मंगल कामना हेतु किया जाता है।

नामकरण संस्कार- यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण संस्कार है। नामकरण संस्कार से आयु तथा तेज की वृद्धि होती है एवं लौकिक व्यवहार में नाम की प्रसिद्धि से व्यक्ति का अलग अस्तित्व बनता है। इस संस्कार में बच्चे को शहद चटाकर शालीनतापूर्वक प्रातः बेला में उगते सूर्य के दर्शन कराये जाते हैं और कामना की जाती है कि बच्चा सूर्य की प्रखरता-तेजस्विता धारण करे (इसके साथ ही भूमि को नमन कर देव संस्कृति के प्रति श्रद्धापूर्वक समर्पण किया जाता है। शिशु का नया नाम लेकर सबके द्वारा उसके चिरंजीवी, धर्मशील, स्वास्थ्य एवं समृद्ध होने की कामना की जाती है। नामकरण संस्कार सूतक की निवृत्ति के पश्चात शुभ मुहूर्त में एक वर्ष तक कभी भी किया जा सकता है।

निष्क्रमण संस्कार-जन्म के पश्चात् बच्चे को पहली बार जब घर से बाहर निकाला जाता है, जैसे माता-पिता के यात्रादि पर जाने से पूर्व निष्क्रमण संस्कार किया जाता है। सामान्यतः चौथे मास में निष्क्रमण संस्कार किया जाना चाहिए, किन्तु व्यवहार में सम्भव न हो पाने के कारण आवश्यकतानुसार शुभ मुहूर्त में किया जाना चाहिए।

अन्नप्राशन संस्कार- यह भी एक महत्त्वपूर्ण संस्कार है। छह-सात माह के पश्चात् जब शिशु के दन्त निकलने लगते हैं तब पाचन क्रिया प्रबल होने लगती है। जैसे ही अन्न खाना वह प्रारम्भ करता है, उसी के अनुरूप उसका तन-मन बनता है। शिशु को प्रथम बार शुभ मुहूर्त में यज्ञादि कर जब अन्न खिलाया जाता है, तब उसे 'अन्नप्राशन संस्कार' कहा जाता है। देवताओं का पूजन करने के पश्चात् माता-पिता चाँदी की चम्मच से खीर आदि पवित्र और पुष्टि कारक अन्न शिशु को चटाते हैं और अथर्ववेद का 8/2/18 मंत्र बोलते हैं।

शिवो ते स्तां व्रीहियवावबलासावदोमधौ।
एतौ यक्ष्मं वि बाधेते एतौ मुंचतो अंहसः।।

अर्थात् हे बालक! जौ और चावल तुम्हारे लिए बलदायक तथा पुष्टिकारक हों, क्योंकि ये दोनों वस्तुएँ यक्ष्मानाशक हैं तथा देवान्न होने से पापनाशक हैं।

चूड़ाकर्म (मुण्डन) संस्कार- इस संस्कार में शिशु के सिर के बाल पहली बार उस्तरे से उतारे जाते हैं। जन्म के पश्चात् प्रथम वर्ष के अन्त अथवा तीसरे वर्ष की समाप्ति के पूर्व मुण्डन संस्कार करना आमतौर पर प्रचलित है। वेदों में चूड़ाकर्म संस्कार का विस्तार से उल्लेख मिलता है। यजुर्वेद में लिखा है-

नि वर्त्तयाम्या युषेऽन्नधाय प्रजननाय।
रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय।।

यजुर्वेद 3/63

अर्थात् हे बालक! मैं तेरी दीर्घायु के लिए, तुझे अन्न ग्रहण करने में समर्थ बनाने के लिए, उत्पादन शक्ति प्राप्ति के लिए, ऐश्वर्य वृद्धि के लिए, सुन्दर सन्तान के लिए, बल एवं पराक्रम प्राप्ति के योग्य होने के लिए तेरा चूड़ाकर्म (मुण्डन) संस्कार करता हूँ। यह शुभ मुहूर्त में विधि-विधान से समारोहपूर्वक किया जाता है।

कर्णबेध संस्कार-इस संस्कार को 3, 5 आदि विषम वर्षों में या कुल की परम्परा के अनुसार उचित आयु में किया जाता है। इसे स्त्री-पुरुषों में पूर्ण स्त्रीत्व एवं पुरुष की प्राप्ति के उद्देश्य से कराया जाता है।

शुभ समय में पवित्र स्थान पर बैठकर देवताओं का पूजन करने के पश्चात् सूर्य के सम्मुख बालक या बालिका के कानों में निम्न मंत्र द्वारा अभिमंत्रित करना चाहिए-

भद्रं कर्णेभिः श्रुणयाम देवाभद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवां सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः।।

यजुर्वेद 25/2।

इसके बाद बालक के दाहिने कान में पहले और बायें कान में बाद में सुई से छेद करें। उनमें कुण्डल आदि पहनाएँ। बालिका के पहले बायें कान में, फिर दाहिने कान में छेद करके और बायें नाक में भी छेद करके आभूषण पहनाने का विधान है।

वेदारम्भ संस्कार-इसे विद्यारम्भ संस्कार भी कहते हैं। गुरुजनों से वेदों और उपनिषदों का अध्ययन कर तत्त्वज्ञान की प्राप्ति करना ही इस संस्कार का परम प्रयोजन है। सामान्यतः 5 वर्ष के बालक-बालिका का मस्तिष्क शिक्षा ग्रहण करने योग्य हो जाता है तब विघ्नहर्ता गणेश एवं विद्या की देवी सरस्वती की शुभ मुहूर्त में पूजा-अर्चना कर गुरु के पास शिक्षा ग्रहण करने के लिए भेजा जाता है।

यज्ञोपवीत (उपनयन) संस्कार-यज्ञोपवीत संस्कार द्वारा बुरे संस्कारों का शमन करके अच्छे संस्कारों को स्थायी बनाया जाता है। इसे द्विज अर्थात दूसरा जन्म भी कहते हैं। यज्ञोपवीत होने के बाद ही बालक को धार्मिक कार्य करने का अधिकार मिलता है। व्यक्ति को सर्वविधि यज्ञ करने का अधिकार प्राप्त हो जाना 'यज्ञोपवीत' है।

समापवर्तन (उपदेश) संस्कार-ब्रह्मचर्य व्रत के समापन व विद्यार्थी जीवन के अन्त के सूचक के रूप में समापवर्तन (उपदेश) संस्कार मनाया जाता है, जो साधारणतया 25 वर्ष की आयु में होता है। इस संस्कार के माध्यम से गुरु शिष्य को इन्द्रिय निग्रह, दान और मानव कल्याण की शिक्षा देता है।

विवाह संस्कार- हिन्दू संस्कृति में विवाह कभी न टूटने वाला एक परम पवित्र धार्मिक संस्कार है, यज्ञ है। विवाह में प्राणी (वर-वधू) अपने अलग अस्तित्वों को समाप्त कर एक सम्मिलित इकाई का निर्माण करते हैं। विवाह दो आत्माओं का पवित्र बन्धन है, जिसका उद्देश्य इन्द्रिय सुख भोग नहीं, बल्कि पुत्रोत्पादन, सन्तानोत्पादन कर एक

परिवार की नींव डालना है। मनुस्मृति 3/21 के अनुसार विवाह-ब्रह्म, देव, आर्ष, प्राजापत्य, असुर, गन्धर्व, राक्षस और पैशाच 8 प्रकार के होते हैं। उनमें से प्रथम 4 श्रेष्ठ और अन्तिम 4 निकृष्ट माने जाते हैं।

वानप्रस्थ संस्कार-चार आश्रमों में ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास में वानप्रस्थ को सबसे महत्त्वपूर्ण माना जाता है। गृहस्थ आश्रम का अनुभव लेने के बाद जब 50 वर्ष से ऊपर हो जाएँ तथा सन्तान की भी सन्तान हो जाए, तब परिवार का उत्तरदायित्व समर्थ बच्चों पर डालकर वानप्रस्थ संस्कार करने की प्रथा प्रचलित है। इस संस्कार का मुख्य उद्देश्य सेवा धर्म ही है। जिस देश, धर्म, जाति तथा समाज में हम उत्पन्न हुए हैं, उसकी सेवा करने, उसके ऋण से मुक्त होने का अवसर भी वानप्रस्थ में ही मिलता है।

संन्यास आश्रम संस्कार-भारतीय संस्कृति में संन्यास आश्रम का बहुत अधिक महत्त्व है। जीवन के चार पुरुषार्थ-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से मोक्ष प्राप्ति का साधन संन्यास आश्रम ही है। मोक्ष का अर्थ है-समस्त कामनाओं का समाप्त हो जाना और कामनाओं से मुक्त होने के लिए जो साधन या अभ्यास किया जाता है, उसी को 'संन्यास' कहते हैं।

भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भागवत गीता के निष्काम कर्मयोग और सांख्य योग अध्यायों में विस्तार से प्रकाश डाला है। उनका कहना है कि जो कर्म के फल को न चाहकर करने योग्य कर्म करता है, वही संन्यासी और योगी है।

अन्त्येष्टि संस्कार-मनुष्य के प्राण निकल जाने पर मृत शरीर की अन्त्येष्टि का विधान हमारे ऋषियों ने इसलिए बनाया, ताकि सभी स्वजन, सम्बन्धी, परिचित अपनी अन्तिम विदाई देने आएँ और इससे उन्हें जीवन का उद्देश्य समझने का मौका मिले। साथ ही यह भी अनुभव हो कि भविष्य में उन्हें भी शरीर छोड़ना है।

चूड़ामण्युपनिषद् में कहा गया है कि ब्रह्म से स्वयं प्रकाश रूप आत्मा की उत्पत्ति हुई है। आत्मा से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। इन पाँच तत्त्वों से मिलकर ही मनुष्य शरीर की रचना हुई है। हिन्दू अन्त्येष्टि संस्कार में मृत शरीर को अग्नि में समर्पित करके आकाश, वायु, जल, अग्नि और भूमि इन्हीं पंच तत्त्वों में पुनः मिला दिया जाता है। [दे०कु०वा०]

सकट चौथ

माघ मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी को सकट चौथ कहते हैं। इस दिन गणपति की पूजा होती है। यह व्रत संकटों को नष्ट करने वाला और सभी अभिलाषाओं की पूर्ति करने वाला है। इस दिन गणेश पूजा के साथ चन्द्रमा और रोहिणी की भी पूजा की जाती है। ब्रज के गणेश मंदिरों में यह उत्सव अत्यधिक धूमधाम से मनाया जाता है। इस दिन गणेशजी का महाभिषेक किया जाता है। अभिषेक के पश्चात गणेश जी को चोला चढ़ाया जाता है तथा तिल के लड्डू का भोग लगाया जाता है। इस अवसर पर महाआरती का आयोजन किया जाता है। [प्र०श०]

सखी भाव

'सखी-भाव' प्रेम लक्षणा भक्ति के संदर्भ में उपासक की उस सर्वोच्च उपासनात्मक मनोभूमि का नाम है जिसका विकास 'गोपीभाव' को परिष्कृत किये जाने के क्रम में मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन के दौर में हुआ। हम जानते हैं कि प्रेम लक्षणा भक्ति जिस कान्त-भाव का उपासनात्मक रूप है, उसका आदर्श 'नारद भक्ति सूत्र' की ब्रज गोपियाँ थीं-यथा ब्रजगोपिकानाम्। मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन के दौरान भक्ति के आचार्यों के एक वर्ग में पुराणों में वर्णित कृष्ण-प्रियाओं के भेदोपभेद का संकलन कर उन्हें तात्त्विक आधार प्रदान किया। श्रीरूप गोस्वामी ने 'उज्ज्वल नीलमणि' के हरिवल्लभ प्रकरण में इन कृष्ण-प्रियाओं के दो प्रधान भेद किए हैं-स्वकीया और परकीया। रुक्मिण्यादि श्रीकृष्ण की पाणिगृहीताओं को स्वकीया एवं अन्य को परकीया माना। कहने की आवश्यकता नहीं कि जिन्हें यहाँ परकीया कहा जा रहा है-वे ब्रज गोपियाँ ही हैं और श्रीराधा इन्हीं में से एक हैं। आगे इन्हें गोस्वामी जी ने पुनः कन्यका

(अविवाहित) और पैराढ़ा (अन्यों को विवाहित) इन दो वर्गों में रखा है। ध्यातव्य है कि इन परकीयाओं की सामान्य मनोभूमिका का संकेत करते हुए श्री रूप गोस्वामी ने 'उज्ज्वल नीलमणि' में इन्हें 'श्रीकृष्ण संभोग लालसायुक्ता' कहा है। इस तरह, इनकी दृष्टि में श्रीकृष्ण केवल 'राधारमण' ही नहीं हैं, वे 'गोपी-रमण' भी हैं। श्री वल्लभाचार्य ने जिन गोपियों को अनन्य पूर्वा और अन्यपूर्वा कहा है, वे इन्हीं स्वकीया और परकीया के अवान्तर नाम हैं। जिनका मूल-मनोगत पूर्व में संकेतित गोपियों से सर्वथा अभिन्न है। इस तरह 'कृष्ण संभोगलालसा' से भरी ये गोपियाँ 'गोपीभाव' की अधिष्ठात्री हैं और इनका श्रीकृष्ण के साथ विहार, ब्रजविहार है। चैतन्य चरितामृत में इस 'लालसा' को गोपियों का कृष्ण-सुख हेतु किया गया व्यवहार कहा गया है।

भक्तिकाल के जिन आचार्यों ने 'गोपीतत्त्व' का परिष्कार कर उसमें से 'सखी-तत्त्व' का स्वरूप निर्धारित करने का काम किया, उनमें एक हैं-हित हरिवंश जी। डॉ. शीला ग्रोबर ने लिखा है-'हित हरिवंश जी ने ब्रजलीला और निकुंजलीला को मिलाकर गाया है, इनके राधाकृष्ण किसी भी रूप में ब्रज के राधाकृष्ण से भिन्न नहीं हैं।' और श्री ललिताचरण गोस्वामी का मत है कि 'श्रीहित हरिवंश जी महाराज की रचनाओं में श्रीमद्भागवत में वर्णित रास से लेकर नित्य विहार की उपासना तक का विकासक्रम दिखलाई देता है। श्री स्वामी हरिदास जी की वाणी में नित्यविहार का तैयार रूप सामने आता है।' ध्यातव्य है कि इस नित्यविहार का विधायन, अवलोकन और गायन हरिदासी सम्प्रदाय के सखी-भाव का प्राण-तत्त्व है।

वस्तुतः श्रीराधासुधानिधि और श्रीहित चौरासी में श्रीराधा-प्राधान्य होते हुए भी, न केवल पौराणिक ब्रजलीलाओं के संदर्भों की बहुलता है अपितु 'परिरम्भन चुम्बन आलिंगन सकल जुवति जन पायौ' भी है। इस तरह श्रीहित हरिवंश जी की वाणी में गोपीभाव और सखीभाव दोनों की युगपत उपस्थिति दृष्टिगोचर होती है जिसे डॉ. शरणबिहारी गोस्वामी ने 'किंकरी भाव' कहा है।

यही नहीं गोस्वामी जी ने उपासना के मूल दृष्टिकोण, उपास्य की लीला-भूमि, उपास्य के स्वरूप, ब्रज और निकुंज की लीलाओं की भिन्नता; श्रीराधा के सम्बन्ध में स्वकीया और परकीया की धारणा और उपासक की 'उपासनात्मक' मनोभूमिका के संदर्भ में गोपीभाव और सखीभाव के पार्थक्य को भी सूक्ष्मता से रेखांकित किया है। गोस्वामी जी के अनुसार गोपीभाव तात्त्विक दृष्टि से पौराणिक तत्त्व है जबकि सखी-तत्त्व किसी भी पुराण में वर्णित नहीं है। इसीलिए सखी भाव के उपासकों ने इस सखी भाव के संदर्भ में पौराणिक आधार को उनके द्वारा की गयी गोपीतत्त्व की तमाम दार्शनिक व्याख्याओं सहित आत्यन्तिक रूप से परित्याग कर दिया है। उपास्य की लीला-भूमि की दृष्टि से गोपीभाव का क्षेत्र ब्रज और गोलोक है जबकि सखी भावोपासना में लीला का क्षेत्र नित्य वृन्दावन है। गोपीभाव में श्रीकृष्ण के साथ श्रीराधा और गोपियों का प्रेम संयोग-वियोग अथवा मिलन और विरह की भूमिका के साथ उत्कर्ष को प्राप्त होता है जबकि सखी-भाव में केवल राधाकृष्ण का नित्य संयोग ही स्वीकृत है। यहाँ पलकान्तर ही कल्पान्तर की व्याकुलता उत्पन्न कर देता है, फिर स्थूल विरह की समवाई का तो प्रश्न ही नहीं उठता। गोपीभाव में श्रीराधा को या तो श्रीकृष्ण की स्वकीया माना गया है या परकीया जबकि सखी-भाव में श्रीराधा जन्म, मरण, काल, कर्म, स्वभाव, गुण आदि से परे नित्य प्रेम की विग्रहवान उपस्थिति है। श्रीकृष्ण के साथ उनका और केवल उन्हीं का ऐसा नित्य दाम्पत्य है जिसे 'स्वकीया-परकीया' की शब्दावली में नहीं समझा जा सकता क्योंकि यह सहज है। श्रीकृष्ण भी यहाँ पर रसरूप में निर्गुण-सगुणातीत और सब अवतारों के परमावतारी हैं। वृन्दावन की नित्य निधुवन निकुंज इनके रसरास की दिव्य भूमि है। ये इच्छा से एक और इच्छा से अनेक होने वाले हैं। स्वामी हरिदास जी ने इनके इस 'इच्छाद्वैत' को घनदामिनी के सदृश कहा है।

सखीभाव में उपासक की उपासनात्मक वृत्ति प्रिया-प्रियतम के सुख में सुखी होने की है-इसी को तत्सुखसुखीत्व कहा गया है। बिहारिनदास ने गोपियों को 'साँचे प्रेम की गुरु' कहा है और ध्रुवदास जी ने उन्हें भक्तों में सर्वोपरि माना

किन्तु 'सकामता' श्रीकृष्ण रमणाकांक्षा के कारण ही वे भी सखीभाव की शिखरता का स्पर्श नहीं कर सकी। डॉ. गोस्वामी जी ने तत्त्व और साधना-दृष्टि से स्वामी हरिदास के सखी-सम्प्रदाय को विशुद्ध सखी भाव का उपासक माना है।

स्वामी हरिदास की कृति केलिमाल के अनुशीलन से यह बात ध्यान में आती है कि इस सम्प्रदाय में उपास्य श्रीराधा-कृष्ण को श्यामा-कुंजबिहारी कहा गया है। उनके अन्य नाम हैं-छबीली-छबीलौ, श्यामा-श्याम, प्यारी-प्यारौ, बिहारी-बिहारिन। इससे स्पष्ट है कि सखी-सम्प्रदाय में राधाकृष्ण की पौराणिक पीठिका और अवतारकालीन नामों और लीला को ग्रहण नहीं किया गया है। इस जोड़ी का जन्म नहीं हुआ-सहज रूप से यह प्रकटी है। ये दोनों घन-दामिनी की तरह अविच्छिन्न हैं, द्वैत केवल प्रेम-लीला विलास के लिए है। ये पहले भी थे, आज भी हैं और आगे भी रहेंगे-अर्थात् यह स्वरूप नित्य है; अत: इनकी रसलीला भी निरवधि-नित्य बिहार के नाम से जानी जाती है। समान वय वाले ये दोनों श्री वृन्दावन की निधुवन निकुंजों में अपनी रसमयी रुचि के प्रकाश में राग-रागनियों में रंजित और रसलीला में निमग्न हैं। 'स्वामी भगवत रसिक' के अनुसार उनकी उपास्य यह जोड़ी नित्य अनंत अनादि है। स्वकीया-परकीया के भेद भी उनकी दृष्टि में व्यर्थ हैं। सखी-सम्प्रदाय की परम्परा में इन्हीं की रसलीलाओं का गायन हुआ है।

नित्य सहचरी ललिता इस नित्य विहार की विधायिका है। स्वामी हरिदास को इन ललिता सखी का अवतार माना गया है। हरिराम व्यास और बिहारिनदास ने भी इन्हें 'ललिता' कहकर संबोधित किया है। नित्यविहार रस की प्रदाता भी यही हैं। प्रिया-प्रियतम का सुख ही इनका काम्य है। इसी को 'तत्सुखसुखित्व भाव' कहा गया है जो उपासना की सर्वोच्च भूमिका है। इस भाव को पाना आसान नहीं है। भगवत रसिक जी ने लिखा है कि जो इस पथ पर चलना चाहते हैं उन्हें सबसे पहले गीता और भागवत के सार को हृदयंगम करना चाहिए। फिर भागवत में व्यास द्वारा वर्णित नवधा भक्ति की आराधना अपेक्षित है। तदुपरान्त रसरीति के मर्मज्ञ और अनुभवी साधक से दीक्षा लेनी चाहिए। विरक्त होकर वृन्दावन वास करते हुए जो व्यक्ति रास की भावना में निमग्न हो देह-सुधि को भी बिसरा देगा वही इस हरिदासीय रसरीति को प्राप्त कर सकेगा। इस प्रकार हरिदासी सखीभाव में ब्रज की निमित्त लीलाएँ नहीं; वृन्दावन की नित्य लीलाएँ सेव्य हैं। गोपियाँ नहीं हैं, सखियाँ हैं। नंदनंदन-वृषभानुनंदिनी नहीं हैं। श्रीश्यामा-कुंजबिहारी हैं। ब्रज और गोलोक नहीं है; नित्य वृन्दावन है। वियोग नहीं है-निरवधि-नित्य संयोग है-मिलेई रहत मानों कबहुँ मिले ना। समस्त उपासना राग और अनुराग के इन्हीं सूक्ष्म तंतुओं से निर्मित है। [कृ०चं०गो०]

सत्य

सत्य से तात्पर्य और उसके वास्तविक अर्थ को समझने का प्रयास न केवल साधारण जिज्ञासा करना है वरन् शंकराचार्य जैसे परम विद्वान, संत-महात्मा आदि भी करते हैं। आदिगुरु शंकराचार्य ने जब ब्रह्म को जानने का प्रयास किया तो उन्हें एक 'सत्य' का ज्ञान मिला। उन्होंने अपने अद्वितीय ज्ञान को "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" के द्वारा पाया कि ब्रह्म ही सत्य है। "ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या जीवौ ब्रह्मैव न पर:।" सत्य ही ब्रह्म है या यों कहें ब्रह्म ही सत्य है। अन्य कुछ भी नहीं है।

श्री विष्णु सहस्रनाम में सहस्र नामों में विष्णु का एक नाम 'सत्य' भी है।

वसुर्वसु मन: सत्य: समात्मा संमित सम:।
अमोध: पुण्डरीकाक्षे वृव कर्मा वृषाकृति:।।

गोस्वामी तुलसीदास जी के अनुसार सत्य के समान अन्य कोई धर्म नहीं है।

सत्य नित्य है, अविनाशी है, अविकारी है और अपरिवर्तनशील है। श्रीमद्भागवत में 'परम सत्य को ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान के नाम से जाना जाता है, ऐसा बताया गया है। वेदान्त में भी सत्य को एक ही माना गया है। "एकोऽहं विप्रा बहुधा वदन्ति" के अनुसार सत्य एक है, अनेक नहीं फिर भी विप्र और विद्वान लोग उसे नाना प्रकार से बताते हैं। उपरोक्त कथनों और वचनों के आधार पर यदि हम सत्य के सर्वमान्य अर्थ को जो तीनों कालों में समरूप रहता है और अपरिवर्तनशील भी हो तो वह केवल सत्य है।

संत ज्ञानेश्वर स्वामी सदानंद जी परमहंस के अनुसार "सत्य एकमात्र वह ही है जो सर्वदा, सदा सर्वदा ही एक ही रूप हो, अपरिवर्तनशील हो, मुक्त और अमर हो, नाम-रूप रहित भी हो और सहित भी हो, दोनों हो और दोनों से परे भी हो-वह सत्य है।"

जैसा कि शंकराचार्य ने अपने श्लोक में कहा ही है कि ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ भी सत्य नहीं है, सत्य के अतिरिक्त और जो कुछ है वह माया है या भासित सत्य कहा जा सकता है। जो नित्य या शाश्वत नहीं हैं - क्षणभंगुर है वह सत्य नहीं हो सकता।

"सत्यमेव जयते और सत्यम् वद" जैसे मंत्र तो इस धारणा के विपरीत कथन लगते हैं। प्रश्न है कौन सत्य की विजय का उद्घोष कर रहा है? वह कौन है जो सच या सत्य वचन बोलता है या बोले?

बौद्ध दर्शन में चार आर्य सत्यों का उपदेश किया है, ये चार आर्यसत्य हैं-1. दु:ख, 2. दुख समुदाय, 3. दु:ख निरोध और 4 दु:ख निरोधगामिनी प्रतिपत्। चौथे आर्य सत्य के स्वरूप भूत अष्टांगिक मार्ग हैं-1. सम्यक दृष्टि, 2. सम्यक संकल्प, 3. सम्यक वाचा, 4. सम्यक कमान्ति, 5. सम्यक आस, 6. सम्यक व्यायाम, 7. सम्यक स्मृति और सम्यक समाधि।

संसार क्षणिक एवं नाशवान है और इंद्रिय सुख का साधन विषयक लोप होने से व्यक्ति दु:खी होता है। किन्तु दु:ख सत्य होने पर भी दु:ख निरोध द्वारा समाप्त किया जा सकता है।

श्री अरविंद जी मानते हैं कि वास्तविक सत्य तत्व ब्रह्म ही है। वह दिव्य, नित्य, पूर्ण, अनन्त, अनिर्वचनीय, स्वतंत्र सत्-चित्-आनन्द स्वरूप है। हम सबके भीतर विराजमान प्रत्येक चैतन्य से अभिन्न होने से हमारे अनुभव का विषय है। वह निर्मल होता हुआ सगुण, एक होता हुआ अनेक, कारण होते हुए कार्य भी है। यह स्वरूप औपाधिक नहीं अपितु उसकी स्वातन्त्र्यता की महिमा है। अत: जीव, जगत्, ब्रह्म तीनों ही सत्य हैं। इस प्रकार शंकर मत के विपरीत श्री अरविंद जी ने जीव, जगत को भी ब्रह्म के समान ही सत्य माना है।

संक्षेप में कहा जा सकता है सत्य हमारे समस्त जीवन, धर्म और सृष्टि का आधार है। क्योंकि स्वयं कृष्ण भगवान सत्य स्वरूप हैं। [पु०श्री०]

सत्यार्थ प्रकाश

सत्यार्थ प्रकाश स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा लिखा गया है। इसका प्रथम संस्करण संवत् 1932 में प्रकाशित हुआ। इस समय इसमें 12 समुल्लास थे। 10 मंडनात्मक व 2 खंडनात्मक। उस समय लेखकों ने मृतक श्राद्ध (श्राद्ध में मांस भोजन सहित) का मंडन महर्षि के सिद्धांत के विरुद्ध मिला दिया था। कुरान और बाइबिल के विषय पूर्णतया शुद्ध न हो सकने के कारण प्रकाशित नहीं किये गये थे। सत्यार्थ प्रकाश का दूसरा संस्करण भाद्रपद संवत् 1939 वि. तद्नुसार सितंबर 1992 में प्रकाशित हुआ उस समय वह 270 पृष्ठ का था।

स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा रचित सत्यार्थ प्रकाश की रचना का मुख्य प्रयोजन दयानंद के कथनानुसार सत्य, सत्य अर्थ का प्रकाश करना है अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है।

यह ग्रंथ चौदह समुल्लास अर्थात् चौदह विभागों में रचा गया है। इसमें दस समुल्लास पूर्वार्द्ध और चार उत्तरार्द्ध में बने हैं। प्रथम समुल्लास में ईश्वर के ओंकारादि नामों की व्याख्या, द्वितीय समुल्लास में संतानों की शिक्षा, तृतीय समुल्लास में ब्रह्मचर्य, पठन-पाठन व्यवस्था, सत्यासत्य ग्रंथों के नाम और पढ़ने-पढ़ाने की रीति, चतुर्थ समुल्लास में विवाह और गृहस्थाश्रम का व्यवहार, पंचम समुल्लास में वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम की विधि, छठे समुल्लास में राजधर्म, सप्तम समुल्लास में वेदेश्वर विषय, अष्टम समुल्लास में जगत की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय, नवम समुल्लास में विद्या, अविद्या, बंध और मोक्ष की व्याख्या, दशम समुल्लास में आचार, अनाचार और भक्ष्याभक्ष्य विषय, एकादश समुल्लास में आर्यावर्तीय मतमतांतर का खंडन-मंडन विषय, द्वादश समुल्लास में चार्वाक, बौद्ध और जैन मत का विषय, त्रयोदश समुल्लास में ईसाई मत का विषय, चौदहवें समुल्लास में मुसलमानों के मत का विषय इत्यादि पर प्रकाश डाला गया है।

महर्षि का यह ग्रंथ सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। यह महर्षि के सब मन्तव्यों, सिद्धांतों, उपदेशों और योजनाओं का निचोड़ है। तर्क भी उनका इसमें संग्रहीत है। प्रथम संस्करण में बोलचाल की भाषा की भी भूलें थीं। कारण महर्षि दयानंद की मूलभाषा गुजराती व प्रवचन की संस्कृत थी। सत्यार्थ प्रकाश की रचना उन्होंने हिन्दी भाषा में की। द्वितीय संस्करण में भाषा की भूलों में भी सुधार किया गया। [श०रा०अ०]

सनकादि ऋषिगण

सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार ये चार परमर्षि हैं। श्रीमद्भागवत के एकादश स्कंध में वर्णित कथा के अनुसार सनत्कुमारों ने जगतसृष्टा ब्रह्माजी से जब सांसारिक विषय-वासनाओं और माया के प्रभाव की प्रबलता के मध्य जीवों की सुख-शांति और विषयों से पृथक होने का उपाया पूछा तो वे विस्मित होकर प्रभु का ध्यान करने लगे।

उसी समय भगवान नारायण हंस रूप में प्रकट हुए। यह दिन कार्तिक शुक्ल नवमी का था। सनकादि ऋषिगणों का आविर्भाव भी इसी तिथि को हुआ। सृष्टि उत्पत्ति के क्रम में सनकादि ऋषियों का अवतरण भगवान शंकर से भी पूर्व हुआ था। अत: यह भगवान शिव के अग्रज भ्राता भी माने जाते हैं। किंतु भगवन्नाम संकीर्तन की महिमा से ये सदैव पाँच वर्ष के बालकों जैसे ही बने रहते हैं। हंस भगवान ने जिस दिव्य ज्ञान का उपदेश सनकादिकों को किया था, वह 'हंस गीता' के नाम से विख्यात हुआ। यही ज्ञान अथवा साधन गुरु-शिष्य परंपरा के रूप में एक संप्रदाय के रूप में विख्यात हुआ। इसकी नियमरूपा विधि सर्व साधारण के लिए विहित अथवा उपयुक्त है। वहीं दूसरी ओर परम-प्रेमरूपा विधि जो अंतरंग निकुंज उपासना के रहस्यों से परिपूर्ण है, इसके अधिकारी ऐसे विशिष्ट साधक ही होते हैं जिनमें पुरुषत्वाभिनिवेश का अभाव है। सनत्कुमार संहिता और सनत्कुमारीय परमगुण रहस्य से यह स्पष्ट होता है कि सनकादिक परमर्षियों की भगवान के लीलाधामों में विशेष अनुरक्ति है। इनमें भी वृंदावन धाम इन्हें अत्यंत प्रिय है। भगवान शिव ने भी सनत्कुमारों से वृंदावन की महिमा का विशद् वर्णन किया था। इससे इनका निवास वृंदावन में श्रीराधाकृष्ण युगल केलि के साक्षात्कार की प्रेम पिपासा के कारण अधिक ही रहा।

आचार्य परंपरा में श्री हंस भगवान के पश्चात् परम निस्पृही प्रेम-भक्ति और उपासना के साक्षात विग्रह श्री सनकादिकों का ही क्रम आता है। देवर्षि नारद इनके शिष्य हैं। इन्होंने संसार में निवृत्ति धर्म का प्रचार-प्रसार किया है। ये ही निवृत्ति धर्मपरायण मोक्ष मार्ग के आद्याचार्य हैं। श्री सर्वेश्वर प्रभु ही इनके संसेव्य हैं। इनका रचित ग्रंथ 'सनत्कुमार संहिता' प्रसिद्ध है। [कुं०बि०श०]

सनातन गोस्वामी

सम्प्रदाय के परिवर्ती अभिलेखों में इनका नाम सन्तोष बताया जाता है। ये दाक्षिणात्य यजुर्वेदी भारद्वाज गोत्री ब्राह्मण

थे। इनकी प्रतिभा, विद्वत्ता एवं कार्यकौशल के आधार पर गौड़ देश के तत्कालीन नवाब हुसैन शाह ने इन्हें प्रधानमंत्री के पद पर सुशोभित करते हुए 'दबिर खास' की उपाधि प्रदान की। इनकी उपाधि के आधार पर कुछ विद्वानों ने इन्हें मुसलमान समझने की भूल भी की है। सनातन गोस्वामी के द्वारा सृजित वैष्णव तोषिणी रचना से ज्ञात होता है कि आपने सार्वभौम भट्टाचार्य के अनुज मधुसूदन विद्या वाचस्पति से भागवत आदि शास्त्रों का अध्ययन किया था। चैतन्य महाप्रभु से इनकी भेंट रामकेलि ग्राम (बंगाल) में हुई थी। सनातन दो माह तक काशी में- महाप्रभु के साथ रहे थे और उनसे धर्म-तत्व की व्याख्या सुनी थी। इनके द्वारा रचित ग्रंथ— **वृहत्भागवतामृत** (दिग्दर्शिनी टीका सहित), **हरिभक्ति विलास, लीला स्तव** (दशम चरित) और **वैष्णव तोषिणी** (भागवत टीका) हैं। इनके ग्रंथ पांडुलिपियों के रूप में वृन्दावन शोध संस्थान में विद्यमान हैं। महाप्रभु के आदेश से ब्रज के लुप्त तीर्थों के उद्धार हेतु आप ब्रज में आये। वृन्दावन में आपके आराध्य मदनमोहन जी का भव्य मंदिर अकबर के काल में रामदास कपूर नामक व्यापारी के द्वारा बनवाया गया जो वर्तमान में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग के पास है। इस मंदिर के पास ही सनातन गोस्वामी जी की समाधि मौजूद है। [प्र०श०]

सबगतिराम (द्वितीय)

चरणदासी संप्रदाय में सबगतिराम नाम के दो व्यक्ति चरणदास जी के शिष्य थे। संभवत: दोनों समवयस्क एवं समान गुणों वाले थे। क्योंकि जोगजीत जी ने अपने ग्रंथ 'लीला सागर' में इनको समान गुणों से युक्त बतलाया है। प्रथम सबगतिराम मेरठ जिले में बाभनौली के रहने वाले थे तथा उन्होंने वहीं रहकर धर्म-प्रचार किया। सबगतिराम द्वितीय का जन्म एवं कर्मक्षेत्र दिल्ली शहर के आस-पास ही रहा। सबगतिराम द्वितीय के बारे में जोगजीत जी ने अपने ग्रंथ में बतलाया है कि ये राम के भक्त थे तथा संपूर्ण जगत को राममय ही देखते थे। ये चरणदास जी के जीवित रहते ही परलोक सिधार गये थे। इनके साहित्य के विषय में भी कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। [क०उ०]

समाधि संस्कृति और ब्रज-वृन्दावन

श्रीकृष्ण की लीलाभूमि ब्रजमण्डल और यहाँ की सांस्कृतिक राजधानी वृन्दावन में समाधियों का विस्तार काफी पुराना है। देह समाधियों से पृथक ब्रजमण्डल में नाम समाधि, पुष्प समाधि के साथ ही यहाँ दन्त समाधि एवं ग्रंथ समाधि का अपना महत्व है। राधाकुण्ड, गोवर्धन, बरसाना, मथुरा, गोकुल, दाऊजी एवं नंदगाँव आदि स्थानों में पर्याप्त संख्या में समाधियाँ मिलती हैं। ब्रज में निवास की परम्परा ने यहाँ समाधि संस्कृति को समृद्ध किया, जिसमें साधकों का यह भाव निहित रहा है कि वे मृत्युपर्यन्त यहीं निवास करते रहें। रसखान का यह पद इस कथन की सार्थकता सिद्ध करता है—

मानुस हौं तो वही रसखान, बसौं मिलि गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बस मेरो, चरौं नित नंद की धेनु मँझारन॥
पाहन हौं तो वही गिरि को, जो धरयो कर छत्र पुरंदर धारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं मिलि कालिंदी कूल कदम्ब की डारन॥

वृन्दावन में मृत्युपर्यन्त निवास की भावना से अभिप्रेत यह भाव कालान्तर में यहाँ समाधियों के रूप में दर्शित होता है। पूरे ब्रजमण्डल में स्थान-स्थान पर संत-साधकों के साथ ही विभिन्न रियासतों से सम्बद्ध रानी-राजमाताओं, राजे-महाराजों की समाधियों के रूप में इस भाव का अभिव्यक्त होना ब्रज के प्रति इनकी आस्था का प्रतीक है। यहाँ

समाधियाँ ब्रज संस्कृति का अपना वैशिष्ट्य हैं। जिसमें गौड़ीय, निम्बार्क, वल्लभ, राधावल्लभ, हरिदासी, ललित एवं चरणदासी आदि वैष्णव सम्प्रदायों की उपासना पद्धति ने बहुविधि सहयोग दिया है।

ब्रज-वृन्दावन वास की परम्परा ने यहाँ समाधि संस्कृति को जन्म दिया। वृन्दावन में निवास करते हुए साधकों की यह मान्यता रही है कि मुझे अगला जन्म भी ब्रज-वृन्दावन में मिले। भारतीय चिन्तन में युग-युगों से आस्था की प्रतीक भक्ति और मुक्ति की अभिव्यक्ति वृन्दावन में सब जग से अनूठी है। हर जगह लोगों का चिंतन इनके प्रति है पर ब्रज-वृन्दावन का यह अपना प्रभाव है कि यहाँ भक्ति और मुक्ति यहाँ का चिन्तन कर धन्य हुई हैं। इसी का प्रतिफल है, ब्रज-वृन्दावन वास का भाव। जीवनभर प्रभु का चिंतन करते हुए यहाँ निवास करना और मृत्यु उपरान्त यहाँ की लता-कुंज, वृक्षावलियों के मध्य युगल सरकार राधाकृष्ण की उस रासस्थली में रमे रहना जहाँ आज भी प्रभु का नित्य रास है और नित्य विहार। यह ब्रज वृन्दावन की उपासना से जुड़ी अपनी विशेषता है—

रे मन वृंदा विपिन विहार।
विपिनराज सीमा के बाहर, हरि हूं कूं न निहार॥

—श्री भट्ट जी निम्बार्क सम्प्रदाय

मथुरा, गोकुल, गोवर्धन, दाऊजी, बरसाना, नंदगाँव एवं राधाकुण्ड ही नहीं ब्रज के गाँव-गाँव में समाधियों का दर्शन सहज सुलभ है लेकिन वृन्दावन में यह भाव अधिक मुखरता से अभिव्यक्त हुआ है। यहाँ समाधियाँ भक्ति और इतिहास का समन्वय है। वृन्दावन वास की अभिलाषा से जहाँ भक्ति के धरातल पर वृन्दावन में समाधि संस्कृति का उदय हुआ। यहाँ साधकों की समाधियों पर शिलालेख भी मिलते हैं। जो ब्रज संस्कृति के इतिहास, अध्ययन का महत्वपूर्ण स्रोत हैं। समय के सापेक्ष यह भावना और अधिक गहराती गई जिसने पूरे भारत की आंचलिक संस्कृति को प्रभावित किया। भारत की आंचलिक विविधतायें अनूठी हैं, वृन्दावन में सभी जगह कुछ न कुछ विशेष है। वृन्दावन की यह अपनी विशेषता है कि यहाँ हर जगह का विशेष, अलग-अलग कालक्रमों में किसी-न-किसी रूप में अभिव्यक्त हुआ और इसी विशेष ने, ब्रज-वृन्दावन को लोगों की दृष्टि में 'विशेष' बना दिया। वृन्दावन के इस विशेष के मायने व्यापक हैं। जिस भूमि पर आकर भक्ति भी निहाल हुई, वह पवित्र स्थान है, वृन्दावन। इस उपासना से जुड़े साधकों की यह भावना रही है कि वृन्दावन प्रभु के नित्य विहार की भूमि है जहाँ नित्य रास है और नित्य बसन्त। यही कारण है कि इस उपासना से जुड़े साधक मृत्युपर्यन्त वृन्दावन को छोड़ना नहीं चाहते। इस भावना को राधावल्लभ सम्प्रदाय के साधक ध्रुवदास जी के इस कथन से समझा जा सकता है—

खण्ड-खण्ड ह्वै जाय तन, अंग-अंग सत टूक।
वृंदावन नहिं छाड़िवौ, छाड़िवौ है बड़ी चूक॥

साधकों की वृन्दावन के प्रति निष्ठा प्रबल थी। हरिदासी सम्प्रदाय में साधक वृन्दावन वास करते हुए यहीं निकुंज गमन सौभाग्य का प्रतीक मानते हैं। यहाँ साधक के निकुंजोत्सव पर मंगल गाया जाता है—भाग बड़े वृन्दावन पायौ. . .।

वृन्दावन वास से जुड़े भाव का उदय इसी मान्यता का प्रतिफल है, जिसकी गति 16वीं सदी के बाद इतनी द्रुत हुई कि इसका प्रमाण हम पुरानी समाधियों पर लगे शिलालेखों के साथ ही आज भी यहाँ प्रचलित शिलालेख लगाये जाने की भावना से जुड़े उस आशय से समझ सकते हैं कि सुदूर क्षेत्रों में रहने वाले ब्रज-प्रेमी लोगों की नई पीढ़ी भी प्रभु की इस लीलास्थली में अभी भी शिलालेख उसी पवित्र भाव से लगवा रही है कि उनके दिवंगत कुटुम्बी वृंदावन में

ही बने रहें, प्रभु के सान्निध्य में। ब्रज मण्डल की समाधियों का सूचीकरण एवं अभिलेखन ब्रज संस्कृति का विस्तृत एवं समृद्ध पक्ष है, समग्रता के साथ जिसका परिदर्शन यहाँ संभव नहीं तथापि ब्रज की कुछ प्रमुख समाधियों का सूचीकरण प्रस्तुत है—

वृन्दावन की समाधियाँ—1. चतुर चिंतामणि नागाजी की समाधि, विहार घाट, वृन्दावन, 2. वनचन्द्र जी की समाधि, विहार घाट, वृन्दावन, 3. गोविन्दशरण देवाचार्य जी की समाधि, विहार घाट, वृन्दावन, 4. गो.सुखलाल जी की समाधि, जुगलघाट के समीप, वृन्दावन, 5. गो.जीवनलाल जी की समाधि, जुगलघाट के समीप, वृन्दावन, 6. सुन्दर दास कायस्थ की समाधि, राधावल्लभ मंदिर के समीप, वृन्दावन, 7. राजा सावंत सिंह (नागरीदास) की समाधि, नागरीदास घेरा, वृन्दावन, 8. बनी-ठनी की समाधि, नागरीदास घेरा, वृन्दावन, 9. बहादुर सिंह की समाधि, नागरीदास घेरा, वृन्दावन, 10. गो.सुन्दरवर जी की समाधि, सेवाकुंज गली, वृन्दावन, 11. चाचा हित वृन्दावनदास जी की समाधि, सेवाकुंज, वृन्दावन, 12. सूरदास मदनमोहन जी की समाधि, मदनमोहन घेरा, वृन्दावन, 13. ग्रन्थ समाधि मदनमोहन घेरा, वृन्दावन, 14. सनातन गोस्वामी की समाधि, मदनमोहन घेरा, वृन्दावन, 15. लाल जी (अष्टम गद्दी वल्लभ कुल) की समाधि, मदनमोहन मंदिर के समीप, वृन्दावन 16. दन्त समाधि केशी घाट, वृन्दावन। 17. गदाधर पण्डित की समाधि, केशी घाट, वृन्दावन, 18. श्रीकुंज दास बाबा की समाधि, केशीघाट, वृन्दावन, 19. दीनबन्धु दास की समाधि, केशीघाट, वृन्दावन, 20. रानी रंभावती की समाधि (छतरी), गोविन्द देव मंदिर, वृन्दावन। 21. रूप गोस्वामी की समाधि, राधादामोदर मंदिर, वृन्दावन, 22. जीव गोस्वामी की समाधि, राधादामोदर मंदिर, वृन्दावन, 23. भूगर्भ गोस्वामी की समाधि, राधादामोदर मंदिर, वृन्दावन, 24.कविराज गोस्वामी की समाधि, राधादामोदर मंदिर, वृन्दावन, 25. लोकनाथ गोस्वामी की समाधि, गोकुलानन्द मंदिर, वृन्दावन, 26. नरोत्तम ठाकुर की समाधि, गोकुलानन्द मंदिर, वृन्दावन, 27. विश्वनाथ चक्रवर्ती पाद की समाधि, गोकुलानन्द मंदिर, वृन्दावन, 28. स्वामी हरिदास की समाधि, निधुवन, वृन्दावन, 29. विट्ठलविपुल जी की समाधि, निधुवन, वृन्दावन, 30. बिहारिन देव की समाधि, निधुवन, वृन्दावन, 31. सरस देव की समाधि, निधुवन, वृन्दावन, 32. ललित किशोर की समाधि, टटिया स्थान, वृन्दावन, 33. ललित मोहिनी की समाधि, टटिया स्थान, वृन्दावन, 34. भगवान दास की समाधि, टटिया स्थान, वृन्दावन, 35. रणछोर दास की समाधि, टटिया स्थान, वृन्दावन, 36. चरण दास की समाधि, टटिया स्थान, वृन्दावन, 37. संत दास काठिया बाबा की समाधि, काठिया बाबा आश्रम, वृन्दावन, 38. रामदास की समाधि, काठिया बाबा आश्रम,वृन्दावन, 39. रूप माधुरी शरण की समाधि, काठिया बाबा आश्रम, वृन्दावन, 40. ललित किशोरी की समाधि, शाहजी मंदिर, वृन्दावन, 41. ललित माधुरी की समाधि, शाहजी मंदिर, वृन्दावन, 42. गोपाल भट्ट गोस्वामी की समाधि, राधारमण घेरा, वृन्दावन, 43. मधु पण्डित की समाधि, गोपीनाथ घेरा, वृन्दावन, 44. विल्वमंगल समाधि, गोपीनाथ बाग, वृन्दावन, 45. सिद्ध नित्यानन्द दास की समाधि, गोपीनाथ बाग, वृन्दावन, 46. रघुनाथ भट्ट की समाधि, रंगजी का नगला, वृन्दावन, 47. अष्ट कविराज की समाधि, रंगजी का नगला, वृन्दावन, 48. चौंसठ महन्त की समाधि, रंगजी का नगला, वृन्दावन, 49. श्री निवास आचार्य की समाधि, धीर समीर घाट, वृन्दावन, 50. रामचन्द्र कविराज की समाधि, धीर समीर घाट, वृन्दावन, 51. गौरीदास पंडित की समाधि, धीर समीर घाट, वृन्दावन, 52. गोपाल गुरु पण्डित की समाधि, वंशीवट, वृन्दावन, 53. वक्रेश्वर पण्डित की समाधि, वंशीवट, वृन्दावन, 54. ध्यान चन्द की समाधि, वंशीवट, वृन्दावन, 55. मलूक दास की समाधि, वंशीवट, वृन्दावन, 56. श्री हरिराम व्यास की समाधि, किशोर वन (व्यासघेरा), वृन्दावन, 57. गोस्वामी हित हरिवंश महाप्रभु की समाधि, बड़ा रास मण्डल, वृन्दावन, 58. सेवक जी की समाधि, बड़ा रास मण्डल, वृन्दावन, 59. ध्रुव दास की समाधि, बड़ा रास मण्डल, वृन्दावन, 60. सिद्ध बलराम दास बाबा की समाधि, झाड़ू मण्डल, वृन्दावन, 61. सिद्ध जगदीश बाबा की समाधि, कालियदह, वृन्दावन, 62. सिद्ध दयाल दास की समाधि, कालियदह, वृन्दावन, 63. श्री प्रबोधानन्द सरस्वती पाद की समाधि,

कालियदह, वृन्दावन, 64. कर्मेती बाई की समाधि, ब्रह्मकुण्ड, वृन्दावन, 65. सिद्ध रामकृष्ण दास की समाधि, भागवत निवास, रमणरेती, वृन्दावन, 66. केशव दास की समाधि, भागवत निवास, रमणरेती, वृन्दावन, 67. विष्णु दास की समाधि, भागवत निवास, रमणरेती, वृन्दावन, 68. रामानन्द दास की समाधि, भागवत निवास, रमणरेती, वृन्दावन, 69. मुरली दास की समाधि, भागवत निवास, रमणरेती, वृन्दावन, 70. यदुनन्दन दास की समाधि, भागवत निवास, रमणरेती, वृन्दावन, 71. अनन्तदास की समाधि, भागवत निवास, रमणरेती, वृन्दावन, 72. बाबा नित्यानन्द की समाधि, गोविन्द कुण्ड, वृन्दावन, 73. रजनी दास बाबा की समाधि, गोविन्द कुण्ड, वृन्दावन, 74. सिद्ध ब्रह्मानन्द गोस्वामी समाधि, श्रृंगारवट, वृन्दावन, 75. सिद्ध प्रेमानन्द गोस्वामी की समाधि, श्रृंगारवट, वृन्दावन, 76. गौर चरण दास बाबा की समाधि, मणिपुर कुंज, वृन्दावन, 77. लाला बाबू की समाधि, गढ़ेला बाग, वृन्दावन।

नंदगाँव की समाधि— 78. महात्मा हरिदास की समाधि, नंदगाँव, 79. स्वामी नित्यानन्द की समाधि, नंदगाँव, 80. तपसी बाबा की समाधि, नंदगाँव।

गोवर्धन की समाधि— 81. इंफाल के राजा युवराज की समाधि, गोवर्धन, 82. मणिपुर के राजा चूड़ा चांद सिंह (चन्द्रचूण) की समाधि, गोवर्धन, 83. जाह्नवी देवी की समाधि, गोवर्धन, 84. रघुनाथ दास की समाधि, गोवर्धन, 85. अनन्तदास की समाधि, गोवर्धन, 86. सन्त श्री कृष्णदास (करता बाबा) की समाधि, गोवर्धन, 87. कृष्णदास कविराज की समाधि, गोवर्धन, 88. रघुनाथ भट्ट की समाधि, गोवर्धन, 89. सन्त लोक नाथ गोस्वामी की समाधि, गोवर्धन, 90. मणिपुर नरेश महाराजा गम्भीर सिंह की समाधि, गोवर्धन, 91. नारायण स्वामी की समाधि (कुसुम सरोवर), गोवर्धन, 92. सन्त वल्लभ शरण की समाधि (नारद कुण्ड), गोवर्धन, 93. केवल कृष्णा महाराज की समाधि, गोवर्धन, 94. श्री राजेन्द्र गोस्वामी की समाधि, गोवर्धन, 95. आचार्य केशवाचार्य की समाधि, गोवर्धन, 96. सिद्ध बाबा की समाधि, गोवर्धन, 97. लाला बाबू की समाधि, गोवर्धन, 98. कुम्भनदास की समाधि, गोवर्धन, 99. महाकवि सूरदास की समाधि (चन्द्र सरोवर), गोवर्धन, 100. छीत स्वामी की समाधि, गोवर्धन, 101. रणछोड़ाचार्य (प्रथमेश जी) की समाधि (जतीपुरा), गोवर्धन, 102. बज्रनाभ की समाधि, गोवर्धन, 103. महाराजा सूरजमल की समाधि, गोवर्धन, 104. राजा जवाहर सिंह की समाधि, गोवर्धन, 105. महारानी हंसिया की समाधि, गोवर्धन, 106. महारानी किशोरी की समाधि, गोवर्धन, 107. महारानी लक्ष्मी का समाधि, गोवर्धन, 108. महन्त रामकृष्ण दास की समाधि (जवाहर सिंह के गुरु), गोवर्धन, 109. महाराजा बल्देव सिंह की समाधि, गोवर्धन, 110. महाराजा रणजीत सिंह की समाधि, गोवर्धन, 111. महाराजा बलवन्त सिंह की समाधि, गोवर्धन।

गोकुल की (महावन) समाधि — 112. रसखान की समाधि (महावन), 113. ताज बीबी की समाधि (महावन)

[रा०श०]

सविता

सविता सामवेद के प्रमुख देव हैं, कहीं-कहीं सविता को सूर्य के अर्थ में स्वीकार किया जाता है। किन्तु यह अवधारणा सही नहीं है। ऋग्वेद की ऋचाओं के गहन अध्ययन से ज्ञात होता है कि सहपथगामी होते हुए भी सविता, सूर्य से पृथक है। वस्तुत: सविता, स्वयं सूर्य नहीं बल्कि सूर्य की प्रेरणा है। वेदों ने सूर्योदय से पूर्व और सूर्यास्त के पश्चात् के प्रकाश को सविता कहा गया। उल्लेख है कि उदय होने वाला सूर्य सविता है एवं अस्ताचल तक तपने वाला सूर्य भी सविता का ही रूप है। ऋग्वेद के पंचम मंडल के आत्रेय मंडल में अग्नि, मरुत, इंद्र, विश्वदेव के साथ सविता की स्तुति प्राप्त होती है। 12 आदित्यों (धाता, मित्र, अर्यमा, पूषा, शुक्र, वरुण, मग, विस्वान, सविता व विष्णु) में से एक सविता की किरणों को व्याधिनाशक, आयुवर्धक, विश्व उत्पादक कहा जाता है। मानवीकरण करते हुए सविता का वर्णन, पीले केश और स्वर्णिम भुजाओं वाले देवता के रूप में किया गया है जिसके रथ को स्वर्ण आभा से युक्त दो घोड़े

खींचते हैं। सविता की पत्नी संज्ञा और पुत्र अश्वनी कुमार माने गए हैं। सवितास शब्द 'सू' धातु में 'तृच' प्रत्यय लगाने से बना है। स का अर्थ है प्रेरित करने वाला, अत: शाब्दिक अर्थों में सविता सृष्टि के प्रेरक देव हैं उनका निवास द्यौ लोक माना गया है, लेकिन प्रसिद्ध वेद भाष्यकार आचार्य सायण ऋग्वेद की टीका करते हुए स्थान द्यौ और भू दोनों बताते हैं। कई स्थानों पर सविता सूर्य की प्रेरक शक्ति के रूप में भी चित्रित हुए हैं। निरुक्तकार यास्क का कथन है कि 'सविता सर्वस्य प्रसविता' अर्थात् सविता ही सबका जनक है। आधुनिक विज्ञान सविता मंत्र की रहस्यात्मिका शक्ति के अनुसंधान में संलग्न है।

ऋग्वेद के प्रसिद्ध गायत्री मंत्र में सविता का स्तवन है। मान्यता है कि देवी गायत्री का जन्म सविता के मुख से हुआ है, इसीलिए उनका एक नाम सावित्री है। गोपथ ब्राह्मण का एक आध्यात्मिक प्रश्न है कि देवी गायत्री एकाक्षरा और श्वेतवर्णा है। 'गायत्री वै देवानामेकाक्षरा श्वेतवर्णा च व्याख्याता' किन्तु क: सविता? का सावित्री? अर्थात् सविता कौन है? सावित्री क्या है? उत्तर में स्पष्ट किया गया है कि मन सविता है और वाणी सावित्री। अग्नि सविता है और पृथ्वी सावित्री। दोनों के युग्मों की व्याख्या विश्व निर्माता शक्तियों के रूप में हुई है। पृथ्वी के बिना अग्नि का अस्तित्व संभव नहीं है। वरुण, सविता है और आप जल (जल) सावित्री, वायु सविता है और आकाश सावित्री। इस प्रकार सविता और सावित्री अनेक रूपों और युग्मों में सृष्टि का संचालन करते हैं। सामवेदीय परम्परा के एक लघु उपनिषद् में सविता-सावित्री के विविध रूपों की परिकल्पना करके उनमें एकत्व भाव का प्रतिपादन किया गया है और बताया है कि यक्ष सविता है, तो छन्द सावित्री है। पुरुष सविता है, तो स्त्री सावित्री है। वे वायु और अंतरिक्ष हैं। आदित्य और द्यु भी हैं। वे ही हैं-दिवस और रात्रि, चन्द्रमा और नक्षत्र, ताप और शीत, मेघ और वर्षण, विद्युत और गर्जन, प्राण और अन्न, वेद और छन्द, यज्ञ तथा दक्षिणा अत: सिद्ध है कि दोनों में अटूट सम्बन्ध है।

एक बार देवताओं ने प्रजापति ब्रह्मा के पास जाकर प्रश्न किया है कि पितामह! महान सामर्थ्य वाली सत्ता कौन है? प्रजापति कहते हैं-स्विता सर्वभूतानां सर्वभावाश्च सूयत। सर्वनात्प्रेरणाच्चैव सविता तेन चोच्यते॥ हे देवताओ यह जो अनेक प्रकार के अनुदान-वरदान देने वाली गायत्री महाशक्ति है उसे तत सावित्री अर्थात् सविता देवता से उद्भासित होने वाला ज्ञान जानो। सृष्टि विज्ञान की भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों ही प्रक्रियाओं का स्पष्ट संकेत इन मान्यताओं को पुष्ट करने वाला है। सविता वह शक्ति है, जो सभी तत्त्वों, सभी प्राणियों और समस्त भावनाओं को प्रेरणा देती है। प्रतीक रूप में सविता देवता की प्रतिमा को सूर्य माना गया है। यह सविता देवता का स्थूल प्रतीक है। सविता उससे भी सूक्ष्म है, उसकी शक्ति-सामर्थ्य और विशेषताओं को समझने के लिये विज्ञान भी आज सत्यता के साक्ष्य देने लगा है। हालांकि सविता देवता के स्थूल भाग का बहुत थोड़ा भाग ही वैज्ञानिक अभी जान पाये हैं पर जो कुछ जाना जा सका है, वह भी भारतीय मान्यताओं के प्रतिपादन की दृष्टि से कम नहीं है। [अ०श्री०]

सविशेषनिर्विशेष श्रीकृष्णस्तवराज

यह पच्चीस श्लोकों का स्तुतिपरक ग्रंथ है। सम्प्रदाय में इसे 'पच्चीस श्लोकी' के नाम से भी जाना जाता है। इसके रचयिता का नाम अभी तक ज्ञात नहीं हो सका है। पूर्व में इसे निम्बार्काचार्य की रचना कहा गया था, परन्तु ठोस प्रमाण न मिलने के कारण यह निम्बार्काचार्य की रचना नहीं कही जा सकती। सम्भवत: बाद के किसी आचार्य द्वारा यह प्रणीत है। इसमें निम्बार्क सम्प्रदायी सिद्धान्तों का पूर्ण उल्लेख हुआ है। यह पन्द्रहवीं शताब्दी से पूर्व की रचना कही जा सकती है। क्योंकि सोलहवीं शताब्दी में कुछ निम्बार्की विद्वानों द्वारा इस स्तवराज की विस्तृत टीकाएँ की गई थीं। इसमें पुरुषोत्तमदास विरचित 'श्रुत्यन्तकल्पवल्ली', पुरुषोत्तमदास विरचित 'श्रुत्यन्तसुरद्रुम' तथा ब्रजेश्वरप्रसाद कृत 'श्रुतिसिद्धान्तमंजरी' नाम से ये तीन टीकाएँ प्रसिद्ध एवं प्रकाशित हैं। प्रस्थानत्रयी के सारांश रूप में ही इस स्तवराज की रचना की गई थी। इसमें तत्त्वत्रय-निरूपण के साथ ही द्वैताद्वैतमत का दिग्दर्शन कराया गया है। [क०उ०]

सर्वसम्वादिनी

इस ग्रंथ की एक प्रति बंगाल एशियाटिक सोसाइटी के ग्रंथागार में सुरक्षित है। इस ग्रंथ का आकार $12\frac{1}{2}\times4$ "है, इसमें कुल पत्र संख्या 25 हैं, प्रत्येक पृष्ठ पर 8 पंक्तियाँ हैं, इसमें 600 श्लोक हैं। यह बंगाली लिपि में लिखा गया है। ग्रंथ सामान्यत: सही स्थिति में है। यह ग्रंथ जीव गोस्वामी कृत सुप्रसिद्ध षटसंदर्भ से संबंधित है। इसमें प्रथम तत्त्व संदर्भ तथा द्वितीय भागवत संदर्भ पर संक्षिप्त टीका लिखी गई है। ग्रंथ का प्रारम्भ या मंगलाचरण इस प्रकार है-

श्रीकृष्णं नमता नाम सर्वसंवादिनी मया।
श्री भागवतसन्दर्भानुव्याख्या विरच्यते॥

इस ग्रंथ को लिखने का उद्देश्य भागवत पुराण के अनुसार चैतन्य महाप्रभु को विष्णु का अवतार सिद्ध करना है। दूसरे संदर्भ की टीका इस प्रकार प्रारम्भ होती है।

अथ श्रीभगवत्सन्दर्भमारम्भताषिति तौ पूर्वोक्तरीत्या प्रसिद्धौ।
अथैवमिति। सत्ता प्रकाश:। [सू०या०]

सर्वेश्वर प्रभु

संप्रदाय प्रवर्तक आचार्य चतुष्ट्य श्री सनकादि संसेव्य श्री सर्वेश्वर प्रभु श्री निंबार्क संप्रदाय के परम उपास्य श्रीविग्रह हैं। श्रीसर्वेश्वर भगवान आदि संसेव्य शालिग्राम स्वरूप हैं। विग्रह के चहुँओर दक्षिणावर्त चक्र और किरणें अत्यंत तेजपूर्ण एवं मनोहारी प्रतीत होती हैं। शिला के मध्य भाग में एक बिंदु है और उसके मध्य भाग में युगल सरकार श्री राधासर्वेश्वर स्वरूप दो रेखाएँ हैं। जिनका दर्शन किसी भाग्यशाली को ही सुलभ होता है। यह सर्वेश्वर प्रभु की प्रतिमा सनकादिकों ने देवर्षि नारद और देवर्षि नारद से श्री निंबार्क भगवान को प्राप्त हुई। वर्तमान में आचार्य परंपरा के अंतर्गत अखिल भारतीय श्रीनिंबार्काचार्य पीठ, (परशुराम द्वारा) सलेमाबाद में वर्तमान 'श्रीजी' श्री सर्वेश्वरशरण देवाचार्य द्वारा संसेवित है। यह श्रीविग्रह सदैव पीठासीन आचार्य के साथ ही सेवित होती है। संप्रदाय में मान्यता है कि यह विग्रह दर्शन मात्र से समस्त पाप और अमंगलों का शमन करने वाला है।

करुणासिंधु स्वजनैकबंधु केशोरवेषं कमनीयकेशम्।
कालिंदिकूले कृतरासगोष्ठी सर्वेश्वर तं शरणं प्रपद्ये॥

[कुं०बि०श०]

सर्वेश्वरशरण देवाचार्य

वि.सं. 1841 में गुरुदेव श्रीजी गोविन्दशरण देवाचार्य जी के उत्तराधिकारी के रूप में श्रीजी सर्वेश्वर शरण देवाचार्य जी आचार्य पीठासीन हुए। आचार्य श्री का जन्म जयपुर मंडलांतर्गत सराय ग्राम के गौड़ ब्राह्मण परिवार में हुआ। इनकी माता और पिता श्री भवानीराम जी जोशी श्रीसर्वेश्वर प्रभु के अनन्य भक्त थे, जिनके कृपा प्रसाद से इन्हें ऐसा पुत्र प्राप्त हुआ। द्वितीय पुत्र रत्न प्राप्त होते ही माता-पिता ने बालक शालिग्राम को सर्वेश्वर प्रभु की सेवा में समर्पित कर दिया। आचार्य श्री गोविन्दशरण देवाचार्य से दीक्षित हो बालक शालिग्राम का नाम सर्वेश्वरशरण हो गया। अल्पकाल में ही

आप प्रकाण्ड विद्वान हो गए। जयपुर नरेश सवाई प्रतापसिंह के साथ अनेकों राजा-महाराजा आपके कृपापात्र अनुगत थे। जयपुर राज्य के प्रसिद्ध विद्वान कवि मण्डन भट्ट ने 'जय साह सुजस प्रकाश' ग्रंथ में आचार्यश्री के जीवन की कई घटनाओं को प्रकाशित किया है। जयपुर नरेश प्रतापसिंह जी ने ही गुरुदेव श्रीजी सर्वेश्वरशरण देवाचार्य जी के आदेशानुसार जयपुर में चारों वैष्णव सम्प्रदायों के स्थायी निवास की व्यवस्था की। प्रतापसिंह के पौत्र जयसिंह (तृतीय) के जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में जयपुर राजकोष से लाखों रुपयों का व्यय करके गुरुदेव का महान स्मृति महोत्सव मनाया गया। जयपुर के प्रसिद्ध महाकवि श्रीरसिक गोविन्द जी आचार्यश्री के ही कृपापात्र थे। आचार्यश्री की प्रशस्ति अपने अत्यंत भावपूर्ण शब्द विन्यास द्वारा की है। श्रीमद्भागवत पर 'सर्वेश्वरी' नामक संस्कृत व्याख्या और 'गोपीजनवल्लभाष्टक' आचार्यश्री की रचनाएँ हैं।

एक बार एक सिद्ध संत श्री राधासर्वेश्वर, राधामाधव और आचार्यश्री के दर्शनार्थ आचार्यपीठ में पधारे। उन संत ने भोजन बनाने के लिए सूखी सामग्री माँगी। दूध देते समय उनका पाव भर का लोटा किसी प्रकार भर नहीं पा रहा था। जबकि उसमें दस लीटर से अधिक दूध डाल दिया गया। विस्मित साधुओं ने जब यह वृत्तांत आचार्यश्री से निवेदन किया तो उन्होंने श्री सर्वेश्वर प्रभु के प्रसादी दूध का लोटा देते हुए कहा कि इससे दूध करने पर संत का पात्र भी भर जाएगा और दूध की धारा भी न टूटेगी। आचार्यश्री के कथनानुसार ऐसा ही हुआ और दूध की धार से मंदिर प्रांगण भर गया। इस घटना से विस्मित अभ्यागत संत आचार्यश्री के चरणों में निवेदित हो गए। इस पर आचार्यश्री ने इस सर्वेश्वर प्रभु की लीला से प्रेरित पारस्परिक विनोदात्मक विषय कहकर टाल दिया। [कुं०बि०श०]

सर्वोत्तम स्तोत्र

श्रीमद्वल्लभाचार्य जी के 108 नामों की स्तुति-परक रचना है। पुष्टिमार्ग में दीक्षित वैष्णव जन अपनी आकांक्षा पूर्ति हेतु इस रचना का भावात्मक ढंग से नियमित पाठ करते हैं।

इन प्रमुख रचनाओं के अतिरिक्त स्वामिनी स्तोत्र, चतु:श्लोकी, स्वामिन्यष्टक, दानलीला, अणुभाष्य का अन्तिम डेढ़ अध्याय जो महाप्रभु द्वारा अपूर्ण रह गया था, सुबोधिनी पर टिप्पणी, निबन्ध-प्रकाश की पूर्ति और टीका, न्यायादेश पर विवृत्ति टीका तथा षोडश ग्रंथों में से कई पर विवृत्ति टीका आदि भी उनकी अन्य रचनाएँ हैं। इन सब ग्रंथों में महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के सिद्धान्तों का पूर्णतया विवेचन किया गया है।

पुष्टि सम्प्रदाय और इससे सम्बद्ध साहित्यकारों तथा वैष्णवों में इन ग्रंथों का अत्यधिक महत्त्व है। ये इस सम्प्रदाय के मार्गदर्शक ग्रंथ भी कहे जाते हैं। [क०उ०]

सहचरिशरण

श्री सहचरिशरण का अन्य नाम सखीशरण भी था। उनका जन्म सं० 1830 में हुआ था। वे सं०1841 में टट्टी संस्थान के महंत श्री राधाशरण जी के शिष्य हुए थे। अपने गुरु के पश्चात् वे सं० 1878 में टट्टी संस्थान के महंत बनाये गये। उनका देहावसान सं० 1894 में हुआ था। उनके रचे हुए दो ग्रंथ 'ललित प्रकाश' और 'सरस मंजावली' प्रसिद्ध हैं।

'ललित प्रकाश' में स्वामी हरिदास जी से लेकर टट्टी संस्थान के महंत ललितमोहिनीदास जी तक के चरित्रों का कथन किया था। इसका आधार श्री किशोरदास कृत 'निजमत सिद्धांत' ग्रंथ है। इसके दो खंड हैं और इसकी रचना विविध छंदों में हुई है। इस ग्रंथ में निम्बार्क संप्रदाय की महत्व-वृद्धि का पूर्ण प्रयास किया गया है। टट्टी संस्थान के महंत भगवानदास जी ने मथुरा निवासी श्री बनमालीलाल चतुर्वेदी द्वारा इसे प्रकाशित कराकर अमूल्य वितरित कराया था। इसके अंत में श्री सहचरिशरण जी के पश्चात् होने वाले टट्टी संस्थान के महंतों का भी उल्लेख किया गया है। इसे बाद में श्री रणछोड़दास ने लिखा था। इनकी कृति 'सरस मंजावली' में 140 माँज या माँझ हैं। इसका काव्य-सौन्दर्य

अनुपम है। इसमें सीतलदास जी की शैली का अनुकरण किया गया है। इसकी भाषा ब्रज मिश्रित खड़ी बोली है, जिसमें संस्कृत और फारसी शब्दों का प्रचुरता से प्रयोग किया गया है। कहीं-कहीं पर पंजाबी भाषा के शब्द भी मिलते हैं।

श्री सहचरिशरण जी की रचना का एक उदाहरण—

कटि किंकिणि सिर मोरमुकुट वर, उर बनमाल परी है।
करि मुसक्यानि चकाचोंधी, चित चितवन रंग भरी है॥
सहचरिशरण सु विश्व विमोहिनि, मुरली अधर धरी है।
ललित त्रिभंगी सजल मेघ तनु, मूरति मंजु खरी है॥

[गो०श०श०]

सहजानन्द

सहजानंद संत चरणदास जी के शिष्य थे। चरणदास जी की इन पर बड़ी कृपा थी। इनके बारे में एक घटना का उल्लेख इनके गुरु भाई जोगजीत जी ने अपने ग्रंथ 'लीलासागर' में किया है। यह उनकी आँखों देखी घटना है। एक बार भ्रमण करते हुए चरणदास जी इनके गाँव कांधला जिला मुजफ्फरनगर पधारे। उन्हीं दिनों में किसी दिन सुबह स्नान करने जाते समय एक विषधर सर्प ने इनको काट लिया। सभी प्रकार के उपचार किये गये फिर भी इनको बचाया नहीं जा सका। तभी कोई व्यक्ति चरणदास जी को वहाँ बुला लाया। तब चरणदास जी ने अपने गुरु शुकदेव का स्मरण किया और मोरछल से इन्हें कई बार स्पर्श किया जिससे ये जीवित हो उठे। यह देखकर वहाँ उपस्थित सभी लोग पर चरणदास जी का बड़ा प्रभाव पड़ा। इस घटना के अलावा और कोई विवरण इनके जीवन के विषय में पता नहीं चलता है।

इन्होंने दीक्षा लेने के बाद कहाँ पर अपना स्थान बनाया, इसके बारे में भी कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। यह एक अच्छे कवि थे। इनकी कुछ फुटकर बानियाँ प्राप्त होती हैं। [क०उ०]

सांख्य दर्शन

गीता में 'सांख्ययोग' का ज्ञान योग तथा संन्यास योग के नाम से वर्णन किया है। संख्या शब्द से सांख्य शब्द निष्पन्न हुआ है। सांख्य शब्द के संख्यात्मक (गणनात्मक) और विवेक ज्ञान (आत्मा के विशुद्ध रूप का ज्ञान) दो अर्थ हैं। सांख्य यानि प्रकृति और पुरुष सहित पच्चीस तत्त्वों का ज्ञान प्रकृति, पुरुष, विवेक अथवा ''प्रकृति पुरुषान्याताख्याति'' में 'संख्या' शब्द 'सम्यक् ख्याति' यानि सम्यक् ज्ञान या 'विवेकज्ञान' का द्योतक है।

संख्या शब्द का दूसरा अर्थ है—विवेक ज्ञान। 'अचेतन' प्रकृति और 'चेतन पुरुषतत्त्व में अभिन्नता मानना ही अविवेक है। इस अविवेक (अज्ञान) के कारण जीव (पुरुष) जन्म-मृत्यु के चक्र से स्वयं को मुक्त नहीं कर पाता है। प्रकृति और पुरुष अलग हैं, ऐसा जो ज्ञान है वही विवेक ज्ञान है, इस विवेक ज्ञान को 'अपवर्ग' या 'मोक्ष' की प्राप्ति का कारण बताया है। सांख्य शास्त्र ऐतिहासिक और प्राचीन शास्त्र है। संसार में जो कुछ भी तत्त्व ज्ञान विद्यमान है, 'सांख्य' से ही आया है।

महाभारत तथा कुछ स्मृति ग्रंथों में कपिल एवं अन्य 26 सांख्य के आचार्यों में सनत, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, भृगु, शुक्राचार्य, कश्यप, पराशर, गौतम, नारद, अगस्त्य और पुलस्त्य का भी स्मरण किया जाता है। सांख्य शास्त्र के प्रवर्तक कपिल मुनि हैं-''सिद्धानां कपिलो मुनिः।'' श्रीमद्भागवत् के अनुसार कपिल मुनि को भगवान विष्णु के चौबीस अवतारों में स्थान दिया गया है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से सांख्य पद्धति पर विचारों का आरम्भ ईसा पूर्व 9वीं

शती से माना जाता है। ईश्वर कृष्ण ने अपने 'सांख्यकारिका' नामक ग्रंथ में इस शास्त्र की परम्परा का वर्णन किया है।

''पुरुषार्थज्ञानमिदं गुह्यं परमर्षिणा समाख्यातम्।
स्थित्युत्पत्तिप्रलयाश्चिन्त्यन्ते यत्र भूतानाम्।
एतत् पवित्रमग्र्यं मुनिरासुरयेऽनुकम्पया प्रददौ।
आसुरिरपि पंचशिखाय तेन च बहुधा कृतं तन्त्रम्॥
शिष्यपरम्परयागतमीश्वरकृष्णेन चैतदार्याभिः।
संक्षिप्तमार्यमतिना सम्यग् विज्ञाय सिद्धान्तम्॥

अर्थात्-मोक्ष पुरुषार्थ विषयक इस गुह्य पवित्र ज्ञान का परमश्रेष्ठ 'कपिल' ने सबसे पहले प्रतिपादन किया। इसमें भूतमात्रों की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का वर्णन है। कपिल मुनि के द्वारा आसुरि को और आसुरि से पंचशिख को यह ज्ञान मिला। आसुरि के पश्चात शिष्य परम्परा के रूप में यह ज्ञान ईश्वरकृष्ण को मिला, जिसे स्वयं ईश्वरकृष्ण ने संक्षेप में आर्या छन्दों में निबद्ध कर दिया।

सांख्य शास्त्र के प्रमुख ग्रंथ निम्नलिखित हैं-

परम ऋषि कपिल मुनि प्रणीत 'तत्त्वसमास' ग्रंथ पर विज्ञानभिक्षु के शिष्य भावागणेशकृत 'सांख्यतत्त्वयाथार्थ्यदीपन' टीका प्राप्त है। श्रीमद्भागवत के तीसरे स्कन्ध में जो भगवान कपिल ने अपनी माता को उपदेश दिया है, वह भी सांख्य की उच्चकोटि की शिक्षा है।

'आसुरि' ने कपिलमुनि से प्राप्त सांख्य शिक्षा को 'पञ्चशिखाचार्य' के लिये उपदेश दिया। इसके बाद यह विस्तार को प्राप्त हुआ। इस प्रकार का वर्णन 'सांख्यकारिका' में आता है। इन सूत्रों का ग्रंथ लुप्त है। व्यासजी के द्वारा रचित योगदर्शन के भाष्य में पञ्चशिखाचार्य के सूत्रों को उद्धरित किया गया है।

वार्षगण्याचार्य प्रणीत षष्ठि-तन्त्र ईश्वर कृष्ण ने 'सांख्य सप्तति' की रचना षष्ठितन्त्र के आधार पर की है। योगदर्शन के भाष्य में व्यास जी ने वार्षगण्याचार्य के कथनों का अनेक स्थानों पर उल्लेख किया है।

सांख्यसप्तति-यह ग्रंथ ईश्वरकृष्ण की रचना है। सत्तर कारिकाओं के कारण यह नाम है। इस ग्रंथ पर वाचस्पति मिश्र रचित 'सांख्यतत्त्वकौमुदी' के नाम से टीका ग्रंथ है। 'गौड़पादभाष्य' पर 'माठरवृत्ति' सर्वाधिक प्राचीन मानी गयी है। 'युक्ति दीपिका', 'जयमंगला' एवं 'चन्द्रिका' तीन टीकाओं के नाम भी प्रकाश में आये हैं।

सांख्य सूत्र-इस ग्रंथ में छः अध्यायों में पाँच सौ सत्ताईस सांख्य सूत्रों का वर्णन है। 'सांख्य प्रवचन भाष्य' के नाम से इसी पर एक ग्रंथ विज्ञानभिक्षु ने लिखा है। कपिल मुनि प्रणीत इन सांख्य सूत्रों को 'षडध्यायी दर्शन' के नाम से जाना जाता है। सम्भवतः सांख्यसप्तति के पूर्व इस ग्रंथ को रचा गया। विज्ञानभिक्षु के द्वारा इनका संग्रह किया गया। विज्ञानभिक्षु को सांख्य योग को पुनः प्रतिष्ठित करने का सुयश मिला है। जो भिक्षु होने पर भी बौद्ध नहीं थे, उन्होंने 'सांख्यप्रवचन भाष्य' की रचना की।

ईश्वरकृष्ण की रचना 'सांख्यकारिका' सांख्यदर्शन का प्रामाणिक और प्रसिद्ध ग्रंथ है। इस ग्रंथ की आर्याओं में सांख्य ज्ञान को प्रकट करने के लिए विद्वानों ने अपने ग्रंथों में उद्धृत किया है। चीनी भाषा में ई. छठी शताब्दी में अनुवाद किया गया। जो बाद में 'हिरण्यसप्तति' या 'सुवर्णसप्तति' के नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ। उपलब्ध कारिकाओं में एक कारिका के लुप्त होने की बात बताते हुए गौड़पादाचार्यकृतभाष्य के आधार पर 61वीं कारिका के बाद एक कारिका की रचना की गयी, ऐसा लोकमान्य तिलक ने अपने ग्रंथ 'गीता रहस्य' में कहा है।

अन्य दर्शनों के समान सांख्य दर्शन का भी आत्यन्तिक दुःख निवृत्ति और सुख-प्राप्ति के मार्ग का अन्वेषण मुख्य

प्रयोजन है। सांख्य दर्शन के अनुसार अज्ञान के कारण ही पुरुष (जीवात्मा) दु:ख-सुख को भोगता है। सांख्य के अनुसार पुरुष स्वभावत: त्रिगुणातीत या मुक्त ही होता है, किन्तु प्रकृति के साथ वह अपना तादात्म्य, अविवेक के कारण मानता है, जिसके कारण प्रकृतिजन्य दु:खों को भोगता है। विवेक का उदय होने पर उसे 'अपवर्ग' या 'कैवल्य' की अवस्था प्राप्त होती है। यह विवेक ज्ञान सांख्यशास्त्रोक्त 'व्यक्त', 'अव्यक्त' और 'ज्ञ' का तत्त्वज्ञान होने पर ही उदित होता है। विवेक का उदय होने पर ही प्रकृति का बन्धन सदा के लिए छूट जाता है और पुरुष यह अनुभव करने लगता है कि मैं सभी कर्त्तृत्व से अतीत तथा नि:संग हूँ। यह अनुभूति ही जीवन्मुक्त अवस्था है। जीवन्मुक्ति के बाद विदेहमुक्ति होती है। [वि०श०]

साधुराम (प्रथम)

चरणदास जी के साधुराम नामक दो शिष्य बताये गये हैं। आलोच्य साधुराम (प्रथम) के जीवन के विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। जोगजीत जी के ग्रंथ 'लीलासागर' के अनुसार ये जयपुर में आश्रम स्थापित करने वालों में सबसे पहले थे। जोगजीत जी ने इनके स्वभाव के बारे में बताया है कि ये स्वभावत: आत्मसंतोषी, अनहंकारी, सहनशील, आत्माराम, विनम्र भक्त, परोपकारी एवं साधु सेवी थे।

ये आश्रम से बाहर बहुत कम आते-जाते थे। इन्होंने तीर्थयात्राएँ भी बहुत कम की हैं। यह आश्रम में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति की बहुत आवभगत करते थे। इनका जयपुर शहर की जनता में बड़ा मान-सम्मान था। साधुराम जी का अखैराम जी से बड़ा स्नेह था। अत: ये उन्हीं के यहाँ रहा करते थे। इनके विषय में एक तथ्य बड़ा भ्रम उत्पन्न करता है कि चरणदास जी की जयपुर की यात्रा के समय इनका कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। जबकि ये चरणदास जी के प्रभावशाली शिष्य थे। जोगजीत जी तथा रामरूप जी ने इस घटना के विवरण में इनका कोई उल्लेख नहीं किया, शायद ये उससे पूर्व ही परलोक सिधार गये थे। [क०उ०]

सामवेद

भगवान श्रीकृष्ण ने ''वेदानां सामवेदोऽस्मि'' अर्थात् वेदों में मैं सामवेद हूँ कहकर सामवेद की महिमा का बखान किया है। गान प्रधान होने से सामवेद में गीत्यात्मक मंत्रों का संग्रह है। 'त्रयीरूप' वेद विद्याओं का सामवेद में समावेश होना सामवेद की विशेषता है। कहने का तात्पर्य है कि 'सेषा त्रय्येव विद्या तपति'' इत्यादि वचनों से वेद वस्तुत: तीन कालान्तर में अथर्ववेद का चतुर्थ वेद के रूप में मान्यता दी गयी। पद्य में अक्षर, संख्या, पाद तथा विराम का निश्चित नियम रहता है, ऐसे निश्चित अक्षर, संख्या, पाद और विराम वाले मंत्रों को 'ऋक' कहा जाता है। इसके अतिरिक्त जो मंत्र छंद के नियम के अनुसार अक्षर, संख्या, पाद और विराम की दृष्टि से अनियत होते हैं वे गद्यात्मक मंत्र यजु: कहलाते हैं और जो गानात्मक हैं, वे मंत्र 'साम' कहलाते हैं। सामवेद में गायन पद्धति के ही मंत्र हैं।

सामवेद में अनेक अवान्तर स्वरों के अतिरिक्त प्रमुख सात स्वरों के माध्यम से गीति का पूर्ण स्वरूप पाया जाता है। ''ऋच्यध्यमूढ साम गीयते'' में श्रुति स्वयं ऋक् और साम का अलग सम्बन्ध बताती है। बृहदारण्यकोपनिषद् में ''सा च अमश्चेति तत्साम्न: सामत्वम्'' ''सा'' का अर्थ ''ऋक्'' और ''अम्'' का अर्थ गान बताकर साम के वास्तविक अर्थ का व्युत्पादन किया है। अत: इन दोनों को 'साम' से ही जानना चाहिए। सामवेद से ही संगीत शास्त्र का प्रादुर्भाव माना जाता है। सामवेद से गीति की उत्पत्ति हुई। 'वीडक' और 'वात्स' इन दोनों साम के गान का महत्त्व आख्यायिकाओं के आधार पर बताया गया है कि 'वीडक' नामक साम का गान कर वृद्ध च्यवन ऋषि को युवा बनाया गया। सामवेद की 1000 शाखा हैं, इनमें केवल दो शाखाओं के ही ग्रंथ प्राप्त हैं-कौथुम शाखा और जैमिनीय शाखा। यज्ञ में तीसरे ऋत्विक को उद्गाता कहते हैं। इस उद्गाता के लिए चयन किये हुए मंत्रों के समूह का नाम ही सामवेद

है। साम गान के पाँच उद्गाता होते हैं-प्रस्ताव-इसका गायन प्रस्तोता करता है, उद्गीथ-इसका गायन उद्गाता करता है, परिहार-इसका गायन प्रतिहर्त्ता करता है, उपद्रव-इसका गायन उद्गाता करता है एवं निधान-इसका गायन प्रस्तोता करता है।

सामवेद के आठ ब्राह्मण माने गये हैं-प्रौढ़ (ताण्ड्य) ब्राह्मण, षड्विंश ब्राह्मण, सामविधान ब्राह्मण, आर्षेय ब्राह्मण, देवताध्याय ब्राह्मण, छान्दोग्योपनिषद् ब्राह्मण, संहितोपनिषद् ब्राह्मण एवं वंश ब्राह्मण। अध्याय संख्या के आधार पर ताण्ड्य ब्राह्मण का नाम 'पञ्चविंश' है और बृहद कलेवर के कारण 'महाब्राह्मण' कहलाता है। वैदिक परम्परा के अनुसार सामध्वनि सुनाई देते ही अन्य वेदों का अध्ययन बन्द कर दिया जाता था। छ: अध्यायों में विभक्त आर्षेय ब्राह्मण सामों के नाम से सम्बद्ध ऋषियों का प्रतिपादन करता है। चार खण्डों में विभाजित देवताध्याय ब्राह्मण और निधन के आधार पर सामों के देवता को बतलाता है। निधन पाँच भक्ति वाला साम का एक भक्ति विभाग है। दस प्रपाठकों से युक्त छान्दोग्योपनिषद् के पहले दो प्रपाठकों में विवाह आदि कर्म से सम्बन्धित मंत्र हैं। वंश ब्राह्मण तीन खण्डों में शर्वदत्तगार्ग्य से ब्रह्मपर्यन्त सामवेद की अध्ययन परम्परा को बतलाता है। इसके अतिरिक्त शेष आठ प्रपाठक उपनिषद् हैं। इस उपनिषद् खण्ड में साम के सार तत्त्व को स्वर कहा गया है। संहितोपनिषद् ब्राह्मण के पाँच खण्डों में साम संहिता का रहस्य बताया गया है। सामवेद की उपलब्ध तीन शाखाओं में कौथुम शाखा अधिक प्रसिद्ध है। इसके पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक दो भाग हैं। आर्चिक का अर्थ है—ऋचाओं का समूह। इसमें 1810 ऋचाएँ हैं। यद्यपि अधिकांश ऋचाएँ पुनरावर्तित हुई हैं तथापि इन्हें छोड़कर कुल संख्या 1549 ही रहती हैं।

छन्दसी या छन्दसिका के नाम से यह विभाग जिसमें 585 ऋचाएँ, छ: प्रपाठकों में संग्रहीत हैं। प्रपाठक दशतय यानि 10 ऋचाओं के समूह 59 संख्या में हैं। जिनमें 12 दशतय अग्नि से सम्बन्धित, 36 सोमविषयक और अन्त में 11 दशतय भी सोम से सम्बन्धित हैं। पूर्वार्चिक के अन्त में 55 मंत्रों का एक जो पर्व है, उसे 'अरण्यकाण्ड' कहते हैं। इसके बाद उत्तरार्चिक का प्रारम्भ होता है।

40 गेय साम सामवेद की कौथुम शाखा के उत्तर भाग में हैं, जिनमें प्रत्येकश: 3-3 ऋचाएँ होती हैं। 9 प्रपाठकों में प्रत्येकश: दो अथवा कहीं तीन भाग हैं। उत्तरार्चिक के अधिकांश मंत्र पूर्वार्चिक से ग्रहण किये गये हैं। इसमें दशरात्र, संवत्सर, एकाह, अहीन, सत्र, प्रायश्चित और शुद्र इन सात अनुष्ठानों का निर्देश है।

पूर्वार्चिक में ऋचाओं का क्रम छन्द और वर्णनीय देवताओं के अनुसार है तथा उत्तरार्चिक में यह क्रम यज्ञानुसार किया है। सामवेदी उद्गाता पुरोहित होने के लिए छात्र को आर्चिक द्वारा संगीत की दीक्षा लेना विहित है। उत्तरार्चिक के कुछ सूक्तों को कण्ठस्थ करने के बाद अभ्यास के बल पर ही सामवेदी उद्गाता पुरोहित तैयार होता है।

सामवेद की रामायणीय शाखा कौथुम शाखा से अधिक भिन्न नहीं है, बहुत कुछ समान है। मंत्र संख्या में समान है पर उच्चारण में भिन्न है। कौथुम में जहाँ 'हा' को 'उ' बोला जाता है, वहीं इस रामायणीय शाखा में 'हा' को 'वु' उच्चारण करते हैं।

सामवेद का सम्बन्ध यज्ञ, इन्द्रजाल और संगीत से है। मंत्रों की दृष्टि से यह वेद स्वतंत्र भले ही न हो पर यज्ञविधि में इसका स्थान विशेषता को प्राप्त है। सामवेद की कौथुम और रामायणीय शाखाओं में अल्पभेद भी है पर रामायणीय शाखा के पाठों को ही प्रमुखता दी है। रामायणीय शाखा का सायण भाष्य प्राप्त होता है। सन् 1968 में कौथुम शाखा प्रकाशित हुई, पर इस शाखा के पाठ सुव्यवस्थित न होने से इसे प्रामाणिकता प्राप्त नहीं हुई।

सामवेद के प्रमाणभूत पाठों के सम्बन्ध में आज भी अन्वेषण हो रहे हैं। संगीत में मान्य सात स्वरों का सामगान के समय प्रयोग होता है। सामवेदीय छान्दोग्योपनिषद् में सामगान के हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार और निधान नामक पाँच विभाग बताये हैं। इनमें प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार का अन्त:करण के भावों से और निधान का तानों से सम्बन्ध माना गया है। नारदीय शिक्षा में स्वरों के सम्बन्ध में निर्देश दिये गये हैं।

व्यासजी ने जैमिनि को सामवेद की संहिता प्रदान की। महाभारत के अनुसार यही जैमिनि राजसूय यज्ञ में और जनमेजय के सर्पसत्र में उपस्थित थे। जैमिनि से सुमन्तु, सुत्वा, सुकर्मा आदि से शिष्य परम्परा रूप में प्रवर्तित हुई। सुकर्मा ने सहस्र संहिताओं का विस्तार कर शिष्य परम्परा की वृद्धि की। ये सहस्र शाखाएँ काल के प्रवाह में विलय हो जाने से आज अनुपलब्ध हैं। रामायणीय नामक सात शाखाएँ ही आज प्राप्त हैं। शाख्यायनीय, सात्यमुद्गल, खल्वल, महाखल्वल, लांगल, कौथुम, गौतम और जैमिनीय ये नौ भेद रामायणीय शाखा के हैं। [स०ना०दा०]

सालिगराम (हजूर महाराज)

हमारे देश का सांस्कृतिक परिदृश्य अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं विविधताओं से परिपूर्ण माना जाता है। अध्यात्म की अगर बात की जाय तो अध्यात्म के क्षितिज पर हर युग में नये-नये नक्षत्रों का उदय होता रहा है। यह तो सच है कि वैदिक कालीन आध्यात्मिक परिवेश बारहवीं शताब्दी तक की यात्रा पूर्ण करते-करते काफी परिवर्तित हो गया और आम जन धर्म के मूल तत्वों के स्थान पर अंधविश्वास, रूढ़िवाद, बहुदेववाद एवं पुरोहितवाद को ही धर्म का दर्जा देने लगे। सम्भवत: इसी के विरोध में मुखर होकर कबीर, दादू, सुन्दरदास, गुरुनानक, निजामुद्दीन जैसे स्वर मुखरित हुए। इन सभी ने धर्म के वास्तविक स्वरूप को उजागर करने का भगीरथ प्रयत्न किया, किन्तु बहुसंख्यक समाज कर्मकांड एवं कह्वरवादी भावनाओं के मकड़जाल में ही उलझा रहा। मुगल साम्राज्य के पतन एवं अंग्रेजों के अभ्युदय ने भारतीय मानस को इतना पददलित एवं विखंडित कर दिया कि उसने न केवल दासता को अपनी नियति के रूप में स्वीकार कर लिया वरन् बहुदेववाद, कर्मकांड एवं पुरोहितवाद ही धर्म का वास्तविक स्वरूप है, इस धारणा को और भी पुख्ता कर इसी को अपना गौरव मान लिया। संकीर्णता एवं तर्कशून्यता से आक्रांत भारतीय मनीषा की विचाराशून्य धरा से अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में एक नवीन वृक्ष का उद्भव हुआ जिसने अध्यात्म के क्षेत्र में एक ऐसी ताजा हवा के झोंके के समान प्रवेश किया जिसकी खुशबू न केवल हृदय को आनन्द देने वाली थी वरन् जिसमें सहजता, सरलता, आडंबरहीनता एवं समरसता के रंग भी लिपटे हुए थे।

सनातन हिन्दू धर्म के योग पुरुष श्रीकृष्ण, जैन धर्म के तीर्थंकर नेमिनाथ, आदि देव, शिव एवं अनेक सूफी संतों की प्रज्ञा भूमि ब्रजमंडल के आगरा नगर के पन्नी गली से उदित इस आध्यात्मिक ज्योति के उद्घोषक थे, परमपुरुष पूरनधनी स्वामी जी महाराज सेठ शिवदयाल सिंह जिन्होंने सन् 1861 में 'राधास्वामी मत' के नाम से इस आध्यात्मिक ज्योति के स्वरूप को विश्लेषित कर मानवता के हितार्थ इसकी स्थापना की।

किन्तु इस स्थापना का श्रेय जाता है, उनके परम शिष्य परम पुरुष पूरनधनी हजूर महाराज राय सालिगराम बहादुर जी को। राधा स्वामी मत के दूसरे आचार्य परम पुरुष पूरनधनी राय सालिगराम का जीवन एवं चरित्र गुरु भक्ति साधना का ऐसा उदाहरण है, जिसका पर्याय मिलना आसान नहीं है। 14 मार्च सन् 1829 को आगरा नगर के सुप्रसिद्ध वकील राय बहादुर सिंह के घर राय सालिगराम बहादुर का जन्म हुआ।

चार वर्ष की आयु में ही पिता के देहांत के बाद माँ की प्रेरणा एवं संघर्ष की छाया में सालिगराम जी ने एक ओर अपनी शिक्षा मनोयोग से पूर्ण की और दूसरी ओर परम एवं संपूर्ण सत्य के रहस्योद्घाटन की यात्रा भी जारी रखी। यह उनकी मेधा का ही परिणाम था कि सन् 1847 में पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत के पोस्ट मास्टर जनरल के कार्यालय में एक सामान्य कार्यकर्ता के रूप में नौकरी प्रारंभ कर 34 वर्षों बाद सन् 1881 वे पोस्ट मास्टर जनरल के पद पर आसीन हुए। इस उच्च पद पर आसीन होने वाले वे प्रथम भारतीय थे।

प्रशासन के रूप में उन्होंने ऐसे क्रान्तिकारी सुधार किये एवं नवीन व्यवस्थायें प्रारम्भ कीं कि तत्कालीन शासन द्वारा उन्हें सन् 1871 में राय बहादुर की उपाधि से विभूषित किया गया। लैण्ड रेवेन्यू, मनीआर्डर, पार्सल इंश्योरेंस, वी.पी. पार्सल, बैरंग पत्र के नियम, तार संयोजन, एक पैसे के पोस्टकार्ड का प्रचलन एवं पंजाब प्रान्त के डाक अधिनियमों का

जनता की भाषा में अनुवाद आदि उनके ऐसे ही कार्य थे।

एक कुशल प्रशासक के रूप में स्वयं को सिद्ध करने से पूर्व ही उनके हृदय में ज्ञान के प्रति जो अटूट प्यास थी, परम सत्य को प्राप्त करने की जो असीम इच्छा थी एवं आध्यात्मिक रहस्यों को जानने की जो तीव्र अभिलाषा थी, इन सबको सन् 1858 में ही तब विराम मिल गया जब उनकी भेंट राधास्वामी दयाल परम पुरुष पूरनधनी स्वामी जी महाराज से हुई। यह न जाने कितने जन्मों से चली आ रही सतगुरु की खोज का परिणाम था और एक तरह से यह आध्यात्मिक इतिहास की पुनरावृत्ति थी। ये भेंट मछेन्द्रनाथ से गुरु गोरखनाथ की भेंट जैसी भेंट थी। जन्म-जन्म की प्यास मिट गई और फिर प्रारंभ हुआ गुरुभक्ति एवं सेवा का ऐसा क्रम जिसका साम्य इस युग में तो मिलना असंभव-सा है । सर्वांग समर्पित सेवक से भी अधिक दैन्य भाव से सन् 1858 से 1878 तक लगातार 20 वर्षों तक स्वामी जी महाराज के निजधाम सिधारने तक हजूर महाराज ने स्वामी जी महाराज की सेवा की।

'राधास्वामी मत' की स्थापना के साथ ही स्वामीजी महाराज ने मत के अनुयायियों के लिये दो अनिवार्यतायें निर्धारित की थीं, गुरु भक्ति और शब्द भक्ति-सुरत शब्द योग। हजूर महाराज ने गुरु भक्ति की साधना के सारे ही आयाम तय कर डाले। इसका ही परिणाम था कि स्वामी जी महाराज को उनमें ही अपने सच्चे उत्तराधिकारी की छवि नजर आई और निजधाम जाने से पूर्व उन्होंने हजूर महाराज को अपने उत्तराधिकारी के रूप में घोषित कर दिया।

सन् 1887 में ब्रिटिश शासन के अनुरोध को अस्वीकार कर सरकारी सेवा से अवकाश लेकर हजूर महाराज ने स्वयं को आध्यात्मिक दायित्व के निर्वहन हेतु समर्पित कर दिया। वैसे अवकाश ग्रहण करने से पूर्व ही हजूर महाराज ने 'राधास्वामी मत' की सेवार्थ अपनी भव्य परिकल्पना को स्वरूप प्रदान करने हेतु 'हजूरी भवन' की स्थापना की प्रक्रिया सन् 1885 में ही प्रारम्भ कर दी थी। अपने जन्मस्थान के निकटवर्ती 3 टीलों पर स्थापित हजूरी भवन जिसे प्रारम्भ में क्रमश: मकान राय सालिगराम बहादुर एवं 'राधास्वामी दरबार' नाम दिया। उनके निजधाम सिधारने के बाद हजूरी भवन के नाम से प्रख्यात हुआ।

हजूरी भवन के हजूरी भजन कक्ष में हजूर महाराज ने स्वामी जी महराज द्वारा दूसरी अनिवार्य साधना सुरत शब्द योग का अभ्यास किया । यह स्वयं स्थापित आध्यात्मिक सत्य है कि सन्त पुरुषों द्वारा साधना हेतु प्रयोग किया गया स्थल सिद्ध स्थल के रूप में परिवर्तित हो जाता है। सम्भवत: यही कारण है कि न केवल हजूरी भवन कक्ष वरन् पूरा हजूरी भवन ही राधास्वामी की ध्वनि से गुंजायमान है। सन् 1887 से 1898 तक हजूरी भजन कक्ष को हजूर महाराज ने दैनिक सत्संग, प्रवचन एवं सान्निध्य से विभूषित किया।

हजूर भवन में हजूर महाराज लाला जी महाराज (तृतीय गुरु), कुँवरजी महाराज (चतुर्थ गुरु) की पवित्र समाधियाँ, पवित्र लीला स्थली एवं निजी कक्ष के अतिरिक्त प्रेम निवास, प्रेम कुटी, आनंद भवन आदि कक्षों की विस्तृत शृंखला विद्यमान है किन्तु वास्तव में हजूरी भवन गुरुभक्त हजूर साहब की गुरुभक्ति का ही स्मारक है और उनकी समाधि प्रेम विलास भव्यता, सौन्दर्य, आधुनिक स्थापत्य, संतमत के समन्वयवाद, मानवता एवं प्रेम की जीवंत मूर्ति है।

हजूर महाराज ने राधास्वामी मत की विविध धारणाओं को विस्तार देते हुए अनेक नवीन विश्लेषणात्मक विचार भी प्रस्तुत किये। काल (ब्रह्म), माया, कर्म एवं मोक्ष पर अपने विचार रखते हुए उन्होंने सतशब्द, सतगुरु, सत अनुराग एवं सतसंग इन 4 तत्वों की अनिवार्यता का प्रतिपादन किया

'शब्द' को उन्होंने कुल मालिक के विशाल भंडार में उत्पन्न कंपन के साथ उठने वाली तरंग सार तत्व के रूप में परिभाषित किया। इस ध्वन्यात्मक अभिव्यक्ति को आन्तरिक अभ्यास से ही सुनना सम्भव है।

सतगुरु को हजूर साहब ने राधास्वामी का देहस्वरूप माना। सतगुरु कुल मालिक के समस्त दिव्य गुणों, प्रेम, आनन्द, आकाश, शक्ति, सत्य एवं आत्मतत्व से परिपूर्ण है। एकनिष्ठ प्रेम अथवा कुल मालिक की प्राप्ति की सबल उत्तरोत्तर कामना एवं उसके प्रति दृढ़ निश्चय के रूप में हजूर साहब ने सत अनुराग को परिभाषित किया।

सतगुरु का संग ही सत्संग है । इसके दो रूप हैं प्रथम है-बाह्य सत्संग अर्थात सामूहिक प्रार्थना में उपस्थिति, सतगुरु के प्रवचन का श्रवण, उनके रूप का दर्शन एवं आंतरिक ध्यान। आंतरिक सत्संग का तात्पर्य है-मन एवं सुरत को एकाग्र कर शब्द की धार पर आंतरिक अभ्यास के समय आरोहण। [सु०स०]

साहब पंथ

आधुनिक काल में ब्रज में स्थापित होने वाले कई निर्गुण मतों में 'साहब पंथ' का प्रथम स्थान है। इसके संस्थापक संत तुलसी साहब हैं। कहा जाता है कि वे पेशवा से आकर ब्रजमण्डल के हाथरस नामक नगर में स्थाई रूप से रहने लगे। हाथरस में ही उन्होंने पंथ का प्रचार किया। तुलसी साहब की किसी रचना से यह ज्ञात नहीं होता कि उन्हें हाथरस आने की प्रेरणा किस प्रकार प्राप्त हुई। ब्रजमण्डल के अनेक स्थान अपनी धार्मिक महत्ता के लिए प्रसिद्ध रहे हैं, परन्तु हाथरस को उनमें कभी सम्मिलित नहीं किया गया। इस स्थान में ऐसी कोई धार्मिक परम्परा नहीं है, जो तुलसी साहब जैसे संत वहाँ आकर रहते। डॉ. विल्सन के एक ग्रंथ में शून्यवादी सम्प्रदाय की चर्चा की गयी है। जिसके प्रचार में हाथरस के राजा ठाकुर दयाराम के दरबारी बख्तावर ने 'व्योमसार' और 'शूनिसार' नामक दो ग्रंथों की रचना की थी। ठाकुर दयाराम को हाथरस की रियासत संवत् 1832 में मिली एवं संवत् 1874 में अंग्रेजों से युद्ध में पराजित होकर भागना पड़ा। संवत् 1898 में उनका गोलोकवास हो गया। शायद यह सम्भव हो सकता है कि उस शून्यवादी सिद्धान्तों को जानने हेतु तुलसी साहब हाथरस आये हों। इस विषय में कोई उचित जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। [जि०कु०]

साहित्यकौमुदी

यह 11 परिच्छेदों (अध्यायों) में विभक्त है। काव्य-प्रयोजन, काव्य-स्वरूप एवं काव्य-भेद की चर्चा प्रथम अध्याय में हुई है। शब्द और अर्थ का पारस्परिक भेद द्वितीय अध्याय का मुख्य प्रतिपाद्य है। वाचक शब्द लक्षण एवं इसके भेदों पर भी प्रकाश डाला गया है। अर्थ व्यञ्जकता तृतीय अध्याय में व्याख्यायित हुई है। चतुर्थ में ध्वनि तथा उसके प्रकार, स्थायीभाव एवं व्यभिचारीभाव, रसभासादि तथा लक्ष्य व्यंग्य आदि विषयों का चित्रण है। गुणीभूत व्यंग्य और इसके भेदों का वर्णन पंचम अध्याय में हुआ है। षष्ठ अध्याय चित्र-काव्य का परिचय देता है। अलंकार दोष सप्तम अध्याय से सम्बद्ध है। अलंकार गुण अष्टम अध्याय में चर्चित हुए हैं। नवम एवं दशम अध्याय क्रमशः शब्द और अर्थ के अलंकारों को अपना विवेच्य बनाते हैं। एकादश अध्याय में शब्द तथा अर्थ के ऐसे अलंकारों पर प्रकाश है, जिनकी चर्चा आचार्य भरत मुनि के द्वारा न हुई थी।

उदाहरण हेतु आचार्य ने ऐसे पद्यों को संकलित करने की चेष्टा की है, जो न केवल लक्षणानुकूल हों, अपितु मनोहारी भी हों। विषयवस्तु चयन में यत्र-तत्र काव्यप्रकाश का प्रभाव परिलक्षित होता है। कृष्णानन्दिनी नाम्नी इसकी टीका का भी उल्लेख हुआ है। बम्बई से सटीक इसका प्रकाशन हुआ था। [क०उ०]

सिक्खों के गुरु

अंगद देव-सिक्खों की गुरु परम्परा में गुरुनानक के बाद दूसरे गुरु, गुरु अंगद बने। इनका जन्म पंजाब के फिरोजपुर जिले में हरीक नामक स्थान पर 1504 ई. में हुआ था। कहा जाता है अपनी माता दया कौर के प्रभाव के कारण ये दुर्गा की उपासना करते थे व प्रतिवर्ष एक भक्तों का जत्था लेकर ज्वालामुखी मन्दिर के दर्शन हेतु जाते थे। एक बार इन्होंने सिक्ख भाई जोधा से गुरुनानक की वाणी सुनी तथा तत्काल करतारपुर गुरु नानक के दर्शन हेतु चले गये। गुरु अंगद नानक देव से अत्यन्त प्रभावित हो सिक्ख बन गये तथा यहीं उन्हें अपने वास्तविक नाम 'लहना' के स्थान पर एक नया

नाम गुरुनानक ने प्रदान किया अंगद। नानक लहना की सेवाभाव से अत्यधिक प्रभावित हो उन्हें अपने शरीर का ही एक भाग कहने लगे। जो नाम कालान्तर में लोकप्रिय हो गया। गुरु अंगद (लहना) ने गुरुनानक की मृत्यु 1538 ई. के बाद उनके विचारों को फैलाने का अभूतपूर्व कार्य किया। गुरु अंगद ने करतारपुर के स्थान पर खदुर साहिब को अपना निवास स्थान बनाया। स्थानीय भाषा में गुरुनानक के सरल उपदेश के प्रचार के साथ ही एक नई लिपि जिसे गुरुमुखी कहा जाता है का सृजन किया। इसका एकमात्र उद्देश्य गुरुनानक के विचारों को जनसाधारण तक पहुँचाना था। भाई बाला की सहायता से अंगद देव ने नानक देव का जीवन चरित्र लिखा। गुरुनानक की वाणी को पुस्तक के रूप में संकलित करने साथ-साथ गुरु अंगद ने नानक द्वारा प्रारम्भ की गयी लंगर व्यवस्था को भी स्थायी रूप प्रदान किया। उससे अन्तर्जातीय खान-पान को प्रोत्साहन मिला और जाति बन्धन शिथिल हुए और सिक्खों में सामाजिक समानता की भावना का विकास हुआ। गुरु अंगद ने स्वयं प्रेरणादायी कविताओं की रचना की जिन्हें कालान्तर में गुरु ग्रन्थ साहिब में स्थान दिया गया।

मान्यता है कि यदि नानक ने लहना (अंगद) को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त न किया होता तो कालान्तर में नानकपंथी या सिक्ख धर्म हिन्दू धर्म में ही समाहित हो जाता। अनुयायियों के लिए कठोर अनुशासन, सेवा तथा ओजस्वी व्यक्तित्व आदि विशेषताओं से युक्त गुरु अंगद से प्रभावित होकर मुगल बादशाह हुमायूँ भी गुरु से आशीर्वाद लेने गया था।

गुरु अमरदास-सन् 1552 ई. में गुरु अंगद ने अपनी मृत्यु के समय अपने गुरु की गद्दी किसी पुत्र को न देकर एक शिष्य अमरदास को प्रदान की। अमरदास को सिक्खों के तीसरे गुरु होने का गौरव प्राप्त है। मान्यता है कि सिक्ख मत में दीक्षित होने से पूर्व ये वैष्णव थे। किन्तु अपने भाई की पत्नी बीबी अमरू जी के द्वारा गुरुनानक व अंगद की वाणियाँ सुनकर यह बहुत प्रभावित हुये तथा गुरु अंगद के शिष्य बन गये। अमरदास का गुरुपद को लेकर अंगद के पुत्र बाबा श्रीचन्द्र से विवाद हो गया। अतः श्रीचन्द्र ने अपना एक अलग सम्प्रदाय उदासी बना लिया।

शान्त और वैरागी प्रवृत्ति के गुरु अमरदास ने गोइन्दवाल को अपना प्रधान कार्यालय बनाया और वहाँ एक बावरी भी खुदवाई जो कालान्तर में सिक्खों का तीर्थ बन गया है। सर्वप्रथम उन्होंने लंगर की परिपाटी में सुधार करते हुए प्रत्येक दर्शनार्थी के लिये लंगर आवश्यक कर दिया। 'पहले पंगत फिर संगत' पर जोर देते हुये लंगर में उत्तम भोजन की व्यवस्था की। जबकि स्वयं वे साधारण भोजन करते थे। गुरु के इस नियम के कारण ही मुगल बादशाह अकबर ने भी गुरु से भेंट करने से पूर्व उनके लंगर में भोजन किया था।

गुरु ने अपने धार्मिक साम्राज्य को 22 मञ्जियों (गद्दियों) मे बाँटा जिनमें से प्रत्येक गद्दी का प्रधान सिक्ख गुरु स्वयं नियुक्त करते थे। उस प्रधान का कर्तव्य सिक्खों को सुरक्षा तथा गुरु के उपदेशों का प्रचार करना था। गुरु ने पारिवारिक सन्त होने का उपदेश दिया और शिष्यों को उचित ढंग से जीविकोपार्जन हेतु प्रयास करने के लिये प्रेरित किया। वे स्वयं व्यापारी पुत्र थे तथा खेती और व्यापार करते थे। सिक्खों के लिये जन्म, विवाह अैर मृत्यु के भिन्न संस्कारों को प्रचलित करना गुरु अमरदास का विशेष कार्य था। विवाह पद्धति को सरल बनाते हुये एक नवीन स्वरूप प्रदान किया जिसे लवन कहा जाता है।

गुरु ने सती प्रथा का विरोध किया तथा अनुयायियों का मदिरा पान प्रतिबन्धित किया। गुरु अमरदास ने स्त्रियों के अधिकारों का समर्थन किया व पर्दा प्रथा की भर्त्सना की। इस क्रम में उन्होंने स्वयं स्त्रियों को भी सिक्ख धर्म प्रचारक के पद पर नियुक्त किया। मुगल बादशाह अकबर ने इनसे प्रभावित हो इनकी पुत्री के नाम पंजाब में कई गाँव दान में दिये तथा उन्हें तीर्थयात्रा कर से भी मुक्त कर दिया। गुरु अमरदास ने सिक्खों से माँग की कि वे अपनी सम्पत्ति और आत्मा गुरु की इच्छा पर छोड़ दें।

अमरदास के समय में ही हिन्दुओं और सिक्खों का भेद स्पष्ट रूप से प्रकट होने लगा तथा मतावलम्बियों को एक

सूत्र में बाँधने हेतु नवीन संस्कारों के प्रवर्तन के कारण सिक्ख एक समाज के रूप में स्थापित हो गया। गुरु ग्रन्थ साहब में इनकी वाणियाँ संकलित हैं।

गुरु रामदास-सिक्ख गुरु अमरदास ने अपने पुत्रों को गुरुपद के योग्य न पाकर अपने जामाता तथा प्रिय शिष्य रामदास को चौथे गुरु के रूप में नियुक्त किया व रामदास को देवत्व गुणों से युक्त कहा। गुरु रामदास ने सर्वप्रथम आत्मिक तथा सांसारिक प्रभुत्व प्राप्त करने को अपना लक्ष्य बनाया। मुगल बादशाह अकबर ने इन्हें 1577 ई. में 500 बीघा जमीन दी। जिसमें प्राकृतिक तालाब था। यहाँ रामदास ने एक नया नगर चकगुरु या रामदासपुर नाम से बसाया जो कालान्तर में अमृतसर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यहीं पर स्वर्ण मन्दिर का भी निर्माण हुआ।

गुरु ने सन्तोषसर और एक अन्य तालाब की खुदाई के लिये अपने शिष्यों को दूर-दूर धन एकत्र करने हेतु भेजा। अपने तीसरे पुत्र अर्जुन को गद्दी का पैतृक अधिकारी निश्चित किया। यह विचार भी गुरु रामदास ने ही दिया कि एक गुरु की आत्मा दूसरे गुरु में स्वत: ही प्रविष्ट हो जाती है। अत: प्रत्येक गुरु का सम्मान समान रूप से करना चाहिये।

गुरु अर्जुनदेव-सिक्खों के पाँचवें गुरु तथा रामदास के पुत्र गुरु अर्जुन लगभग पच्चीस वर्षों तक सिक्ख पन्थ के गुरु रहे और अपने गुरुपद में रहकर उन्होंने सिक्ख धर्म के उत्थान हेतु अनेक कार्य किये। उन्होंने अमृतसर की खुदाई का कार्य पूर्ण किया और तरनतारन नामक नगर बसाया। लाहौर में भी एक बावरी खुदवाने का कार्य गुरु के द्वारा किया गया। गुरु अर्जुन ने सिक्ख सम्प्रदाय को शक्तिशाली और सम्पन्न बनाने में सफलता प्राप्त की। उन्होंने जगह-जगह धर्म प्रचारक नियुक्त किये। अमृतसर में स्वर्ण मन्दिर बनवाने हेतु तथा सम्प्रदाय के उत्थान के लिये गुरु ने सिक्खों से अपनी आय का दशांश सम्प्रदाय को प्रदान करने का आदेश दिया व मसन्द नामक अधिकारी यह धन एकत्र करने के लिये नियुक्त किया।

सिक्ख धर्म हेतु व्यवस्थित आय का प्रबन्ध करने के साथ ही गुरु अर्जुन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य आदि ग्रन्थ या गुरु ग्रन्थ साहब का सम्पादन है। यह कार्य 1604 ई. में समाप्त हुआ। इस ग्रन्थ में सिक्ख गुरुओं के साथ 18 हिन्दू भक्तों तथा कबीर, फरीद, रैदास इत्यादि के भी उपदेशों का संग्रह था। गुरु अपने शिष्यों की आध्यात्मिक प्रगति के साथ-साथ नैतिक प्रगति, भौतिक व शारीरिक प्रगति की भी आशा करते थे। गुरु का दरबार शानौ-शौकत से भरपूर था, किन्तु स्वयं गुरु को उससे लगाव न था। मुगल बादशाह जहाँगीर के विद्रोही पुत्र शहजादा खुसरो ने भी गुरु की ख्याति सुनकर उनके दर्शन कर आशीर्वाद प्राप्त किया। इस घटना से जहाँगीर गुरु से रुष्ट हो गया व उनकी सम्पत्ति जब्त कर उन्हें बन्दीगृह में यातनाएँ देकर मरवा डाला। इस घटना ने सिक्खों को सैनिक सम्प्रदाय और गुरु को सैनिक-सन्त बनने की आवश्यकता अनुभव हुयी। अपनी मृत्यु के समय गुरु अर्जुन ने अपने पुत्र व गद्दी के उत्तराधिकारी हरगोविन्द के लिए सन्देश दिया था कि-''उससे कहना कि वह शोक न मनाये और न पुरुषत्वहीन व्यक्ति की भाँति रोये, बल्कि ईश्वर की प्रार्थना करे और अपने सिंहासन पर वह पूर्ण शस्त्र धारण करके बैठे और अपनी सामर्थ्य के अनुसार बड़ी से बड़ी सेना रखे।''

गुरु अर्जुन के बलिदान से पन्थ को बड़ी शक्ति प्राप्त हुई। यह सिक्ख इतिहास की महत्त्वपूर्ण घटना है। उन्हें अब केवल भक्त ही नहीं अपितु रण में लड़ने वाले योद्धा का भी रूप धारण करना अवश्यम्भावी हो गया था। स्वर्ण मन्दिर का निर्माण उनका अभूतपूर्व कार्य है।

गुरु हरगोविन्द-गुरु अर्जुन के पुत्र हरगोविन्द उनकी मृत्यु के पश्चात गुरु बने। छठें गुरु हरगोविन्द की आयु गद्दी ग्रहण करते समय 11 वर्ष की थी। अपने पिता की आज्ञा का पालन करते हुये इस नवीन गुरु ने दस दिन तक गुरु ग्रन्थ साहब का पाठ कराया और उसके पश्चात् अपने कमर में दो तलवारें बाँधकर वह अपनी गद्दी पर बैठे। इन दो तलवारों को धारण करने का अर्थ था धार्मिक सत्ता तथा राज-सत्ता। गुरु ने सच्चा पादशाह की पदवी धारण की और राजोचित चिह्न छत्र, शस्त्र और बाज धारण किये और सैनिक वेश में रहना आरम्भ किया। अमृतसर की किलेबन्दी करने के साथ

ही तख्त अकाल बंगा या प्रभु का तख्त की स्थापना की। उन्होंने धार्मिक शिक्षा के साथ शिष्यों को सैनिक शिक्षा भी प्रदान की। वे स्वयं एक कुशल सैनिक थे। राजसत्ता का प्रतीक दरबार में नगाड़ा बजाने की प्रथा भी उन्होंने आरम्भ की। भेंट के रूप में गुरु हरगोविन्द ने धन के स्थान पर शस्त्र और घोड़े लेने प्रारम्भ किये।

जहाँगीर ने उनसे उनके पिता अर्जुन पर किये जुर्माने की माँग करना आरम्भ किया तथा गुरु हरगोविन्द के आपत्ति करने पर उन्हें लगभग दो वर्ष तक ग्वालियर के किले में बन्दी बनाकर रखा गया तथा बाद में छोड़ दिया गया। थोड़े समय की शान्ति के बाद पुन: मुगल बादशाह शाहजहाँ के काल में सिक्ख मुगल संघर्ष पुन: प्रारम्भ हो गया। कारण था कि शाहजहाँ का प्रिय बाज उड़कर गुरु के खेमे में चला गया था। गुरु हरगोविन्द ने उसे वापस करने से मना कर दिया था। गुरु ने शाही सेनाओं की टुकड़ियों को परास्त करने में सफलता पायी । अमृतसर, करतारपुर आदि कई स्थानों पर युद्ध हुए। अन्त में गुरु हरगोविन्द कीरतपुर चले गये वहीं 1645 ई. में स्वर्ग सिधार गये।

गुरु हरराय-गुरु हरगोविन्द का उत्तराधिकारी उनका पौत्र हरराय बना। चौदह वर्ष की आयु में इन्हें गुरुपद प्राप्त हुआ। नवीन गुरु ने शान्तिमय प्रचार की नीति अपनायी। तथापि अपने साथ एक सेना रखी और एक अर्ध-स्वतन्त्र सैनिक सरदार के रूप में अपना अस्तित्त्व बनाकर रखा। उल्लेखनीय है कि उन्होंने राजनीतिक गतिविधियों से स्वयं को पृथक रखा और यह ध्यान रखा कि मुगलों से उनका संघर्ष न हो। परन्तु मुगल शहजादा दाराशिकोह जोकि उदार धार्मिक विचारों का था उनके सम्पर्क में आया। उत्तराधिकार के युद्ध में पराजित हो वह गुरु हरराय से मिला जिस बात पर औरंगजेब गुरु से अप्रसन्न हो गया और उसने उन्हें दिल्ली दरबार में उपस्थित होने की आज्ञा दी। गुरु हरराय ने दिल्ली दरबार में स्वयं न जाकर अपने ज्येष्ठ पुत्र रामराय को वहाँ भेजा। गुरु के पुत्र रामराय ने औरंगजेब को प्रसन्न करने के लिए गुरु ग्रन्थ साहब के कुछ पदों के शब्दों में परिवर्तन कर दिया जो इस्लाम विरुद्ध थे। इस बात से क्षुब्ध होकर तत्काल ही गुरु हरराय ने रामराय को पदच्युत कर अपने छोटे पुत्र छह वर्षीय हरकिशन को अपना उत्तराधिकारी चुना। सन् 1661 ई. में गुरु हरराय की मृत्यु हो गयी।

गुरु हरकिशन-सिक्ख सम्प्रदाय के आठवें गुरु हरकिशन हुये। गुरुपद प्राप्त करते समय इनकी आयु मात्र पाँच वर्ष की थी। वस्तुत: ये सबसे कम आयु में सिक्ख गुरु बनने वाले सन्त थे। अपने बड़े भ्राता रामराय से गुरुपद को लेकर हुये विवाद के कारण मुगल सम्राट औरंगजेब ने इन्हें दिल्ली दरबार में बुलाया जहाँ तीन साल बाद इनकी मृत्यु अल्पायु में ही हो गयी।

मान्यता है कि जब हरकिशन दिल्ली पहुँचे तब वहाँ चेचक की बीमारी फैली हुयी थी। अत: गुरु हरकिशन ने अपने आशीर्वाद से दिल्लीवासियों को तो इससे मुक्त कर दिया, किन्तु इस कष्टप्रद रोग को उन्होंने स्वयं के ऊपर ले लिया जो उनके प्राणों को हरण करने का कारण बनी। गुरु हरकिशन की स्मृति तथा सम्मान में दिल्ली में बाला साहिब नामक गुरुद्वारा बनाया गया जो अद्यतन सिक्खों तथा अन्य धर्म के लोगों के लिए दर्शनीय है। गुरुबानी में योगदान न दे पाने के बाद भी गुरु हरकिशन का महत्त्वपूर्ण कार्य उत्तराधिकारी चिह्नित करना था। मृत्यु से पूर्व उनके मुख से निकले शब्द बाकला दे बाबा द्वारा ही यह निश्चित हुआ कि बाकला में नवीन गुरु अर्थात गुरु तेग बहादुर मिलेंगे। बादशाह ने भी इनके अलौकिक व्यक्तित्त्व से प्रभावित हो इन्हें गुरु स्वीकार किया था।

गुरु तेग बहादुर-गुरु हरगोविन्द के पुत्र तथा गुरु हरकिशन के उत्तराधिकारी गुरु तेग बहादुर सिक्खों के नवें गुरु हुये। इन्होंने अपना निवास स्थान आनन्दपुर बनाया। मुगलों से शत्रुता गुरु को विरासत में प्राप्त हुयी थी। औरंगजेब की नीतियों का विरोध करने तथा कश्मीरी पण्डितों का पक्ष लेने तथा इस्लाम न स्वीकार करने के कारण मुगल बादशाह ने गुरु को पाँच दिन घोर यातना देने के बाद मार डाला। (सन् 1675 ई.) । गुरु तेगबहादुर शान्त प्रवृत्ति और एक सन्त का जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति थे। औरंगजेब के दरबार में हाजिर होने से पूर्व उन्होंने अपने पुत्र गुरु गोविन्द सिंह को उत्तराधिकारी नामित किया। गुरु तेगबहादुर की शहीदी के उपरान्त उनके शीश को जीवन नामक सिक्ख ने

आनन्दपुर साहब में गुरु गोविन्द सिंह के समक्ष प्रस्तुत किया जिसे देखकर गुरु ने चौपाई पढ़ी-

साधन हेत इती जिनि करी। सीस दिया पर, सी न उचरी॥
धरम हेत साका जिनि कीआ। सीस दीआ पर सिररू न दीआ॥

उनके धड़ को एक बंजारा लक्खी शाह बैलगाड़ी में छुपाकर अपने घर ले आया तथा ये भेद न खुले कि उसने गुरु का अन्तिम संस्कार किया है उस धड़ को घर में रखकर अपने घर को ही अग्नि के सुपुर्द कर दिया। गुरु तेगबहादुर के बलिदान ने उनके उत्तराधिकारी गोविन्द में तथा समूचे सिक्ख समाज में प्रतिशोध की ज्वाला को भड़का दिया। गुरु तेगबहादुर से पूर्ववर्ती तीन गुरुओं गुरु हरगोविन्द, गुरु हरराय और गुरु हरकिशन ने धार्मिक रचनाएँ नहीं की थीं। गुरु तेगबहादुर ने इस कार्य को पूरा किया। उनकी कविताएँ मुख्यतया वैराग्य से परिपूर्ण थीं एवं उत्तर प्रदेश और बिहार में अधिक समय तक रहने के कारण उनकी रचनाओं पर ब्रजभाषा का पूर्ण प्रभाव है।

गुरु गोविन्द सिंह -गुरु गोविन्द सिंह सिक्खों के दसवें और अन्तिम गुरु थे। इनका जन्म पटना में हुआ था। जीवन के आरम्भिक काल में ये माखोवाल (आनन्दपुर) में रहे। अपने पिता की हत्या का प्रतिशोध लेने का दृढ़ संकल्प कर तथा औरंगजेब की धर्मांध नीतियों का विरोध करने हेतु गुरु गोविन्द सिंह ने युद्ध की शिक्षा देना आरम्भ किया और पठानों को अपनी सेना में भर्ती किया।

सन् 1699 ई. में वैशाखी के दिन गुरु गोविन्द सिंह ने दल खालसा का निर्माण किया। उन्होंने आनन्दपुर में सिक्खों के एक विशाल सम्मेलन में पाँच आदमी चुने जिन्हें पंच प्यारे के नाम से पुकारा जाता है। उन्होंने अमृता पिया इस प्रकार गुरु एवं खालसा एक-दूसरे में एकाकार हो गये। खालसा लोगों को साधारण जनता से भिन्न वस्त्र धारण करने होते थे तथा नाम के आगे सिंह लगाने के साथ ही पंचककार केश, कृपाण, कंघा, कच्छा, कड़ा सदैव साथ रखने होते थे। इसके अतिरिक्त उन्हें जाति-भेद तथा खानदान के सभी भेद छोड़ने पड़ते थे। औरंगजेब ने गुरु का विरोध करते हुए उनके पुत्रों को सरहिन्द ले जाकर जिन्दा दीवार में चिनवा दिया था। परिणामस्वरूप युद्ध हुआ जिसमें उनके दो अन्य पुत्र भी मारे गये, किन्तु गुरु ने हार न मानी व सशस्त्र विद्रोह जारी रखा। कालान्तर में वे दक्षिण भारत चले गए जहाँ एक पठान ने उन्हें छुरा मार दिया तथा दो माह पश्चात गुरु ने अन्तिम समय निकट जानकर स्वयं को अग्नि को सौंप दिया। गुरु गोविन्द सिंह जी ने सिक्खों को मुगलों की धर्मांध नीतियों से बचाने का यथा-सम्भव प्रयत्न किया इसी कारण कहा जाता है-

न कहो अब की न कहो तब की।
अगर न होते गुरु गोविन्द सिंह सुन्नत होती सबकी।

सफल योद्धा होने के साथ-साथ गुरु तीन भाषाओं ब्रजभाषा, गुरुमुखी और फारसी के ज्ञाता थे। क्योंकि गुरु ग्रन्थ साहिब में उनकी वाणियाँ इन तीनों भाषाओं में मिलती हैं। गुरु गोविन्द सिंह का सिक्ख धर्म में महानतम योगदान था। उन्होंने गुरुपद समाप्त कर आदिग्रन्थ या गुरुबानी को सिक्खों का सर्वस्व बताया। मृत्यु के समय उनके शब्द थे-"जहाँ कहीं भी पाँच सिक्ख एकत्रित होंगे, मैं वहाँ उपस्थित रहूँगा। भविष्य में खालसा गुरुमय और गुरु खालसामय होगा। मैंने अपने ज्ञान और शरीर की आत्मा ग्रन्थ साहब और खालसा में निहित कर दी है।

गुरुपद समाप्त कर गोविन्द सिंह ने प्रजातन्त्र की रक्षा की तथा दूरदर्शिता दिखाते हुए भविष्य के खतरे को भी कम कर दिया। सिक्खों को एक कट्टर धार्मिक सम्प्रदाय में परिवर्तित करने के साथ ही दशम् पादशाह का ग्रन्थ या गुरु

ग्रन्थ साहिब जो आदि ग्रन्थ का परिष्कृत रूप था को सार्वभौम सत्ता, सर्वसम्मति से स्वीकार किया जाना था। नि:सन्देह सिक्ख सम्प्रदाय को उनका योगदान महानतम है। [शि०श०]

सिद्धान्त जाह्नवी

यह श्रीनिम्बार्काचार्य से सोलहवें आचार्य श्रीदेवाचार्य प्रणीत है। ब्रह्मसूत्र पर समीक्षात्मक भाष्य के रूप में इसकी रचना की गई थी। इसके प्रारम्भ में 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' सूत्र की व्याख्या करते हुए पहले भट्ट भास्कर का पक्ष उद्धृत किया गया है। इसके पश्चात अद्वैतवाद और भेदवाद का उल्लेख करते हुए विशिष्टाद्वैत की भी चर्चा की गई है। इन सभी में अद्वैतवाद की आलोचना मुख्य है। इसके चार अध्यायों के सोलह पादों में से केवल प्रथम पाद ही इस समय उपलब्ध है, जिसकी अब तक दो तरंगें ही प्रकाशित हो सकी हैं। द्वैताद्वैतमत का प्रबल समर्थन इसमें दृष्टव्य है। [क०उ०]

सिद्धान्तदर्पण

प्रमेयरत्नावली की तरह यह भी एक प्रकरण ग्रंथ है। इसका वर्णन क्षेत्र पूर्व की रचनाओं से विशिष्ट है। इसकी विषयवस्तु 7 प्रमाओं में विभक्त है।

प्रथम प्रमा में वेद की अपौरुषेयता का प्रतिपादन है। वेद के निन्दक बौद्ध आदि मतों की यहाँ निन्दा है। वेदव्यास रचित इतिहास पुराण को भी अपौरुषेय सिद्ध करने का प्रयास द्वितीय प्रमा में हुआ है।

तृतीय से सप्तम प्रमा तक श्रीमद्भागवत को शीर्षस्थ प्रमाण के रूप में सिद्ध करने की चेष्टा है। इस सिद्धि में प्रतिकूल पड़ने वाली पुराणों की बातों तथा विरोध में तर्क प्रस्तुत करने वाले प्रतिपक्षियों के विचारों का उच्छेदन प्रस्तुत है।

गौड़ीय मिशन द्वारा बंग लिपि में यह प्रकाशित हुआ था। प्राप्त जानकारी के अनुसार नवद्वीप वासी हरिदास जी के द्वारा इसका प्रकाशन देवनागरी में भी कराया गया था। [क०उ०]

सिद्धान्तमुक्तावली

इस ग्रंथ का सिद्धान्त विवेचन की दृष्टि से विशेष महत्त्व है। इसमें आचार्य वल्लभ ने सेवा के स्वरूप पर प्रकाश डाला है। उनके अनुसार मानसी सेवा ही भक्ति है तथा तनुजा और वितजा सेवाएँ मानसी सेवा की पूर्वभूमिका हैं। इसी में वल्लभ ने ब्रह्म के पुरुषोत्तम और अक्षर स्वरूप की भी विवेचना की है। पुष्टिमार्गीय, मर्यादामार्गीय तथा ज्ञानमार्गीय साधकों की स्थिति और उपलब्धियों पर भी विचार किया गया है। [क०उ०]

सिद्धान्तरत्न

बलदेव विद्याभूषण की दार्शनिक निर्मितियों में सिद्धान्तरत्न का भी विशेष स्थान है। भाष्य के सिद्धान्तों का पूरक होने अथवा व्याख्या करने के कारण इसे भाष्य पीठिका के रूप में भी प्रतिष्ठा प्राप्त है। डॉ. एस.एन. दास गुप्ता सिद्धान्तरत्न का प्रणयन बलदेव के द्वारा किये जाने पर विप्रतिपत्ति का अनुभव करते हैं। पर इनके अतिरिक्त महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज से लेकर अनेक दार्शनिक विचारक इसे बलदेव की रचना के रूप में ही उद्धृत करते हैं। डॉ. गुप्ता जी इसे विद्याभूषण प्रणीत मानने में दो विसंगतियों का संकेत करते हैं-

(1) रचना के प्रारम्भ में अपनी रचना की प्रशंसा। (2) गोविन्द भाष्य में उल्लिखित विषयों के अतिरिक्त भी

विवेचन सामग्री की लब्धि। पर ये उभय विसंगतियाँ इतनी वजनदार नहीं हैं कि जिनके कारण सिद्धान्तरत्न को बलदेव की रचना न मानी जाय।

सिद्धान्तरत्न में निम्नलिखित आठ पाद हैं-पाञ्चजन्य, कौमोदकी, सुदर्शन, तार्क्ष, वामन, त्रिविक्रम, नन्दक एवं पद्मक। प्रथम पाद में सांख्य, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा प्रभृति दार्शनिक मतों द्वारा चर्चित परम पुरुषार्थों का वर्णन है। परन्तु इन सब में अपूर्णता का दर्शन करते हुए ग्रंथकार वादरायण सम्मत (स्वमतानुकूल) पुरुषार्थ में श्रेष्ठता का साक्षात्कार करता है। इसके अनन्तर इस पाद में पुरुषोत्तम के स्वरूप, उनकी स्वभावगत विशेषताओं पर दृष्टिपात है। भक्ति के स्वरूप तथा उसके आतिशय्य का भी उल्लेख यहाँ हुआ है। भक्ति और ज्ञान एक दूसरे के पूरक बतलाये गये हैं। रचनाकार की दृष्टि में ज्ञान एवं उपासना को एक दूसरे का विरोधी स्वीकार किया जाना अविवेक है। ज्ञान उभयात्मक है-(1) पदार्थानुभव रूप तथा (2) भक्ति रूप। प्रथम प्रकार के ज्ञान पर आश्रित रहने वाला साधक पति परित्यक्ता पत्नी की भाँति रहकर केवल्य की प्राप्ति करता है। सौभाग्य धनिका युवती की तरह द्वितीय प्रकार के ज्ञानोपासक सालोक्यादि विशेषणों वाली मुक्ति का लाभ पाते हैं।

भगवान की भगवत्ता ऐश्वर्यात्मक एवं माधुर्यात्मक का अभिव्यंजन, द्वितीय पाद का मुख्य विषय है। भगवान के इस रूपद्वय को पृथक-पृथक निरूपित करते हुए दोनों की समन्विति का भी अभिधान हुआ है। गंगा-यमुना में सरस्वती के प्रवाह के सदृश ईश्वर के माधुर्य गुणों में ऐश्वर्यात्मक गुणों के तिरोहित रहने का उद्घाटन भी सिद्धान्तरत्न करता है। ईश्वर के इन रूपों की अनुभूति का साधन क्रमशः विधि तथा रुचि भक्ति बनती है। भक्ति के भेदोपभेदों का भी यहाँ संकेत है। श्रीकृष्ण के परेशत्त्व, उनकी लीला पूर्णता एवं उनके लीला धाम का भी परिचय यहाँ सुलभ है।

सुदर्शनपाद में ब्रह्म कृष्ण की श्रेष्ठता, उनकी सर्वोपास्यता आदि से सम्बद्ध बातों का चित्रण है। भगवान विष्णु समस्त देवों के अधिष्ठान बतलाये गये हैं। अन्य देवों के लिए रूढ़ शब्दों की भी व्याख्या हरिपरक की गई है। पुराणों में गुम्फित नाना नामधारी परमेश्वर की कीर्तिगाथाओं का सम्बन्ध भी भगवान लक्ष्मीपति से ही सिद्ध किया गया है।

चतुर्थपाद आत्मवादी (अद्वैत) सिद्धान्तों का खण्डन करता है। शांकर वेदान्त की निर्गुण विचारधारा से अनेक प्रकार के दोष उद्भावित किये गये हैं। सगुण श्रुति वाक्यों को गुणहीन वेद वाक्यों की भाँति समादर देना समीचीन है-ऐसे ग्रंथकार की स्थापना है। श्रुति की सार्थकता केवल क्रियापरक वाक्यों में निहित है, ज्ञानपरक वाक्य क्रिया शून्य होने के प्रतिफलस्वरूप निरर्थक है। मीमांसकों के इस सिद्धान्त की आलोचना की गई है। सिद्धान्तरत्न के अनुसार वेद की ज्ञानपरक पंक्तियों में भी अर्थ-प्रयोजनवत्ता का अस्तित्त्व अव्याहत रूप में विद्यमान है।

वामन पाद में भी श्रौत साक्ष तथा युक्तियों के आधार पर अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्तों में असंगति का दर्शन है। शंकर के अज्ञान को निर्मूल्य और अयुक्ति युक्त स्वीकार किया गया है। अज्ञान की अस्तित्त्व शून्यता के कारण अद्वैत की दार्शनिक मान्यताओं को अनुपयोगी एवं लक्ष्यहीन माना गया है।

षष्ठ अथवा त्रिविक्रम पाद भी अद्वैत की कमियों को उद्घाटित करता है। भेद यहाँ परमार्थतः प्रतिष्ठित है। गोविन्द भाष्य की तरह आचार्य ने यहाँ भी भेद स्थापन में उपक्रम आदि षडङ्गों की अपेक्षा समझी है। भेद के साथ जगत् की यथता भी यहाँ अंगीकृत है। शांकर दर्शन को शून्यवादी बौद्धों से अपृथक् बतलाया गया है।

नन्दक में यद्यपि ब्रह्म के भेद त्रैविध्य-स्वगत, सजातीय और विजातीय का निषेध वर्णित है, परन्तु यह भेद-राहित्य अद्वैत वेदान्तियों जैसा नहीं है। यहाँ भेद एवं अभेद दोनों ब्रह्म के स्वगत लक्षण में समाहित हैं। इसकी दृष्टि में विशेष और अविशेष दोनों पूर्ण ब्रह्म के लिए अपेक्षित है। बिना भेद के जड़ाजड़ पदार्थों का आभास नहीं हो सकता। यहाँ ज्ञाता एवं तदाश्रित ज्ञान-दोनों में वास्तविकता का अभिधान हुआ है। इसकी दृष्टि में अहमर्थ भी आत्मगुणोपेत है। अद्वैत के अहम् की यहाँ आलोचना हुई है।

संवत् 2022 (अर्थात् 1966 ई.) में यह ग्रंथ राधा कुण्ड कुसुमसरोवर, मथुरा (उ.प्र.) से देवनागरी में प्रकाशित हुआ

था। इसके पूर्व में भी इसका प्रकाशन बड़े अक्षरों में हो चुका था। [क०उ०]

सिद्धान्त रत्नांजलि

श्रीनिम्बार्क कृत 'वेदान्त कामधेनु' की विस्तृत व्याख्या के रूप में 'सिद्धान्त-रत्नांजलि' की रचना महावाणीकार श्रीहरिव्यासदेवाचार्य ने की थी। निम्बार्कीय सिद्धान्तों को सरल संस्कृत भाषा में समझने के लिए यह परम उपयोगी सिद्ध हुई है। इसकी विषय निरूपण शैली तार्किक एवं दार्शनिकतापूर्ण है। इसमें अनेक दार्शनिक मतों का निराकरण करते हुए द्वैताद्वैत मत की पुष्टि की गई है। भक्ति के प्रसंग में शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, माधुर्य आदि रसों की चर्चा करते हुए माधुर्य भक्ति रस को ही सर्वोत्तम कहा गया है। 'सिद्धान्त रत्नांजलि' में भक्ति को ही मुक्ति रूप में स्वीकार किया गया है। भक्ति के अभाव में मुक्ति की कल्पना असम्भव है। 'सिद्धान्त-रत्नांजलि' प्रकाशित एवं अनुवादित ग्रंथ है। [क०उ०]

सिद्धान्तरहस्यम्

इस प्रकरण ग्रंथ में पुष्टिमार्ग की साधना पद्धति से सम्बद्ध कुछ महत्त्वपूर्ण विषयों पर विचार किया गया है। इस ग्रंथ में पुष्टिमार्ग की दीक्षापद्धति और आत्मनिवेदन की रीति समझाई गई है। साथ ही पुष्टिमार्ग में दीक्षित साधक के आचार-व्यवहार सम्बन्धी नियमों का विवेचन तथा कर्तव्याकर्तव्य का भी निर्णय किया गया है। इसमें आठ श्लोक हैं। नवाँ श्लोक अपूर्ण है। [क०उ०]

सीतलदास

श्री सीतलदास टट्टी संस्थान के महंत ठाकुरदास जी के शिष्य थे। उन्होंने अपने जन्म-संवत्, जन्म-स्थान, माता-पिता, कुटुंब-परिवार आदि के विषय में न तो स्वयं कुछ लिखा है और न किसी दूसरे ने ही उनका उल्लेख किया है। उनके गुरु का आचार्यत्व-काल सं॰ 1859 से 1868 तक है। इसलिए सीतलदासजी का समय भी 19वीं शती का उत्तरार्द्ध सिद्ध होता है।

वे हरिदासी संप्रदाय के महात्माओं में अपने ढंग के निराले भक्त-कवि थे। वे ब्रजभाषा के साथ संस्कृत और फारसी के भी अच्छे विद्वान थे। उनकी गुलजार चमन, आनंद चमन और विहार चमन नामक रचनाओं में ग्रंथों की भाषा प्रायः खड़ी बोली है, जिसमें ब्रजभाषा और संस्कृत के साथ फारसी शब्दों का प्रचुरता से प्रयोग हुआ है। कहीं-कहीं पर तो उनकी रचना उर्दू शायरी जैसी मालूम होती है इसलिए कुछ लोग इसे लौकिक प्रेम के अर्थ में भी घसीटते हैं। उनकी रचनाओं में 'लालबिहारी' का नाम प्रायः आता है, जिसके प्रति उनकी उत्कट आसक्ति की भावना व्यक्त हुई है।

श्री मिश्रबंधुओं ने उनके काव्य की बड़ी प्रशंसा की है। उनका मत है—'सीतल के चमन वास्तव में भाषा साहित्य के अपूर्व रत्न हैं। ...इनकी पूरी रचना में एक छंद भी शिथिल या नीरस नहीं है। इनके सब छंद खड़ी बोली में हैं। खड़ी बोली के कवियों में सीतल का स्थान प्रथम जान पड़ता है।...इनकी रचना में स्वच्छंद उमंग, उपमा, रूपक और अनूठेपन की खूब बहार है और खयालात की बुलंद परवाजी तथा बारीकियाँ अच्छी हैं। श्री सीतलदास जी की रचना का एक उदाहरण—

माणिक के चौके जड़े हुए, विद्रुम रँग जरद जसी से हैं।
छवि छद गुलाब के मात पड़े, उर कंटक दरद कशी से हैं॥
तारागण मोती अस्त बेध, जग राखें ललित असी से हैं।
नख लालबिहारी के शीतल, क्या पूरण शरद शशी हैं॥

[वि०का०]

सुखरामदास (द्वितीय)

शुक संप्रदाय में चरणदास जी के शिष्यों की सूची में सुखरामदास नाम के दो शिष्यों का उल्लेख प्राप्त होता है। यहाँ पर सुखरामदास द्वितीय के बारे में उल्लेख किया जा रहा है। सुखराम दास द्वितीय के व्यक्तिगत जीवन के विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। ये चरणदास जी से दीक्षा लेने के बाद गुरु के आश्रम में ही रहे, बाद में जिला मुजफ्फरनगर के छपरौली में इन्होंने अपना आश्रम बनाकर धर्मप्रचार में रत हो गये। छपरौली में चरणदासी संप्रदाय के एक और संत चरणधूर जी प्रसिद्ध संत हुए। संभवत: ये उनके साथ भी रहे होंगे। सुखरामदास जी संभवत: जाति के गूजर थे। अत: वहाँ के गूजर समाज में इनका बड़ा आदर-सत्कार था। ये स्वभाव से संतोषी एवं एक ही स्थान पर रहने वाले थे। इनकी रचनाओं के विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। [क०उ०]

सुन्दर भट्टाचार्य

श्रीदेवाचार्य जी से निंबार्क संप्रदाय की दो शाखाएँ सृजित हुईं। पहली सुंदर भट्टाचार्य जी और दूसरी ब्रजभूषण देव जी की। श्रीदेवाचार्य जी की गद्दी पर श्री सुंदर भट्टाचार्य जी आसीन हुए। इनके द्वारा जाह्नवी की विस्तृत व्याख्या सेतुका ग्रंथ में की गई है, इसका कुछ ही भाग उपलब्ध है। प्रपन्न सुरतरु मंजरी, प्रपन्न कल्पवल्ली की विस्तृत व्याख्या है। रहस्यषोडशी की व्याख्या मंत्रार्थरहस्य में हुई है। गोपालोपनिषद् का भाष्य, काल-निर्णय संदर्भ और प्रपन्नवृत्तिनिर्णय संदर्भ आदि ग्रंथ अनुपलब्ध हैं। अपने गुरुदेव श्रीदेवाचार्य जी की दिग्विजय यात्रा का वर्णन इन्होंने 'देवाचार्य दिग्विजय' में किया है। निकुंज रहस्य परंपरा में आप सुंदरी सखी के रूप में विद्यमान हैं। आपका पाटोत्सव मार्गशीर्ष शुक्ल द्वितीया को मनाया जाता है। नाम के अंत में भट्ट अलंकरण या पदवी श्री सुंदर भट्टाचार्य जी से प्रारंभ होती है। [कुं०बि०श०]

सुवलानन्द

गोस्वामी सुवलानन्द जी गोस्वामी किशोरीदास जी के उत्तराधिकारी तथा श्री मदनमोहन जी के पंचम सेवायत गुसाईं थे। ये सुन्दर और सुडौल व्यक्तित्व के थे। इन्हें ब्रज तथा बंग भाषा का ज्ञान था। ऐसा माना जाता है कि जिस किसी व्यक्ति ने एक बार इनका उपदेश सुन लिया तो वह व्यक्ति इनकी भक्ति में लीन हो जाता था।

एक दिन इन्होंने कहा कि श्रीमदनमोहन, श्रीगोविन्ददेव जी और श्रीगोपीनाथ जी के दर्शन करने से साक्षात कृष्णचन्द्र आनन्दकन्द के दर्शन होते हैं। यह सुनकर जयपुर नरेश श्री जयसिंह जी के मन में इच्छा प्रकट हुई कि ये तीनों मूर्तियाँ मेरी राजधानी में विराजित हों तो अति उत्तम होगा। तभी से श्री मदनमोहन जी को जयपुर ले जाकर एक विशाल हवेली में पधरा दिया गया। [जि०कु०]

सुरतभानदेव

द्रविड़ ब्राह्मण कुल में जन्मे श्री सुरतभानदेव जी उच्चकोटि के विद्वान थे। गुरुदेव श्री वासुदेव जी से वैष्णवी दीक्षा लेकर वृंदावन धाम में ही अनुरक्त हो गये। वृंदावन में एक बार धर्म तार्किकों का एक दल आया, जो आपके वेद-शास्त्रोक्त प्रमाणों के सम्मुख नतमस्तक हो गया। इन्हीं तार्किकों में से श्री सुरतभानदेव जी के प्रति सहृदयी और शरणागत को इन्होंने अपना कृपापात्र बना लिया। वैष्णव रीति से दीक्षित कर इनका नाम पीतांबर देव रख दिया। 40 वर्षों तक सुरतभान देव जी गद्दी पर विराजे। [कुं०बि०श०]

सुहरावर्दी संप्रदाय

इस संप्रदाय के प्रवर्त्तक बहाउद्दीन जकरिया थे। ये मुलतान के रहने वाले थे, इस संप्रदाय के आदि प्रवर्त्तक के बारे में लोगों में मतभेद है। कुछ लोग शिहाबउद्दीन सुहरावर्दी को आदि प्रवर्त्तक मानते हैं, तो कुछ शेख जियाउद्दीन को और कुछ लोग जियाउद्दीन के पिता अबुल नजीब को।

सुहरावर्दी ने मानव चेतना के दो स्तर निर्धारित किए हैं। ''एक निम्न, जो सांसारिक भोग विलास की ओर आकृष्ट होकर मनुष्य को पापकर्मों में प्रवृत्त करता है तथा दूसरा, उच्च स्तर जिसके द्वारा मनुष्य सांसारिक मोहमाया से विरक्त होकर अध्यात्म साधना की ओर अग्रसर होता है।''

इस संप्रदाय में दीक्षित होने वाले को प्रथम मुर्शिद (गुरु) के आदेश से अपने छोटे-बड़े सभी पापों के लिए पश्चात्ताप करना पड़ता है। इसके बाद पाँच कलिमें पढ़ने के लिए कहा जाता है और धर्म पर पूरी तरह ईमान लाने के लिए कहा जाता है। नमाज तथा रोजा रखने पर जोर दिया जाता है, इसे सुहरावर्दी संप्रदाय वाले 'मुरीद' होना कहते हैं। यह मुरीद नाना प्रकार के कपड़ों से अपने को ढँके रहते हैं, जिससे उन्हें बराबर याद रहे कि मनुष्य नंगा है और परमात्मा उसको देख रहा है, कपड़ों से ढँके रहने का अर्थ यह भी लगाया जाता है कि साधक को यह बराबर याद रहे कि जगत् के अनेक जीव-जंतु परमात्मा की सृष्टि हैं।

डॉ. नामदेव उतकर के अनुसार ''इस संप्रदाय को राजा और प्रजा सम्मान की दृष्टि से देखते थे।'' इस संप्रदाय के अंतर्गत कई उप-संप्रदायों का आविर्भाव हुआ। जलाली संप्रदाय उनमें से एक है। इसके प्रवर्त्तक सैयद जलाल बुखारी थे जो बहावलपुर स्टेट के उच्च स्थान के रहने वाले थे। जलाली लोग विभिन्न रंगों के सूत गले में लपेटे रहते हैं। हाथ में सोटा में होता है, सिर पर काला सूत लपेटते हैं और हाथ में तावीज धारण करते हैं, सिंगा भी लिए रहते हैं और भावाविष्टावस्था में उसे बजाते हैं। यह अपना सिर, अपनी मूँछ, और भौंहों को मुड़वा देते हैं और दाहिनी तरफ एक चोटी छोड़ देते हैं।

इस संप्रदाय के अन्य प्रमुख सूफी इस प्रकार हैं-सैयद जलालुद्दीन बुखारी, हजरत मख्दूम जहानियां, शेख हसन अफगान, शेख फखुद्दील ईराकी, शेख अमीर हुसैन, शेख रुकनुद्दीन तथा शेख उस्मान आदि। [आ०स०]

सूर्य

सूर्य, रवि, दिनकर, दिवाकर अनेकानेक नामों, मंत्रों, स्तुतियों, मिथकों, कथाओं और अंतर्कथाओं के केंद्र में रहा ऊर्जा का यह अनन्य स्रोत मुख्य रूप से हाइड्रोजन और हीलियम गैसों का विशाल गोला है, जो परमाणु विलय की प्रक्रिया द्वारा अपने केंद्र में ऊर्जा पैदा करता है। सौरमंडल के इस सबसे बड़े पिंड के चारों तरफ पृथ्वी और सौरमंडल के अन्य अवयव घूमते हैं। पृथ्वी से लगभग 109 गुना बड़े इस ग्रह का व्यास लगभग 13 लाख 90 हजार कि.मी. है। सूर्य के प्रकाश को पृथ्वी पर आने में 8.3 मिनट का समय लगता है। इसी ऊर्जा से प्रकाश-संश्लेषण की जैव रासायनिक अभिक्रिया होती है, जो पृथ्वी पर जीवन का आधार है।

इतनी सारी प्राकृतिक शक्तियों से समृद्ध सूर्य को मानवीय सभ्यता में देवता का दर्जा मिलना स्वाभाविक ही था। इसलिए विश्व भर की विभिन्न संस्कृतियाँ भिन्न-भिन्न रूपों में सूर्योपासना करती रही हैं। वह यूनान का अपोलो, मिस्र का रा, अफ्रीका का अनीआन्वयु, ऑस्ट्रेलिया का ग्रोवी, अरब का मलाकबेल, ब्राजील का मेरी, चीन का झिहे, जर्मनी का सोल है। दरअसल ये सभी नाम विभिन्न सभ्यताओं में बिखरे सूर्य के ही व्यापक सांस्कृतिक रूप हैं। भारत में तो आर्य और अनार्य संस्कृतियों ने ही सूर्य के कई रूप प्रस्तुत किए। यहाँ सूर्योपासना का प्रचलन वैदिक काल से पूर्व ही था। वेदों में सूर्य को जगतात्मा और जगतकर्ता कहा गया है। वैदिक साहित्य के अलावा आयुर्वेद, ज्योतिष, हस्तरेखा शास्त्रों में भी सूर्य का महत्व प्रतिपादित किया गया है। ऋग्वेद के देवताओं में सूर्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ऋग्वेद में

सूर्य से संबंधित 10 सूक्त मिलते हैं। यहाँ इसे संसार को प्रकाशित करने वाला देवता कहा गया है। इसका एक रथ है, जिसे 7 अश्व खींचते हैं। वैदिक साहित्य में वस्तुत: सूर्य से संबंधित 5 देवताओं की स्तुति मिलती है-सविता, सूर्य, मित्र, ऊषा और विष्णु। सूर्य इन सभी में प्रधान है। उसे कहीं ऊषा का पति, कहीं पुत्र और कहीं भाई बताया गया है। कहीं उसे मित्र व वरुण का शत्रु, तो कहीं मित्र कहा गया है। विष्णु तक कम महत्त्वपूर्ण थे, हालांकि वेदों में विष्णु के तीन पगों का बारम्बार संकेत है, किंतु उनका प्रभाव बाद में अधिक व्यापक रूप में फैला। एक प्राचीन आचार्य और्णवाभ ने इन तीन पगों को सूर्य के तीन रूपों-उदयकालीन, मध्याह्न और अस्तगामी का प्रतीक माना है। ऐसा अनुमान है कि कालांतर में इन्हीं तीन पगों से वामन और बलि की कथा का विकास हुआ।

महाभारत में सूर्य के 12 और अथर्ववेद में 7 नाम मिलते हैं। यजुर्वेद ने 'चक्षो सूर्यो जायत' कहकर सूर्य को भगवान का नेत्र माना है। प्रसिद्ध गायत्री मंत्र तो सूर्यपरक है ही। छांदोग्योपनिषद्, ब्रह्मवैवर्त पुराण, सूर्योपनिषद में भी सूर्य का गान है। यहाँ उसे संपूर्ण जगत की आत्मा तथा ब्रह्म बताया गया है। सूर्योपनिषद के अनुसार सृष्टि का पालन सूर्य ही करते हैं। कर्मकांडों, मंत्रों और मूर्ति पूजा का प्रचलन बाद में शुरू हुआ होगा। कालांतर में यत्र-तत्र सूर्य मंदिरों का निर्माण भी हुआ। भविष्य पुराण में ब्रह्मा विष्णु के मध्य एक संवाद में सूर्य पूजा एवं मंदिर निर्माण का महत्व समझाया गया है। अनेक पुराणों में यह आख्यान भी मिलता है कि ऋषि दुर्वासा के शाप से कुष्ठ रोगग्रस्त श्रीकृष्ण पुत्र सांब ने सूर्य की आराधना कर इस भयंकर रोग से मुक्ति पाई थी। भारत में मनाया जाने वाला छठ पर्व सूर्य को ही समर्पित है। भारत के अलावा प्राचीन मिस्र राजवंशों में भी 'रा' (सूर्य) की उपासना होती है। यहाँ के 'बेनबेन' मंदिर में पिरामिड की शक्ल का एक पत्थर था, माना जाता था कि इस पर सूर्य ने अपने को फीनिक्स के रूप में प्रकट किया था। 'शू'-वायुदेव, 'तेफनुत'-वाष्प की देवी, 'गेब'-पृथ्वी की देवी, 'नुत'-आकाश की देवी, रा की संतानें थीं। चीनीपुराणों में आसमान में एक नहीं दस सूर्य हैं और वे सभी भाई हैं। प्लेटो ने 'रिपब्लिक' में सूर्योपासना का जिक्र किया है।

सूर्य की महत्ता केवल प्राकृतिक और सांस्कृतिक कारणों से ही नहीं, वरन औषधीय कारणों से भी है। अथर्ववेद के नौवें अध्याय में ऐसी 22 बीमारियों का उल्लेख है, जो उगते सूर्य की किरणों से ठीक हो सकती हैं। आधुनिक विज्ञान ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि सूर्य के प्रकाश में सात रंगों की किरणों का सुमेल होता है, जो सूर्य से पैदा होती हैं। इस संदर्भ में अमेरिका के मूर्धन्य वैज्ञानिक डॉ. नील बर्नहाट ने गहन शोध के बाद निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए बताया है कि सूर्य के प्रकाश से मनुष्य शरीर का विद्युतीकरण होता रहता है। उनके अनुसार सूर्य की शक्तिवर्धक किरणों के संपर्क में आकर मनुष्य के शरीर में एक विद्युतमय चुंबकीय प्रवाह बहने लगता है। आकाश के सभी ग्रह हालांकि अपने लिए नाभिकीय ऊर्जा का सृजन अपने आप करते हैं, पर मूल रूप में वे सब अपने-अपने सूर्य की ऊर्जा पर जीवित हैं। सूर्य के मध्य भाग में केवल नाभिक कण होते हैं और उनमें इतनी तीव्र हलचल मची रहती है कि उसकी किसी से तुलना नहीं की जा सकती है। [अ०श्री०]

सूरदास

वल्लभ सम्प्रदाय के अष्टछापी कवियों में सूरदास का स्थान उच्चकोटि का है। इनकी भक्तिपरक गेय प्रधान लीलाओं का अत्यंत वात्सल्य भाव में चित्रण मिलता है। कुछ विद्वानों के मत में इनका जन्मकाल वि.सं. 1540 के लगभग है। वहीं पुष्टिमार्गीय मत एवं उत्सव परम्परा में इनका जन्मकाल वैशाख शुक्ल पंचमी, वि.सं. 1535 तथा जन्मस्थान सीही निर्धारित किया गया है। राधाकृष्ण की भक्ति में पगे सूरदास के पदों का शास्त्रीय संगीत के साथ ही ध्रुपद, धमार शैली में विशिष्ट रूप से गायन होता है। वल्लभ सम्प्रदाय की कीर्तन परम्परा से सूरदास जी का जुड़ाव वि. सं. 1568 से माना जाता है। तब से सूरदास जी के पदों का अहर्निश गायन उनके प्रिय गौरी, नट, रामकली, आसावरी,

कान्हड़ा, विहाग, केदार, सोरठ आदि रागों में सम्प्रदाय सेवी कीर्तनकारों (समाजियों) और संगीतज्ञों द्वारा किया जा रहा है। ब्रज और वल्लभ सम्प्रदाय की भक्ति संगीत एवं काव्य परम्परा में सूरदास जी का विशिष्ट योगदान एवं स्थान है। सूरदास के पदों में श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं में माँ यशोदा के दुलार और डाँट, रामलीला के पद और शरणागत भक्ति से ओतप्रोत विनय के पद हैं। इसके साथ ही सुदामा की मैत्री भाव और गोपी-उद्धव संवाद का ब्रजभाषा में सहज वर्णन है-

अब मैं नाच्यौ बहुत गोपाल,
काम, क्रोध कौ पहन चोलना कंठ विषय की माल॥
महा मोह के नुपूर बजत, निंदा शब्द रसाल,
भ्रम भोयौ मन भयौ पखावज, चलत असंगत चाल॥

वि.सं. 1640 में 'चंद्र सरोवर' गोवर्धन के निकट परासौली में इन्होंने नित्यलीला में प्रवेश किया। मथुरा के गौ घाट पर इनके विराजने का स्थान है तथा चंद्रसरोवर पर सूरकुटी एवं चबूतरा है। यह महारास स्थली मानी जाती है। वल्लभाचार्य जी से इन्होंने दीक्षा प्राप्त की। [अ०च०]

सेवाफलम्

इस प्रकरण ग्रंथ में साढ़े सात श्लोक हैं। इसमें वल्लभ ने पुष्टिमार्गीय तथा मर्यादामार्गीय जीवों को प्राप्त होने वाले फलों का विवेचन किया है। पुष्टिमार्गियों का फल अलौकिक सामर्थ्य या लीलाप्रवेश है तथा मर्यादामार्गियों के कृष्ण सायुज्य और वैकुण्ठ में सेवोपयोगी देहेन्द्रियादि की प्राप्ति, ये दोनों फल कहे गये हैं। [क०उ०]

सोमवती अमावस्या

सोमवार को अमावस्या तिथि होने पर सोमवती अमावस्या पर्व मनाया जाता है। इस दिन महिलायें तुलसी जी का विधि-विधान से पूजन तथा उस (तुलसी जी के थामरे) की 108 (प्रदक्षिणा) परिक्रमा लगाती हैं। हर एक परिक्रमा की समाप्ति पर तुलसी जी को कुछ द्रव्य (खाद्य पदार्थ या दक्षिणा) अर्पित करती हैं। परिक्रमा पूर्ण होने पर अर्पित किये गये द्रव्य का दान कर दिया जाता है। इसके अलावा इस दिन पीपल की भी 108 परिक्रमा की जाती हैं। जिससे विशेष पुण्य की प्राप्ति होती है। [प्र०श०]

सौभरि ऋषि

सौभरि ऋग्वेदकालीन ऋषि थे। यह वेदों के ज्ञाता थे। कुछ स्थानों पर इनका वर्णन संहिता रचनाकार के रूप में भी प्राप्त होता है। इनसे जुड़ी कई प्रतीकात्मक कथाएँ प्रचलित हैं। ज्ञात होता है कि सौभरि ऋषि का आश्रम यमुना के किनारे था, जिसकी जलधारा में गहरे उतरकर यह जल साधना किया करते थे। कहते हैं कि एक बार ऐसी ही साधना के दौरान ऋषि एक जाल में फँस गए। बंधन की स्थिति देखकर ऋषि ने स्वयं मुक्त होने के स्थान पर जाल के मालिक से कहा कि मुझे बेच दो। संभवत् उस काल में भी सत्ता का प्रभाव जनसामान्य पर ज्ञान से अधिक था। अत: जाल डालने वाले उन्हें लेकर राजा के पास गए। अब प्रश्न चूँकि ज्ञान की मुक्ति का था, इसीलिए राजा ने तत्त्काल अपने अनुचरों को 'कपिला गाय' लाने का आदेश दिया क्योंकि गाय के शरीर में देवों का निवास माना जाता है और गोविन्द से भी पहले गुरु का नाम लेने की शिक्षा देने वाले संस्कार ऋषि का मूल्य पार्थिव मुद्राओं से नहीं तोल सकते थे।

एक अन्य कथा कहती है कि नित्य जल साधना करने के कारण ऋषि जलीय जीवों का अपना स्वजन मानने लगे

थे। एक बार ऋषि ने देखा कि गरुड़ जल में रहने वाली मछलियों को अपना ग्रास बना रहा है। ऋषि ने उसे पहले सहज रूप से समझाने का प्रयत्न किया, किन्तु जब वह मानने का तैयार नहीं हुआ तो उसे श्राप दे दिया कि यदि पुन: इस स्थान पर आए तो कालग्रास बन जाओगे। जिसे सुनने के बाद वह गरुड़ वहाँ कभी नहीं आया और ऋषि शांति से साधना में लीन हो गए।

सर्वाधिक प्रतीकात्मक कथा सौभरि ऋषि के गृहस्थ बनने की है। जनाख्यान कहते हैं कि ऋषि जल में साधना करते थे, वह क्षेत्र 'मत्स्य राजा समद' के अधिकार में था। समद को अपनी संतानों के साथ आनंद से जीवन जीते देख, ऋषि के मन में विवाह की इच्छा जागृत हुई। वह राजा मान्धाता के पास गए। मान्धाता की पचास पुत्रियाँ थीं। ऋषि ने उनमें से किसी भी एक का हाथ अपने हाथ में दे देने की इच्छा जाहिर की। वर्षों से तप करते रहने के कारण ऋषि का शरीर दुर्बल हो चुका था और उनकी आयु भी अधिक थी। मान्धाता प्रस्ताव को अस्वीकार करके ऋषि का अपमान नहीं करना चाहते थे, किन्तु उसे स्वीकार करके अपनी पुत्री के साथ अन्याय भी नहीं करना चाहते थे। अत: मध्यम मार्ग निकालते हुए उन्होंने कहा कि मुझे आपके प्रस्ताव से कोई आपत्ति नहीं है किन्तु हमारे कुल में विवाह स्त्री की इच्छा से ही होते हैं। आप मेरी सभी पुत्रियों से मिल लीजिए। उनमें से जो भी आपसे विवाह करना स्वीकर कर लेगी, मैं उसका हाथ आपको सौंप दूँगा। सौभरि ऋषि राजा का निहितार्थ समझ चुके थे, पर विवाह की इच्छा उनके मन में बलवती थी। अत: वह युवक का रूप धारण करके राज-पुत्रियों के समक्ष गए। कहते हैं कि सौभरि ऋषि के इस रूप को देखकर मान्धाता की सभी पुत्रियाँ उनसे विवाह करने को उत्सुक हो गईं। राजा चकित था, किन्तु वचनबद्ध भी था। हारकर उसने अपनी सभी पुत्रियों का विवाह सौभरि से कर दिया। विवाहोपरांत सौभरि अपनी पत्नियों के साथ राजा से विदा लेकर चले आए। समय अपनी गति से घूमने लगा। गृहस्थ जीवन में रमण करते हुए ऋषिवर पति एवं पितृसुख प्राप्त करते रहे, लेकिन आश्चर्य कि प्रतिदिन उनकी इच्छाएँ दोगुनी होती जाती थीं। एक दिन अचानक उन्हें बोध हुआ कि इच्छाओं का कोई अंत नहीं है। एक के बाद दूसरी कामना मनुष्य को भव-बंधनों में जकड़ती जाती है। उसे मोह और अज्ञान की ओर खींचती जाती है, जबकि मनुष्य के जीवन का उद्देश्य बंधन नहीं मुक्ति है। उसी क्षण ऋषि सब कुछ त्यागकर विष्णु के प्रति समर्पित हो गए।

सौभरि ऋषि के वंशजों को अहिवासी कहा जाता है। इसके पीछे भी एक कथा मिलती है। जिसके अनुसार रमणक द्वीप के नाग प्रतिदिन एक नाग की बलि गरुड़ को देते थे। एक रोज कालियनाग गरुड़ की बलि को स्वयं खा गया। कुद्ध होकर गरुड़ कालियनाग की ओर झपटा, लेकिन वह भागकर सौभरि ऋषि की शरण में चला गया। ऋषि ने उसे अपने पास ही बसा लिया। जहाँ कालियनाग रहा, वह स्थान अहिवास था, इसीलिए सौभरि के वंशज अहिवासी कहलाए। अपनी पुस्तक 'महायात्रा गाथा' में रांगेय राघव लिखते हैं कि सौभरि की इस कहानी से 'आर्यों' एवं नागों के संबंध स्पष्ट होते हैं। सौभरि ऋग्वैदिक कालीन ऋषि थे और उस समय गरुड़ व नाग जाति के संघर्ष मुखरित थे।' [उ०श्री०]

स्कंदपुराण

81000 श्लोकों वाला स्कन्दपुराण समस्त पुराणों में सबसे बड़ा है। यह सात खण्डों में विभक्त है। नारद पुराण के अनुसार इसके माहेश्वर खण्ड, वैष्णव खण्ड, ब्राह्मखण्ड, काशीखण्ड, अवन्तीखण्ड, नागर खण्ड और प्रभासखण्ड ये सात खण्ड हैं। किन्हीं के मत में संहितात्मक स्कन्दपुराण भी है, जिसमें छ: संहिताएँ हैं-सनत्कुमार संहिता, सूत संहिता, शंकर संहिता, वैष्णव संहिता, ब्रह्म संहिता और सौर संहिता। इन संहिताओं में क्रमश: 36000, 6000, 30000, 5000, 3000 तथा 1000 श्लोक हैं। कुल 81000 श्लोक हैं।

इस पुराण का नाम 'स्कन्द' इसलिए पड़ा क्योंकि भगवान शिव के पुत्र कार्तिकेय का नाम 'स्कन्द' है। इस पुराण में उनकी उत्पत्ति, प्रभाव तथा उनके द्वारा देवताओं के सेनापति बनकर, तारकासुर के मारे जाने आदि चरित्रों का वर्णन है। इस महापुराण में भगवान शिव की महिमा का वर्णन विशेष रूप से है।

भगवान शिव की महिमा वर्णन के समान ही स्कन्द पुराण के कई खण्डों में भगवान विष्णु का पावन चरित्र तथा विष्णु भक्तों की कथाओं का बड़ा ही मनोरम वर्णन है। दूसरे खण्ड का तो नाम ही वैष्णव खण्ड है। वैष्णवों के लक्षण, वैष्णव खण्ड के पुरुषोत्तम माहात्म्य में वर्णित है। माहेश्वर खण्ड में भगवान विष्णु और शिव की अभिन्नता बताने वाला एक अद्भुत प्रसंग है।

स्कन्दपुराण शैवों और वैष्णवों में एकता दर्शाने वाला अद्भुत शास्त्र है। देवताओं में भेदबुद्धि नहीं रखनी चाहिए। माहेश्वर खण्ड के 'कुमारिका खण्ड' में दान तत्त्व का अद्भुत विवेचन किया गया है। स्कन्द पुराण के इसी माहेश्वर खण्ड में तीर्थों का माहात्म्य बड़े विस्तार से बताया गया है। इसी खण्ड में आगे चलकर युगों की व्यवस्था का बहुत सुन्दर वर्णन है। कलिकाल के भयानक दोषों का वर्णन किया गया है। वैष्णव खण्ड में दिव्य देशों और कालों की महिमा पुन:-पुन: प्रतिपादित की गयी है। यथा-बदरिकाश्रम माहात्म्य, कार्तिक-मास माहात्म्य, वैशाख माहात्म्य, श्री अयोध्या माहात्म्य, श्रीमद्भागवत् माहात्म्य आदि का विस्तृत निरूपण किया गया है। बदरिकाश्रम के सम्बन्ध में श्री महादेव जी ने स्वामी कार्तिकेय जी से कहा है कि बदरिकाश्रम भगवान विष्णु का प्रिय क्षेत्र है। सम्पूर्ण तीर्थों में स्नान का फल इस क्षेत्र के दर्शन मात्र से प्राप्त हो जाता है।

कार्तिक मास के माहात्म्य प्रकरण में श्रीब्रह्माजी ने नारदजी को बताया कि कार्तिक जैसा कोई मास नहीं, सतयुग जैसा युग नहीं, वेद जैसा शास्त्र नहीं और गंगा जैसा कोई तीर्थ नहीं है। इस मास में शालिग्राम पूजन एवं वासुदेव स्मरण अवश्य करना चाहिए। कार्तिक में गीतापाठ का बड़ा भारी महत्त्व है। श्रीकृष्ण नाम की महिमा के प्रसंग में वैष्णव खण्ड के मार्गशीर्ष माहात्म्य में कहा गया है कि भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि उनकी एक गोपनीय प्रतिज्ञा है। श्रीकृष्ण कहते हैं कि यदि कोई कृष्ण-कृष्ण नामोच्चारणपूर्वक उन्हें स्मरण करता है, उसे वह नरक कुण्ड से उसी प्रकार निकाल लेते हैं जैसे कीचड़ को फोड़कर कमल बाहर आ जाता है।

वैशाख मास की महिमा भी इस पुराण में विस्तृत रूप से बतायी गयी है। यह मास शेषशायी भगवान विष्णु को अत्यन्त प्रिय है। समस्त दानों एवं समस्त तीर्थों का फल वैशाख मास में जलदान मात्र से प्राप्त हो जाता है। इस मास में छाता एवं पंखा दान अतिश्रेष्ठ है। कलियुग की महिमा, अयोध्या का माहात्म्य और वहाँ के तीर्थों का वर्णन है। इसके अतिरिक्त कौन-कौन तीर्थ श्रेष्ठ हैं? इस जिज्ञासा के उत्तर में कहा गया है कि मोक्षदायिनी सातपुरियों से भी अधिक महत्त्व केदारतीर्थ का है। उससे भी उत्तम तीर्थ मोक्षदायक प्रयाग है और तदपेक्षया भी बढ़कर काशी है। काशी को 'अविमुक्तक्षेत्र' कहा गया है। इसके अतिरिक्त अन्य उत्तम तीर्थों के नाम इस प्रकार हैं- नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्र, गंगाद्वार (हरिद्वार), अवन्ती, अयोध्या, मथुरा, द्वारका, अमरावती, सरस्वती, गंगासागर संगम, कांचीपुरी, त्रयम्बकतीर्थ, सप्तगोदावरी, कालंजर तीर्थ, प्रभास क्षेत्र, बदरिकाश्रम महालय, ओंकारक्षेत्र (अमरकण्टक), पुरुषोत्तम क्षेत्र (जगन्नाथ पुरी), गोकर्णतीर्थ, भृगुकच्छ, भृगुतुंग, पुष्कर, धारातीर्थ आदि तीर्थों के माहात्म्य का वर्णन है।

सेतु माहात्म्य भी ब्रह्मखण्ड में वर्णित है। इसी प्रसंग में श्रीराम ने श्री हनुमान जी महाराज को ज्ञानोपदेश भी किया है। ब्रह्मखण्ड में रामनाम की अद्भुत महिमा का वर्णन है। यदि रामनाम का जप चातुर्मास में हो तो फल दश गुणित हो जाता है। श्री गंगा जी की महिमा स्कन्द पुराण में विस्तार से कही गयी है। इस पुराण में नृसिंहावतार एवं श्री प्रहलाद जी की भी कथा कही गयी है। वस्तुत: स्कन्दपुराण अति विस्तृत है। श्रद्धापूर्वक स्कन्दपुराण का स्वाध्याय करने वालों की सकल कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। [क०उ०]

स्मरण मंगल स्तोत्र

11 छंद के इस स्तव में सर्वप्रथम श्रीकृष्ण की मानसी सेवा को ब्रज परिकर के अनुगत होकर रागानुगा मार्ग के द्वारा ही प्राप्य बतलाया गया है। क्योंकि उसकी रागमार्ग के पथिकों के द्वारा ही भावना की जा सकती है। फिर एक श्लोक में

संक्षेप में अष्टकालीन लीला का स्मरण किया गया है। तत: विस्तार से एक एक काल का वर्णन है। श्रीकृष्णदास कविराज ने इसके भाष्य के रूप में 'श्रीगोविन्द लीलामृत' नामक रचना लिखी जो अत्यधिक प्रसिद्ध है। [क०उ०]

स्मृति ग्रंथ

समय सदैव कुछ निश्चित नियमों, कानूनों के आधार पर संचालित होता है। समयानुसार परिवर्तनशील यह नियम मानव व्यवहार का नियमन करने का साधन है। समय विशेष के उन्हीं सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक नियमों का वर्णन करने वाले ग्रंथ स्मृति ग्रंथ हैं। वेदों के पश्चात यह ग्रंथ संस्कृति के आधार माने जाते हैं। हिन्दू धर्म के आधार ग्रंथों को सामान्यत: दो विभागों में विभक्त किया जा सकता है-श्रुति और स्मृति। श्रुतियाँ अपौरुषेय हैं, जैसे कि वेद। जबकि सामाजिक धर्म, मर्यादा, वर्णधर्म, आश्रम-धर्म, राज-धर्म, साधारण धर्म, दैनिक कृत्य, स्त्री-पुरुष का कर्तव्य आदि का वर्णन करने वाली स्मृतियाँ ऋषि प्रणीत हैं। इसी कारण स्मृतियों की गणना श्रुति के अंतर्गत नहीं की जाती। यह हिन्दू धर्म के प्रमुख ग्रंथों में से एक हैं किन्तु धर्मग्रंथ नहीं हैं। एकमात्र धर्मग्रंथ वेद ही हैं।

वैदिक ज्ञान जन सामान्य को समझाने के उद्देश्य से विभिन्न ऋषियों ने इनको विषयबद्ध किया था। स्मृति की सहायता से रचे जाने के कारण ही संभवत: इन्हें स्मृति ग्रंथ कहते हैं। उल्लेखनीय है कि स्मृति ग्रंथों का नामकरण उनके संग्रहकर्ता ऋषियों के नाम पर किए जाने की परंपरा रही है। हालांकि ज्ञान परंपरा लगभग 250 स्मृति ग्रंथों की उपस्थिति स्वीकार करती है, लेकिन दुर्भाग्य से उनका बड़ा हिस्सा अप्राप्त है। स्रोत 18 स्मृतियों को मान्यता देते हैं। जिनमें मनुस्मृति सर्वाधिक श्रेष्ठ मानी जाती है। कहा जाता है कि मनुस्मृति में वेदसम्मत वाणी की व्याख्या की गई है। इसमें कुल 12 अध्याय हैं। वाल्मीकि रामायण और महाभारत के अनुशासन और शांतिपर्व में महाराजा मनु का विवरण मिलता है। कुछ श्लोक भी मनुस्मृति से यथारूप उद्धृत हैं, किन्तु आश्चर्य मनुस्मृति में न तो महाभारतकालीन विभूतियों का कहीं उल्लेख है और न ही वाल्मीकि या भगवान राम आदि का। इससे यही सिद्ध होता है कि मनुस्मृति की रचना राम एवं कृष्णकाल से पहले हुई थी। वैसे भी हिन्दू धर्मग्रंथ, राजा वैवस्वत मनु, जिन्हें श्राद्धदेव भी कहते हैं, के पूर्व 6 और मनु होने की पुष्टि करते हैं। जिनमें स्वायंभुव मनु प्रथम मनु थे। अत: संभव है कि मनुस्मृति प्रथम मनु के काल में लिखी गई हो।

इतिहास एवं साहित्य के पृष्ठों में एक और घटना दर्ज है। जिसके अनुसार सन् 1932 में चीन की ऐतिहासिक दीवार का एक हिस्सा जापानी बम विस्फोट द्वारा टूट गया था। इस हिस्से से एक लोहे का ट्रंक मिला जिसमें चीनी भाषा में प्राचीन पांडुलिपियाँ रखी थीं। सर आगस्टस रिट्ज जॉर्ज ने इन पांडुलिपियों को ब्रिटिश म्यूजियम में सुरक्षित रखवा दिया। बाद में जब प्रोफेसर एंथोनी ग्रेम ने उन पांडुलिपियों को विद्वानों से पढ़वाया तब ज्ञात हुआ कि चीन के राजा शी लेज वांग ने अपने शासनकाल में सभी प्राचीन पुस्तकों को नष्ट करने का आदेश जारी किया था। जिसका सीधा तात्पर्य था सभ्यता के प्राचीनतम प्रमाणों का क्षणांश में नष्ट हो जाना। मानव सभ्यता को जड़ों से काटने पर आमादा उसी समय में किसी ज्ञानानुरागी व्यक्ति ने दुर्लभ पांडुलिपियों को ट्रंक में छिपाकर दीवार में चुनवा दिया होगा। संभवत: यह सोचकर कि किसी बंद दीवार में ही सही कम से कम पीढ़ियों का ज्ञान सुरक्षित तो रहेगा। यह संयोग ही था कि जापानी विस्फोट के दौरान वह ट्रंक सही-सलामत बाहर निकल आया। ट्रंक से प्राप्त चीनी भाषा के उन हस्तलेखों में से एक में मनुस्मृति का उल्लेख है। लेख में कहा गया है कि मनु का धर्मशास्त्र भारत में सर्वाधिक मान्य है। यह वैदिक संस्कृत में लिखा है और 10,000 वर्ष से अधिक पुराना है। हालांकि इसमें बताई श्लोकों की संख्या 630 वर्तमान मनुस्मृति के श्लोकों की संख्या 2400 से सुमेलित नहीं होती, तथापि यह लेख मनुस्मृति की प्राचीनता का एक निष्पक्ष प्रमाण माना जा सकता है। क्योंकि इतिहासविदों का कहना है कि यह दीवार लगभग 220 से 206 ईसा पूर्व में निर्मित हुई थी। अत: उस हस्तलेख की उम्र भी कम से कम इतनी ही रही होगी। अब उस लेख की उम्र के आधार पर गणना

करें तो स्वत: मनुस्मृति की प्राचीनता सिद्ध होती है। मनुस्मृति के बाद याज्ञवल्क्य स्मृति महत्त्वपूर्ण है, इसमें आचार, विचार और प्रायश्चित तीन अध्याय हैं।

स्मृति ग्रंथों के कुछ मुख्य स्मृतिकार निम्न हैं-मनु, याज्ञवल्क्य, कात्यायन, दक्ष, अत्रि, अंगिरा, बृहस्पति, गौतम, विष्णु, यम, पराशर, वशिष्ठ, हारीत, आपस्तम्ब, व्यास, उशनस, संवर्त एवं शंख। इनके अलावा निम्न ऋषि भी स्मृतिकार माने गये हैं। उनकी स्मृतियाँ उपस्मृतियाँ कहलाती हैं-गोभिल, जमदग्नि, विश्वामित्र, प्रजापति, वृद्धशातातप, पैठीनसि, आश्वालयन, पितामह, बौद्धायन, भारद्वाज, छागलेय, जाबालि, च्यवन, मरीचि, कश्यप, उमव्रत, गार्गेय, देवल, शरतातप एवं शातातप। [अ०श्री०]

स्वर्ग

हिन्दू धर्मशास्त्रों में स्वर्गलोक का वर्णन प्राप्त होता है। स्वर्ग वह स्थान है जहाँ पर वे आत्मायें जाती हैं जो कि अपने जीवन काल में अच्छे कार्य करती हैं। स्वर्ग में देवता एवं अप्सरायें भी निवास करते हैं। स्वर्ग में रहते हुए आत्मा को भोग-विलास की सभी व्यवस्थायें प्राप्त होती हैं जिसकी उसने अपने जीवनकाल में इच्छा की होती है। स्वर्ग के अधिपति देवराज इन्द्र हैं। वे सभी देवताओं और अप्सराओं पर शासन करते हैं तथा अच्छे कर्म कर आने वाली जीवात्माओं को स्वर्ग में भोग सामग्री उपलब्ध कराते हैं। स्वर्ग की राजधानी अमरावती है, जिसकी रक्षा ऐरावत करता है।

पौराणिक साहित्य के अनुसार सात लोक माने गये हैं। जिसमें सबसे पहले भूलोक (पृथ्वी), भुवलोक, स्वर्गलोक, महलोक, जनलोक, तपलोक और सबसे ऊपर सत्यलोक स्थित है। स्वर्गलोक मेरु पर्वत पर स्थित है। प्रलयकाल में भु, भुव एवं स्वर्गलोक तक के लोक नष्ट हो जाते हैं तथा पुन: सृष्टि रचना के समय इनकी पुनर्रचना की जाती है।

ऋग्वेद के अनुसार जो व्यक्ति भगवान विष्णु की भक्ति करता है वह अच्छे कार्य करता हुआ स्वर्ग की इच्छा नहीं करता है वह मृत्यु के बाद बैकुंठ को जाता है। [प्रे०दी०]

स्वभूराम देवाचार्य

श्रीहरिव्यास देवाचार्य जी के प्रधान शिष्य तथा निम्बार्कीय काठिया शाखा के आद्याचार्य श्री स्वभूराम देवाचार्य जी का प्राकट्य पंजाब प्रांत में यमुना नदी के तटवर्ती क्षेत्र में जगाधरी के निकट बूढ़िया ग्राम के गौड़ ब्राह्मण कुल में हुआ। इनकी माता का नाम राधादेवी और पिता का कृष्णदत्त पंडित था। धर्म तथा अर्थ से सम्पन्न परिवार में अभाव था तो केवल एक पुत्र का। एक बार सूर्यग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र में पति-पत्नी को हरिव्यास देवाचार्य जी का दर्शन प्राप्त हो गया। आचार्यश्री के प्रति श्रद्धा प्रदर्शित कर उन्होंने पुत्र प्राप्ति का वर प्राप्त कर लिया किन्तु उन्होंने कहा कि तुम्हारा पुत्र तुम्हारे पास नहीं रहेगा और मेरे बाद निम्बार्क संप्रदाय का पथ-प्रदर्शक होगा। आचार्यश्री ने उन्हें गौ सेवा का आदेश दिया। कुछ समय बाद गोपाष्टमी के पावन दिन गौशाला में ही प्रकाश पुंज स्वरूप एक बालक दिखा उसे देखते ही दम्पत्ति में वात्सल्य भाव जागृत हो गया। उनके प्राकट्य के कारण इसका नाम स्वभूराम पड़ा। आठ वर्ष की अवस्था में माता-पिता ने स्वभूराम को मथुरा में ध्रुव टीला पर आकर श्रीहरिव्यास देवाचार्य जी से वैष्णवी दीक्षा दिलाई। इनके गुरुदेव ने इनका नाम स्वभूराम देवाचार्य रख दिया। इसके साथ सभी वापस गाँव लौट गए। बाल्यकाल से ही इन्हें देखकर प्रतीत होता था कि निश्चय ही ये बालक प्रभु का प्रियतम और विशिष्ट शक्तियों से संपन्न है।

कुछ काल बाद ही स्वभूराम देवाचार्य जी ने माता-पिता से संन्यास लेने की इच्छा व्यक्त की किन्तु उन्होंने एकमात्र पुत्र होने की बात कहकर उन्हें ऐसा करने से रोक दिया। तब स्वभूराम देवाचार्य जी ने अपने माता-पिता से कहा कि 'यदि आपके दो पुत्र और हो जाएँ तो आप मुझे संन्यास लेने देंगे। इस पर माता-पिता आश्चर्य में पड़ गए कि इतनी उम्र

में यह कैसे संभव है किन्तु प्रभु कृपा से इनके दो भाई संतदास और माधवदास का जन्म हुआ। उनके कुछ बड़े हो जाने पर माता-पिता से संन्यास की मौन स्वीकृति प्राप्त कर स्वभूराम देवाचार्य जी गुरुदेव हरिव्यास देवाचार्य जी की शरण में पहुँच गए। गुरुदेव शिष्य की भक्ति और सेवा-भावना से प्रभावित थे तथा स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के दृष्टिगत स्वभूराम देवाचार्य जी को ठाकुर जी की सेवा का प्राथमिक दायित्व सौंप दिया। इसके अतिरिक्त हरिव्यास देवाचार्य जी की ही कृपा से राधा देवी और कृष्णदत्त पंडित के एक और संतान हुई जिसका नाम उन्होंने माधव प्रसाद रखा। जिन्होंने बाद में स्वभूराम देवाचार्य जी से ही दीक्षा ग्रहण की। जिनके वंशज अथवा अनुयायी वर्तमान में खानपुर खाना और जगाधरी में स्वभूराम देव जी के गोस्वामी के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इनके प्रमुख शिष्य श्री कर्णहर देवाचार्य (कन्हर देवाचार्य) जी का जन्म श्री गुरुदेव का कृपा-प्रसाद था। श्री स्वभूराम देवाचार्य जी ने निम्बार्क सम्प्रदाय एवं वैष्णव धर्म की प्रतिष्ठा खूब फहराई। [कुं०बि०श०]

स्वरूपाचार्य

उपास्य स्वरूप में ही निरंतर निमग्न रहने के कारण ही इनका नाम स्वरूपाचार्य हुआ। इनका पाटोत्सव ज्येष्ठ शुक्ल सप्तमी को मनाया जाता है। श्रीस्वरूपाचार्य जी अपने गुरुदेव के पश्चात् 25 वर्षों तक आचार्य पीठासीन रहे किंतु वृंदावन में इनकी निष्ठा इतनी थी कि आप कभी श्रीधाम की परिधि से बाहर नहीं गए। यह स्वरूप और धाम के प्रति आपकी निष्ठा को प्रमाणित और चरितार्थ करता है। युगल निकुंज भावना में स्वरूपाचार्य जी 'सरसा सखी' के रूप में अवस्थित हैं। [कुं०बि०श०]

ह

हंसदूत

यह ग्रंथ 142 शिखरणी छन्दों में निबन्ध लघु काव्य है। इसके रचयिता गौड़ीय आचार्य रूप गोस्वामी जी हैं। ललिता नामक सखी राधा की विरह दशा को सूचित करने के लिए हंस को दूत बनाकर मथुरा में श्रीकृष्ण के पास भेजती हैं। यह रचना कालिदास के 'मेघदूत' के आधार पर रची गई है। इस काव्य में राधिका की मनोव्यथा का सजीव चित्रण किया गया है। भावों की अभिव्यंजना, कोमलकान्त पदावली का प्रयोग तथा उदात्त भावना की स्फूर्ति के कारण इसमें पर्याप्त साहित्यिक सौन्दर्य लक्षित होता है। [क०उ०]

हंस भगवान

भगवान विष्णु के 24 अवतारों में से 18वाँ अवतार अखिल कोटि ब्रह्मांड नायक हंस भगवान का भी प्रमुख अवतार है। श्री हंस देव का प्राकट्य लोक कल्याणार्थ विश्व मंगल और संसार दावानल से दग्ध जीवों पर कृपा करने के हेतु कार्तिक शुक्ल नवमी (अक्षय नवमी) के पावन दिवस पर माना जाता है। इन्होंने परमर्षि चतुष्टय सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार का शिष्यत्व ग्रहण कर हंस रूप से जिस दिव्य ज्ञान का उपेदश किया उसे 'हंस गीता' के नाम से जाना जाता है। इस अवतार का प्रयोजन सांसारिक जीवों और मुमुक्षुजनों को विषय-वासनाओं के दाह और इनकी ओर चिन्तोन्मुखता के भय से निवृत्ति का उपाय निर्दिष्ट करना था। नारायण ने हंस रूप ही इसलिए धारण किया था कि जिस प्रकार हंस नीर-क्षीर (जल और दूध) को पृथक करने में समर्थ है, उसी प्रकार उस सरलतम ज्ञान का उपदेश सनकादिकों को हंस भगवान ने किया। इसके साथ ही उन्होंने सनकादिकों को ब्रह्मविद्या श्री गोपाल मंत्रराज का उपदेश किया तथा उनके संदेह की निवृत्ति की। यह हंस गीता श्री कृष्णोद्धव संवाद के अंतर्गत श्रीमद्भागवत महापुराण के एकादश स्कंध के त्रयोदश अध्याय में वर्णित है। [कुं०बि०श०]

हँसमुखदास

हँसमुख दास जी लखनऊ के रहने वाले थे। श्री चरणदास जी ने इन्हें अपनी लखनऊ यात्रा के समय दीक्षित किया था। इनके गुरु भाई जोगजीत जी ने इनके बारे में एक घटना का जिक्र अपने ग्रंथ 'लीलासागर' में किया है कि एक बार इन्होंने यह निश्चय किया कि लखनऊ में आकर चरणदास जी इनके यहाँ जब तक दुग्धपान नहीं कर लेंगे तब तक ये अन्न जल ग्रहण नहीं करेंगे। इनके प्रण की रक्षा के लिए चरणदास जी को चमत्कारिक रूप से वहाँ प्रकट होकर दुग्धपान करना पड़ा लेकिन चरणदास जी ने इनको पुन: इस प्रकार का हठ न करने की आज्ञा दी।

हँसमुखदास जी के लखनऊ स्थित अन्य चरणदासी संत गुरुप्रसाद मुक्तानंद परमार्थी, नंददास तथा श्याम शरण बड़भागी आदि लोगों से भी मैत्रीपूर्ण घनिष्ठ संबंध थे। ये सभी एक दूसरे की गद्दियों एवं आश्रमों में आते-जाते रहते थे। इनके द्वारा रचित साहित्य के बारे में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। [क०उ०]

हजरत निजामुद्दीन औलिया

चिश्ती सन्तों में एक प्रसिद्ध नाम माना जाता है हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया का यह बाबा फ़रीद के शिष्य थे। इनके

पूर्वज बुख़ारा के रहने वाले थे। निज़ामुद्दीन औलिया का जन्म बदायूं (उत्तरप्रदेश) में सन् 1236 में हुआ था। जब यह मात्र पाँच वर्ष की आयु के थे तभी इनके पिता का निधन हो गया था। इनकी माता ने ही इनका पालन-पोषण किया। यह बीस वर्ष की आयु में घर से निकल अजोधन गये और वहीं बाबा फ़रीद के शागिर्द (शिष्य) बन गये। सन् 1258 ई. में यह अजोधन से दिल्ली आ गये और यहीं रहकर आपने शिक्षा का प्रचार-प्रसार किया। कई स्थानों पर निवास करने के बाद यह दिल्ली से दूर ग्यासपुर नामक स्थान पर जाकर रहने लगे और वहीं इनके एक शिष्य मौलाना ज़ियाउद्दीन जो एक इमाद-उल-मुल्क के वकील थे उन्होंने इनके लिए एक ख़ानकाह का निर्माण करवाया जो कि आज भी विद्यमान है।

शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया ने सात सुल्तानों का राज्य देखा था। जोकि एक के बाद एक सिंहासनारूढ़ होते चले गये। लेकिन आप कभी किसी के दरबार में नहीं गये। सुल्तान जलालुद्दीन ने शेख़ से मिलने के बड़े प्रयत्न किए, यहाँ तक कि शेख़ के प्रिय शिष्य अमीर खुसरो द्वारा भी मिलने का प्रयास किया किन्तु जब शेख़ को मालूम हुआ कि सुल्तान आने वाला है तो वे अजोधन चले गये। इसी तरह जब अलाउद्दीन ख़िलजी ने उनसे मिलना चाहा तो शेख़ ने जवाब दिया कि 'मेरे मकान में दो दरवाज़े हैं यदि सुल्तान एक द्वार से आयेगा तो मैं दूसरे से चला जाऊँगा। सुल्तान अलाउद्दीन के पश्चात् सुल्तान मुबारक शाह भी चाहता था कि शेख़ अन्य उलेमाओं और सूफ़ियों की भाँति दरबार में आया करें। शेख़ ने उसको उत्तर दिया कि 'मेरे पीर का आदेश रहा है कि शासकों से सदैव दूर रहो।'

आगे चलकर मुहम्मद बिन तुग़लक (उलुग खाँ) इनके शिष्य बन गये। शेख़ ने उनके सम्बन्ध में भविष्यवाणी की कि यह जल्दी ही दिल्ली का सुल्तान बनेगा। इसलिए जब सुल्तान ग्यासुद्दीन तुग़लक बंगाल विजय (सन् 1325) से वापस आ रहा था तो उसने शेख़ को एक धमकी भरा पत्र भेजा कि ग्यासपुर छोड़ दें, इसके उत्तर में शेख़ ने कहा कि 'हनुज देहली दूर अस्त' (अभी दिल्ली दूर है)। ग्यासुद्दीन दिल्ली के बाहर ही दुर्घटना का शिकार हो गया। लोगों को विश्वास हो गया कि शेख़ के अभिशाप से ही ऐसा हुआ है।

इतिहासकार बरूनी लिखते हैं कि शेख़ निज़ामुद्दीन ने अपने द्वार शिष्यों के लिए खोल दिए थे और उन्होंने अमीरों तथा सामान्य व्यक्तियों, धनी तथा निर्धनों, शहरियों तथा देहातियों को अंगीकार कर लिया था। यह लोग बहुत-सी बातों से दूर रहते थे क्योंकि वह स्वयं को शेख़ का शिष्य मानते थे। अगर कोई शिष्य पाप करता था तो वह शेख़ के सामने स्वीकार कर लेता था। जनसाधारण का झुकाव मज़हब और नमाज़ की ओर हो गया था।

शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया को 'मेहबूब-ए-इलाही' (ईश्वर का प्रिय) और सुल्तान-उल-औलिया (संतों का राजा) की उपाधि से भी विभूषित किया जाता है। आगे चलकर महबूब-ए-इलाही के इस मानव प्रेम व परोपकार के उपदेशों का प्रचार उनके शागिर्दों द्वारा देश के विभिन्न भागों में किया गया। [आ०स०]

हजरत मुहम्मद साहब

इस्लाम धर्म के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद साहब का जन्म 9 रबी अल् अव्वल यानी 20 अप्रैल सन् 571 ई. को सोमवार के रोज़ अरब के शहर मक्का में हुआ था। आपका दूसरा नाम अहमद है, आपके पिता का नाम अब्दुल्ला और माता का बीबी आमिना था। आप अपने माता-पिता की अकेली सन्तान थे। आपके जन्म से पूर्व ही पिता का निधन हो चुका था और मात्र छः वर्ष की आयु में माता भी स्वर्गवासी हो गईं। जब आप आठ वर्ष के हुए तो लालन-पालन करने वाले दादा भी परलोक सिधार गये। अब आपका लालन-पालन चाचा अबूतालिब ने किया जो कि एक व्यापारी थे, अतः आप भी बड़े होकर व्यापार में लग गये।

मक्का में ख़दीजा नाम की एक अमीर विधवा रहती थीं, आपकी ईमानदारी देखकर वह आपसे बहुत प्रभावित हुईं और अपने साथ व्यापार करने का पैगाम भेजा, आपने उस निमन्त्रण को कबूल किया और उनको व्यापार में बड़ा ही लाभ पहुँचाया। खदीजा आपके गुणों से बहुत प्रभावित हुई। उस समय खदीजा की आयु चालीस वर्ष की थी और आप केवल

पच्चीस वर्ष के थे। उनके गुणों को देखकर खदीजा ने उनके साथ विवाह कर लिया। उस समय मक्कावासियों का जीवन बड़ा ही अस्त-व्यस्त था, चारों तरफ अशान्ति थी, कमज़ोरों और गरीबों पर बड़े अत्याचार होते थे, आपसी फूट, स्वार्थ, लूट-खसोट के कारण जन-जीवन बेहाल हो गया था। लोग भाँति-भाँति के ढोंग, अंधविश्वास और बुतपरस्ती में लगे थे। हज़रत मुहम्मद संसार में सच्चा धर्म फैलाने आये थे, उनकी सच्चाई, ईमानदारी और शील-सदाचार से लोग अत्यन्त प्रभावित होने लगे। आपने अपने उपदेशों में वास्तविक खुदा का मार्ग दिखलाया। आपने काबा (खुदा का घर) में स्याह पत्थर की स्थापना की।

मक्के में एक पहाड़ी गुफा जिसे हिरा की गुफा के नाम से जाना जाता है, वहाँ आप एकान्त में अपने खुदा की इबादत किया करते थे, इस एकान्त इबादत में उन्हें अलौकिक सपने आने लगे, उन्हें सच्चे ज्ञान की अनुभूति होने लगी। जब आपकी उम्र चालीस साल और एक दिन की हुई तो 18वें रमज़ान को जुम्मे की रात हज़रत जिबराईल आपके समक्ष उपस्थित हुए और बताया कि मैं खुदा का फरिश्ता हूँ और उसने मुझे आपके पास यह सन्देश देने भेजा है कि आप उसके पैगम्बर और रसूल हैं और फिर जिबराईल अलैह सलाम ने आपको खुदा का कलाम पढ़कर सुनाया। ज्ञान पाकर आपका हृदय खुदा के नूर (ज्ञान के प्रकाश) से भर उठा। जिबराईल अलैह सलाम ने आपको नमाज़ भी पढ़वाई।

आप अब पैग़म्बर हो गए, फिर आपने अपने रब का पैगाम सबको सुनाना शुरू किया। सर्वप्रथम जो आप पर ईमान लाये वे थे-औरतों में आपकी बीवी हजरत खादीजा, बुजुर्गों में हजरत अबू बकर सिद्दीक, बच्चों में हजरत अली, जिनका पालन-पोषण आपके ही हाथों हुआ था और जो बड़े होकर आपके दामाद भी बने और इन सबके अतिरिक्त गुलामों में हजरत जैद।

आपके अनुयायियों की बढ़ती संख्या देख कुरैश और उसके साथी आपके विरोधी हो गए। वह तरह-तरह से आपको परेशान करने लगे, मक्के वालों का अत्याचार जब हद से आगे बढ़ गया तो पाँच वर्ष बाद मजबूर होकर आपने अपने साथियों को मक्का छोड़कर मुल्क हब्श (अफ्रीका) चले जाने को कहा। दस मर्दों और पाँच औरतों ने तब पहली बार खुदा की राह में अपना घरबार त्यागा, इसी को हिजरत कहते हैं।

मक्के वालों ने हजरत मुहम्मद को तीन वर्ष तक मक्के की घाटी में नजरबन्द रखा और भी कई प्रकार की यातनाएँ आपको दी गईं। अन्त में परेशान होकर आपने मुसलमानों को मदीना चले जाने को कहा। मदीने के लोग तेजी से आपके अनुयायी बनते जा रहे थे, मक्के के लोगों ने आपको अकेला जानकर आपको कत्ल करने का षड्यंत्र भी रचा। अपने घर पर इन लोगों को आता देख आप अपने मित्र हजरत अबू बकर के साथ मदीना को रवाना हो गए। मदीना में आपके आने की खुशी में वहाँ के मुसलमानों ने ईद मनाई। मदीने में आपने इबादत के लिए मस्जिद की तामिर की, स्वयं अपने हाथों से ईंट-गारा ढोया। आपने भाई-चारे और प्रेम का पाठ सबको दिया।

कुरैश (कबीला) ने यहाँ भी आपको बड़ा परेशान किया, आखिर आपकी हिजरत के दूसरे वर्ष बदर के स्थान पर मुसलमानों और कुरैश में घमासान युद्ध हुआ, मात्र 313 मुसलमान हजारों कुरैशों से भिड़ पड़े और अल्लाह के करम से दुश्मनों को मार भगाया। इसके बाद कुरैश ने मुसलमानों के साथ सन्धि कर ली। पर शीघ्र ही कुरैश ने सन्धि तोड़ युद्ध की घोषणा कर दी। मजबूर होकर हजरत को दस हज़ार मुसलमान योद्धाओं के साथ मक्के पर आक्रमण करना पड़ा और मक्का फतह किया। इसके बाद मक्के पर भी मुसलमानों का कब्जा हो गया। अब लाखों की तादात में मुसलमान हर वर्ष हज के लिए मक्का जाने लगे। सन् हिजरी 11 में आपके स्वास्थ्य में गिरावट आई और आप बीमार पड़ गये। आखिर 12 रबी अलअव्वल को अल्लाह का प्यारा नबी लाखों मुसलमानों को रोता-बिलखता छोड़कर इस संसार से कूच कर गया। [आ०स०]

हदीस

'हदीस' का शाब्दिक अर्थ है 'बात या गुफ्तगू' जबकि शरिअत की परंपरा में हदीस रसूलल्लाह स.अ.व. के कौल,

अमल और खामोश तरीके से उनकी ओर से दी गई स्वीकृति को कहा जाता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि हुजूर सल्ल० अ०व० के अलावा किसी के कौल और अमल को इस्तेलाही अर्थ (Traditional Sense) में हदीस नहीं कहा जा सकता। हदीस और सुन्नत एक दूसरे से कुछ अर्थों में भिन्न हैं, विशेष रूप से 'हदीस' सीरत-ए-पाक के दृष्टिकोण को प्रस्तुत करती है और सुन्नत इसके अमली पहलू को। इसके विपरीत यह दोनों शब्द इस्लामी शरिअत में आमतौर पर पर्यायवाची के रूप में जाने जाते हैं।

हदीस की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि-इस्लाम के पाँच स्तंभ हैं जिन पर दीन के विशाल भवन का निर्माण होता है। 'दीन' वास्तव में नाम है विचार एवं धारणा का, कर्म और सत्यनिष्ठा का। हदीस में दीन की मौलिक चीजों पर प्रकाश डाला गया है। केवल अल्लाह को 'इलाहा' (पूज्य प्रभु) मानने का अर्थ है कि मनुष्य यह स्वीकार करे कि अल्लाह ही हमारा उपास्य, स्वामी और शासक है सब उसी के आश्रित हैं। वही है जिसकी चाह, अभिलाषा और खोज की प्रेरणा हमारी प्रकृति में रखी गई है। अल्लाह के विषय में यथार्थ ज्ञान 'रसूलों' के द्वारा होता है। 'रसूल' ही बताते हैं कि अल्लाह की इच्छा के अनुसार जीवन किस प्रकार व्यतीत किया जाए इसलिए 'तौहीद' (एकेश्वरवाद) एवं अल्लाह के प्रभुत्व को जानने के साथ 'रिसालत' (ईशदूतत्व) को मानना भी आवश्यक है। 'रसूलों' में सबसे अंतिम रसूल हजरत मुहम्मद सल्ल.अ.ल.व. हैं। जीवन का यथार्थ पाने के लिए आवश्यक है कि आपकी रिसालत को माना जाए तथा आपके नेतृत्व और मार्गदर्शन को स्वीकार किया जाए।

नबी सल्ल०अ०ल०व० ने अपने जीवन काल में एक ओर तो अपने कर्म और वचन से कुरआन और अल्लाह के आदेशों को स्पष्ट किया दूसरी ओर आपने इस्लामी नियमों के अनुसार लोगों का चरित्र निर्माण किया। आपके सिखाये ढंग पर 'नमाज', 'रोजा' आदि इबादतों और उपासनाओं के तरीके प्रचलित हुए। शादी-विवाह, तलाक और विरासत आदि के नियम आपने नियत किये थे। घर से लेकर मस्जिद, बाजार, न्यायालय, शासन से लेकर अंतर्राष्ट्रीय राजनीति तक सभी मामलों में नबी सल्ल०अ०ल०व० की 'सुन्नत' आपके अनुयायियों के लिए कानून व नियम की हैसियत रखती थी। इसी कानून और नियम के अनुसार इस्लामी समाज में एक चीज हलाल (वैध) और एक चीज हराम (अवैध) होती थी। इस प्रकार 'सुन्नत' आधार पर इस्लामी समाज की स्थापना हुई।

नबी सल्ल.अ.ल.व. अपने जीवन काल में लोगों के पथ प्रदर्शन के लिए स्वयं मौजूद थे, परंतु आपके बाद आवश्यकता हुई कि आपकी 'सुन्नतें' जमा की जाए। जनसाधारण से लेकर जजों और अधिकारी व्यक्तियों सभी को अपने-अपने क्षेत्र में ऐसे मामले पेश आते थे, जिनके विषय में उन्हें 'सुन्नत' के ज्ञान की आवश्यकता होती थी। जिनके पास नबी सल्ल०अ०ल०व० की किसी 'सुन्नत' का ज्ञान था वे भी उसे एक अमानत समझते थे। इस प्रकार हदीस की रिवायत का आरंभ हुआ और 'हदीस' जमा करने का यह सिलसिला सन् 11 हिजरी से तीसरी-चौथी शताब्दी तक जारी रहा। इसके साथ सही हदीसों में मनगढ़न्त हदीसों को सम्मिलित करने के प्रयास को असफल बनाने का भी हरसंभव प्रयास किया गया। विशेष रूप से उन सुन्नतों को जो नियम और कानून आदि से संबंध रखती थीं, हर प्रकार से छानबीन की गई और आलोचना के कड़े से कड़े नियमों पर उन्हें परखा गया। तर्क-वितर्क और आलोचना की भी उस सामग्री को भी सुरक्षित कर दिया गया जिसके कारण किसी 'रिवायत' को छोड़ा गया था या किसी 'हदीस' को कबूल किया गया।

हदीसों के प्रकार या किस्में-'हदीस' को शरिअत-ए-इस्लामी के दूसरे स्रोत होने का सम्मान प्राप्त है। इसके बिना कुरआन को अच्छी तरह नहीं समझा जा सकता। इसके निम्नलिखित प्रकार हैं-

1. **हदीस-ए-कौली**-रसूल सल्ल०अ०ल०व० की जबाने मुबारक से कहे गए शब्द या उनकी ओर से प्रस्तुत की गई जबानी तालीम-ओ-हिदायत को हदीस-ए-कौली के नाम से जाना जाता है।

2. **हदीस-ए-फेली**-रसूल सल्ल०अ०ल०व० के अमल को हदीस-ए-फेली के नाम से जाना जाता है। इसमें आप

स०ल०म०ल०व० के वे आमाल भी शामिल हैं जो अल्लाह के हक से संबंधित हैं और वे आमाल भी जो अल्लाह के बंदों के हक से संबंधित हैं।

3. **हदीस-ए-तकरीरी**-हदीस की इस्तेलाह में तकरीर नबी स.अ.व. की तरफ से किसी विषय में मौनपूर्ण ढंग से दी गई स्वीकृति को कहा जाता है अर्थात एक ऐसा कार्य जिसके करने का न ही आपने हुक्म (आदेश) दिया हो और न ही इसको करने से रोका हो, अपितु आप मौन रहे हों।

हदीस से संबंधित कुछ मुख्य बिंदु-

हर हदीस के दो भाग होते हैं प्रथम भाग को सनद (Chain of Narators) कहा जाता है और दूसरे हिस्से को मत्न (Text) कहा जाता है। 'सनद' हदीस के रावियो के सिलसिले को कहा जाता है और 'मत्न' स०अ०व० की उस तालीम को कहते हैं जो हदीस के पहले भाग सनद के बाद ही शुरू से आखिर तक नक्शा किया गया हो। अर्थात् रसूल-ए-अकरम स०अ०व० के कौल, फेल और मंजूरी पर आधारित भाग को मत्न कहते हैं।

प्रमुख हदीसों का विवरण

सिहाह-ए-सित्ता (छः सत्य प्रमाणित विश्वसनीय हदीसों का संकलन)-अहद-ए-अब्बासी को इल्मी तरक्कियों के लिहाज से उच्च स्थान प्राप्त है। विशेषकर इस काल में अहादीस-ए-नबविय्या का बड़े पैमाने पर संकलन आरंभ हुआ और हदीसों के छः विश्वसनीय संकलित रूप हमारे सामने आए, जिनका विवरण इस प्रकार है-

1. अल-जामेउस-सहीह लिल बुखारी-इस संकलित हदीस को आमतौर पर 'बुखारी शरीफ' के नाम से जाना जाता है जो अबू अब्दुल्लाह मुहम्मद बिन इसमाईल-अल बुखारी अल मुतवफ्फी 256 हिजरी के हाथों मनजर-ए-आम पर आया। इस संकलन का पूरा नाम 'अल-जामेउस सहीह अल मुसदन व अैय्यामिही है। दस हजार हदीसें इसमें संकलित हैं।

2. अस-सहीह लेमुस्लिम-इस हदीस को आमतौर पर 'मुस्लिम शरीफ' के नाम से जाना जाता है। जो मुस्लिम बिन हज्जाज अल-कुरैशी अल मुतवफ्फी 261 हिजरी के द्वारा पूर्ण हुआ। हदीसों की पुनरावृत्ति को छोड़कर चार हजार हदीसें इसमें संकलित हैं।

3. सुननुत तिरमिजी-आमतौर पर इसे 'तिरमिजी शरीफ' के नाम से जाना जाता है, जो मुहम्मद बिन ईसा अत-तिरमिजी अल मुतवफ्फी 279 हिजरी के द्वारा प्रकाश में आया। इस हदीस का विशेष महत्व यह है कि इसमें फिक्ही तरतीब का लिहाज रखा गया है।

4. सुनन-ए-अबी दाऊद-हदीसों का यह संकलन अबू दाऊद सुलैमान बिन अशअस उस सुब्हुस्तानी अल मुतवफ्फी 276 हिजरी ने तैयार किया। इसमें हदीसों की संख्या 4000 है।

5. सुनन-ए-इब्न-ए-माजा—मुहम्मद बिन यजीद बिन माजा अल-कजवीनी अल मुल्वफ्फी 273 हिजरी ने यह संकलन तैयार किया। कुछ पुरानी रिवायतों के सम्मिलित हो जाने के कारण कुछ माहेरीन-ए-हदीस इसे सिहाह-ए-सित्ता की श्रेणी में रखने पर सहमत नहीं हैं।

6. सुननुन-नसई-इस संकलन को शोऐब अन-नसई अल-मुतवफ्फी 303 हिजरी ने तैयार किया। इसमें चयनित हदीसें सम्मिलित की गईं। इस हदीस को अस सुननुल मुजतबा के नाम से भी जाना जाता है।

प्रमुख हदीसों की व्याख्या-

कुछ महत्वपूर्ण हदीसें व्याख्या के साथ प्रस्तुत की जा रही हैं जिनका प्रयोग करने पर एक समुदाय ईमान के लिहाज

से मजबूत हो जाता है और दूसरी ओर एक सेहतमंद (स्वस्थ) समाज की स्थापना होती है।

1. आमाल के सही और गलत होने का दार-ओ-मदार तो नियती के सही और गलत होने पर है हर शख्स को उसकी नियत के मुताबिक अजर मिलेगा (अल-बुखारी)।

2. हजरत सलमा रजि कहती हैं कि मैंने नबी सल्ल०अ०ल०व० को यह कहते सुना है कि "जो व्यक्ति मुझसे संबंध लगाकर वह बात कहे जो मैंने नहीं कही वह अपना ठिकाना 'जहन्नम' में बना ले (बुखारी शरीफ)।

3. हजरत अबू हुरैरह रजि. का बयान है कि संसार में से एक व्यक्ति ने कहा "मैं आप से बहुत सी बातें सुनता हूँ परंतु याद नहीं रख पाता।" अल्लाह के रसूल सल्ल०अ०ल०व० ने कहा "अपने हाथ से मदद लो।" और अपने हाथ के इशारे से बताया कि लिख लिया करो। (तिरमिजी) [श०उ०]

हनुमान जन्मोत्सव

हनुमान जयन्ती का उत्सव ब्रज क्षेत्र में अत्यन्त धूमधाम के साथ मनाया जाता है। वृन्दावन के सिंहपौर हनुमान, लुटेरिया हनुमान, नीम करौरी हनुमान, पंचमुखी हनुमान, केसीघाट स्थित हनुमान व अन्य हनुमान मन्दिरों में अंजनी पुत्र के जन्मोत्सव का आयोजन किया जाता है। मथुरा में संकटमोचन हनुमान, कंकाली, अम्बरीष टीला बड़े हनुमान, दस भुजाधारी हनुमान आदि स्थानों पर हनुमानजी का प्राकट्य उत्सव अत्यन्त धूमधाम से मनाया जाता है। हनुमानजी का पंचामृत स्नान, फूल बंगला, छप्पनभोग आदि का आयोजन किया जाता है। ब्रज में राजे-रजवाड़ों के द्वारा मंदिर अथवा कुञ्ज बनाने के दौरान पौर के हनुमान भी कई जगहों पर स्थापित किये गये जिनका अपना महत्व है। [प्र०श०]

हरिवंशाष्टक

इस अष्टक में श्री हिताचार्य के स्वरूप का समुद्गान किया गया है। रचना भाव प्रधान होते हुये रसोपासना प्रवर्तक गो० हित हरिवंश जी के आचार्य जीवन की कतिपय किरणें विकीर्णित करती हैं। अत: श्री हित हरिवंश चरित को उजागर करने में अत्यधिक उपादेय सिद्ध हुयी है। इस 'हरिवंशाष्टक' का उल्लेख सर्वप्रथम भगवतमुदित जी गौड़ीय ने स्वरचित ग्रंथ रसिक अनन्यमाल में प्रबोधानन्द के चरित्र वर्णन में किया है। अनन्य अलि जी ने वि.सं.1773 में रचित अपनी वाणी में इस अष्टक को अविकल उद्धृत किया है। इस अष्टक की एक संस्कृत टीका गो.सुखलाल जी कृत दूसरी टीका लोकनाथ जी कृत ब्रजभाषा गद्य में प्राप्त होती है। दोनों टीकाओं की प्राचीन हस्तलिखित प्रति भी उपलब्ध है। [रा०श०]

हरिकिशोर

गोस्वामी हरिकिशोर जी गोस्वामी नृसिंहकिशोर जी के भाई थे। नृसिंहकिशोर जी की कोई सन्तान न होने के कारण सम्वत् 1865 में नृसिंहकिशोर जी की गद्दी पर उनके भाई गोस्वामी हरिकिशोर जी विराजित हुए। ये बड़े धर्मशील व्यक्ति थे। ये इस गद्दी के नवम् सेवायत हुए। इनके समय की एक विचित्र घटना वर्णित है-एक कारे नामक ब्राह्मण श्री मदनमोहन जी का भक्त था। वह श्रीकृष्ण की कविता किया करता था। एक दिन उनके पुत्र का स्वर्गवास हो गया था तो शोक में डुबा हुआ अपने पुत्र का शव लेकर सिंहपौर पर बैठा। वहाँ उसने लगभग 108 कवित्त रचे और ऊँचे स्वर में उनका उच्चारण करने लगा। उसका यह प्रण था कि उसका इकलौता पुत्र जीवित हो जाये। इसी अवस्था में उसे आठ पहर बीत गये तो गुसाईं जी को स्वप्न हुआ कि प्रात:काल तुम अपने हाथों से मृतक बालक के मुख में चरणामृत डालो। गुसाईं जी ने ऐसा ही किया और वह बालक जीवित हो गया। कुछ समय पश्चात् सम्वत् 1886 में गोस्वामी हरिकिशोर जी का गोलोकवास हो गया। [जि०कु०]

हरिदास (गौड़ीय)

श्री हरिदास जी का जन्म जसोर जिला के बुरहानपुर नामक ग्राम में सम्वत् 1506 में हुआ था। कुछ लोगों का मानना है कि ये चैतन्य महाप्रभु से लगभग 36 वर्ष बड़े थे। इनका लालन-पालन एक मुसलमान परिवार में हुआ था। ये बचपन से ही हरिभक्ति में लीन थे। हिन्दू धर्म के प्रति श्रद्धा रखने के कारण मुसलमानों ने इन्हें अनेक कष्ट दिये, परन्तु ये विचलित नहीं हुए। हरिदास जी अद्वैत जी के साथ चैतन्य की भक्तमण्डली में सम्मिलित हुए और हरिनाम संकीर्तन का प्रचार-प्रसार करने में इनका बड़ा योगदान रहा था। चैतन्य महाप्रभु भी इन्हें बहुत मानते थे। वे अपने साथ इन्हें नीलांचल ले गये। सम्वत् 1581 में इनका गोलोकवास हो गया। इनका अंतिम संस्कार स्वयं चैतन्य महाप्रभु ने किया था। [जि०कु०]

हरिदास

विक्रम की सोहलवीं शताब्दी में वैष्णव भक्तों द्वारा जिस भक्ति का प्रसार किया गया, वह तत्त्वत: अन्त:करण की निगूढ़ प्रेमाभक्ति का अत्यधिक प्रभावी स्वरूप है। इस प्रेमतत्त्व की प्रगाढ़ता और व्यापकता में भारत का जनमानस पूर्णत: निमग्न हुआ दिखाई देता है। किन्हीं स्वाभाविक और सहज कारणों से इस काल की भक्ति चेतना इतनी प्रबल हो गई थी कि देश का कोई भी भू-भाग इससे अछूता न रहा।

रसिकशेखर स्वामी हरिदास जी का भी व्यक्तित्व इतना रसाविष्ट है कि उनके ऐतिह्य के विषय में प्राय: चर्चा नहीं होती। स्वामी जी ने अपने विषय में कुछ भी नहीं लिखा है। स्वामी जी अथवा परवर्ती अन्य आचार्यों की रचनाओं में भी कोई सूत्र इस विषय में प्राप्त नहीं होता। विभिन्न साक्ष्यों को आधार मानकर स्वामी हरिदास जी के जन्म संवत् आदि के विषय में विद्वान एकमत नहीं हैं। श्री एफ.एस.ग्राउस ने 'मथुरा-ए-डिस्ट्रिक्ट मेमोयर' में भक्तसिंधु का उल्लेख किया है, जिसमें स्वामी जी का जन्म संवत् 1441 एवं निकुंजगमन संवत् 1535 लिखा गया है। 'वृन्दावनधामानुरागावली' में दो जन्म संवत् 1509 एवं 1537 स्वीकार किए गए हैं। बलदेव कवि की वंशावली में यह संवत् 1515 है। 'गुरु प्रणालिका' में यह संवत् 1535 है। 'निजमत सिद्धांत' में संवत् 1537, 'श्री सुदर्शन चक्र' में संवत् 1569 तथा 'कुंजबिहारी सर्वस्व' में संवत् 1584 माना गया है। इस प्रकार स्वामी जी के जन्म संवत् 1441 से 1584 तक विभिन्न विद्वानों ने निश्चित किए हैं। डॉ. गोपालदत्त ने संवत् 1537 को स्वामी जी का जन्म संवत् माना है। सभी मतों का विवेचन विश्लेषण करते हुए स्वामी जी का जन्म संवत् 1535 तथा निकुंजगमन काल संवत् 1630 मानना उचित होगा।

स्वामी जी के पिता आशुधीर जी थे। भक्तमाल के छप्पय में यही माना गया है-

नृपति द्वार ठाड़े रहें दरसन आसा जासु की।
आसधीर उद्योत कर 'रसिक' छाप हरिदास की॥

स्वामी हरिदास जी के निरंतर संपर्क में रहने वाले उनके समकालीन श्री हरिराम व्यास जी भी इसी रूप में उनका उल्लेख करते हैं-"आसू कौ हरिदास रसिक, हरिबंस न मोहि बिसारौ।" स्वामी जी के प्रशिष्य लेकिन समकालीन श्री बिहारिनदास जी ने भी-"गुरुन कौ गुरु हरिदास आसधीर कौ" लिखा है। बाद के अनेक विद्वानों ने भी आशुधीर जी को स्वामी जी के पिता के रूप में स्वीकार किया है। स्वामी जी की माता का नाम गंगा था। स्वामी जी का जन्म सारस्वत कुल में अलीगढ़ के निकट कोल ग्राम जिसे अब हरिदासपुर कहा जाता है में हुआ था। जहाँ से वे वृन्दावन चले आए। वृन्दावन ही स्वामी जी की साधना स्थली है।

ऐसा माना जाता है कि स्वामी जी ने पच्चीस वर्ष की आयु में वैराग्य धारण किया। अनुमान है इससे पूर्व उनका

विवाह हुआ था। दीपक लौ से हाथ की लाख की चूड़ियों का स्पर्श होने के कारण स्वामी जी की पत्नी अग्निस्वरूपा हुईं। उनका नाम विजया सती अथवा हरिमती माना जाता है एवं कुलदेवी के रूप में आज भी गोस्वामी कुल में उनकी पूजा होती है। गोस्वामी कुल की स्त्रियाँ अब भी लाख की चूड़ियाँ नहीं पहनतीं।

स्वामी जी की शिक्षा कब और कहाँ हुई, इसका कोई विवरण प्राप्त नहीं होता। स्वामी जी के पूर्वज विद्वान थे। उनके पिता आशुधीर जी विद्वान थे, अत: ऐसा अनुमान है कि अपने पिता से ही उन्होंने शिक्षा प्राप्त की होगी। स्वामी जी की वंश परम्परा और विरक्त परम्परा दोनों ही एकमत से उक्त मत को स्वीकार करते हैं। स्वामी जी की रचनाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्हें काव्य, दर्शन, साहित्य का पर्याप्त ज्ञान था। स्वामी जी भाषा एक ओर संस्कृतनिष्ठ है तो दूसरी ओर उस पर पंजाबी प्रभाव भी है। इसका बड़ा सीधा-सा कारण यह है कि वे सारस्वत कुल के थे और उनके पूर्वज कुछ ही समय पूर्व पंजाब से आए थे।

साहित्य के साथ संगीत का भी उन्हें अपूर्व ज्ञान मिला था। वे संगीत-सिद्ध थे तो उनके 'श्यामाकुंजबिहारी संगीत-संगी' गान में उनकी विशिष्ट अभिरुचि थी। उस समय मथुरा और अलीगढ़ से अनतिदूर ग्वालियर संगीत का एक बड़ा केन्द्र था। ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर ने संगीत के क्षेत्र में क्रांतिकारी कार्य किया था। संगीत का माध्यम अभी तक संस्कृत भाषा थी। मानसिंह ने एक बड़ी सभा बुलाई जिसमें संगीत के अनेक कलाकार उपस्थित हुए। सभी के सहयोग से 'मानकुतूहल' ग्रंथ की रचना हुई। यह ग्रंथ अब अनुपलब्ध है, परंतु औरंगजेब के समकालीन फखरुल्लाह ने 'रागदर्पण' में उसका सारांश दिया है। एक दरबारी कवि और संत कवि के व्यक्तित्व में जो अंतर होता है, वही अंतर तानसेन और स्वामी जी का था और वही अंतर दरबारी ध्रुवपद परम्परा और रसिक ध्रुवपद परम्परा में था।

वृन्दावन आगमन के पश्चात स्वामी जी ने अपने उपास्य रस का प्रवर्तन किया और वे सिद्ध आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हुए। वे अपने उपास्य रस के साथ एकरस हुए। अपने उपास्य 'श्यामाकुंजबिहारी' का वे निरंतर साक्षात करते थे, उन्हीं की केलि को निरखते थे, उसी का गान करते थे। उनकी 'केलिमाल' श्यामाकुंजबिहारी की केलियों की माला है। उन्होंने सिद्धांत के पदों की रचना भी की। वृन्दावन में निधिवन से बाँकेबिहारी को प्रकट किया। श्रीबाँकेबिहारी में श्यामाश्याम की अद्वय छवि है। [ल०बि०गो०]

हरिदास (द्वितीय)

चरणदासी सम्प्रदाय में हरिदास नाम से दो संत हुए हैं। पहले हरिदास डूडाहेड़ा और बलियाणा के महंत थे। आलोच्य हरिदास ने अलीगढ़ के कोयल नाम के स्थान पर अपनी गद्दी स्थापित की थी। इन दोनों हरिदास का नाम साम्प्रदायिक ग्रंथों में 'दोऊ हरिदास' कहकर आया है। सम्भवत: यह दोनों संत अधिकांशत: एक साथ ही रहते होंगे। हमारे आलोच्य हरिदास जी का कार्यक्षेत्र अलीगढ़ एवं लखनऊ रहा है। इनके बारे में कोई भी जीवन परिचय सम्बन्धी सामग्री प्राप्त नहीं होती है। [क०उ०]

हरिदास डागुर

कुछ संगीतज्ञों की यह धारणा है कि स्वामी हरिदास और हरिदास डागुर दोनों एक ही व्यक्ति थे। वर्तमान काल में कतिपय ध्रुवपदिया अपने को डागुर तथा अपनी बानी को डागुरी बतलाते हैं। वे अपनी कुल-परंपरा का संबंध कालिदास डागुर अथवा हरिदास डागुर से मानते हैं। श्री शिवहरित ने हरिदास डागुर और उनकी 'डागुरी बानी' की परंपरा बतलाते हुए लिखा है—

डागुरी वाणी के सबसे पहले गायक बाबा हरिदास डागुर थे। वे स्वामी हरिदास के समकालीन और उन्हीं की तरह

उच्चकोटि के गायक और भक्त थे। कृष्ण की लीला भूमि वृंदावन में ही उनका निवास स्थान था। ध्रुपद में बँधे हुए उनके बहुत से पद भी हैं।

उसी उल्लेख में कहा गया है, बाबा हरिदास डागुर के पश्चात् उस परंपरा में स्वामी ब्रह्मानंद, बाबा सत्यदेव और बाबा गोपालदास हुए। बाबा गोपालदास के पुत्र को मुसलमान बना लिया गया, जो बाद में उस्ताद बैरामखाँ के नाम से विख्यात गायक हुआ। बैरामखाँ के दो पुत्र सरदारखाँ और मुहम्मदखाँ हुए। मुहम्मदखाँ के पुत्र जाकिरउद्दीनखाँ और अल्लाबदेखाँ थे। वे डागुर बंधु कहलाते थे और साथ-साथ गाते थे। अल्लाबंदे खाँ के पुत्र और अमीनुद्दीन खाँ के चार पुत्रों में से दो बड़े मोइनुद्दीन खाँ डागुर नाम से प्रसिद्ध हैं। इस घराने में सदा से नामी गायक हुए हैं, जिन्होंने पुराने समय में अब तक ध्रुपद की गायकी को जीवित रखा है।

उपर्युक्त उल्लेख से ज्ञात होता है कि डागुरी बानी के प्रचारक बाबा हरिदास डागुर का स्वामी हरिदास जी से कोई संबंध नहीं है। दोनों की रचनाएँ भी भाषा, भाव, विषय और नाम-छाप की दृष्टि से सर्वथा भिन्न हैं। स्वामी हरिदास की रचनाओं में जहाँ उनके उपास्य श्यामा-कुंजबिहारी की नित्य बिहार लीलाओं का गायन हुआ है, वहाँ हरिदास डागुर की रचनाओं में विभिन्न देवी-देवताओं की स्तुति, नादगढ़ के विचित्र रूपक और साधारण नायिकाओं का कथन मिलता है। स्वामी हरिदास 'डागुर' का एक पद—

तरैया नाद महानद को मूर्छना गमक नीर सुरत अगाध तान तरंग,
तान तरंग वही अलापन ओड़ब खाड़व पुरन धार।
आरोही अवरोही दोउ कुल पुर असंन्यास
ग्राह ग्रह तान, भँवर सरोज वादी विवादी सिवार॥
नौका आवाज पर राग रागरणी पथिक चढ़त उतारत गुनीजन वार पार।
'हरिदास डागुर' उत्तम नायक धारू ध्रुपद छंद गुण नल्ली,
पत पतार संगीत गीत अधार॥ [वि०का०]

हरिदास पंडित

हरिदास नाम के कई व्यक्ति गौड़ीय सम्प्रदाय में हुए हैं। यहाँ पर गोविन्द देव के पुजारी हरिदास पंडित का उल्लेख किया गया है। गोविन्द देव जी रूप गोस्वामी के उपास्य थे, उन्होंने गोविन्द देव की प्रेरणा से ही हरिदास पंडित को गोविन्द देव की सेवा-पूजा का अधिकार प्रदान किया था।

इनका जन्म संवत् 1610 के आसपास हुआ था। इनके जीवन के विषय में जानकारी अज्ञात है। इन्होंने गदाधर पंडित के शिष्य अनंताचार्य से दीक्षा प्राप्त की थी। इन्होंने कृष्णदास कविराज को चैतन्य महाप्रभु का चरित लिखने की प्रेरणा दी थी। उसके पश्चात ही कविराज ने 'चैतन्य चरितामृत' की रचना की थी। [क०उ०]

हरिदास बाबा

आज से लगभग सवा दो सौ वर्ष पूर्व वृन्दावन में हरिदास नाम के महात्मा रहते थे। यह हरिदास बाबा बाँकेबिहारी के प्राकट्यकर्ता स्वामी हरिदास से अलग हैं। यह हरिदास बाबा संभवत: रामानन्दी साधु थे। बाबा वृन्दावन में यमुना किनारे भजन किया करते थे। वह दिन-रात प्रभु के चिन्तन में डूबे रहते थे। अन्त में प्रभु ने उन्हें दर्शन दिये। वह उनकी रूप माधुरी देखकर अपनी सुध-बुध खो बैठे, भगवान ने उनके मस्तक पर हाथ रखा तब उन्हें चेतना आयी। चेतना आते

ही उन्होंने अपना मस्तक उनके चरणों में रख दिया तब भगवान ने उनसे प्रसन्न होकर कहा-

''मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। मैं तुम्हारी प्रेममयी सेवा का आस्वादन करना चाहता हूँ। तुम जगन्नाथपुरी जाओ, वहाँ इस वर्ष आषाढ़ मास में जगन्नाथ जी का विग्रह-परिवर्तन होगा। पुराना विग्रह ले आकर वृन्दावन में स्थापित कर मेरी सेवा करो।'' इतना कहकर भगवान अन्तर्धान हो गये।

हरिदास बाबा जगन्नाथपुरी में महा-महोत्सव के अवसर पर गये। वहाँ जाकर इन्होंने पुजारियों से पुराना विग्रह देने के लिए निवेदन किया। उन्होंने कहा-''जगन्नाथ जी का पुराना विग्रह देने का अधिकार हमें नहीं है। आप राजा से मिलें।'' वे राजा के पास गये और प्रभु की आज्ञा बताकर पुराना विग्रह दिलाने के लिए कहा। परन्तु राजा ने कहा-''महाराज! आपको भगवान की आज्ञा हुई है, पर मुझे ऐसी कोई आज्ञा नहीं है। अत: मैं सदा से चली आ रही परम्परा के अनुसार समुद्र में विग्रह प्रवाहित करने के लिए विवश हूँ।'' हरिदास बाबा ने भी राजा से कहा-''यदि विग्रह समुद्र में प्रवाहित होगा तो मेरा शरीर भी उसी के साथ प्रवाहित होगा।'' ऐसा कहकर वह अपने शिष्यों सहित समुद्र तट पर जाकर बैठ गये।

राजा को रात्रि में स्वप्न हुआ कि भगवान जगन्नाथ उससे कह रहे हैं कि महात्मा मेरी आज्ञा से ही विग्रह माँगने तुम्हारे पास आये थे। उनसे क्षमा माँग कर उनकी आज्ञा का पालन करो। मेरा एक विग्रह अब वृन्दावन में भी रहेगा।'' राजा ने तुरन्त महात्मा हरिदास को बुलाकर क्षमा माँगी और पुराना विग्रह प्रदान किया।

महात्मा श्री जगन्नाथ जी, बलदाऊ जी एवं सुभद्रा जी का विग्रह लेकर वृन्दावन पधारे और यमुना तट पर मंदिर का निर्माण कराकर विग्रह स्थापित किया। वह मन्दिर आज भी विद्यमान है। वहाँ घाट भी बना है, जो 'जगन्नाथ घाट' के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ पर भी आषाढ़ मास में रथयात्रा के अवसर पर जगन्नाथ जी की रथयात्रा निकलती है।

[वि०प्र०उ०]

हरिदासी सम्प्रदाय की उपासना परम्परा

स्वामी जी की उपासना सखी (गोपी) भाव की थी और उनकी भक्ति वैराग्यमूलक माधुर्य भाव की। इस प्रकार उनकी उपासना और भक्ति में चरम सीमा की रसिकता होते हुए भी वैराग्य की प्रधानता है। राग और विराग का यह अद्भुत समन्वय स्वामी जी के भक्ति मार्ग की विलक्षणता है। उनका 'नित्य विहार' तत्व इसीलिए अन्य वैष्णव संप्रदायों के भक्ति तत्व से विलक्षण कहा गया है। स्वामी हरिदास जी की उपासना पद्धति के व्याख्याता श्री भगवत रसिक का कथन है कि अन्य संप्रदायों का भक्ति ज्ञान तो गंगा जल के समान है, जिसे किसी भी अनुयायी रूपी पात्र में रखा जा सकता है। किंतु ललिता सखी रूप स्वामी हरिदास का उपासना तत्व सिंहनी के दूध के समान है, जो या तो संस्कार प्राप्त सिंह-शावक के उदर में पच सकता है अथवा उसे स्वर्ण पात्र के समान तपे हुए साधक ही ग्रहण कर सकते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य के लिए वह अहितकर ही हो सकता है। स्वामी जी की इस विशिष्ट उपासना और भक्ति का आधार नित्य विहार में तल्लीन श्यामा-कुंजबिहारी की युगल जोड़ी है। वह घन-दामिनि के समान एक दूसरे से पृथक् न होने वाली, सहज, स्वाभाविक और चिरंतन है। वह इसी प्रकार सदा थी, अब भी है और आगे भी रहेगी। उनके नित्य विहार में पल भर का भी व्यवधान नहीं होता है। व्यवधान की कल्पना ही असंगत है। जहाँ नित्य विहार है, वहाँ चिरंतन रस का अखंड साम्राज्य है। नित्य विहार की चिरंतन रसात्मकता के कारण श्यामा-कुंजबिहारी का युगल स्वरूप स्वयं रस रूप है- 'रसो वै स:।' इसीलिए स्वामी जी की उपासना वस्तुत: 'रस' की है। उनकी मान्यता के अनुसार 'रस' उपास्य है और उसके उपासक 'रसिक'। वे स्वयं रसिक-शिरोमणि कहलाते थे। उनकी रसिकता की छाप उस समय के भक्त-समाज पर ऐसी दृढ़ता से लगी थी कि उन सबने एक स्वर से उनका गुणगान किया है। भक्तमाल के रचयिता और टीकाकार क्रमश: नाभा जी और प्रियादास जी ने उनकी 'रसिक' छाप का इस प्रकार उल्लेख किया है—

नृपति द्वार ठाड़े रहे, दरसन आसा जासु की।
आसुधीर उद्योत कर, 'रसिक छाप' हरिदास की॥ (नाभा जी)
स्वामी हरिदास रस-रास को बखान सके,
'रसिकता छाप' जोई जाप मध्य पाइयै॥ (प्रियादास)

राधावल्लभीय संप्रदाय के प्रसिद्ध भक्त-कवि श्री ध्रुवदास जी का कथन है—

रसिक अनन्य हरिदास जू, गायौ नित्य विहार।
सेवा हू में दूर किये, बिधि-निषेध जंजार॥

स्वामी जी के समकालीन और सहयोगी श्री हरिराम जी व्यास ने तो यहाँ तक कहा है कि उनके समान रसिक पृथ्वी पर और आकाश में न अब तक हुआ और न आगे ही होगा—

ऐसौ रसिक भयौ ना ह्वै है, भुव मंडल आकास।

व्यास जी के कथन का समर्थन करते हुए स्वामी जी की परंपरा के विरक्त संत श्री पीतांबरदास और श्री ललितकिशोरी दास का कहना है—

रसिकन के रस दैन कों, प्रगटे रसिकानंद।
आगे भए न होंगे, अद्भुत आनंदकंद॥ (पीतांबरदास)
व्यास रसिक रसिकन कहै, एक रसिक हरिदास।
दूजौ रसिक न देखियै, भुव मंडल आकास॥ (ललितकिशोरी)

ब्रज के सभी भक्ति-संप्रदायों के महात्माओं ने राधा-कृष्ण की केलि-क्रीड़ाओं का गायन किया है; किंतु स्वामी जी की विशिष्टता उनके नित्य-विहार के गायन में है। इसका उल्लेख श्री रूप सखी की वाणी में इस प्रकार हुआ है—

रूप-सनातन ब्रज कह्यौ, वृंदावन हरिवंस।
नित्य विहार उपास में, श्री हरिदास प्रसंस॥

ब्रज के अवतार काल में भी राधा-कृष्ण की केलि-क्रीड़ा थी; किंतु नंद-यशोदा, सखी-सखा आदि प्रिय जनों और कंसादि दुष्टजनों के साथ उनकी अन्य लीलाएँ भी हुई थीं। उनमें कृष्ण को राधा से पृथक् भी होना पड़ता था। स्वामी जी की नित्य विहार विषयक मान्यता में उक्त लीलाओं का स्थान नहीं है, अत: वहाँ पल भर के लिए भी प्रिया-प्रियतम की पृथक्ता अस्वीकृत है। स्वामी ब्रज लीलाओं के प्रति इतने उदासीन थे कि उन्होंने राधा जी को 'वृषभानु-नंदिनी' तक नहीं कहा, बल्कि अपनी रचनाओं में सर्वत्र उन्हें श्यामा, प्यारी, लाड़िली आदि नामों से ही याद किया है। कुछ विद्वान उनके एक पद ''हमारौ दान मार्‌यौ इनि'' में ब्रज लीला का भाव पाते हैं किंतु उसमें भी वस्तुत: निकुंज-लीला का ही कथन है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि स्वामी जी की उपासना और भक्ति का आधार कोई विशिष्ट अवतार नहीं है; बल्कि सब अवतारों के अवतारी नित्य विहार में निरंतर तल्लीन श्री श्यामाकुंजबिहारी हैं। श्री बिहारिनदास ने

कहा है—

श्री कुंजबिहारी सर्वस्व-सार।
अंस-कला सब अवतारिन कौ, अवतारी भरतार॥

ऐसे सर्वोपरि परम तत्त्व रस रूप श्री श्यामा-कुंजबिहारी का नित्य विहार किसी भी देव-पितर को तो क्या, लक्ष्मीपति विष्णु के लिए भी दुर्लभ है। उसमें राम और कृष्ण का प्रवेश तो क्या राधा-कृष्ण भी उसमें प्रवेश पाने के लिए ललचाते हैं! श्री बिहारिनदास का कथन है—

'बिहारिनदास बिहार कों, लछिमीपति ललचाँहि।
देव-पितर लीएँ फिरैं, ह्याँ राम-कृष्न न समाँहि॥
याही तें दुर्लभता सबकों, लछिमीपति ललचात।
जद्यपि राधा-कृष्ण बसत ब्रज, बिनु बिहार बिललात॥

नित्य विहार के लिए लक्ष्मी-नारायण ललचावें और उसमें राम का प्रवेश न हो, यह बात समझ में आ सकती है; किंतु उसमें कृष्ण का भी प्रवेश न हो और राधा-कृष्ण भी उसके लिए ललचावें- यह वास्तव में बड़ी विलक्षण बात मालूम होती है! यही विलक्षणता स्वामी हरिदास जी की उपासना और भक्ति की विशिष्टता है।

श्री भगवत रसिक ने इसका श्रेणीबद्ध उल्लेख करते हुए कहा है—

प्रथम महातम प्रकृति, ज्ञान-रवि तहाँ प्रकासै।
दूजै ब्रह्म प्रकास, कोटि सूरज सम भासै॥
तीजै पंकजनाभि-रमा वैकुंठ निवासी।
चौथे दसरथ-सुवन राम, गोपुर के बासी॥
पाँचै ब्रज के गोप, नंद आदिक सब गोपी।
छठयै सखी-समाज, करैं लीला-रस ओपी॥
'भगवत' सतयै आवरन, करहिं केलि राधारवन।
सर्वोपरि सर्वेस-गुरु रसिकराय मंगल भवन॥

स्वामी जी की उपासना और भक्ति की प्राप्ति के लिए साधक को कितनी साधनाएँ करना आवश्यक होता है; इस संबंध में भी भगवत रसिक जी ने बतलाया है—

प्रथम सुनै भागौत, भक्त मुख भगवत बानी।
दुतिय अराधै भक्ति, व्यास नव भाँति बखानी॥
तृतीय करै गुरु समुझि, दक्ष सर्वज्ञ रसीलौ।
चौथे होय विरक्त, बसै बन राज जसीसौ॥
पाँचै भूलै देह निज, छठै भावना रास की।
सातै पावै रीति-रस, श्री स्वामी हरिदास की॥ [रा०श०]

हरिदेवदास

हरिदेवदास जी चरणदासी संत गुरुमुखदास के छोटे भाई थे। ये बचपन से ही सत्संग प्रेमी तथा बाल चापल्य से रहित थे। इनके संत सुलभ आचरण का पता चलने पर चरणदास जी ने इन्हें बुलाकर दीक्षा प्रदान की तब इनकी अवस्था 13 वर्ष की थी। ये ज्ञान-ध्यान में सिद्ध महात्मा थे इसीलिए इनके गुरु भाई जोगजीत जी ने इन्हें स्वामी की उपाधि प्रदान की।

इन्होंने मुजफ्फरनगर स्थित शुकताल के निकट धाराहेड़ी नामक ग्राम में अपनी गद्दी स्थापित की जहाँ शुकदेव मुनि ने राजा परीक्षित को 'श्रीमद्भागवत' की कथा सुनाई थी। यहीं पर ही शुकदेव मुनि ने चरणदास जी को दीक्षा प्रदान की थी। चरणदासी सम्प्रदाय में इस स्थान का बड़ा महत्व है। [क०उ०]

हरिभक्ति विलास

षड्-गोस्विामियों में प्रमुख सनातन गोस्वामी ने इस ग्रंथ की रचना की थी। 1463 शकाब्द में रचित 'श्री भक्तिरसामृत सिन्धु' ग्रंथ में 'श्रीहरि भक्ति विलास' ग्रंथ का नामोल्लेख है। अत: 1463 शकाब्द के पूर्व यह ग्रंथ रचित हुआ है। इस ग्रंथ को पुष्ट और विस्तृत करने में श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी ने भी अपना सहयोग प्रदान किया था। यह ग्रंथ चैतन्य सम्प्रदाय की अमूल्य निधि है। चैतन्य मत के आचार-व्यवहार और कर्तव्य-कर्म सम्बन्धित विवेचन किये जाने के कारण इसे वैष्णव स्मृति ग्रंथ कहा जा सकता है। चैतन्य सम्प्रदाय के मंदिरों में देव-विग्रह की प्रतिष्ठा, उनकी सेवापूजा की विधि, साधुओं एवं वैष्णवों की दिनचर्या आदि विषयों का इसमें सप्रमाण विस्तार से निरूपण किया गया है। [क०उ०]

हरिनामामृतव्याकरण

हरिनामामृतव्याकरण श्री जीव गोस्वामी की रचना है। परमात्मा श्रीकृष्ण के विविध नामों की व्याकरणात्मक व्युत्पत्ति से परिपूरित संज्ञा, सन्धि, आख्यात, कारक, कृदन्त, समास और तद्धित प्रकरणों में विभक्त यह गौड़ीय मत का एक महत्वपूर्ण व्याकरण ग्रंथ है। [क०उ०]

हरिनारायण

हरिनारायण सुश्री सहजोबाई के चारों भाइयों में सबसे छोटे थे। इन्होंने अपने पिता एवं अन्य भाइयों के साथ ही चरणदास जी से दीक्षा ली थी। इन्हें सभी लोग 'महंत महाराज' के नाम से सम्बोधित करते थे। सम्भवत: इन्होंने दिल्ली में ही कहीं पर अपनी गद्दी स्थापित की थी।

ये एक उच्चकोटि के कवि थे। इनके कुछ ग्रंथ प्राप्त हैं-शब्द बोधिनी, ब्रह्मज्ञान सागर तथा लघुबोधिनी। इनके ग्रंथों की पांडुलिपि सहजोबाई की गद्दी के स्व. महंत गंगादास के पास संग्रहीत थी। सम्भवत: ये आज भी उसी स्थान पर होगी। इनके अधिकांश पद निर्गुण वाणी पद्धति पर रचित है। इनके 'लघुबोधिनी' नामक ग्रंथ में निर्गुण एवं सगुण उपासना का समन्वय है। इसमें वे जीव-ब्रह्म के एकत्व और ब्रह्म के गुण-रूप-हीनता तथा अनिर्वचनीयता की बात करते हैं, वहीं वे शिव, गणेश और श्रीरामकृष्ण का भी स्तुति गान करते हैं। इनकी भाषा बहुत प्रौढ़ एवं परिमार्जित है। [क०उ०]

हरिप्रसाद

हरिप्रसाद जी चरणदास जी की सुप्रसिद्ध शिष्या सहजोबाई के पिता थे। ये दिल्ली के परीक्षितपुरा में रहते थे तथा दूसरवंशीय थे। ये रिश्ते में चरणदास जी के फूफा लगते थे। सुश्री सहजोबाई की प्रेरणा एवं चरणदास जी की साधनामय जीवन से प्रभावित होकर इन्होंने अपनी पत्नी नूपी देवी तथा चारों पुत्रों (राधाकृष्ण, गंगाविष्णु, कुँअरदास

और हरिनारायण) सहित चरणदास जी से दीक्षा ले ली।

हरिप्रसाद जी आयु में तथा रिश्तेदारी में चरणदास जी से बड़े होने के बावजूद वे उन्हें महापुरुष मानकर एवं गुरु के प्रति विनय भाव रखते थे। उनका यही भाव उनकी बानियों में भी दिखलाई पड़ता है। वे चरणदास जी को अवतारी पुरुष मानने में भी कोई संदेह प्रदर्शित नहीं करते हैं। [क०उ०]

हरियाली अमावस

ब्रज में सावन के पूरे माह में देवालयों में आयोजन होते हैं लेकिन हरियाली अमावस से ठाकुरजी का विशेष आयोजन शुरू हो जाता है। मथुरा के वल्लभकुल सम्प्रदाय के द्वारिकाधीश मन्दिर में हरियाली अमावस का आयोजन बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। इस दिन ठाकुर जी को हरे रंग के वस्त्र धारण कराते हैं तथा चाँदी या सोने के झूले में ठाकुरजी को झूला झुलाते हैं। मन्दिरों में हरी घटा लगाई जाती हैं तथा प्रांगण को हरे रंग के पर्दे, झाड़-फानूस आदि से सजाया जाता है तथा इस दिन ठाकुरजी को घेवर, फेनी, गुजिया तथा अनेक प्रकार के व्यंजनों का भोग लगाया जाता है। नंदगाँव, बरसाना, गोकुल, महावन, राधाकुण्ड एवं वृन्दावन के श्री बाँके बिहारी जी तथा राधावल्लभ मन्दिरों में हरियाली अमावस का आयोजन बड़े धूमधाम के साथ किया जाता है। इस दिन भगवान को हरे रंग की पोशाक धारण कराते हैं तथा मल्हार सावन के गीत आदि गाते हैं। समाज गायन तथा कीर्तन होता है। [प्र०श०]

हरियाली तीज

ब्रज में श्रावण शुक्ल पक्ष तृतीया को हरियाली तीज के पर्व का आयोजन देवालयों में बड़े धूमधाम के साथ किया जाता है। इस दिन ब्रज में गायन-वादन, झूलन तथा उत्तम व्यंजनों के साथ हरियाली तीज का मनोरथ किया जाता है। इस समय यहाँ सभी मन्दिरों में सजावट की जाती है। सोने-चाँदी के काँच के झूले लगाये जाते हैं। रंग-बिरंगे झाड़-फानूस से मन्दिर जगमगाने लगता है। मथुरा के द्वारिकाधीश मन्दिर में हरियाली तीज के अवसर पर ठाकुर जी को हरे रंग की पोशाक धारण कराई जाती है। सोने के हिण्डोले में ठाकुर जी को विराजमान करके सोने का झूला झुलाया जाता है। मन्दिर में चारों तरफ फूल-पत्तों से हरियाली की सजावट की जाती है। झूलों के सामने उद्यान, कुंज, पर्वत, कुण्ड, सरोवर और घाटों के दृश्य प्रस्तुत किये जाते हैं तथा फव्वारे चलाये जाते हैं। समस्त आयोजन दर्शनार्थियों को आनन्द प्रदान करता है। इन घटाओं के साथ-साथ भगवान के आगे हिंडोले मल्हार का कीर्तन किया जाता है।

हरियाली तीज वृन्दावन का सबसे अनोखा उत्सव है। इस दिन वृन्दावन के बिहारीजी मंदिर में सोने का हिण्डोला लगता है तथा ठाकुरजी उसमें विराजमान होकर अपनी सभी सखियों के साथ हिण्डोले का आनन्द प्राप्त करते हैं। बिहारीजी में सोने का झूला वर्ष में बस एक ही बार तीज वाले दिन लगता है। इस दिन ठाकुरजी को हरे रंग की पोशाक धारण कराते हैं तथा ठाकुरजी को सिंधारा चढ़ाते हैं। जिसे महिलायें अपने घर से लेकर आती हैं। जिसमें राधारानी के सोलह शृंगार इत्यादि शामिल रहते हैं। हरियाली तीज के अवसर पर बिहारीजी अपने गर्भगृह से बाहर आकर भक्तों को दर्शन देते हैं। मंदिर देवालयों के साथ ही भारतीय आंचलिक संस्कृतियों की तरह ब्रज में भी इसका वैशिष्ट्य दर्शित होता है। सम्पूर्ण ब्रज क्षेत्र में प्रचलित परंपरा के अनुसार बहन, बेटियाँ इस अवसर पर मायके जाती है और वहाँ पर सामूहिक गीत गाते हुए झूला झूलने की रस्म होती है। 19वीं शताब्दी के ब्रज का लोक चित्रण करते हुए वृन्दावन के कवि गोपाल राय ने अपनी पोथी 'वृन्दावनधामानुरागावली' में हरियाली तीज के अवसर पर वृन्दावन के कालीदह मंदिर में स्थानीय जन के द्वारा इस दौरान इस उत्सव में सहभागिता का विवरण अंकित किया गया है। गोपाल राय ने लिखा है कि वृन्दावन में इस तिथि पर बहन, बेटियाँ कालीदह मंदिर पर एकत्र होती हैं। गीत-मल्हारों का आयोजन होता है तथा मेले सदृश माहौल इस आयोजन के महत्व को और अधिक बढ़ाने वाला है। वल्लभकुल के अष्टछापी कवि

सूरदास का एक प्रसिद्ध पद—

गोपी गोविन्द 'हिंडोरै झूलन आई'।
रंगमहल मैं जहँ 'नंदरानी खेलैं तीज सुहाई'॥

सूरसागर (सभा) 2842 [प्र०श०]

हरिराम व्यास

बुन्देलखण्ड की तत्त्कालीन राजधानी ओरछा नगरी में वि.सं. 1567, मार्गशीर्ष कृष्ण पंचमी को सनाढ्य कुल कौस्तुभ पं. श्री सुमोखन शुक्ल के घर श्रीमती पद्मावती के गर्भ से श्री हरिराम व्यास जी का प्रादुर्भाव हुआ। अप्रतिम प्रतिभाशाली हरिराम जी ने अल्पायु में ही व्याकरण, छन्द, अलंकार एवं वेदादि शास्त्रों का अध्ययन कर अगाध पांडित्य प्राप्त किया।

प्रारम्भ में उन्होंने अपनी प्रखर प्रतिभा से अनेक विद्वानों को शास्त्रार्थ में परास्त किया। परम विद्वत्ता के कारण ही वे व्यास जी कहे जाने लगे। काशी में आकर शास्त्रार्थ कर वहाँ के बड़े-बड़े विद्वानों को पराजित किया और बहुत से विजय पत्र प्राप्त किये। काशी में निवासकालीन एक दिन बाबा श्री विश्वनाथ जी ने स्वप्न में व्यास जी कहा-"आप यहाँ व्यर्थ वाद-विवाद में क्यों लगे हैं? वृन्दावन जाकर श्री युगलोपासना में चित्त लगाइये।" दूसरे दिन प्रात:काल व्यास जी ने सब विजय पत्रों को विश्वनाथ जी को अर्पित कर ओरछा वापस आये एवं एकान्त में प्रिया-प्रियतम की आराधना में निमग्न हो गये। इनकी विद्वत्ता की ख्याति सर्वत्र थी ही, अब इनकी अनन्य भक्ति और साधना का यश चारों ओर फैल गया। ओरछा नरेश श्री मधुकर शाह ने व्यास जी से प्रभावित हो उनका शिष्यत्व ग्रहण किया।

श्री हरिराम व्यास जी श्रीराधाकृष्ण के दर्शन तथा आदेश प्राप्त कर अपार वैभव और प्रतिष्ठा को त्यागकर वृन्दावन धाम चले आये। वे विशाखा सखी के अवतार माने जाते हैं। इनके गुरुदेव श्री ईश्वरपुरी जी के शिष्य श्री माधवदास जी थे। परन्तु व्यासवंशी इनके पिता श्री सुमोखन लाल जी को दीक्षा गुरु मानते हैं। (वासुदेव गोस्वामी द्वारा लिखित 'भक्तकवि व्यासजी' पृ. 60) चैतन्य सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य नामक पुस्तक के पृ.सं. 244 में यह उल्लेख है कि शुक्ल जी व्यास जी के शिक्षा गुरु थे, किन्तु दीक्षागुरु श्री माधवदास जी थे। व्यासजी द्वारा प्रणीत 'नवरत्न निर्णय' में स्वयं व्यासजी ने अपनी गुरु परम्परा का उल्लेख करते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु के गुरुदेव श्रीईश्वरपुरी जी के शिष्य श्री माधव जी को ही अपना गुरु माना है-

ईश्वरस्तस्य माध्वश्च राधाकृष्णप्रियोऽभवत्।
तस्याहं करुणापात्रं हरिरामाभिधोऽभवमिति॥

श्री हरिराम व्यास जी सभी सन्तों के प्रति आदरभाव रखते थे। वे कहते हैं-"सन्त सबै गुरुदेव हैं" श्री रूप गोस्वामी, श्री सनातन गोस्वामी, श्री हरिवंश जी, स्वामी श्रीहरिदास जी आदि तत्कालीन सन्त महापुरुषों के प्रति उनकी अत्यन्त श्रद्धा थी। व्यास जी ने अन्य संतों की तरह श्रीहरिवंश जी में अपार श्रद्धा व्यक्त की है। किन्तु डॉ. विजयेन्द्र स्नातक ने श्री हरिराम व्यास जी को श्रीहित हरिवंश जी का शिष्य बताने की चेष्टा की। उन्होंने प्रमाण के रूप में जो पद राधावल्लभ सम्प्रदाय: सिद्धान्त और साहित्य पुस्तक में प्रस्तुत किया वह है-

राधावल्लभ इष्ट गुरु श्री हरिवंश सहाय।
व्यास पदनितैं जानियौ हौं कहा कहौं बनाइ॥

श्रीहित हरिवंश जी व्यास जी के साधना गुरु हो सकते हैं। ऐसा विद्वान डॉ. किशोरलाल गुप्ता का भी मानना है। (सरोज सर्वेक्षण : पृ. 464) दीक्षागुरु श्री माधवदास जी ही थे। उनके वंशज अपने को मध्व सम्प्रदायी ही मानते हैं न कि राधावल्लभी।

माध्वमत मार्तण्ड रसिक अनन्य शिरोमणि श्री हरिराम व्यास जी किशोर वन में भजन करते थे। वृन्दावन धाम में इनकी अनन्य निष्ठा थी। यहाँ की लता-पताओं में बड़ा ही अनुराग था। व्यास जी भगवत प्रसाद में बड़ी श्रद्धा रखते थे। प्रथम बार व्यासजी वि.सं. 1591 में वृन्दावन आये थे। पुन: वि.सं. 1612 में आकर वृन्दावन में स्थायी वास किया। उन्होंने क्षेत्र-संन्यास ले लिया था, इसीलिये मधुकर शाह के बुलाने पर भी दुबारा वृन्दावन से बाहर नहीं गये।

अपनी साधना स्थली किशोरवन से वि.सं. 1620 में श्री युगलकिशोर जी का प्राकट्य हुआ। भगवत रसिक जी ने अपनी एक अष्टपदी में वृन्दावन के प्राचीन सात विग्रहों का स्मरण करते हुए उनमे छठे 'श्री युगलकिशोर' का उल्लेख किया है। इस समय ठा. श्री युगलकिशोर जी पन्ना में विराजमान हैं। व्यास जी के सम्बन्ध में अनेक अलौकिक घटनाओं का वर्णन 'भक्तमाल' एवं 'भक्तकवि व्यासजी' में मिलता है।

व्यास जी का निकुंज प्रवेश वि.सं. 1669 माना जाता है। वे अनन्य रासरस रसिक थे। सर्वदा लीला रस में निमग्न रहते थे। इनकी समाधि किशोरवन में स्थित है। इनके तीन पुत्र थे—रासदास, विलासदास एवं किशोरदास।

श्रीहरिराम व्यास जी की रचनाओं में स्वधर्म पद्धति या नवरत्न, रागमाला, संगीत शास्त्र, व्यासवाणी आदि प्रमुख हैं। विद्वानों ने व्यासवाणी को दो भागों में विभक्त किया है-एक 'सिद्धान्त' दूसरा 'रसविहार'। सिद्धान्त विभाग में स्व सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का सांगोपांग वर्णन है और रस विभाग में श्रीराधाकृष्ण के विहार रासादि लीलाओं का अत्यन्त सुन्दर तथा रसमय वर्णन व्यासजी ने किया है। शृंगार रस और लीला वर्णन में व्यास जी सिद्धहस्त थे। इनकी रचनाएँ कृष्णभक्ति साहित्य की अनुपम निधि हैं। [प्रे०दा०शा०]

हरिलाल व्यास

हरिलाल व्यास का जन्मकाल, दीक्षाकाल और निधनकाल प्रमाणित रूप में प्राप्त नहीं होता है। राधावल्लभ-सम्प्रदाय के इतिहास ग्रन्थ प्रणीता चाचा वृन्दावनदास ने अपने ग्रन्थ 'रसिक अनन्य परचावली' में इनका उल्लेख नहीं किया है। हाँ इन्होंने अपने ग्रन्थ 'बसन्त प्रबन्ध' में इनकी चर्चा की है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'रसिक अनन्य परचावली' ग्रन्थ के प्रणयन काल तक इनकी प्रतिभा का प्रसार नहीं हो पाया था। सम्भवत: उस काल तक ये अल्पवयस्क रहे होंगे। चाचाजी ने 'बसन्त प्रबन्ध' में इनका स्मरण करते हुए उन्हें साहिब राम व्यास का पुत्र बताया है। हित शरणागति इन्हें पैतृक सम्पति के रूप में मिली थी। अपने पिता साहिबराम व्यास की कृपा कथन के माध्यम से हरिलाल व्यास ने अपना परिचय स्वरचित 'श्री सेवक वाणी' की टीका में दिया है।

हरिलाल व्यास को अपने जन्मस्थान जूनागढ़ में ही रसिक संग प्राप्त हो गया था और इनका मन रसानन्द में सदैव निमग्न रहता था। इनके गुरु किशोरी लाल का जन्म सं. 1777 में हुआ था। हितरूप चरित्र बेली में किये गये वर्णन के अनुसार इनके पिता गोस्वामी रूपलाल को जयपुर नरेश का कोपभाजन बनने के कारण इन्हें सकुटुम्ब सं. 1780 से सं. 1800 तक वृन्दावन के बाहर दिल्ली, प्रयाग आदि स्थानों पर निवास करना पड़ा था। संवत् 1801 में गो. रूपलाल निकुंजगामी हो गये और तभी से किशोरीलाल ने वृन्दावन में निवास किया। यह सुनिश्चित ही है कि इसके बाद सम्वत् 1810 तक ही इनकी प्रतिभा का प्रचार-प्रसार हुआ होगा। जब इनकी आयु 33 वर्ष के लगभग थी और उसी समय इनके शिष्य बनने प्रारम्भ हुए होंगे।

वृन्दावन से कृत 'हरिकला बेली' के अनुसार सं. 1813 में यवनों द्वारा किये गये नरसंहार में प्रेमदास ने जो हरिलाल व्यास के पिता साहिब व्यास के गुरु थे, अपनी इहलोक लीला संवरण की थी। यह बहुत कुछ सम्भव है कि प्रेमदास

के निकुंज गमन के बाद और किशोरी लाल जी की कीर्ति फैलने पर ही साहिबराम व्यास ने अपने समस्त परिकर गो. किशोरीलाल के चरणाश्रित कराये। इस प्रकार यह अनुमान कर स्थिर होता है कि इनका दीक्षाकाल सं. 1813 के आसपास है। दीक्षाकाल के समय हरिलाल व्यास की आयु 20 या 25 वर्ष के लगभग मान ली जाय तो इनका जन्म काल सं. 1790 के आस-पास स्थिर करना उचित प्रतीत होता है।

हरिलाल व्यास की अन्तिम रचना 'रस कुल्या' का रचनाकाल सं. 1853 माना गया है। इस आधार पर इनका निकुंज गमन काल सं. 1860 के लगभग अनुमानित होता है। किशोरीशरण अलि ने उन्हें जूनागढ़ निवासी साहिबराम व्यास के पुत्र तथा किशोरीलाल का शिष्य माना है और इनका विद्यमान काल वि. सं. 1790 से 1860 के मध्य अनुमानित किया है। यह उपर्युक्त विवेचन से स्थिर हो जाता है।

प्रभुदयाल मीतल ने लिखा है कि हरिलाल व्यास बूँदी के निकटवर्ती कडी नामक गाँव के एक विद्वान ब्राह्मण थे। इनका जन्म सं. 1790 में हुआ था। उन्हें राधासुधानिधि के अध्ययन का सुयोग्य प्राप्त हुआ था और वे निकुंजोपसाना के अनुगामी हो गये। वृन्दावन आकर वे युगल सत्संग में रहने लगे थे और किशोरी लाल गोस्वामी से दीक्षा ली थी। इनकी अनन्यता, सेवा और निष्ठा का परिचय 'गोविन्द कृत' 'भक्तगाथा' में दिया गया है।

इनका अपने समय के हित रसिक समाज और विद्वत समाज में श्रेष्ठ स्थान था। इनकी विद्वत्ता इनके जीवनकाल में ही बहुचर्चित हो गयी थी। आज भी सुधीजनों की यह धारणा है कि इन जैसा सर्वशास्त्र निष्णात विद्वान विगत दो शताब्दियों में नहीं हुआ। इन्होंने वृन्दावन अखण्ड वास किया और ब्रजभाषा में 'सेवक वाणी' की सर्वप्रथम टीका की थी। टीका गद्यात्मक है, जिसका रचनाकाल सं. 1830 के आसपास अनुमानित किया जा सकता है। डा. जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल ने अपने शोध द्वारा इनकी 'सेवक वाणी' की टीकाकाल अगहन सुदी 10 सं. 1837 निर्धारित किया है। इसके अतिरिक्त भी इनकी अनेक रचनाएँ मिलती हैं। किशोरीशरण अलि के अनुसार इनकी रचनाएँ- पदावली (प्राचीन हस्तलिखित पत्र संख्या विखरी) मनाष्टपदी (गो.कृष्णचन्द्रकृत) की टीका (मध्य व्याख्या), राधासुधानिधि की टीका (लघु व्याख्या), राधासुधानिधि की टीका (मध्य व्याख्या), राधासुधानिधि की टीका (वृहद रस-कुल्या), रस सिन्धु, सांझी (वल्लभ रसिक कृत) की टीका, सेवक वाणी की टीका, हित हरिवंशाष्टक (नेही नागरीदास कृत) की टीका एवं हित जन्मोत्सव इत्यादि हैं। [अ०सिं०सै०]

हरिराय

महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य जी के वंश में चौथी पीढ़ी में श्री हरिराय जी का जन्म सम्वत् 1647 की भाद्रपद कृष्ण पंचमी को ब्रज के गोकुल नामक स्थान में हुआ था। उस समय गोवर्धन के पश्चात गोकुल ही वल्लभ सम्प्रदाय का प्रमुख केन्द्र था और इस सम्प्रदाय के सातों स्वरूपों के मंदिर तथा सभी गोस्वामी बालकों के निवास स्थल होने के कारण वह वल्लभ सम्प्रदायी भक्तजनों का प्रमुख तीर्थस्थल हो गया था। जब वे आठ वर्ष के हुए तब कुल रीति के अनुसार गोकुल में उनका यज्ञोपवीत किया गया था।

श्रीहरिराय जी वल्लभ सम्प्रदाय के महान उन्नायक एवं मर्म उद्घाटक थे। श्री हरिराय जी के दीक्षा गुरु श्री गोकुलनाथ जी थे। श्री गुसांई जी के ज्येष्ठ पुत्र श्री गिरधर जी उस समय तिलकायत आचार्य थे तथा कुटुम्ब में सबसे बड़े होने के कारण बटुक को ब्रह्म-संबंध की दीक्षा देने का अधिकार उन्हीं को था किन्तु उन्होंने अपने अनुज श्री गोकुलनाथ जी को आदेश दिया था कि वे बटुक श्री हरिराय जी को दीक्षा दें। श्री गोकुलनाथ जी के सम्पर्क में रहने से श्री हरिराय जी की जीवनचर्या, भक्तिभावना और रचनाओं का गोकुलनाथ जी पर विशेष प्रभाव पड़ा था। श्री गोकुलनाथ जी से आपने सम्प्रदाय की आचार्य-मर्यादा, आचार-विचार के रहस्य और सेवा के सूत्र प्राप्त किये। इस प्रकार श्री हरिराय जी में महाप्रभु जी, गुसांई जी और उनके पुत्र गोकुलनाथ जी के दिव्य गुणों का सहज ही समावेश हो

गया था। आपका यह नियम था कि श्री महाप्रभु जी एवं श्री गुसांई जी के कोई भी सेव्य स्वरूप या निधि अथवा आपके गुरुदेव आपके स्थान से दो गाँव तक कहीं भी बिराजते हों, तो उनके दर्शन और चरण-स्पर्श किये बिना आप भोजन नहीं करते थे। श्री गोकुलनाथ जी के तिरोधान से हरिराय जी को बहुत वेदना हुई और कई दिनों तक आपने भोजन भी नहीं किया। आपको मानसिक शान्ति के लिए श्री सर्वोत्तम स्तोत्र के सतत् जप की भगवद् आज्ञा हुई, तब आपने तीन दिनों तक सर्वोत्तम स्तोत्र का अखण्ड जप किया जिसके परिणामस्वरूप महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य जी की कृपा आप पर हुई, तब से आप मानसी भक्ति में मग्न रहने लगे।

श्री हरिराय जी का अधिकांश जीवन यद्यपि गोकुल, गोवर्धन आदि ब्रज के वल्लभी सम्प्रदायी केन्द्रों में निवास करते हुए व्यतीत हुआ था तथापि समय-समय पर वे देशव्यापी यात्राएँ भी किया करते थे। अपनी यात्राओं में प्रवचन और प्रचार के निमित्त उन्होंने जिन स्थानों में निवास किया था, वहाँ उनकी 'बैठकें' बनी हुई हैं। ये बैठकें सात हैं जिनमें से एक ब्रज में और शेष सात राजस्थान और गुजरात में हैं। ब्रज की एकमात्र बैठक गोकुल में है।

श्री हरिराय जी के चार पुत्र थे, जिनके नाम श्री गोविन्द जी, विट्ठलराय जी, छोटा जी और गोरा जी थे। उन सबका असमय देहावसान हो गया था। हरिराय जी के शिष्य-सेवकों में विट्ठलनाथ भट्ट, हरजीवनदास और प्रेम जी के नाम अधिक प्रसिद्ध हैं।

श्री हरिराय जी ने बहुसंख्यक ग्रन्थों की रचना की थी। उनके ग्रन्थों की संख्या जितनी अधिक है, उतनी वल्लभ सम्प्रदाय ही नहीं, वरन् किसी भी सम्प्रदाय की भी नहीं है। उन्होंने संस्कृत के अतिरिक्त ब्रजभाषा में भी गद्य-पद्यात्मक विपुल ग्रन्थ रचे थे, जिनकी संख्या 200 से भी अधिक है। इन ग्रन्थों में 166 ग्रन्थ संस्कृत में और 52 ग्रन्थ ब्रजभाषा में हैं। इनकी रचनाओं में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण 'वार्ता साहित्य' है। इनके द्वारा रचित और सम्पादित ब्रजभाषा ग्रन्थों में 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' के 'भाव प्रकाश' सहित सम्पादित संस्करण हैं। 'महाप्रभु जी श्री वल्लभाचार्य जी की प्राकट्य वार्ता' और 'श्री गोवर्धन नाथ जी के प्राकट्य की वार्ता' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

गोस्वामी श्री हरिराय जी ने ब्रजभाषा गद्य में अनेक ग्रन्थों की रचना की है, जिसमें 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' तथा 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' पर 'भाव प्रकाश' तथा 'सेवा भावना ग्रन्थ' विशेष प्रसिद्ध है। इनके अतिरिक्त आपके पुष्टिदृढ़ावनिवार्ता, सेवाविधि, वर्षोत्सव की भावना, बसन्तहूरी की भावना, नवग्रह, श्री गोवर्धननाथ की प्रगटन समय की वार्ता आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में आपके दैन्यामृत, निरोधलक्षण, स्नेहामृत, स्फुरितकृष्णप्रेमामृत, संन्यास निर्णय, वचनामृत, पुष्टिप्रवाहमर्यादा, विज्ञप्ति नामक ग्रन्थों का उल्लेख है। आपके द्वारा ब्रजभाषा में लिखे गये पत्र भी उपलब्ध हुए हैं।

संस्कृत के अतिरिक्त आपने ब्रजभाषा, पंजाबी, मारवाड़ी और गुजराती में भी बहुत से पदों की रचना की है जिनमें 'हरिदास', 'हरिधन', 'रसिकराय', 'रसिकदास', 'रसनिधि' आदि छाप मिलती है।

श्री हरिराय जी अपने जन्मकाल से सम्वत् 1726 तक ब्रज में रहे थे। उसके बाद जब औरंगजेब के भीषण दमन के कारण वल्लभवंशीय गोस्वामियों को ब्रज से निष्क्रमण करना पड़ा तब उनकी आयु 80 वर्ष के लगभग थी। अपनी उस वृद्धावस्था में लम्बी यात्रा के कष्ट उठाकर अपने सेव्यस्वरूप और परिकर के साथ मेवाड़ पहुँचे थे, वहाँ पर ही उनका अंतिम काल व्यतीत हुआ था। उनका तिरोधान 125 वर्ष की आयु पूर्ण होने पर सम्वत् 1772 में मेवाड़ के खिमनौर ग्राम में हुआ था, जहाँ उनकी बैठक और छतरी बनी हुई है। इस प्रकार उनके जीवन के अंतिम 45 वर्ष मेवाड़ में बीते थे। उनकी अनेक रचनाएँ जिनमें भावात्मक वार्ताएँ मुख्य हैं, उसी काल में रची गई थीं। श्री हरिराय जी महाप्रभु ने एक सौ पच्चीस वर्षों तक भूतल पर विराज कर वैष्णव जनता को प्रभु के कृपा मार्ग में संलग्न किया।

श्री हरिराय जी अपने युग में मुस्लिम शासन से अत्यन्त खिन्न थे। वे राजनैतिक धरातल पर तो इस दिशा में कुछ नहीं कर पाए। आपने यवनों के आतंक के कारण गुप्त स्थान में विराज रहे रणछोड़ जी ठाकुर जी को डाकोर जी में नया

मंदिर बनाकर प्रतिष्ठित किया और सेवा की समुचित व्यवस्था की। आपने श्री विट्ठलनाथ जी को मेवाड़ में पधराकर खिमनौर गाँव में विराजमान किया।

पुष्टि सम्प्रदाय में सर्वश्री वल्लभाचार्य जी, विट्ठलनाथ जी और गोकुलनाथ जी के पश्चात् श्री हरिराय जी ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आचार्य हुए थे। वे चारों 'महाप्रभु' और 'प्रभुचरण' के नाम से इस सम्प्रदाय में प्रसिद्ध हैं। [ना०ला०म०]

× × ×

संवत 1647 की भाद्रपद कृष्ण पक्ष 5 को ब्रज के गोकुल में इनका जन्म हुआ था। उस समय गोवर्धन के पश्चात गोकुल ही वल्लभ सम्प्रदाय का मुख्य केन्द्र था। इस सम्प्रदाय के सातों स्वरूपों के मंदिर तथा सभी गोस्वामी बालकों के निवास स्थल होने के कारण गोकुल में वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी भक्तजन वैष्णव गोकुल आकर अपने को धन्य मानते थे। ऐसी पुण्य भूमि में हरिराय जी ने अपनी जीवन-लीला प्रारंभ की। इनका यज्ञोपवीत 8 वर्ष की आयु में किया गया था। गोकुल में ही जनेऊ हुआ था। उस समय इनके बड़े भाई गोस्वामी गिरधर जी विद्यमान थे और उस समय वह ही तिलकायत थे। इस कुल में वटुक को सबसे बड़े ब्रह्म संबंध देते हैं अत: ये अधिकार गिरधर जी को था। किंतु उन्होंने अपने छोटे भाई गोकुलनाथ जी को आज्ञा दी कि वो हरिराय जी को ब्रह्म संबंध की दीक्षा दें। उन्होंने इस बात को स्वीकार किया और हरिरायजी को दीक्षा प्रदान की। बाद में हरिराय जी के शिक्षा गुरु भी गोस्वामी गोकुलनाथ जी ही थे। अत: गोस्वामी गोकुलनाथ जी की दीक्षा और शिक्षा दोनों से हरिराय जी सुशिक्षण, सत्संग, सम्प्रदायी सिद्धान्त, भक्ति तत्व और साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान हुए। वल्लभाचार्य जी और विट्ठलनाथजी के शिष्य सेवकों की जीवन गाथाओं के शोध का भी महत्वपूर्ण कार्य किया था। इनका पता अन्वेषण से उपलब्ध तथ्यों का उल्लेख उनकी रची हुई वार्ताओं से मिलता है। उन्होंने प्रचार और प्रसार के निमित्त ब्रज में जिन स्थानों में निवास किया था वहाँ-वहाँ उनकी बैठकें बनी हुई हैं। यह बैठकें 7 हैं जिनमें पहली ब्रज में शेष 7 राजस्थान एवं गुजरात में हैं। ब्रज की एकमात्र बैठक गोकुल में है। [वं०तै०]

हरिवल्लभ देव

श्री हरिवल्लभ देव जी की नित्य निवास स्थली श्री निधिवन थी। अपने श्री गुरुदेव के निकुंज लीलस्थ होने के पश्चात आपने 35 वर्षों तक उनकी गद्दी को सुशोभित किया। [कुं०बि०श०]

हरिविलास

हरिविलास जी चरणदासी संप्रदाय के आचार्य चरणदास जी के शिष्य थे। ये जाति के ब्राह्मण थे। ये बहुत ही विद्वान एवं वैभव संपन्न व्यक्ति थे परंतु जब इन्होंने चरणदास जी से दीक्षा ली तो इन्होंने सब कुछ त्यागकर अपने आप को पूर्णत: गुरु चरणों में समर्पित कर दिया। इनके गुरु भाई जोगजीत जी ने अपने ग्रंथ 'लीलासागर' में इनकी बहुत प्रसंशा की है। इन्होंने कहा कि हरिविलास जी ने अहंकार का पूर्णत: त्याग कर अपने आपको हरिभक्ति में निमग्न कर लिया था। ये एक अच्छे महात्मा और गुरुसेवी साधक थे। ये राधाकृष्ण की युगलोपासना में तल्लीन रहते थे। ये ज्ञानी, विनम्र स्वभाव और आत्मसमर्पण, भक्ति के गुणों से युक्त थे। ये अच्छे कवि थे। इनकी बानियों में गंभीर मार्मिकता एवं हृदयग्राहिता निहित है। [क०उ०]

हरिविलास देव

श्री हरिविलासदेव जी के प्रणोरा ब्राह्मण थे। कच्छ क्षेत्र में नारायण सरोवर पर इन्होंने त्रिभंगदेव जी के दर्शन कर अपना गुरु बना लिया और वैष्णवी दीक्षा ग्रहण कर ली। गुरुदेव के लीला संवरण के पश्चात् इन्होंने निधिवन को अपनी निवास स्थली बना लिया। गुरु की कृपा से प्रति दिन पाँच मुहर अनायास ही मिल जाती थीं। जिनसे आप सखी भाव में निमग्न

रहते हुए साधु-संतों की सेवा करते थे। 52 वर्ष तक श्री हरिविलासदेव जी निधिवन में विराजे। [कुं०बि०श०]

हरिस्वरूप

हरिस्वरूप जी चरणदासी संप्रदाय के आचार्य श्री चरणदास के शिष्य थे। इनका व्यक्तिगत परिचय का कोई विवरण प्राप्त नहीं होता है। इनके गुरु भाई जोगजीत जी ने अपने ग्रंथ 'लीलासागर' में इनके बारे में लिखा है कि ''मेरी जिह्वा हरिस्वरूप जी की बड़ाई करते हुए सकुचाती है क्योंकि उनमें इतने गुण हैं कि वह वाणी से कहे नहीं जा सकते हैं। उनका नाम लेने मात्र से ही हृदय में प्रसन्नता हो जाती है।'' इस वर्णन से पता चलता है कि हरिस्वरूप जी एक उच्चकोटि के संत थे और जोगजीत जी उनसे अत्यंत प्रभावित थे। इनके बारे में और कोई जानकारी जोगजीत जी ने अपने ग्रंथ में नहीं दी है। इस विषय में भी कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है कि इन्होंने कोई गद्दी स्थापित की थी या नहीं। इन साहित्य रचना के विषय में भी कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। [क०उ०]

हित घाट

यमुना जी का यह घाट अब 'कोयलिया' घाट या कोरिया घाट के नाम से जाना जाता है। इसके आस-पास राधावल्लभी गोस्वामियों के निवास स्थान है। इस कारण यह हित घाट के नाम से प्रसिद्ध हो गया। गो० चन्दलाल जी ने वृन्दावन प्रकाशमाला ग्रंथ में हित घाट का परिचय देते हुए इसे राधावल्लभ के पुराने मंदिर (नरवाहन द्वारा वि.सं. 1561 में कोइलिया घाट पर निर्मित) से आगे बनी कुंज गली को पार करके जमुना प्रवाह की ओर आगे बढ़ने पर उसके निकट बताया है—

करिकें प्रणाम हित कुल कौं तहाँ ते चले,
कुंज गली ह्वैंकें हिय पुलकि सिहाये हैं।
आगे हित घाट ताकौ देख्यौ सब ठाठ जहाँ,
नाना भाँति द्रुम अति फूलन सौं छाये हैं॥

(वृन्दावन प्रकाशमाला, गो० चन्दलाल, छंद सं. 4)

वर्तमान में इस घाट का ऊपरी भाग दर्शित होता है लेकिन नीचे का हिस्सा मिट्टी में दबा है। पुरानी ब्रजयात्रा और वन प्रदक्षिणा की पांडुलिपियों में इसका उल्लेख मिलता है। [रा०श०]

हित तत्त्व

हित से तात्पर्य राधावल्लभ संप्रदाय में एक विशिष्ट भावना से है। राधावल्लभ सम्प्रदाय के आचार्य ललिता शरण गोस्वामी जी के अनुसार प्रेम ही एक ऐसा तत्व है जिसके अधीन भगवान और भक्त समान रूप से रहते हैं और यहीं से श्रीहित हरिवंश का सिद्धान्त आरम्भ होता है। सम्प्रदाय में प्रचलित मान्यता के अनुसार प्रेम ही एक स्वतंत्र एवं अंतिम सत्ता है एवं भगवान, भक्ति और भक्त इसके ही विभिन्न रूप हैं। संपूर्ण दृश्य-अदृश्य प्रपंच इस प्रेम का ही विलास हैं। जहाँ वह विभिन्न नाम रूपों में क्रीड़ा करता रहता है। प्रेम ही परमाराध्य भगवत-तत्व है और यही परमज्ञान का प्रयोजक एवं ज्ञान घनस्वरूप हैं। प्रेम ही आत्मा है क्योंकि श्रुतियों ने आत्मा को प्रियता का एकमात्र आस्पद बतलाया है। श्री हित हरिवंश को प्रेम स्वरूप श्री राधा से प्रेम मंत्र की दिशा मिली थी, अत: उनको प्रेम का दर्शन गुरु रूप में प्राप्त हुआ था। प्रेम गुरु के लिये उनके द्वारा प्रयुक्त शब्द हित है जो परम प्रेम के अन्दर सहज रूप से स्थित अन्य को संगी करने का

द्योतक हैं। राधावल्लभीय संप्रदाय में प्रेम के लिये ही हित शब्द का प्रयोग बहुधा किया जाता है। हिताष्टक में कहा गया है-

"यत्किंचित् दृश्यते सृष्टां सर्वं हितमयं बिंदु।"

[प्र०श०]

हित हरिवंश महाप्रभु

राधावल्लभ वैष्णव-भक्ति सम्प्रदाय के प्रवर्तक, श्री राधा के अनन्य उपासक हित हरिवंश महाप्रभु का जन्म सं. 1559 में मथुरा से 4 मील दूर दक्षिण में बाद गाँव में हुआ था। अन्य इतिहासकारों (डा. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय श्रीकृष्ण शुक्ल आदि) ने श्री आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के जन्म सम्वत् 1559 को ही स्वीकार किया है। राधावल्लभ सम्प्रदाय के पण्डित गोपाल प्रसाद शर्मा तथा नाभादास कृत भक्तमाल के अनुसार इनका जन्म सं. 1530 माना गया है। किन्तु हित हरिवंश गोस्वामी मिश्र संज्ञक ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम व्यास मिश्र तथा माता का नाम तारारानी था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—इनके पिता का नाम केशवदास मिश्र तथा माता का नाम तारावती था। भक्तमाल हिन्दी साहित्य कोश, हिन्दी भक्ति काव्य में रस भक्ति धारा और उसका वाणी साहित्य एवं अन्य ग्रन्थों से इनके पिता का नाम व्यास मिश्र तथा माता का नाम तारारानी स्पष्ट होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य शुक्लजी ने ऐसा भ्रम-वश लिख दिया है। 'हिन्दी साहित्य कोश' में लिखा है कि हित हरिवंश गोस्वामी के पूर्वज उत्तर प्रदेश के सहारनपुर जिले के देववन (देवबन्द) नामक कस्बे के निवासी थे। इनके पूर्वजों का वर्णन साम्प्रदायिक वाणी ग्रन्थों में बड़े विस्तार से मिलता है, किन्तु उसका ऐतिहासिक आधार स्थिर करना कठिन है। हरिवंश गोस्वामी के जन्म के सम्बन्ध के एक किंवदन्ती वाणी ग्रन्थों में उपलब्ध होती है। कहते हैं कि धन-धान्य सम्पन्न होने पर भी व्यास मिश्र को पुत्र अभाव था। पुत्र अभाव के कारण उनका मन खिन्न रहता था। उनके मनस्ताप को देखकर एक दिन उनके अग्रज नृसिंहाश्रम (केशव मिश्र) ने भविष्यवाणी द्वारा यह सूचित किया कि निकट भविष्य में व्यास मिश्र को पुत्र प्राप्ति का योग है। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि इनके अग्रज का नाम केशव मिश्र व पिता का नाम व्यास मिश्र है, जिसे विद्वानों ने अन्त:साक्ष्य भक्तमाल व सम्प्रदाय की मान्यता के आधार पर स्वीकार किया है।

व्यास मिश्र बिजनौर नरेश कीर्तिचन्द्र के राजपुरोहित थे। किसी लोदीवंशीय बादशाह के दरबार से भी उनका सम्बन्ध था, ऐसा माना जाता है, कहा जाता है कि केशव मिश्र की भविष्य-वाणी से प्रमुदित होकर व्यास मिश्र बसन्त पंचमी के दिन अपने नौकर-चाकरों तथा पत्नी सहित ब्रज यात्रा के लिए निकल पड़े। जब ब्रजयात्रा करते मथुरा के निकट बाद गाँव पहुँचे, तब उनकी पत्नी को प्रसव-पीड़ा का अनुभव होने लगा। व्यास मिश्र ने यात्रा कार्यक्रम स्थगित कर उसी स्थान पर पड़ाव डाल दिया। कुछ समय पश्चात् तारारानी ने एक सौन्दर्य-युक्त बालक को जन्म दिया। इस बालक का नाम हरिवंश रखा गया।

बाद गाँव में राधावल्लभीय भक्तों ने एक मंदिर बनवाकर हरिवंश महाप्रभु की जन्मस्थली को एक पूज्य स्थान के रूप में सुरक्षित किया है। हरिवंश महाप्रभु का शैशव सामान्य बालकों से भिन्न असाधारण घटनाओं से ओत-प्रोत था। बाल्यकाल से ही इनके हृदय में भगवद्भक्ति की प्रेरणा उत्कृष्ट रूप में उत्पन्न हो गयी थी और खेल-कूद में भी राधा-कृष्ण की लीलाओं का अनुकरण ही प्राय: रहता था। सम्प्रदाय की मान्यता है कि हरिवंश ने किसी पुरुष को अपना गुरु नहीं बनाया। स्वयं राधिकाजी ने आठ वर्ष की अवस्था में इनको मंत्रदान दिया। गो. जतनलाल जी ने इस घटना को एक पद में व्यक्त किया है।

षोडश वर्ष की आयु में हरिवंश का विवाह रुक्मिणी देवी के साथ सम्पन्न हुआ। गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने पर भी

उनकी धार्मिक निष्ठा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। उनका दाम्पत्य जीवन सुखी, सम्पन्न और आदर्श कोटि का था। रुक्मिणी देवी से उत्पन्न सन्तति के सम्बन्ध में लेखकों में मतभेद हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—हित हरिवंश जी के चार पुत्र और एक कन्या हुई। पुत्रों के नाम वनचन्द्र, कृष्णचन्द्र, गोपीनाथ और मोहन लाल थे। इन्होंने कन्या का नामोल्लेख नहीं किया है। हिन्दी साहित्य कोश में लिखा है-रुक्मिणी देवी से एक पुत्री तथा तीन पुत्र उत्पन्न हुए। किशोरी शरण 'अलि' ने तीन पुत्र और दो पुत्री का नामोल्लेख इस प्रकार किया है- वनमालीदास, कृष्णदास, गोपीनाथ और पुत्री-साहिब दे तथा राइव दे। इस प्रकार विद्वानों के विवेचन के आधार पर इनके चार पुत्र व एक पुत्री अर्थात् पाँच सन्तति सिद्ध होती है।

हरिवंश महाप्रभु के मन में ब्रजयात्रा की इच्छा जाग्रत हुई और हरिवंश महाप्रभु ने सपत्नीक ब्रजयात्रा का निश्चय किया, किन्तु बच्चों के छोटे होने के कारण रुक्मिणी देवी ने यात्रा करना उचित नहीं समझा। फलस्वरूप हरिवंश महाप्रभु अकेले ही ब्रजयात्रा के लिए निकल पड़े। गृहस्थाश्रम में रहते हुए हित हरिवंश महाप्रभु ने यह भलीभाँति अनुभव कर लिया था कि संसार का तिरस्कार कर वैराग्य धारण करने का मार्ग ही ईश्वरप्राप्ति का एकमात्र उपाय नहीं है। अपितु गृहस्थाश्रम में रहकर भी ईश्वराराधना की जा सकती है और सब प्रकार का आत्म-सन्तोष प्राप्त किया जा सकता है। उन्होंने दाम्पत्य जीवन के अनुभवों को प्रेम की कसौटी बनाकर, उनमें पूर्ण पवित्रता का आरोप करके प्रत्येक विवेकशील व्यक्ति भगवद् प्रेम की प्राप्ति कर सकता है। फलतः ब्रजयात्रा के दौरान मार्ग में पड़ने वाले चिरथावल गाँव के एक धर्मपरायण ब्राह्मण की दो कन्याओं कृष्णदासी और मनोहरी दासी से हित हरिवंश महाप्रभु ने पिता के आग्रह पर विवाह कर लिया था।

ब्रजयात्रा करते हुए, ये फाल्गुन एकादशी वि.सं. 1590 (सन् 1533 ई.) को वृन्दावन पहुँचे। वृन्दावन पहुंचकर आपने 'मदनटेर' नामक स्थान पर विश्राम करने हेतु डेरा डाला। हित हरिवंश महाप्रभु की मधुरवाणी और दिव्य रूप पर मुग्ध होकर दर्शक मण्डली एकत्र होने लगी और इस प्रकार शीघ्र ही उनके आगमन का समाचार वृन्दावन में फैल गया।

हित हरिवंश महाप्रभु ने अपनी उपासना-पद्धति को प्रचलित करने के लिए 'सेवाकुंज' नामक स्थान में अपने उपास्य इष्टदेव का विग्रह सर्वप्रथम स्थापित किया। आपने सेवाकुंज, मानसरोवर, वंशीवट, रासमण्डल आदि सिद्ध स्थलों का प्राकट्य किया। सं. 1591 में प्रथम पाटोत्सव इसी सेवाकुंज में सम्पन्न हुआ था। सं. 1641 (सन् 1594 ई.) में अब्दुर्रहीम खानखाना के साथी दीवान या खजांची दिल्ली निवासी सुन्दरदास ने लाल पत्थर का मन्दिर बनवाया। लाल पत्थर का यह प्राचीन मन्दिर आज भी वृन्दावन में स्थित है, किन्तु इसमें प्राचीन विग्रह प्रतिष्ठित नहीं है। ब्रज प्रदेश में औरंगजेब के आक्रमणों के समय मन्दिर से विग्रह को उठाकर कामवन (भरतपुर) ले जाया गया। उन्होंने बाद में एक नया विग्रह मन्दिर बनवाकर इसमें प्रतिष्ठित किया। यह प्रतिष्ठा सं. 1842 (सन् 1785 ई.) में हुई थी।

हित हरिवंश महाप्रभु ने अपनी विचारधारा और नवीन उपासना पद्धति को व्यवस्थित रूप प्रदान करने के लिये एक नया सम्प्रदाय बनाया, जिसका नाम 'राधावल्लभ सम्प्रदाय' है। यह सम्प्रदाय ब्रज के वैष्णव भक्ति-सम्प्रदायों में अपनी राधा भक्ति के लिए अत्यधिक प्रसिद्ध माना जाता है।

ऐसा ज्ञात होता है कि हित हरिवंश महाप्रभु ने 7 वर्ष की आयु में ही देववन में एक कुएँ से मुरलीधारी कृष्ण विग्रह को निकालकर एक नवनिर्मित मंदिर में स्थापित किया और उनका नाम रंगीलाल रखा। आज यह विग्रह देववन के राधा नवरंगी लाल मंदिर में विराजमान है। वृन्दावन मंदिर में राधावल्लभ के विग्रह के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वृन्दावन आगमन के समय महाप्रभु ने राधा रानी के स्वप्नादेश पर पुनः विवाह किया और उन्हें चिड़थावल गाँव के ब्राह्मण ने उन्हें दहेज में राधावल्लभजी का भी विग्रह दिया था। उसे महाप्रभु वृन्दावन ले गये और प्रथम बार उसे ही विराजमान किया था।

हित हरिवंश महाप्रभु की दो संस्कृत रचना 'श्रीयमुनाष्टक' एवं 'राधा-सुधानिधि' मानी जाती हैं तथा इन्होंने दो पद्यात्मक वाणी 'हित-चौरासी' व 'स्फुट-वाणी' की रचना की है। इनकी ब्रजभाषा गद्य रचना के रूप में श्रीमुख पत्री-द्वय है जिनका रचनाकाल सं. 1600 के आस-पास माना जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनका रचनाकाल सं. 1600 से 1640 माना है तथा किशोरीशरण 'अलि' ने सं. 1564 से प्रारम्भ माना है। इनका रचनाकाल निश्चित रूप से ज्ञात नहीं होता है।

सम्प्रदाय मान्यतानुसार मानसरोवर और भांडीरवन के मध्य में 'भमर-भमरनी' स्थल पर सं. 1609 (सन् 1552 ई.) में शरद पूर्णिमा की रात्रि को हितजी सहचरी रूप में दिव्य विलास लीला में सम्मिलित हो गये। ऐसा कहते हैं कि इनका शरीर नहीं मिला और उनके विरह में वीठलदास और मोहनदास ने अपना शरीर त्याग दिया। [अ०सिं०सै०]

हेमलता ठकुरानी

हेमलता ठकुरानी गौड़ीय सम्प्रदाय के प्रसिद्ध आचार्य श्रीनिवासाचार्य की पुत्री थी। उनको कृष्णभक्ति के संस्कार अपने पिता से ही प्राप्त हुए थे। उनकी भगवान कृष्ण एवं चैतन्य महाप्रभु में दृढ़ भक्ति थी। वे गौर मंडल में अन्य चैतन्य सम्प्रदाय के भक्तों के साथ रहती थी। उनके प्रसिद्ध शिष्य श्री यदुनन्दन दास ने अनेक वैष्णव ग्रंथों की रचना की थी। इनकी मृत्यु के बाद इनकी समाधि इनके पिता की समाधि के निकट धीर-समीर कुंज में बनाई गयी। [क०उ०]

होली

होली की चर्चा होते ही ब्रज का नाम स्वाभाविक रूप से सामने आता है। होली के अवसर पर बरसाना, वृन्दावन, फालैन, नंदगाँव, गोकुल एवं दाऊजी के साथ ही पूरे ब्रजमण्डल में द्वापरकालीन परिवेश साकार हो उठता है। जिसमें साक्षात श्रीकृष्ण ने ग्वाल मण्डली और राधा के सखी परिकर के संग होली खेली थी। वैसे तो ब्रज में होली का क्रम बसंत पंचमी से ही आरम्भ हो जाता है लेकिन धीरे-धीरे इसका रंग बढ़ता ही जाता है। वास्तव में ब्रज के सम्बन्ध में प्रचलित यह पुरानी कहावत **'जग होरी ब्रज होरा'** ब्रज में इसके महत्व का प्रतिपादन करने वाली है। ब्रज में बरसाने की होली बहुत प्रसिद्ध है।

इसके आयोजन से एक दिन पहले नंदगाँव के पुजारी श्रीकृष्ण के सखा का प्रतीक बनकर बरसाने जाता है और वहाँ लाड़िली जी के मंदिर में पहुँचता है। मंदिर में बरसाने के सभी वयोवृद्ध गोस्वामी तथा विशिष्टजन एकत्र होते हैं। उस समय वहाँ समाज होती है। जिसमें होली के पदों का गायन-वादन किया जाता है। नंदगाँव का पुजारी वहाँ होली के रसियों का गायन करता हुआ नृत्य करता है और अपने गाँव की ओर से बरसाने में होली खेलने का आह्वान करता है जिसे बरसाने के गोस्वामीगण स्वीकार करते हैं। दूसरे दिन नंदगाँव के गोस्वामियों का एक दल भगवान श्रीकृष्ण और उनके सखाओं के प्रतीक रूप में सज-धज-कर गाता बजाता हुआ बरसाने पहुँचते हैं। उनके चेहरे चन्दन और गुलाल से चिते होते हैं। उस समय हुरियारों का का वह दल भगवान श्रीकृष्ण के वहाँ पहुँचने के प्रतीक की सूचना में बरसाने की गोपियों को सम्बोधन करता हुआ रसिया गायन करता है।

रसिया आयो रे तेरे द्वार खबर दीजो।
यह रसिया पौरी में आयौ, जाकी बाँह पकरि भीतर लीजो।।

फिर वे लोग श्रीराधिका जी को सम्बोधन कर उन्हें होली खेलने की चुनौती देते हुए इस रसिया का गायन करते हैं।

दरसन दै, निकसि अटा में ते।।
कोटि-रमा-सावित्री-भवानी तेरे निकसी है अंग छटा में ते॥ . . .

बरसाने में प्रसादी लड्डू होली का भी अपना महत्व है। रंग डलने से पूर्व मंदिर में श्रीजी के प्रसादी लड्डू भक्तों के मध्य लुटाये जाते हैं। जिन्हें प्राप्त कर श्रद्धालु स्वयं को धन्य मानते हैं। नवमी तिथि के दिन बरसाने में आयोजित लठामार होली अत्यधिक धूमधाम से मनायी जाती है। ढप, मृदंग, झांझ, मंजीरा की धुन पर नाचते-गाते गोस्वामी नवयुवक भी खूब होली खेलते हैं। बरसाने की लठामार होली के विषय में भक्तिकाल के रसिक कवियों व वाणीकारों ने अपनी रचनाओं में वर्णन किया है। नारायण भट्ट चरितामृत के अनुसार एक वर्ष तक भट्ट जी ने लट्ठ और ढाल द्वारा लठामार होली का अनुसरण कराया। पहले राधारानी मंदिर में रंग की होली व समाज गायन का आयोजन होता है और इसके बाद रंगीली गली में नंदगाँव, बरसाना के ब्राह्मण समुदाय के नर-नारियों के मध्य लठामार होली होती है। लठामार होली शुरू होते ही रंगीली गली का नजारा बदल जाता है। नंदलाल के जयकारे लगाते हुये हुरियारे प्रेमपगी लाठियों के बीच हुरियारिनों से ठिठोली करते हैं। रंगीली गली में सजी-सँवरी हुरियारिनों से हुरियारे हँसी-ठिठोली करते हैं। जब मर्यादायें पार होती हैं, हुरियारिनें लाठियों से सबक सिखाती हैं। बचाव के लिये हुरियारे अपनी गलती के लिये कभी कान पकड़ कर माफी माँगते हैं तो कभी उठक-बैठक लगाते हैं मगर हुरियारिनें उन्हें छोड़ने के मूड़ में नहीं रहतीं। उन्हें प्रेम पगी लाठियों से सबक सिखाती हैं। इस दौरान राधे-राधे के गगनभेदी जयघोष गुंजायमान होते हैं।

बरसाने की होली के दूसरे दिन फाल्गुन शु॰ दसमी को नंदगाँव की होली होती है। इस दिन बरसाने के गोस्वामीगण नंदगाँव के गोस्वामियों की स्त्रियों के साथ होली खेलने जाते हैं। वे लोग राधाजी की ध्वजा लेकर गायन-वादन और नृत्य करते हुये नंदगाँव पहुँचते हैं। वहाँ पर सबका भाँग, ठंडाई और रंग-गुलाल से स्वागत किया जाता है। उसके बाद नंदराय जी के मंदिर में समाज होती है। जिसमें नंदगाँव और बरसाने के गोस्वामीगण होली के पद, लोकगीत और रसिया आदि का गायन किया जाता है। फिर मंदिर के आँगन में दोनों ओर के दल परस्पर होली खेलते हैं। संगीत-समाज और होली के अनन्तर बरसाने के लोग नन्दराय जी के मंदिर से उतरकर नीचे मैदान में आते हैं। जहाँ नंदगाँव की गोपियाँ सज-धजकर लम्बे-लम्बे घूँघट काढ़े हुए और बड़े-बड़े लट्ठ लिये उनके साथ लठामार होली खेलने को तैयार मिलती हैं। यहाँ भी बरसाने की तरह नारियों द्वारा लाठियों से प्रहार और पुरुषों द्वारा अपना बचाव किया जाता है। दोपहर को नन्दबाबा बैठक स्थित नन्दबाबा मंदिर यशोदा कुण्ड पर पहुँचते हैं। जहाँ भाँग-ठंडाई छानकर शाम ढलते ही हाऊ-विलाऊ और दूध बिलोना के दर्शन कर नन्दबाबा मंदिर की ओर से नन्दलाला की जयघोष करते हुये बढ़ जाते हैं। नन्दबाबा मंदिर में बरसाना और नंदगाँव के गोस्वामी समाज का आमना-सामना होता है। फिर समाज गायन और रंग की बौछार के बीच होली होती है। फाल्गुन शुक्ल एकादशी जिसे आमलकी एकादशी कहा जाता है, के दिन से ही वृन्दावन में रंग की होली प्रारम्भ हो जाती है। यही कारण है कि यह तिथि रंगभरनी एकादशी के नाम से प्रसिद्ध है। श्रीराधावल्लभजी के मंदिर में रंग की होली इसी दिन से शुरू हो जाती है। श्रीजी के मंदिर से सवारी नगर यात्रा करती है और रात्रि में होली भक्तों को आनन्द से रंग देती है। श्रीराधादामोदर मंदिर में रंगीली दशमी से होली महोत्सव की शुरुआत होती है। इसी प्रकार अन्य मंदिरों में भी रंगभरनी एकादशी से ही ठाकुरजी की होली का पूरे जोर-शोर से आरम्भ होता है। इस दौरान मंदिरों में समाज गायन प्रारम्भ हो जाता है, जिसमें होली के पद आदि गाये जाते हैं। यहाँ मंदिरों में आधुनिक रासायनिक रंगों का प्रयोग नहीं होता बल्कि रंग तैयार करने की अपनी पारम्परिक विधि है जिसमें टेसू के फूल उबालकर रंग बनाया जाता है जिसमें केसर, अरगजा, गुलाब जल आदि मिलाकर चाँदी के बड़े-बड़े पिचकारों से इसे श्रद्धालुओं पर डालते हैं।

ब्रज में होली के अवसर पर दाऊजी का हुरंगा काफी प्रसिद्ध है। रंग और गुलाल के मध्य कपड़े से बना कोड़ा यहाँ लाठियों का सा ही कार्य करता है। ब्रज की होली का आनन्द लेने न केवल देशी बल्कि विदेशी लोग भी बड़ी तादाद में आते हैं। होली की पूर्णिमा के दिन से यहाँ होलिकोत्सव अपने चरम यौवन पर होता है। पूर्णिमा के दिन होली पूजन की परम्परा ब्रज के अलावा कहीं और देखने को नहीं मिलती। सायं उत्थापन के दर्शनों के बाद समस्त सेवायत होली

पूजन के समारोह में सम्मिलित होते हैं। पूर्णिमा के दिन यहाँ शोभायात्रा निकलती है। मार्ग में—**ऐरी सखि निकसे हैं श्री बलराम खेलन ब्रज में फाग हो'** स्वर लहरी स्फुटित होती है।

प्रतिपदा के दिन नित्य नियम की होली एवं सेवा श्रृंगार तथा महारास का आयोजन होता है। इसमें परम्परागत वाद्यों के साथ शहनाई एवं नगाड़े की महत्वपूर्ण प्रस्तुति होती है। इसमें सेवायत, गोस्वामियों के वंशज अपनी भाभियों के साथ श्री ठाकुर जी के सामने जगमोहन प्रांगण में नृत्य करते हैं।

द्वितीया के दिन हुरंगा होता है जो कि विश्व प्रसिद्ध उत्सव है। इस उत्सव में नित्य पूजा-अर्चना व समाज गायन के बाद राजभोग उतरने के उपरान्त पुनः समाज गायन होता है। यह रंग-गुलालों का ब्रज का एक अद्‌भुत उत्सव है। मन्दिर प्रांगण में 4 फीट गहरे 20 फीट लम्बे 4 हौद बने हैं। जिनमें हुरंगा के रंग को एकत्र किया जाता है।

श्री ठाकुरजी के प्रतीक श्रीकृष्ण बलदेव के रूप में दो झण्डों को मंदिर में स्थापित किया जाता है। समाज होने के पश्चात श्री ठाकुर जी की आज्ञा लेकर हुरंगा उत्सव शुरू होता है, इसमें सेवायत समाज के देवर अपनी भाभियों के साथ होली खेलते हैं। इस उत्सव में तीन घण्टे का समय लगता है। मन्दिर की छतों से गुलाल की वर्षा एवं केसरिया रंग की भरी पिचकारी, कमोरियों एवं पिचकाराओं से रंग की बौछार करते हैं।

हुरंगा पूर्ण होने पर सभी ठाकुरजी के देवालय की परिक्रमा को निकलते हैं। और इठलाते हुये गीत गाते चलते हैं कि

'हारी रे गोरी पार चली और जीत चले नन्दलाल'...

चतुर्दशी को पूर्णिमा आ जाती है तो उसी रात्रि में जब भद्रा न हो तब होलिका दहन होता है। एक स्तम्भ प्रहलाद का होता है। उसके चारों तरफ गोबर के बने ढाल, बिड़कला तथा लकड़ी लगाई जाती हैं। ऐसा कहते हैं कि प्रहलाद बच गया तथा होलिका राक्षसी जल गयी। होलिका-दहन के समय जौ, गेहूँ, चना आदि को होलिका में भूनकर लाते हैं। ब्रज के फालैन गाँव में धधकती हुई होली के मध्य से पंडा गुजरता है। देशी एवं विदेशी लोगों के लिए यह कौतूहल का विषय रहता है। प्रहलाद कुण्ड में स्नान के उपरान्त प्रभु का ध्यान करते हुए पंडा होली की धधकती ज्वाला को सकुशल पार करता है। फिर दूसरे दिन होली की राख शरीर पर लगाने से वैभव की वृद्धि होना माना गया है।

[प्र॰श॰]

परिशिष्ट

अखण्डानन्द सरस्वती

स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती जी का शास्त्रीय वैदुष्य जितना उत्तम कोटि का है, उतनी ही उदात्त कोटि की है इनकी आध्यात्मिक साधना और दीर्घ तपस्या। बाल्यकाल से ही मन में वैराग्य के अंकुरित होने से अध्यात्म की ओर उन्मुखता और भगवद् भक्ति का उदय होने से जीवन के परम उद्देश्य प्राप्त करने के लिए अनेक पुण्यशाली स्थानों के निवास से जब वे अपने को तैयार कर रहे थे तो उसी क्रम में कल्याण नामक पत्र की साहित्य सेवा जैसे कार्यों ने भी इस दिशा में गति की वृद्धि की। भगवान की पीयूषमयी कथा की ओर जनता जनार्दन को उन्मुख कर विद्वज्जनों के हृदय में भक्ति के तत्त्व का उदय कराना ही इनका उद्देश्य बन गया था।

वाराणसी मण्डल के महाइच परगने के महराई गाँव में संवत् 1968 (1911 ई.) की श्रावण अमावस्या को इनका जन्म हुआ। इनके पिता पंडित सूर्येन्दु द्विवेदी थे। पितामह श्री चन्द्रशेखर द्विवेदी ज्योतिष, धर्मशास्त्र आदि के प्रकाण्ड पण्डित थे। ऐसा कहा जाता है कि इनके पितामह ब्रज परिक्रमा हेतु ब्रज पधारे। परिक्रमा में शान्तनुबिहारी मंदिर (सतोहा) में इन्होंने सुयोग्य पौत्र हेतु प्रार्थना की, जिसके कुछ समय पश्चात इनका जन्म हुआ और इनका नाम शान्तनुबिहारी रखा गया। इनकी माताजी के मन में रामचरित मानस के प्रति श्रद्धा और भगवद् प्रेम था। इसलिए बाल्यकाल से ही इनके मन में भगवद् प्रेम के भाव उत्पन्न हो गये थे। इन्होंने अक्षर ज्ञान रामायण पाठ पढ़कर ही प्राप्त किया था।

इनकी प्रारम्भिक शिक्षा ठीक प्रकार से नहीं हुई थी। इन्होंने काशी जाकर संस्कृत साहित्य, दर्शन, व्याकरण, ज्योतिष आदि का अध्ययन पं. रामभवन उपाध्याय और पं. रामपरीक्षण शास्त्री से किया था। भागवती कथा का श्रवण और सत्संग का नियम बन गया था। संवत् 1980 (सन् 1923) में आपका विवाह कर दिया गया पर अधिक समय गृहस्थ के बन्धन में नहीं रहे, विरक्ति के भाव जाग्रत होने पर शंकराचार्य ब्रह्मानन्द सरस्वती जी से 1942 ई. में संन्यास की दीक्षा ग्रहण की और शान्तनुबिहारी द्विवेदी से 'अखण्डानन्द सरस्वती' हो गये।

सुप्रसिद्ध महात्मा श्री उड़िया बाबा का आपको सान्निध्य प्राप्त था। सहेपुर के स्वामी योगानन्द जी, मधईपुर के बाबा अविनाशचन्द्र जी, नेपाल के श्रीपरमहंस जी जैसे अनेक प्रसिद्ध साधु-सन्तों के सत्संग का सुअवसर इन्हें मिला। साधु-सन्तों के अतिरिक्त इनका संग दार्शनिकों और विद्वानों से भी था। नरवर के ब्रह्मचारी श्री जीवनदत्त जी, पं. गिरधर शर्मा चतुर्वेदी का सान्निध्य भी मिला। स्वामी करपात्री जी महाराज के साथ 40-45 वर्ष तक सत्संग और आलाप का सौभाग्य मिला।

भारत के रामायण के प्रसिद्ध प्रवक्ता श्री रामकिंकर उपाध्याय ने इन्हीं से दीक्षा ली थी। इनके सान्निध्य में स्वामी स्वरूपानन्द जी और स्वामी शान्तानन्द जी बहुत समय तक रहे। हिमालय से कन्याकुमारी तक जगन्नाथपुरी से द्वारिका तक इन्होंने यात्रा कर शंकराचार्य की परम्परा का अनुसरण किया। इन्होंने उत्तराखण्ड की यात्रा गंगोत्री में श्रीकृष्णाश्रम जी महाराज के तथा जोशीमठ में ब्रह्मानन्द सरस्वती के दर्शन का लाभ प्राप्त किया था। इन्होंने अपनी साधना का केन्द्र वृन्दावन में बनाया तथा जीवन के अंतिम समय तक ब्रजवास ही किया।

स्वामी अखण्डानन्द ने अनेक ट्रस्टों की स्थापना कर देश में धर्म, दर्शन तथा साहित्य के प्रचार में महत्त्वपूर्ण योगदान

दिया है, जो निम्नलिखित हैं- श्री उड़िया बाबा ट्रस्ट, श्रीकृष्णजन्मस्थान सेवा संस्थान, मथुरा, स्वर्गाश्रम ट्रस्ट, ऋषिकेश, आनन्द वृन्दावन चेरिटेविल ट्रस्ट, जनता जनार्दन सेवा ट्रस्ट, स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती सेवा संस्थान, ब्रह्ममूर्ति श्री उड़िया बाबा लोककल्याण ट्रस्ट इत्यादि।

महाराज जी ने अपने जीवन की तपस्या एवं अनुभव आदि को निम्नलिखित ग्रंथों के माध्यम से प्रकट किया है। उनके द्वारा रचित ग्रंथ इस प्रकार हैं-माण्डूक्य प्रवचन (आगम प्रकरण), माण्डूक्य कारिका प्रवचन (वैतथ्य प्रकरण), माण्डूक्य कारिका प्रवचन (भाग 3, 4), कठोपनिषद् (भाग 1 तथा 2), श्रीमद्भागवत रहस्य, सांख्य योग, कर्म योग, भक्ति योग, ज्ञान विज्ञान योग, विभूतियोग, भक्ति सर्वस्व, अपरोक्षानुभूति, साधना और ब्रह्मानुभूति, नारदभक्ति दर्शन, भक्ति रसायनम्, मानव जीवन और भागवत धर्म, व्यवहार और परमार्थ, मुण्डक प्रवचन, ईशावास्य प्रवचन, पुरुषोत्तम योग, ब्रह्मज्ञान और उसकी साधना, भागवतामृत, भागवत दर्शन, मानव जीवन और भागवत धर्म, गीता में मानवधर्म, भक्ति ज्ञान समन्वय, निगम चिन्तन, चारु चिन्तन, गम्भीर चिन्तन, गीता दर्शन इत्यादि। [नि०श०]

अगम प्रसाद माथुर

प्रो. अगम प्रसाद माथुर पूज्य दादा जी महाराज राधास्वामी मत परंपरा में आदि केन्द्र हजूरी भवन के वर्तमान आचार्य (राधास्वामी) गुरु हैं। इनका जन्म 27 जुलाई 1930 को हुआ। इनके पितामह कुंवर जी महाराज के दो सुपुत्र हुए, जिनमें पहले पुत्र कुंवर प्रेम प्रसाद जी का जन्म 1902 में हुआ। आपने एक वर्ष की उम्र में ही संसार छोड़ दिया। दूसरे कुंवर आनंद प्रसाद जी थे, जिनका जन्म 1906 ई. में हुआ। आपका विवाह सन् 1926 ई. में खुर्जा निवासी श्री लक्ष्मीनारायण जी माथुर की ज्येष्ठ पुत्री श्री जगदंबा देवी से संपन्न हुआ। कुंवर आनंद प्रसाद जी ने कुछ समय डाकखाने में नौकरी की, लेकिन उन्होंने अपना अधिक समय परमार्थ में व्यतीत किया। वर्ष 1957 ई. में 51 वर्ष की आयु में वह निजधाम सिधार गये। उनके चार सुपुत्रों में सबसे बड़े पुत्र प्रो. अगम प्रसाद जी माथुर। आध्यामिकता से ओत-प्रोत परिवार और राष्ट्रीयता की भावना में उद्वेग से सराबोर परिवेश में 27 जुलाई 1930 दिन रविवार, श्रावण सुदी दौज विक्रम संवत् 1987 को आगरा के पीपल मंडी मोहल्ले में स्थित राधास्वामी मत के आदि केन्द्र हजूरी भवन में एक बालक का जन्म रात्रि 8:45 बजे कुंवर आनंद प्रसाद साहिब के प्रथम पुत्र के रूप में हुआ। बालक का जन्म उसी कक्ष में हुआ जहां उसके बाबाजी (कुंवर जी महाराज) व पिता (आनंद प्रसाद) का जन्म हुआ। "पूज्य बाबा जी ने राधास्वामी मत की पवित्र पोथी में देखकर बालक का नाम 'अगम' रखा। यही बालक आगे चलकर राधास्वामी सत्संग का अधिष्ठाता एवं वक्ता हुए, जिन्हें आज प्रो. अगम प्रसाद माथुर के नाम से जाना जाता है। समस्त जगत इन्हें दादाजी महाराज के नाम से पुकारने लगा।"

प्रो. माथुर का विवाह 15 फरवरी 1956 को सुश्री उषा माथुर से हुआ। परिवार में दो पुत्र एवं एक पुत्री का जन्म हुआ। पुत्री वीरा का विवाह इंजीनियर सुरेंद्र कुमार से हुआ और बड़े बेटे अंचित कुमार का विवाह सुश्री कविता से संपन्न हुआ। अंचित कुमार उस समय श्रीराम फर्टिलाइजर कोटा में कार्यरत थे। 11 वर्ष कार्य करने के पश्चात 1 जुलाई 1998 को इनका आकस्मिक निधन हो गया। छोटे बेटे डॉ. अतुल कुमार हैं जो वर्तमान में डॉ. बी. आर. अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा में प्रोफेसर के रूप में कार्यरत हैं।

दादा जी महाराज के बचपन में परम पूज्य बाबा जी व दादी जी का अत्यधिक लाड़-प्यार रहा। वे माता-पिता के दुलारे होने के साथ बाबा जी की आंख के तारे थे। सत्संग में बाबाजी के साथ जाते थे। उनकी आध्यात्मिक क्रियाओं को बड़े ध्यान से देखते थे। सभी बातों का अनुसरण करना तथा उनको एकाग्र होकर देखना उनकी आदत बन गयी थी। अधिक स्नेह के कारण उनकी प्रत्येक इच्छा पूर्ण होती थी। घर से बाहर खेलने व जाने की मनाही थी। आठ से दस वर्ष की आयु तक असामान्य, अपरिचित व्यक्तियों को पसंद नहीं करते थे। वे स्वभाव से अंतर्मुखी थे और दस वर्ष की

आयु में राधास्वामी मत की विधिवत दीक्षा ली व उपदेश ग्रहण किये। इनकी विद्यालय की शिक्षा सन् 1934 में चौथी कक्षा सेन्ट जॉन्स इंटर कॉलेज से प्रारंभ हुई। यहीं से इंटरमीडिएट तक शिक्षा ग्रहण की। तत्पश्चात सेंट जॉन्स कॉलेज से बी.ए. और एम. ए. इतिहास से पास किया। "15 जुलाई 1952 को आगरा कॉलेज के इतिहास विभाग में प्रवक्ता के रूप में अध्यापन कार्य शुरू किया। 30 वर्षों के कटु-मधुर अनुभवों और संघर्षों, सफलताओं, प्रेम और वैमनस्य, आलोचना, प्रशंसा का एक अंतहीन सिलसिला सन् 1982 तक चला।"

22 अक्टूबर सन् 1982 में उत्तर प्रदेश शासन ने इनको इतिहास विभाग अध्यक्ष से सीधे आगरा विश्वविद्यालय का कुलपति नियुक्त कर दिया। शिक्षा जगत में इस प्रकार का कीर्तिमान लिए यह प्रथम नियुक्ति थी। एक विभाग अध्यक्ष से कुलपति बनने का अप्रत्याशित प्रयास आश्चर्यजनक और अभिभूत करने वाला था। हालांकि कुलपति पद पर प्रथम नियुक्ति से कई वर्ष पूर्व ही प्रोफेसर माथुर को आगरा से अन्यत्र कुलपति पद का प्रस्ताव शासन की ओर से दिया गया था, 'किन्तु उन्होंने सत्संग सेवा को सर्वोच्चता देते हुए तत्काल यह प्रस्ताव यह कहते हुए ठुकरा दिया था, कि वे अपना दैनिक सेवा धर्म पालन करने हेतु कुलपति जैसे अनेक पदों की सहर्ष बलि दे सकते हैं।' 27 अप्रैल 1988 को विश्वविद्यालय आगरा की दुर्दशा, अकर्मण्यता, अराजकता के पथ पर आगे बढ़ते देख एक बार फिर से कुलपति नियुक्त कर कमान सौंप दी। विश्वविद्यालय परिसर में ही इन्होंने नये इतिहास विभाग, पुरातत्व, पर्यटन, पत्रकारिता, समाज कार्य के क्षेत्र में डिप्लोमा, एम.फिल., पी-एच.डी०, डी.लिट. की शुरुआत कर दी। शिक्षा को रोजगार से जोड़ने के लिए रोजगारपरक पाठ्यक्रम आरंभ किये। साथ ही अनेक नये पाठ्यक्रमों की नींव रखी।

वर्ष 1990 में प्रोफेसर माथुर का साठवाँ जन्म दिवस षष्टि पूर्ति के रूप में मनाया गया। सन् 1991 में प्रशासनिक सेवा का कार्यकाल पूर्ण कर एकमात्र सत्संग और समाज के कार्यों के लिए पूर्ण रूप से सक्रिय हो गये। वर्ष 1992 में प्रो. माथुर के नेतृत्व में मत के द्वितीय आचार्य लाल जी महाराज का 125वां जन्मोत्सव मनाया गया। वर्ष 1993 में मत के प्रथम आचार्य स्वामी जी महाराज का 175वें जन्म दिवस को समारोह के रूप में मनाया गया। इस तीन दिवसीय आयोजन की प्रत्येक सत्संग सभा में उन्होंने प्रवचन दिये, जिसमें कहा - "एक बात जो सदैव याद रखनी है वह राधास्वामी नाम है। राधास्वामी नाम को मस्तक पर रखो, नैनों में बसाओ, हिए में बसाओ और उसका आसरा रखकर आधार मानकर अपनी करनी करे जाओ। इस कलयुग में भक्ति के सिवाय दूसरी करनी नहीं है। अत: कुल मिलाकर राधास्वामी दयाल स्वामी जी महाराज और हजूर महाराज के चरणों में खुद को सौंपकर जैसी उन्होंने बताई है वैसी करनी करे जाओ।" वर्ष 1994 में प्रो. माथुर ने प्रथम आचार्य स्वामी जी महाराज की अर्धांगिनी परम माता राधा जी महाराज के शताब्दी भंडारा समारोह का आयोजन किया, और कहा- "हजूर में स्वामी जी महाराज हैं। हजूर में और स्वामी जी महाराज में आकर्षण है। स्वामी जी महाराज में हम दादाजी महाराज को देखते हैं और स्वामी जी महाराज में हम सबको देखने के लिए तैयार हैं। जहां तक राधास्वामी का मतलब है। स्वामी जी महाराज स्वामी हैं, और राधा का पूरा रूप हजूर महाराज हैं। जब तक हजूर महाराज के चरण नहीं पकड़े जायेंगे तब तक हम स्वामी जी महाराज तक नहीं पहुंच सकते।"

वर्ष 1995 में 65वें जन्मोत्सव पर सम्पूर्ण देश-विदेश में फैले उनके शुभचिंतकों एवं अनुयायियों ने उन्हें वृहद् अभिनंदन ग्रंथ भेंट किया। वर्ष 1996 में सत्संग में होने वाले विवाहों की पद्धति में एक क्रांतिकारी परिवर्तन किया, जिसे 15 नवंबर 1996 को हुए विवाह में परिवर्तित किया गया। 1997 में प्रो. माथुर की अध्यक्षता में हजूरी भवन के प्रांगण में स्वतंत्रता की स्वर्ण जयंती 15 अगस्त बड़ी धूमधाम से मनाई गई। वर्ष 1998 में प्रो. माथुर की अध्यक्षता में मत संस्थापक द्वितीय आचार्य हजूर महाराज का शताब्दी भंडारा समारोह आयोजित किया गया। इसी दौरान प्रो. माथुर द्वारा "हजूर महाराज की झलकियां' शीर्षक से स्मारिका प्रकाशित की गयी।" शताब्दी समारोह के द्वितीय चरण में उन्होंने भौतिक प्रलय को रोकने के लिए प्रेम की प्रलय लाने का आह्वान किया और कहा कि हम 21 वीं शताब्दी का

बेसब्री से इंतजार कर रहे हैं, परन्तु जिस गति से वैज्ञानिक प्रगति हो रही है उससे प्रलय की संभावनाओं से इंकार नहीं किया जा सकता है।

वर्ष 1998 में आपके कुशल मार्गदर्शन में 'हजूरी भवन' का अपूर्ण निर्माण कार्य पूर्ण हुआ। 1999 में आपको कोलकाता के माइकल मधुसूदन दत्ता उत्कृष्ट शिक्षाविद् पुरस्कार से सम्मानित किया गया। वर्ष 2000 से 2006 तक आपने पूर्वी प्रदेशों में जगह-जगह जाकर भ्रमण किया। सत्संग किया और उपदेश दिये। 10 मई 2010 को आपके हिन्दी प्रेम व हिन्दी को दी गई सेवा के सम्मान में प्रयाग द्वारा 'विद्या वाचस्पति' की उपाधि से सम्मानित किया गया। 16 जून वर्ष 2011 में विशाल पी.पी. हॉल (प्रेम प्रकाश हॉल) का लोकार्पण किया। तत्पश्चात डॉ. बी.आर.अंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा द्वारा 'ब्रज रत्न' व कोलकाता की 'माइकल मधुसूदन ऐकेडमी' द्वारा वर्ष 2012 में 'बंगामोनी' उपाधि से सम्मानित किया गया।

प्रो. माथुर की अध्यक्षता में प्रतिवर्ष भंडारा, जन्मोत्सव, होली, दीपावली, बसंत, नववर्ष, हजूरी अष्टमी, गुरु पूर्णिमा, जन्माष्टमी आदि सभी उत्सवों को हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। प्रतिवर्ष इसकी भव्यता, सौम्यता और दिव्यता से लाखों लोग लाभान्वित होते हैं।

प्रो. माथुर ने समाज का नेतृत्व करने के साथ-साथ व्याप्त रूढ़ियों, परंपराओं, रीतिरिवाजों में व्यापक समाज सुधार की पहल की, जिसमें प्रमुख हैं- नवीन विवाह पद्धति, अंतर्जातीय विवाह, विधवा विवाह, नवीन विधवा जीवन पद्धति, संयुक्त परिवार पद्धति को प्रोत्साहन, मृत्यु भोज निषेध, गौ रक्षा, शाकाहार, छोटा परिवार आदि पर बल दिया। आज हजूर दादा जी महाराज के मत 'राधास्वामी दयाल की दया' से लाखों अनुयायी जुड़े हुए हैं और इनके बताये मार्ग पर चलकर लाभान्वित हो रहे हैं। [दि०श०]

आनंदस्वरूप

हुजूर साहब जी महाराज (सर आनन्द स्वरूप के.टी.) राधास्वामी मत के पांचवें सतगुरु थे। उनका जन्म 6 अगस्त सन् 1881 ई. को अम्बाला शहर के कलाल माजरी में एक मध्यमवर्गीय परिवार में हुआ था। उनके पिता श्री किशनचन्द धातुओं के व्यापारी थे। वे सहजधारी सिक्ख थे और गुरुनानक के उपासक थे। साहब जी महाराज के चार पुत्र व एक पुत्री थी। वे बचपन में ही गम्भीर व विचारशील थे और आमतौर पर अलग ही रहना चाहते थे। गरीबों और जरूरतमंदों के प्रति उनका व्यवहार सहानुभूतिपूर्ण और उदार था।

सन् 1897 ई. में उन्होंने अम्बाला शहर के मिशन हाईस्कूल से मैट्रिकुलेशन परीक्षा पास की तदुपरान्त वे लाहौर चले गए और उन्होंने डी.ए.वी. कॉलेज में इन्टरमीडिएट कक्षा में प्रवेश लिया। सन् 1899 ई. में उन्होंने इन्टरमीडिएट परीक्षा पास कर ली। साहब जी महाराज ने संस्कृत में निपुणता प्राप्त कर वेदों का अध्ययन किया जिससे उनकी ईश्वर दर्शन की तीव्र लालसा पूर्ण हो सके।

साहब जी महाराज की शादी श्रीमती सोहन देई से हुई थी। जब वे कॉलेज में पढ़ते थे तथी उनके पहले पुत्र का जन्म हुआ था। सन् 1901 ई. में उनके उपदेश लेने के बाद इस पुत्र की मृत्यु हो गई। साहब जी महाराज जब तार विभाग में नौकरी कर रहे थे तो अपना सरकारी कामकाज समाप्त करके अतिरिक्त समय धार्मिक पुस्तकों के गहन अध्ययन में बिताते थे।

सन् 1901 में वे राधास्वामी मत में दीक्षित हुए और उन्होंने आध्यात्मिक क्रियाएँ प्रारम्भ कर दीं। उनके मन में सत्संग मुख्यालय के निर्माण की योजना थी और वे जानते थे कि इस योजना के क्रियान्वयन में कितना परिश्रम करना पड़ेगा इसलिए आर्थिक कठिनाइयों के होते हुए भी उन्होंने सरकारी नौकरी से इस्तीफा दे दिया; तथापि परिवार की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पुस्तकें लिखीं जिनमें 'प्रेम संदेश', 'प्रेम बिलास भाग-1', 'राधास्वामी मत

दर्शन' एवं 'प्रेम बिलास भाग-2' हैं।

20 जनवरी सन् 1915 ई. को साहब जी महाराज द्वारा एक शहतूत का पौधा लगाकर दयालबाग की स्थापना की गई। यह समारोह बसंत के दिन किया गया। 'प्रेम संदेश' नाम की मासिक पत्रिका में जो अक्टूबर सन् 1918 में प्रकाशित हुई थी। 'सौ वर्ष पहले' शीर्षक एक लेख में दयालबाग की स्थापना के उद्देश्य और अभिप्राय और राधास्वामी मत के पूर्व आचार्यों के सुसंगत आदेश पूर्णतया वर्णन किए गए थे।

सन् 1915 ई. में साहब जी महाराज ने यह भी फरमाया कि सतसंगी आमतौर पर परमपिता को हुजूर राधास्वामी दयाल कहते हैं। सत्संग के तीन बाग हुजूरी बाग, राधा बाग, स्वामीबाग पहले से ही मौजूद हैं और इसलिए जब यह कालोनी स्थापित हो गई तो हुजूर राधास्वामी दयाल नाम को पूरा करने के लिए दयालबाग नाम रखा गया। इस प्रकार से स्थापित हुई दयालबाग कालोनी। दयालबाग में सत्संगियों को व्यक्तिगत रूप से अपने आवासीय भवन बनाने की स्वीकृति मिली और प्रेमनगर का शिलान्यास 1921 ई. में रखा गया फिर स्वेतनगर, स्वामीनगर और कार्यवीर नगर आदि भी बने।

साहब जी महाराज द्वारा रचित साहित्य का क्षेत्र भी अत्यंत व्यापक है। उन्होंने काव्य, नाटक, निबन्ध तथा यथार्थ प्रकाश सरीखे ग्रन्थों की रचना की। हुजूर सत्संग की साप्ताहिक पत्रिकाओं के लिए भी अक्सर लेख देते थे। उनकी कुछ कविताएँ व नाटक हिन्दी साहित्य में अनुपम व बेजोड़ हैं।

24 जून सन् 1937 को एक महान आत्मा, संगठनकर्ता, दूरदर्शक अपने नाशमान शरीर से प्रस्थान कर गए परन्तु वे अब भी जीवित हैं, जिन्होंने एक विश्रृंखलता से व्यवस्थित सृष्टि का सृजन परम दयालु के बाग दयालबाग के रूप में स्थापित किया। [नि०गौ०]

उड़िया बाबा

उड़िया बाबा का जन्म सन् 1875 में कृष्ण जन्माष्टमी को हुआ था। इनके पिता श्री वैद्यनाथ मिश्र तथा माता का नाम लक्ष्मी देवी था। जन्म देने के पश्चात् इनकी माता का देहान्त हो गया था। इनका लालन-पालन श्री प्रभाकर नामक एक दम्पति ने किया। इनका अध्ययन श्री गोपीनाथ जी के प्रिय भक्त राजा श्री कृष्णचन्द जी की पाठशाला में हुआ था। वस्त्र हरण लीला देखकर इन्होंने 72 घण्टे की समाधि लगाई। उसके पश्चात् ही जगत की ममत्थ इनमें उसी दौरान भीषण अकाल चला। इन्होंने अकाल की विभीषिका कम करने हेतु अपनी सारी शक्ति लगा दी। कुछ समय पश्चात् श्री मधुसूदन तीर्थ से नैष्ठिक ब्रह्मचर्य की दीक्षा प्राप्त कर वसुदेव ब्रह्मचारी का नाम मिला और राजघाट की कुटिया में गायत्री जप की उपासना करना प्रारम्भ कर दिया। कहा जाता है कि कुटिया के आस-पास सर्प रेंगते थे।

एक बार भण्डारे के समय इन्होंने कौवे और कुत्तों को आमंत्रित किया। गंगा तट आपका बहुत प्रिय था। कुछ समय बाद आपने वृन्दावन में प्रवेश कर एक कुटिया में जप करने लगे। (वर्तमान समय में वहाँ कृष्णाश्रम बना हुआ है।) श्री रामकृष्णदास जी से आपने कहा कि यहाँ तो पत्ते-पत्ते पर 'कृष्ण' लिखा है। संवत् 2005 की चैत्र कृष्ण चतुर्दशी की दोपहर 8, मई 1948 की तारीख को ठाकुर दास नामक व्यक्ति ने उन पर घातक हमला किया जिससे उनका नश्वर शरीर शांत हो गया। [जि०कु०]

करपात्री महाराज

काशी को सुशोभित करने वाले सन्तों में स्वामी करपात्री जी महाराज का स्थान नि:सन्देह महत्त्वपूर्ण है। भगवान शंकराचार्य के बाद अवतारस्वरूप अभिनव शंकर के रूप में इस धरा धाम पर अवतीर्ण हुए। स्वामी जी विचारक ही नहीं उच्चकोटि के कर्मयोगी भी थे। उनका कहना था कि "यदि प्रत्यक्ष, अनुमान आदि प्रमाणों से प्रत्यगात्म-स्वरूप

ब्रह्म का बोध हो जाय तो वेदों की प्रामाणिकता ही नष्ट हो जाएगी। प्रमाण वही होता है जो प्रमाणान्तर से अनधिगत एवं अबाधित वस्तु का असंदिग्ध बोध कराता है। धर्म का ज्ञान केवल लौकिक दृष्टि से ही नहीं हो सकता।" वे नीरस वेदान्ती नहीं थे (जो वेदान्त के शुष्क तर्कों के चिन्तन में ही अपनी प्रतिभा का उपयोग करता हो) प्रत्युत वे सौन्दर्य, सारसर्वस्व रसामृत मूर्ति, निकुंज विहारी की परमपावन निकुंज लीला के भक्ति रसाप्लुत सहृदय उपासक थे, जिनकी कमनीय वाणी से भक्तिरस के मधुमय कण बिखरे पड़ते थे।

स्वामी करपात्री जी का जन्म श्रावण शुक्ल द्वितीया, रविवार सन् 1907 (सं. 1964 वि.) उत्तरप्रदेश के प्रतापगढ़ जिले के भटनी नामक गाँव में सरयूपारीय ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके पिता पं. रामनिधि ओझा और माता का नाम शिवरानी था। इनका बचपन का नाम हरनारायण था। बचपन से ही तीक्ष्ण बुद्धि होने से संस्कृत का सामान्य अध्ययन और प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही पूर्ण कर ली। पूजा-पाठ, ध्यान एवं सत्संग में बाल्यकाल से ही इनकी अभिरुचि रही।

जन्म से वैराग्य के लक्षणों को देखकर पिता ने यह विचारकर नौ वर्ष की अवस्था में ही सन् 1916 में इनका विवाह ग्राम खण्डवा (प्रतापगढ़) के पं. रामदत्त उपाध्याय की पुत्री कुमारी महादेवी के साथ कर दिया। पर अधिक समय तक सांसारिक जीवन में नहीं रहे 17 वर्ष की अवस्था में घर से निकल पड़े और पैदल कोसों चलकर प्रयाग के समीप कुटेश्वर गाँव में पहुँचे। वहाँ उन्होंने वटवृक्ष की छाया में बैठे तपस्या में लीन एक सन्त को देखा। शरीर पर एकमात्र टाट का कोपीन धारण किये सन्त ने अपनी आँखें खोलीं तो सामने इनको देखकर इनके आशय को जानकर कहा-"तुम नरवर जाकर अभी अध्ययन करो। तुम पर माँ सरस्वती की विशेष कृपा रहेगी।" बस इस आज्ञा को धारण कर नरवर आ गये। वहाँ स्वामी विश्वेश्वर आश्रम जी महाराज से व्याकरण, दर्शन, शास्त्र, भागवत आदि ग्रन्थों का अध्ययन किया। पं. जीवन दत्त जी महाराज से भी इन्होंने संस्कृत का अध्ययन किया।

हिमालय गमन कर कोयल घाटी में तीन वर्ष तक तप, ऋषिकेश की तपस्थली में अखण्ड साधना, आत्मदर्शन, धर्म सेवा का संकल्प, पुन: 1930 में नरवर आगमन। इसके पश्चात काशी प्रस्थान किया। पुन: नरवर में श्री गुरुचरणों में प्रस्थान किया और अपने गुरु स्वामी विश्वेश्वराश्रम जी के अनुरोध से शंकराचार्य श्री ब्रह्मानन्द जी महाराज से सन् 1931 में 24 वर्ष की तरुण अवस्था में विधिवत दण्ड ग्रहण कर संन्यास की दीक्षा ली और हरनारायण "स्वामी हरिहरानन्द सरस्वती" कहलाने लगे।

इन्होंने विक्रम सम्वत् 1967 की विजयदशमी को अखिल भारतीय धर्मसंघ की स्थापना की। इस संघ का प्रधान कार्यालय दुर्गाकुण्ड रोड, काशी में स्थित है। स्वामी जी के इस पवित्र कार्य में स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी, पं. विजयानन्द त्रिपाठी तथा पं. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने सहयोग प्रदान किया। युवकों में धर्म भावना प्रसार एवं संगठन को सुदृढ़ करने के लिए अखिल भारतीय स्तर पर 'धर्मवीर दल' की स्थापना की।

करपात्री जी महाराज अन्य शास्त्रों के समान रस-शास्त्र के भी अप्रितम विद्वान थे। जब वह रस तत्त्व का प्रतिपादन करने लगते तो बड़े-बड़े रस मनीषी भी आश्चर्यचकित रह जाते थे। वे जब रस के सम्बन्ध में अनुमानवादी, प्रत्यक्षवादी एवं परोक्षवादी आचार्यों का खण्डन करते श्रीमधुसूदन सरस्वती के द्वारा भक्ति रसायन में प्रतिपादित रस-तत्त्व के समर्थन में अपनी लोक विलक्षण प्रतिभा को प्रकाशित करने लगते थे, तब ऐसा कौनसा रसमर्मज्ञ है, जो मुग्ध न हो जाय? उनका कहना था कि जब स्थायिभावावच्छिन्न चैतन्य, आलम्बन विभावाच्छिन्न चैतन्य से एक होता है, तभी रस का अनुभव होता है परन्तु स्थायिभावावच्छिन्न चैतन्य का आवरण भंग नहीं होता। वह ब्रह्मात्मैकबोध होने पर ही होता है। स्वामी जी ने धर्मसंघ के विषय में सम्पूर्ण भारत में प्रचार किया। स्वामी जी संन्यासियों की परम्परा में मुकुटमणि के समान थे। धर्म, संस्कृति के महान उपासक श्री स्वामी जी 7 फरवरी 1982 को ब्रह्मलीन हो गये।

स्वामी जी ने मासिक 'सन्मार्ग' काशी, साप्ताहिक सन्मार्ग, काशी साप्ताहिक सिद्धान्त का प्रकाशन, काशी, कलकत्ता, दिल्ली से दैनिक 'सन्मार्ग' पत्र का प्रकाशन और धर्म-प्रचार किया। स्वामी जी ने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन

किया। उनके ग्रन्थ इस प्रकार हैं-

वेदान्त पारिजात-यह ग्रन्थ दो हजार पृष्ठों में, राधाकृष्ण संस्थान, कलकत्ता से प्रकाशित है।

वेदस्वरूप विमर्श - यह ग्रन्थ वैदिक तत्त्वों का उन्मीलन करता है। यह ग्रन्थ वेदस्वरूप विमर्श, वेद प्रामाण्य विमर्श, वेद अपौरुषेय विमर्श और ब्राह्मणानां वेदत्वविमर्श। यह चार विमर्श के रूप में ग्रंथित है, इन विमर्शों में चतुर्थ विमर्श 450 पृष्ठों में निर्मित है। यह भक्ति सुधा परिषद कलकत्ता से प्रकाशित है।

वेद प्रामाण्य मीमांसा-इस ग्रन्थ में पूर्व ग्रन्थ के द्वितीय विषय के वर्ण्य विषयों की सामग्री कुछ अधिक विस्तार सहित वेद प्रामाण्य मीमांसा नामक पुस्तिका में वर्णित है।

श्रीविद्या रत्नाकर-तंत्र शास्त्र विषयक इस ग्रन्थ में श्रीविद्या के विविध अनुष्ठानों का विधिवत वर्णन है। श्रीविद्या के आम्नायों से सम्बद्ध मन्त्रों का भी संग्रह है। श्यामाक्रम, दण्डिनी क्रम, वाराही क्रम तथा परापद्धति का प्रतिपादन है। शंकराचार्य द्वारा प्रणीत सौन्दर्य लहरी, त्रिपुरसुन्दरी की विविध अर्चा विधियाँ वर्णित हैं।

भक्ति रसार्णव-इसमें भक्ति रस का विस्तृत तथा गम्भीर विवेचन है। यह मधुसूदन सरस्वती के ग्रंथ 'भक्ति रसायन' की शैली में लिखा गया है।

इनके अतिरिक्त करपात्री महाराज जी की हिन्दी की रचनाएँ भी मिलती हैं जैसे-विचार पीयूष, रामायण मीमांसा, भक्तिसुधा, श्रीभगवत तत्त्व, रामराज्य और मार्क्सवाद, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और हिन्दूधर्म।

इन सभी ग्रन्थों में भक्तिसुधा नामक ग्रन्थ नि:सन्देह मुकुटमणि के समान भागवत ग्रन्थों में सुशोभित है। एक सहस्र पृष्ठों में रचित इस ग्रन्थ में वेणु गीत, चीरहरण, रासलीला एवं रासपंचाध्यायी का गम्भीर विवेचन रोचक शैली में किया गया है।

श्री स्वामी करपात्री जी महाराज अपनी विलक्षण प्रतिभा से सभी को प्रभावित करते थे। राष्ट्र समर्पित भावना से साधना में निरत उनके अनुकरणीय जीवन का स्मरण, चिन्तन, मनन कल्याण प्रदान करने वाला है। उन्होंने वैदिक हिन्दू धर्म को विघटन एवं विखराव से संरक्षण देकर, सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों रूपों से जनता के समक्ष प्रस्तुत करके भावात्मक एकता की स्थापना की। [नि०श०]

कामता प्रसाद सिन्हा

राधास्वामी मत के चौथे पूज्य आचार्य श्री कामता प्रसाद सिन्हा साहब परम गुरु हुजूर सरकार साहब के नाम से विख्यात थे। इनका जन्म 12 दिसम्बर सन् 1871 ई. मुरार, जिला शाहाबाद (बिहार) के एक प्रतिष्ठित कायस्थ परिवार में हुआ था। सरकार साहब के पिता श्री राय कुलवन्त प्रसाद सिन्हा साब ने उत्तरप्रदेश की न्याय सेवा में मुंसिफ के रूप में सरकारी सेवा प्रारम्भ की और जब कानपुर स्थानान्तरित होकर पहुंचे तब वह सबजज बन गये थे। आजमगढ़ के सब-जज के पद से वह सेवानिवृत्त हुए। उनके चार पुत्र और एक पुत्री थीं।

अपनी बाल्यावस्था से ही सरकार साहब ने अपनी प्रतिभा, कुशाग्र बुद्धि तथा अभूतपूर्व योग्यता के प्रमाण देने आरम्भ कर दिये थे। भारतवर्ष के शतरंज के पहले सात खिलाड़ियों में गिने जाते थे। वे एक कुशल घुड़सवार भी थे। सरकार साहब सन् 1898 ई. में एल.एल.बी. की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् 1911 में बतौर वकील के अपना काम बन्द किया तब उनकी मासिक आय 2000 रुपये से अधिक हो गई थी।

सन् 1902 ई. में महाराज साहब द्वारा राधास्वामी सत्संग की सेन्ट्रल एडमिनिस्ट्रेटिव काउन्सिल स्थापित की गई थी। सन् 1903 में इसके सदस्यों की संख्या बढ़ाकर 21 कर दी गई और तब सरकार साहब एक सदस्य चुने गए, उसके बाद सन् 1904 ई. में जब राधास्वामी ट्रस्ट स्थापित किया गया तो सात ट्रस्टियों में एक ट्रस्टी सरकार साहब को बनाया गया। सरकार साहब गाजीपुर में बस गए और गाजीपुर शाखा सत्संग अत्यंत महत्त्वपूर्ण शाखा हो गई। वहाँ प्रतिदिन

सत्संग में 60 से 70 सत्संगी नियमित रूप से आते थे। आने वाले सत्संगियों को सरकार साहब राधास्वामी मत के सिद्धान्तों को स्पष्ट रूप से समझाया करते थे।

यद्यपि सरकार साहब ने कोई विशेष पुस्तक नहीं लिखी फिर भी कई ऐसे विषय जिनकी पूर्ण व्याख्या की आवश्यकता थी उन्हें अपने पत्रों में और 'प्रेम समाचार' में जो कि जून 1913 में प्रकाशित हुआ था, विस्तारपूर्वक लिखा। उनके चार अद्वितीय पत्र राधास्वामी सत्संग सभा ने एक पुस्तक के रूप में के नाम से प्रकाशित किये हैं। सरकार साहब ने अपने प्रारंभिक जीवन में एक प्रार्थना की रचना की थी तथा उसमें समयानुसार परिवर्तन करके उसको अपने एकमात्र साहित्यिक प्रकाशन 'प्रेम समाचार' में प्रकाशित करवाया था। सरकार साहब के दुर्बल स्वास्थ्य तथा लम्बी बीमारी ने उनको साहित्यिक रचना करने का अवसर ही नहीं दिया।

मुरार में सरकार साहब के मकान के आँगन में सत्संग का प्रबंध किया गया था। सरकार साहब ज्वर और फोड़े से पीड़ित थे, स्वास्थ्य में कोई सुधार नहीं हो रहा था। 6 दिसम्बर 1913 तक पवित्र पोथियों का अखण्ड पाठ होता रहा। 7 दिसम्बर 1913 ई. को प्रात:काल उन्होंने अपने नश्वर शरीर को त्याग दिया। [नि०गौ०]

काशी गद्दी

बुआजी साहिबा (श्रीमती माहेश्वरी देवी) के चार लड़कियां और छ: लड़के थे। सबसे बड़े पंडित आनन्द शंकर थे। यह फतहपुर के तहसीलदार थे। इन्हीं के पास बुआजी साहिबा जाया करती थीं। बुआजी साहिबा के दो लड़कों राजेन्द्रशंकर व अनुरागशंकर तिवारी (लाल जी) को बाबूजी महाराज में भाव था। वे बाबू जी महाराज को संत सतगुरु मानते थे। बुआजी साहिबा के तीसरे लड़के जोगेन्द्रशंकर को चश्मे वाले भैया कहते थे। बुआजी साहिबा के बाद वह खुद गुरु बन बैठे।

बुआजी साहिबा के शरीर त्याग देने पर इनकी प्रयाग गद्दी पर माधवप्रसाद सिंह (बाबूजी महाराज) बैठे परन्तु इनके पुत्र भैयाजी ने अपनी एक गद्दी काशी में भी चलाई। इनका जन्म संवत् 1939 को कार्तिक कृष्ण द्वितीया के दिन हुआ था। इनके के पिता का नाम पं. परमेश्वर दत्त तिवारी था। आपने किसी से भी दीक्षा ग्रहण नहीं की, अपितु कुछ दिनों तक स्वयं साधना में प्रवृत्त रहकर संवत् 1885 की बसंत पंचमी से एक स्वत: संत के रूप में अपने सत्संग का कार्य आरंभ कर दिया। आपने कई स्थानों पर रहकर अध्यापन कार्य किया था किन्तु धनोपार्जन की ओर कभी नहीं झुके। आपने दो पुस्तकें गद्य में तथा दो पद्य में लिखी हैं, जिनमें मुख्य क्रमश: 'सारभेद' व 'शब्दवानी' (2 भाग) हैं और इनकी गद्दी का नाम 'प्रेमाश्रम' करके प्रसिद्ध है। [नि०गौ०]

कृष्णबोधाश्रम महाराज

शंकराचार्य ज्योतिष पीठ श्रीकृष्णबोधाश्रम जी का जन्म सम्वत् 1949 सन् 1892 को ब्रज क्षेत्र की मांट तहसील के अन्तर्गत भाण्डीरवन के निकट छाहरी ग्राम के प्रतिष्ठित सनाढ्य ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम पं. टीकाराम तिवारी एवं माता का नाम श्रीमती जावित्री देवी था। इनके माता-पिता ने इनका नाम मदनमोहन रखा था। इनके पांच भाई और तीन बहनें थीं।

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा मांट के स्कूल में हुई। इसके पश्चात आपने मथुरा से हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की। तदुपरान्त आपने आगरा सेण्ट जान्स कालेज में उच्च शिक्षा हेतु प्रवेश लिया। उस समय बहुत अल्प छात्र ही उच्च शिक्षा के लिए कालेज जाते थे। उस समय कालेज के छात्रों पर अंग्रेजी शिक्षा एवं सभ्यता का पूर्ण प्रभाव था लेकिन आप भारतीय वेशभूषा 'बगलबन्दी' पहनकर ही जाते थे। कई बार अध्यापकों एवं सहपाठियों द्वारा आलोचना किये जाने पर भी आपने अपनी भारतीय वेशभूषा का त्याग नहीं किया। आगरा में पढ़ते समय वे सनाढ्य आश्रम आगरा के होस्टल

में रहते हुए दैनिक सन्ध्या वन्दन, गायत्री जप, बलिवैश्वदेव, पंचमहायज्ञादि करते थे।

जब आप सोलह वर्ष के थे तभी आपकी माताजी का देहान्त हो गया। आपके पिता जी ने 19 वर्ष की आयु में आपका विवाह कर दिया। जिस दिन इनकी पत्नी विदा होकर आईं उन्हें तीव्र ज्वर था। इनके साले ने कहा कि वह अपनी बहिन को स्वस्थ होने तक घर ले जाना चाहते हैं, ठीक होते ही वह स्वयं अपनी बहिन को ससुराल छोड़ जायेंगे। आपने ले जाने की आज्ञा प्रदान कर दी लेकिन इनकी पत्नी मायके में ही स्वर्गवासी हो गयीं। बस इतना-सा ही इनका गृहस्थ जीवन था। इसके बाद इनके घरवालों ने दूसरे विवाह के लिए दवाब बनाया लेकिन इन्होंने मना कर दिया और कहा कि जो गति पहली की हुई वही गति अन्य की होगी। इनके जवाब से नाराज होकर इनकी उच्च शिक्षा हेतु उन्होंने खर्च भेजना बन्द कर दिया।

आपके हृदय में जो वैराग्य हिलोरें मार रहा था, उसमें ज्वार आ गया। जुलाई 1913 के श्रावण मास में आपने गृहत्याग कर दिया और तीर्थभ्रमण के लिए निकल पड़े। तीर्थयात्रा करते हुए आपकी भेंट लावड़ (मेरठ) निवासी परम विद्वान तपस्वी दण्डी स्वामी श्री 1008 स्वामी चैतन्याश्रम महाराज के दर्शन हुए। उनके व्यक्तित्व एवं विद्वत्ता से प्रभावित होकर आपने उन्हें गुरु रूप में वरण किया और उनके सान्निध्य में वेदान्त के प्रमुख ग्रंथों का गम्भीर अध्ययन किया। उन्होंने भी प्रसन्न होकर आपको सम्पूर्ण विद्याओं का दान कर दिया। इस प्रकार पूर्ण अध्ययन करने के पश्चात आपने श्री स्वामी चैतन्याश्रम जी से सम्वत् 1973 ई. को संन्यास की दीक्षा ली और दण्ड ग्रहण किया। उस समय आपका नाम श्रीकृष्णबोधाश्रम रखा गया। आपकी आयु उस समय चौबीस वर्ष थी।

संन्यास दीक्षा लेने के पश्चात आप प्राय: गढ़मुक्तेश्वर एवं बागपत (मेरठ) में विचरते हुए साधनारत रहे तथा शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन किया। उन्हीं दिनों उत्तर भारत में श्री उड़िया बाबा एवं श्री करपात्री स्वामी महाराज की गणना प्रमुख संतों में थी। पूज्य उड़िया बाबा से आपका सम्पर्क वृन्दावन में अनेक बार हुआ। श्री स्वामी करपात्री जी महाराज से सम्वत् 1987 वि. सन् 1930 ई. में मेरठ के निकट 'गाधी' नामक स्थान में आपका परिचय हुआ। दोनों एक दूसरे से काफी प्रभावित हुए। इन दोनों का यह अटूट सम्बन्ध जीवन पर्यन्त रहा। श्री करपात्री जी को दिए वचनानुसार आपने सार्वजनिक धार्मिक कार्यों में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। सम्वत् 1998 वि. में अखिल भारतीय धर्मसंघ के प्रथम अधिवेशन में आपको संघ का आजीवन अध्यक्ष निर्वाचित किया गया। इसी समय से आपने नगर-नगर, ग्राम-ग्राम जाकर धर्मसंघ की स्थापना की।

सन् 1942 में जब स्वतन्त्रता हेतु राजनीतिक आन्दोलन प्रारम्भ हुआ और तब विदेशी शासकों ने हमारे नेतागणों को जेल में डाल दिया तब आपको दैवीय प्रेरणा हुई कि धार्मिक अनुष्ठानों से भारत को स्वतंत्रता मिल सकती है। तब आपने अखिल भारतीय धर्म-संघ के माध्यम से विभिन्न स्थानों पर जाकर जप, तप, पाठ, अनुष्ठानादि के साथ-साथ संस्कृत भाषा एवं स्वदेशी वेशभूषा पहनने के लिए प्रचार किया।

जब ब्रिटिश सरकार ने हिन्दू धर्म को आघात पहुँचाने के लिए 'हिन्दू लॉ कमेटी' का गठन किया जो कि 'उत्तराधिकार बिल' एवं हिन्दू विवाह व तलाक बिल का मसौदा तैयार कर रही थी। आपने इसे धर्म के क्षेत्र में हस्तक्षेप मानते हुए इसका विरोध किया। आजादी प्राप्त होने के पश्चात देश विभाजन होने के कारण उस समय की परिस्थितियाँ बड़ी भयंकर थीं परन्तु भारतीय सरकार 'हिन्दू कोड बिल' पास करने पर तुली हुई थी। तब महाराज जी ने 'हिन्दू कोड बिल' का विरोध करने का प्रमुख लक्ष्य बनाया और जन जागृति के लिए व्यापक रूप से प्रचार-प्रसार किया।

वैशाख शुक्ल सप्तमी सम्वत् 2010 विक्रमी (20 मई 1953 ई.) को ज्योतिष पीठाधीश्वर शंकराचार्य श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी सरस्वती महाराज का महानिर्वाण हो गया। उनके रिक्त स्थान पर उनके पद एवं प्रधान शिष्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज से पीठासीन होने के लिए सभी लोगों ने आग्रह किया परन्तु उन्होंने इसे अपने धर्म प्रचार कार्य में बाधा मानकर पद ग्रहण करने में असमर्थता व्यक्त की और पद हेतु स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रम का नाम प्रस्तावित किया।

सभी विद्वानों, दण्डी संन्यासियों एवं अनुयायियों ने सहर्ष स्वीकार किया। श्री करपात्री जी के विशेष आग्रह पर आपने ज्योतिष पीठाधीश्वर होना स्वीकार कर लिया। ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी सम्वत् 2010 को काशी में आपको ज्योतिष पीठ के शंकराचार्य पद पर अभिषिक्त किया गया। आपने पद ग्रहण करने के बाद स्पष्ट शब्दों में कहा "मैं-यथा पूर्व खादी के गैरिक वस्त्र ही धारण करता रहूंगा तथा चन्दन व स्वर्ण रजत चरण पादुकाओं के स्थान पर साधारण लकड़ी ही धारण करता रहूंगा।" आपने अपने वचनों को जीवन भर पूर्ण दृढ़ता के साथ निभाया। महाराज जी सिंहासन, छत्र, चमर, व्यजन व दण्डादि, धर्मालंकारों के यथासमय धारण करने के अतिरिक्त नितान्त सादी वेशभूषा में रहते थे।

महाराज जी ने अपने जीवन में गौ रक्षा हेतु सर्वाधिक प्रयत्न किया। शंकराचार्य पद ग्रहण करने से पूर्ण वे ग्राम-ग्राम, नगर-नगर गौपालन हेतु प्रचार करते थे। महारा जी ने गौवध बन्दी के लिए 28 अप्रैल 1946 को दिल्ली में आन्दोलन छेड़ा जिसमें 5000 धर्मवीर स्वयंसेवक जेल गये थे और 3 महात्माओं ने आत्मोसर्ग किया था। आजादी के पश्चात् 29 अगस्त 1947 को श्रीकृष्ण की जन्मभूमि मथुरा में गोवध बन्दी आन्दोलन छेड़ा गया जिसके अन्तर्गत उत्तरप्रदेश के 52 जिलों से गोवध-बन्दी प्रस्ताव पास किए गए। उन्होंने गोवध-बन्दी पूर्णतया पूरे देश में लागू कराने हेतु कई अभियानों में श्री स्वामी करपात्री जी महाराज को सहयोग प्रदान किया। सन् 1966 में महाराज जी ने अखिल भारतीय धर्मसंघ के तत्त्वावधान में गोरक्षा सम्मेलन का आयोजन किया। इस सम्मेलन में महाराज जी ने अपने प्राणों की बाजी लगाकर गौरक्षा का संकल्प लिया। इस आन्दोलन में श्री स्वामी करपात्री जी महाराज, गोवर्धन पीठ शंकराचार्य निरंजनदेवतीर्थ, श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, गुरु गोलवलकर जी, जैनमुनि श्री सुशील कुमार जी, श्री स्वामी गुरुचरण दास जी, श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार आदि महानुभावों ने महाराज जी के साथ सम्पूर्ण सहयोग प्रदान किया।

महाराज जी का सम्पूर्ण जीवन गौरक्षा, धर्मरक्षा एवं जनता को धर्म में रत करने हेतु प्रयासरत रहे। सन् 1973 में महाराज ने अपने जीवन लीला का संवरण करने का दृढ़ संकल्प लिया और चातुर्मास्य की भाद्रपद शुक्ला त्रयोदशी को सायं 7 बजे 81 वर्ष की आयु में शरीर त्याग दिया। कहते हैं कि ज्योतिषियों ने उनकी आयु 91 वर्ष बतायी थी परन्तु महाराज जी ने दस वर्ष के जीवन भोग्य जीवन के अंतिम दस दिनों में अपनी ज्ञानाग्नि से भस्म भोग कर अपनी जीवन लीला का संवरण कर लिया। [वि०प्र०उ०]

ग्वारिया बाबा

ग्वारिया बाबा का जन्म् सन् 1843 ई० के आस-पास हुआ था। इनके जन्म स्थान तथा इनके परिवार के विषय में जानकारी उपलब्ध नहीं है। दतिया रियासत के राजा से इनकी घनिष्ठ मित्रता थी। सन् 1912 ई० के आस-पास ये श्री धाम वृन्दावन में आकर ब्रह्मचारी श्री बिहारी दास जी के पास पधारे। गायन तथा वादन में ये निपुण थे। जो भी इनके पास गाना-बजाना सीखने आता उसी को सिखाते थे। इनके द्वारा रचित पुस्तक "संगीत ब्रह्म-संहिता सारावली" पुस्तक लिखी परन्तु उन्होंने पुस्तक के लेखक के रूप में अपने सखा "ब्रज राजकुमार" का नाम दिया। ग्वारिया बाबा भगवान श्री कृष्ण लीला के अनुयायी थे। कुछ भक्तों का कहना है कि ग्वारिया बाबा श्री कृष्ण भगवान से बात किया करते थे और कभी-कभी ऐसे वैराग्यमय हो जाते थे कि अपनी सारी बहुमूल्य वस्तुओं को यमुना में बहा देते थे, तो कभी यमुना जी की रेती में सो जाया करते थे। इनके दर्शन हेतु अनेकों स्त्रियाँ आया करती थीं। कुछ समय पश्चात् ये मथुरा चले गये। वहाँ भी स्त्रियाँ उनके दर्शन हेतु आने लगीं। वहाँ से पुन: वृन्दावन आ गये। कभी वृन्दावन तो कभी जयपुर; ऐसे ही चलता रहा। एक बार ये ग्वालियर गये, वहाँ राजमाता को इन्होंने संगीत सिखाया और राज भेष में ग्वालियर की पगडी पहनकर वहीं रहने लगे। ऐसी ही इनके जीवन में कुछ घटनाएँ घटित हुईं। अन्त में ये बिहारी दास जी की कुटिया में रहने लगे और सन् 1938 में यहीं जल समाधि में लीन हो गये। [जि० कु०]

गायत्री तपोभूमि के प्रमुख स्थान

गायत्री तपोभूमि-यह संस्थान एक संस्था एवं आश्रम के रूप में मथुरा से वृन्दावन जाने वाले मार्ग पर स्थित है। इस संस्था की स्थापना वैशाख पूर्णिमा 1953 को की गई। इस स्थान पर प्रथम बार 108 कुण्डीय गायत्री यज्ञ सन् 1953 में किया गया तथा सहस्रकुण्डीय विराट यज्ञ सन् 1958 में किया गया। उक्त संस्था में आचार्य श्रीराम शर्मा ने बसन्त पंचमी सन् 1955 से सवा साल का निरन्तर होने वाले यज्ञ प्रारम्भ किया। इसके अंतर्गत सरस्वती यज्ञ, रुद्र यज्ञ, महामृत्युंजय यज्ञ, विष्णु यज्ञ, ज्योतिष्टोम, अग्निष्टोम आदि यज्ञ किय गये।

इस सिद्धपीठ के प्रांगण में गायत्री माता के मन्दिर की स्थापना की गई है। निकट में महाकाल का विग्रह भी स्थित है। यहाँ शिवरात्रि पर अखण्ड रामायण पाठ तथा अन्य आयोजन किये जाते हैं। प्रात: से सायं तक अखण्ड गायत्री जप एवं यज्ञ की व्यवस्था है। गायत्री तपोभूमि के अंतर्गत वर्तमान युग के महर्षि श्रीराम शर्मा जी ने गायत्री विद्या, उपासना, साधना, आराधना आदि ग्रंथों का लेखन तथा प्रकाशन किया है।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय-शांतिकुंज हरिद्वार द्वारा ही इस विश्वविद्यालय का संचालन किया जाता है। आचार्य श्रीराम शर्मा तथा माता भगवती देवी ने इसका निर्माण सन् 1972 में कराया। इस विश्वविद्यालय में मन्त्र तथा योग विज्ञान को व्यावहारिक प्रयोग में लाने की शिक्षा दी जाती है। वैज्ञानिक, अध्यात्म एवं सर्वधर्म समभाव पर शोधपरक शिक्षण कार्य किया जाता है।

शांतिकुंज, हरिद्वार-20 जून 1971 के दिन हरिद्वार-ऋषिकेश मार्ग में शांतिकुंज आश्रम का शिलान्यास किया गया। यह संस्था हरिद्वार स्टेशन से 6 कि.मी. दूर है। आचार्य श्रीराम शर्मा एवं उनकी धर्मपत्नी भगवती देवी के प्रचंड तप के कारण यह आश्रम पुष्पित-पल्लवित हुआ है। यहां पर गायत्री माता का सुन्दर मंदिर है तथा सप्त ऋषियों के सुन्दर विग्रह स्थापित किये गये हैं। इस शांतिकुंज के निकट आचार्य श्रीराम शर्मा तथा माता भगवती देवी ने मां गायत्री की 24 शक्ति धाराओं के विग्रह स्थापित किये हैं। [गो०प्र०पा०]

गुरुप्रसाद (कुंवर जी)

20 सितम्बर सन् 1885 को 'हजूरी भवन' के आध्यात्मिक वातावरण में राधास्वामी मत के चौथे आचार्य गुरु प्रसाद जी, कालांतर में कुंवर जी महाराज के नाम से लोकप्रिय, का अवतरण हुआ। सनातन हिन्दू धर्म की संकीर्णता, पुरोहितवाद, मिथ्या परम्पराओं के प्रति आग्रह, अंधविश्वास एवं बहुदेववाद की सांकलों में जकड़े एवं मुगलों तथा अंग्रेजों की दासता की मानसिकता को अपना चुके, बहुसंख्यक हिन्दू समाज में प्रतिक्रियास्वरूप उदित अनेक मतों एवं सम्प्रदायों में स्वामी जी महाराज (प्रथम आचार्य-राधा स्वामी मत) द्वारा स्थापित राधास्वामी मत कुंवर जी महाराज के जन्म से पूर्व ही न केवल पूर्णतया प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका था वरन् पूरी तरह आध्यात्मिक जागरूकता का प्रणेता भी बन चुका था ।

मत के संस्थापक स्वामी जी महाराज द्वारा राधा स्वामी मत के अनुयायियों के लिये आवश्यक मान्य आचार-संहिता के रूप में गुरुभक्ति एवं शब्द योग के आधार पर विकसित राधास्वामी मत हजूर महाराज के द्वारा संपूर्ण मानव जाति के लिये प्रकाश स्तंभ के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। हजूर महाराज ने दो अनिवार्यताओं गुरु भक्ति एवं शब्द योग को विश्लेषणात्मक विस्तार देकर उसे सत शब्द (कुल मालिक या परम आत्मा में कम्पन के संग उठने वाली शक्तिधारा अथवा निराकार सार तत्व जिसे आंतरिक अभ्यास से सुना जा सकता है, सतगुरु (कुल मालिक अर्थात् परमात्मा का प्रतिनिधि) जो प्रेम है, प्रकाश है, सत्य है और जो संसार में सदा उपस्थित रहता है। सत-अनुराग (एकनिष्ठ प्रेम) एवं सत्संग (सतगुरु का संग) इन 4 रूपों में परिभाषित किया। तृतीय आचार्य परम पुरुष पूरनधनी लालाजी महाराज ने भौतिक प्रवृत्तियों का सत्संग में निषेध एवं प्रतिद्वन्द्विता तथा विवाद-मुक्त जीवन जीने को इसमें जोड़कर इसके

आध्यात्मिक स्वरूप को और भी सुदृढ़ किया। ऐसी आध्यात्मिक विरासत को कुंवर जी महाराज ने बखूबी संभाला और लगभग 33 वर्षों तक राधास्वामी मत के अनुयायियों को प्रेम, रस आध्यात्मिक चिन्तन एवं परम-सत्ता के सान्निध्य के एहसास से सराबोर रखा ।

कुँवर जी महाराज का नाम बेशक गुरु प्रसाद था किन्तु हजूर महाराज उनके अत्यन्त सरल एवं मासूम व्यवहार को देखकर उन्हें मेरा भोला कुंवर कहकर पुकारते थे। उनका स्वरूप ही कुछ ऐसा था कि उनके बालरूप के प्रति भी सम्मान का भाव स्वत: ही हृदय में प्रस्फुटित होने लगता था। सम्भवत: इसी कारण समस्त सत्संगी उन्हें कुंवर जी साहेब कहकर संबोधित करते थे और लालाजी महाराज के दरबार में हाजिर होने वाले सत्संगी उन्हें जनाब भाई साहब कहकर सम्मान देते थे। लाला जी महाराज के निजधाम जाने के उपरान्त सत्संगी उन्हें 'महाराज' एवं 'साहेब दाता दयाल' के नाम से सम्मान देने लगे। इसी से यह स्पष्ट होता है कि उनके व्यक्तित्व में आध्यात्मिक आभा बचपन से ही दृष्टिगोचर होने लगी थी। परमार्थ के प्रति उनका झुकाव इस सीमा तक था कि सामान्य बच्चों के झुकाव के विपरीत उनका मन खेलकूद में न रमकर हजूर साहब के सान्निध्य में रमता था। हजूर साहब के साथ उनके खेल भी आध्यात्मिक थे। बाबाजी आरती बनाइये कहकर वह कभी भी किसी की भी आरती हजूर साहब से बनवा लेते थे।

तत्कालीन परंपरानुसार उर्दू, फारसी, अंग्रेजी भाषा एवं साहित्य का विशद ज्ञान कुंवर जी साहेब ने प्राप्त किया किन्तु न तो उन्होंने कोई नौकरी की न ही व्यवसाय में ही उनका मन रमा। सच भी है जिसका मन परमार्थ की ओर बचपन से ही झुका हो उसे सांसारिकता में भला क्या रुचि हो सकती है। हाँ प्रकृति और प्रकृति के निश्छल पशु-पक्षियों से वे अवश्य अत्यन्त प्रेम करते थे। यही कारण था कि हजूरी भवन में पशु-पक्षियों को स्थान भी मिला और साहेब के प्रेम की छांव भी।

सन् 1898 में कुंवर जी साहेब का विवाह एक प्रतिष्ठित माथुर कायस्थ परिवार में हुआ और उन्हें दो पुत्र रत्न भी प्राप्त हुए प्रेम प्रसाद एवं आनंद प्रसाद। हजूर महाराज के आध्यात्मिक सान्निध्य एवं प्रेम ने उनके अन्दर के प्रकाश को प्रकाश-पुंज के रूप में परिवर्तित किया किन्तु जब कुंवर जी साहेब मात्र 13 वर्ष के थे तभी हजूर महाराज निजलोक को चले गये। लाला जी महाराज ने हजूर महाराज के स्थान पर राधास्वामी मत के आचार्य पद का दायित्व वहन करने के साथ-साथ कुंवर जी साहेब के हृदय में आलोकित प्रकाश-पुन्ज को निरन्तर ज्योतित करने का दायित्व भी मन ही मन स्वीकार कर लिया। आध्यात्मिक विषयों पर पिता-पुत्र में अक्सर ही गहन चर्चा हो जाती थी।

सन् 1926 में लाला जी महाराज के निजधाम जाने पर कुंवर जी साहेब ने राधास्वामी मत के चौथे आचार्य के पद का दायित्व अत्यन्त स्वाभाविक रूप से न केवल स्वीकार किया वरन् राधा स्वामी मत के अनुयायियों के मार्गदर्शक के रूप में उन्होंने अपने पिता एवं दादाजी की परम्परा को कायम रखा।

27 फरवरी सन् 1959 को उन्होंने भजनमुद्रा में ही देह त्याग दी। सन् 1960 में 5वें आचार्य प्रो. अगम प्रसाद माथुर(दादाश्री महाराज) द्वारा उनकी समाधि का निर्माण हजूरी भवन में ही कराया गया और पवित्र रज की स्थापना की गई। तृतीय आचार्य लाला जी महाराज की समाधि के निकट सफेद संगमरमर से निर्मित यह अष्टकोणीय स्मारक और सुंदर पच्चीकारी युक्त इसका चबूतरा दर्शनीय है।

राधास्वामी मत के पांचवें आचार्य के पद पर कुंवर जी महाराज के पौत्र (पुत्र श्री आनन्द प्रसाद साहेब) प्रो. अगम प्रसाद माथुर उर्फ दादा जी महाराज प्रतिष्ठित हुए। श्रेष्ठ शोधकर्ता, कुशल शिक्षक, निरपेक्ष इतिहासकार एवं लोकप्रिय एवं समर्थ कुलपति आगरा (जब डॉ. अम्बेडकर) विश्वविद्यालय के रूप में विराट व्यक्तित्व एवं विशद कृतित्व के स्वामी (दो बार कुलपति का भार सम्भालने वाले सन् 1982 एवं सन् 1988) दादाजी महाराज ने सन् 1959 में कुंवर जी महाराज के निज धाम सिधारने पर उन्हीं के दैनिक कार्यक्रम का अनुसरण करते हुए राधास्वामी मत के पंचम आचार्य पद को स्वयं को अर्पित कर विश्व स्तर पर मत के विचारों को प्रतिष्ठित किया।

वर्तमान समय में प्रो. माथुर की अध्यक्षता में हजूरी भवन में नव-वर्ष, वसंत, होली, गुरुपूर्णिमा, जन्माष्टमी, दीपावली जैसे सनातन पर्वों के आयोजन के साथ-साथ हजूर महाराज, लालाजी महाराज, कुंवर जी महाराज, स्वामीजी महाराज के भंडारे एवं दादाजी महाराज सतगुरु जन्मोत्सव कार्यक्रम भी आयोजित किये जाते हैं। 25 दिसम्बर से नववर्ष स्वागत तक आयोजित हजूरी सप्ताह हजूरी भवन का विशालतम आध्यात्मिक आकर्षण माना जाता है।

[सु०स०]

गोपाल आश्रम

उदासीन कार्ष्णि गुरू श्री गोपाल आश्रम सुविख्यात रंगेश्वर महादेव मंदिर के सन्निकट उनके बायें पार्श्व में रंगेश्वर गली के किनारे अवस्थित है। रंगेश्वर गली के एक किनारे बायीं ओर यह आश्रम है तो इसके सामने ही दूसरे किनारे पर कंस टीला है। कार्ष्णि गुरु श्री हरिनामदास जी महाराज रंगेश्वर मंदिर के निकट खाली पड़े स्थान पर कुटिया बनाकर रहने लगे। यहीं रहते हुए महाराज जी ने रंगेश्वर मंदिर के निकट इस आश्रम के सन् 1958 ई. में स्थापना की और भक्तजनों के सहयोग से इसे निर्मित कराया।

गोपाल आश्रम के मंदिर में ठाकुर श्रीकृष्ण-बलराम की दिव्य मूर्ति विराजमान है। श्री हरिनामदास जी ने इस मंदिर में श्रीकृष्ण-बलदेव जी के विग्रह की स्थापना 26 जनवरी 1964 ई. में कराई थी। इस मंदिर में दर्शनों की चार-चार झाँकियाँ प्रात: और सायंकाल होती हैं। हिन्दू मान्यता के अनुसार इस आश्रम के मंदिर का स्थापना दिवस माघ शुक्ल पक्ष में पड़ता है। अतएव इसका पाटोत्सव त्रिदिवसीय माघ शुक्ल दसवीं से द्वादशी तक सम्पन्न होता है।

यह आश्रम ब्रज की प्रमुख एवं प्रसिद्ध तपस्थली उदासीन कार्ष्णि गुरु रमणरेती धाम, महावन की एक निकटवर्ती शाखा है। यहाँ भी सेवा प्रकल्प को ध्यान में रखते हुए प्रतिदिन मध्याह्न एव सायंकाल नि:शुल्क भोजन प्रसाद वितरित किया जाता है। श्री गोपाल आश्रम रमणरेती, महावन के विशाल आश्रम की एक श्रृंखला के रूप में सेवारत है।

[ता०चं०श०]

गोपीश्वरशरण देवाचार्य

जयपुर मंडलांतर्गत हस्तेड़ा ग्राम में गौड़ ब्राह्मण कुल में आचार्यश्री गोपीश्वरशरण देवाचार्य जी का जन्म हुआ। आपकी ख्याति त्यागी, तपोनिष्ठ, धर्मनिष्ठ एवं परम यशस्वी आचार्य के रूप में विद्यमान थी। श्री ब्रजराजशरण देवाचार्य जी के उत्तराधिकार में आपने वि.सं. 1900 से 1928 तक आचार्यपीठ को अलंकृत किया। श्री गोपीश्वरशरण देवाचार्य जी अधिकांश जयपुर में ही विराजते थे। उस समय जयपुर पर सवाई रामसिंह जी शासन करते थे। वे अनन्य वैष्णव और आचार्यश्री के प्रति निष्ठावान थे। किन्तु शनै:-शनै: उनका झुकाव और श्रद्धा कतिपय तांत्रिकों के जाल में फँसकर शैव मत में अधिकतम प्रगाढ़ हो गई। इसी प्रभाव में उन्होंने वैष्णव मत की अवहेलना तक प्रारंभ कर दी। उनका हठ इतना पुष्ट था कि एक दिन उन्होंने स्वयं आचार्यश्री से रुद्राक्ष-भस्म आदि को स्वीकार करने का प्रार्थना कर डाली। इस पर आचार्यश्री ने उन्हें बहुत समझाया कि ये वस्तुएं भगवान आशुतोष की पूजा में परमोपयोगी हैं किन्तु प्रत्येक देवता के लिए विहित सामग्री से ही उक्त देव की आराधना करनी चाहिए। जैसे भगवान राम और कृष्ण की पूजा में तुलसीदल ही ग्राह्य है। किन्तु फिर भी राजा ने अपने राजहठ को कृतार्थ करने की बात कही। इस पर आचार्यश्री ने उनसे कह दिया कि आप सोचते हैं कि हम आपकी कृपा पर ही ही निर्भर हैं, सारी दिशाएं सर्वेश्वर प्रभु की जागीर हैं। हमारे आराध्य जहां विराजेंगे उधर से ही समस्त आनन्द मंगल होंगे। राजा को काशी के मूर्धन्य विद्वान शैव और वैष्णव विद्वानों ने भी इस हठ को छोड़ने की सलाह दी किन्तु फिर भी राजा के न मानने पर आचार्यश्री ने जयपुर को छोड़ने का निश्चय कर लिया। इस कार्य में अन्य वैष्णव सम्प्रदायों की पूर्ण सम्मति थी। इससे पूर्व शैव और वैष्णवों के मध्य श्रेष्ठता का शास्त्रार्थ चला। शैव मतवादियों की ओर से वैष्णवों को 64 प्रश्नों की एक प्रश्नावली दी गई, जिसका समाधान वैष्णवों द्वारा किए जाने के बावजूद राजा का हठ न टूटने पर एक दिन अचानक श्रीजी

गोपीश्वरशरण देवाचार्य जी जयपुर छोड़कर चले दिए। यह प्रश्नावली अद्यावधि आचार्यपीठ में संरक्षित है।

जब राजा को यह सूचना मिली तो अकेले ही घोड़े पर आचार्यश्री को रोकने के लिए दौड़ पड़े किन्तु कई मील तक आचार्यश्री के दृष्टिगोचर न होने पर और मंत्रियों द्वारा लौटने कीं बात समझाने पर राजा पुन: जयपुर आ गए। धीरे-धीरे श्रीजी मंदिर के अधिकारी तथा कर्मचारी भी आचार्यपीठ बुला लिए गए। एक बार राजा रामसिंह आचार्यपीठ पहुंचे किन्तु आचार्यश्री के जोधपुर राज्य में होने के चलते उनसे भेंट न हो सकी। आचार्यश्री को जयपुर से इतनी घृणा हो गई कि कोई जयपुर का नाम भी लेता था तो उन्हें सुखद नहीं लगता था। वहीं दूसरी ओर गोकुल चंद्रमा जी कामवन में पधार गए और मदनमोहन जी करौली राज्य में चले गए। उस समय आचार्यपीठ में कर्मचारी तथा साधु-संतों की संख्या 300 के आसपास हुआ करती थी। दो वर्ष अकाल के हालात भी रहे। आर्थिक समस्या के काल में राजा साहब ने अपना राज्य श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा में पट्टा कर दिया। जब आचार्यश्री ने इसे पढ़ा तो राजा को बहुत समझाया किन्तु उनके फिर भी न मानने पर उन्होंने आदेश दिया कि इस सम्पत्ति से अपनी प्रजा का ही पालन करें जो स्वयं भी सर्वेश्वर प्रभु का परिवार है। केवल 200 रुपये प्रतिवर्ष आचार्यपीठ की सेवा में देते रहें। इस आदेश का स्वतंत्रता प्राप्ति तक निर्वाध पालन होता रहा। इस कुल के राजाओं का भक्तिपूर्ण उच्चादर्श अनुकरणीय है। श्री अनूप कुमारी जी आदि इसी कुल की स्त्रियों का भक्तिपूर्ण साहित्य आचार्यपीठ में दृष्टिगोचर होता है। आचार्यश्री के त्याग, तप और निष्ठा का यह भावनापूर्ण प्रसंग समस्त वैष्णवों की कीर्ति को उज्ज्वल करने वाला है।

आचार्यश्री के विषय में प्रसिद्ध है कि जब वे तीर्थयात्रा को निकलते थे तो हाथी, घोड़े, पालकी, ऊंट, रथ और सर्वेश्वर प्रभु के अभिषेक के निमित्त गोधन उनके साथ चलता था। किन्तु आचार्यश्री स्वयं श्रीसर्वेश्वर प्रभु को गले में धारण कर श्रीराधासर्वेश्वर की वाङ्मय मूर्ति को हाथी पर विराजमान कर स्वयं पैदल यात्रा करते थे। आचार्यश्री के ऐसे उज्ज्वल प्रसंगों ने उनके यश का चहुंओर विस्तार किया।

श्री गोपीश्वरशरण देवाचार्य जी की चरण पादुकाएं आचार्यपीठ में संसेवित हैं तथा इनका पाटोत्सव माघ कृष्ण दशमी को मनाया जाता है।

[कुं०बि०श०]

गौड़ीय मठ

यह मठ सुप्रसिद्ध होली दरवाजा और कंस टीला के दक्षिण तथा प्रख्यात रंगेश्वर महादेव मंदिर के दक्षिण-पश्चिम में है। यह मठ तीन मंजिले भवन में है। श्री गौड़ीय वेदान्त समिति के प्रतिष्ठाता सभापति श्री श्रील आचार्य देव गुरु महाराज सन् 1954 ई. के कार्तिक मास में चौरासी कोस ब्रजमण्डल की परिक्रमा करने अपने अनगुतजनों के साथ यहाँ आए तो कुछ दिन मथुरा में ही रहे। श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा आचरित एवं प्रचारित शुद्ध भक्ति का प्रचार करना चाहा। एतदर्थ वे उपयुक्त स्थान की खोज करते हुए मुख्य बाजार के मध्य वर्तमान मठ के स्थान पर पहुंचे, जहाँ ईंट-पत्थरों से निर्मित जीर्ण-शीर्ण पुरानी धर्मशाला को देखा जिसमें एक बड़े हॉल सहित छत्तीस कमरे थे। उपयुक्त स्थान होने से उसे खरीदकर वहाँ पर 13 दिसम्बर 1954 ई. में जगद्गुरु विष्णुपाद श्री भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद के विरह तिथि के दिन श्रील गुरु महाराज ने श्री केशव जी गौड़ीय मठ की स्थापना की।

मथुरा स्थित इस केशवदेव गौड़ीय मठ में 3 नवम्बर 1956 ई. को श्री गोवर्धन पूजा एवं अन्नकूट महोत्सव के दिन श्रील आचार्यदेव ने तदीय आराध्य श्री गुरु गौरांग राधा-विनोद बिहारी के विग्रह की प्राण प्रतिष्ठा कर स्थापित किया। होली के गौर पूर्णिमा के दिन मठ में गौरांग महाप्रभु का आविर्भाव दिवस मनाया जाता है। गौड़ीय मठ एक प्रसिद्ध दर्शनीय स्थल है। यह श्री गौड़ीय वेदान्त समिति का एक प्रमुख शाखा मठ है जो वर्तमान में पश्चिमी भारत का प्रचार केन्द्र है।

मठ के मुख्य द्वार के दोनों ओर हाथी पर विराजे शेर पापापराध पर चेतनता के प्रतीक हैं तो नृत्य करता मृदंग बजाते

भक्त कलियुग में हरिनाम संकीर्तन की महिमा के सूचक हैं तथा शिखर पर विराजित नृसिंह भगवान की मूर्ति समस्त विघ्नों को हरने वाली है। [ता०चं०श०]

घनश्याम शरण देवाचार्य

गुरुदेव श्री गोपीश्वरशरण देवाचार्य जी के वंश में ही जयपुर मंडलांतर्गत हस्तेड़ा गांव में ही श्री घनश्यामशरण देवाचार्य जी का जन्म हुआ। वि.सं. 1928 से 1963 तक आचार्यश्री निंबार्काचार्य पीठासीन रहे। आचार्यश्री पूर्ण वैभव संपन्न होते हुए भी अत्यंत सरल, सौम्य, शांत, समदर्शी और कृपालु थे। भगवद सेवा, चिंत्तन और कीर्तन में निरंतर निमग्न रहना ही इनके जीवन का एकमात्र व्रत था।

एक बार आचार्य पीठ के निकट रहने वाले मालाराम चाड़ (गूजर) पर कृपा करने हेतु आचार्यश्री उसके घर पधारे। जिनकी पधरावनी कर जोधपुर, बीकानेर, बूंदी आदि राज्य भी कृतार्थ अनुभव करते थे। उनका आगमन का मालाराम के जीवन का सबसे अमूल्य-अविस्मरणीय पल था। मालाराम के एक विधवा पुत्री के अतिरिक्त कोई संतान नहीं थी। आचार्यश्री ने कृपापूर्वक उसे 7 पुत्रों का वचन दे दिया। श्रीसर्वेश्वर प्रभु की अनुकंपा से उसके सात संतानें हुईं। आज भी मालाराम गुर्जर के वंशजों का पूरा-पूरा गाँव मोतीपुरा के नाम से प्रसिद्ध है। सभी धन-संतान संपन्न और आचार्यपीठ के प्रति पूर्ण श्रद्धा समर्पित हैं। आचार्य श्री के प्रभाव को आज भी इस वंश में प्रत्यक्ष देखा जाता है कि कोई भी नि:संतान नहीं होता और जिसके भी सात पुत्र हुए उसके एक बेटी जरूर होगी और वह विधवा भी अवश्य ही होगी।

इसी प्रकार पीसोगण राजा ने पुत्र कामना पूर्ण होने पर आचार्यपीठ पर भव्य मनोरथ संपन्न कराया था अैर रथ तथा पालकी आचार्यपीठ को भेंट की थीं, जो आज भी पीठ में विद्यमान हैं। आचार्यश्री की वाक्सिद्धि और कृपा प्रसाद के ऐसे अनेकों उदाहरण प्राप्त होते हैं। एक बार रिड़ के राठी परिवार ने आचार्यश्री की पधरावनी फलदार चांदी के दस हजार रुपयों के सिंहासन पर विराजमान कर की थी। आचार्यश्री ने उन रुपयों से भगवान श्रीराधामाधव जी का विशाल सिंहासन बनवाया, जिस पर आराध्य विग्रह आज भी विराजमान है। आचार्यश्री की चरणपादुकाएँ आचार्यपीठ में ही विद्यमान हैं। इनका पाटोत्सव आश्विन कृष्ण षष्ठी को मनाया जाता है। [कुं०बि०श०]

चतुर्भुज सहाय

संसार में समय-समय पर अनेक विभूतियों ने जन्म लिया है। ऐसे ही भारत के एक महान संत योगी पुरुष डॉ. चतुर्भुज सहाय जी का जन्म गंगा-यमुना की पावन भूमि एटा के अन्तर्गत चमकरी नामक गांव में कार्तिक शुक्ला चतुर्थी वि.सं. 1940 सन् 03 नवम्बर 1883 ई. में हुआ था। चमकरी गांव में आपके पूर्वजों की बड़ी प्रतिष्ठा थी। यवनकाल में उन्हें एक जायदाद दानस्वरूप मिली थी। चतुर्भुज जी के पिताजी का नाम श्री लालाप्रसाद था। आपके माता-पिता दोनों ही धार्मिक प्रवृत्ति के थे। घर में विद्वानों तथा ब्राह्मणों का आना-जाना लगा रहता था। चातुर्मास में श्रीमद्भागवत या किसी पुराण-उपनिषद् की कथा होती रहती थी। इसलिए आपमें बाल्यकाल से ही संस्कारों का विकास होने लगा था। बाल्यकाल में आपको कथा एवं धार्मिक कहानियाँ सुनने का बड़ा शौक था, जब कोई विद्वान कथा कहते तो आप अत्यंत समीप बैठकर ध्यान से सुनते थे। आपकी माता ही बाल्यकाल में आपकी धार्मिक प्रेरणा का स्रोत थीं। 4 वर्ष की अवस्था में आपकी मां का स्वर्गवास हो गया। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही शुरू हुई। उस समय फारसी और अंग्रेजी का अधिक प्रसार था इसलिए एक मौलवी साहब को पढ़ाने के लिए नियत किया गया। परन्तु जितनी रुचि आपको हिन्दी और संस्कृत में थी, ऊर्दू तथा अंग्रेजी में नहीं थी। प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त होते ही आपको एटा हाईस्कूल में प्रवेश दिला दिया गया। विद्याध्ययन के बाद आपके मन में यह अभिलाषा हुई कि किसी प्रकार देश का कुछ सुधार हो। आगे चलकर आपको अपनी ननिहाल फतेहगढ़ (फर्रुखाबाद) जाना पड़ा। वहीं पर आपने एलोपैथिक तथा

होम्योपैथी का ज्ञान प्राप्त किया। आपके पिता को आयुर्वेदिक चिकित्सा का अच्छा ज्ञान था। अत: आपको आयुर्वेद का भी अच्छा ज्ञान हो गया। यह सब सीख कर आपने देश सेवा करने का विचार किया।

फतेहगढ़ गंगा के तट पर होने के कारण वहां महात्माओं से मिलना-जुलना रहता था। एक दिन अचानक गुरु महाराज महात्मा श्री रामचन्द्र जी के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन दिनों ये फतेहगढ़ में थे। उन दिनों गुरु महाराज अलीगढ़ तहसील से बदलकर फतेहगढ़ आये थे। इलाज कराने के बहाने उनसे मुलाकात हुई। वह उच्च कोटि के महात्मा थे। गुरु जी की आज्ञा पाकर आपने अपना समस्त जीवन प्रचार कार्य में लगा दिया। भ्रमण का आपको सदैव से शौक था। आपने सोचा कि यह काम जितना पहले पुस्तकों तथा पत्रों द्वारा होगा उतना घूमने से नहीं। इसलिए आपने पहले कुछ छोटी-छोटी पुस्तकें तैयार कीं उनमें से पहली पुस्तक भक्त तुकाराम, दूसरी सहजोबाई और तीसरी आमनदेवी थी जो दो भागों में प्रकाशित की। एक छोटी-सी पुस्तक उर्दू में भी लिखी जिसका नाम 'इरशादात' था। एक पुस्तक मुख्यतया सत्संगियों के लिए लिखी जिसका नाम 'अभ्यासियों का कर्तव्य' था।

ऐसे महामानव का महाप्रयाण 24 सितम्बर 1957 को मथुरा में अपने आवास पर हुआ। आज भी अमेरिका एवं अफ्रीका जैसे देशों में उनके विचार लेखों के रूप में समय-समय पर प्रकाशित होते रहते हैं। [कृ०उ०]

जगद् गुरु श्री कृपालु महाराज

कृपालु महाराज का जन्म अक्टूबर सन् 1922 ई० में शरद पूर्णिमा की रात उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ जिले के मनगढ़ नामक ग्राम के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनका विवाह पद्मा नामक स्त्री के साथ हुआ। इनके दो पुत्र और तीन पुत्रियाँ हुईं। जगद्गुरु कृपालु जी महाराज वर्तमान काल के पाँचवें मूल जगद्गुरु माने जाते हैं। भारतीय इतिहास में इनसे पहले लगभग तीन हजार वर्ष में चार मांगलिक जगद्गुरु हो चुके हैं।

14 जनवरी सन् 1957 ई० को लगभग 35 वर्ष की आयु में इन्हें काशी विद्वत परिषद द्वारा ''जगद्गुरूत्तम'' की उपाधि से विभूषित किया था। कृपालु महाराज ऐसे पहले जगद्गुरु हैं जिनका न कोई गुरु है और न कोई शिष्य है। इन्होंने पूरे विश्व में राधा-कृष्ण की माधुर्य भक्ति का सबसे अधिक प्रचार-प्रसार किया था। इन्होंने वृन्दावन में 'प्रेम मंदिर' एवं बरसाना में 'रंगीली महल' का निर्माण कराया। 15 नवम्बर सन् 2013 ई. को गुड़गाँव के फोर्टिस अस्पताल में इनका गोलोकवास हो गया था। [जि०कु०]

जीवनदत्त महाराज (नरवर वाले)

श्री जीवनदत्त जी का जन्म संवत् 1934 वि. की आश्विन शुक्ल पंचमी को अलीगढ़ नगर के कटरा मुहल्ले में हुआ था। इनके पिता का नाम पं. रामप्रसाद जी जो कि वैद्य थे। उन्होंने आर्यसमाज की स्थापनाकर्ता स्वामी दयानन्द के प्रज्ञाचक्षु गुरु स्वामी ब्रजानन्द से मथुरा में रहकर अष्टाध्यायी महाभाष्य एवं काव्यादि का अध्ययन किया था। इनके पिता ने इनका नाम जीवनकिशोर रखा था जिसे स्वयं महाराज जी ने जीवनदत्त में परिवर्तित कर लिया था। श्री जीवनदत्त जी को उनके शिष्य एवं भक्तगण 'महाराज जी' कहकर पुकारते थे परन्तु वे स्वयं को ब्रह्मचारी कहलाना पसंद करते थे।

जब महाराज जी पांच वर्ष के हुए तो उनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। महाराज जी के अध्ययन के पीछे की एक घटना का उल्लेख आवश्यक है। यह घटना संवत् 1939 के आसपास की है। स्वामी दयानन्द जी एवं महाराज जी के पिता गुरु भाई होने के कारण एक दूसरे से परिचित थे। एक बार वे गंगा किनारे कर्णवास में निवास कर रहे थे। यह सूचना महाराज जी के पिता वैद्य जी को प्राप्त हुई वे उनसे भेंट करने अपने पुत्र जीवनदत्त को लेकर चल पड़े। वैद्य जी ने अपने पुत्र को स्वामी जी के चरणों में प्रस्तुत किया। स्वामी जी ने बालक के सिर पर हाथ फेरते हुए वैद्य जी से कहा

कि इसे आर्ष ग्रंथों का अध्ययन कराना एवं पच्चीस वर्ष की अवस्था तक इसका विवाह न करना। स्वामी जी के इस आशीर्वाद से महाराज जी का जीवन पथ निर्दिष्ट हो गया और गुरुकुल परिपाटी से आर्ष ग्रंथों के अध्ययन और पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचारी रहने की पूज्य पिता जी से आज्ञा प्राप्त हो गयी। यज्ञोपवीत संस्कार के बाद पं. प्रसादी लाल जिन्होंने उनका यज्ञोपवीत संस्कार कराया था उससे ही संस्कृत का अध्ययन प्रारम्भ किया गया। यह अध्ययन अलीगढ़ में कई वर्षों तक चलता रहा। अलीगढ़ में जब वे नौ वर्ष के हुए तो उनकी पूज्य माताजी का देहावसान हो गया।

महाराज जी ने अपने प्रथम यज्ञोपवीत संस्कार से संतुष्ट न होकर अलीगढ़ के खाई डोरा निवासी गुजराती ब्राह्मण शुक्ल जी से पुनः संस्कार कराया। यह शुक्ल परिवार अपने आचार-विचार एवं कर्मकाण्ड के लिए प्रसिद्ध था। इसके बाद आप अपने सहपाठी नारायणदत्त के साथ खुर्जा अध्ययन के लिए आ गये। तब खुर्जा अपने संस्कृत अध्ययन के लिए प्रसिद्ध था। यहाँ इन्होंने पं. हजारी लाल से प्रारम्भिक संस्कृत ग्रंथों का अध्ययन किया। आप यहाँ लगभग तीन वर्ष रहे। यहाँ से पं. हरनारायण शास्त्री की कीर्ति सुनकर आप खुर्जा के छोटे से गाँव नैथला चले गये। वहाँ दो वर्ष रहकर अध्ययन किया। इसके बाद उन्होंने संस्कृत के उच्च अध्ययन के लिए अपने मित्र पं. नारायणदत्त के साथ काशी जाकर अध्ययन करने का निश्चय किया। काशी जाकर वहाँ के विद्वानों के सिद्धान्तेतर वैमत्य से आहत होकर उन्होंने इटावा जाने का निर्णय किया। उन दिनों इटावा में पं. भीमसेन विराजमान थे। उन्हें वेद ज्ञान में गुरु बृहस्पति के समान माना जाता था। कलकत्ता विश्वविद्यालय के अधिकारियों के विशेष आग्रह पर विश्वविद्यालय के वेद विभाग के अध्यक्ष पद पर पाँच वर्षों तक रहे। वहाँ पाँच वर्षों तक वेदाध्ययन उनके सान्निध्य में रहकर किया। यहाँ की एक घटना महाराज जी के नियम पालन में दृढ़ता का परिचय देती है। आपने निश्चय किया था कि बिना सिले वस्त्र पहनेंगे। पाठशाला में प्रति रविवार छात्र सभा होती थी। उसमें पाठशाला के प्रधानमंत्री एवं सदस्य उपस्थित होते थे। एक समय आप उस सभा में कटि वस्त्र पहने और उत्तरीय ओढ़े सभा में उपस्थित हुए। मंत्री महोदय ने इनकी वेशभूषा पर डाँटकर पूर्ण वस्त्रों में आने के लिए कहा परन्तु आपने सभा में आना बन्द कर दिया। एक दिन मंत्री महोदय ने पूछा वह छात्र सभा में दिखायी नहीं पड़ता तब उनके सहपाठी ने कहा कि ''उनका नियम बिना सिला वस्त्र पहनने का है, सभा का नियम भंग न हो इस कारण वह नहीं आते।'' मंत्री महोदय ने आपको आग्रहपूर्वक बुलाया। आपने वेशभूषा पर एक व्याख्यान दिया जिससे प्रभावित होकर मंत्री महोदय ने सभा में सभी छात्रों को इसी वेशभूषा में आने के लिए आदेश दिया।

इटावा से अध्ययन समाप्त करके अपने पिताजी से अनुमति लेकर ऋषिकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर चले गये। वहाँ पर पं. गंगादत्त शास्त्री के साथ नवाह्निक महाभाष्य पढ़ा। पाँच वर्ष अध्ययन कर महाराज जी अपने पिता जी के पास लौट आये। तब तक आपकी आयु पच्चीस वर्ष हो चुकी थी। आपके सम्बन्ध हेतु कुछ लोग आने लगे थे। आपके पिताजी की इच्छा थी कि आप विवाह कर लें परन्तु आपने विनम्रतापूर्वक अपने पिता जी से कहा वंश दो प्रकार का होता है। विद्या से और जन्म से। इनमें मैं विद्या-वंश को उत्तम समझता हूँ। आशा है कि आप मेरी इस धृष्टता को क्षमा कर श्री शुकदेव जी को ज्ञानोपदेश देने वाले श्री वेदव्यास जी के समान आज्ञा देकर मुझे उत्साहित करते हुए कृत-कृत्य करेंगे।

इसके पश्चात महाराज जी बेलौन के आर्य मंदिर में आर्ष पद्धति से छात्रों को पढ़ाने लगे। महाराज जी नित्यप्रति स्वयं का आचरण इतना कठोर रखते थे कि छात्र भी अनुपयुक्त, अनुचित अनेक बालसुलभ आचरण त्याग कर सन्ध्या, गायत्री जप, बलिवैश्विदेव आदि शास्त्रीय कर्मों का यथावत् पालन करने लगे। प्रति रविवार महाराज जी छात्रों सहित बेलौन से दो कोस उत्तर दिशा में बहने वाली श्री भागीरथी गंगा में स्नान करने के लिए गंगा तटवर्ती सघन वन में स्थित नरवर नामक स्थान पर जाते थे। यह स्थान श्री गर्गाचार्य कृत गर्ग संहिता ग्रंथ में वद्ध केशी सिद्धपीठ के नाम से प्रसिद्ध है।

एक दिन कुछ छात्रों ने कुछ देवी उपासना एवं पंचदेव उपासना की पुस्तकें वी.पी.पी. से श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

से मँगाईं। वी.पी.पी. खोली गई तब वहाँ आर्य समाज के प्रधान पं. रघुनन्दन प्रसाद उपस्थित थे। उन्होंने इन पुस्तकों के पठन-पाठन का नितान्त विरोध किया। महाराज जी ने उनकी बातों में अधिकार भाव जानकर बेलौन त्यागकर वापस अपने पिता के पास चले गये। कुछ दिनों बाद बेलौन में एक विद्वत संगोष्ठी हुई तब लोगों को ज्ञात हुआ कि महाराज जी बेलौन से चले गये हैं, तब बेलौन के गणमान्य लोगों का एक दल उन्हें वापस बुलाने के लिए आपके पास आया। आपने पुनः बेलौन आकर पूर्ववत पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया परन्तु आपका मन बेलौन में स्थिर नहीं हो सका। इसी बीच आप कर्णवास स्थित पं. जीवाराम की सांगवेद पाठशाला देखने गये। आपने भी एक वैदिक विधि से अध्ययन-अध्यापन की पाठशाला की स्थापना का निर्णय ले लिया।

संवत् 1960 में अपनी पाठशाला की स्थापना के उद्देश्य से आप नरवर नामक स्थान पर पधारे। आप यहाँ अयाचित व्रत लेकर आये थे। आपने यह भी निर्णय लिया था कि तीन दिन यहाँ कुछ प्राप्त हो जायेगा तभी यहाँ रुकेंगे वरन् आगे बढ़ जायेंगे। महाराज जी के नरवर आने के तीन दिन में बेलौन, कलकत्ती, नरौरा आदि गाँवों में यह खबर फैल गई। वे स्थायी निवास के उद्देश्य से यहाँ पधारे हैं। अतः उनके पास श्रद्धालुओं के आने का ताँता लग गया। जनता के अयाचित सहयोग से महाराज जी को निश्चय हो गया कि नरवर विद्यालय की प्रगति अवश्यम्भावी है। उस समय इस पाठशाला का नाम 'वेद वेदांग पाठशाला' रखा गया। यही पाठशाला आगे चलकर 'श्री सांगवेद महाविद्यालय' के नाम से प्रसिद्ध हुई जिसकी स्थापना संवत् 1960 चैत्र शुक्ल नवमी (रामनवमी) के दिन हुई थी।

महाराज जी पत्र लेखन के लिए बहुत जाने जाते थे। उन्होंने अपने जीवन में हजारों की संख्या में पत्र लिखे थे। उनके पास कोई आर्त्त, अर्थार्थी, पीड़ित आदि सहायता के लिए उपस्थित होते थे तो वे उसकी सहायता हेतु सेठ, साहूकार, उदारमना व्यक्ति को व्यक्तिगत पत्र उसकी अभावपूर्ति एवं मनोरथ पूर्ति के लिए लिख देते थे। श्री करपात्री जी महाराज ने उनके पत्र लेखन के विषय में कहा कि ''नरवर आश्रम का कार्य-भार बढ़ जाने पर भी वे कभी इनकी पूर्ति हेतु बाहर नहीं गये, उन सबकी पूर्ति केवल पत्रों से ही हो जाती थी।'' उनका पत्र व्यवहार पं. मदनमोहन मालवीय, पं. गोविन्द वल्लभ पंत, पं. कमलापति त्रिपाठी, महंत रंगजी मंदिर, वृन्दावन एवं अनेक अधिकारियों तक फैला हुआ था।

महाराज जी का जीवन ही यज्ञरूप था। उनकी प्रेरणा, समर्थन एवं सहयोग से सैकड़ों यज्ञों का अनुष्ठान हुआ। एक यज्ञ दिल्ली में 30 जनवरी से 9 फरवरी 1944 ई. के बीच सम्पन्न हुआ जोकि जगद्गुरु ज्योतिषपीठ श्री स्वामी कृष्णबोधाश्रम के संरक्षण एवं श्री करपात्री जी महाराज के संयोजकत्त्व में सम्पन्न हुआ। महाराज जी ने संस्कृत के प्रसार के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय योगदान दिया है। उनकी प्रेरणा से विहारघाट, राजघाट, कर्णवास, बेलौन, बाजिदपुर, फिरोजाबाद, शिकोहाबाद एवं रामघाट आदि स्थानों पर संस्कृत पाठशालाओं की स्थापना की गई।

महाराज जी माता गायत्री के अनन्य उपासक थे। वे त्रिकाल संध्या हेतु त्रिकाल स्नान करते थे। उन्होंने अपने जीवन में अनेक गायत्री मंत्र के पुरश्चरण किये थे। यह ज्ञातव्य है कि एक पुरश्चरण में चौबीस लाख गायत्री मंत्र का जप होता है। वे दिन में केवल एक बार ही भोजन ग्रहण करते थे। महाराज जी का जीवन साधनामय था। महाराज जी बड़े व्यवहारकुशल व्यक्ति थे। उनके प्रेमीजनों में श्री उड़िया महाराज, श्री करपात्री महाराज, श्री दण्डी स्वामी विश्वेश्वराश्रम महाराज, श्री मधुसूदन तीर्थ जी एवं स्वामी भारतीकृष्ण तीर्थ, पं. मदनमोहन मालवीय, प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी इत्यादि प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं।

महाराज जी का देहावसान चैत्र कृष्ण दशमी गुरुवार विक्रम संवत् 2012 के दिन हुआ था। महाराज जी के संकल्प से स्थापित सांगवेद महाविद्यालय, नरवर आज भी उनकी चिर स्थायी स्मृति का सुस्मारक बनकर उपस्थित है।

[वि०प्र०उ०]

दयालबाग

दयालबाग की स्थापना 20 जनवरी 1915 को की गई थी। इसका प्रमुख उद्देश्य पूर्ण रूप से भारतीय आध्यात्मिक

वातावरण का निर्माण करते हुये अनुयायियों को स्वतंत्रता तथा विभिन्न कार्य करने की सुविधाएँ प्रदान करना था। इसके संस्थापक साहिब जी महाराज का मंतव्य यह था कि व्यक्ति मानदारी के साथ उपार्जन करने तथा आध्यात्मिक क्रियाओं का सफलतापूर्वक निर्वहन कर सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए दयालबाग में विभिन्न औद्योगिक इकाइयों की स्थापना की गई। दयालबाग के अनुयार्थियों के आध्यात्मिक मार्ग निर्देशन के लिए गुरु परंपरा की स्थापना को अनिवार्य किया गया। अनुयायी अपने गुरुओं को हुजूर के रूप में मानते हैं। संप्रति प्रो. सत्संगी गुरु परंपरा का निर्वहन कर रहे हैं।

दयालबाग कालोनी के रूप में सन् 1921 में प्रेमनगर की स्थापना की गई। जो तदंतर श्वेतनगर, स्वामी नगर, विद्युत नगर तथा सरन आश्रम के रूप में स्थापित किए गये। दयालबाग में राधास्वामी एजूकेशनल इन्स्टीट्यूट की स्थापना राधास्वामी सत्संग सभा के द्वारा की गई जिसका प्रमुख उद्देश्य बालक तथा बालिकाओं के मानसिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों का विकास पूर्ण किया जा सके तथा परिणामस्वरूप समाज को सक्षम, उद्यमी तथा ईश्वर से प्रेम करने वाले नागरिकों का निर्माण किया जा सके।

1 जनवरी 1917 को राधास्वामी एजूकेशनल इन्स्टीट्यूट के रूप में माध्यमिक स्कूल की स्थापना की गई। सन् 1922 में इंटरमीडियट कॉलेज के रूप में तथा 1947 में एक महाविद्यालय के रूप में विकसित हुआ। सन् 1927 में तकनीकी शिक्षण के लिए टैक्नीकल स्कूल की स्थापना की गई जोकि सन् 1930 में तकनीकी कालेज के रूप में विकसित हुआ। लड़कियों की शिक्षा हेतु 1947 में एम.बी.टी. कालेज की स्थापना की गई। दयालबाग इंजीनियरिंग कॉलेज की स्थापना 1948 में की गई। संप्रति दयालबाग में डीम्ड यूनीवर्सिटी के रूप में एक विशाल शैक्षिक संस्थान सफलतापूर्वक अपने कार्यों का निर्वहन कर रहा है।

दयालबाग में औद्योगिक इकाइयों के रूप में चमड़ा, सूती वस्त्र तथा संगमरमर के उत्कृष्ट नमूनों का निर्माण भी यहाँ किया जाता है। दयालबाग स्थित राधास्वामी सत्संग सभा द्वारा बहुत बड़े स्तर पर कृषि कार्य को संपन्न कराया जाता है। प्रतिवर्ष बसंत पंचमी को बड़ा भंडारा आयोजित किया जाता है। जिसमें देश-विदेश से हजारों सत्संगी सम्मलित होते हैं।

निष्कर्ष रूप में दयालबाग नवीन विचारों तथा परिकल्पनाओं का केंद्र है जहाँ बड़ी संख्या में सत्संगी आध्यात्मिक तथा वित्तीय लाभ प्राप्त कर रहे हैं। [जे०पी०श०]

दामोदरकिशोर

गोस्वामी प्राणकिशोर जी के पश्चात् उनके पौत्र श्री गोस्वामी दामोदर किशोर जी वि.सं. 1902 में मदनमोहन जी ग्यारहवें सेवायत के रूप में गद्दी पर विराजित हुए। गोस्वामी जी अल्प समय तक सेवायत रहे। वि.सं. 1917 में इनका गोलोकवास हो गया। [जि० कु०]

देवदास काठियाबाबा

श्री गोपालदास जी काठियाबाबा के शिष्य श्री देवदास काठियाबाबा महाराज अत्यंत वृहदकाय जटामण्डित सिद्ध पुरुष थे। ये उच्चकोटि के योगी और तपस्वी संत थे। इनके शिष्य श्री रामदास काठियाबाबा इन्हें स्वयं परमात्मा ही मानते थे। अयोध्या के निकट किसी स्थान पर इनका जन्म हुआ किन्तु काल, वंश, परम्परा आदि का सटीक निर्णय प्राप्त नहीं होता। श्री देवदास जी काठियाबाबा प्राय: गाँजे या चरस का धुआँ पीते थे। इसके साथ ही आहार में कभी-कभी धूनी की कुछ विभूति (राख) छनवाकर निश्चित मात्रा में जल में मिलाकर लेते तथा उतना ही उसे वमन कर देते। एक बार इन्होंने अपने शिष्य रामदास जी को भूख लगने पर कुछ दूध लाने का आदेश दिया। रामदास जी आधा मन दूध माँगकर एकत्रित कर लाए। एक ही साँस ही वे सारा दूध पी गए तथा कोठे की गर्मी शांत न होने की बात

कहकर कुछ और दूध लाने की बात कही। इस पर रामदास जी साष्टांग चरणों में गिर पड़े और कहने लगे-"प्रभु आप साक्षात भगवान हैं, आपकी भूख कौन शांत कर सकता है।" इस पर उन्होंने आश्वासन देते हुए कहा कि बस कुछ और दूध से ही मेरी गर्मी शांत हो जाएगी। रामदास जी द्वारा पुन: लाए गए कुछ ही दूध से वे संतृप्त हो गए।

इसी प्रकार एक बार लाहौर के एक साधुओं की अवज्ञा करने वाले व्यापारी को उन्होंने दंड की रीति से धर्म मार्ग में प्रवृत्त किया। भूपाल ताल नामक स्थान पर ही एक मुसलमान नबाव की हवेली थी। उसने अपने राज्य में शंख अथवा घंटा ध्वनि न करने का आदेश पारित कर रखा था। इसी ताल के किनारे देवदास जी महाराज ने शंखनाद कर दिया। इससे कुपित हुए नबाव ने अपने सैनिकों को शंख ध्वनि करने वालों को दंड देने भेजा। वहाँ पहुँचे सैनिकों ने उस स्थान पर एक साधु के अंग-प्रत्यंगों को क्षत-विक्षत देखकर नबाव को शंख ध्वनि करने वाले की मृत्यु की सूचना दी। इसी मध्य पुन: शंख ध्वनि का शब्द आया तो पुन: आए सैनिकों को वहाँ कुछ भी दिखाई नहीं दिया। फिर से उसी स्थान से शंख ध्वनि सुनकर नबाव भयभीत हो गया और वहाँ एक जटाजूटमण्डित साधु को देखकर विस्मित हो गया। नबाव ने क्षमा-प्रार्थना की और शरणागत होकर आज्ञा माँगने लगा। देवदास महाराज ने उसे अपने धर्म में प्रवृत्त रहने किन्तु किसी और धर्म को प्रतिबंधित न करने का आदेश दिया। जिसे नबाव ने शिरोधार्य कर लिया। इसी भूपाल ताल को श्रीरामदास काठियाबाबा अपना गुरु स्थान मानते हैं। [कुं०बि०श०]

धनंजयदास काठियाबाबा

धनंजय दास काठियाबाबा का जन्म बांग्लादेश के बांकुड़ा जिले के भड़ा नामक ग्राम में हुआ था। वैष्णव चक्रवर्ती परिवार में इनका जन्म कार्तिक शुक्ल पंचमी, शनिवार सन् 1901 में हुआ। इनके बचपन का नाम धीरेन्द्र मोहन चक्रवर्ती था। बाल्यकाल से ही ये पढ़ाई तथा खेलकूद में अत्यंत प्रतिभाशाली थे। इसके अतिरिक्त धर्मचर्चा और धर्मग्रंथों के अवलंबन में ही रत रहते थे। नवद्वीप धाम में इन्होंने श्रीयुत त्रिपथनाथ काव्य-व्याकरण-स्मृति तीर्थ से शिक्षा ग्रहण की। किसी सर्वथोचित महान सद्गुरु की खोज उन्हें वृन्दावन में श्री संतदास महाराज के चरणों में खींच लाई। दीक्षा प्राप्ति के बाद धीरेन्द्र मोहन का नामकरण 'धनंजय दास' कर दिया गया। गंगा के समीप रहने पर तीन बार गंगा स्नान, त्रिकाल संध्या, अहर्निश जप-ध्यान, स्वाध्याय, स्वपाक, भगवद् सेवा और गुरु सन्निधि यही श्री धनंजय दास जी की रीति-नीति थी। महाराजश्री ने नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का व्रत धारण किया था। जयपुरं के निंबार्क सम्प्रदाय के प्रसिद्ध संत सिद्ध बाबा द्वारा बताए गए सवा लाख जपों के अनुष्ठान के फलस्वरूप श्री धनंजयदास जी को अपने दादागुरु सिद्धमूर्ति श्रीरामदास जी काठिया बाबा के उज्जैन कुंभ में दर्शन हुए। बंग सन् 1340 में गुरुदेव श्रीसंतदास काठियाबाबा की अस्वस्थतावश उन्हीं की आज्ञा से सर्वप्रथम उनके प्रतिनिधि रूप में ब्रजयात्रा की। यद्यपि इसके लिए उनकी कोई आकांक्षा नहीं थी किन्तु गुरुकृपा से उन्हें यात्रा में पूर्ण अनुकूलता प्राप्त हुई। इसके बाद उन्हें काठियापद की महंताई प्रदान कर दी गई जिसका सबसे बड़ा हेतु संतदास जी की आज्ञानुसार उनके गुरु रामदास काठियाबाबा का प्रचार था। जगद्गुरु श्रीनिंबार्काचार्य पीठ सलेमाबाद श्रीजी महाराज श्रीबालकृष्णशरण देवाचार्य जी से काठियाबाबा का बड़ा ही घनिष्ठ और आत्मीय संबंध था। श्रीजी महाराज के नित्यलीला प्रविष्ट होने के बाद उनके उत्तराधिकारी श्रीसर्वेश्वरशरण देवाचार्य जी महाराज के प्रतिष्ठापन में काठियाबाबा महाराज का अपूर्व योगदान रहा।

धनंजयदास काठियाबाबा की भजन साधन में विशेष अनुरक्ति थी और बाह्य रीति से कठोर शासन द्वारा वे इस रीति का पालन अपने अनुचरों और अनुयायियों से भी करवाते थे। उन्होंने कई कुम्भों में काठिया संतों की प्रतिष्ठा के अनुरूप ही अपनी परम्परा का प्रतिनिधित्व किया। सन् 1945 में उन्होंने पाँच वर्षों की मौन साधना को तोड़ा। उनके साधक जीवन में भी परीक्षा के कई घटनाक्रम हुए किन्तु अपने आराध्य के सान्निध्य, भजननिष्ठा, अनुयायियों की श्रद्धा आदि से हर दुष्चक्र से निकलकर अपनी प्रतिष्ठा में अक्षुण्ण रहे। उन्होंने आसाम, बंगाल आदि भारत के पूर्वी भाग में भी

निंबार्क मत का खूब प्रचार किया। महाराजश्री कहा करते थे-'मनमुखी गँवारा, गुरुमुखी भगवत्पयारा।'

गुरुदेव श्रीसंतदास काठियाबाबा की इच्छानुरूप श्रीधनंजयदास बाबा ने योगीराज गुरुदेव श्रीरामदास काठियाबाबा की वाणी और सिद्धांतों का देश-विदेश में प्रकल्पों के माध्यम से खूब प्रचार किया। वृन्दावन में गुरुकुल रोड स्थित काठियाबाबा का स्थान भी इसी का अंग है। बंग प्रदेशस्थ जन्मभूमि भड़ा गांव में भी काठियाबाबा के स्थान का निर्माण करवाया था। सन् 1963 में गंगा तटवर्ती सुखचर क्षेत्र में काठियाबाबा का आश्रम निर्मित कराया। इसी तपोभूमि पर बाबा का समाधि स्थल भी है। सन् 1979 में अगरतला में आश्रम निर्माण कर सम्प्रदाय की आधारशिला रख दी। इसके साथ ही काशी, हरिद्वार, दिल्ली, मुम्बई, आसाम, शिलांग आदि में भी आश्रम निर्मित किए।

सन् 1981 में श्रीधनंजयदास बाबा ने श्रीरासबिहारी दास काठियाबाबा को महंताई प्रदान की। 11 मई सन् 1983 को श्रीधनंजय दास काठियाबाबा ने कलकत्ता के सुखचर आश्रम में नित्य निकुंजलीला में प्रवेश किया। [कुं०बि०श०]

नीमकरौरी बाबा

संत-महात्माओं की दिव्य लीलाभूमि रहा है भारत। उत्तर भारत में ऐसी ही एक विभूति का जन्म ब्रिटिश शासित भारत में सन् 1903 में मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष अष्टमी के दिवस फिरोजाबाद जिले के अकबरपुर (तत्कालीन आगरा जनपद) ग्राम में हुआ। इनके पिता पं. दुर्गाप्रसाद शर्मा वेदज्ञ एवं जमींदार थे। सौतेली माता के व्यवहार से व्यथित होकर इन्होंने गृहत्याग कर दिया किंतु पिता की इच्छानुसार पुन: घर लौटकर गृहस्थ जीवन में प्रवृत्त हुए। इनका विवाह रामनेही जी से हुआ, जिनसे दो पुत्र अनेक एवं धर्मनारायण जी तथा पुत्री गिरजा शर्मा का जन्म हुआ। पुत्री के 11 वर्ष की अवस्था प्राप्त करने पर लक्ष्मणदास से हनुमत भक्ति से प्रेरित होकर गृहत्याग कर दिया। हनुमान जी की भक्ति से इन्हें रामभक्त का साक्षात्कार हुआ। इनकी साधना पद्धति आडम्बर से परे मानवोन्मुख और हनुमान जी की शरणागति के भाव से ओतप्रोत रही। गुजरात के बावनियां क्षेत्र में इन्होंने सर्वप्रथम साधना की और नीमकरौरी बाबा के नाम से विख्यात हुए। इसके साथ ही इन्हें गुजरात में तलैया बाबा, वृन्दावन में चमत्कारी बाबा तथा हांडी वाले बाबा और तिकोनिया बाबा आदि नामों से भी ख्याति मिली। बाबा नीमकरौरी महाराज जी का जीवन एक टिकट निरीक्षक द्वारा युवावस्था में बेटिकट होने पर रेलगाड़ी से उतारे जाने के बाद रेल का आगे न बढ़ पाना आदि अनगिनत चमत्कारों से परिपूर्ण रहा। इनकी शिक्षा का मूल मंत्र मानवता और मानवता की सेवा रहा। बाबा नीमकरौरी जी महाराज ने 11 सितम्बर 1973 को वृन्दावन धाम में इस नश्वर शरीर का त्याग कर दिया। अटल्ला चुंगी पर गोरेदाऊजी आश्रम के समीप बाबा का आश्रम स्थित है, जहाँ इनकी समाधि है। बाबा के भारत में कैंची (नैनीताल), हल्द्वानी, बरेली, कानपुर, लखनऊ, गुजरात, मद्रास, इलाहाबाद, दिल्ली के साथ ही अमेरिका के टाउस और न्यू मैक्सिको में भी आश्रम एवं हनुमान मंदिर हैं। एप्पल कम्पनी के संस्थापक स्टीव जॉब्स, अभिनेत्री जूलिया रॉबर्ट्स आदि बाबा के लाखों शिष्यों में से प्रमुख हैं। बाबा नीमकरौरी पर उनके शिष्य रामदास द्वारा रचित पुस्तक 'मिरेकल ऑफ लव' दुनिया भर में प्रसिद्ध है। [स०गु०]

नृसिंहदास

ब्रज वृन्दावन के उच्चकोटि के विद्वान निस्पृह संतों में श्री नृसिंहदास जी प्रमुख हैं। इनका जन्म गौड़ ब्राह्मण कुल में हुआ। श्री माधवदास जी से श्री नृसिंहदास जी ने दीक्षा ग्रहण की। पिता का बाल्यकाल में ही देहावसान हो गया। इससे लालन-पालन का दायित्व माता पर आ गया जिससे घर के हालात अत्यंत दीन हो गए और नृसिंहदास जी की अध्ययन और घर के दायित्वों के प्रति विशेष रुचि न थी। एक दिन पुत्र द्वारा कोई वस्तु माँगने पर माता ने और कोई वस्तु न होने की बात कहकर पिता के चाँदी लगे खड़ाऊँ देते हुए कहा कि बेटा इन्हें ही ले जा, तू पढ़ा-लिखा भी नहीं

है, घर का निर्वाह कैसे होगा? इससे उन्हें बहुत ग्लानि हुई तथा अध्ययन में एकाएक प्रवृत्ति हो गई।

अध्ययन कर लेने के पश्चात इन्हें वैराग्य जागृत हो गया यह वैराग्य इतना प्रबल था कि यदि कोई धनाढ्य इनके पास आता तो जानबूझ कर विक्षिप्तों जैसा आचरण करने लगते। वृन्दावन आकर कहीं भी न जाने का व्रत धारण कर लिया। मधुकरी कर क्षुधायापन करते और सर्वेश्वर प्रभु की सेवा में निमग्न रहते। ग्वारिया बाबा, गोस्वामी वासुदेव जी, पं. केशवदेव जी, बाबा रामकृष्ण दास जी आदि ने नृसिंहदास जी से ही अध्ययन किया।

ग्रंथों की पूंजी ही आपकी अपनी थी, जिसके लिए भी केशवदेव जी आदि तीन महानुभावों का ट्रस्ट बना दिया। इनकी दृष्टि में जाति, वर्ण का भेद ब्रजवासी होने से कहीं निम्न था। नृसिंहदास जी भगवद कथा के परम मुमुक्षु रसिक थे। [कुं०बि०श०]

पागल बाबा

श्री लीलानन्द ठाकुर जी महाराज (पागल बाबा) का जन्म अक्टूबर सन् 1899 आश्विन माह की दुर्गाष्टमी के दिन बंगाल के मेयम सिंह नामक ग्राम के एक धनी ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके पिता श्री कालीचरण तथा माता श्रीमती अन्नपूर्णा देवी थीं। पागल बाबा परिवार में ज्येष्ठ पुत्र थे। इनका बचपन का नाम नलिनी चन्द था। इनका रंग साँवला था। पाँच वर्ष की अवस्था में इन्हें शिक्षा हेतु गुरु गृह भेजा गया था। पढ़ाई-लिखाई में इनका मन नहीं था, परन्तु अन्य कार्यों में अत्यधिक रुचि थी। कहा जाता है कि इनकी महानता के लक्षण अल्पावस्था में दिखने लगे। इनके माता-पिता ने इनका विवाह एक सुदेवी नामक कन्या के साथ कर दिया। नलिनीचन्द का गृहस्थ जीवन आनन्द से चल रहा था। उसी दौरान इनके माता-पिता का देहान्त हो गया था और वे अपनी पत्नी के साथ तीर्थ-यात्रा पर चल दिये। हरिनाम कीर्तन सुनते-सुनाते ये पावना जिले के ब्राह्मण बेरा स्थान पर रहने लगे। कुछ समय पश्चात यहाँ इनकी पत्नी का देहान्त हो गया था। अपनी पत्नी का क्रिया-कर्म आदि कर ये वहीं शमशान में स्थित काली मंदिर में पूजा-अर्चना, हरिनाम कीर्तन करने लगे। यहीं सिद्धि प्राप्त हुई और एक सिद्ध महात्मा बन गये। बाबा ने हरिनामकीर्तन में अपने आप को पागल बना लिया और कहने लगे मैं पागल हूँ। भक्तगण इनकी भक्ति को देखकर इन्हें 'पागल बाबा' के नाम से पुकारने लगे तभी से ये पागल बाबा के नाम से जाने जाते हैं। इसके पश्चात ये वृन्दावन आ गये और उन्होंने आश्रम की स्थापना की। यह आश्रम पागल बाबा आश्रम के नाम से जाना जाता है। यहीं प्रतिदिन 108 वर्ष का अखंड हरिनाम आरम्भ किया। 24 जुलाई 1980 ई० में पागल बाबा ने अपने शरीर को त्यागकर समाधि में प्रवेश किया। समाधि के ऊपर संगमरमर से युक्त एक भव्य मंदिर बनवाया। [जि० कु०]

प्रभुदत्त ब्रह्मचारी

''श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारी। हे नाथ नारायण वासुदेव।'' मंत्र के दृष्टा संत प्रभुदत्त ब्रह्मचारी अध्यात्म के पुरोधा थे। संस्कृत, हिन्दी, ब्रजभाषा के प्रकाण्ड विद्वान ब्रह्मचारी जी साधना, समाज सेवा, संस्कृति, साहित्य, स्वाधीनता एवं शिक्षा के समर्पित पोषक एवं प्रेरणा स्रोत थे। बलदेव, बरसाना, खुर्जा, नरवर एवं वाराणसी में उन्होंने संस्कृत का अध्ययन किया। स्वामी करपात्री जी एवं प्रख्यात साहित्यकार कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर उनके सहपाठी थे। उनकी संकीर्तन में अटूट श्रद्धा थी। वृन्दावन में यमुना पुलिन पर वंशीवट के निकट संकीर्तन भवन की स्थापना की तो प्रयागराज प्रतिष्ठानपुर झूसी में अनेकानेक प्रकल्पों के साथ संकीर्तन भवन प्रतिष्ठित किया। बसंत बिहार दिल्ली में संकीर्तन भवन में हनुमान जी की विशालकाय मूर्ति पधराने का संकल्प लिया, क्रियान्वित भी हुआ। मूर्ति 120 फीट ऊँची उनके गोलोकवास के पश्चात प्रतिष्ठित हो पाई।

झूसी प्रवास में वर्षों उपवास के साथ गंगा जल में प्रविष्ट हो समाधिस्थ स्थिति में गायत्री महामंत्र का परायण किया।

वृन्दावन में वस्त्र के स्थान पर टाट का प्रयोगकर जमुना पार सहस्त्रों गायों को साथ लेकर गोचारण किया। ब्रह्मचारी जी सिद्धांतों को आचरण में लेकर आदर्श प्रस्तुत करने वाले प्रेरक व्यक्तित्व के धनी थे।

एक बार गोरक्षा के प्रकरण पर वृन्दावन में वे शासन के विरुद्ध आमरण अनशन पर बैठ गये। देश के लाखों-लाख लोग उनके साथ थे। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी के आग्रह एवं आश्वासन पर ही उन्होंने रस-पान किया।

स्वाधीनता आन्दोलन में ब्रह्मचारी जी पं. जवाहरलाल नेहरू के साथ जेल में रहे थे। स्वाधीनता संग्राम काल में उनकी पत्रकारिता बेजोड़ थी। उन्होंने कई पत्रों तथा पत्रिकाओं का संपादन, प्रकाशन किया था। जीवन भर सदैव खादी का ही प्रयोग करते रहे। उनके कर्म, धर्म, आचरण एवं लेखनी के द्वारा समाज को जो कुछ भी उपलब्ध हुआ वह लौकिक परिवेश में अलौकिक ही है। वे आशु कवि थे। श्रीमद्भागवत, गीता, उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र आदि अत्यन्त दुरूह ग्रन्थों की हिन्दी में व्याख्या की।

ब्रह्मचारी जी ने श्रीमद्भागवत को 118 भागों में जनसामान्य भाषा में प्रस्तुत किया। श्रीमद्भागवत में रचित उनके ब्रजभाषा के सुललित छन्द वाद्य-वृन्द संगति के साथ पारायण कर लोग अतीव आत्मिक आनन्द की अनुभूति करते हैं। एक स्थल पर वे अपने श्याम सखा को बुलाते हुए कहते हैं-

नेक ठहरि जा श्याम! बात इक सुनि जा मेरी।
दौर्‌यौ जावै कहाँ दीठि चंचल अति तेरी॥
चंचलता कूँ त्यागि बात मेरी सुनि नटवर।
तेरौ लिख्यौ चरित्र सूत तें सुनि के सुखकर॥
लिखवायौ सो लिख्यौ करूँ अब काकूँ अरपन।
है तेरी ही वस्तु करूँ पुनि तोइ समरपन॥
अरे बाबा के लाड़िले, मोइ सनाथ बनाइ जा।
पुण्य भागवत चरित कूँ, परसि तनिक मुसकाइ जा॥

इनके अतिरिक्त नाम संकीर्तन महिमा शुक (नाटक) भागवत कथा की बानगी, भारतीय संस्कृति एवं शुद्धि, वृन्दावन माहात्म्य, राघवेन्द्र चरित्र प्रभू पूजा पद्धति, कृष्ण चरित्र, रासपंचाध्यायी, गोपीगीत, प्रभूपदावली, चैतन्य-चरितावली आदि लगभग 100 अन्य आध्यात्मिक ग्रंथों का प्रणयन किया।

ब्रह्मचारी जी ब्रज चौरासी कोस की यात्रा भी अपने अनुयायियों एवं शिष्यों के साथ करते थे तथा 'श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारी' का मंत्र उच्चारण होता रहता था।

ऐसे आध्यात्मिक युग पुरुष का जन्म जनपद अलीगढ़ के ग्राम अहिवासी नगर (इगलास) में सम्वत् 1942 में कार्तिक कृष्ण अष्टमी (अहोई आठे) को ब्रह्मर्षि सौभरि कुलोद्भव आदि गौड़ अहिवासी विप्र परम भागवत पं. मेवाराम जी के पुत्र रूप में हुआ। विदुषी माता अजुध्या देवी से सन्त सुलभ संस्कार प्राप्त कर आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया। सम्वत् 2047 की चैत्र कृष्णा प्रतिपदा को अपने परम पुरुष ब्रह्मर्षि सौभरि के आश्रम सुनरख (वृन्दावन) यमुना किनारे भौतिक देह का त्याग कर गौलोक धाम प्रवेश कर गये। [क०ला०पां०]

प्रेमदास काठियाबाबा

प्रेमदास काठियाबाबा का जन्म तत्कालीन असम तथा वर्तमान बांग्लादेश के श्रीहट्ट जिले के काशीपुर ग्राम में प्रसन्न कुमार भट्टाचार्य के यहाँ हुआ था। इनके बचपन का नाम सनतकुमार था। प्रेमदास जी ब्रजविदेही महंत स्वामी श्री संतदास काठियाबाबा के विरक्त शिष्य हुए। गुरु के दर्शन किए बिना ही स्वप्न अथवा ध्यानावस्था में ही गुरु के दर्शन होने लगे थे। इनके परिवारीजनों ने इन्हें अनेक यत्नों द्वारा विरक्त होने से रोकने का प्रयत्न किया किन्तु सफलता

न मिली। गुरुदेव के प्रति अपार श्रद्धा और श्रीराधाकृष्ण युगल की निज हृदय में दिव्यानुभूति इन्हें श्रीवृन्दावन खींच लाई। ठाकुर जी की सेवा, ब्रज के विभिन्न लीला स्थलों का दर्शन और एकनिष्ठ भाव से इष्ट का भजन ही इनकी रीति थी। पूर्वाचार्य श्री चतुरचिंतामणि देवाचार्य श्रीनागाजी महाराज की बरसाना के निकट कदमखंडी स्थित भजनस्थली में इन्होंने अन्न-जल त्यागकर युगल सरकार का साक्षात्कार किया। प्रभु आज्ञा तथा ब्रजवासियों के अनुरोध पर इन्होंने अपना अनशन समाप्त किया और पुनः प्रभु सेवा में प्रवृत्त हुए।

प्रेमदास महाराज ने हिन्दी और संस्कृत के साथ ही बांग्ला में भी ग्रंथों का लेखन और अनुवाद किया। इनमें प्रमुख हैं-श्रीसंतदास चरितामृत, श्रीसंतदास बाबा जी उपदेश मंजूषा, श्री संतदास का उपदेशामृत, नित्यकर्म पद्धति, संतदासाष्टकम् आदि। इन्होंने बंगाल, त्रिपुरा, असम आदि राज्यों में हनुमत भक्ति का भी प्रचुरता से प्रचार किया तथा गुरु और सम्प्रदाय की गुणात्मक अभिवृद्धि की। श्री निम्बार्क सम्प्रदाय की भक्ति और सेवा का प्रचार-प्रसार करते हुए प्रेमदास जी का गोलोकवास वि.सं. 2040 में हो गया। [कुं०बि०श०]

बालकृष्ण शरण देवाचार्य

श्रीबालकृष्ण शरण देवाचार्य जी का जन्म वि.सं. 1917 चैत्र कृष्ण त्रयोदशी के दिवस जयपुर मंडलांतर्गत चाकसू तहसील के पूरण की नागल नामक ग्राम में हुआ था। गौड़ ब्राह्मण वंशीय इनके पिता का नाम श्री गोपाल गौड़ तथा माता का ललिता देवी था। वि.सं. 1963 चैत्र कृष्ण द्वादशी को आप आचार्यपीठ पर सुशोभित हुए तथा 36 वर्ष पर्यंत आपने इस दायित्व को अलंकृत किया।

आचार्यश्री शांत, समदर्शी, दयाल, वाकसिद्ध, भगवत्परायण और धर्मनिष्ठ आचार्य थे। इनका जीवन चरित्र भगवदचिंतन से परिपूर्ण है। श्रीमद्भगवत गीता महाराजश्री के कर कमलों का आभूषण थी। निरंतर सुदर्शन कवच और महामंत्र जाप के साथ ही प्रतिदिन गोपाल मंत्रराज का दशांश हवन के साथ अनुष्ठान और श्रीमंत्रराज का नयनाभिराम अवलोकन करते हुए एक घंटे से भी ज्यादा समय तक जाप करना आपकी आजीवनीय प्रवृत्ति थी। श्रुति, स्मृति, पुराणादि के साथ ही भक्त चरित्र और साम्प्रदायिक मत चिंतन पर आचार्यश्री का अध्ययन-चिंतन गंभीर और प्रामाणिक था। बड़े-बड़े राज्यों के जागीरदार, राजा, महाराजा आपकी सेवा में नित्य उपस्थित रहने को लालायित रहते थे।

एक बार दक्षिण भारत की यात्रा के दौरान हैदराबाद स्टेट के निजाम ने आचार्यश्री की विराट शोभायात्रा का आयोजन किया था। जिस काल में आचार्यश्री आचार्य पीठासीन थे, भारतभूमि गुलामी की बेड़ियों में कैद थी। आचार्यश्री परोक्ष रूप से ऐसे क्रांतिवीरों के भी सहायक थे किन्तु साथ ही अंग्रेजी हुकूमत के अधिकारी भी आपके प्रति पूर्ण सम्मान का भाव रखते थे। एक बार क्रांतिकारी राव गोपालसिंह तथा मोड़सिंह जी आचार्यपीठ में आकर ठहरे। किसी गुप्तचर ने अजमेर के कमिश्नर को सूचना दे दी, तब आचार्यपीठ को चारों तरफ से घेर लिया। हिंसा की आशंका देखते हुए आचार्यश्री ने दोनों पक्षों को समझाया। फलस्वरूप दोनों सरदारों की ससम्मान गिरफ्तारी कर ली गई। जाते समय अपने शस्त्रागार और ऊंट आदि आचार्यपीठ में ही छोड़ गये। प्राकृतिक आपदाओं के समय स्वाभाविक दयालुता से आचार्यश्री दोनों शरणागतों की रक्षा को तत्पर रहते थे। श्रीबालकृष्ण शरण देवाचार्य जी के प्रति शासकजनों में इतनी श्रद्धा थी कि जब भी किशनगढ़ नरेश महाराजा मदनसिंह जी आचार्यश्री के दर्शनों को आचार्यपीठ में आते थे तो महाराजश्री को सदैव अपने हाथों से ही चरणपादुकाएँ धारण कराते थे। 36 वर्षों तक निंबार्क पद को सुशोभित करने के पश्चात् ज्येष्ठ कृष्ण प्रतिपदा वि.सं. 2000 को आचार्यश्री ने ऐहिक लीला संवरण कर नित्य सर्वेश्वर धाम में प्रवेश किया। आचार्यश्री की चरणपादुकाएँ आचार्यपीठ के सुरम्य उद्यान में ही सुशोभित हैं। आपका पाटोत्सव चैत्र कृष्ण द्वादशी को मनाया जाता है। [कुं०बि०श०]

ब्रह्मशंकर मिश्र (महाराज साहब)

राधास्वामी मत के तीसरे आचार्य पंडित ब्रह्मशंकर मिश्र थे जो कि महाराज साहब के नाम से विख्यात थे। बनारस के एक सुप्रसिद्ध ब्राह्मण परिवार में उनका जन्म 28 मार्च सन् 1861 ई. में हुआ। उनके पूर्वज आजमगढ़ के मूल निवासी थे, जहां से वे गाजीपुर चले गए। यहां महाराज साहब के सबसे बड़े भाई पं. लक्ष्मीशंकर मिश्र का जन्म हुआ बाद में यह परिवार बनारस चला गया और कबीर चौरा के पास मोहल्ला पियरीकलां में बस गया। महाराज साहब का ननिहाल प्रतापगढ़ जिले के भीटी गांव में था।

महाराज साहब के पिता पं. रामजशन मिश्र संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे और बनारस के क्वीन्स कॉलेज में संस्कृत के प्रोफेसर थे। महाराज साहब चार भाईयों में सबसे छोटे थे। उनकी एक बहन माहेश्वरी देवी थीं। 13 वर्ष की छोटी आयु में ही महाराज साहब का विवाह बनारस के मोहल्ला राजा दरवाजा के एक सम्मानीय परिवार में हुआ। उनकी सुयोग्य धर्मपत्नी बाद में नय्याँ जी के नाम से प्रसिद्ध हुईं और हुजूर महाराज ने शब्द प्यारी नाम रखा।

महाराज साहब एक प्रखर बुद्धि के असाधारण बौद्धिक छात्रों में गिने जाते थे। उन्होंने अपनी शिक्षा क्वीन्स कॉलेज, बनारस में जारी रखी। सन् 1884 ई. में महाराज साहब ने अंग्रेजी में एम.ए. परीक्षा पास की और बरेली कॉलेज में एक अध्यापक के पद पर नियुक्ति हो गई। सन् 1886 ई. में दूसरी नियुक्ति लेखाकार जनरल के ऑफिस में कार्यालय अधीक्षक के पद पर हुई। नौकरी के अतिरिक्त समय में वे सत्संग एवं ध्यान में रहते थे। अपनी नि:स्वार्थ शक्ति और एकचित्तता ने उन्हें हुजूर महाराज के मुख्य शिक्ष्य की पदवी प्राप्त हुई।

सन् 1885 ई. में महाराज साहब ने राधास्वामी मत में उपदेश लिया था। महाराज साहब केवल 37 वर्ष के थे जब वे संत सतगुरु के रूप में हुजूर महाराज के स्थान पर आसीन हुए। सन् 1904 ई. में स्वामी जी महाराज की एक भव्य समाधि के निर्माण का कार्य शुरू किया गया। महाराज साहब ने सन् 1901 एवं 1902 में राधास्वामी मत पर दो संक्षिप्त रिपोर्ट पंजाब व उत्तरप्रदेश के जनसंख्या गणना अधिकारियों के लिए लिखवाईं। महाराज साहब ने राधास्वामी मत पर एक और संक्षिप्त रिपोर्ट बाद में लिखी। जब सन् 1909 ई. में 'डिस्कोर्सेस ऑन राधास्वामी फेथ' प्रकाशित हुआ तो उसके परिशिष्ट में यह रिपोर्ट दी गईं।

महाराज साहब केवल अल्प समय के लिए सत्संग के अधिष्ठाता रहे। इस संसार से प्रस्थान के समय उनकी आयु केवल 46 वर्ष और 6 महीने थी। 12 अक्टूबर सन् 1907 ई. में स्वामिया बाग, बनारस में महाराज साहब ने अंतिम साँस ली। [नि०गौ०]

भक्ति वेदान्त प्रभुपाद

श्रील प्रभुपाद का जन्म 9 सितम्बर 1896 ई. में कलकत्ता में एक वैष्णव कुल में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री गौर मोहन दे तथा माता का नाम रजनी दे था। जन्म के बाद इनके पिताजी ने इनका नाम अभयचरण रख दिया। अभय के पिताजी गौर मोहन दे सम्भ्रान्त सुवर्ण वणिक जाति के थे, ये कपड़े के व्यापारी थे। अभय का घर उत्तरी कलकत्ता में 151 हैरीसन रोड़ पर था।

गौरमोहन शुद्ध वैष्णव थे तथा राधाकृष्ण के भक्त थे। इन्होंने अपने पुत्र अभय को भी कृष्ण भक्त बनाया। चूंकि गौर मोहन के माता-पिताजी भी वैष्णव थे, अत: इन्होंने भी वैष्णव धर्म का ही पालन किया। रात्रि में वे कपड़े की दुकान को बन्द कर जब घर आते थे तो चैतन्य-चरितामृत तथा श्रीमद्भागवत का पाठ करते थे। वे सौम्य तथा स्नेही थे और अभय को भी कभी दण्ड नहीं देते थे। स्वामी प्रभुपाद को पूजा-पाठ एवं कृष्ण भक्ति का संस्कार अपने पिताजी से ही मिला था। पिता ने ही कृष्ण भावना से भावित किया। इन्होंने अपने पिता का स्मरण करते हुए लिखा है कि बाल्यकाल में ही उन्होंने मुझे मृदंग बजाना सिखाया, अर्चना के लिये राधाकृण का विग्रह तथा जगन्नाथ का रथ दिया।

गौरमोहन अपने पुत्र के लिये वैष्णव लक्ष्य चाहते थे। वे चाहते थे कि उनका अभय राधाकृष्ण का दास बने। भागवत का उपदेशक तथा मृदंग बजाने की भक्तिमयी कला में पारंगत हो। वे नियमित रूप से साधुओं का सत्कार करते और उनसे कहते, ''कृपया मेरे पुत्र को आशीर्वाद दें कि राधारानी इन पर प्रसन्न हों।''

स्वामी प्रभुपाद की शिक्षा कलकत्ता में ही हुई। हाईस्कूल पास करने के बाद इन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय से दर्शन, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र और अंग्रेजी आदि विषयों में स्नातकोत्तर की उपाधि ग्रहण की। हलांकि इनकी माता इन्हें वकील बनाना चाहती थीं। किन्तु इनके पिता गौर मोहन को ये बात कतई पसंद नहीं थी। गौरमोहन ने अभय को जीवन के प्रारंभ से ही कीर्तन-भजन एवं मृदंग वादन में लगा दिया। अभी अभय कॉलेज में अध्ययन ही कर रहे थे कि उनके पिता ने इनका विवाह एक व्यापारी परिवार की कन्या 'राधारानी' से कर दिया। विवाह के पश्चात् ये कई वर्ष तक अपने परिवार में रहे। कॉलेज की पढ़ाई समाप्त करने के बाद इन्होंने जीविकोपार्जन करने के लिये व्यापार शुरू किया। ये राष्ट्रीयवादी कार्य के समर्थक बन चुके थे। इसी समय इनकी भेंट राष्ट्रीयवादी नेता सुभाषचन्द्र बोस एवं मोहनदास करम चन्द गांधी से हुई। उसी समय ये राजनीति में प्रवेश करना चाहते थे किन्तु इनका मन राजनीति में नहीं लगता था।

सन् 1922 ई. में इनका साक्षात्कार उस समय के मान्य एवं परम वैष्णव विद्वान श्री भक्ति सिद्धान्त सरस्वती से हुआ, जिनकी प्रेरणा से इनकी अभिरुचि वेदाध्ययन एवं कृष्णभावना के प्रति जागृत हुई। भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गौड़ीय मठ के प्रधान आचार्य थे। उन्होंने भक्ति वेदान्त (अभय) को सन् 1993 ई. में प्रयाग में दीक्षा दी। उस समय इनकी पत्नी भी सोच में थी। गोलोक गमन के पूर्व भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ने इन्हें पाश्चात्य देशों में कृष्णभावना के प्रचार-प्रसार का आदेश दिया। इस आदेश का पालन करते हुए इन्होंने सन् 1944 ई. में 'श्री भगवतदर्शन' नामक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया। इनके गुरु भक्ति सिद्धान्त सरस्वती शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित मायावाद में विश्वास नहीं रखते थ। उनका विश्वास था कि कृष्ण और आत्मा का शाश्वत सम्बन्ध है। श्री भक्तिवेदान्त ने भी इसी भक्ति भावना का प्रसार किया। सन् 1950 ई. में इन्होंने वानप्रस्थ जीवन में प्रवेश किया। सन् 1956 में इन्होंने श्री वृन्दावन की यात्रा की और वहीं संन्यास ग्रहण किया। संन्यास ग्रहण करने के बाद इनका नाम भक्ति वेदान्त स्वामी पड़ गया।

यह बहुत सात्विक भाव से राधा-दामोदर में रहने लगे। यह वही स्थान है जहाँ से रूप, सनातन तथा अन्य गोस्वामियों ने ब्रज में कृष्ण भक्ति व दर्शन का प्रचार किया था। सर्वप्रथम इन्होंने वंशी गोपाल मंदिर में एक सस्ता-सा कमरा ले लिया जो यमुना नदी के तट पर स्थित था। राधा दामोदर के मंदिर में ही इन्होंने श्रीमद् भागवत का अंग्रेजी अनुवाद किया और उस पर भाष्य भी लिखा। इसी समय इन्होंने सार्वभौम भक्त समाज की स्थापना की। इन्होंने अपनी भक्ति विषयक व्याख्याओं में स्पष्ट कहा है, यह नितान्त सत्य है कि परम तत्व भगवान कृष्ण को लौकिक तर्क से जानना संभव नहीं है। इसी प्रकार कृष्ण के शुद्ध भक्त को भक्ति के अतिरिक्त किसी अन्य विधि से नहीं जाना जा सकता। परम विद्वान मनुष्य भी श्रीकृष्ण प्रेमी महापुरुष के वाक्यों, क्रियाओं और लक्षणों को नहीं समझ सकते। (चैतन्य चरितामृत, मध्य लीला-23-29)। सन् 1967 ई. से सार्वभौम भक्त समाज का ही विस्तार इन्होंने कृष्ण भावनामृत संघ (इस्कॉन) रूप में किया।

न्यूयार्क में प्रभुपाद का आगमन सन् 1954 में हुआ। उस समय न्यूयार्क में और व्यापक रूप से सम्पूर्ण अमेरिका में नवयुवकों में हिप्पी आन्दोलन उठ रहा था। ऐसे अशान्त उद्वेगपूर्ण वातावरण को इन्होंने—हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।। महामंत्र संकीर्तन से शान्त कराया। इन्होंने संकीर्तन तथा भाव विभोर संकीर्तन नृत्य के माध्यम से कृष्ण भावना का प्रसार किया। इस्कॉन की भक्ति पद्धति भगवद्गीता के दर्शन पर आधारित है। आज इस संघ में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई यहूदी, पारसी आदि विविध धर्मों तथा एशियाई, यूरोपीय, अफ्रीकी आदि विभिन्न देशों के भक्त सम्मिलित हैं।

सन् 1922 में जब श्री भक्ति सिद्धान्त सरस्वती से प्रभुपाद की भेंट हुई थी, तब उन्होंने इनसे वैदिक ज्ञान का अंग्रेजी

भाषा में प्रचार करने का आग्रह किया था। उसके बाद प्रभुपाद ने गौड़ीय मठ की सहायता से भगवद्गीता पर एक अंग्रेजी पत्रिका निकाली। इस पत्रिका में भगवद्गीता भाष्य लिखते थे तथा स्वयं संपादन करते थे। सन् 1944 तक यह पत्रिका गौड़ीय मठ की सहायता से प्रकाशित होती रही, बाद में प्रभुपाद ने इसका स्वतंत्र रूप से प्रकाशन आरंभ किया। श्री प्रभुपाद इस पत्रिका के प्रकाशन से लेकर वितरण तक सारा कार्य स्वयं करते थे। सन् 1969 में जब प्रभुपाद अमेरिका के न्यूयार्क नगर में पहुँचे उस समय उनकी जेब खाली थी। किन्तु इन्होंने अथक प्रयत्न करके अन्तर्राष्ट्रीय कृष्ण संचेतना समाज की स्थापना की। पश्चिम बर्जीनिया के पर्वतों में अपने वैदिक समाज के प्रयोग हेतु नव वृन्दावन की स्थापना की। इस प्रकार के अनेक केन्द्रों की स्थापना इनके शिष्यों ने संयुक्त राज्य अमेरिका तथा विश्व के अनेक भागों में की।

सन् 1972 में दालाश टेक्सास में प्राथमिक एवं माध्यामिक वैदिक शिक्षा प्रणाली पर गुरुकुल की स्थापना की। अनेक वैदिक पाठशालाओं की स्थापना, वृन्दावन की मुख्य शिक्षा संस्थान गुरुकुल की स्थापना। पश्चिम बंगाल के मायापुर में एक आध्यात्मिक नगर की स्थापना। वृन्दावन में श्री कृष्ण बलराम मंदिर तथा अन्तर्राष्ट्रीय अतिथि गृह की स्थापना। बम्बई में एक महान शैक्षिक एवं सांस्कृतिक केन्द्र की स्थापना। इस प्रकार शैक्षिक एवं सांस्कृतिक केन्द्रों की स्थापना में प्रभुपाद का महान योगदान रहा है।

इन्होंने अपने जीवन काल में करीब 26 ग्रन्थों की रचना की। इनके द्वारा रचित ग्रन्थ सारे संसार में आधिकारिक प्रामाणिक माने जाते हैं। सारस्वत के क्षेत्र में गंभीरता एवं स्पष्टता के कारण इनका बहुत सम्मान है। इनकी कृतियों का संसार की 28 भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। भक्ति वेदान्त पुस्तक न्यास, जिसकी स्थापना सन् 1872 में की गई है, इनकी पुस्तकों के प्रकाशन के प्रति समर्पित है। यह पुस्तक न्यास भारतीय धर्म और दर्शन के क्षेत्र में सबसे बड़ा प्रकाशक है।

वृद्धावस्था के उपरांत भी प्रभुपाद सारे संसार में 14 बार भाषण यात्राओं पर गए थे। जीवन की व्यस्तता के बावजूद ये लिखते रहे। इनकी कृतियाँ वैदिक, दर्शन, धर्म, साहित्य और संस्कृति की अमूल्य निधि हैं।

भक्ति सिद्धान्त सरस्वती की बासठवीं जन्मतिथि पर अभय ने बम्बई में अपने गुरुभाइयों की बैठक में एक कविता और एक निबन्ध प्रस्तुत किया। इन दोनों का खूब स्वागत हुआ और बाद में गौड़ीय मठ की पत्रिका 'हार्मोनिष्ट' में प्रकाशित किया गया। प्रथम प्रकाशित रचना भक्ति सिद्धान्त सरस्वती के पास पहुँची। वे बहुत खुश हुए। इस रचना से इनका यश फैल गया। 'हार्मोनिष्ट' के संपादक इनकी रचना को प्रकाशित करते रहते थे। श्री भक्ति सिद्धान्त सरस्वती की इच्छा से इन्होंने पुस्तक लिखना और छपवाना शुरू किया। इसके लिए इन्हें काफी कठिनाइयों का भी सामना करना पड़ा किन्तु ये निरंतर बढ़ते ही गये।

14 नवम्बर 1977 को ये गोलोकवासी हो गए। गोलोकवासी होने से पूर्व इन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय कृष्ण संचेतना समाज का पथ प्रदर्शन किया। इन्होंने ही इस समाज की स्थापना की और उसे सारे संसार में फैला दिया। इनके जीवनकाल में ही शताधिक आश्रम, पाठशालाएं, संस्थाएं तथा वैदिक गांवों की स्थापना हो गई थी। प्रभुपाद की भक्ति और निष्ठा के परिणाम स्वरूप श्री राधाकृष्ण की भक्ति संसार के कोने कोने में प्रसारित हो रही है। आज सारे संसार में हरे कृष्ण हरे कृष्ण का घोष सुनाई दे रहा है। पश्चिम देशों में गेरुआ वस्त्रधारी भक्तजन वहां की सड़कों पर संकीर्तन करते देखे जाते हैं। आधुनिक काल में भारतीय दर्शन, वैदिक धर्म तथा वैष्णव भक्ति के पुनरुत्थान तथा पश्चिम में उनके प्रचार-प्रसार का मुख्य श्रेय इन्हीं महापुरुष को है। [शै०चौ०]

मंगलायतन (जैन तीर्थ)

तीर्थधाम मंगलायतन उत्तरप्रदेश में अलीगढ़-आगरा राष्ट्रीय राजमार्ग पर अलीगढ़ से 15 कि.मी. दूर हाथरस जनपद में

पंडित प्रवर दौलतराम जी की जन्म एवं साधना भूमि सासनी से 6 कि.मी. दूर दिल्ली पब्लिक स्कूल, अलीगढ़ के सान्निध्य में स्थित है। यहां से हाथरस 15 कि.मी. और केवली भगवान जम्बूस्वामी की निर्वाण भूमि मथुरा 60 कि.मी. दूर है।

तीर्थधाम मंगलायतन का निर्माण श्री आदिनाथ कुन्द-कुन्द कहान दिगंबर जैन ट्रस्ट अलीगढ़ द्वारा हुआ है। इसका उद्घाटन दिन गुरुवार दिनांक 6 फरवरी 2003 को भारत के उप प्रधानमंत्री श्री लालकृष्ण आडवाणी जी के कर कमलों द्वारा संपन्न हुआ था। तीर्थधाम मंगलायतन अत्यंत भव्य धार्मिक एवं आध्यात्मिक परिसर है। जो लगभग 16 एकड़ भूमि में बना हरे-भरे वृक्षों से घिरा हुआ है, यहां शाम के समय लाइटिंग देखने का अहसास अत्यंत अद्भुत है।

मंगलायतन दो शब्दों से मिलकर बना है-मंगल+आयतन। मंगल अर्थात सुख प्रदान कर पाप दूर करने वाला। आयतन अर्थात् पुण्य स्थल। हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि जो सुख देने और पाप को दूर करने में निमित्त हो वह पुण्य स्थान मंगलायतन है। जहां मंगल स्वरूप पंच परमेष्ठी, जिनवाणी, जिन प्रतिमा, जिन मंदिर और जिन धर्म ऐसे नवदेवता स्थापित हैं, वह पुण्य स्थल मंगलायतन है।

तीर्थधाम मंगलायतन आज एक जाना-पहचाना विश्व प्रसिद्ध तीर्थ बन चुका है। जिसमें चार भव्य एवं विशाल जिनायतन कैलाश पर्वत पर आदिनाथ मंदिर, महावीर स्वामी मंदिर, बाहुबली मंदिर और मान स्तंभ मंदिर हैं। तीर्थधाम मंगलायतन में प्रवेश करते ही हृदय आनंद से आल्हादित हो उठता है। मुख्य द्वार के बायीं ओर धन्य मुनिदशा प्रकल्प है, जिसमें मुनि दशा के अनुपम जीवन-चरित्र को आदमकद मूर्तियों के द्वारा दर्शाया एवं लाइट एंड साउंड के माध्यम से प्रत्येक दृश्य का संपूर्ण वृत्तांत बताया जाता है और दायीं ओर दर्शनार्थी विश्राम कक्ष है, जिसमें आने वाले दर्शनार्थी यहां विश्राम कर सकते हैं।

मंगलायतन के मुख्य द्वार से कुछ ही दूरी पर एक भव्य सिंह द्वार है, जिसकी ऊंचाई 21 फीट है। यह सिंह द्वार 16 स्तंभों के आधार पर 34 फीट चौड़ाई में गुलाबी पत्थर से निर्मित है। सिंह के दोनों ओर चंवर युक्त दो देव, प्रत्येक दर्शनार्थी का स्वागत करते प्रतीत होते हैं। सिंह द्वार से मंदिर परिसर आरंभ हो जाता है। सिंह द्वार से 33 फीट की दूरी पर धर्म-ध्वज स्थल है जहां जिनशासन की विजय पताका फहराता हुआ 31 फीट ऊंचा केसरिया धर्म-ध्वज भक्तजनों को यशोगाथा सुनाता हुआ प्रतीत होता है। धर्म-ध्वज स्थल से 35 फीट की दूरी पर 63 फीट उन्नत मान स्तंभ का निर्माण लगभग 110 टन वजनी श्वेत संगमरमर पाषाण से किया गया है। इनकी तीनों कटनियों में तीर्थंकर भगवंतों, आचार्यों, उपाध्यायों, मुनिराजों की विभिन्न मुद्राएं एवं जैन दर्शन की अमर कथाएं उत्कीर्ण हैं।

तीर्थधाम मंगलायतन परिसर में भगवान श्री आदिनाथ की निर्माण भूमि के प्रतिस्वरूप कृत्रिम कैलाश पर्वत की रचना की गई है। एक एकड़ भूमि में 40 फीट उन्नत कृत्रिम कैलाश पर्वत पर लगभग 20 टन वजन के 10 फीट गोलाकार गुलाबी कमल सिंहासन पर आदिजिनेश्वर भगवान श्री आदिनाथ स्वामी का जिनबिंब स्थापित है। कृत्रिम कैलाश पर्वत पर जाने के लिए श्वेत संगमरमर की 72 सीढ़ियां हैं।

मंगलायतन परिसर में मूल नायक भगवान श्री आदिनाथ मंदिर के बायीं ओर लगभग 4500 वर्ग फीट में वर्तमान चौबीसी के अंतिम तीर्थंकर शासन नायक भगवान श्री महावीर स्वामी का सुंदर जिन मंदिर है। जिनमंदिर में संगमरमर की मनुहारी बेदी में भगवान श्री महावीर स्वामी की तेतीस इंच उन्नत श्वेत पद्मासन प्रतिमा के दोनों ओर भगवान पार्श्वनाथ एवं भगवान शांतिनाथ की तीस इंच उन्नत धवल पाषाण प्रतिमाएं स्थापित हैं। जिनमंदिर में मूल नायक भगवान श्री बाहुबली स्वामी की 87 इंच उन्नत खड्गासनस्थ प्रतिमा कमल सिंहासन पर विराजित है। मूल नायक के एक ओर मुनिराज श्री बाहुबली स्वामी की सुप्रसिद्ध मुद्रा में तथा दूसरी ओर मुनिराज श्री भरत स्वामी की 60 इंच उन्नत खड्गासनस्थ प्रतिमाएं विराजमान हैं।

वास्तव में वास्तुकला का बेजोड़ नमूना तीर्थधाम मंगलायतन भक्त एवं आस्था का वह अनोखा संगम है जिसमें भक्त और

ईश्वरी प्रेम की अलौकिक धारा प्रवाहित होती है। यही कारण है कि तीर्थधाम मंगलायतन न केवल अलीगढ़, बल्कि संपूर्ण विश्व में नव-पर्यटन आकर्षण के रूप में स्थापित हो चुका है। [र०व०]

माधव प्रसाद सिंह (बाबूजी)

प्राकृतिक, भौगोलिक एवं सांस्कृतिक विविधताओं वाले हमारे देश की आध्यात्मिक समृद्धता से संपूर्ण विश्व न केवल परिचित है वरन् चमत्कृत भी रहा है। हमारे देश की वैदिक संस्कृति, आश्रम व्यवस्था, जीवन पद्धति सभी कुछ तो विलक्षण रहा है किन्तु मुगलों और अंगेजों की लंबी दासता ने हमारे देश की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि को न केवल जर्जर बना दिया वरन् धर्म एवं अध्यात्म के मूल तत्वों के स्थान पर भारतीय मानस पर ऐसी छद्म धार्मिकता ने आसन जमा लिया जो बहुदेववाद, कट्टरता, आडंबर, पुरोहितवाद एवं कर्मकांड को ही वास्तविक धर्म के रूप में प्रस्तुत करने लगी। पददलित एवं कुंठित भारतीय मानस ने, जिसने दासता को अपनी नियति स्वीकार कर लिया था, इन्हीं सब में अपनी प्रतिष्ठा एवं आत्मगौरव मंडित कर लिया। अनिवार्यत: इसके विरोध में स्वर उठे। कबीर, दादू, पलटू, सुंदरदास, नानक ऐसे ही स्वरों के मूर्तिमान रूप थे। सत्तरहवीं शताब्दी से अनेक सशक्त आध्यात्मिक आंदोलन इस छद्म धार्मिकता एवं आडंबरवाद के विरोध में चुनौती बनकर उभरे। इन आंदोलनों एवं स्वत: स्फूर्त मतों में सर्वाधिक सहज, प्रभावशाली एवं आत्मबोध कराने वाले मत के रूप में जिस मत को प्रतिष्ठा मिली वह था सन् 1861 में ब्रज मंडल के आगरा नगर में एक नितांत गृहस्थ संत परमपुरूष पूरनधनी स्वामी जी महाराज सेठ शिवदयाल सिंह जी द्वारा स्थपित 'राधा स्वामी मत'

'गुरु भक्ति' एवं 'शब्द भक्ति सुरत शब्द योग' पर आधारित इस आध्यात्मिक ज्योति को संसार के हितार्थ स्वामी जी महाराज द्वारा प्रकट कराने का श्रेय द्वितीय आचार्य राय सालिग राम बहादुर हुजूर महाराज को जाता है। जिन्होंने अपनी अटूट गुरुभक्ति से न केवल इस अनमोल आध्यात्मिक स्वर को मुखरित कराया वरन् द्वितीय आचार्य के रूप में राधा स्वामी मत के साधकों के लिये 4 अनिवार्यतायें सत शब्द या सत नाम, सतगुरु, सत अनुराग एवं सत्संग घोषित की।

इसी मध्य मोहल्ला भिखारीदास, मणिकर्णिका के निकट स्वामी जी महाराज से उपदेश प्राप्त कर चुकी स्वामी जी महाराज की बड़ी बहन के यहां पौत्र रूप में 19 जून सन् 1861 को बाबू जी महाराज राय साहब बाबू माधव प्रसाद सिंह ने जन्म लिया। माधव प्रसाद सिंह के पिता राय गंगा प्रसाद सिंह जौहरी थे। सन् 1944 में उनका देहांत हो गया। तब महाराज मात्र 14 वर्ष के थे। स्वभावत: उत्पन्न विपरीत परिस्थितियों में बाबू जी साहब ने एम.ए. की डिग्री हासिल की। सन् 1877 में उनका विवाह शिकोहाबाद निवासी सेठ चिरंजीलाल की सुपुत्री श्रीमती भगवान देई (सुरत प्यारी उर्फ मैया जी) से हुआ। चौथी कक्षा में ही पं. ब्रह्मशंकर मिश्र महाराज साहब से बाबू जी साहेब का परिचय हुआ और फिर ताउम्र वे दोनों एक प्राण दो शरीर बनकर रहे। दोनों को ही संत मत की वास्तविक ज्योति का स्पर्श हजूर महाराज की पुस्तक 'सार बचन कार्तिक' से मिला। दोनों की अकाउन्टेन्ट जनरल के कार्यालय में नियुक्ति हुई। सन् 1907 में महाराज साहब के स्वर्गधाम सिधारने से यह जोड़ी टूट गई। बाबू जी चीफ सुपरिंटेंडेंट के पद तक पहुंचे और सन् 1914 में उन्हें 'राय साहब' के सम्मान से अलंकृत किया गया। सन् 1919 में वे सेवानिवृत्त हो गये।

सन् 1887 में जब हजूर महाराज सेवानिवृत्त होकर आगरा आ गये तभी से उनके आदेश पर इलाहाबाद सत्संग का उत्तरदायित्व संयुक्त सभापति के रूप में महाराज साहब एवं बाबू जी ने वहन करना प्रारंभ कर दिया। आध्यात्मिक जगत में सक्रिय प्रवेश का यह प्रथम द्वार था। प्रत्येक रविवार एवं अवकाश दिवस पर दोनों का हजूर महाराज के दर्शनार्थ इलाहाबाद से आगरा आना उनकी जीवनचर्या में शमिल हो गया। बाबूजी ने दस वर्ष से अधिक समय इसी सुरत शब्द योग की व्यावहारिक साधना में लगा दिया । सन् 1898 में हुजूर महाराज के निजधाम सिधारने पर सत्संग पीपलमंडी आगरा से इलाहाबाद आ गया । महाराज साहब के बाद उनकी बड़ी बहन बुआजी साहिबा के मकान पर (बनारस में)

सत्संग होता था। यह क्रम 5-6 वर्ष चला। 29 अगस्त 1918 को पूरनधनी स्वामी जी महाराज का भंडारा आयोजित हुआ । यह पन्नी गली में आयोजित किया गया। इसी प्रकार 18 मार्च सन् 1929 को हजूर महाराज का शताब्दी भंडारा पीपल मंडी आगरा में मनाया गया।

सन् 1937 में बाबूजी महाराज आगरा आ गये। 30 नवम्बर सन् 1937 को आगरा स्वामीबाग में बाबूजी महाराज ने पहला सत्संग किया। उनके आगमन के बाद स्वामीबाग का योजनाबद्ध विकास प्रारंभ हुआ। स्मरण रहे कि स्वामीबाग का नाम ही प्रथम गुरु स्वामी जी महाराज के नाम पर स्वामीबाग पड़ा था। सन् 1938 में बाबूजी अंतिम बार बनारस गए। सन् 1943 में अस्वस्थ रहने के बाद अक्टूबर सन् 1949 को बाबू महाराज ने चोला छोड़ दिया। तीन दिनों तक उनका शरीर दर्शनार्थ रखा गया।

सन् 1861 से सन् 1949 तक बाबूजी महाराज ने राधा स्वामी मत के आचार्य पद को सुशोभित करते हुए इसे विश्वस्तर पर प्रतिष्ठित एवं लोकप्रिय बनाने की दिशा में संकल्पित होकर कार्य किया। सन् 1861 में जब स्वामी जी महाराज ने आम सत्संग जारी किया था तभी बाबू जी महाराज का जन्म हुआ था। उन्हें तीन-तीन महापुरुषों का सत्संग मिला। उनका जीवन चरित्र दया, प्रेरणा एवं अध्यात्म का जीवंत इतिहास है। [सु०स०]

माहेश्वरी देवी (बुआजी)

बुआजी साहिबा महाराज साहब की बड़ी बहन थीं। इनका नाम माहेश्वरी देवी था। इनके पति का नाम परमेश्वर दत्त था जोकि तिवारी ब्राह्मण थे। महाराज साहब चार भाई थे। पंडित लक्ष्मीशंकर मिश्र, उमाशंकर, रमाशंकर और महाराज साहब। पंडित रमाशंकर जी के बाद एक लड़की थी जो मर गई उसके बाद बुआजी साहिबा हुईं। उसके दो वर्ष बाद महाराज साहब का जन्म हुआ। इस प्रकार बुआजी साहिबा महाराज साहब से चार वर्ष बड़ी थीं। बुआजी साहिबा का मायका और ससुराल दोनों वाराणसी में बड़ी पियरी नाम के मुहल्ले में था।

महाराज साहब और बाबूजी महाराज तो अक्सर हुजूर महाराज के पास आया करते थे मगर बुआजी साहिबा को यह मौका नहीं मिला। हुजूर महाराज की चिट्ठियों से पता चलता है कि वह केवल दो-तीन बार ही हुजूर महाराज के सत्संग में आगरा आईं। महाराज साहब के हुजूर महाराज से उपदेश लेने के थोड़े दिन बाद ही बुआजी साहिबा को भी हुजूर महाराज से उपदेश मिला। वृद्धावस्था के कारण स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिर रहा था। बहुत अल्प समय के के लिए सत्संग की अधिष्ठात्री रहीं इसलिए उनके सत्संग का लाभ बहुत कम लोग उठा सके। महाराज साहब के बाद काफी समय तक बुआजी साहिबा ने प्रकट कार्यवाई करना मंजूर नहीं किया। जब बाबूजी महाराज हाजिर होते थे तभी सत्संगी उनके पास जा सकते थे और सत्संग का लाभ उठा सकते थे।

बुआजी साहिबा का जन्म ऐसे परिवार में हुआ था जहां बनावट और दिखावे का कहीं स्थान न था। हर वस्तु का सही मूल्यांकन किया जाता था। बुआजी साहिबा में आध्यात्मिक शक्ति जगाने की नींव बचपन में ही पड़ गई और वह उत्तरोत्तर सुदृढ़ होती गई। उपदेश के पश्चात् उन्होंने अपना जीवन परमार्थ में बिताया। मिती वैशाख सुदी 15 पूर्णिमा संवत् 1969 वि. बुधवार तदनुसार तारीख 21 मई सन् 1913 ई. को उनका देहांत हो गया। [नि०गौ०]

मिहीलाल

पं. मिहीलाल जी वर्तमान युग के समर्थ गुरु परम संत श्री डॉ. चतुर्भुज सहाय जी के प्रिय शिष्य थे, जिन्होंने अपने दादा गुरु श्री महात्मा रामचन्द्र जी महाराज (फतेहगढ़) के नाम पर रामाश्रय सत्संग की नींव डाली थी। ऐसे महापुरुष का जन्म 12 फरवरी 1902 फाल्गुन कृष्ण पक्ष नवमी सोमवार को हुआ था। पूज्य पंडित जी के पूर्वज उत्तरप्रदेश में अलीगढ़ जिले के अन्तर्गत मुरसान से करीब तीन मील दूर 'पिथा' नामक ग्राम (अब हाथरस जिले) के निवासी थे।

उनके पितामह का नाम पण्डित नेकराम जी था। वह संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान तथा भागवत के अनन्य प्रेमी थे। किसी कारणवश पूज्य पण्डित जी के पूर्वज बाद में आगरा जिले के अन्तर्गत टूण्डला के पास 'चूल्हावली' ग्राम में आकर बस गए और वहीं रहने लगे। इसी कारण सभी लोग उन्हें चूल्हावली का निवासी बताते हैं।

बालक मिहीलाल चार वर्ष के हुए तभी उनकी माता का देहान्त हो गया। उनके बड़े भाई जो उनसे लगभग पाँच वर्ष बड़े थे एक कर्मठ तथा ईश्वर भक्त व्यक्ति थे। माता के देहान्त के पश्चात पिता ने उनका लालन-पालन किया। पिता के स्वर्गवास के पश्चात् पण्डित जी की शिक्षा ननिहाल फतेहाबाद जिला आगरा में हुई। सन् 1918 में हिन्दी-उर्दू मैट्रिक परीक्षा पास कर वह प्राईमरी पाठशाला के अध्यापक बन गए। पण्डित जी की पत्नी का नाम सावित्री देवी था। एक बार पण्डित जी का ट्रांसफर सन् 1931 में ग्राम खन्दौली जिला आगरा के प्राइमरी पाठशाला में हो गया वहां के प्रधानाध्यापक श्री रेवतीराम जी थे। एक दिन पण्डित जी ने रेवतीराम जी से कहा कि-''मैं सच्चे गुरु का दर्शन पास सकूंगा और किसी महापुरुष द्वारा अपना जीवन शुद्ध बना सकूंगा?'' ऐसा कहते-कहते उनकी आंखों में आंसू भर आये। उन दिनों श्री डॉ. चतुर्भुज सहाय जी एत्मादपुर (आगरा) में थे उनका पता मुझे लगा। पण्डित रेवतीराम जी ने कहा डॉक्टर साहब मेरे घर पर आ रहे हैं। जब वह आयेंगे, मैं तुम्हें उनसे मिलाऊँगा।

पण्डित मिहीलाल जी श्री रेवतीराम जी के साथ उनके घर पहुंचे और उनका प्रथम दर्शन किया। पण्डित रेवतीराम जी ने उनसे मेरा परिचय कराया। इसके उपरान्त कुछ देर साधन कराया उन्होंने मेरे हृदय पर अपना हाथ रखकर बताया कि यही स्थान भगवान का है। इस घटना के बाद पण्डित मिहीलाल जी रामाश्रय सत्संग से ऐसे जुड़ गए कि फिर कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। उन्होंने रामाश्रय सत्संग का प्रचार-प्रसार बिहार, बंगाल, राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश आदि के देश के कोने-कोने में जाकर किया। यही नहीं प्रचार-प्रसार के समय पण्डित मिहीलाल जी ने देश के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद जी को भी सत्संगी बना दिया।

सन् 1960 में विश्व धर्म सम्मेलन में भाग लेने हेतु कलकत्ता गए जहां इन्होंने 'रामाश्रय सत्संग मथुरा' का नाम रोशन किया। इन्होंने श्री गुरु महाराज डॉ. साहब के निधन के बाद रामाश्रय की मुख्य गद्दी पर बैठने से इन्कार कर दिया था। इन्होंने सैंकड़ों पुस्तकें लिखीं जो रामाश्रय सत्संग, मथुरा के साधन प्रकाशन से प्रकाशित हो चुकी हैं। [कृ०उ०]

मोहनदास काठियाबाबा

निम्बार्क सम्प्रदायान्तर्गत श्री स्वभूराम देवाचार्य जी की परम्परा में श्री हंसदास जी काठियाबाबा के शिष्य हुए। गुरु सेवा, युगलकिशोर के निजधाम तथा संतसेवा में इनकी अनन्य निष्ठा थी। परम विरक्त और रसिक संतों की श्रेणी में इनकी गणना होती है। [कुं०बि०श०]

युगलमनोहर शरण

युगलमनोहर शरण शुक संप्रदाय के पुनरुद्धारक महापुरुष जी सरस माधुरी शरण के शिष्य थे। इनका जन्म मार्गशीर्ष कृष्ण षष्ठी वि.सं. 1939 को जयपुर के एक प्रतिष्ठित कुल में हुआ था। इनका नाम गंगाबख्श रखा गया। अल्पवय की अवस्था में ही इनकी माता का देहावसान हो गया। इनके पिता श्री महादेव प्रसाद कपड़े के व्यवसायी थे। इनका पालन-पोषण इनकी दादी ने किया था।

गंगाबख्श जी बाल्यावस्था से ही चिन्मय जगत में खोये रहने वाले व्यक्ति थे। ये छात्र जीवन में मेधावी छात्र थे। सं. 1962 में इन्होंने बी.ए. उत्तीर्ण की तथा राजस्थान की राजकीय शिक्षा सेवा में गणित, भूगोल और विज्ञान पढ़ाने के लिए सहायक अध्यापक के पद पर नियुक्ति हुई। 36 वर्षों तक अध्यापन के बाद वि.सं. 1997 में सेवानिवृत्त हुए। इनका विवाह छोटी अवस्था में ही हो गया था। इनके पांच संतानें हुईं, जिसमें केवल बड़े पुत्र श्री राधेश्याम ही जीवित बचे।

सेवानिवृत्ति के बाद में वृंदावन में आकर रहने लगे। वहां इन्होंने रसोपासिका सुश्री प्रेम माधुरी बाई से विरक्त वेश धारण किया और इसी के साथ इनका जुगल मनोहर शरण रखा गया। इन्होंने उत्तर भारत के तीर्थों की यात्रा की। ये संप्रदाय के आचार्यों की जयंतियां बड़े चाव से मनाते थे। ये भूत-भविष्य द्रष्टा अद्‌भुत चमत्कारी संत थे। इनकी भक्ति का आदर्श गोपी प्रेम था। इनका परलोकवास सत्तर वर्ष की आयु में वि.सं. 2009 (5 मई सन् 1957 ई.) को जयपुर में हुआ। इनकी तीन जीवनी प्रकाश में आई हैं। जिनके लेखक श्री नारायण लाल जी माथुर, प्रोफेसर माधोलाल तथा श्री प्रेमस्वरूप ब्रह्मचारी हैं।

इनके शिष्यों में श्री प्रेमस्वरूप ब्रह्मचारी, हनुमान सहाय पुरोहित, प्रभुदयाल वकील, नारायण लाल माथुर तथा प्रहलाद दास जी प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। ये परम भागवत, मूर्धन्य विद्वान, सच्चे संत, विचारक, प्रगतिशील चिन्तक, लेखक, कवि, संपादक और संप्रदाय उन्नायक थे। चरणदासी संप्रदाय के साहित्य के प्रकाशन एवं संप्रदाय के पुनर्जागरण में इनका योगदान अविस्मरणीय है। [क०उ०]

राजा राममोहन राय

भारतीय नवजागरण के अग्रदूतों में राजा राममोहन राय का नाम अत्यन्त विशिष्ट है। उनका जन्म 22 मई 1772 को बंगाल के बर्दवान जिले के राधानगर गांव में हुआ। प्रारंभिक शिक्षा पूरी होने के बाद वे अरबी और फारसी के विशेष अध्ययन के लिए पटना चले गए। वहां उन्होंने इस्लाम और उसके अंश तसव्वुफ का गहन अनुशीलन किया। इससे उनकी मूर्ति पूजा पर आस्था समाप्त हो गई। मूर्ति पूजा को लेकर पिता से अपने मतभेदों के कारण उन्होंने घर छोड़ दिया और भारत-भ्रमण पर निकल गए। 1809 में वे रंगपुर के कलक्टर के दीवान हो गए। सरकारी सेवा से अवकाश ग्रहण करने के बाद 27 सितम्बर 1833 को ब्रिस्तल में उनका देहान्त हुआ।

राजा राममोहन राय हिंदू धर्म को रूढ़ियों से मुक्त करके उसे नया रूप देना चाहते थे। हिंदू धर्म में विद्यमान रूढ़ियों और अंधविश्वासों के उन्मूलन के लिए वे सदैव प्रयासरत रहे। उन्होंने 20 अप्रैल 1828 को कलकत्ता में ब्रह्म समाज की स्थापना की। ट्रस्ट के दस्तावेज (1830) के अनुसार इस समाज में होने वाली पूजा में ऐसी किसी भी सजीव या निर्जीव वस्तु की निंदा का निषेध है जिसकी थोड़े से लोग भी पूजा करते हों। ब्रह्म समाज धार्मिक एकता और सद्‌भाव में वृद्धि को अपना प्रमुख उद्‌देश्य मानता था।

एक प्रखर समाज सुधारक के रूप में राजा राममोहन राय के प्रयासों का ऐतिहासिक महत्त्व है। अपनी भाभी के सती हो जाने पर उन्होंने इस कुप्रथा के विरुद्ध आंदोलन चलाया और अन्ततः तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड बिलियम बेंटिक ने सन् 1829 में सती प्रथा को गैरकानूनी घोषित कर दिया। उन्होंने हिंदू धर्म को विकसनशील बनाने के लिए अथक प्रयास किए। हिंदुत्त्व का कोई ऐसा रूप उन्हें मान्य नहीं था जो विज्ञान और बुद्धिवाद की कसौटी पर खरा न उतर सके। यूरोप के संकीर्ण मानवतावाद के विकल्प में उन्होंने नवोत्थान से प्रेरित बृहत्तर मानववाद को खड़ा किया।

राममोहन राय न केवल राष्ट्रीय बल्कि वैश्विक परिवेश के प्रति बेहद संवेदनशील थे। चीन के संघर्ष, ग्रीस के प्रतिरोध, आयरलैंड की जमींदारी प्रथा, स्पेनिश क्रांति सभी के बारे में वे समाचार पत्रों अथवा अन्य माध्यमों द्वारा अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते थे। उन्होंने कम्पनी के व्यापार-अधिकार को समाप्त करने तथा निर्यात शुल्क हटाने की मांग की। 1823 के प्रेस एक्ट के विरोध में उन्होंने अपना प्रत्यावेदन तैयार कर न्यायालय और ब्रिटिश साम्राज्य को भेजा। इस प्रकार एक विश्व-नेता के रूप में भी उनका योगदान अविस्मरणीय है।

भारतीय नवजागरण से प्रेरित होकर धार्मिक स्वतंत्रता से सामाजिक स्वतंत्रता तथा अन्ततः राजनीतिक स्वतंत्रता तक पहुंचाने के इतिहास में राजा राममोहन राय का नाम कभी भुलाया नहीं जा सकता। [ज०सिं०नी०]

माधव प्रसाद सिंह (बाबूजी)

प्राकृतिक, भौगोलिक एवं सांस्कृतिक विविधताओं वाले हमारे देश की आध्यात्मिक समृद्धता से संपूर्ण विश्व न केवल परिचित है वरन् चमत्कृत भी रहा है। हमारे देश की वैदिक संस्कृति, आश्रम व्यवस्था, जीवन पद्धति सभी कुछ तो विलक्षण रहा है किन्तु मुगलों और अंगेजों की लंबी दासता ने हमारे देश की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि को न केवल जर्जर बना दिया वरन् धर्म एवं अध्यात्म के मूल तत्वों के स्थान पर भारतीय मानस पर ऐसी छद्म धार्मिकता ने आसन जमा लिया जो बहुदेववाद, कट्टरता, आडंबर, पुरोहितवाद एवं कर्मकांड को ही वास्तविक धर्म के रूप में प्रस्तुत करने लगी। पददलित एवं कुंठित भारतीय मानस ने, जिसने दासता को अपनी नियति स्वीकार कर लिया था, इन्हीं सब में अपनी प्रतिष्ठा एवं आत्मगौरव मंडित कर लिया। अनिवार्यत: इसके विरोध में स्वर उठे। कबीर, दादू, पलटू, सुंदरदास, नानक ऐसे ही स्वरों के मूर्तिमान रूप थे। सत्तरहवीं शताब्दी से अनेक सशक्त आध्यात्मिक आंदोलन इस छद्म धार्मिकता एवं आडंबरवाद के विरोध में चुनौती बनकर उभरे। इन आंदोलनों एवं स्वत: स्फूर्त मतों में सर्वाधिक सहज, प्रभावशाली एवं आत्मबोध कराने वाले मत के रूप में जिस मत को प्रतिष्ठा मिली वह था सन् 1861 में ब्रज मंडल के आगरा नगर में एक नितांत गृहस्थ संत परमपुरूष पूरनधनी स्वामी जी महाराज सेठ शिवदयाल सिंह जी द्वारा स्थपित 'राधा स्वामी मत'

'गुरु भक्ति' एवं 'शब्द भक्ति सुरत शब्द योग' पर आधारित इस आध्यात्मिक ज्योति को संसार के हितार्थ स्वामी जी महाराज द्वारा प्रकट कराने का श्रेय द्वितीय आचार्य राय सालिग राम बहादुर हुजूर महाराज को जाता है। जिन्होंने अपनी अटूट गुरुभक्ति से न केवल इस अनमोल आध्यात्मिक स्वर को मुखरित कराया वरन् द्वितीय आचार्य के रूप में राधा स्वामी मत के साधकों के लिये 4 अनिवार्यतायें सत शब्द या सत नाम, सतगुरु, सत अनुराग एवं सत्संग घोषित की।

इसी मध्य मोहल्ला भिखारीदास, मणिकर्णिका के निकट स्वामी जी महाराज से उपदेश प्राप्त कर चुकी स्वामी जी महाराज की बड़ी बहन के यहां पौत्र रूप में 19 जून सन् 1861 को बाबू जी महाराज राय साहब बाबू माधव प्रसाद सिंह ने जन्म लिया। माधव प्रसाद सिंह के पिता राय गंगा प्रसाद सिंह जौहरी थे। सन् 1944 में उनका देहांत हो गया। तब महाराज मात्र 14 वर्ष के थे। स्वभावत: उत्पन्न विपरीत परिस्थितियों में बाबू जी साहब ने एम.ए. की डिग्री हासिल की। सन् 1877 में उनका विवाह शिकोहाबाद निवासी सेठ चिरंजीलाल की सुपुत्री श्रीमती भगवान देई (सुरत प्यारी उर्फ मैया जी) से हुआ। चौथी कक्षा में ही पं. ब्रह्मशंकर मिश्र महाराज साहब से बाबू जी साहेब का परिचय हुआ और फिर ताउम्र वे दोनों एक प्राण दो शरीर बनकर रहे। दोनों को ही संत मत की वास्तविक ज्योति का स्पर्श हजूर महाराज की पुस्तक 'सार बचन कार्तिक' से मिला। दोनों की अकाउन्टेन्ट जनरल के कार्यालय में नियुक्ति हुई। सन् 1907 में महाराज साहब के स्वर्गधाम सिधारने से यह जोड़ी टूट गई। बाबू जी चीफ सुपरिंटेंडेंट के पद तक पहुंचे और सन् 1914 में उन्हें 'राय साहब' के सम्मान से अलंकृत किया गया। सन् 1919 में वे सेवानिवृत्त हो गये।

सन् 1887 में जब हजूर महाराज सेवानिवृत्त होकर आगरा आ गये तभी से उनके आदेश पर इलाहाबाद सत्संग का उत्तरदायित्व संयुक्त सभापति के रूप में महाराज साहब एवं बाबू जी ने वहन करना प्रारंभ कर दिया। आध्यात्मिक जगत में सक्रिय प्रवेश का यह प्रथम द्वार था। प्रत्येक रविवार एवं अवकाश दिवस पर दोनों का हजूर महाराज के दर्शनार्थ इलाहाबाद से आगरा आना उनकी जीवनचर्या में शमिल हो गया। बाबूजी ने दस वर्ष से अधिक समय इसी सुरत शब्द योग की व्यावहारिक साधना में लगा दिया । सन् 1898 में हुजूर महाराज के निजधाम सिधारने पर सत्संग पीपलमंडी आगरा से इलाहाबाद आ गया । महाराज साहब के बाद उनकी बड़ी बहन बुआजी साहिबा के मकान पर (बनारस में)

सेवानिवृत्ति के बाद में वृंदावन में आकर रहने लगे। वहां इन्होंने रसोपासिका सुश्री प्रेम माधुरी बाई से विरक्त वेश धारण किया और इसी के साथ इनका जुगल मनोहर शरण रखा गया। इन्होंने उत्तर भारत के तीर्थों की यात्रा की। ये संप्रदाय के आचार्यों की जयंतियां बड़े चाव से मनाते थे। ये भूत-भविष्य द्रष्टा अद्भुत चमत्कारी संत थे। इनकी भक्ति

[illegible] बाबूजी महाराज आगरा आ गये। 30 नवम्बर सन् 1937 को आगरा स्वामीबाग के बाहरवाले फाटक [illegible] कहला सत्संग किया। उनके आगमन के बाद स्वामीबाग का योजनाबद्ध विकास प्रारंभ हुआ। स्मरण रहे कि स्वामीबाग का नाम ही प्रथम गुरु स्वामी जी महाराज के नाम पर स्वामीबाग पड़ा था। सन् 1938 में बाबूजी अंतिम बार बनारस गए। सन् 1943 में अस्वस्थ रहने के बाद अक्टूबर सन् 1949 को बाबू महाराज ने चोला छोड़ दिया। तीन दिनों तक उनका शरीर दर्शनार्थ रखा गया।

सन् 1861 से सन् 1949 तक बाबूजी महाराज ने राधा स्वामी मत के आचार्य पद को सुशोभित करते हुए इसे विश्वस्तर पर प्रतिष्ठित एवं लोकप्रिय बनाने की दिशा में संकल्पित होकर कार्य किया। सन् 1861 में जब स्वामी जी महाराज ने आम सत्संग जारी किया था तभी बाबू जी महाराज का जन्म हुआ था। उन्हें तीन-तीन परमपुरुषों का सत्संग मिला। उनका जीवन चरित्र दया, प्रेरणा एवं अध्यात्म का जीवंत इतिहास है। [सु०स०]

माहेश्वरी देवी (बुआजी)

बुआजी साहिबा महाराज साहब की बड़ी बहन थीं। इनका नाम माहेश्वरी देवी था। इनके पति का नाम परमेश्वर दत्त था जोकि तिवारी ब्राह्मण थे। महाराज साहब चार भाई थे। पंडित लक्ष्मीशंकर मिश्र, उमाशंकर, रमाशंकर और महाराज साहब। पंडित रमाशंकर जी के बाद एक लड़की थी जो मर गई उसके बाद बुआजी साहिबा हुईं। उसके दो वर्ष बाद महाराज साहब का जन्म हुआ। इस प्रकार बुआजी साहिबा महाराज साहब से चार वर्ष बड़ी थीं। बुआजी साहिबा का मायका और ससुराल दोनों वाराणसी में बड़ी पियरी नाम के मुहल्ले में था।

महाराज साहब और बाबूजी महाराज तो अक्सर हुजूर महाराज के पास आया करते थे मगर बुआजी साहिबा को यह मौका नहीं मिला। हुजूर महाराज की चिट्ठियों से पता चलता है कि वह केवल दो-तीन बार ही हुजूर महाराज के सत्संग में आगरा आईं। महाराज साहब के हुजूर महाराज से उपदेश लेने के थोड़े दिन बाद ही बुआजी साहिबा को भी हुजूर महाराज से उपदेश मिला। वृद्धावस्था के कारण स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिर रहा था। बहुत जल्द ही वे सत्संग की अधिष्ठात्री रहीं इसलिए उनके सत्संग का लाभ बहुत कम लोग उठा सके। महाराज साहब के बाद काफी समय तक बुआजी साहिबा ने प्रकट कार्यवाई करना मंजूर नहीं किया। जब बाबूजी महाराज हाजिर होते थे तभी सत्संगी उनके पास जा सकते थे और सत्संग का लाभ उठा सकते थे।

बुआजी साहिबा का जन्म ऐसे परिवार में हुआ था जहां बनावट और दिखावे का कहीं स्थान न था। हर वस्तु का सही मूल्यांकन किया जाता था। बुआजी साहिबा में आध्यात्मिक शक्ति जगाने की नींव बचपन में ही पड़ गई और वह उत्तरोत्तर सुदृढ़ होती गई। उपदेश के पश्चात् उन्होंने अपना जीवन परमार्थ में बिताया। मिती वैसाख सुदी 15 पूर्णिमा संवत् 1969 वि. बुधवार तदनुसार तारीख 21 मई सन् 1913 ई. को उनका देहांत हो गया। [वि०मौ०]

सिहोलाल

ई. सिहोलाल जी वर्तमान युग के समर्थ गुरु परम संत श्री डॉ. चतुर्भुज सहाय जी के पिता थे, जिन्होंने अपने गुरु श्री महात्मा रामचन्द्र जी महाराज (फतेहगढ़) के नाम पर रामाश्रय सत्संग की नींव डाली थी। [illegible] का जन्म 12 फरवरी 1902 फाल्गुन कृष्ण पक्ष नवमी सोमवार को हुआ था। पूज्य पंडित जी के पूर्वज उत्तरप्रदेश में अलीगढ़ जिले के अन्तर्गत मुरसान से करीब तीन मील दूर 'पिथा' नामक ग्राम (अब हाथरस जिले) के निवासी थे।

राधास्वामी सत्संग (पीपल मण्डी)

धार्मिक संप्रदायों में भी आंतरिक गतिरोध आते रहे हैं। राधास्वामी मत में भी इस प्रकार की प्रवृत्ति देखी गई। सन् 1902 में केंद्रीय परिषद के गठन के बाद राधास्वामी मत के तीसरे गुरु महाराज साहिब के जीवन काल में ही स्पष्ट रूप से दो भागों में सत्संग के केंद्र अस्तित्व में आए। प्रथम राधास्वामी मत के संस्थापक स्वामी जी महाराज की समाधि स्थल स्वामीबाग तथा दूसरा द्वितीय गुरु हुजूर महाराज की पीपल मंडी स्थित समाधि स्थल। द्वितीय गुरु हुजूर महाराज की समाधि स्थल पर उनके पुत्र अयोध्या प्रसाद जिन्हें लाला जी महाराज के नाम से भी जाना जाता था, ने निरन्तर सत्संग प्रारंभ कराया गया। अयोध्या प्रसाद अर्थात् लाला जी महाराज के बारे में यह कहा जाता है कि वह पूर्व जन्म में अयोध्या में एक महान संत थे तथा उन्होंने अपने शिष्यों को यह बताया था कि अगले जन्म में वह हुजूर महाराज के पुत्र के रूप में आगरा में जन्म लेंगे। सन् 29 दिसम्बर 1866 को इनके जन्म के समय अयोध्या से कुछ साधु हुजूर महाराज के पीपल मंडी स्थित निवास पर अपने पूर्व जन्म के गुरु की खोज में आये थे। अयोध्या के प्रसंग से जुड़ा होने के कारण ही इनका नाम अयोध्या प्रसाद रखा गया।

अपने पिता हुजूर महाराज के अनुरूप ही अयोध्या प्रसाद नियमित सत्संग करने लगे। अयोध्या प्रसाद ने डाक विभाग में इंसपैक्टर के रूप में नौकरी प्रारंभ की, लेकिन अजमेर स्थानांतरण होने के कारण नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। सन् 1898 से पीपल मंडी स्थित समाधि पर अयोध्या प्रसाद अर्थात् लाला जी महाराज द्वारा नियमित सत्संग किया जाता रहा तथा बड़ी संख्या में राजस्थान, पंजाब तथा पश्चिम उत्तरप्रदेश के अनुयायी बने। लाला जी महाराज का निधन 26 नवम्बर सन् 1926 को हुआ तथा उनकी समाधि का निर्माण उनके पिता हुजूर महाराज की समाधि के पास ही किया गया।

लालाजी महाराज के देहान्त के बाद गुरु प्रसाद जिन्हें कुंवर जी महाराज के नाम से जाना गया, पीपल मंडी स्थित सत्संग केंद्र के गुरु बने। अपने दादा हुजूर महाराज के अनुरूप ही इन्होंने बचपन से आध्यात्मिक सोच को जन्म दिया। वह दयालु तथा दानी व्यक्ति के रूप में जाने जाते थे। हजारों की संख्या में सत्संगियों ने उनसे आध्यात्मिक मार्गदर्शन से लाभ प्राप्त किया। 27 फरवरी 1959 को उनका देहांत हुआ। उनकी समाधि भी उनके पिता की समाधि के निकट पीपल मंडी स्थित सत्संग केंद्र पर स्थापित की गई है।

पीपल मंडी स्थित राधास्वामी सत्संग केंद्र में गुरु परंपरा आगे भी चलती रही है और इसी कड़ी में अगम प्रसाद माथुर जिन्हें दादाजी के नाम से भी जाना जाता है। इस गुरु परंपरा का निर्वहन कर रहे हैं। अगम प्रसाद माथुर अर्थात् दादाजी आगरा कॉलेज में इतिहास विभाग के विभागाध्यक्ष रहे तथा दो बार आगरा विश्वविद्यालय के कुलपति रहे हैं।

पीपल मण्डी स्थित राधास्वामी सत्संग केंद्र पर प्रतिवर्ष भंडारे का आयोजन किया जाता है तथा देश-विदेश से बड़ी संख्या में अनुयायी यहां आते हैं। [जे०पी०श०]

राधासर्वेश्वरशरण देवाचार्य

अनंत विभूषित जगद्गुरु निंबार्काचार्य श्रीराधासर्वेश्वरशरण देवाचार्य जी का आविर्भाव निंबार्क तीर्थ सलेमाबाद में ही श्री राजनाथ शर्मा गौड़ इन्दौरिया के यहां 10 मई सन् 1929 के पावन दिवस हुआ। इनके बचपन का नाम रतनलाल था। आषाढ़ शुक्ल द्वितीया (रथयात्रा) वि.सं. 1997 को गुरुदेव श्रीबालकृष्णशरण देवाचार्य जी से रतनलाल ने वैष्णवी दीक्षा आत्मसात की। निंबार्कपीठाधिपति गुरुदेव के सान्निध्य में आचार्यपीठ में ही पंडित श्री लाड़िलीशरण काव्यतीर्थ द्वारा श्रीमहाराज का प्रारंभिक शिक्षण कार्य हुआ किन्तु बड़े महाराज के आकस्मिक निकुंजवास और आचार्यपीठ में अनुकूलतम परिस्थितियाँ न होने तथा आपकी बाल्यावस्था के दृष्टिगत इसकी भावी शिक्षा का प्रबंध ब्रजविदेही चतु: सम्प्रदाय श्रीमहंत श्रीधनंजयदास काठियाबाबा की देखरेख में वृन्दावन में किया गया।

बाल्यकाल से ही सर्वेश्वर प्रभु के शरणापन्न होकर आचार्यपीठ के दायित्त्वों का श्रीजी महाराज द्वारा इतनी कुशलता

और गरिमा से निर्वहन किया गया कि पीठ की मर्यादा और प्रभामंडल न सिर्फ अक्षुण्ण रहे बल्कि उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होता रहे। यह पीठ निंबार्क संप्रदाय के सभी स्थानों में अग्रगण्य मानी जाती है, अत: इस बात का महत्त्व और भी अधिक व्यापक हो जाता है। 14 वर्ष की अल्पायु में श्रीजी महाराज ने कुरुक्षेत्र में आयोजित अखिल भारतीय साधु सम्मेलन के अध्यक्ष पद को सर्वसम्मति से सुशोभित किया, जिसमें शंकराचार्य सरीखे धर्माचार्यों ने उनके महत्त्व को स्वीकार किया था। इसी काल में श्रीनिंबार्काचार्य तीर्थयात्रा स्पेशल ट्रेन द्वारा सर्वेश्वर प्रभु के सान्निध्य और शिष्य परिकर सहित आचार्यश्री ने सप्तपुरियों और तीन धामों की गौरवपूर्ण यात्रा की। दर्जनों कुम्भों की शोभा को समालंकृत किया। वि.सं. 2026 में फाल्गुन-चैत्र मास में वृहद अभूतपूर्व ब्रज चौरासी कोस पदयात्रा समारोह आचार्यजी के सान्निध्य में सम्पन्न हुआ। इसी कारण आचार्यश्री की प्रतिष्ठा संत, विद्वत एवं समाज के विभिन्न वर्गों में अत्यंत पवित्र है। सम्प्रदाय के प्रमुख स्थल निम्बग्राम, वृन्दावन, मूंगी पैंठण और परशुरामद्वारा के साथ ही अन्य स्थलों का भव्य निर्माण तथा जीर्णोद्धार आचार्यश्री की निष्ठा और भगवत्परायणता के द्योतक हैं। संक्षेप में आचार्यपीठ और सम्प्रदाय की चहुंदिश श्रीवृद्धि श्रीसर्वेश्वरशरण देवाचार्य जी के आचार्यत्व काल में हुई। इनके द्वारा रचित प्रमुख ग्रंथावलियों में 'श्रीनिंबार्कगोपीजनवल्लभाष्टकम्', 'श्रीजानकीवल्लभ स्तव:', 'श्रीनिकुंज सौरभम्', 'श्रीस्तवरत्नांजलि', 'श्रीराधाशतकम', 'श्रीनिंबार्क चरितम्', 'मंत्रराज भावार्थ दीपिका', 'श्रीराधा राधना', 'श्रीमाधवप्रपन्नाष्टकम्', 'श्रीपरशुराम स्तवावली', 'श्रीहनुमन्महाष्टकम्', 'विवेकवल्ली', 'पंचस्तवी श्रीयुगल गीतिशतकम', निंबार्काचार्य कृत 'प्रात: स्तवराज स्तोत्र' पर 'युग्मतत्वप्रकाशिका' एवं 'श्रीराधासर्वेश्वरालोक:' आदि प्रमुख हैं। [कुं०बि०श०]

रामअजुध्य प्रसाद (लालाजी)

मुगलकाल और अंग्रेजों की गुलामी के काल में हमारे देश के सनातन हिन्दू धर्म को जो सबसे बड़ा आघात पहुंचा, वह इस धर्म में बहुदेववाद, पुरोहितवाद, कट्टरता, संकीर्णता एवं अंधविश्वास की जड़ें मजबूत होना था । धर्म का वास्तविक कल्याणकारी रूप इन सब की छांव में ऐसा छुप गया कि धर्म का वास्तविक अर्थ ही बदल गया। भारतीय मनीषा ने गुलामी को अपनी नियति स्वीकार कर लिया और धर्म के इस छद्म रूप में अपनी गरिमा एवं प्रतिष्ठा को देखना प्रारंभ कर दिया। स्वाभाविक प्रतिक्रिया के रूप में उदित हुए अनेक मतों एवं आध्यात्मिक चिंतन शक्ति पुंजों में आध्यात्मिक पुनर्जागरण के सर्वाधिक शक्तिशाली एवं विश्वसनीय मत के रूप में ब्रज क्षेत्र के आगरा नगर में अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में राधास्वामी मत का उदय हुआ।

राधा स्वामी मत के प्रवर्तक एवं प्रथम आचार्य सेठ शिवदयाल सिंह परम पुरुष पूरन धनी स्वामी जी महाराज ने अपने काव्य ग्रंथ 'सारवचन राधास्वामी, छन्द-बन्द' तथा गद्यकृति सारवचन वार्तिक' के माध्यम से अपने विचारों को कुल मालिक अर्थात् परम सत्ता के विचारों के संबंध में चिंतन के रूप में प्रस्तुत किया उन्होंने 'गुरु भक्ति' एवं 'शब्द शक्ति सुरत शब्द योग' इन दो अनिवार्यताओं को अपने मत के अनुयायियों को अपनाने का आदेश दिया।

सहज, सरल निश्छल प्रेम पर आधरित राधास्वामी मत के द्वितीय आचार्य राय सालिगराम बहादुर हजूर महाराज ने आदर्शतम गुरु भक्ति का उदाहरण पेश किया और पोस्ट मास्टर जनरल के उच्च पद से सेवानिवृत्त होने के बाद द्वितीय आचार्य के रूप में उन्होंने हजूरी भवन को विकसित किया एवं सत शब्द, सतगुरु, सत अनुराग एवं सत्संग की अनिवार्यता को राधास्वामी मत की आचार संहिता के रूप में स्थापित किया।

सन् 1898 में हजूर महाराज के निजधाम सिधारने के बाद उनके सुयोग्य पुत्र ने उनके आध्यात्मिक उत्तराधिकारी का भी कार्यभार बड़ी सुगमता से निर्वाह किया।

29 दिसम्बर सन् 1866 को अजुध्या प्रसाद जी का जन्म, अयोध्या के कुछ संतों द्वारा उन्हें अपना गुरु मानकर दर्शन करना इस कारण उनका नाम अजुध्या प्रसाद रखा जाना, अंग्रेजी, उर्दू एवं फारसी भाषा पर अधिकार डाक विभाग में

आर.एम. एस. के पद पर कार्य आदि आयाम पार कर उन्होंने अपने पिता में ही अपने मार्गदर्शक एवं आध्यात्मिक गुरु की छवि के दर्शन किये।

मत संस्थापक स्वामी जी महाराज को प्रारंभ से ही उनकी आध्यात्मिक रुचि का एहसास हो गया था। इसी कारण मात्र 9 वर्ष की आयु में ही स्वामी जी महाराज ने उन्हे मत में दीक्षित कर दिया। स्वामी जी महाराज ने भी अपनी दिव्य दृष्टि से भविष्य का दर्शन कर लिया था और उन्हें विश्वास हो गया था कि उनके पुत्र के उपरान्त उनका पौत्र ही राधास्वामी मत का प्रकाश स्तम्भ साबित होगा।

हजूर महाराज ने भी अपने पुत्र का आध्यात्मिक संसार की रश्मियों से परिचित कराया। अज्युध्या प्रसाद जी ने शीघ्र ही अपने पद को त्याग पिता या सही अर्थों में अपने गुरु की सेवा को ही अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया। उनके पिता उनके लिये पिता नहीं वरन् समस्त भावना एवं दिव्यता से परिपूर्ण परम पिता थे। इस अनुभव में उन्हें गुरु की एकनिष्ठ सेवा, श्रद्धा एवं भक्ति के ऐसे पद पर आसीन कर दिया जो अनुपम था, अतुलनीय था एवं अद्वितीय था। भक्ति की प्रत्येक परीक्षा एवं कसौटी उनके लिये छोटी पड़ गई।

सन् 1898 में हजूर महाराज के निजधाम पधारने के उपरांत स्वाभाविक रूप से राधास्वामी मत के संचालन का गुरुतर भार अजुध्या प्रसाद जी पर आ गया। पीढ़ियों से संचित आध्यात्मिक ज्योति के पूर्ण दीप्यमान व प्रकाश के रूप में उनके राधास्वामी मत के तृतीय आचार्य पद पर आसीन् होने पर उन्हें सम्मानपूर्वक लालाजी महाराज के रूप में असीम ख्याति मिली।

राधास्वामी मत की 4 अनिवार्यताओं का विश्लेषण वे इतनी सहज एवं सरल शैली में कार्य करते थे कि न केवल राधास्वामी मत के अनुयायी वरन् अन्य संप्रदायों के अनुयायियों को भी उसमें अद्‌भुत रस एवं आनन्द की अनुभूति होती थी। सम्भवत: यह उनके व्यक्तित्व एवं प्रवचन शैली का ही प्रभाव था कि प्रतिदिन दोनों समय (प्रात: एवं सायं) आयोजित उनके सत्संग के श्रोताओं की संख्या बढ़ती ही गई। विशेष पर्वों एवं उत्सवों पर विशेष सत्संग, जिसमें उस पर्व एवं उत्सव के वास्तविक स्वरूप को प्रकट किया जाता था, के आयोजन की परंपरा उन्होंने ही प्रारम्भ की।

आध्यात्मिक चिंतकों का यह विश्वास है कि यदि शिष्य में सच्ची श्रद्धा एवं विश्वास हो तो गुरु एवं शिष्य की आत्मा का एकाकार हो जाता है। लाला जी महाराज के अनुयायी भी अक्सर यह महसूस करते थे कि लालाजी महाराज के अंतर में अपने पिता के जैविक अंश के साथ-साथ अपने पिता के गुरुतत्व का अंश भी स्थापित हो चुका था।

लाला जी महाराज ने राधास्वामी मत के उन आध्यात्मिक विश्लेषणों को, जिन्हे उनके पिता-गुरू हजूर महाराज ने उद्‌भाषित किया था एवं उनके जीवन-चरित्र को न केवल बड़े ही परिश्रम से संकलित किया वरन् बड़ी कुशलता से संपादित कर पुस्तक रूप में प्रकाशित भी किया। हजूर महाराज के व्यक्तित्व एवं राधास्वामी मत के आध्यात्मिक स्वरूप के विषय में यह पुस्तक आज भी प्रामाणिक, अधिकृत एवं विश्वसनीय जानकारी का स्रोत मानी जाती है। तत्कालीन प्रचलित सरल बोलचाल की भाषा में 'जीवन चरित्र हजूर महाराज' के नाम से रचित यह पुस्तक राधास्वामी संप्रदाय की अनमोल निधि है।

लाला जी महाराज के चिंतन की दो प्रमुख विशेषतायें थीं। वे भौतिक प्रवृत्तियों को हानिप्रद समझते थे । उनका दृढ़ विश्वास था कि सत्संग आत्मिक विकास की एकमात्र सीढ़ी है और सत्संग में भौतिक प्रवृत्तियों का प्रवेश हानिप्रद है। अपने उपदेशों में वे इसका उल्लेख अवश्य करते थे।

विशेष प्रतिद्वन्द्विता एवं विवाद व्यक्ति की आध्यात्मिक उन्नति की राह के रोड़े हैं। अत: यदि व्यक्ति आध्यात्मिक उन्नति चाहता है तो उसे इन तीनों से यथासंभव बचना चाहिये। लालाजी महाराज की एक उल्लेखनीय विशेषता उनके पत्र थे। समय-समय पर वे सतसंगियों को पत्रों के माध्यम से भी अपने विचारों से अवगत कराने के साथ-साथ दिशा निर्देश भी देते थे। उन महत्वपूर्ण पत्रों का 'लाला जी महाराज' नामक पुस्तक में संकलित किया गया 'राधास्वामी मत'

की आध्यात्मिक निधि की श्रृंखला में यह पुस्तक भी महत्वपूर्ण स्थान रखती है। 26 नवम्वर सन् 1926 को लाला जी महाराज ने देह त्याग दी। 28 वर्षों तक राधास्वामी सत्संग के शीर्षस्थ पुरुष के रूप में उन्होंने अपने अनुयायियों पर प्रेम एवं आध्यात्मिक विचारों की अनवरत वर्षा की।

लाला जी महाराज की समाधि का निर्माण पीपल मण्डी स्थिति हजूर महाराज की समाधि के निकट ही करवाया गया। इसकी स्थापना चतुर्थ आचार्य कुंवर जी महाराज ने सन् 1926 में ही करवाई। श्वेत संगमरमर से निर्मित इस अष्टकोणीय समाधि पर सुन्दर पुष्प-पत्तियों को बड़े ही आकर्षक तरीके से उकेरा गया है। राजस्थानी शैली से बना स्तम्भों पर आधारित समाधि-भवन दर्शनीय है।

विवादों एवं प्रतिवादों से परे अध्यात्म की सहज धारा प्रवाहित करने वाले राधास्वामी मत के तृतीय आचार्य लाला जी महाराज का संपूर्ण जीवन एवं उनकी गुरुभक्ति तथा सहज-प्रेम के प्रति समर्पण है। [सु०स०]

रामचंद्र (महात्मा)

परम संत महात्मा श्री रामचन्द्र जी का जन्म विक्रम संवत् 1930 सन् 1873 ई. में कायस्थ परिवार में हुआ था। आपके पूर्वज भोगांव मैनपुरी के रहने वाले थे। भोगांव समेत पांच सौ मौजे (गांव) आपके पूर्वजों को जागीर में मिले थे। परन्तु समय के साथ वह सब बातें नष्ट हो गईं और इनके समय में बराय नामक थोड़ी-सी जमींदारी रह गई।

इनके पिता फर्रुखाबाद चुंगी में सुपरिटेन्डेन्ट थे। उस समय उनकी बड़ी अच्छी स्थिति थी। आपने वहीं रहकर विद्याध्ययन किया था। पिता के स्वर्गवास हो जाने पर गृहस्थी का बोझ आपके कंधों पर आ पड़ा। उसी समय आपने पढ़ाई छोड़कर कलक्टरी फर्रुखाबाद में मुलाजमात कर ली और अन्त में मुहाफिज दफ्तर के पद से पेंशन पाई। श्री रामचन्द्र जी में कुछ इस प्रकार के संस्कार थे कि भगवद् सम्बन्धी बातों में आपको अधिक रुचि थी। श्री रामचन्द्र जी की माताजी नित्य प्रति पूजा के समय रामायण पाठ किया करती थीं। वह नित्य चुपचाप बैठकर रोजाना पाठ सुना करते थे।

जब इनकी आयु 19 वर्ष की थी तो एक दिन किन्हीं परम संत की दृष्टि इन पर पड़ी। संस्कारी समझकर इनको अपने पास बुलाया और बोले बेटे तुमको ब्रह्मविद्या सिखाएँ। पहले तुम इसको सीखो फिर हिन्दुओं में इसका प्रसार करो। उस दिन से वह उनके पास जाने लगे। संतों के सिखाने का ढंग निराला ही होता है। गुरु महाराज जी श्री रामचन्द्र जी से हमेशा कहा करते थे कि ईश्वर का नाम सभी भज सकते हैं, चाहे वह किसी भी जाति और धर्म को मानने वाला हो। श्री रामचन्द्र जी में यह सारे गुण विद्यमान थे। वृद्ध और विद्वानों को हमेशा उच्च आसन पर बैठाते थे। सत्संग के समय गद्‌दी तकिया पर कभी नहीं बैठते थे। दूसरों के कष्टों को उतना ही अनुभव करते कि जितना स्वयं अपने कष्टों की करते थे। किसी के कष्ट के बारे में मालूम होते ही यथाशक्ति उसके लिए सहायता करते थे।

आपका चरित्र बड़ा ओजस्वी था। आवाज बड़ी सुरीली और मधुर थी। वाणी में ऐसा रस था कि सुनने वाले कभी अघाते नहीं थे। संयमी मनुष्य अपनी कल्पना से सभी कुछ कर सकता है। श्री पतंजलि ने भी योग शास्त्र में इसका बहुत वर्णन किया है। सन् 1930 में एटा में वसन्त पंचमी के दिन भण्डारे पर महात्मा जी महाराज स्वयं पधारे थे। 14 अगस्त 1931 ई. में श्री रामचन्द्र जी का स्वर्गवास हो गया। [कृ०उ०]

रामाश्रय सत्संग (एटा)

परम सन्त डॉ. चतुर्भुज सहाय जी की जन्मस्थली एटा के चमकरी नामक गांव से रामाश्रय सत्संग का बीजारोपण हुआ। आपके माता-पिता दोनों धार्मिक प्रवृत्ति के थे। जहां अक्सर विद्वानों और ब्राह्मणों का आना जाना लगा रहता था। आगे चलकर परम सन्त डॉ. चतुर्भुज सहाय जी को समर्थ गुरु महात्मा रामचन्द्र जी जैसे महापुरुष से मुलाकात हुई

जिनके आप बहुत बड़े भक्त बन गये। इन्हीं की प्रेरणा से आगे चलकर आपने एटा में सर्वप्रथम सन् 1930 में प्रथम भण्डारा बसन्त पंचमी के दिन किया। इससे पहले भण्डारा केवल फतेहगढ़ में ही होता था।

सन् 1932 में रामाश्रय सत्संग का भण्डारा परम सन्त डॉ. चतुर्भुज सहाय के मकान के चबूतरे पर आयोजित किया गया। उस समय आप एटा में रहते थे। उस समय जिस प्रकार आजकल साधना करायी जाती है, ऐसा नियम नहीं था। बाद में यह सत्संग 24, 25 और 26 दिसम्बर 1934 को पाँचवें भण्डारे के रूप में यहीं एटा में आयोजित किया गया।

सन् 1940 में टूण्डला (चूल्हावली) में भण्डारे का आयोजन किया गया। जो परम सन्त पण्डित मिहीलाल जी का निवास स्थल था। इसके बाद शिकोहाबाद में भण्डारे का आयोजन किया गया। चूंकि एटा में पहले रेलवे लाइन नहीं थी अत: भक्तों को आने-जाने में बड़ी कठिनाई पड़ती थी। इसके अलावा यहीं पर 1 अगस्त सन् 1933 को जो 'साधन' मासिक पत्रिका का संचालन किया गया था। लोगों को एटा के सत्संग में आने-जाने में बड़ी परेशानियां थीं।

अब इस समय रामाश्रय सत्संग का मुख्य कार्यालय डेम्पियर नगर, मथुरा में है। जहाँ पर मुख्य कार्यक्रम आयोजित होते हैं। मथुरा में रामाश्रय सत्संग के कार्यक्रम भले ही विशाल रूप में किये जाते हैं किन्तु परम सन्त गुरु की जन्मस्थली चमकरी (एटा) में भी पूर्व की भांति अब भी बीच-बीच में कार्यक्रम आयोजित होते रहते हैं। पूज्य गुरुजी की एटा की इस स्थली को एक स्थायी चिरस्मरणीय आध्यात्मिक केन्द्र के रूप में स्थापित करने की योजना है। जहां लोगों में ज्ञान का प्रकाश रामाश्रय सत्संग के माध्यम से पहुंचाया जा सके। [क०सिं०]

रामाश्रय सत्संग के प्रमुख ग्रंथ

गूढ़ तथा अनुभवी गुप्त रहस्यों को सरल भाषा द्वारा जनता तक पहुंचाना तथा सदाचार की शिक्षा देना 'साधन' का मुख्य उद्देश्य है। रामाश्रय सत्संग की पुस्तकें ज्यादातर साधन प्रकाशन डेम्पियर नगर, मथुरा से प्रकाशित हुई हैं। जो कि यहां के परम समर्थ गुरुओं, सत्संगियों तथा अध्यात्म-प्रेमी बन्धुओं द्वारा लिखी गयी हैं। इनमें से अधिकांशत: समर्थ गुरु परमहंस डॉ. चतुर्भुज सहाय जी द्वारा एवं पण्डित मिहीलाल जी द्वारा लिखी गयी हैं। रामाश्रय सत्संग के प्रमुख ग्रंथों का विवरण निम्नवत है-

अमूल्य निधि-यह पुस्तक चार खण्डों में प्रकाशित है। इस पुस्तक में गुरु महाराज द्वारा समय-समय पर दिये प्रवचनों का संग्रह है।

अमृत बिन्दु-हमारा सिद्धान्त, हमारा जीवन, शन्ति का रहस्य, आत्मा क्या है?, निन्दा-आठवीं भूमिका, बौद्ध व ईसाई मिशनरी आदि अनुभवों एवं प्रवचनों पर यह पुस्तक आधारित है।

अलौकिक भक्ति योग-यह सन्त साहित्य का उच्चकोटि का ग्रंथ है। जिज्ञासु भक्तों के लिये यह ग्रंथ अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुआ है। यह एक ऐसा अनुपम ग्रंथ है जो हमारे जीवन में अज्ञान को दूर कर ज्ञान प्रदान करता है।

आध्यात्मिक एवं शारीरिक ब्रह्मचर्य-ब्रह्मचर्य का वास्तविक रूप, ब्रह्मचारी के लक्षण, बह्यनिष्ठ होने और तद्रूपता करने के उपनिषदीय साधन, ब्रह्मचारी और अनेक यज्ञ आदि का वर्णन किया गया है।

आध्यात्मिक विषय मीमांसा-ईश्वर की उत्पत्ति, ईश्वर और जीव, आत्माओं के भेद, साकार-निराकार के दर्शन, कर्मों के भोग, रोग-निवारण, भगवान के अवतार, नवदुर्गा शक्ति उपासना, रूहानी ताकत सम्बन्धी प्रश्नों के उत्तर, प्रश्नोत्तर रूप में इस पुस्तक में उपलब्ध हैं।

उपनिषद् तत्व विवेचन-इस पुस्तक में विभिन्न उपनिषदों पर विस्तार से विवेचना की गयी है।

गुरु भक्त सहजोबाई-इस पुस्तक में समर्पण योग एवं भृंगी साधना का विस्तृत वर्णन है। अनेकों दृष्टान्तों से परिपूर्ण गुरु और शिष्यों के कर्तव्यों का विवरण दिया गया है।

पंचकोशी साधना-इसमें सृष्टि के तीनों रूपों स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण, पंचकोशों एवं सात मण्डलों का विस्तृत वर्णन किया गया है।

परिविहार-इसमें गुरु महाराज की तीन यात्राओं, तपोवन, बिहार और राजस्थान का वर्णन है।

भगवान श्रीकृष्ण की लीलायें-श्रीकृष्ण के जीवन की लीलायें धर्म एवं परमार्थ की समीक्षा, त्रेता एवं द्वापर की नीतियों और क्षत्रिय एवं ब्राह्मण धर्म की विवेचना की गयी है।

मृत्यु और मृत्यु के पश्चात्-मानव जीवन की समस्याओं का समाधान, मुक्ति का सरलतम मार्ग एवं पूर्वजन्म, स्वर्ग व नरक आदि विषयों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है।

महात्मा श्री रामचन्द्र जी की जीवनी व उपदेश-यह एक अमूल्य ग्रंथ है। योग विद्या में नवीन अन्वेषण क्या-क्या हुये और इसमें कितनी सरलती दी गयी, इत्यादि यही इस पुस्तक का विषय है।

योग फिलासफी और नवीन साधना-योग विद्या पर यह अनुपम पुस्तक समर्थ गुरु श्री पूज्य डॉक्टर साहब की लेखनी से निकली है। योग का प्रारम्भ कैसे हुआ और किसी प्रकार उसमें नवीन अन्वेषण होते गये, शक्तियों का प्रयोग कैसे होता है आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है।

रहस्य भरी गाथाएं-इसमें ऋषिकाल से ही गाथाओं के माध्यम से आध्यात्मिक रहस्यों का उद्घाटन की बातों का वर्णन मिलता है।

श्री गुरुदेव के महत्त्वपूर्ण पत्र-इसमें उन सभी पत्रों का संग्रह है जो श्री गुरु महाराज ने साधकों को लिखे थे।

संत चरितावली-इस पुस्तक में श्री गुरु महाराज द्वारा लिखे गये सन्तों के चरित्र के बारे में वर्णन मिलता है।

संतों की वार्ता-इसमें गुरु की यशगाथा का वर्णन किया गया है।

संत श्री तुकाराम-यह एक वीर बालक के गृहस्थ जीवन की करुण गाथा, वैराग्य हो जाने पर समाधि में ब्रह्मानन्द की स्थिति का गृहस्थी प्रकरण, विभूति प्रकरण की अनुपम घटनायें, शिवाजी और समाधि प्रकरण दिया है।

संत श्री मीराबाई-भक्त शिरोमणि मीराबाई कलिकाल में प्रेम और भक्ति का स्पष्ट स्वरूप समझाने के लिये प्रकट हुई थीं। इसी का वर्णन इस पुस्तक में किया गया है।

संस्मरण पूज्य गुरुदेव-इस पुस्तक में पूज्य गुरुदेव का सांक्षिप्त जीवन परिचय का वर्णन है।

साधना तत्व-साधना तत्व पूज्य पण्डित महाराज के अनेकानेक अध्यात्म के गूढ़ रहस्यों से भरे 59 लेखों का संग्रह है। जो पांच पुष्पों में बांटा गया है।

साधन-समर्थ गुरु डॉ. चतुर्भुज सहाय जी ने रामाश्रय सत्संग से भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचार के गूढ़ रहस्यों को सरल एवं सुबोध भाषा में जन-जन के हृदयों को प्रकाशित करने हेतु 'साधन' मासिक पत्रिका का प्रकाशन अगस्त सन् 1933 में किया तब से यह अध्यात्म जगत की यह विशिष्ट पत्रिका हर माह प्रकाशित होती है।

साधना के अनुभव-यह ग्रंथ सात अलग-अलग खण्डों तथा एक समेकित ग्रंथ के रूप में प्रकाशित है। गुरु महाराज स्वयं इस मार्ग पर चले और अन्तिम ध्रुव तक पहुँचते-पहुँचते जो अनुभव हुए तथा सन्तों के दरबार में बैठकर जो कुछ जान पाये, वह इस पुस्तक में लिख दिया।

इसके अलावा परमसन्त डॉ. बृजेन्द्र कुमार जी द्वारा लिखित 142 लेखों का संग्रह 'कल्याण मार्ग' के नाम से प्रकाशित हुआ है। श्री हेमेन्द्र कुमार जी के द्वारा 'अतीत जगत और अनन्त', 'गुरु साधना का आदर्श और आदेश' क्रमश: भाग 1 एवं भाग 2 तथा भाग 3 के रूप में प्रकाशित हुआ है। [क०सिं०]

रामाश्रय सत्संग दार्शनिक मत

रामाश्रय सत्संग की साधना की संत मत पर आधारित है। इसमें साधक का निज पुरुषार्थ इतना ही है कि गुरु प्राप्त होने पर फिर उसका दामन न छोड़ें। उसमें श्रद्धा, विश्वास बनाए रखें, उसकी आज्ञा का पूर्णत: पालन करता रहे। ऐसे

कार्यों से बचने का प्रयास करता रहे जो गुरु को अप्रिय हो। योग का अर्थ है उसमें मिलकर तदाकार हो जाना या तद्रुपता करते हुए उसमें विलीन हो जाना।

जिस प्रकार से मिश्री की ढली पानी में डाल देने पर अपना अस्तित्त्व पूर्णरूपेण हुए पानी का रूप धारण कर लेती है। उसी प्रकार शिष्य गुरु ध्यान और चिंतन द्वारा गुरु में मिलकर तदाकार हो जाता है। शिष्य 'अदम' और 'फना' के दर्जे तक पहुँच जावें और गुरु की तमाम शक्तियाँ उसके अंदर उतर आवें।

'अदम' और 'फना' दो अवस्थायें हैं। अदम में शिष्य गुरु ध्यान में इतना मग्न व बेसुध हो जाता है न तो उसे अपना ज्ञान रहता है न गुरु का। फना में वह खुद मिटा के गुरु के अस्तित्त्व में समा जाता है। उस समय वह अपने को नहीं देखता, अपने रूप से गुरु का रूप ही भासता है; यह अवस्था अदम से ऊंची मानी जाती है। इसलिए कि उसमें ज्ञान शक्ति का लोप हो जाता है और उसमें अहं का लोप होता है। केवल इष्ट का ज्ञान होता है।

गुरु के प्रति श्रद्धा, विश्वास, भक्ति सबसे महत्वपूर्ण है। साधक को यह विश्वास हो कि हमारे गुरु हमारे पास मौजूद हैं तभी प्रभु दर्शन तक पहुंचा जा सकता है। यही उपासना का साधन है। [कृ०उ०]

रामाश्रय सत्संग (मथुरा)

इस सत्संग का पहले कोई नाम नहीं था। गुरु महाराज डॉ. चतुर्भुज सहाय ने अपने गुरु महाराज श्री रामचन्द्र जी के नाम पर रामाश्रय सत्संग रखा। इन्होंने अपने एटा स्थित चमकरी नामक गांव में 'रामाश्रय आर्ट स्कूल' की स्थापना की जिसके अंतर्गत महिलाओं एवं पुरुषों के लिये शिल्पकला, बुनाई-कढ़ाई व सिलाई की बुनियादी शिक्षा दी जाने लगी। इससे समीपवर्ती गांव के लोगों ने काफी लाभ उठाया।

जब काफी प्रचार-प्रसार के बाद देश के कोने-कोने से लोग पहुंचने लगे तो एटा में आवागमन के साधन न होने के कारण उस समय राजस्थान, गुजरात के लोगों ने इतनी दूर आने-जाने में अपनी परेशानी गुरु महाराज को बताई। इसलिये गुरु महाराज अक्टूबर सन् 1951 में डेम्पियर नगर, मथुरा आ गये।

रामाश्रय सत्संग में साधना के माध्यम से उस परम पिता परमेश्वर तक पहुंचने के लिये गुरु कृपा आवश्यक है। यहां पर किसी भी इष्टदेव को मन से धारण कर काम-क्रोध-मद-लोभ को त्याग कर उस ईश्वर से तादात्म्य स्थापित करना होता है। रामाश्रय सत्संग मथुरा में यूं तो प्रत्येक दिन सत्संग एवं साधना की जाती है इसके अलावा साप्ताहिक सत्संग प्रत्येक रविवार को प्रात: समीपवर्ती नगरीय क्षेत्र के सत्संगियों की उपस्थिति में किया जाता है। जिसमें विद्वानों द्वारा भजन एवं प्रवचन किया जाता है।

रामाश्रय सत्संग का एक महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम बसन्त पंचमी में भी रखा जाता है। जहां दूर-दराज देश के कोने-कोने से लोग आकर सत्संग का लाभ उठाते हैं। इस अवसर पर भण्डारे का भी आयोजन किया जाता है। रामाश्रय सत्संग के आयोजन केवल मथुरा में ही नहीं अपितु इसके उपकेन्द्र दिल्ली, जमशेदपुर, अहमदाबाद, कोलकाता, बीकानेर, जयपुर, बिहार, उड़ीसा एवं मध्यप्रदेश के प्रमुख नगरों में भी आयोजित किये जाते हैं। रामाश्रय सत्संग की 'साधन' पत्रिका के द्वारा होने वाले आयोजनों की तिथियों के बारे में जानकारी दी जाती है।

रामाश्रय सत्संग मथुरा के अन्तर्गत लोगों के कल्याणार्थ 'जिया मां मेमोरियल ट्रस्ट' का गठन किया गया है। जिसका उद्देश्य आर्थिक सहायता, गम्भीर रूप से बीमार व्यक्तियों को चिकित्सा सम्बन्धित सहायता प्रदान करना एवं मेधावी छात्रों को छात्रवृत्ति प्रदान करना है। [क०सिं०]

रासबिहारी दास काठियाबाबा

ब्रज विदेही एवं वैष्णव चतु: सम्प्रदाय श्री महंत श्री रासबिहारी दास काठियाबाबा स्वभूराम देवाचार्य जी की परम्परा में श्री हंस भगवान से 57वें क्रमांक पर वर्तमान निम्बार्क पीठाचार्य हैं। ये श्री धनंजय दास काठियाबाबा महाराज के अनुगत शिष्य हैं। श्रीरासबिहारी दास जी का जन्म 1 जनवरी सन् 1959 को श्री संतदास काठियाबाबा के शिष्य श्रीरामदास बंधोपाध्याय के यहां जननी श्रीमती अमिता देवी (शिष्या श्री धनंजय दास काठियाबाबा) के गर्भ से हुआ। दस वर्ष की अल्पायु में इन्होंने काशी स्थित काठियाबाबा के आश्रम पर स्वामी धनंजय दास काठियाबाबा का पावन सान्निध्य प्राप्त कर लिया। काशी में ही इन्होंने श्रीरामदास काठियाबाबा महाविद्यालय से व्याकरण तथा आश्रम के दायित्वों के सफल निर्वहन से भक्ति और सेवा का सहज ज्ञान प्राप्त किया। सन् 1981 में इन्हें गुरुदेव धनंजयदास काठियाबाबा ने ब्रज विदेही महंत की उपाधि से सुशोभित किया। सन् 1982 के प्रयाग अर्द्धकुम्भ मेले में गुरुदेव के निजधाम गमन के पश्चात इन्हें श्री स्वामी मनोहरदास काठियाबाबा और श्री जगन्नाथदास काठियाबाबा का मार्गदर्शन प्राप्त होता रहा।

श्रीरासबिहारी दास काठियाबाबा द्वारा सम्प्रदाय की श्रीवृद्धि की गई। भारत के साथ ही विदेशों में भी सम्प्रदाय का खूब प्रचार-प्रसार एवं विस्तार के दायित्त्व का महाराज श्री द्वारा पूर्ण निर्वहन किया गया। इन्हें शंकर और निम्बार्क वेदान्ताचार्य की उपाधि से भी अलंकृत किया गया। आचार्य श्री के सान्निध्य में गौसेवा, चिकित्सा और शिक्षा से जुड़े कई समाजसेवा के प्रकल्प संकल्पित एवं सतत् क्रियाशील हैं। इन्हें सन् 1998 में शिकागो में आयोजित विवेकानन्द शताब्दी समारोह में विशिष्ट अतिथि के रूप में आमंत्रित किया गया था। [कुं०बि०श०]

विवेकानन्द

भारतीय समाज में ही नहीं वरन् सम्पूर्ण विश्व को पथ प्रदर्शन करने वाले दिव्य व्यक्तित्व के धनी स्वामी विवेकानन्द का नाम सदैव स्मरणीय रहेगा। उन्होंने विश्व के सभी राष्ट्रों को बता दिया कि राजनैतिक रूप से परतंत्र होने पर भी हमारा देश विश्व को सही दिशा प्रदान करने की क्षमता रखता है।

''उठो, जागो और लक्ष्य प्राप्त करने तक मत रुको'' इस वाक्य का उद्घोष करने वाले स्वामी विवेकानन्द का जन्म कलकत्ता हाईकोर्ट के जाने-माने अधिवक्ता विश्वनाथ दत्त के यहां 12 जनवरी सन् 1863 को भारत की तत्कालीन राजधानी कलकत्ता में हुआ था। माता भुवनेश्वरी देवी की कोख से पैदा हुए इस बालक का नाम नरेन्द्रदत्त था। इनके माता-पिता दोनों ही उदार हृदय, तेजस्वी एवं प्रखर बुद्धि के थे। उनका प्रभाव बालक नरेन्द्र पर पड़ना स्वाभाविक था। उनकी माताजी उन्हें महाभारत एवं रामायण की कहानियां सुनाया करती थीं। उनकी खेलकूद, कुश्ती, गायन-वादन इत्यादि में गहरी रुचि थी। उनकी कुशाग्र बुद्धि के कारण ही अध्यापक उन्हें बहुत प्रेम करते थे। नरेन्द्र पुस्तकों का खूब अध्ययन करते और सहपाठियों के साथ तर्क-वितर्क करते थे। संस्कृत एवं व्याकरण में भी आपने अच्छी महारथ हासिल की थी। नरेन्द्र ने हाईस्कूल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की।

सन् 1881 में नरेन्द्र स्वामी रामकृष्ण परमहंस के सम्पर्क आये और धीरे-धीरे हुगली नदी के किनारे दक्षिणेश्वर स्थित उनके आश्रम में आना-जाना प्रारम्भ कर दिया। प्रारम्भ में उन्होंने स्वामी रामकृष्ण परमहंस को ईश्वरवादी पुरुष मानने से इंकार कर दिया किन्तु धीरे-धीरे उनका विश्वास जमता गया। ऐसा कहा जाता है कि स्वामी रामकृष्ण परमहंस जी ने नरेन्द्रनाथ को साक्षात काली के दर्शन कराये तभी से उनका विश्वास और जग गया। वे स्वामी जी के अनन्य भक्त हो गये। इक्कीस वर्ष के नरेन्द्र को परमहंस ने प्रसन्न होकर संन्यास की दीक्षा दी और उनका नाम नाम बालक नरेन्द्र से 'स्वामी विवेकानन्द' कर दिया। कुछ दिनों बाद स्वामी रामकृष्ण परमहंस का स्वर्गवास हो गया जिससे विवेकानन्द जी को बहुत बड़ा आघात हुआ। गुरु के बताये हुए मार्ग पर चलकर स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय संस्कृति और भारतीय दर्शन की धर्मध्वजा विश्व में फहराने का निश्चय किया। स्वामी विवेकानन्द ने काशी, प्रयाग, मथुरा, वृन्दावन आदि तीर्थों का भ्रमण किया जिससे उनमें धर्म के प्रति सच्ची आस्था जागृत हुई।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस की पत्नी माता शारदा देवी की आज्ञा से संयुक्त राज्य अमेरिका के शिकागो नगर के विशाल विश्वधर्म सम्मेलन में भाग लेने के लिए 11 दिसम्बर 1893 को अमेरिका पहुंच गए। यहां उन्हें अनेक अवरोध सहने पड़े। 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' का उद्घोष करने वाले भारतीय दर्शन की विस्तृत मीमांसा जब स्वामी विवेकानन्द ने प्रस्तुत की तो विश्व के सभी धर्माधिकारी और उपस्थित जनसमूह अभिभूत हो गये। अमेरिका में स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म की सहिष्णुता, उदारता और विश्व बन्धुत्त्व की भावना को प्रस्तुत करते हुए हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता सिद्ध की। स्वामी विवेकानन्द जी का जगह-जगह अभिनन्दन किया गया। इसी अवसर पर आयरलैंड की एलिजाबेथ नोबुल महिला को स्वामी विवेकानन्द ने शिष्यत्त्व प्रदान किया, जिन्हें हिन्दू धर्म में दीक्षित करके 'भगिनी निवेदिता' नाम दिया गया था। लगभग चार वर्षों तक विदेशों में भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता सिद्ध करने के बाद स्वदेश लौटे और मई 1897 में आपने 'रामकृष्ण मिशन' की स्थापना की। जिसमें हिन्दू दर्शन, वेदान्त और भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिये सत्साहित्य का प्रकाशन किया गया। स्वामी विवेकानन्द की शिष्या भगिनी निवेदिता ने भारत में शिक्षा, सेवा और सहयोग का कार्य स्वामी विवेकानन्द के साथ किया। अन्त में 4 जुलाई 1902 में इस महान तपस्वी की जीवन-ज्योति सदा-सदा के लिये लुप्त हो गयी। स्वामी विवेकानन्द ने मात्र उन्तालीस वर्ष की अल्पायु में भौतिक शरीर का परित्याग कर दिया।

स्वामी विवेकानन्द का कन्याकुमारी के समुद्र तट पर जिस शिला पर बैठकर आत्मबोध हुआ था उसी स्थान पर आज 'स्वामी विवेकानन्द शिला स्मारक' के नाम से बहुत भव्य स्मारक बना हुआ है। स्वामी विवेकानन्द ने विश्व में हिन्दू धर्म की ध्वजा फहरायी तथा आधुनिक भारत के निर्माण में देश को स्वतंत्र कराने में तथा नवयुवकों में अपने देश के प्रति राष्ट्रीय जागरण में बड़ा महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। वास्तव में स्वामी विवेकानन्द भारतीय आध्यात्मिक आत्मा के आदर्श प्रतिमूर्ति थे। [कृ०उ०]

शरणानंद महाराज

शान्त, सरल, निरभिमानी, समन्यवादी व्यक्तित्व के धनी महान विद्वान कार्ष्णि स्वामी गुरु शरणानन्द जी महाराज का जन्म उत्तरप्रदेश के लखनऊ मण्डल के एक जनपद के ग्रामीण अंचल में धनाढ्य मिश्र विप्र परिवार में हुआ। आप लखनऊ और बनारस विश्वविद्यालय के छात्र रहे। विद्याध्यन के पश्चात् आपका मन घर में नहीं लगा। शान्ति तथा सद्गुरु की खोज में भ्रमण करते हुए आप महावन, रमणरेती पहुंचे। यहां अपूर्व शान्ति मिलने पर सद्गुरु पूज्य श्री हरिनामदास जी महाराज को अपना गुरु बनाया और उनकी सेवा में लगे रहे। शरणानन्द जी के परिवारीजन आपको खोजते हुए रमणरेती आए। गुरु आज्ञा मिलने पर भी वे उनसे नहीं मिले। सद्गुरु की परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर महाराज श्री ने रमणरेती आश्रम में गौसेवा और पुजारी का कार्यभार संभाला।

निश्चल आत्मीय स्नेह के स्वामी गुरु शरणानंद जी को ब्रज भूमि से बहुत लगाव है। फलत: आपने ब्रज चौरासी कोस की अनेक यात्रायें आयोजित कीं जिनमें भक्तजन श्रीकृष्ण लीला स्थलों के दर्शन से लाभान्वित हुए। कार्ष्णि गुरु शरणानन्द जी महाराज पावन पीठ रमणरेती, महावन पर विरक्त सन्त कार्ष्णि पीठाधीश्वर पूज्यपाद अनन्त श्री स्वामी विरजानन्द जी महाराज के सन् 1952 ई. में श्री लीला पुरुषोत्तम के गोलोक धाम में विराजने पर आसीन हुए। गुरु शरणानन्द जी संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी, तमिल, तेलगू आदि के ज्ञाता हैं।

कार्ष्णि स्वामी गुरु शरणानन्द जी सन् 2014 में म्यूनिख (जर्मनी) में आयोजित विश्व धर्मगुरुओं के ऐतिहासिक सम्मेलन में विभिन्न धर्मों के प्रतिनिधि आचार्यजनों के साथ सम्मिलित हुए। दीनानगर, गुरुदासपुर (पंजाब) में आयोजित सन्त सम्मेलन सन् 1995 में अपने अध्यक्षीय प्रवचन में गुरु तत्त्व की व्याख्या की। सन् 2013 में बौद्ध गुरु दलाईलामा का महाराज श्री से अन्तरंग मिलन रमणरेती महावन में हुआ। विभिन्न धार्मिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षिण

कार्यक्रमों में महाराज जी का सदैव योगदान रहता है। महाराज श्री ने पूर्ववर्ती आचार्यों की परम्परा का अनुसरण करते हुए रमणरेती आश्रम की गतिविधियों को निस्पृहजन सेवा से जोड़कर नर-नारायण सेवा को चरितार्थ किया है। निर्धन विद्यार्थियों की सहायता हेतु आपने श्री गुरु कार्ष्णि शिक्षा परिषद् का शुभारंभ 1996 में किया तो रोजगारपरक प्रशिक्षण के लिए जुलाई 2003 में कार्ष्णि उद्यम का सूत्रपात किया। ब्रह्माण्ड घाट पर आपने वेद विद्यालय प्रारंभ किया है।

महाराज श्री का ज्ञान भण्डार, मुख पर अपूर्व तेज, वाणी में अमृत रस, होठों पर मुस्कान तथा विलक्षणता के साथ प्रत्येक भक्त के संग आत्मीयता और उनके कष्ट निवारण हेतु आत्मिक आशीर्वाद से देश-विदेशों के लाखों भक्तजनों के मन में आपके प्रति अटूट श्रद्धा एवं विश्वास है। [ता०चं०श०]

संतदास काठियाबाबा

गंगा दशहरा के पावन दिवस श्रीहट्ट (प. बंगाल) जिलान्तर्गत हबिगंज महकमे के बरमै गांव में संतदास काठिया बाबा का जन्म एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण परिवार में हुआ। इनका नाम ताराकिशोर था। कलकत्ता के प्रेसीडेन्सी कालेज से उन्होंने एम.ए. की परीक्षा सर्वाधिक अंकों के साथ उत्तीर्ण की। वे प्रारंभ से ही अतीव प्रतिभाशाली छात्र थे। कॉलेज के दिनों में ये ब्राह्मण धर्म के प्रभाव में आये। जिसके विरोध में स्वयं उनके पिताजी थे। उस समय देश राजनैतिक स्वतंत्रता के लिए संघर्षशील था किन्तु ताराकिशोर राजनैतिक के साथ ही धार्मिक क्षेत्र में भी गणतंत्रता के प्रबल समर्थक बनकर आंदोलनरत थे। कॉलेज के दिनों में ही इनका विवाह हो गया। इनके पिता श्री हरकिशोर चौधरी इन्हें एक प्रतिष्ठित वकील के रूप में देखता चाहते थे किन्तु इनकी रुचि अध्यापन करने में थी। बाबा ने हाईकोर्ट में भी वकालत की। किन्तु कुछ सीढ़ियां और जीवन के उतार-चढ़ाव उन्हें तृप्त न कर सके। अत: सद्गुरु की खोज में ताराकिशोर भटक रहे थे। इसी समय प्रयाग कुम्भ में श्रीरामदास काठियाबाबा की कृपा से प्रकाशित होकर वे उनके शिष्य बन गए। यह पावन दिवस 24 अगस्त सन् 1894 का था। इसके बाद उन्होंने वृन्दावन में मंदिर बनवाने में योगदान दिया तथा जयपुर से मँगाकर राधाकृष्ण का विग्रह गुरुदेव रामदास काठियाबाबा के सान्निध्य में प्राण प्रतिष्ठित कराया। जिसके फलस्वरूप गुरुवाणी से उन्हें ठाकुरजी से वरदान मांगने का आदेश तथा प्रभु दर्शन, अभीष्ट सिद्धि और महंताई का भी आशीर्वाद मिल गया।

एक बार की घटना है कि नंदगांव के नंदभवन में ब्रजयात्रा दर्शनों के दौरान उन्हें कुछ बालक मिल गए जो, जलेबी खिलाने की मांग करने लगे। इसी बीच दो अतीव सौंदर्यशाली बालक भी आ गए, जिनकी रूप माधुरी ने बरवस ही बाबा को आकृष्ट कर लिया किन्तु शीघ्र ही बालकों की टोली के मध्य ही ये बालक भी जलेबी लेकर अंतर्धान हो गये। ऐसी ही एक अन्य घटना में एक बार ब्रजयात्रा में एकादशी व्रत पड़ने पर गुरुदेव और सभी साधुओं की प्रसादी तो हो गई किन्तु ताराकिशोर जी रह गए। आसपास गांव में भी दूध का प्रबंध न हुआ तो प्रभु इच्छा मानकर भूखे ही सोने का निश्चय कर लिया। तभी रात्रि में एक बालक लोटा भर दूध उन्हें देकर चला गया और फिर कोई लोटा लेने भी नहीं आया। विस्मय की बात यह थी कि यह दूध बादाम, पिस्ता, केसरादि युक्त इतना स्वादिष्ट था कि ऐसा दूध उन्होंने जीवन में नहीं पीया था। इस पर गुरुदेव ने उनसे कह दिया कि 'यदि दूध तुम्हारे ही लिए है, इसे पी लो'। यद्यपि संत आत्मगोपन की रीति से रहते हैं किन्तु भावावेश में उनके जीवन के कुछ अंश कृपापात्र में प्राप्त हो जाते हैं।

वकालत, वैराग्य और गुरुभक्ति के मध्य ही ताराकिशोर 'बाबूजी' के सत्प्रयासों से वृन्दावन में भव्य आश्रम और मंदिर युक्त श्रीकाठिया बाबा के स्थान का निर्माण हुआ। श्रीरामदास काठिया बाबा प्रेम से अपने शिष्य ताराकिशोर को 'बाबूजी' कहते थे। ताराकिशोर जी द्वारा कलकत्ता से भेजे गए धन लगभग 60 हजार रुपयों से इस भव्य स्थान की प्रतिष्ठा सात वर्षों में 19 मई सन् 1915 को अक्षय तृतीया के अवसर पर हुई। मंदिर निर्माण के बाद भी तीस हजार रुपये का कर्ज उनके सिर पर था, जिसके लिए उन्हें वकालत करनी थी किन्तु अपने गुरु के इस कथन में अकाट्य

विश्वास था कि 'नया स्थान बनने पर मैं भी रहूंगा और तुम्हें भी संसार से छुड़ाकर अपने ही पास रखूंगा। अत: उत्कट वैराग्य आभा से उसका चिंतन संन्यास की ओर ही था। संन्यास के बाद इनका नाम संतदास हो गया और गुरुदेव के लीला संवरण के बाद इन्हें महंताई मिली। इनकी भजन की रीति ऐसी थी कि हमेशा आलस्य से परे रहते थे। आसन भजन का ही एकमात्र अवलंबन इन्हें था।

इन्होंने भारतभर के अनेकों तीर्थों की पैदल यात्राएं कीं। ब्रज परिक्रमाएं और कुम्भ स्नान किए। संतदास महाराज बंगाली मूल के साधु थे। अत: साधु समाज में बंगालियों के प्रति जो हेय दृष्टि थी, उसका उन्मूलन उनके प्रभाव और महत्व से हुआ। संतदास बाबा द्वारा 'भेदाभेद' (द्वैताद्वैत) सिद्धांत' एवं 'श्रीमद्शंकराचार्य प्रभृति भाष्यकारगण' नामक ग्रंथ भी लिखा गया है। [कुं०बि०श०]

स्वामीबाग, आगरा

इसकी आधारशिला आगरा से 5 कि.मी. दूर राधास्वामी मत के प्रवर्तक स्वामी जी महाराज ने रखी थी। स्वामीबाग का शब्दश: अर्थ है मालिक का बाग। इसी स्थान पर स्थित बाग में स्वामी जी महाराज भ्रमण करते थे और सत्संग तथा सुरत शब्द योग का अभ्यास करते और कराया करते थे। 15 जून सन् 1878 को उनके देहावसान के बाद उनकी पवित्र रज इसी स्थान पर रखी गयी। सन् 1904 में राधास्वामी मत के तीसरे गुरु महाराज साहब के आदेश पर समाधि का निर्माण प्रारंभ हुआ। सन् 1911-1922 के अंतराल को छोड़कर जबकि निर्माण कार्य को बंद करना पड़ा था, भक्तों की भेंट, धीरज, लगन व निष्ठा से समाधि का निर्माण कार्य आज तक अनवरत चल रहा है। स्वामीबाग स्थित इस समाधि की योजना एवं परिकल्पना मुख्यरूप से भारतीय है। परन्तु वास्तु कला भारत की परंपरागत कला से भिन्न है। क्योंकि इसका निर्माण कार्य किसी विशेष शैली के अनुरूप नहीं है। यह मिली-जुली कला का एक ऐसा नमूना है जिसमें विभिन्न शैलियों का समन्वय देखने को मिलता है। नक्शा बनाने का कार्य कानपुर उपस्थित इटली की एक वास्तु-कंपनी में कार्यरत विख्यात वास्तुकार फ्रिजोनी को दिया गया था। सन् 1911 में चतुर्थ गुरु बाबू जी महाराज के समय में समाधि के एक और अधिक विस्तृत नक्शे की रूपरेखा एक भारतीय इंजीनियर लाला तोता राम द्वारा तैयार की गई थी। समाधि का निर्माण 52 कुंओं पर रखी गई आधारशिला पर स्थापित किया गया है। मुख्य भवन 110 फुट वर्गाकार है। जिसके चारों ओर 55 फुट चौड़ा चबूतरा है जोकि धरातल से 20 फीट ऊंचाई पर है। समाधि की कुल ऊंचाई 193 फुट है। दीवारों, खंभों के सिरों तथा मेहरावों पर फूल-पत्तियों, कमल, केला, पपीता, अशोक, अंगूर की वेल इत्यादि सफेद संगमरमर पर तरासे गये हैं।

प्रथम तल पर मुख्य हॉल 68 फुट वर्गाकार है। उसके चारों ओर 15 फुट का बरामदा है। भविष्य में इसी हॉल में स्वामी जी महाराज की पवित्र रज को प्रतिष्ठित किया जाएगा। समाधि के चारों कोनों पर मीनारें स्थापित की गई हैं। जिनकी ऊंचाई गुंबद के प्रस्तर-खंड के समकक्ष होगी। गुंबद के वृत्त में चारों कोनों पर चार भुजाएँ जिनकी ऊंचाई मीनारों की ऊंचाई के बराबर है निर्माण हेतु प्रस्तावित है। इस समाधि के निर्माण में श्वेत तथा गुलाबी पत्थर मकराना की खानों से लाये गये हैं तथा हरे पत्थर बड़ोदरा तथा पीले जैसलमेर की खानों से प्राप्त हुये हैं। बहुरंगी झलक वाले पत्थर नौशेरा से लाये गये हैं। अर्द्ध बहुमूल्य उपजाऊ पत्थर नर्मदा नदी के किनारों और गुजरात की खानों से लाये गये हैं।

समाधि भवन के बरामदों के अष्टकोणीय खंभे संगमरमर के 6 फुट 5 इंच लम्बे व ढाई फीट मोटे हैं। इन खंभों के शिखर पर संगमरमर की ढाई फीट मोटी तथा साढ़े तीन फीट चौड़ी कलात्मक पच्चीकारी से सुसज्जित टोपी रखी गई है। उत्तर तथा दक्षिण की ओर अष्टकोणीय खंभों के सामने ढाई फीट मोटे बेलनाकार खंभे हैं। जो कि अखंडित संगमरमर के शिलाखंडों से निर्मित हैं। बरामदों की अलंकारिक छतें 6 इंच मोटे तथा 3 इंच लंबे संगमरमर के पत्थरों की हैं। जिनके मध्य में 3 फुट लंबी किनारीदार शिलाखंड लगी हुयी है। पूर्व तथा पश्चिम के बरामदों की छतों की

संगमरमर की शिलाखंड तांबे व रांगे की मिश्रण से बनी लांगल पर आधृत है। प्रारंभ में समाधि के निर्माण का अनुमानित व्यय 50 लाख रुपये था। परंतु अब तक उससे कहीं अधिक धन व्यय हो चुका है। इसकी शिल्पकारी, वास्तुकला की जटिलता एवं योग्य कारीगरों की कमी व धनाभाव के कारण समाधि के पूर्ण होने में अभी 30 वर्ष या इससे अधिक समय लग सकता है। यह निर्माण कार्य विश्वास तथा धीरज के साथ चल रहा है तथा अभी कई दशकों का समय और लगेगा। प्रतिदिन हजारों की संख्या में पर्यटक स्वामीबाग समाधि देखने आते हैं। [जे०पी०श०]

हंसदास महाराज

वि.सं. 1916 में लखनऊ जिलान्तर्गत काकोरी कस्बे में महात्मा श्रीहंसदास जी महाराज का जन्म हुआ। हंसदास जी श्री गोपालदास जी महाराज के प्रमुख शिष्य हुए तथा गुरुदेव के आचार्योत्सव प्रकल्प का पूर्णरूपेण अनुमोदन महोत्सव के गरिमामय स्वरूप में अभिवृद्धि कर किया। इनके पिता श्री राधिकादास जी नंदगांव-बरसाना के मध्य संकेत में रहकर तथा धर्मपत्नी श्रीगोपाली बाई जी गोवर्धन में रहकर भगवद चिंतन, भजन किया करती थीं। इस तरह यह संपूर्ण परिकर ही भगवन्मय था। बरसाना और वृन्दावन में रहकर हंसदास जी प्रिया-प्रियतम का भजन करते थे। इस सबके साथ ही बाबा श्रीमद्भागवत के परम रसिक वक्ता थे, किन्तु वे भागवत से कुछ भी अर्जित करने का प्रयास नहीं करते थे। जो कुछ अयाचक वृत्ति से प्राप्त हो जाता, उसे निंबार्काचार्य महोत्सव में लगा देते। श्री हंसदास जी महाराज ब्रजवासियों को अपना इष्टदेव मानते थे। ये तत्कालीन ब्रज वृन्दावन के आदर्श संतों में सम्मिलित थे। [कुं०बि०श०]

हरिप्रियाशरण जी महाराज

श्री तपस्वीदास जी महाराज के प्रिय शिष्य श्री हरिप्रियाशरण जी महाराज का जन्म कानपुर जिले के बाघपुर गांव में वि.सं. 1910 को हुआ। काशी से आपने भाष्यादि ग्रंथों का अध्ययन-अनुशीलन कर खूब ख्याति अर्जित की। वि.सं. 1952 में वृन्दावन आकर गुरुदेव तपस्वीदास जी महाराज से वैष्णवी दीक्षा प्राप्त की। महाराजश्री बालकों को विद्याध्यन कराने के साथ ही भगवद चिंतन, नाम संकीर्तन और वैष्णव सेवा में निरत रहते। श्री महावाणी पाठ, युगलनाम संकीर्तन, भागवत पाठ तथा साधु सेवा के साथ श्री हरिव्यास देवाचार्य जी महाराज का महोत्सव श्री हरिप्रियाशरण जी मनाते थे। इनका एक नाम पं. दुलारेप्रसाद भी था। इन्होंने चारों धामों की यात्रा की तथा इसका उत्सव अपनी जन्मभूमि में किया। हरिप्रियाशरण जी ने गोपाल मंत्रराज का अनुष्ठान किया तथा कई अच्छे ग्रंथों का प्रकाशन भी कराया। वि.सं. 1969 से निरंतर इन्होंने वृन्दावन वास किया। वि.सं. 1989 में इन्होंने ब्रज रज प्राप्त की। इनके शिष्यों में श्रीरामचंद्र दास जी, श्री दम्पत्तिशरण जी, श्री गोविन्द शरण जी, श्री माधुरीशरण जी और श्री बिहारीदास जी प्रमुख हैं। [कुं०बि०श०]

विश्वकोश द्वितीयखंड के टिप्पणीकारों के नाम, पते एवं संकेत अक्षर

क्र. सं.	नाम	संकेत	पता
1.	डॉ. अच्युतलाल भट्ट	अ०ला०भ०	253, मुरली कुंज के पास, सेक्टर-4, चैतन्य विहार, वृन्दावन
2.	सुश्री अनुपमा श्रीवास्तव	अ०श्री०	मातृछाया, सी-124, राधापुरम, निकट बिरला मंदिर, मथुरा
3.	श्रीमती अनुसूया पाण्डेय	अ०पां०	15, शंकरविहार, कृष्णानगर, मथुरा
4.	डॉ. अपर्णा चतुर्वेदी	अ०च०	ए-511, सिद्धार्थनगर, जवाहर सर्किल गार्डन के पास, जयपुर
5.	डॉ. अमरसिंह सैनी	अ०सिं०सै०	240/305, वेस्ट प्रताप नगर, महोली रोड, मथुरा
6.	श्रीमती अलका दीक्षित	अ०दी०	26 ए, आनन्दपुरी, मथुरा
7.	डॉ. अशोक कुमार शर्मा	अ०कु०श०	ए-15, मधुवन कॉलोनी, टोंक फाटक, जयपुर
8.	डॉ. अशोक तिवारी	अ०ति०	सेक्टर-3, निकट पार्क, विभवनगर, फिरोजाबाद
9.	डॉ. आनन्द प्रकाश श्रीवास्तव	आ०प्र०श्री०	बी-4, दुर्गानिकुंज, विश्वकर्मानगर, कदंबा (पं.), वाराणसी
10.	डॉ. आर.पी. वर्मा	आर०पी०व०	59, शिवाजीनगर, शाहगंज, आगरा
11.	डॉ. आसिफ सईद	आ०स०	जी-4, रिजवी अपार्टमेंट-II, मेडीकल रोड, अलीगढ़
12.	सुश्री उपमा श्रीवास्तव	उ०श्री०	मातृछाया, सी-124, राधापुरम, निकट बिरला मंदिर, मथुरा
13.	डॉ. उमा भास्कर	उ०भा०	केला कुंज, मानगली, वृन्दावन
14.	श्री उमाशंकर दीक्षित	उ०शं०दी०	104, चंद्रलोक कॉलोनी, कृष्णानगर, मथुरा
15.	डॉ. उषा गोयल	उ०गो०	E-1802, IREO UPTOWN, सेक्टर-66,गोल्फ कोर्स एक्सटेंशन रोड, गुरुग्राम (हरियाणा)
16.	डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव	ए०एल०श्री०	1-बी, स्ट्रीट 24, सेक्टर-9, भिलाई (छत्तीसगढ़)
17.	श्री कन्हैयालाल पाण्डेय	क०ला०पां०	कस्तूरी काव्यकुंज, 54, रसखाननगरी, जमुनापार, मथुरा
18.	श्री करुणेश उपाध्याय	क०उ०	55 रेलवे कॉलोनी, मोतीकुंज, मथुरा
19.	डॉ. कविता सिंह	क०सिं०	आर.बी.एस. नेशनल पब्लिक स्कूल, 32, सारंगविहार, मथुरा

क्र. सं.	नाम	संकेत	पता
20.	श्री कुंजबिहारी शर्मा	कुं०बि०श०	रसिकबिहारी मंदिर के सामने, व्यासघेरा, वृन्दावन
21.	डॉ. कृष्णचंद्र गोस्वामी	कृ०चं०गो०	श्रीनिकुंज, बी-90, जवाहर नगर, भरतपुर (राज.)
22.	श्री कृष्णचंद्र चतुर्वेदी	कृ०चं०च०	फूटाकोट चौराहा, करौली (राज.)
23.	डॉ. कृष्णावतार उमराव	कृ०उ०	विवेकनिधिनिलयम्, 33 सारंग विहार, मथुरा
24.	श्री गणेश शंकर पाण्डेय	ग०शं०पा०	15, शंकरविहार, कृष्णानगर, मथुरा
25.	श्री गोपाल प्रसाद पाठक	गो०प्र०पा०	श्रीमहिन्द्रालय, लोहवन, मथुरा
26.	श्री गोपाल प्रसाद मुद्गल	गो०प्र०मु०	पाण्डेय मोहल्ला, डीग (राज.)
27.	श्री गोपाल शरण शर्मा	गो०श०श०	फर्श गली, बिहारीपुरा, वृन्दावन
28.	श्री गोवर्धन लाल शर्मा	गो०ला०श०	907-सी, गली कानूनगो, मण्डी रामदास, मथुरा
29.	डॉ. जयसिंह नीरद	ज०सिं०नी०	ए-48, यशवन्त हॉस्पीटल के सामने, न्यू आगरा
30.	डॉ. जे.पी. शर्मा	जे०पी०श०	सी-91, गणपति सिटी रोड, सिकन्दरा, आगरा
31.	श्री जितेन्द्र कुमार	जि०कु०	ग्राम नगला रामताल, पो. जैंत, मथुरा
32.	डॉ. ताराचंद्र शर्मा	ता०चं०श०	1217, वीथी नं. 3, सेठबाड़ा, तिलकद्वार, मथुरा
33.	डॉ. दाऊदयाल गुप्ता	दा०द०गु०	दही वाली गली, भरतपुर (राज.)
34.	डॉ. दिग्विजय शर्मा	दि०श०	55, लवकुश विहार कॉलोनी, गैलाना रोड, आगरा
35.	डॉ. दुर्गानंदन तिवारी	दु०नं०ति०	54, शीलनगर कॉलोनी, महमूरगंज, वाराणसी
36.	श्री देवकीनंदन कुम्हेरिया	दे०नं०कु०	बड़ा बाजार, गोवर्धन (मथुरा)
37.	डॉ. देवेश कुमार वाजपेयी	दे०कु०वा०	9, दयानगर, शमसाबाद रोड, आगरा
38.	श्री नत्थीसिंह बघेल	न०सिं०ब०	डी-1/41, बुद्ध विहार फेस-1, दिल्ली
39.	श्री नंदकिशोर शास्त्री	नं०कि०शा०	वशिष्ठ विद्या मंदिर, आदर्श कॉलोनी, पलवल
40.	श्री नाथूलाल महावर	ना०ला०म०	124, मुक्तानंद नगर, गोपालपुरा बाईपास, जयपुर
41.	श्रीमती निर्मला शर्मा	नि०श०	सराफान मोहल्ला, नई बस्ती, खैर, अलीगढ़
42.	डॉ. निरूपमा कपूर	नि०क०	18 कैलादेवी एन्क्लेव, देवरी रोड, आगरा
43.	डॉ. निशीथ गौड़	नि०गौ०	ए-4, सौरभ एन्क्लेव, दयालबाग, आगरा
44.	श्री पुनीत गोस्वामी	पु०गो०	राधावल्लभ मंदिर के पास, वृन्दावन
45.	श्री पुलिन गोस्वामी	पु०गो०	राधारमण मंदिर घेरा, वृन्दावन
46.	श्रीमती पुष्पावती शर्मा	पु०श०	907-सी, गली कानूनगो, मण्डी रामदास, मथुरा
47.	डॉ. पुष्पा श्रीवास्तव	पु०श्री०	35, अशोका एन्क्लेव, दयालबाग, आगरा

क्र. सं.	नाम	संकेत	पता
48.	श्रीमती प्रगति शर्मा	प्र०श०	निकट राधावल्लभ मंदिर, वृन्दावन
49.	श्री प्रेमदत्त मिश्र	प्रे०द०मि०	1-ए, मैथिल भवन, चंद्रपुरी, धौलीप्याऊ, मथुरा
50.	श्री प्रेमदास शास्त्री	प्रे०दा०शा०	बड़ी सूरमा कुंज, पत्थरपुरा, वृन्दावन
51.	श्रीमती प्रेमलता दीक्षित	प्रे०दी०	26 ए, आनन्दपुरी, मथुरा
52.	डॉ. बचनसिंह सिकरवार	ब०सिं०सि०	63 ब, गांधीनगर, आगरा
53.	श्री ब्रजकिशोर	ब्र०कि०	ग्राम गोंगा, पोस्ट राया, मथुरा
54.	डॉ. मधुरबिहारी गोस्वामी	म०बि०गो०	बिहारीपुरा, वृन्दावन
55.	डॉ. मनहरगोपाल भार्गव	म०गो०भा०	370 ट, बजरंग नगर शुक्लहा, पं. गुप्तराम इण्टर कॉलेज के पास मिर्जापुर
56.	श्रीमती ममता दीक्षित	म०दी०	26 ए, आनन्दपुरी, मथुरा
57.	श्री महावीरसिंह यदुवंशी	म०सिं०य०	ग्राम रनवारी, पोस्ट रनवारी, छाता (मथुरा)
58.	डॉ. मुरली मनोहर पाठक	मु०म०पा०	22 ख, हीरापुरी कॉलोनी, यूनिवर्सिटी कैम्पस, गोरखपुर
59.	श्री मृदुल कुमार पाण्डेय	मृ०कु०पा०	जमुना मार्ग, बलदेव (मथुरा)
60.	श्रीमती मोहिनी शर्मा	मो०श०	209/12, लक्ष्मीनगर, पो. कृष्णानगर, मथुरा
61.	श्रीमती रंजना	रं०	म.नं. 568, चित्रगुप्त कॉलोनी, कासगंज
62.	श्री रमेशचंद्र दीक्षित	र०चं०दी०	26 ए, आनन्दपुरी, मथुरा
63.	श्री रमेश वर्मा	र०व०	18/312, गायवाला चौक, पक्की सराय, अलीगढ़
64.	श्रीमती रश्मि सारस्वत	र०सा०	16/25, डॉ. वर्षा तिवारी की गली के पास, बाढ़पुरा, मथुरा
65.	श्री राजकिशोर शर्मा	रा०कि०श०	126, नारायण विहार, सिकन्दरा, आगरा
66.	डॉ. राजेश शर्मा	रा०श०	निकट राधावल्लभ मंदिर, वृन्दावन
67.	श्री राममोहन शर्मा	रा०मो०श०	209/12, लक्ष्मीनगर, पो. कृष्णानगर, मथुरा
68.	डॉ. रेखा मिश्रा	रे०मि०	7/33, विकासनगर, लखनऊ
69.	डॉ. ललितबिहारी गोस्वामी	ल०बि०गो०	ए-107, मधुरजीवन अपार्टमेंट, प्लॉट नं. 34, सेक्टर-10, द्वारका, नई दिल्ली

क्र. सं.	नाम	संकेत	पता
70.	डॉ. वंदना तैलंग	वं०तै०	80, जगन्नाथपुरी, श्रीकृष्ण- जन्मस्थान, मथुरा
71.	श्री विजयकिशोर मिश्र	वि०कि०मि०	183, श्रीगोपालकृपालयम्, दानगली, सेवाकुंज, वृन्दावन
72.	डॉ. विजयप्रकाश उपाध्याय	वि०प्र०उ०	55 रेलवे कॉलोनी, मोतीकुंज, मथुरा
73.	डॉ. विजेन्द्र प्रताप सिंह	वि०प्र०सिं०	न्यू कॉलोनी दमदपुरा, सिकन्दराराऊ (हाथरस)
74.	श्री विनोद शर्मा	वि०श०	21, फेस-2, चैतन्य विहार, वृन्दावन
75.	श्री विभुकृष्ण भट्ट	वि०कृ०भ०	भट्टजी का मंदिर, अठखम्भा, वृन्दावन
76.	श्री विष्णुकांत गोस्वामी	वि०कां०गो०	श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, 18/12, महाजनी टोला, प्रयाग
77.	श्रीमती विष्णुप्रिया	वि०	म.नं. 7/2, डी, कृष्णानगर, मथुरा
78.	डॉ. वैद्यनाथ झा	वै०ना०झा०	श्रीराधामाधव कुंज, गौशाला- नगर, कैलाशनगर रोड, वृन्दावन
79.	डॉ. शमा उवैश	श०उ०	एस.एन. 35, मेडीकल कॉलोनी, अलीगढ़
80.	श्री शरणबिहारी दुबे	श०बि०दु०	7 ए, इन्दिरा कुटीर, राधानगर, मथुरा
81.	श्रीमती शशिरानी अग्रवाल	श०अ०	3/28, ए/2, जवाहर नगर रोड, खंदारी, आगरा
82.	श्रीमती शिवानी शर्मा	शि०श०	185, मानसनगर, शाहगंज, आगरा
83.	श्रीमती शैफालिका चतुर्वेदी	शै०च०	श्रीकृष्णशोधपीठ पुस्तकालय, श्रीकृष्णजन्मस्थान, मथुरा
84.	डॉ. सत्यनारायण दास	स०ना०दा०	जीवा इंस्टीट्यूट, शीतलछाया, रमणरेती, वृन्दावन
85.	डॉ. सरोज गुप्ता	स०गु०	चित्राकूट अखण्ड सच्चिदानन्द आश्रम, कमरा नं. 31, बी ब्लाक रमणरेती, वृन्दावन
86.	श्री सुखेन्द्र दुबे	सु०दु०	19, सत्यदेव नगर, हवा बंगला के पास, इन्दौर (म.प्र.)
87.	श्री सुशील सरित	सु०स०	36, अयोध्या कुंज ए, आगरा
88.	डॉ. सूफिया यास्मीन	सू०या०	पश्चिम कांतापारा, नईहाटी, जिला 24 उत्तर परगना (प०बं०)
89.	श्री हरिमोहन मालवीय	ह०मो०मा०	742/653, महामना मालवीय नगर, इलाहाबाद

ग्रंथानुक्रमणिका

अ

अंतकृछसाओ 216, 222
अंतकृददशा 211, 220
अंतगडद्सओ 217, 221-22
अंबादेवी रास 230
अगस्त्य रामायण 524
अग्निपुराण xxviii, 3-4, 201, 337, 449, 597
अग्निवेश तंत्र 92
अर्चिरादि पद्धति 306
अट्ठकथा 368
अट्ठकवग्ग 371-72
अट्ठसालिनी 369
अणुभाष्य xxiii, xxvii, 9, 230, 445, 518, 530, 621
अतनलता 482
अतीत जगत और अनन्त 707
अथर्ववेद xxi, xxvii, 3-4, 9-11, 68-69, 73-74, 90-92, 138, 151, 201, 368, 394, 492, 503, 608, 638
अर्थ कौमुदी 127
अर्थरत्नावली दीपिका 399, 467
अर्थशास्त्र xxvii, 4, 10, 367
अद्भुत रामायण 524
अद्भुतलता 482
अद्वैत प्रकाश 84, 186, 537
अद्वैतमत खंडन 253
अधिकरणन्यायमाला 320-21
अध्यात्म रामायण 524
अध्व विनिर्णय 339
अनन्य भजन जस 190
अनन्यमाल 89
अनन्याश्रय पद्धति 339
अनुत्तरौपपातिक 211
अनुयोग द्वार 211
अनुरागलता लीला 273
अनुरागवल्ली 327, 537
अनेकार्थ मंजरी 280
अन्तकृद्दशा 134
अपरोक्षानुभूति 671
अभिधान चिन्तामणि 227
अभिलाष लता 482
अभ्यासियों का कर्त्तव्य 685
अमरकोश 297, 475
अमरलोक अखण्डधाम वर्णन 594
अमलनादिपिरान् 76
अमिय निमाई चरित्र 537
अमूल्यनिधि 707
अमृतबिन्दु 707
अरिष्टनेमि चरित्र 136
अलंकार कौस्तुभ 18, 115
अलौकिक भक्ति योग 706
अवतार निबन्ध 440
अवतार वादावली 320
अवारिफे हिन्दी 577

अश्विनी कुमार संहिता 27
अष्टकालीय एकान्नपद गीतावली 178
अष्टपदी 127
अष्टयाम 2, 110, 570
अष्टसखा के दोहे 263
अष्टसखान की वार्ता 28
अष्टांग योग वर्णन 594
अष्टांग हृदय 69
अष्टाचार्यों की वाणी 511
अष्टादश रहस्य 502
अष्टाध्यायी 532
अष्टाध्यायी भाष्य 253
अष्टावक्र गीता 600

आ

आगरानामा 42
आचरांग 211, 299
आचार्य चरित्र 104
आचार दिनकर 227
आतुर प्रव्याख्यान 211
आध्यात्मिक एवं शारीरिक ब्रह्मचर्य 706
आध्यात्मिक विषय मीमांसा 706
आनंद चमन 635
आनन्द चन्द्रिका 89
आनन्द दशा विनोद लीला 273
आनन्द रामायण 524
आनन्द लता 482
आनन्द लता लीला 273
आनन्द वृन्दावन चम्पू xxix, 65, 115
आनन्दाष्टकलीला 272
आर्त्त पत्रिका 570-71
आपस्तम्भ 90, 475
आपस्तम्भ धर्मसूत्र 69, 261, 596
आप्त निश्चयालंकार 216
आबू रास 230
आर्याभिविनय 253
आयुर्वेद xxvii, 10, 27-28, 68-70, 92-93, 637
आवरण भंग 241
आवश्यक 211
आशा स्तव 127
आश्वलायन गृह्यासूत्र 90, 368, 370, 393
आर्षेय ब्राह्मण 394, 625

इ

इंजील 79
इंडिका 367
इंडिया ए नेशन 102
इंडियाज अपलिफ्ट 102
इन्साइक्लोपीडिया 594
इरटाम् तिरूवन्दादि 74
इरशादात 685

ई

ईशावास्य प्रवचन 671
ईशावास्योपनिषद् xxviii, 85, 339, 471
ईशावास्योपनिषद् भाष्य 502
ईशोपनिषद् 91, 108, 139
ईश्वर गीता 125

उ

उज्ज्वल नीलमणि xv, xxvii-xxviii, 88-89, 198, 312, 320, 505, 610, 611
उड्डामहेश्वर तंत्र 575
उत्तरचम्पूरामायण 524
उत्तर पुराण 137, 300, 317
उत्तराध्ययन 134-35, 211, 216, 222
उत्सव निर्णय 339
उत्सव निर्णयसार 338

उत्सव बीजक 207
उत्सव बोध 339
उत्सव भावना 263
उत्सव मालिका 141
उद्धव गीता 600
उद्धव संदेश 90, 506
उपदेश आनंद सत् 121
उपदेश माला प्रकरण 136
उपदेश रसायन 230
उपनिदान सूत्र 200-201
उपनिषद् तत्त्व विवेचन 706
उपराधा सुधानिधि 127-28
उपासक दशा 211

ऋ

ऋकप्रतिशाख्य 201
ऋकसर्वानुक्रमणी 201
ऋग्वेद xiii, xix, xxi, 2-4, 10, 27-28, 68, 73-74, 90-92, 94, 96, 108, 200-201, 232, 260, 293, 367, 393-94, 453, 473, 492, 504, 514, 536, 618-19, 637, 643
ऋग्वेद भाष्य 253
ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका 76, 253
ऋग्वेदानुक्रमणी 201

ए

एंजील xxix
एकादशी महात्म्य 17
एतिह्यतत्त्व राद्धान्त 329

ऐ

ऐकाकुल हक 46
ऐतरेय आरण्यक xiv, 73
ऐतरेय उपनिषद् xxviii, 91
ऐतरेय ब्राह्मण 2, 394, 503-504
ऐश्वर्य कादम्बिनी 102

औ

औदुम्बर संहिता 103-106
औपपातिक सूत्र 67, 211

क

कंठाभरण xxiv
कड़चा 107, 199
कछूली रास 230
कठोपनिषद् xxviii, 91, 107-108, 322, 468, 472, 474, 670
कठोपनिषद् भाष्य 299
कर्णानंद 109, 127-28
कण्टकोद्धार 502
कण्णिनुल चिरूयाम्बु 74
कण्ह चरिय 136
कण्ह दीपायन जातक 378
कन्हाई जस 263
कमलावती रास 230
कर्मयोग 670
कम्ब रामायण 524
कर पंचानन 479
कलि चरित्र बेली 571
कलिसंतरणोपनिषद् 113
कल्पतरू 390
कल्पसूत्र xxvii, xxix, 69, 113-14
कल्पावतंस 211
कल्याण 155
कल्याण मार्ग 707
काठक संहिता 472
कात्यायन श्रौत्रसूत्र 471
कालनिर्णय संदर्भ 636

कालिका पुराण xix, 255
काव्यकौस्तुभ 102, 118
काशी शास्त्रार्थ 253
काश्यप संहिता 70
कुंज कौस्तुभ 481
कुंजबिहारी सर्वस्व 651
कुमारपाल पडिबोह 136
कुव्वालय माला 93
कुरान शरीफ xxvi-xxvii, xxix, 44, 78, 124, 247-48, 424, 613
कूट सन्दोह 502
कूर्मपुराण xxviii, 125, 261, 337, 592
क्रमदीपिका 144
क्रम संदर्भ 210
कृष्ण कर्णामृत 126-27, 197, 532, 539
कृष्ण कर्णामृत टीका 127
कृष्ण की रिद्धि 137
कृष्ण क्रीड़ा काव्य 534
कृष्ण चरित्र 692
कृष्ण बाल चरित्र 534
कृष्ण भावनामृत xxix
कृष्ण यजुर्वेद xxvii, 73, 91, 107, 113, 471-72
कृष्ण वल्लभा टीका 126, 327
कृष्णामृतार्णेव 445
कृष्णा स्तोत्र 534
कृष्णाह्निक कौमुदी 115, 137, 534
कृष्णाश्रय: 138
कृष्णोपनिषद् 138
कृतिवास रामायण 286
कृपा अभिलाष बेली 571
केनोपनिषद् xxviii, 91, 139, 140
केलिमाल 652
कौतुक लता 482
कौषीतकि उपनिषद् 73, 91
क्षेत्र प्रकाश 230

ख

खुद्दक निकाय 372
ख्याति निर्णय 299
ख्याल हुलास लीला 272

ग

गर्ग संहिता xxvii, xxviii, 147-48, 306, 315
गजसुकुमाल चरित 221
गजसुकुमाल रास 137, 230
गणि विद्या 211
गद्यत्रय 502
गद्य रामायण 524
गन्धर्ववेद xxvii, 4, 92-93
गम्भीर चिन्तन 671
गरुड़ पुराण xxviii, 107, 150, 337
गायत्री भाष्य 518
गीत गोविन्द xiii, xiv, xv, 197, 207, 605
गीतमाला 480
गीता xv, xxvii, xxix, 3, 11, 25, 91, 107, 110-11, 125, 153, 197, 234-35, 261, 280, 293, 305, 317, 362, 367, 378, 388, 390, 397, 433, 448, 449, 457, 474, 475, 519, 537, 538, 575, 590, 599-600, 610, 692, 693
गीतातत्त्व प्रकाशिका 153
गीता दर्शन 671
गीता भाष्य xxiii, 444-45, 502, 599
गीता भूषण 91, 154
गीता में मानव धर्म 671
गीता रहस्य 623
गीता वाक्यार्थ 153, 297
गुणरत्न कोश 502

गुप्त स्वामिनी स्तोत्र 363
गुरु ग्रंथ साहिब xxiv-xxv, xxvii, xxix, 154, 238, 579, 630, 631-32
गुरु प्रणालिका 651
गुरुप्रताप 263
गुरु भक्त सहजोबाई 706
गुरु भक्ति प्रकाश 269, 288, 385, 498
गुरु मंगल 128
गुरु मंगल लीला 481
गुरु महिमा 17
गुरु साधना का आदर्श और आदेश 707
गुलजार चमन 635
गुसाईं जी के चार सेवकन की वार्ता 28
गोकुलेश लीला चरित्र अवगाहन 160
गोपथ ब्राह्मण 10, 72, 73, 394, 619
गोपाल चम्पू 129, 169, 210
गोपाल तापिनी xv, 91, 210, 257, 311, 327
गोपाल तोषणी टीका 603
गोपाल विरूदावली 210
गोपाल विलास xxiv, 171
गोपालोत्तर तापनी 320
गोपालोपनिषद् भाष्य 636
गोपी गीत 692
गोपीजन वल्लभाष्टक 621
गोभिल गृह्यसूत्र 90
गोभिलीय सूत्र 69
गोविंद दामोदर स्तोत्र 534
गोविंद भाष्य 179, 180-81, 328, 389, 542, 634
गोविंद रामायण 524
गोविंद लीलामृत 126, 182—183, 642
गोविंद वाणी 184
गोष्ठी रहस्य 496
गौड़ पाद भाष्य 623
गौतम धर्मसूत्र 90, 606
गौतम स्मृति 607
गौरगणोद्देश दीपिका 115, 178, 184, 507, 581, 584
गौर नाम रस चम्पू 129
गौर पद तरंगिनी 204, 584
गौरांग चम्पू 480
गौरांग तत्त्व निर्णय 480
गौरांग विरूदावली 185, 480

घ

घट जातक 226, 371-72, 377-78
घट रामायण 246
घरू वार्ता 160

च

चउघन महापुरिस चरिय 136
चउपन्न महापुरिस चरिय 136
चक्रोल्लास 502
चतुर्विध निर्णय 339
चतु:शरण 211
चतु:श्लोकी 168, 192, 528, 621
चतु:श्लोकी भागवत 290
चन्द्र प्रज्ञप्ति 211
चन्द्र वेधक 211
चन्द्रिका 623
चम्पू राघवम् 524
चरक संहिता 69, 93
चहार अनवाअ 577
चारू चिन्तन 671
चारूलता 482
चाह बेली 338-39
चिरियतिरूमडल 76
चूड़ामण्युपनिषद् 610
चूल निद्देस 372
चैतन्य चन्द्रामृत xxix, 194, 327

चैतन्य चन्द्रोदय नाटक xxiv, 115, 194
चैतन्य चरितामृत xxvi, xxix, 14, 126, 179, 182-83, 188-89, 195-98, 204, 357, 397, 440, 466, 480, 503, 548, 580, 602, 611, 653, 694
चैतन्य चरितावली 692
चैतन्य भागवत 179, 189, 197-98, 286, 602
चैतन्य मंगल 179, 199, 507, 537
चैतन्य सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य 659
चौपड़ खेल 263
चौरासी वैष्णवन की चोखरी xxix
चौरासी वैष्णवन की वार्ता 28, 123, 166, 245, 518, 662

छ

छद्म लीला 571
छन्द सूत्र 200-201
छन्द-बन्द 703
छन्दोनुक्रमणी 201
छन्दो मंजरी व्याख्यान 480
छान्दोग्योपनिषद् xiii, xxviii, 73, 91, 92, 213, 234, 293, 367, 381, 448, 468, 625, 638

ज

जगन्नाथ वल्लभ नाटक 199
जनार्दन विनोद 432
जबूर 78
जमुनाष्टक 339
जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति 211
जम्बू स्वामी चरित्र 230
जम्बू स्वामी रास 230
जयदेव छन्द 201
जय मंगला 623
जयशाह सुजस प्रकाश 296, 621
जपुजी xxv, 154
जलभेद: 207
जहाँगीर जस चन्द्रिका 447
जागरण महात्म्य 594
जातक xxv, 371
जीव दया रास 230
जीव दशा लीला 272
जीवन चरित्र हजूर महाराज 705
जीवाभिगम 211
जुगल ध्यान लीला 273
जुगलमान चरित्र 129
जुगल सनेह पत्रिका 571
जैन परम्परा में श्रीकृष्ण साहित्य 136
जैन साहित्य में कृष्ण 136
जैमिनीय आर्षेय 394
जैमिनीय उपनिषद् 367
जैमिनीय ब्राह्मण 394
जोगलीला 141
ज्ञात धर्म कथा 134, 216-20
ज्ञान दीपक 141
ज्ञान विज्ञान योग 671
ज्ञान स्वरोदय 586, 594

ड

डिस्कोर्सेस ऑन राधास्वामी फेथ 694

ण

णेमिणाह चरिउ 137

त

तंत्रालोक xxvii
तकरीर-दिलपजीर 18
तत्त्वदीप निबन्ध xxiii, 241, 518
तत्त्व निर्णय 339
तत्त्व बोधिनी 267

तत्त्व विवेक 445
तत्त्व विवेचन 390
तत्त्ववेत्ताचार्य की वांणी 241
तत्त्व संदर्भ 604, 620
तत्त्व समास 623
तन्दुल वैचारिक 211
तरंग लता 482
तरजीअबंद 577
तवलकार 73, 139
तांड्य 394
तारीखे दाऊदी 41
तिथि निर्णय 104, 338-39
तिरूकोवयर 284
तिरूक्कुरूताडकम् 76
तिरूच्चन्द तिरूवत्तादि 74
तिरूतोत्तर तिरूवन्तति 284
तिरूनेडुन्ताडकम् 76
तिरूपल्लाण्डु 75
तिरूपल्ली एलुच्ची 75
तिरूप्पावै 75
तिरूमंदि 284
तिरूमालै 75
तिरूमुरई 284
तिरूमुराई 592
तिरूमुलर 284
तिरूवाचकम् 284
तिरूवाचिरयम् 74
तिरूवायमौली 74
तिरूविरूत्तम 74
तिरूवेलुकूतिरूक्के 75
तिलोयपण्णत्ति 211, 227
तिसट्ठि-महापुरिस गुणालंकार 137
तेजपाल रास 230
तेवरम् 284
तैत्तरीय उपनिषद् xxviii, 73, 91, 108, 111, 448
तैत्तियारण्यक xiv, 72-73, 393
तैत्तिरीय ब्राह्मण 367, 472
तैत्तिरीय संहिता 367
तौरात 78-79, 246-47
त्रिपिटक xxv, xxix, 368-69, 371
त्रिविध नामावली 518
त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित 136, 227, 300, 317

थ

थियोसोफिस्ट 249
थेरीगाथा xxv

द

द एशियेंट विजडम 101
दत्तात्रेय गीता 600
दम्पत्ति वाक्य विलास 412, 562
दश प्रकरण 461
दशम स्कंध अनुक्रमणिका 518
दश वैकालिक 211
दशश्लोकी 322, 540
दशाश्रुत स्कन्ध 211
दानकेलि कौमुदी 506
दानकेलि चिन्तामणि 480
दान लीला 141, 273, 528, 594, 621
दिग्दर्शिनी 395
दि लिस्ट ऑफ मुहम्मडन एण्ड हिन्दू मॉन्यूमेण्ट्स 594
दिव्य प्रबन्धम् 74-75
दीघनिकाय 368
दीवाने इश्की 577
दुर्गम संगमनी 210, 399
दुर्गावृत्ति 297
दुर्गा सप्तशती xviii, 255, 457, 458
दुर्लभ सार 199,

देवल स्मृति 90
देवाचार्य दिग्विजय 636
देवी भागवत xviii, xix, xxviii, 151, 270, 319, 599
देवेन्द्र स्तव 211
देशिक निर्णय 480
दैन्यामृत 662
दैवत ब्राह्मण 394
दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता xxix, 166, 527, 662
दोहावली 338
द्रव्यशुद्धि 321
द्वादश यश 190
द्वात्रिंशदपराध क्षमापन 321
द्वैताद्वैत मार्तण्ड 329
द्वैताद्वैत सिद्धान्त सेतुका 269

ध

धनुर्वेद 4, 92-93
धम्म पद अट्ठकथा xxv, xxix, 369
धर्म जहाज 594
धर्म प्रवर्तिनी 380
धर्म विचार जस 190
धर्मसिन्धु 596
ध्रुवदास की वाणी 273
ध्रुव सर्वस्व 272
ध्यान मंजरी 2

न

नक्षत्र कल्प 11
नच्चियारतिरूमौली 75
नन्दी सूत्र 211
नरनारायणनन्द महाकाव्यम् 136
नरोत्तम विलास 185, 208
नवग्रह 662
नवतत्त्व प्रकरण 229
नवरत्न 181, 287
नवरत्न निर्णय 659
नवभक्तमाल xxix
नव संतमाल 236
नाटक चन्द्रिका 505, 529, 530
नानमुखनतिरूवन्तादि 74
नाम प्रताप 17
नाम माला 280
नाम रत्नावली 340
नाम संकीर्तन महिमा 692
नारद पांचरात्र xxvii, 256, 316
नारद पुराण xxvii-xxviii, 291-92, 610
नारद भक्ति दर्शन 671
नारद भक्ति सूत्र xxvii, xxviii, 291-92, 610
नारायण भट्ट चरितामृत 668
नारायण स्तोत्र 141
नारायणीयोपाख्यान 30, 293
नालियर प्रबन्धम् 73
नासकेत लीला 594
निंबार्क माधुरी 241
निकुंज रहस्य xxix
निकुंज रहस्य स्तव 293, 506
निगमचिन्तन 671
निघण्टु 297
निजभाव कल्पतरू 340
निजमत दर्पण 339
निजमत सिद्धान्त 80, 121, 285, 288-89, 318, 508, 534, 556, 621, 651
निजवार्ता 166
नित्यकर्म पद्धति 693
नित्यलीला 263
नित्यविहारिणी स्तव 339
नित्यहितमण्डल यात्रा 551, 554-55, 559, 561-62, 564
निद्देस 372
निदान सूत्र 200
निबन्ध प्रकाश टीका 527-28, 621
निमाई संन्यास नाटक 537
निम्बार्क विक्रान्ति 103, 105-106, 294-95
निम्बार्क व्रत निर्णय 103
निम्बार्क स्तोत्र 106
निरयावलिका 134-35, 211
निरुक्त 73, 297-98
निरोध लक्षणम् 298, 662
निशीथ सूत्र 211, 299
नेम बत्तीसी 263
नेमि चन्द्रिका 137
नेमिदूत 136
नेमिनाथ चरित 136
नेमिनाथ पुराण 136
नेमिनाथ फागु 137
नेमिनाथ रास 137, 230
नेमिनाह चरिउ 137
नेमिनिर्वाण काव्यम् 136
नेमिश्वर की बेलि 137
नेमिश्वर चंद्रायण 137
नेमिश्वर रास 137
नेह मंजरी लीला 273
न्याय निर्णय 390
न्यासादेश विवृत्ति 528, 621
नृत्य विलास लीला 273

प

पंचकोशी साधना 706
पंचनिकाय xxv
पंचपद्यानि 302
पंचसिद्धान्तिका 232
पंचस्तवी श्रीयुगलगीति शतकम् 703
पंचोपनिषद् सार 594
पउम चरिय xxix, 302
पज्जुण चरिउ 137
पञ्चकल्प 211
पतितपावन जस 190
पत्रावलम्बन् 321, 518
पथोपदेश 263
पद कल्पतरू 89, 192, 198
पद्मपुराण x, xx, xxi, xxviii, 147, 302-305, 319, 436, 441
पदावली 127, 133, 190, 338, 340
पदामृत समुद्र 89
पद्यावली 460, 505
पद्यावली की टीका 505
परकीया भाव खण्डन 339
परपक्षगिरिव्रज 312
परम संहिता 317
परमात्म प्रकाश 269
परमात्म संदर्भ 604
परशुराम सागर 313
पारिजात सौरभ भाष्य 299
परिमल 390
परिविहार 706
पांडव रासो 230
पाखंड खण्डन 253
पाण्डव चरित्र 136
पारस्कर गुह्यसूत्र 47
पाराशर गीता 600
पाशुपत सूत्र 592
पार्श्वनाथ चरित्र 317
पार्श्वनाथ पुराण 38
पिक्टोरियल आगरा 42
पिण्ड निर्युक्ति 211

पुष्पाधान 68
पुरुषोत्तम योग 671
पुरुषोत्तम सहस्त्रनाम 518
पुरुषोत्तम सहस्त्रनाम विवृत्ति 320
पुष्पचूलिका 211
पुष्पिक 211
पुष्टिदृढ़ावनि वार्ता 662
पुष्टि प्रवाह मर्यादा 662
पुष्टि प्रवाह मर्यादाभेद 321, 323
पूजा विलास 481
पूर्णप्रज्ञ भाष्य xxvii, 389
पेम परकास 577
पेरियतिरूमडल 76
पेरियतिरूमौली 76
पेरिय पुराण 284
पेरियालवार तिरूमौली 75
पेरूमाल तिरूमौली 75
पैप्पलाद संहिता 10
पौष्कर संहिता 317
प्रकाश 241, 320–321
प्रकाश वेली 571
प्रकाशानंद पूर्ण संज्ञा 339
प्रद्युम्न चरित्र 136
प्रद्युम्न प्रबंध 137
प्रद्युम्न रासो 137
प्रपत्ति चिंतामणि 297
प्रपत्ति चिंतामणि की टीका 535
प्रपन्नकल्पवल्ली 297, 327, 636
प्रपन्नवृत्ति निर्णय संदर्भ 636
प्रपन्न सुरतरू मंजरी 636
प्रभा टीका 464, 541
प्रभुपूर्ण पुरुषोत्तम कौ रूप तथा गुण नाम वर्णन 379
प्रभु पदावली 692
प्रमाण चतुष्टय 339
प्रमाण लक्षण 445
प्रमेय रत्नावली 181, 327, 328, 464, 541, 633
प्रयोग विधि 409
प्रश्न व्याकरण 134–35, 211, 216
प्रश्नोत्तरी 262, 336
प्रश्नोपनिषद् xxviii, 11, 91, 334–35
प्रसादलता 482
प्रस्थान रत्नाकर 320–21
प्रज्ञापना 211
प्रातः स्तवराज स्तोत्र 703
प्रातः स्मरण स्तवन 297
प्रार्थना शतकम् 339
प्रियाचरण चिह्न तात्पर्य 339
प्रियाजी नामावली लीला 273
प्रियादास की वार्ता 338
प्रिया–प्रीतम विवाह 141
प्रीति चौवनी लीला 272
प्रीति संदर्भ 604
प्रेमतत्त्व निरूपण 129
प्रेमदशा लीला 273
प्रेमपत्तन 149
प्रेम परीक्षा 141
प्रेम मंजरी 141
प्रेम विलास 87, 208, 537, 673
प्रेम संदेश 673
प्रेमाकुंर नाटक 292, 380
प्रेमावली लीला 273
प्रौढ़ ब्राह्मण 394, 625

फ

फाग खेल बरनना अष्टक 133

ब

बन्शी शिक्षा 537

बलभद्र चौपाई 137
बलभद्र बेलि 137
बसन्त प्रबन्ध 335, 339, 660
बसन्तहूरी की भावना 662
बाइबिल xxvii, xxix, 246, 424–25, 613
बारहमासा 141
बालबोध 363
बाललीला 481
बुद्धिरास 230
बैठक चरित्र 166
बैजवाप गुह्यसूत्र 471
बोधायन टीका 535
बोधायन धर्मसूत्र 367
बौधायन गृह्यसूत्र 90
ब्याह लीला 141
ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास 141
ब्रज के धर्म सम्प्रदाय 528
ब्रज ग्राम वर्णन 565
ब्रज चरित्र 594
ब्रज परिक्रमा 517
ब्रज प्रकाश 380
ब्रज प्रदीपिका 380
ब्रज प्रेमानन्द सागर 571
ब्रजभक्तिविलास 141, 292, 379–80, 440–41
ब्रजभूमि प्रकाश 548, 564–65
ब्रज महोदधि 292, 380
ब्रजयात्रा दरशमाल 567
ब्रजलीला 273
ब्रजवस्तु वर्णन 447
ब्रजविलास xxvii
ब्रजोत्सव आह्लादिनी 292, 380
ब्रजोत्सव चन्द्रिका 292, 380–81
ब्रह्म ज्ञान और उसकी साधना 671
ब्रह्मज्ञान सागर 594
ब्रह्मपुराण xxviii, 2–3, 384, 596
ब्रह्मविद्या सागर 260
ब्रह्मवैवर्त पुराण xx, xxii, xxviii, 147, 256, 317, 319, 385–86, 451, 638
ब्रह्म संहिता 197, 306, 320
ब्रह्म संहिता दिग्दर्शिनी 210
ब्रह्मसूत्र xxiv, xxvii, xxviii, 11, 127, 268, 333, 381, 388–89, 391, 444–45, 462, 540, 542, 575, 590, 600, 606, 633
ब्रह्माण्ड पुराण xxviii, 147, 337, 391–392
ब्रह्मोधर्म 267
ब्राह्मणोपनिषद् 139
बृहद जातक 232
बृहद् भागवतामृत 395, 615
बृहदारण्यक 73, 91–92, 464, 471, 624
बृहन्नीलतन्त्र 255

भ

भँवर गीत 280
भक्त कवि व्यासजी 660
भक्तगाथा 661
भक्त चरितांक 526, 528
भक्तदाम गुणचित्रणी 366, 508
भक्त नामावली लीला xxix, 272
भक्तमाल xxiii, xxvii, 2, 14, 16, 130, 148, 175, 189, 209, 262, 279, 327, 366, 380, 512, 651, 660, 665
भक्त विरूदावली xxix
भक्त संस्तार 211
भक्ताम्बर स्तोत्र 38
भक्ति चंद्रिका 329
भक्ति चंद्रोदय 330
भक्ति निर्णय 527
भक्ति पदार्थ वर्णन 594

भक्ति प्रताप जस 190
भक्ति भूषण संदर्भ 292, 380
भक्ति भेद सिद्धान्त 263
भक्ति योग 671
भक्ति रत्नाकर 165, 179, 327, 339
भक्तिरस तरंगिणी xxix, 292, 380
भक्तिरस बोधिनी 417
भक्ति रसार्णव 676
भक्ति रसामृत सिन्धु xxvi, xxviii, 88-89, 198, 398, 467, 505, 657
भक्ति रसायनम् 671, 676
भक्तिवर्द्धिनी 399
भक्ति विवेक 292, 380, 441
भक्ति शतक 378
भक्ति संदर्भ 604
भक्ति सर्वस्व 671
भक्तिसागर xxiv, xxvii, 584, 594
भक्ति सार प्रदर्शिनी 399
भक्ति सिद्धान्त मणि 481
भक्ति सुधा 676
भक्ति हंस 527-28
भक्ति हेतु 528
भगवत गीता भाष्य 289
भगवत संदर्भ 6, 307, 604
भगवती ज्ञाता धर्मकथा 211
भगवदाराधन क्रम 502
भगवान कृष्ण की लीलायें 706
भजन कुण्डलियां लीला 272
भजन शृंगार लीला 272
भजन सत लीला 272
भजनाष्टक लीला 272
भरतेश्वर बाहुबलि घोर रास 230
भरतेश्वर बाहुबलि रास 230
भवभावना 136
भविष्य दत्त कथा 344
भविष्य पुराण 268, 405
भविष्योत्तर पुराण 490
भागवत कथा की बानगी 692
भागवत खण्डन 31, 251
भागवत दर्शन 671
भागवत नामावली xxix
भागवत पुराण xiii, xxii, xxviii, 8, 198, 204, 292, 316-17, 319, 322, 406, 459, 490, 507, 590, 615
भागवत प्रकाश 339
भागवत संदर्भ 210, 603, 620
भागवतामृत 671
भामती 390
भारतीय संस्कृति एवं शुद्धि 692
भाव कल्पतरू 340
भावप्रकाश 662
भाव प्रकाशिका 321
भावना सागर 191
भावनोपनिषद् 408
भाषा भागवत 289
भाषा वर्षोत्सव 338
भाषा ज्ञान नौका 589
भाष्य प्रकाश 9
भाष्य प्रस्थान रत्नाकर 321
भाष्य विवरण 363
भास्कर रामायण 524
भुवन मंगल 194
भुशुण्डी रामायण 524
भेड़ संहिता 70
भेदाभेद सिद्धान्त 712
भ्रमर गीत 129

म

मंगलसार जस 190
मंजुभाषिणी 524
मंत्ररहस्य षोडशी 297, 423, 636
मंत्रराज भावार्थ दीपिका 703
मजालिसुल मोमिनीन 46
मटकी लीला 594
मठाम्नाय महानुशासनम् 575
मठाम्नायसेतु 575
मठाम्नायोपनिष्टद 575
मठेतिवृत्ति 575
मतबेध 339
मत्स्य पुराण x, xxviii, 147, 319-20, 423-24, 521
मथुरा ए डिस्ट्रिक मैमोयर 158, 277, 393, 415, 553, 554, 651
मथुरा महात्म्य 434, 440-41
मथुरा महिमा 506
मदन कामरत्न 69
मधुकेलिवल्ली 149
मधुमति 270
मधुराष्टक 187
मध्व बृहद भाष्य 463
मध्वविजय 445
मनशृंगार लीला 272
मनविरक्त करण गुटकासार 594
मनशिक्षा लीला 272-273
मनु स्मृति 90, 261, 298, 336, 597, 642
मनोऽवलम्बिका 467
मनोरथ लता 482
मनोरथ लीला 482
मनोहरा टीका 525
मन्त्र ब्राह्मण 394
मन्त्रार्थ रहस्य 423
मसनवी रियाजे इश्क 577
महात्मा श्रीरामचन्द्र जी की जीवनी व उपदेश 707
महानिद्देस 370-372
महानिशीथ 211
महापुराण xxix, 136, 225
महाप्रभु जी श्रीबल्लभाचार्य जी की प्राकट्य वार्ता 662
महाप्रवाख्यान 211
महाभारत x, xiii-xiv, xxviii, 2, 27, 30, 41, 63, 70, 103, 136, 213, 226, 293, 297, 316, 367-371, 428, 430, 444-445, 449, 456, 474, 537, 573, 591, 600, 605, 622, 626, 638
महाभारत तात्पर्य निर्णय 445, 460
महाभाष्य 367
महायात्रा गाथा 640
महावंश 68
महावस्तु 378
महावाणी 474, 487, 713
महोत्सव निर्णय 339
मार्कण्डेय पुराण xxviii, 151, 456-458, 597, 599
माखन चोरी लीला 594
माठर वृत्ति 623
माणिक्य प्रस्तारिका 229
माण्डूक्य कारिका प्रवचन 670
माण्डूक्य प्रवचन 670
माण्डूक्य शिक्षा 10
माण्डूक्योपनिषद् xxviii, 91, 448
माधव महोत्सव 209-210, 458
माधुर्य लता 482
माधुर्य शत् 513
माधुर्य शतकम् 513
मान कुतुहल 652
मान मंजरी 280
मान लीला 133, 141, 273
मानव जीवन और भागवत धर्म 671

माला प्रसंग 166
मिताक्षरा 336, 596
मिरेकल ऑफ लव 690
मिश्रबन्धु विनोद 197
मुकुट सप्तमी 229
मुकुन्द माला 75
मुक्ता चरित्र 480
मुक्तिका उपनिषद् 11, 91
मुण्डक प्रवचन 671
मुण्डकोपनिषद् 91, 108, 467-468
मुदलतिरूवन्तादि 73
मुल्तानी मांझ 141
मुहूर्त चिन्तामणि 104, 232
मूलपुरुष 263
मेघदूत 645
मेरूनंद नागणी 230
मैत्रायणी 91, 472
मैत्रायणीयारण्यक 73
मोहिनी जस 190
मृत्यु और मृत्य के पश्चात् 707

य

यजुर्वेद xxvii, 3-4, 10, 74, 85, 92, 200, 316, 393-394, 470, 598, 609, 638
यजुर्वेद भाष्य 253
यति धर्म समुच्चय 502
यमुनाष्टक 190, 437, 474, 666
युक्त दीपिका 623
युगल गीति शतकम् 474
युगल शतक 487
युग्म तत्त्व प्रकाशिका 703
योग फिलोस्फी और नवीन साधना 707
योग वशिष्ठ 213, 242
योग संदेह सागर 594
योग सार 280

र

रंगनाथ रामायण 524
रंग विनोद लीला 273
रंग विहार लीला 273
रंग सागर नेमि फागु 137
रंग हुलास लीला 273
रघुनाथ विजय चम्पू 524
रघुवीर विजय 524
रतनलता 482
रति मंजरी लीला 273
रति रंग लता 482
रत्नप्रभा 390
रत्न सागर 141
रश्मि 9
रस कदम्ब चूड़ामणि 482
रस कुल्या 661
रस मंजरी 141, 280
रस मुक्तावली लीला 273
रस विहार लीला 273
रससार 481
रस सार संग्रह 340
रसार्णव पटल 481
रसानन्द लीला 272-273
रसामृत शेष 210
रसास्वादिनी 327
रसिक अनन्य पदावली 335
रसिक अनन्य परिचावली xxix, 339-40, 660
रसिक अनन्यअलि परिचावली 122
रसिक अनन्य माल 89, 114, 417, 421, 548, 554
रसिक पथ चंद्रिका 57
रसिक भक्तमाल 15
रसिक भक्तिगाथा xxix

रसिक रंगदा 507
रसिकाह्लादिनी टीका 292, 380
रहस विलास 263
रहस्य प्रबंध 299, 322
रहस्य भरी गाथाएं 707
रहस्य भावना की वार्ता 324
रहस्य मंजरी लीला 273
रहस्य लता 482
रहस्य लता लीला 273
रहस्य षोडशी 636
रागदर्पण 652
रागानुगाविवृत्ति 505
राघवेन्द्र चरित्र प्रभु पूजा पद्धति 692
राजप्रश्न 211
राधाकुण्ड स्तव 149
राधाकृष्ण गणोद्देश दीपिका 506
राधातत्त्व दर्पण 339
राधातत्त्व प्रकाश 513
राधानुनय विनोद 127
राधा प्रताप जस 190
राधा भक्ति मंजूषा 339
राधावल्लभ भक्तमाल 110
राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य 482, 659
राधाष्टक 297
राधाष्टकम् 339
राधा सिद्धान्त xxiv, 489-90, 513
राधासुधानिधि xxvii, 491, 611, 661, 666
राधास्वामी मत 673, 704
राधास्वामी मत दर्शन 673
राधिकातापिनीयोपनिषद् 492
राधोपनिषद् 492-93
रानी मंगल 2
रामकथा सुधोदय चम्पू 524
रामचन्द्र काव्यम् 524
राम चन्द्रोदय 524
रामचरित गीत 178
रामचरित मानस xxiii, xxvii, xxix, 25, 195, 398, 600
रामराज्य और मार्क्सवाद 676
राममन्त्र पद्धति 502
रामायण xxviii, 68, 103, 201, 235, 290, 364, 368-69, 523
रामायणकार्णव 524
रामायण चम्पू 524
रामायण तात्पर्य निर्णय 524
रामायण तात्पर्य संग्रह 524
रामायण दीपिका 524
रामायण मीमांसा 524
रामायण शिरोमणि 524
रामायण संग्रह 524
रामायण सार संग्रह 524
रामायण सार स्तव 524
रामाश्वमेघ 399
रायपसेणियसुत्त 227
राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और हिन्दू धर्म 676
रास पंचाध्यायी xxvii, 513, 692
रास प्रबन्ध 327
रिट्ठनेमि चरिउ 137
रिसाला रावालो जवाब 577
रुक्मिणी मंगल 280
रूप मंजरी 280
रेवंत गिरि रास 230

ल

लघुगोपाल चम्पू 129
लघुतोषणी उपसंहार 440
लघुत्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित 136
लघु बोधिनी 657

लघु भागवतामृत xv, xxix, 464, 505, 507
लघु सिद्धान्त कौमुदी 542
लघु स्तवराज 299
ललित प्रकास 508, 621
ललित माधव नाटक 115, 309-310, 505, 509
ललित विस्तर 378
ललिता मंगल 513
लाड़सागर 571
लाला जी महाराज 704
लाल पचीसी 141
लाल शतक 141
लिंग पुराण xxviii, 454, 511
लीला सागर 17, 146, 149, 159, 193, 230, 236-237, 248, 260, 280, 289, 300, 312-13, 339, 385, 442, 495-499, 511, 615, 622, 624, 645, 663-664
लीलास्तव 615
लोचन रोचनी 89, 210, 310

व

वंश ब्राह्मण 394, 625
वचनामृत 166, 662
वचनिका सिद्धान्त 508
वनविहार लीला 273
वल्लभ दिग्विजय 472, 538-539
वल्लभ रसिक की वाणी 149
वल्लभाख्यान सटीक 379
वर्षोत्सव 110
वर्षोत्सव की भावना 662
वर्षोत्सव निर्णय 339
वसुदेव हिन्डी 136
वहिनदशा 211
वाजसनेय संहिता 85, 471
वाजसनेयि प्रातिशाख्य 471
वामन पुराण xiii, xxviii, 453, 520, 591
वायु पुराण xiii, xxviii, 147, 320, 432, 521-522, 583
वाराह पुराण xxviii, 320, 337, 380, 431-32, 434, 438, 522, 597
वाराह संहिता 481
विट्ठलाष्टक 182
विज्ञप्ति 525, 528, 662
विज्ञानामृत 389
विदग्ध माधव नाटक 337, 505, 529
विनोद लता 482
विपिन विहार बत्तीसी 133
विभूति योग 671
विमुख भंजन जस 190
विपाक सूत्र 211
विरह मंजरी 280
विलक्षण भक्ति मीमांसा 339
विलास पवाहु 230
विलासलता 482
विल्बमंगल नाम कोष 534
विल्बमंगल स्तोत्र 534
विवरण 320, 390
विवरण दीपन 390
विवरण रहस्य 390
विवाहलउ 230
विविध तीर्थ कल्प 67
विविध वाद संग्रह 320
विवेक धैर्याश्रय: 534
विवेक पत्रिका बेली 571
विवेक वल्ली 703
विद्वन्मण्डल 527-28, 530
विवृत्ति 363
विवृत्ति प्रसाद वागीश 363
विवृत्ति भक्तिवर्द्धिनी स्तोत्र 363

विशिष्टाद्वैत भाष्य 502
विशुद्धरस दीपिका 489
विश्वधारी स्तोत्र 535
विष्णुपुराण xiii, xiv, xxviii, 6, 286, 319, 397, 504, 534
विष्णुधर्म सूत्र 90
विष्णु धर्मोत्तर 337, 428
विहार चमन 635
विष्णु संहिता xxvii
विष्णु सहस्त्रनाम xxiv, 537-38, 612
विहावल 363
वीरस्तव 211
वृत्तमुक्तावलि 201
वृन्दावन अष्टक 133
वृन्दावन जस 571
वृन्दावन धामानुरागावली 158, 209, 415, 549, 551-552, 554-55, 558, 560-64, 566-67, 651, 658
वृन्दावन प्रकाशमाला xxix, 415, 548, 557, 564
वृन्दावन प्रदक्षिणा 552
वृन्दावन प्रेमविलास बेली xxix
वृन्दावन मंगल 513
वृन्दावन महात्म्य 692
वृन्दावन महिमा 17
वृन्दावनमहिमामृतम् xxix, 327, 543, 571
वृन्दावन शतक 567
वृन्दावन संत लीला 272
वृन्दावन संदेश 357
वृन्दावन सत 16
वृहतकल्प 211
वृहत सर्वानुक्रमणी 201
वृहत्संहिता 428
वृहद गौतमीय तंत्र 320
वृहद बावन पुराण भाषा लीला 272
वृहद ब्रजगुणोत्सव 292, 380
वृहद राधा भक्ति मंजूषा 127
वृहदारण्यक उपनिषद् 85, 393
वृहस्पति स्मृति 596
वेकअप इंडिया 102
वेद प्रामाण्य मीमांसा 675
वेद विरूद्धमत खंडन 253
वेद स्वरूप विमर्श 675
वेदांग प्रकाश 253
वेदांत कामधेनु 297, 322, 540, 635
वेदांत कौस्तुभ xxix, 298, 540-41
वेदांत कौस्तुभ प्रभा 312
वेदांत कौस्तुभ प्रभा भाष्य 540-41
वेदांत तत्त्वसार 502
वेदांत दीप 502
वेदांत ध्वांत निवारण 253
वेदांत पारिजात 389, 675
वेदांत पारिजात सौरभ xxii, xxvii, 297, 299, 540-541
वेदांत रत्न मंजूषा 103, 322, 540-41
वेदांत संग्रह 502
वेदांत सार xxiii, xxvii, 502
वेदान्तस्यमन्तक 541
वेदार्थ संग्रह 382
वैकुण्ठ गद्य 502
वैतान कल्प 11
वैतान श्रौतसूत्र 10
वैदिक ज्ञान लीला 273
वैद्यक ज्ञान लीला 272
वैद्य सार संग्रह 70
वैष्णवतोषिणी xxvii, 210, 319, 615
वैष्णव धर्म सुरद्रूम मंजरी 104
वैष्णव पूजाविधि 506
वैष्णव मताब्ज भास्कर 501

वैष्णव वंदना 178, 185, 204
वैष्णव व्रत निर्णय 480
व्रतोत्सव निर्णय 339
व्यवहार 211
व्यवहार और परमार्थ 671
व्यवहार भानु 254
व्याकरण कौमुदी 573
व्यासनन्दन भाष्य 339
व्यासनन्दनाष्टक 127
व्यास स्मृति 607
व्योम सार 628

श

शंकर दिग्विजय 575
शंकर विजय 575
शक्ति स्वातन्त्र्य परामर्श 490
शक्ति स्वातन्त्र्य प्रदीप 513
शक्ति स्वातन्त्र्यवाद 490, 513
शतपथ xxviii, 90, 270, 367, 394, 445, 471
शब्द कल्पतरू 397
शब्दवानी 677
शांखायन 90
शाखा निर्णय 189
शाङ्र्गधर संहिता 70
शाण्डिल्य भक्ति सूत्र xxvii, xxviii, 316, 397
शान्त उपासित 334
शास्त्रार्थ प्रकरण 321
शिक्षापत्री ध्वांत निवारण 254
शिक्षा सकल समाज 190
शिक्षासार जस 190
शिवपुराण xix, xxviii, 147, 356, 436, 454, 504, 521, 582, 592
शिव भक्त चरितमु 284
शुक 692
शुक्ल यजुर्वेद xxvii, xxviii, 73, 91, 471
शुक्ल यजुसर्वानुक्रमणी 201
शुक्ल सूत्र 471
शूनिसार 628
श्याम सगाई 280
श्वेताश्वतरोपनिषद् xxviii, 6, 71, 91, 463, 467, 472, 475
शृंगार के पद 318
शृंगार रस मंडन 528, 598
शृंगार सागर 353
श्राद्ध कल्पतरू 596
श्रीकृष्ण कीर्तन 188
श्रीकृष्ण चैतन्य चरितामृत 107, 115
श्रीकृष्ण मंगल 179
श्रीकृष्ण लीलामृत 87
श्रीकृष्ण संदर्भ 604
श्रीगुरूदेव के महत्त्वपूर्ण पत्र 707
श्री गोवर्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्त्ता 662
श्री गोवर्धन भट्ट ग्रंथावली 149
श्री जानकीवल्लभ स्तव: 703
श्रीनाथ आदि सात स्वरूपों की भावना 263
श्रीनिकुंज सौरभम् 703
श्रीनिम्बार्क गोपीजन वल्लभाष्टकम् 703
श्रीनिम्बार्क चरितम् 703
श्रीपरशुराम स्तवावली 703
श्रीभगवत तत्त्व 676
श्रीभगवत दर्शन 695
श्रीभाष्य xxiii, 382, 389, 502
श्रीमद् भागवत पुराण xiv, xx, xxvii, xxviii, 5, 25-26, 116, 123, 142, 147-148, 150, 164, 170, 197, 262, 287, 289-91, 305-306, 308-309, 311, 326, 331-32, 362, 395, 397-98, 428, 432-33, 438, 443-45, 453, 465, 489, 491, 518, 543, 559-60, 584, 593, 601-602, 605, 611, 613, 621-22, 633, 645, 657, 684, 692, 694-95
श्रीमद् भागवत रहस्य 670
श्रीमद्भागवतीय संशय शातनी टीका 480
श्रीमद्वैष्णव सिद्धान्तरत्न संग्रह xv
श्रीमद्शंकराचार्य प्रभृति भाष्यकार गण 712
श्री माधव प्रपन्नाष्टकम् 703
श्री रस कालिका 278
श्री राधा कृष्णार्चन दीपिका 210
श्री राधादामोदर काव्य 480
श्री राधाराधना 703
श्री राधावल्लभ भाष्य 128
श्री राधावल्लभाष्टक 339
श्री राधा शतकम् 703
श्री राधा सर्वेश्वरालोक: 703
श्री राम रसायन 480
श्री रूप चरितामृत 505
श्री रूप सनातन स्तोत्र 149
श्री लाल जी की स्तुति 440
श्री विद्या रत्नाकर 677
श्री विनोदय सूरि महाभिषेक रास 230
श्री वृन्दावन लीलामृत 278
श्री संतदास चरितामृत 693
श्री संतदास बाबाजी उपदेश मंजूषा 693
श्री सर्वेश्वर प्रणति पद्यावली 379
श्री सर्वेश्वर प्रपत्ति स्तोत्र 296
श्रीसूक्त 448
श्रीस्तव रत्नांजलि 703
श्री हनुमन्महाष्टकम् 703
श्रुति गीता 600
श्रुति सिद्धान्त मंजरी 619
श्रुत्यन्त कल्पवल्ली 619
श्रुत्यन्त सुरद्रुम 619

स

संकल्प कल्पद्रूम 605
संकल्प सूर्योदय टीका 502
संक्षिप्त जीवन चरित्र 18
संक्षिप्त सार 339
संगीत दर्पण 3
संगीत ब्रह्म संहिता सारावली 679
संगीत माधव नाटक 178
संगीत माधवम् 327, 605
संतमाल xxix
संत चरितावली 707
संतदास चौपड़ा की वार्ता 323
संतदासाष्टकम् 693
संत प्रताप जस 190
संत श्रीतुकाराम 707
संत श्रीमीराबाई 707
संतों की वार्त्ता 707
संदेश रासक 230
संद्धर्भ पुंडरीक जातक 68
संध्या विधि 254
संन्यास निर्णय 606, 662
संस्कार विधि 254
संस्मरण पूज्य गुरुदेव 707
संहिता विधि 10
संहितोपनिषद् ब्राह्मण 395, 625
सखी विलास 17
सखी और जजमान 263
सत्पक्षेत्रि रास 230
सत्य धर्म विचार 254
सत्यार्थ प्रकाश xxv, xxvii, xxix, 254, 613-14
सदयवत्स चरित 230
सदाचार प्रकाश 103, 297
संद्धर्भ पुण्डरीक 378

सनतकुमार संहिता 104-105, 320, 614
सनतकुमारीय गुण रहस्य 104
सनत्कुमारीय परगुण रहस्य 614
सप्त सन्धान काव्यम् 136
सभामण्डल लीला 272
सम प्रॉब्लम आफ लाइफ 102
समय प्रबन्ध 110, 133, 318
समय सार 38
समरारासु 230
समरारासो 230
समवायांग सूत्र 134, 211-12, 222
सम्प्रदाय कल्पद्रुम 166, 480
सम्प्रदाय निर्णय 339
सम्मोहन तंत्र 320
सरस मंजावली 621-22
सविशेष निर्विशेष श्रीकृष्ण स्तवराज 534, 619
सवैया पच्चीसी 121
सर्वज्ञ सूक्त 538
सर्व संवादिनी 5, 210, 620
सर्वेश्वरी 621
सर्वार्थ सार 525
सर्वानुक्रमणी 200
सर्वोत्तम स्तोत्र 321, 363, 527-28, 621
सांख्य कारिका 623
सांख्यतत्त्व कौमुदी 623
सांख्य प्रवचन भाष्य 623
सांख्य योग 670
सांख्य सप्तति 623
सांख्यायन श्रौत सूत्र 368, 370
साकेत 524
सात्त्वत संहिता 316-17
साधन 706-707
साधन दीपिका 292, 380
साधना और ब्रह्मानुभूति 671
साधना के अनुभव 707
सामविधान ब्राह्मण 395, 625
सामवेद xxvii, 3-4, 10, 73-74, 91-93, 139, 201, 232, 393-94, 624-26
सामान्य विरूदावली लक्षण 506
सारंग रंगदा 127, 507
सार पचीसी 141
सार बोधिनी 18
सारभेद 677
सार वचन राधास्वामी 703
सार वचन वार्तिक 698, 703
सार संग्रह 505
सारावली 232
सारासार विवेक 339
साहित्य कौमुदी 102, 628
साहित्य रत्नावली 340, 571
सिद्ध योगी कीलदास 130
सिद्धान्त की साखी 318
सिद्धान्त के कवित्त 121
सिद्धान्त के पद 263, 318, 513
सिद्धान्त कौमुदी 532
सिद्धान्त जाह्नवी 269, 633
सिद्धान्त जाह्नवी सेतुका 269
सिद्धान्त दर्पण 633
सिद्धान्त निर्णय 339
सिद्धान्त मुक्तावली 518, 633
सिद्धान्त रत्न 633-34
सिद्धान्त रत्नांजलि 540, 635
सिद्धान्त रत्नाकर 121, 506
सिद्धान्त रहस्य xxiii, 388, 635
सिद्धान्त विचार 272-273
सिद्धान्त विचार लीला 272
सिद्धान्त शिरोमणि 232
सिद्धान्त सरोवर 121

सिद्धान्त सार संग्रह 121
सीता चम्पू 524
सुकसारी लता 482
सुख मंजरी लीला 273
सुखसार लता 482
सुत्तनिपात 370-372
सुबोधिनी टीका xxiii, xxviii, 169, 320, 407, 518, 527, 528, 621
सुबोधिनी प्रकाश 408
सुमंगल विलासिनी 368, 370
सुमंगल स्तोत्र 534
सुवर्ण सप्तति 623
सुश्लोक मणिमाल 339
सुश्रुत संहिता 70, 608
सूत्र कृतांङ्ग 211
सूत्र विमर्षिणी 339
सूर्य प्रज्ञप्ति 211
सूर्योपनिषद् 638
सूरदास 323
सूरसागर xxviii, 95, 491
सेवक चरित्र 337
सेवक जू कौ अष्टक 338
सेवक प्रिया विलास 338
सेवकवाणी 338, 660-61
सेवा दर्पण 338-39
सेवाफलम् 639
सेवा विचार 338
सेवाविधि 662
सौन्दर्यलता 482
सौभाग्यलता 482
स्कन्द पुराण xxviii, 147, 240, 453, 640-41
स्तवमाला xxix, 506
स्तवावली 480
स्थानांगसूत्र 134, 211
स्थापत्य वेद 92-94
स्नेह सागर 41
स्नेहामृत 662
स्फुट पद टीका 338
स्फुट वाणी टीका 339, 666
स्फुरत कृष्ण प्रेमामृत 321
स्फुरित कृष्ण प्रेमामृत 321, 662
स्मरण मंगल स्तोत्र xixx, 506, 641
स्वधर्मामृत सिन्धु 103
स्वप्न विलास 16-17, 571
स्वप्न स्वामिनी स्तोत्र 363
स्वमत्तव्यान्तव्य प्रकाश 254
स्वातिग्र शुभ लक्षिन 65
स्वामिनी स्तोत्र 527-28, 621
स्वामिन्याष्टक 621

ष

षट् संदर्भ 603, 620
षोडश ग्रंथ टीका 320
षोडश ग्रंथ विवृत्ति 528
षडविंश ब्राह्मण 395, 625

ह

हंसगीता 614, 645
हंसदूत 506, 645
हंसराज वच्छराज चउपई 230
हंसशालिभद्र रास 230
हंसाउली 230
हदीस xxvi, xxix, 647-49
हदीस-ए-कौली 648
हदीस-ए-फेली 648
हदीस-ए-तकरीरी 649
हरिकलाबेली 339, 660
हरिनामामृत व्याकरण xxix, 210, 657

हरिभक्ति सिंधु बेला 501
हरिभक्ति विलास xxix, 131, 170, 615
हरिवंश पुराण xi, xiii, xiv, xxii, 136, 211–12, 222–223, 225, 428
हरिवंशाष्टक 127, 650
हस्तामलक 262, 336
हृदय सर्वस्व xxiv, 513
हार्मोनिष्ट 696
हारीत संहिता 70
हास्य प्रसंग 166
हित अलि शृंगार 340
हित कथामृत तरंगिणी 339
हित चौरासी xxvii, 16, 336, 338–40, 416, 487, 611, 666
हित दम्पत्ति विलास 514
हित मतार्थ चन्द्रिका 339
हितरूप चरित्र बेली 339, 660
हित शृंगार लीला 272
हित हरिवंश चन्द्र 340
हित हरिवंश चरित xxix
हित हरिवंश सहस्त्रनाम 571
हितोत्सव 336
हितापदेश जस 190
हिन्दी भक्ति काव्य में रस भक्ति धारा और उसका वाणी साहित्य 665
हिरण्य सप्तति 623
हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर 378
हिस्ट्री ऑफ ब्रजबुलि लिटरेचर 208
हुलासलता 482

नामानुक्रमणिका

अ
अंगद देव 628–629
अंगुलीमाल 446
अकबर 33–34, 37, 42, 44–46, 52, 122, 29, 166, 226, 274, 322, 341, 365, 421, 468, 527, 556, 581, 591, 615, 629–30,
अकिंचन दास गोस्वामी 357
अक्षय कुमार 252
अखण्डानन्द सरस्वती 670
अखैराम 18, 237, 300, 572, 588, 595
अगम प्रसाद माथुर 671, 681, 702
अग्रदास xxiii, 2, 130
अच्युतप्रेक्ष 444, 460
अच्युतानन्द 84, 483
अजमत उल्ल 577
अजितनाथ xxvi, 35, 426
अजीमुल्ला 253
अजुध्या देवी 692
अटलकिशोर 9
अतिवल्लभ 207, 338
अद्वैत प्रभु 602
अद्वैताचार्य 14, 84, 244, 459
अनंतदास 13
अनंतनाथ 14–15
अनंताचार्य 479
अनंतानन्द xxiii, 15–16, 122, 130
अनन्तपुरी 460
अनन्त भट्ट 128
अनन्तानन्द गोस्वामी 470
अनन्य अलि 16, 650
अनन्य देव 17, 593
अनुराग शंकर 677
अन्नपूर्णा देवी 691
अप्पय दीक्षित 321, 390, 524
अबुल उल्लाह 42
अबुल नजीब 637
अबू अब्दाल चिश्ती 193
अब्दुल कादिर अल जीलानी 115–16
अब्दुल नवी 427
अब्दुल फतह 116
अब्दुल रहीम खानखाना 421, 562, 666
अब्दुल शाहिद बिलग्रामी 99
अब्दुल्ला 646
अभयपाल जाहड़ 341
अमरदास 17, 629–30
अमिता देवी 709
अमीनुद्दीन खाँ 653
अमीर खुसरो 646
अमोलकराम शास्त्री 540
अम्बदेव सूरि 230
अम्बिका देवी 123, 593
अयोध्या प्रसाद 702
अरविन्द 613
अरविन्द घोष 152

अरुण ऋषि 296
अरुणा डालमिया 483
अलबेली शरण 18
अलबेली माधुरी शरण 18, 573
अलाउद्दीन खिलजी 99, 646
अल्लाबंदे खाँ 653
अवंतिपुत्र 446
अवधबिहारी लाल कपूर 395
अवधबिहारी शरण 573
अविनाश चंद्र 670
अशोक 446
अश्वघोष xxv
असद खाँ 45
असाइत 230
असिगु कवि 230
अहमद बेग 483
अहमदशाह अब्दाली 33, 339, 406
अर्हदास 206

आ

आंडाल 73, 75
आर्कीडायसिस 34
आगस्टस रिट्र्ज जार्ज 642
आत्मानंद 64
आत्माराम इकंगी 65, 146, 210, 264, 299, 588-589
आनंद प्रसाद 671, 681
आनंद स्वरूप 673
आनन्द 378, 446
आनन्दगिरि 231, 575
आनन्द शंकर 677
आनन्दीमयी xxvi, 566
आनन्दी बाई 66, 337, 338
आम्रपाली 446
आर्याम्बा 574
आर.श्रीनिवासन 152
आर.सी. मजूमदार 591
आलम खाँ 42
आलमगीर 594
आशुधीर 322, 539, 651
आसानन्द 77
आसुरि अनन्ताचार्य 524

इ

इंद्रदास काठियाबाबा 79
इंदिरा गांधी 345, 692
इज्जतराय 581
इज्जतुलनिशा 42
इतवारी खाँ 43, 50
इन्द्रकुमार बंसल 155
इन्द्रजीत 553
इब्राहिम लोदी 45
इमरत बीबी 553
इमाद्उद्दीन रह 99
इमाम हुसैन 84
इला 75
इशहाक आजम खाँ 530
इस्माईल 84
इस्हाक कादिरी 116

ई

ईश्वरपुरी xxiii, xxvi, 87, 406, 459-60, 537, 659
ईश्वरी प्रताप 556
ईश्वरी सिंह 594
ईशान नागर 84, 186, 537
ईस्माईल जीलानी 116

उ

उड़िया बाबा xxvi, 670, 674, 678, 687
उत्तमदास 89
उदयसिंह 241
उद्धव दास 89
उदावत ठाकुर 241
उपगुप्त xxv, 446
उपेन्द्र भट्टाचार्य 94
उमाशंकर 699

ऋ

ऋषभ दत्त 425
ऋषभ देव 213, 342, 400, 406, 601
ऋषभनाथ xxvi
ऋषिकेश देव 97
ऋषि भार्गव 589

ए

एंथोनी ग्रेम 642
एच.जी.वेल्स 125
एनीबिसेण्ट 101-102, 249
एफ.एस.ग्राउस 158, 277, 393, 415, 550, 553-54, 651
एफ.स्कर्ट 524
ए.बी.कीथ 27
एम.एन.दत्त 524
एलिजाबेथ नोबुल 710
ए.वेबर 524
एस.आर.राव 504
एस.एन.दास गुप्ता 633

ओ

ओमप्रकाश यादव 350

औ

औदुम्बराचार्य 103-106, 294-95, 297
औरंगजेब 37, 42, 45-46, 49-52, 55, 60-61, 109, 117, 174-75, 258, 261, 263, 329-30, 426-27, 431, 439, 505, 512, 516, 549, 566, 568, 580, 631-632, 652, 662, 666

क

कर्णपूर 115, 194, 266, 507, 584
कर्णहर देवाचार्य 108-109, 313, 644
कर्णानन्द 109
कर्तानन्द 264
कन्हैयालाल चतुर्वेदी 429
कनिंघम 41, 55
कनिष्क 446
कन्हर देव 107, 495
कपूरचन्द साहू 35
कबीर xxiv, 26, 154, 500, 626, 630
कमलकुँवरि 547
कमलनयन गोस्वामी 89, 109, 207, 338, 552
कमलनयन स्वामी 109-110
कमलापति त्रिपाठी 687
कमाल केथली 116
कमाल खाँ 44
करपात्री xxvi, 152, 524, 674-76, 678-79, 687, 691
कलानिधि 503
कल्याण देवाचार्य 258
कल्याण पुजारी 114, 514
कल्याण राय 182, 517
कल्याणीबाई 514
कल्लीमल 439
काणे (प्रो.) 539

कात्यायन xxvi, 446
कामता प्रसाद सिन्हा 676
कामदार जूथाराम 547
कामसेन 117
कारिनाथ 74
कालिदास डागुर 652
कालीचरण 429, 691
कालू 157
कार्ललाइल 41
किशनचंद्र 673
किशनलाल 51, 349
किशनसिंह 404
किशोरदास 80, 121, 323, 534, 621, 660
किशोरी अली xxiv
किशोरीदास गोस्वामी 121, 636
किशोरी देवी 58
किशोरी बाई 573
किशोरी लाल 660-61
किशोरी लाल गुप्ता 660
किशोरी लाल गोस्वामी 66, 110, 323, 337, 661
किशोरी लाल भार्गव 430
किशोरी मोहन गोस्वामी 480
किशोरी शरण अलि 16, 66, 122, 190, 336, 338-40, 482, 570-71, 661, 666, 687
कीर्तिचन्द 278, 665
कीर्ति लाल गोस्वामी 191
कीरतसिंह 117, 273
कीलदास 2, 16, 122, 130, 439
कुँजदास 172
कुँजलाल 89, 109
कुँजलाल गोस्वामी 122-23
कुँजो देवी 123, 593
कुँवरपाल 35
कुँवरसिंह 253
कुमारदेव 395
कुमारिल भट्ट xxiv
कुमुदवल्ली 76
कुम्भनदास 28, 123-24, 270, 518
कुलवन्त प्रसाद सिन्हा 676
कुलशेखरालवार 73-74, 500
कृतवर्मा 530
कृतिवास उझा 286
कृपाचार्य 125, 266
कृपालाल गोस्वामी 491
कृपालु महाराज xxvi, 685
कृष्ण अलि 110
कृष्ण कवि 129, 524
कृष्णकृपाल 264
कृष्णचन्द्र 127-28, 666
कृष्णचरण चक्रवर्ती 505
कृष्णचरण दास गोस्वामी 128
कृष्णदत्त पण्डित 643
कृष्ण दर्शन 575
कृष्णदास xxvi, 28, 128-29, 189, 526
कृष्णदास अधिकारी 28, 128, 137, 525
कृष्णदास कविराज 5, 126-27, 182-83, 195-98, 286, 319-20, 357, 440, 466, 532, 580, 642, 653
कृष्णदास गोस्वामी 109
कृष्णदास पयहारी xxiii, 2, 15-16, 122, 130
कृष्णदास पुजारी 322
कृष्णदास बाबा 14, 91, 118, 131, 154, 328, 379, 442
कृष्णबोधाश्रम 675, 677-78, 687
कृष्णदास भावुक 133
कृष्णदास मुखिया 549
कृष्णदेव राय 592
कृष्णदेव सार्वभौम 180

कृष्ण भट्टाचार्य 134, 305
कृष्ण राय 182
कृष्णवल्लभ गोस्वामी 357
कृष्णाचरण दास 494
कृष्णादासी 137, 470, 666
कृष्णानन्द पुरी 460
केदारनाथ भक्तिविनोद 91
केदारनाथ सेक्सरिया 32
केलिदास 563, 571
केवलराम 140, 440
केशव काश्मीरी भट्टाचार्य 144, 153, 312, 540-541
केशवचंद्र सेन 252, 387
केशव देव 691
केशवदेव द्विवेदी 424
केशव देवाचार्य 141
केशव मिश्र 665
केशवाचार्य 175, 541
क्यूरिटियो (फादर) 34
क्लेरिस्ट नन्स 34
क्षमानन्द 31

ख

खुदीराम चट्टोपाध्याय 494
खूबदास 18
खेमा देवी 121
खै.सी.ए.मैसन 399
ख्वाजा मसूद बिन सुलेमान 41
ख्यालीराम 434
ख्यालीराम जैन 20

ग

गंगागिरि 250
गंगादास 264, 405, 549, 555, 657
गंगा देवी 552
गंगाधर 404
गंगानारायण चक्रवर्ती 146, 244
गंगा प्रसाद सिंह 698
गंगाबाई 66, 122, 175, 526
गंगाविष्णु दास 146, 657
गणेशशरण 553
गदाधर पण्डित 89, 184, 204, 602, 653
गदाधर भट्ट 14, 148, 422, 559
गरीबदास 149
गांगल भट्टाचार्य 151, 379
गिरधर जी 153, 166, 174, 182, 257, 515, 526-27, 530, 661,
गिरधर दास 470
गिरधर शर्मा 675
गिरधारीशरण 553, 565
गुण्डु शास्त्री 524
गुपालबाई 551
गुरु गोविन्द सिंह xxv-xxvi, 49-51, 154, 524, 631
गुरुचरण दास 673
गुरु छौना 18
गुरुनानक xx, xxv, 49, 157-58, 626, 628-29
गुरुप्रसाद 159, 648, 680
गुरुमुखदास 159, 657
गुरुसरन दास 589
गुरुसेवक 159
गोकुलचंद्र गोस्वामी 328
गोकुलदास 165
गोकुलदास पारीख 435
गोकुलनाथ 28, 141, 160, 165-67, 257, 259, 440, 516, 526, 661-663
गोकुलेश चंद्र चट्टोपाध्याय 131
गोकुलोत्सव 182

गोपदेव 169
गोपालकृष्ण गोखले 242
गोपाल गुरु 169, 244, 562
गोपाल गौड़ 693
गोपालदत्त 481, 651
गोपालदास xxiv, 128, 170–71, 556, 713
गोपाल दास काठियाबाबा 688
गोपाल प्रसाद शर्मा 665
गोपाल भट्ट गोस्वामी 126, 170, 244, 279, 487–89, 603, 657
गोपाल भट्टाचार्य 170–71
गोपालराय 158, 415, 549, 551–52, 554–55, 558–59, 561, 563, 566, 658
गोपाल लाल 162, 173, 517
गोपालसिंह 112, 548, 693
गोपालाचार्य 125, 171–172
गोपालाचार्य शास्त्री 572
गोपीचंद जैन 39
गोपीनाथ 127, 128, 172, 272, 365, 526, 551, 565, 666
गोपीनाथ कविराज 633
गोपीनाथ भट्टाचार्य 172–73
गोपीश्वर शरण देवाचार्य 563, 682–83
गोपेन्द्र 173
गोपेन्द्रलाल 162
गोपेश्वर 117, 173
गोपेश्वर महाराज 9
गोपेश्वर शरण देवाचार्य 553
गोरखनाथ xxiv, xxvi, 592
गोरगोपाल दास 133
गोरा जी 662
गोलबलकर 679
गोवर्धनदास फावड़िया 557
गोवर्धनदेव 176, 595
गोवर्धन भट्ट 149
गोवर्धनलाल 333
गोवर्धनेश 161, 177–78
गोविन्द जी 153, 178, 261, 539, 662
गोविन्द अलि 338
गोविन्द दास 18, 318, 572
गोविन्द दास कर्मकार 179
गोविन्द दास कविराज 178–79, 192
गोविन्द दास आचार्य 178
गोविन्द दास चक्रवर्ती 179
गोविन्द देवाचार्य 184
गोविन्द पादाचार्य 538, 575
गोविन्दराम 160
गोविन्द राय 182, 516, 526
गोविन्द लाल 16
गोविन्द वल्लभ पंत 687
गोविन्दशरण देवाचार्य 184, 486, 560, 620
गोविन्द स्वामी 28, 166, 411, 479, 528
गोविन्दाचार्य 539
गौडपादाचार्य 575
गौतमी xxv
गौर मोहन दे 694
गौरांगदास 185
गौरीदास 128
गौरीदास कीर्तनियां 185
गौरीदास पण्डित 185–86
ग्यासुद्दीन तुगलक 646
ग्वारिया बाबा 679, 691
ग्वाल बाबा 53
ग्रिफिथ 524

घ

घनश्याम गोस्वामी 117, 160, 182, 187, 516, 526
घनश्याम शरण देवाचार्य 684

घासीराम 121

च

चंडीदास 188
चण्डीदास xxvi, 503
चतुरचिन्तामणि देवाचार्य 190, 296, 300, 402, 497, 693
चतुरदास नागा 124
चतुरशिरोमणि लाल गोस्वामी 191
चतुरसिंह गुर्जर 567
चतुर्भुज दास xxvii, 28, 189–90, 239, 414, 528
चतुर्भुज दास (स्वामी) 514
चतुर्भुज सहाय xxiv, 684, 699–700, 705–706, 708
चन्द्र (आचार्य) 188
चन्द्रदास 189, 514
चन्द्रपाल (राजा) 341–342
चन्द्रलाल गोस्वामी 127, 548, 557, 564–65, 664
चन्द्रशशि गोस्वामी 556
चन्द्रशेखर दास 189
चन्द्रशेखर द्विवेदी 670
चम्पत्ति 192
चरणखाक 193
चरणदास xxiv, 18, 64–65, 77, 123, 149, 159, 210, 230, 236–37, 248, 260, 262, 265, 269, 279–80, 286, 288–89, 299, 306, 312, 339, 361–62, 384, 399, 442, 468, 476, 494–98, 511, 571–72, 585–89, 595, 615, 622, 624, 636, 645, 657, 663–64
चरणधूर 193
चरणरज 193
चिन्तामणि दास 128
चिन्तामणि देव 193
चिरंजीलाल 698
चिरंजीव सेन 178, 496
चूड़ामणि दास 194
चेतनदास 18, 237
चेतनदास फौजदार 558
चैतन्यदास 126, 198
चैतन्य देव xxiii, xxvi, 4, 87, 107, 113, 115, 118, 126, 169–70, 175, 178–79, 185–189, 204, 327, 329, 357, 359, 397, 488, 502–503, 505, 507, 547–49, 552, 565, 581, 584, 602, 615, 620, 653, 683
चैतन्याश्रम महाराज 678
चोल (राजा) 76, 284
चौबेलाल 317

छ

छत्रशाल बुन्देला 546
छदामीलाल जैन 341, 343, 345
छबीलेदास 128
छाजूराम 289
छीतस्वामी xxvii, 28, 528
छोटा जी 662

ज

जगतभूषण 354
जगतसिंह 296
जगतानन्द 565
जगदीश भार्गव 587
जगन्नाथ कवि 567
जगन्नाथ जी 128, 365, 539
जगन्नाथ दास 132, 204
जगन्नाथ दास काठियाबाबा 709
जगन्नाथ प्रसाद 39
जतनलाल गोस्वामी 554, 665
जनहरिया 205

जनार्दन देव 206
जपानन्द ठाकुर 507, 537
जमुनादास विश्वास 31
जम्बूस्वामी 206, 425-426
जयंतीदेवी 296
जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल 273, 336, 338, 570-571, 661
जयकृष्ण दास बाबा 132, 442
जयतीर्थ 460-461
जयदयाल डालमिया 483
जयदेव xv, xxvi, 206-207, 459, 486, 605
जयपाल 41
जयप्रकाश राय 556
जयलाल 486
जयसिंह (सवाई) 79, 112, 117, 143, 180, 431, 563, 621, 636
जयानन्द 179
जयानन्द सूरि 230
जलधर मिश्र 602
जलाल बुखारी 637
जवाहर लाल नेहरू 692
जवाहर सिंह 400, 403-404, 552
जसकुँवरि 560
जसराम उपकारी 300
जसवंत सिंह 47, 402
जहाँगीर 33, 42-43, 45-46, 49, 166, 418, 447, 553, 591, 630-31
जहीरउद्दीन रह 99
जार्ज ग्रियर्सन 593
जातवेदस 2
जान एडवर्ड 35
जान काल्विन 34
जानकीदास 208
जान मैरी 35
जाफर खाँ 47
जितेन्द्र भूषण 40, 354-355
जिनोदय सूरि 230
जियाउद्दीन 637, 646
जी. गैरिसी 524
जीव गोस्वामी xxvi, 5, 89, 129, 148, 169, 170, 178, 183-184, 209-210, 307, 309, 311-12, 320, 322, 399, 440, 458, 559, 603-605, 620, 657
जीवन दत्त 685-86
जीवनदास 65, 210
जीवन लाल 517
जीवाजी राव 550, 551
जीवाराम 553, 687
जुगतानन्द 64, 264-65, 572, 595
जुगलकिशोर गोस्वामी 513
जुगलदास 210
जूलियाना 33
जेम्स थामसन 34
जेम्स हेस्टिंग्ज 594
जेरोम जेबियर 33
जैरामदास 230-231
जोंस मुटाथ 34
जोगजीत 17, 146, 149-50, 230, 236-237, 260, 280, 288-89, 300, 312, 339, 442, 495, 497-99, 586-87, 615, 622, 624, 645, 657, 663-64
जोधराज जैन 400
ज्ञानकलश मुनि 230
ज्ञानदास xxiv, 164-65, 171
ज्ञानवती 573
ज्ञानवती बाई 65
ज्ञानानन्द 248
ज्ञानी जैलसिंह 579

झ

झूंठा स्वामी 514

ट

टॉड (कर्नल) 41
टीकाराम 251
टीकाराम तिवारी 677
टोडरमल 56
टोडर साहू 35, 37

ठ

ठंडीराम 236
ठाकुरदास 103, 236, 361, 635, 674

ड

डंडौतीराम 236, 587
डालचन्द वर्मा 32
डार्विन 25

ढ

ढ़ोढ़ाई झा 487

त

तकी कादिरी 116
तत्त्ववेत्ताचार्य 241
ताजबीबी 163
ताजुल मुल्क 98
तानसेन 406, 527, 556, 652
तारानाथ तर्क 252
तारारानी 665
तिरमल सई आलवार 73
तिरूप्याण आलवार 73, 75
तिरूमंगै आलवार 73, 76
तिहुना साहू 35
तुलसीदास गोस्वामी xxvii, 25, 113, 122, 235, 359, 398, 406, 491, 499, 524, 554, 600, 612
तुलसीदास लालजी 140, 245, 440, 517, 564
तुलसी साहब 246, 628
तुलाराम 529
तेगबहादुर 49-51, 154, 631
तोटक 231
तोटंतिल्लाया 443
तोरेडीपोडी आलवार 73, 75
त्यागीराम 248
त्रिप्ता 157
त्रिभंगदेव 248, 663
त्रिशला 446

थ

थामस डेनियल 549

द

दयाकौर 628
दयानंद सरस्वती xxv, xxvii, 31-32, 70-71, 152, 250, 253, 424, 531-32, 613-14, 685
दयाराम 628
दयाशंकर दुबे 424
दशरथ ओझा 230
दाऊजी 257
दाताराम 260
दामोदर कविराज 178
दामोदर किशोर 9, 688
दामोदर (दाऊजी) 261
दामोदरदास हरसानी 388, 527, 598
दामोदर देव 261
दामोदरवर 114, 261-62, 335
दामोदर स्वामी 262-63, 530, 565

दाराशिकोह 577, 579
दासकुँवर 264
दासगुप्ता (डॉ.) 321
दिलवाली सिंह 581
दुर्गाचार्य 297
दुर्गाप्रसाद शर्मा 690
दुर्गावती 527
दुलारेप्रसाद शास्त्री 333
दूल्हैराम 560, 562
दृढ़वत 74
देल्हणि 230
देवकीनन्दन 117, 188, 263, 266, 480, 562
देवकीनन्दन दास 204
देवगुरू 683
देवदर्शन 539
देवदास काठियाबाबा 496, 688
देवराज देशिक 524
देवराहा बाबा 260, 554
देवस्वामी 539
देवाचार्य 266-267, 269
देवेन्द्रनाथ ठाकुर 252, 267, 387
देवेश्वर भट्ट 538
दौलतराम 269, 697
दौलतराम जैन 39
दौलतराव सिंधिया 56, 572
द्रविड़-535
द्वारकादास 262, 435
द्वारकानाथ भट्टाचार्य 53
द्वारकेश 160, 263, 517
द्वारिकानाथ टैगोर 267
द्विजेन्द्र नाथ 252

ध

धनंजय दास काठियाबाबा 689-90, 702, 709
धनंजय पंडित 194
धनीराम 103
धर्मदास 124, 560
धर्मदेवाचार्य 109
धर्मनाथ 271
धर्ममित्र 587, 589
धर्मवीर शर्मा 41, 226
धर्मसिंह 51
धीरधर 482
ध्रुवदास xxvi, 16, 172, 189, 272, 365, 416, 480, 540, 542-43, 611, 616, 655
धोकलसिंह 100
ध्यानचन्द्र गोस्वामी 169, 562, 602
द्यानतराय 38

न

नंददास 28, 129, 160, 279-280, 528, 645
नंदराम 280
नंदराय 361
नजफ खान 258
नजीबुद्दौला 403
नजीर अकबराबादी 53
नथिया बाई 563
नन्दकिशोर दास गोस्वामी 277-278
नमिनाथ 283
नम्मालवार 73-74
नर्मदाशंकर 321
नरपति 41
नरवाहन 285
नरसी मेहता 406
नरहरि चक्रवर्ती 327
नरहरि तीर्थ 444
नरहरिदास 133, 285, 481
नरहरिदेव 551

नरहरि सरकार 189
नरोत्तम ठाकुर 146, 185, 188, 209, 244, 496
नवलदास xxiv, 554
नवलसखी 288
नवलसिंह प्रधान 146, 558, 564, 567
नागरीदास xxiv, xxvi, 128, 288-289, 546, 551, 555, 561
नागरीदास (गुंसाई) 288-289
नागार्जुन xxv-xxvi, 592
नागेश्वर 482
नादिरशाह 594
नानकचन्द्र 424
नाना साहब 253
नाभादास 2, 124, 130, 140, 148, 175, 189, 209, 366, 500, 508, 512, 540, 654, 665
नामदेव 406
नामदेव उतकर 637
नाम्बियंदर नाम्बि 284
नायक गोपाल 172
नारायण दत्त 531
नारायण दास 130, 516
नारायण दास ब्रह्मचारी 116, 516
नारायण देवाचार्य 109
नारायण भट्ट 104, 166, 292, 380, 440-41
नारायण लाल माथुर 701
नारायणी देवी 146, 581
नित्यानन्द 87, 133, 185-186, 189, 194, 209, 277, 357, 406, 489, 537, 602-603
निमानन्द देव शर्मण 507
निम्बार्कशरण देवाचार्य 296, 379
निम्बार्काचार्य ix, xxii, xxvi, 26, 103, 105, 121, 203, 208, 268-69, 294-97, 327, 383, 389-90, 406, 423, 449, 466, 469, 540-41, 619, 633, 635
निरंजनदेवतीर्थ 679
निरभैदास 65
निर्वाण भट्ट 321
निश्चलानन्द सरस्वती 177
नीमकरौरी बाबा xxvi, 690
नीलकंठ पुरुषोत्तम जोशी 428
नील बर्नहाट 638
नूपीदेवी 657
नूपीबाई 210, 299-300
नृसिंहकिशोर 301, 650
नृसिंहदास 563, 690
नृसिंहाचार्य 509
नृसिंहानन्द अधिकारी 467
नेकराम 700
नेमिनाथ 19, 35, 41, 300, 345, 355, 426, 626
नेहि नागरीदास 338
नैनादास 276
नैनादास काठियाबाबा 79, 300
नोनकरण राजपूत 553

प

पटनीमल (राजा) 434
पदमाकर भट्टाचार्य 305
पद्मनाथ भट्टाचार्य 94
पद्मनाभ तीर्थ 444-45
पद्मनाभ भट्टाचार्य 302
पद्मपाद 575
पद्मा 685
पद्माचार्य 305-306
पद्मावती 182, 257, 405, 526, 659
पन्नालाल 24, 164
पदशुद्धान्त 575
परमहंस 670
परमानन्द नार्गाच 557

परमानन्द दास 28, 270, 285, 312-13, 417, 489, 518
परमानन्द देवाचार्य 109, 190, 313
परमेश्वर दत्त तिवारी 699
परशुराम जी महाराज 554
परशुराम देवाचार्य 241, 296, 313
परांकुशाचार्य 16, 122, 130
पराभूति 539
पराशर भट्ट 538
पारीछत देव जू 146, 548, 555, 558, 564-65
पार्श्वनाथ 19-20, 38, 213, 317, 400, 426
पार्श्वसाहू 35, 37
पिन्हीरों 33
पीताम्बर दास 80, 121, 317-18, 655
पीताम्बर देव 193, 318, 636
पुण्यसदन 499
पुरुषोत्तम 9, 320-21, 363
पुरुषोत्तमाचार्य 321-22, 540-41
पुष्कर दास 262
पूर्णदास 65
पूर्णप्रताप 595
पूर्णानन्द xxiv, 250, 438
पृथ्वीराज चौहान 55, 403
पृथ्वीसिंह 131
पेयालवार 73-74
पेरियालवार 75
पोयेगे आलवार 73-74
प्रच्युतदास 527
प्रतापरूद्र देव 503
प्रतापसिंह 289, 572, 594, 621
प्रबोधानन्द सरस्वती 127, 194, 286, 327, 543, 571, 650
प्रभाचंद्र 41
प्रभुदत्त ब्रह्मचारी xxvi, 561, 679, 687, 691
प्रभुदयाल मीतल 182, 335, 528, 661
प्रभुदयाल वकील 701
प्रयागदास 349
प्रसन्न कुमार भट्टाचार्य 692
प्रहलाद दास 701
प्राणकिशोर 688
प्राणनाथ xxvi, 262, 335, 432
प्रियादास xxvii, 66, 148, 172, 262, 327, 337-39, 380, 417, 572, 654
प्रीतमदास 524
प्रेमकुँवरि 567
प्रेमघन 339
प्रेमदास xxiv, 339-40, 537, 660, 693
प्रेमदास काठियाबाबा 692
प्रेमनारायण 340
प्रेमप्रसाद 671
प्रेममाधुरी बाई 573
प्रेमस्वरूप ब्रह्मचारी 701
प्रेमानन्द 524

फ

फखरूल्लाह 652
फरीद 630, 645, 646
फलहारी बाबा 569
फिरोजशाह 341
फिरोजशाह तुगलक 348
फिलिप बोर्बो 33
फूलडोल बिहारीदास 569
फ्यूहरर 227

ब

बख्तावर 628
बजरंग दास काठियाबाबा 79
बटेरीलाल मिश्रा 567

बनमाली लाल चतुर्वेदी 621
बनारसी चतुर्वेदी 31
बनारसी दास जैन 35
बनीठनी 555, 561
बरकत उल्लाह 99
बरकतुल्ला पेमी 577
बलदेव दास 349, 361
बलदेव सिंह 404
बलभद्राचार्य 305, 362, 459
बलराम मिश्र 554
बलदेव विद्याभूषण 5, 91, 102, 179-82, 308, 327-28, 389, 480, 507, 541, 573, 604, 633
बलवंत राय सिंधिया 358
बलवंत सिंह 401-402
बल्लभदास 362
बल्लभाचार्य मिश्र 507
बसंत यामदग्नि 230
बहलोत दरिया 116
बहलोल लोदी 519
बहाउद्दीन नक्शबन्दी 282-83
बहादुर शाह 51, 512
बहादुर सिंह 570
बांछाराम 553
बाजीराव 401, 431
बादलसिंह 41
बाबर 42, 45
बाबरी सखि 110
बायजाबाई 572
बालकृष्ण 160, 261, 363, 472, 516-17, 526,
बालकृष्ण शरण देवाचार्य 689, 693, 702
बाल गंगाधर तिलक 101, 242
बाल गोविन्द 434
बालगोविन्द दास 556
बालमुकुन्द 32
बाला 157-158
बालानन्द xxiv,
बाहुबल देवाचार्य 364
बिहारिनदास 80, 289, 365, 509, 611-12, 651, 655-56
बिहारीदास 132, 236, 361, 679
बिहारीलाल 109,
बीठल विपुल 365
बी.डी. जत्ती 342
बीरबल 365
बुद्ध xx, 371-372, 378, 446
बुद्धिविरंचि 575
बृजकिशोर 567
बृजेन्द्रसिंह 399, 401, 402
बेहमानयार खाँ 45
बैराम खाँ 653
बोल्यू (कर्नल) 34
बोहित देवाचार्य 366
ब्रजकुँवरि 483
ब्रजजीवन देव 206, 378
ब्रजपाल 117
ब्रजदास 560, 562
ब्रजनाथ 517
ब्रजभूषण लाल 163
ब्रजभूषण देव 378-79, 636
ब्रजमोहन दास 357
ब्रजरमण 117
ब्रजराजशरण देवाचार्य 379, 682
ब्रजराय 162, 320
ब्रजलाल 109, 329-30
ब्रजाभरण दीक्षित 162, 379
ब्रह्मप्रकाश 384
ब्रह्मशंकर मिश्र 694, 698
ब्रह्मानंद पुरी 460

ब्रह्मानन्द सरस्वती 670, 675, 678
ब्रह्मानंदाचार्य 164
ब्लूमफील्ड 10

भ

भक्तिवेदान्त प्रभुपाद 694-96
भक्तिवेदान्त बावन गोस्वामी 359
भक्तिसिद्धान्त सरस्वती 287, 683, 695-696
भगतदास 498
भगवंतसिंह 273, 275
भगवत मुदित 89, 114, 262, 548, 554, 571, 650
भगवत रसिक 79, 81, 511, 612, 656, 660
भगवत लाल गोस्वामी 330-31
भगवतीदास 35
भगवती देवी 680
भगवतीप्रसाद सिंह 338, 483
भगवती सिंह 130
भगवानदास 18, 38, 103, 175, 399, 514, 621
भगवान देई 698
भगिनी निवेदिता 710
भजनलाल गोस्वामी 330
भटियानी (रानी) 296, 547, 563
भट्टो जी दीक्षित 104, 406
भण्डारकर (सर) 316, 539
भद्रबाहु 113
भवानन्द पटनायक 503
भवानन्द सिद्धान्त वागीश 505
भवानी प्रसाद भार्गव 587
भवानी राम जोशी 620
भागमती 514
भानु 271
भानुप्रताप सिंह 226
भानु मरीच 575
भावन भट्ट 128
भारतीकृष्ण तीर्थ 599, 687
भास्कर राय 321, 409
भिखारीदास 332, 593
भिखारी दास भार्गव 123
भीमदेव बाघेला 120
भीमसिंह 559
भुवन नागरी दास 514
भुवनेश्वरी देवी 709
भूतत्तालवार 73-74
भूधर दास 38
भूधरदेव 409
भूरि भट्टाचार्य 409
भोलानाथ 128, 491

म

मणीन्द्रमोहन बसु 188
मण्डन कवि 296
मण्डन भट्ट 621
मण्डन मिश्र 575, 598
मत्स्येंद्रनाथ 592
मथुरा नाथ 340, 440
मथुरानाथ गोस्वामी 440
मथुरामल 329
मदनमोहन मालवीय 152, 334, 569, 687
मदनसिंह 693
मधुकर शाह 659-60
मधुदास गोस्वामी 467
मधुमंगल गोस्वामी 172
मधुरकवि आलवार 73
मधुवन दास 442
मधुसूदन तीर्थ 674, 687
मधुसूदन दास बाबा 132, 442-43
मधुसूदन देव 443
मधुसूदन वाचस्पति 209, 603, 615

मधुसूदन सरस्वती 675
मध्वगेह भट्ट 443
मध्वाचार्य ix, xvi, xxiii, xxvi, 26, 204, 383, 389, 443-45, 460, 462-63
मनसाराम 508
मनसुख लाल 330
मनीराम घोष 467
मनोहर दास 327, 349, 404, 537
मनोहरदास काठियाबाबा 709
मनोहर वल्लभ गोस्वामी 491
मनोहरी दासी 666
मन्सुखदास 562
मरदाना 157-58
मलनीबाई 264
मस्तानी 401
महताब कुँवरि 560
महमूद गजनवी 41
महात्मा गाँधी 101, 695
महादजी सिंधिया 56, 58-59, 510
महादेव पण्डित 505
महादेव प्रसाद 700
महापूर्ण स्वामी 502
महावीर कोटिया 136, 225
महावीर स्वामी 19, 114, 213, 345-46, 446-47
महेन्द्रनाथ योगी 23
महेन्द्रप्रताप (राजा) 424
महेन्द्रसिंह 56
महेशचंद्र न्यायरत्न 252
माथुर देवाचार्य 109
माधव दास 181, 487, 644, 690
माधव देवाचार्य 458
माधवप्रसाद सिंह 677, 698
माधवसिंह 31
माधव भट्टाचार्य 458, 595
माधव मुकुंद 312
माधव लाल 332
माधवाचार्य 362, 459
माधवी 580
माधवेन्द्रपुरी xxiii, xxvi, 87, 181, 459-60, 487-88
माधुरीदास 262
माधो दास 508
माधो भट्ट 514
माधो मुकुंद 514
माधो रसिक 514
माधोराम 62
माधोलाल 701
माधोसिंह 553
मानदास 65, 589
मानसिंह (राजा) 59, 117, 122, 149, 483, 505
मानसिंह तौमर 652
माहेश्वरी देवी 694, 699
मिश्रनारायण 512
मिश्रीलाल 487
मिहीलाल 699-700, 706
मीर अब्दुल्ला सिरमिज 43
मीरा 406
मुंज (राजा) 56
मुंशी बंशीधर 346
मुईनउद्दीन चिश्ती 193
मुकुंद लाल 332
मुकुन्द दास गोस्वामी 357, 399, 466-67, 505
मुकुन्द देव 467, 509
मुकुन्द देवाचार्य 480, 509, 554
मुकुन्दाचार्य 75
मुक्तानंद परमार्थी 645
मुजफ्फर हुसैन 43
मुबारक शाह 646

मुरलीधर 123, 333, 468, 593
मुरलीधर महाराज 333
मुरली मनोहर 468, 511
मुरली लाल 172
मुरलीबिहारी 468, 511
मुरारि गुप्त 107, 199
मुरारी लाल 349
मुहम्मद खाँ 653
मुहम्मद गौस 115
मूरे 577
मैगस्थनीज 367
मैथिलीशरण गुप्त 524, 537
मोतविद खाँ 46
मोहकम सिंह 51
मोहनचन्द्र 127, 470, 562
मोहनदास 18, 262, 667
मोहनदास काठियाबाबा 300, 700
मोहनदेव 248, 470
मोहन लाल 331-332, 666
मोहम्मद गौरी 342
मौहम्मद साहब 84, 124-25

य
यदुनाथ 160, 321, 363, 472, 516, 526, 539
यशवंत सिंह 132
यशुदानन्द देव 206, 474
याकूत खान 119
यातिमा 46
यादव प्रकाश 501, 502
यादवेन्द्र दास 160, 163
यामुनाचार्य xxii, xxvi, 501-502, 535
युगलकिशोर देव 474
युगलमनोहर शरण 700
योगानन्द 32, 250, 670
योगी विद्यानाथ 476

र
रंगदेशिक स्वामी 477, 479
रंगपुरी 460
रघुनन्दन गोस्वामी 480
रघुनन्दन प्रसाद सिंह 562
रघुनाथ 117, 160, 162, 171, 266, 479, 526
रघुनाथ दास गोस्वामी 115, 169-70, 185, 196, 322, 480
रघुनाथ नायक 524
रघुनाथ पुरी 460
रघुनाथ भट्ट गोस्वामी xxvi, 149, 357, 559
रघुनाथ लाल 330
रघुराज सिंह 567
रघुवीरदास 276
रजनी दे 694
रणजीतसिंह गुर्जर 567
रणछोड़ दास 621
रणछोर लाल 161
रणजीतसिंह 510
रणवीरसिंह 10
रतनकुँवरि 567
रतनदास 491, 560
रतन देव 480
रतनलाल 517
रत्नगर्भ आचार्य 459
रत्नप्रभा बहूजी 161
रमाशंकर 669
रमेश चन्द्र शर्मा 430-31
रवीन्द्रनाथ टैगोर 152
रसखान ix
रसिक गोविन्द 621
रसिक दास 262, 317-18, 481-82, 506, 508-509

रसिक लाल 127
रसिक वल्लभ 149
रसिकानन्द गोस्वामी 337-38, 483
रसिकानन्द प्रभु 277
राइव दे 666
राघवानन्द 499-500
राजकुँवरि 182
राजगोपाल विष्णुस्वामी 538
राजधरजू कन्हैयालाल 273, 276
राजचूड़ामणि दीक्षित 524
राजनाथ शर्मा 702
राजराज 592
राजसिंह 175, 483
राजाराम 269
राजेन्द्र प्रसाद कुलश्रेष्ठ 32
राजेन्द्र मुनि जैन 136
राजेन्द्र शंकर 677
राजेन्द्र सूरि 400
राधाकृष्ण 333, 477
राधाकृष्णन 27, 72
राधाचरण गोस्वामी xxvii, 197, 512, 570
राधादामोदर दास 180
राधादेवी 643
राधामोहन ठाकुर 89
राधामोहन दास 487
राधारमण दास गोस्वामी 430
राधासर्वेश्वरशरण देवाचार्य 474, 702-703
राधिकादास 560
राधेश्याम गौड़ 62
राधेश्याम दास 560
रामअजुध्य प्रसाद 703
रामकरन 493
रामकिशोर 494
रामकिशोर गोस्वामी 301, 494
रामकुमार 494
रामकुमार वर्मा 593
रामकृपाल 236, 361
रामकृष्ण दास बाबा 357, 691
रामकृष्ण परमहंस 152, 494-495, 709, 710
रामगलतान 495
रामगोपाल दास 189
रामगोपाल देवाचार्य 109, 495
रामचन्द्र xxiv, 685, 699, 705, 708
रामचन्द्र कविराज 178, 495
रामचन्द्र दास 495
रामचन्द्र पुरी 196, 460
रामचन्द्र भट्ट 104
रामचन्द्र भट्टाचार्य 496, 521
रामचन्द्र राय 550
रामचन्द्र वर्मा 116
रामचन्द्र शुक्ल 323, 570-71, 665-66
रामजशन मिश्र 694
रामतीर्थ 152
रामदत्त उपाध्याय 675
रामदास 630, 690
रामदास कपूर 615
रामदास बंधोपाध्याय 709
रामदास वैष्णव 163
रामदास काठियाबाबा 496, 688-90, 709, 711
रामदास गोस्वामी 122, 549
रामनरेश दास 563
रामनारायण ठेकेदार 573
रामनारायण भटनागर 424
रामनिधि ओझा 675
रामधड़ल्ला 497
रामपरीक्षण उपाध्याय 670
रामप्रताप 498
रामभवन उपाध्याय 670

रामममनोहर दास 359
राममोहन राय (राजा) 267, 387, 701
राममौला 498
रामरतन 128, 567
रामराय 631
रामरिष 385
रामरूप xxiv, 77, 236, 264, 269, 288, 300, 361, 586, 624
रामसंत 589
रामसखी xxiv, 264
रामसनातन 498
राम सजीवन लाल भार्गव 18
रामसिंह (सवाई) 682-683
रामहेत 498
रामानंद स्वामी ix, xxvii, 15, 122, 390, 406, 499-501
रामानन्द राय 115
रामानुज ix, xxii, xxvi, 26, 71, 203, 208, 314, 316, 382, 389-90, 406, 462, 465, 469, 499-501, 518, 535, 538, 592
रामेश्वर दयाल 32
रामेश्वर प्रसाद शर्मा 429
रायबहादुर (राजा) 560
राय रामानन्द 126, 502-503, 580
रासदास 109, 262, 660
रासबिहारी दास काठियाबाबा 690, 708-709
रासमणि 494
रूक्मणि 140, 182, 526
रूक्मणि देवी 665-66
रूपकवीश्वर गोस्वामी 357, 467, 504-505
रूप गोस्वामी xv, xxviii, 88, 90, 115, 117, 170, 182, 209, 292-93, 306, 309-310, 319-20, 322, 397-98, 440, 464, 505, 507, 509, 529, 603, 610-611, 645, 653, 659
रूपचन्द्र 35
रूपदेव 100
रूपनिधान 506
रूपमाधुरी शरण xxvi, 573
रूपराम कटारा 141, 279
रूप लाल गोस्वामी 66, 338, 389, 340, 563, 570, 660
रूपसखी xxvi, 506, 655
रूपसिंह जाट 278
रूपा 563
रूपानन्द गोस्वामी 172
रेवतीराम 700
रेवरैण्ड फ्रैंक 101
रैदास xxiv, 406, 500, 630
रोशनआरा 47
रौकबेल क्लेंसी 34

ल

लक्षिदास 65, 588-89
लक्ष्मणदास 62, 429, 562
लक्ष्मण भट्ट 517-19, 590
लक्ष्मण सेन 286
लक्ष्मीचन्द्र 157, 477
लक्ष्मीदास लँबेचू 354
लक्ष्मी देवी 674
लक्ष्मीधर शास्त्री 577
लक्ष्मीनरसिंह 182
लक्ष्मीनारायण 330
लक्ष्मीनारायण माथुर 671
लक्ष्मीप्रिया 507
लक्ष्मीशंकर मिश्र 694, 699
लखनदास 385
लघुवीठल 470, 507
लपटगोपाल देवाचार्य 507
ललित किशोरी xxvi, 80, 317-18, 482, 510

ललित किशोरी दास 508-509, 655
ललित भानुदेव 107, 509
ललित माधुरी 510
ललित मोहिनी दास 510-11, 621
ललिता चरण गोस्वामी 263, 273, 337, 570, 611
ललिता देवी 693
ललिताशरण दास 554
लल्लू भाई 110
लश्कर खाँ 47
लाखा बंजारा 358
लाड़लीशरण 430
लाड़िली दास गोस्वामी 491
लाड़िलीशरण काव्यतीर्थ 702
लॉर्ड मिंटो 33
लॉर्ड वेंटिक 701
लालकृष्ण आडवाणी 697
लाल गिरधर 261, 511
लालदास 468, 511
लाल सखी 128
लाल स्वामी 172, 262, 565
लाला प्रसाद 684
लालाबाबू 564
लीलानन्द ठाकुर 557, 691
लोकनाथ 491, 650
लोकमान्य चक्रवर्ती 525
लोचनदास 199, 286, 537

व

वंशीअलि xxiv, 489, 490, 512-13, 563-64
वंशीदास 121, 514
वंशीधर 409, 512, 525
वंशीधर देव 409, 514
वंशीलाल 331
वनचन्द्र गोस्वामी 114, 127, 190, 514, 548, 562, 567
वनमाली दास 514, 666
वनमाली राय 553
वन्दे राम व्यास 62
वरदशिक 524
वल्लभ रसिक 149
वल्लभाचार्य ix, xxiii, xxvi, 9, 17, 26-28, 116-17, 120-124, 160, 166-69, 175, 203, 208, 241, 259, 280, 302, 315, 320, 322-25, 329, 379, 382, 389-90, 399, 407-408, 417, 437, 469, 474, 491, 515-519, 526, 528, 539, 590, 621, 633, 662-63
वसुदेव 520
वाणीनाथ 503
वामन भट्टाचार्य 134, 521
वासुदेव 329, 331, 334, 444, 636
वासुदेव शरण अग्रवाल 68, 227, 229
वासुदेव सिंह 483
वासुपूज्य 525
वासूसाह ओसवाल 35
विक्टर जैकमांट 546-547
विक्रमादित्य 57
विजयभद्र सूरि 230
विजयानन्द त्रिपाठी 675
विजयेन्द्र स्नातक 16, 262, 482, 659
विट्टिदेव 502
विट्ठलनाथ xxvi, xxvii, 9, 28, 116-17, 128-29, 137, 166-68, 174, 182, 187, 245, 266, 280, 324-25, 363, 379, 472, 479, 491, 515-16, 518, 526-28, 530, 564, 598, 663
विट्ठल राय 662
विट्ठलेश राय 177
विद्यानन्द 152, 345
विद्यापति xxvi, 192, 503

विद्यारण्य स्वामी 575
विद्यावती कुँवरि 554
विनायक दत्त 431
विनोद वल्लभ गोस्वामी 133
विन्टर नित्स (प्रो.) 367-70
विमलनाथ 15, 354, 530
विमला देवी 505
वियोगी हरि 272
विरजानन्द xxv, 70, 251, 531-32, 710
विलासदास 262, 660
विलासाचार्य 534
विलियम डेनियल 549
विलियम बटलर 425
विल्वमंगल 126-127, 459, 532-34, 590
विल्सन (डॉ.) 628
विवेकानन्द 152, 495, 709-10
विशनगिरि 273, 275
विशनसिंह 99
विशप फैडरिक रॉबर्ट विलियम 399
विश्वनाथ चक्रवर्ती 5, 18, 89, 146, 180, 277, 310, 312, 319, 399, 480
विश्वनाथ दत्त 709
विश्वमोहन भट्ट 455
विश्वाचार्य 299, 321, 535
विश्वेश्वराश्रम 675
विष्णुकान्त गोस्वामी 334
विष्णुगुप्त 575
विष्णुदास छीपा 160
विष्णुपुरी 460
विष्णुप्रिया 146, 537
विष्णुसिंह 567
विष्णु स्वामी ix, xxiii, 406, 538, 539
वीठलदास 272, 667
वीठल विपुल 539
वीरसिंह बुन्देला 142, 561
वृंदावन चक्रवर्ती 183
वृन्दावन दास 188, 198
वृन्दावनदास (चाचा) 122-123, 127, 133, 335-336, 339-40, 418, 420, 422, 491, 546, 563, 570-571, 660
वृन्दावनदास ठाकुर 286
वृन्दावन तर्कालंकार 507
वेंकटकृष्ण 524
वेंकटकृष्णाध्वरी 525
वेंकटेश 524
वेदवती 443
वेदान्तदेशिकाचार्य 73
वैद्यनाथ दीक्षित 525
वैद्यनाथ मिश्र 674
वैष्णवदास 179, 189
व्यासतीर्थ 460
व्यास मिश्र 665
व्यूलर (प्रो.) 10

श

शंकराचार्य ix, xxii, xxiv, xxvi, 11, 26, 71, 80, 91-92, 152, 177, 181, 208, 234, 296, 381, 389, 465, 469, 517, 536, 574-77, 584, 598-99, 606, 612-13, 670
शङ्गधेराचार्य 69
शठकोप स्वामी 477
शतधृति 539
शत्रुजीत देव 557
शम्भुकालिदास 524
शरणबिहारी गोस्वामी 481, 611-612
शरणानन्द महाराज xxiv, 174, 710
शरदचंद्र बसु 328
शहाबुद्दीन गौरी 99

शाइस्ता खाँ 47
शान्तानन्द 670
शारदामणि देवी 494-495
शाह आलम 594
शाहजहाँ 33, 38, 42-44, 46-48, 331, 530, 577, 579, 631
शिखी महती 580-81
शिवगुरु 574
शिवदयाल सिंह xxvi, 581-82, 626, 698, 703
शिवरानी 675
शिवहरित 652
शिवाजी 47, 431
शिवानन्द सेन 115, 196, 198, 584
शिशिर कुमार घोष 537, 552
शिहाबउद्दीन 637
शीलचन्द्र 434
शीला ग्रोबर 611
शुकदेव दास 357
शुकसुधी 103
शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी 459
शुद्धकीर्ति 575
शुद्धोधन 446
शेख बहाउद्दीन 591
शेख सलीम चिश्ती 45, 48, 591
शेरशाह सूरी 42, 45, 47-48, 99, 142-43
शोभनदास 265
शोभनराय 586, 593
शोभादास 65
शोवन भट्ट 444
श्यामखोजी 507, 593
श्यामचरण दास 544, 584, 593-94
श्यामदेव 97, 595
श्याम भट्टाचार्य 595
श्यामरूप 573, 595
श्यामलाल 110, 272
श्यामलाल गोस्वामी 542
श्यामलाल सिद्धान्त वाचस्पति 603
श्याम विलास 264
श्यामशरण बड़भागी 279, 468, 645
श्याम शाह तूँवर 262
श्यामसुन्दर आचार्य 87
श्यामसुन्दर खण्डेलवाल 32
श्यामा 530
श्यामा चरणदास 573
श्यामाचार्य 171, 595
श्यामानन्द 209, 244, 483
श्रद्धानन्द 31
श्रवण भट्टाचार्य 595
श्रावकश्रेष्ठ 40
श्रीकण्ठ 539
श्रीचन्द xxiv, 157
श्रीदेवाचार्य 379, 633, 636
श्रीधर स्वामी 286, 406, 603
श्रीनाथ xxii, 115, 511
श्रीनाथ भट्ट 470
श्रीनिवासाचार्य 165, 178-79, 185, 266, 298-299, 477, 479, 486, 495-96, 535, 540-541, 667
श्रीबल्लाल 341
श्रीभट्ट देव 540
श्रीराम पण्डित xxi
श्रीराम शर्मा 680
श्रीवास पण्डित 459, 602-603
श्रेयांशनाथ 597

स

संकर्षण दास 563
संतदास 262, 385, 644, 689
संतदास काठियाबाबा 689-90, 692, 709, 711-12

संतराम 491
संयोगिता 55
सतीश कुमार 580
सतीश चन्द्र चतुर्वेदी 42
सतीशचन्द्र मिश्र 395
सदानन्द 172, 235
सदानन्द परमहंस 613
सनातन गोस्वामी xxvi, 5, 112, 128-29, 158, 170, 189, 292, 319, 322, 395-96, 415, 466, 480, 505, 514, 558, 564, 603, 614-15, 657, 659
सनातन मिश्र 537
सनेहीलाल गोस्वामी 338
सबगतिराम 210, 615
समितपाणि 575
सरदार खाँ 653
सरस दास 285, 288-89, 435
सरस माधुरीशरण 361, 589, 700
सर्वानन्द 152
सर्वेश्वरशरण देवाचार्य 296, 620-21, 689
सहचरि शरण 286, 481-82, 621-22
सहचरि सुख 110
सहजानन्द 622
सहजोबाई xxiv, 146, 264-65, 280, 299, 657, 685
सांवलदास 404
साईंलाल 99
साधुराम 589, 624
साबित खाँ 21
सालिगराम बहादुर 581, 626-27, 703
सावंतसिंह 483
सावित्री देवी 700
सार्वभौम भट्टाचार्य 115, 209, 327, 503, 603, 615
साहिब दे 127, 666
साहिबराम व्यास 660-61
सिंहसेन 14
सिकंदर 270
सिकंदर लोदी 41-43, 48
सिद्धार्थ 446
सिद्धेश्वरी देवी 550
सियाराम दास 276
सीतलदास 622, 635
सीता देवी 84
सुकुमार सेन 188
सुखराम दास 636
सुखलाल 650
सुखविलास मस्तराम 159, 468
सुखानन्द पुरी 460
सुधर्मण 114
सुधर्माचार्य 206
सुधानिधि 503
सुनन्दा 178, 496
सुन्दरकुँवरि 483
सुन्दर दास 172, 579
सुन्दर भट्ट 327, 423
सुन्दर भट्टाचार्य 379, 636
सुन्दर लाल कायस्थ 421, 562
सुन्दरवर 261-262, 514
सुन्दरवल्ली 524
सुन्दर सिंह 563
सुप्रकाशानन्द 569
सुबलदास 128, 359
सुबल स्याम 197
सुभाष चन्द्र बोस 695
सुमेरू देव 122
सुमोखनलाल 659
सुरत भानदेव 318, 636
सुरसुरानन्द 501

सुरेश्वराचार्य 598
सुलक्खनी 157
सुवलानन्द 636
सुशीला देवी 499
सूरजमल (राजा) 54, 58, 142, 238, 400-402, 404, 552
सूरदास xxvii, 28, 129, 205, 259, 266, 325, 406, 418, 420, 518, 638
सूरध्वज 514
सूर्यकान्त वैदिक 94
सूर्येन्दु द्विवेदी 670
सैयद अहमद 577
सैयद इब्राहिम रह 98
सैयद शाह अब्दुल अजीज 99
सैयद शाह उवैस 577
सोनपाल 35
सोमदेव 272
सोमनाथ भट्ट 514
सोमानन्द 592
सोहन देई 673
स्वभूराम देवाचार्य 108, 190, 496, 643-44, 700, 708
स्वयंभूरामदेव 556
स्वरूप दामोदर 107, 115, 169, 480, 503, 580
स्वरूपाचार्य 459, 644
स्वरूपानन्द 31, 670
स्वरूपानन्द सरस्वती 577
स्वामिनीशरण 491

ह

हंसदास 170, 700, 713
हँसमुखदास 645
हंसराज देव 258-59
हजरत इब्राहीम 84
हजरत ईसा मसीह 78
हजरत गफूर शाह 98
हजरत निजामुद्दीन औलिया xxvi, 645-46
हजरत पीर खलील 45
हजरत मुहम्मद साहब 646
हजरत शाह जमाल 21
हजरत शेख नादिर शाह 46
हजारीप्रसाद द्विवेदी 26, 320
हनुमान प्रसाद पोद्दार 679
हनुमान सहाय पुरोहित 701
हमीदउद्दीन सूफी नागौरी 193
हरकिशन 631
हरगोविन्द 49, 560, 562, 630
हरजीवन दास 662
हरबख्शपाल 548
हरराय 631
हरिकिशोर 650
हरिदास ix, xxvi, 80-81, 121, 365, 379, 489, 508-509, 539, 556, 611-12, 621, 651-52, 654, 656, 659
हरिदास डागुर 652-53
हरिदास पण्डित 653
हरिदास बाबा 653-54
हरिदेव दास 657
हरिनाम दास 171, 682, 710
हरिनारायण 657
हरिप्रसाद 432, 657-58
हरिप्रियाशरण 713
हरिमती 652
हरिराम व्यास xxvi, 181, 417, 510, 543, 545, 561, 612, 651, 659, 660
हरिराय 173, 322, 365, 661-63
हरिलाल व्यास 491, 660-61
हरिवंश पाठक 137

हरिवल्लभ देव 467, 663
हरिविलास 663
हरिविलास देव 663-64
हरिव्यास देव 313, 328, 330, 334
हरिव्यास देवाचार्य 190, 364, 366, 458, 480, 496, 507, 540, 554, 635, 643-644
हरिशंकर शर्मा 31-32
हरिस्वरूप 664
हर्मन जैकोबी 302
हस्तामलक 575, 577
हित अनूप 110
हितकाम 553
हितदास 337, 491
हित हरिवंश ix, xxvi, 89, 127, 172, 190, 262, 272, 285, 316, 329, 335, 364, 417, 453, 470, 491, 514, 545, 548, 554, 562, 565, 567, 611, 650,
हिताचार्य 109, 650
हिन्दाल (मिर्जा) 45
हिम्मतगिरि बहादुर 146
हिम्मतसिंह 51
हीरानन्द मिश्र 128
हीरानन्द सूरि 230
हीरामणि उस्ताद 174
हुकमचन्द 24, 400
हुमायूँ 42, 45, 47, 49, 629
हुलास कुंवरि 552
हुसेन शाह 395, 615
हुसैन लाहौरी 116
हृदयानन्द गोस्वामी 172
हेनरी स्टील ऑलकॉट 249
हेमचन्द्र चक्रवती 252
हेमलता ठकुरानी 667
हेलना पेत्रोवना ब्लैवेतस्की 249

संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार के सहयोग से वृन्दावन शोध संस्थान द्वारा संचालित परियोजनाओं में ब्रज संस्कृति विश्वकोश एक महत्त्वाकांक्षी परियोजना है। ब्रज के पौराणिक, ऐतिहासिक, पुरातात्त्विक, भौगोलिक, आध्यात्मिक, साहित्यिक, सामाजिक, आर्थिक और लोक-पक्ष को अपने में समेटे इस परियोजना का विस्तार चार खण्डों में है। परियोजना से देश के साहित्य, संस्कृति भाषा और दर्शन से संबद्ध कई विद्वान, परामर्शदाता और संपादक के रूप में जुड़े हैं, जिससे कि इस ग्रंथ की विश्वसनीयता, गम्भीरता और भी विशिष्टता के साथ स्थापित हो सके। *प्रथम खण्ड का प्रकाशन ब्रज के इतिहास, पुरातत्त्व, भूगोल (भाषायी आधार पर), समाज,* कृषि, पर्यावरण, अर्थव्यवस्था आदि पक्षों पर किया जा चुका है।

प्रस्तुत द्वितीय खण्ड पाठकों को समर्पित किया जा रहा है। जो ब्रज के धर्म सम्प्रदायों पर केन्द्रित है।

इसके उपरान्त अन्य खण्ड इस प्रकार होंगे-

तृतीय खण्ड-ब्रजभाषा एवं लोक साहित्य

चतुर्थ खण्ड-ब्रज की कलाऐं

वृन्दावन शोध संस्थान

देव पब्लिशर्स
एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स
नई दिल्ली

ISBN 978-93-81406-84-7

₹ 2200 (दोनों खण्ड)